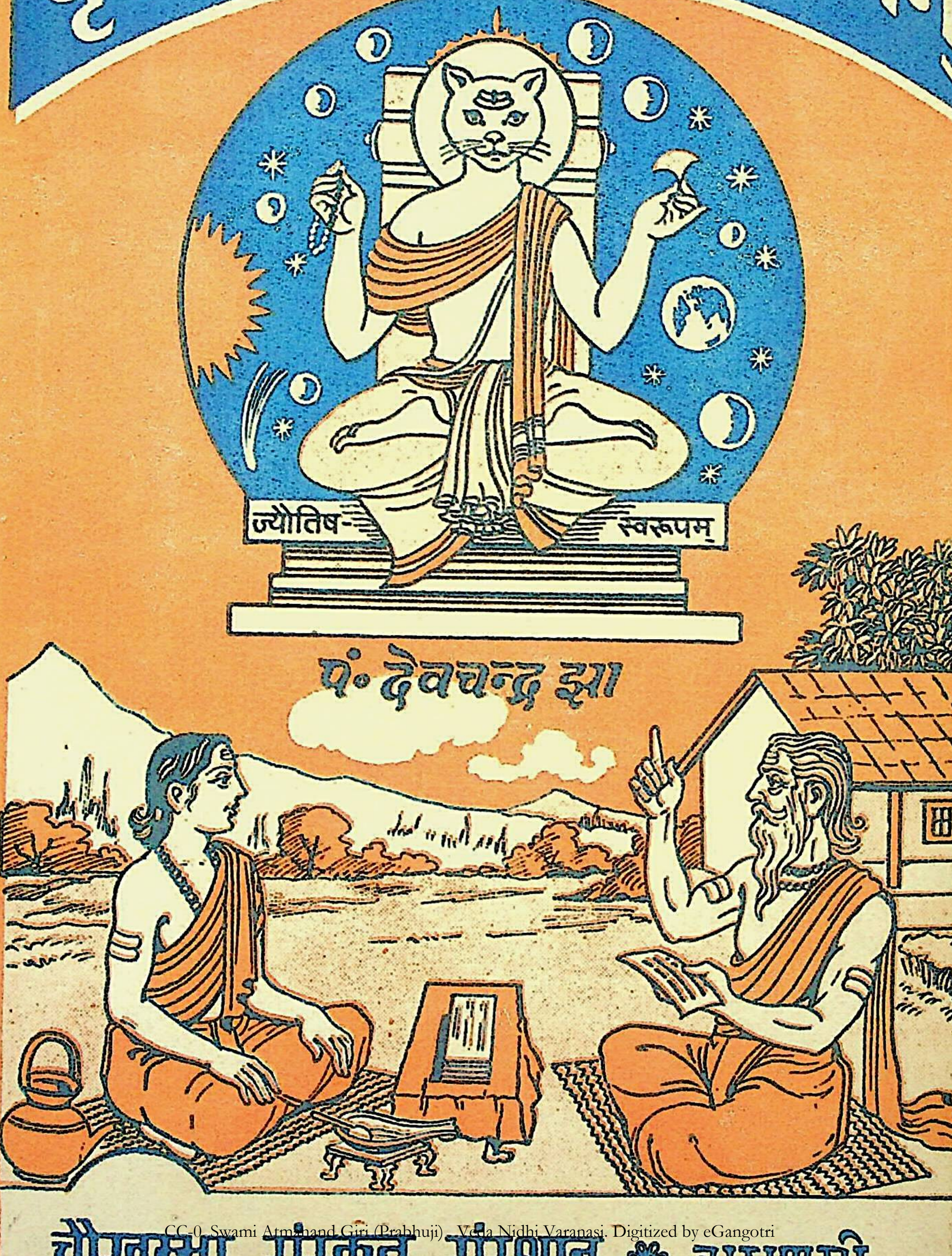
3-2

बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्



पं० देवचन्द्र झा

चौखम्भा संस्कृत संस्थान ❋ वाराणसी

बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला
२२०

श्रीपराशरमुनिविरचितं सुसंस्कृतं

बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्

सविमर्श 'सुधा' व्याख्यया विभूषितम्

सम्पादकः व्याख्याकारश्च

दैवज्ञः पं० देवचन्द्र झा, एम० ए० (द्वय)

ज्यौतिषाचार्य-साहित्याचार्य-पोष्ठाचार्योपाधिधारी बिहार-प्रान्तीयमुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाजापरनामकराजकीय-महाविद्यालयज्यौतिषप्राध्यापकः ।

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि० संवत् २०३९
मूल्य : रु०

अन्य प्राप्तिस्थान

१. चौखम्भा ओरियन्टालिया
पो० बा० नं० ३२
गोकुल भवन, के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर
दिल्ली–११०००७ फोन : २२१६१७

२. चौखम्भा विश्वभारती
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ६५४४४

३. चौखम्भा भारती अकादमी
गोकुल भवन, के. ३७/१०९
गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१
फोन : ६३३५४

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
220
*****

BṚHATPĀRĀŚARA-HORĀŚĀSTRA

OF

PARĀŚARA MUNI

Edited with critical study, 'Sudhā'
Hindī Commentary and Notes

By

Pt. DEVACHANDRA JHĀ, M. A. (Double)
Jyotiṣa-Sāhitya Āchārya, Poṣṭāchārya
Prof. Dharma Samāja (Govt.) Sanskrit College
Muzaffarpur (Bihar)

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publisher and Distributor of Oriental Cultural Literature
P. O. Chaukhambha, P. Box No. 139
Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI (INDIA)

Phone : 65889
Third Edition 1982
Price : Rs. [illegible]-00

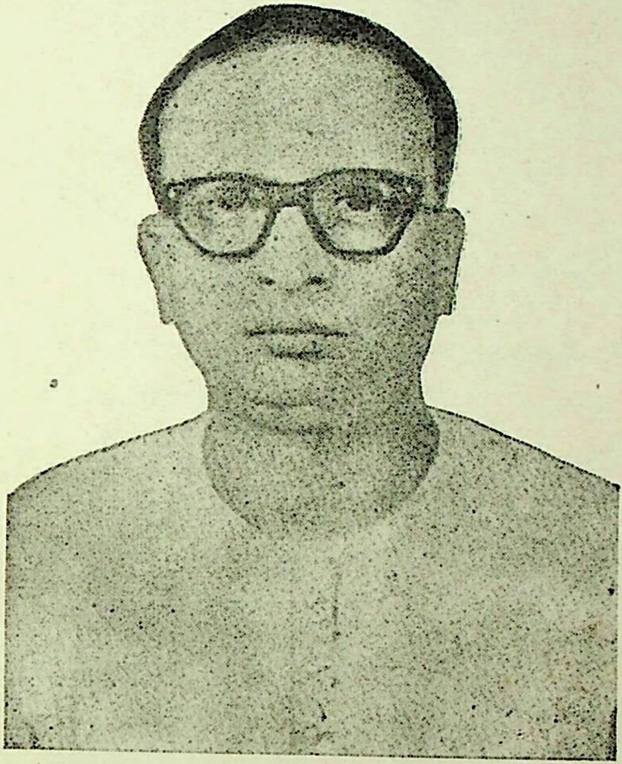
Also can be had of

1. **CHAUKHAMBHA ORIENTALIA**
Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI–221001 (India)
Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar
DELHI–110007 Phone : 221617

2. **CHAUKHAMBHA VISVABHARATI**
Chowk (Opposite Chitra Cinema)
VARANASI–221001
Phone : 65444

3. **CHAUKHAMBHA BHARATI ACADEMY**
Gokul Bhawan, K. 37/109
Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)
Phone : 63354



पं० देवचन्द्र झा

प्राक्कथन

ग्रहनक्षत्रादि पदार्थ ज्योतिष् कहलाता है और ज्योतिष्-सम्बद्ध शास्त्र को ज्योतिष या ज्यौतिष-शास्त्र कहते हैं।

ज्योतिष-शास्त्र के तीन स्कन्ध हैं—(१) संहिता, (२) जातक और (३) सिद्धान्त। देश, काल एवं प्राणियों के शुभाशुभफलबोधक शास्त्र—संहिता, व्यक्तिविशेष का जन्म-कालानुसार फलादेशकारक ग्रन्थ जातक तथा ग्रहनक्षत्रों की स्थिति गति एवं सृष्ट्यादि-प्रलयान्त काल के परिगणन को सिद्धान्त कहते हैं।

महर्षियों ने अपने-अपने समय में ज्यौतिष-शास्त्र के तीनों स्कन्धों के ग्रन्थों पर अपना-अपना विचार व्यक्त किया है। नारद, वशिष्ठ, लोमश, जैमिनि, पराशर आदि महर्षियों के ग्रन्थों में आज भी उनकी वैज्ञानिकता, त्रिकालदर्शिता एवं सत्यादेश-कारिता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। संहिता में जन्माङ्ग-चक्र मात्र के आधार पर जो वर्तमान, भूत तथा भविष्य का सत्य फलादेश वर्णित रहता है, उसे देख या सुन कर कोई भी चकित हुए बिना नहीं रह सकता। जातक-ग्रन्थों में जीवनान्त तक का सत्य फलादेश जन्मकालिक कुण्डली के आधार पर करना साधारण बात नहीं है। इस असाधारण प्रक्रिया में महर्षि पराशर का स्थान अत्युन्नत है।

महर्षि पराशर के समयादि का निर्णय, बाह्य एवं आन्तरिक प्रमाणों के अभाव के कारण इतिहासकारों ने भी इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डालने में अपनी

अक्षमता दिखलाई है। पाराशरी संहिता, बृहत्पाराशर-होराशास्त्र (जातक ग्रन्थ) तथा एक सिद्धान्त ग्रन्थ के रचयिता इन्हे वरहमिहिरादि विद्वानों का पूर्ववर्ती बतलाया है। भट्टोत्पल के अनुसार पाराशरी संहिता तो उन्हें देखने को मिली थी, किन्तु अन्य ग्रन्थ नहीं।

सम्भवतः महर्षि पराशर ही ऐसे अंतिम महर्षि हुए जिनका जातक स्कन्ध (बृहत्पाराशर-होराशास्त्र) सर्वमान्य सिद्ध हुआ और उसी के अनुसार संक्षिप्त रूप में रचित उनकी लघु पाराशरी विश्व भर में ज्योतिष-प्रेमियों का कण्ठहार बन गई। जातक-स्कन्ध या संहिता के ग्रन्थ सोपपत्तिक नहीं होते हैं। वे महर्षियों के फलादेश की ही सत्यता के कारण सोपपत्तिक या प्रमाणिक समझे जाते हैं। ऐसे ही ग्रन्थों में प्रस्तुत बृहत्पाराशरहोराशास्त्र भी एक ऐसा है जो सर्वसाधारण जनोपयोगी जातक ग्रन्थों का शिरोमुकुट है। इसमें सन्देह नहीं कि एकमात्र इस ग्रन्थ के अध्ययन एवं मनन से कोई भी व्यक्ति जातक ग्रन्थों में पूर्ण प्रवीण हो सकता है। इस ग्रन्थ में ऐसे भी विषय हैं जो अन्य जातक ग्रन्थो में अलभ्य प्रतीत होते हैं। प्राणपद-साधन, धूमाद्यप्रकाशग्रहानयन, दशाभेदविवरण, सुदर्शनफलाध्याय, नष्टजातकाध्याय आदि कतिपय ऐसे प्रसङ्ग हैं जिनकी प्रशस्तता निर्विवाद कही जा सकती है। "कलौ पराशरः स्मृतः" के अनुसार बृहत्पाराशरहोराशास्त्र की विशेषता वर्तमान युग के लिए सर्वथा वाञ्छनीय है।

जैमिनि के समकालीन 'महर्षि पराशर विरचित विपुलकाय यह ग्रन्थ शताध्याय था' इस जनश्रुति के आधार पर ही पूर्व के विज्ञ सम्पादकों ने इसे शताध्याय दिखलाने की दृष्टि से इस ग्रन्थ में स्वकल्पित कतिपय अध्यायों का संयोजन भी कर दिया है। पूर्व प्रकाशित इस ग्रन्थ में बहुत से ऐसे पद्य मिलते हैं जो अविकल रूप से अन्य अर्वाचीन ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। शैली की विभिन्नता के कारण वे पद्य अवश्य ही अर्वाचीन ग्रन्थकार के ही प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार पूर्वोपलब्ध बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में भी ग्रन्थान्तर के पद्यों का संमिश्रण किया गया है, परन्तु इतना अवश्य है कि विद्वान् सम्पादकों ने अपनी सूझ-बूझ से इस तरह संयोजन कर दिया है कि कहीं भी इस ग्रन्थ का उद्देश्य खण्डित प्रतीत नहीं होता। इस प्रचलित प्रणाली से कोई भी अर्वाचीन सम्पादक अपने को अछूता नहीं रख सकता, क्योंकि उसे अन्य संस्करण की अपेक्षा अपने संस्करण को विशुद्ध

एवं प्रचुर विषयों से सुसज्जित करना ही लक्ष्य रहता है। इस प्रक्रिया में कौन सम्पादक कहाँ तक सफल हो सका है इसका सही मूल्यांकम पाठकगण ही कर सकते हैं।

पहले पहल इसी विपुलकाय ग्रन्थ का सम्पादन आरम्भ करना मुझे कतई अभीष्ट नहीं था। ग्रन्थ की गरिमा तथा जनसाधारण की अभिरुचि एवं प्रकाशक तथा मित्रों के अनुरोध से प्रभावित होकर ही इसका सम्पादन मुझे करना पड़ा है। जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने की दृष्टि से 'सुधा' नाम की हिन्दी व्याख्या तथा जहाँ-तहाँ विषय-विमर्श भी लिखे गये हैं। फिर भी अधिक शीघ्रता के कारण इसका अभिप्सित स्वरूप मैं उपस्थित नहीं कर सका, इसका मुझे बहुत ही क्लेश है। प्रूफसंशोधन में प्रमाद वश जो त्रुटियाँ रह गयी हैं, उन्हें अब दूसरे संस्करण में ही हटाया जा सकेगा।

अन्त में मैं चौखम्बा प्रकाशन के स्वत्त्वाधिकारी गुप्त-परिवार तथा चौखम्बा-संस्थान के कार्यकर्ता श्री पं० रामचन्द्र जी झा, श्री पं० ब्रह्मशङ्कर जी मिश्र आदि मनीषियों का अतिशय आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में पूरी सहायता की है। उन गुरुओं, सग्रहालयों तथा अन्य महानुभावों का भी, जिनकी सहायता मुझे साधन-सामग्री जुटाने में मिली है, बड़ा ही कृतज्ञ हूँ।

आत्म-निवेदन

प्रस्तुत संस्करण को शताध्यायी के रूप में प्रस्तुत न कर सका इसका मुझे बहुत बड़ा खेद है। यह सत्य है कि इसके लिए मैं और प्रकाशक दोनों ने भगीरथ प्रयत्न अवश्य किया है। कामेश्वरसिंह दरभंगा राजकीय संग्रहालय से भी जब सन्तोषप्रद यथेष्ट सामग्री उपलब्ध न हो सकी तब मैंने गाँव, नगर तथा मण्डलों में घूम-घूम कर अपने गुरुजनों की पेटारी को ढूँढ़ना प्रारम्भ किया और उसमें मुझे अधिक सफलता मिली। तदनु मैंने सभी जीर्ण-शीर्ण प्राप्त पाण्डुलिपियों को एकत्रित करके पहले इस संस्करण की शोधपूर्ण संपूर्ण प्रेसकापी लिख डाली। इसमें मुझे सहस्राधिक दुर्वाच्य मूल श्लोकों को अपने शब्दों में सुवाच्य बनाना पड़ा है। अत एव अब यह मेरी निजी मौलिक कृति बन गयी है। इस पर प्रकाशक के

पुनर्मुद्रणादि का सर्वाधिकार सुरक्षित है । अतः नम्र निवेदन है कि कोई भी अन्य प्रकाशक इसे मात्र पराशरकृति समझ कर प्रकाशित करने का दुःसाहस न करे ।

इस विपुलकाय ग्रन्थ में शीघ्रता के कारण प्रमादवश जहाँ कहीं भी जो त्रुटियाँ रह गई हैं उसके लिए विज्ञजन अवश्य ही मुझे क्षमा करेंगे । "गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः" के अनुसार भी त्रुटि होना असम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में विज्ञ पाठक उन त्रुटियों के लिए क्षमा करते हुए विषय वस्तुओं से ही परिचित होकर मुझे अनुगृहीत करेंगे ।

श्रीराजेन्द्र-विवाहमहोत्सवः
ज्येष्ठ कृष्ण २, सं० २०३०
दिनांक १९-५-७३

निवेदक
देवचन्द्र झा

प्रस्तावना

विदितमेवास्ति तत्रभवतां भवतां यत्स्कन्धत्रयात्मके ज्यौतिषशास्त्रेऽयमेव होरास्कन्धो मुख्यतया ज्यौतिषप्राणभूतो लोकोपकारकारी सद्यश्चमत्कारकारी चेति। सत्यपि स्कन्धस्यास्य बहुलवैशिष्ट्ये चमत्कृतिवैचित्र्येऽपि दुरवगाहतया बहुविस्तृततया च नात्र किमपि लेखितुमितः प्राक् प्रयत्नवानहमभूवम्। सत्यमिति, यदल्पकायमभिनवव्याख्योपपत्तिसहितं सिद्धान्तग्रन्थमेकं प्रकाशयितुमनुरुद्धाश्चौखम्बाप्रकाशका मामेव विपुलकायमिमं बृहत्पाराशरहोराशास्त्राभिधग्रन्थं सम्पादयितुं परीक्षितुकामा इव विवशमकार्षुः। अहमपि तदनुरोधमनुगृह्णन् यतस्ततस्तत्साधनसामग्रीमाकलयितुमारब्धवान्।

प्रथमतो मुम्बईतो वाराणसीतश्च प्रकाशितो ग्रन्थोऽसौ दृष्टिपथमानीतश्चिरादाम्नातश्च। उभयोरपि प्रक्षिप्ताध्यायान् कतिपयानभीक्ष्य यतस्ततो हस्तलिखितान् प्राचीनतमान् ग्रन्थान् प्राचीनवृद्धतमगुरुवर्येभ्यः संग्रहालयेभ्यश्च संग्रहीतुमारब्धवान्। स्वगेहनिकटवर्त्ति 'डुमरा' ग्रामस्थगुरुवरश्रीविश्वेश्वरझाशर्मपितृचरणैः स्वर्गीयैर्मध्वरिशर्मभिर्लिखितः खण्डित एको ग्रन्थस्तु मया, प्रकाशकैरपि वैद्यनाथधामापरनामक देवगृहस्थपण्डितवरश्रीरामलषणझाशर्मभ्यो ग्रन्थस्यास्य कश्चिद्धस्तलिखितोंऽशोऽलम्भि, यतश्चोपादेयांशमहमत्रयथास्थानमुपन्यस्तवान्।

पौराणिकशैलीनिबद्धोऽसौ ग्रन्थोऽतिप्राचीनतमो बराहमिहिरादिप्रणीत ग्रन्थेभ्योऽतिप्राक्तनो जैमिनिमहर्षिसमकालीनः शताध्यायश्चेति गुरुपरम्पराजनश्रुतिः। इतिवृत्तकाराश्चापि महर्षिपाराशरसम्बन्धे समयादिनिर्णयं नैव कर्तुमशकन्। भट्टोत्पलरचितबृहज्जातकटीकावलोकनतश्चेति ज्ञायते यत्पराशरकृतस्कन्धत्रयगतग्रन्थेषु पाराशरी संहिता, पाराशरहोराशास्त्रमन्यश्च कश्चित्सिद्धान्तग्रन्थश्चेति त्रितयं भट्टोत्पलेन श्रुतमङ्गीकृतञ्च। पाराशरी संहिता भट्टोत्पलेनावलोकितापि। यत्तदस्तु, किञ्च पराशरकृतमेतद् बृहत्पाराशरहोराशास्त्रमन्यजातकग्रन्थेभ्योऽतितरां प्राचीनतममिति शैलीविलोकनतोऽपि स्फुटं प्रतिभाति।

नियतमत्र तत्तत्सम्पादकैः शताध्यायोऽसौ ग्रन्थ इति धिया तत्तद्विभिन्न-ग्रन्थानुसारमत्र कतिपयेऽध्याया नियोजिताः। प्रकाशितग्रन्थेषु बहुष्वपीय-मेव स्थितिः। अहमपि मूलांशाविरोधेन पूर्वसम्पादकाङ्गीकृतां सरणिमिमां स्तोकमधिकं वाऽनुसरन् कतिपयानावश्यकविषयान् पूर्वगृहीतविषयेभ्योऽपि अधिकानत्र यथोपलब्धजीर्णशीर्णतालपत्रपाण्डुलिपिमनुश्रित्य न्यवेशयम्। यथा-मति ग्रन्थमिममल्पीयसाप्यनेहसा सुष्ठुतरं विधातुमतितरां प्रयत्नमकरवम्। प्रयत्नेऽत्र कियन्मितं साफल्यमलाभीति पाठका एव निर्णयेयुः। ग्रन्थमिमं सुबोधगम्यं विधातुकामः सुधाख्यां हिन्दीव्याख्यां यथास्थानं विषयविमर्शांश्च प्रयच्छन्नहं ग्रन्थस्यास्य विषमतां यावच्छक्यमपाकृतवानस्मि।

ग्रन्थेऽस्मिन् बहवो विषया अन्यजातकग्रन्थेभ्योऽतितरां विलक्षणा विपश्चिन्मनस्तोषकराश्चमत्कारकारिणश्च सन्ति। धूमाद्यप्रकाशग्रहानयनं तत्सम्बद्धफलानि च, विविधदशानयनमविज्ञातजन्मकालानां जन्मलग्नादि-बोधनं, त्रिकोणैकाधिपत्यशोधनमष्टकवर्गविवेचनं तत्फलानि च, अष्टकवर्गेभ्यो ऽप्यायुःसाधनं सुदर्शनफलानयनमन्यच्च ग्रन्थस्यास्य वैशिष्ट्यमुद्वहन्ति। बृहत्पाराशरहोराशास्त्रमेकमेवाऽधीतमाम्नातं च समस्तहोराशास्त्राभिज्ञतां पाठकान् प्रयच्छेदित्युक्तौ नैवातिशयोक्तिः।

इत्थमत्रातिप्रयोजनीयमतितरामभीप्सितं बृहत्पाराशरहोराशास्त्रं विलम्ब-तोऽप्यद्य समुपस्थाप्य विपश्चितां पुरः परां शान्तिमनुभवन्नासे। न च मनाग-प्युदासेऽत्रतनीं भूयसीमपि त्रुटिमीक्षमाणो बहुनामुपहासपाशप्रसरावसरेभ्यः। त्वरितगत्या प्रधावतां नियतं यत्र तत्रोपस्खलनम्। सम्पादनारम्भदिवसादि-यन्मितैरेवाल्पीयोभिरहोभिरेतस्य सम्पादनं सम्पत्स्यत इति नाशास्यतेस्म। ईदृग्विपुलकायग्रन्थस्येयदत्यञ्जसा प्रकाशनं सम्पादनविभागप्रधानानां श्रीमतां रामचन्द्रझा शर्मणामितरेषां प्रतिभाजुषां पण्डितवरश्रीब्रह्मशङ्करमिश्रादि-विदुषां च साहाय्यमाकलय्यैव सम्पन्नमिति तान् मुहुर्मुहुर्धन्यवादप्रसूनै-रर्चयामः। सत्यपि तेषामतितरां साहाय्ये स्वयं चानवरतं दत्तावधानेऽप्यनेकत्र प्रूफसंशोधने जायमाना त्रुटिरजस्रं क्लेशयति चेतः।

१५१ पृष्ठे ग्रहस्पष्टदृष्टिस्थले गुरुस्पष्टदृष्टीति, ३२१ पृष्ठे शु—६।१८ २।१० स्थाने ८।१८।२।१० इति चैवमनेकत्र विरुद्धमुद्रणं कण्टकभ्रान्तिजनितं वैरस्यजनकमपि विज्ञैरवश्यं क्षन्तव्यम्। सत्स्वपि बहुषु दत्तावधानेषु प्रूफसंशोधकेषु कथमित्थमुद्भूवन् भ्रान्तयश्चेति साश्चर्यमानसाः सन्तो वयं भ्रान्तिर्मनुष्यधर्म इति स्मरन्तो मौनमासादयामः।

अथैवमेतत्प्रकाशने चौखम्बासंस्कृतग्रन्थमालाध्यक्षाः प्रस्तुतग्रन्थस्यास्य प्रकाशकमहोदयाः सत्स्वपि विद्युतसंकटेषु यत्प्रचुरमुत्साहनिचयमदर्शन् नैव तत्कर्हिचिदपि विस्मरणीयम्। नहि सुशकं वागुपासकानां श्रीसाहाय्यमिति मादृशं मनोरथसिद्धौ सत्यामपि भूयस्यां विडम्बनायामिमे प्रकाशनेऽस्य भृशं साहाय्यमाचरन्तो विदुषां, विशेषतो मम हार्दिकशुभाशीराशिभाजः समजनिषत इति किमुद्भावयामि ? अवसाने—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

इति पाठकान् सविनयं स्मारयन् विरमामि।

श्रीराजेन्द्र-विवाहमहोत्सवः
ज्येष्ठ कृष्ण २, सं० २०३०

विनयावनतः
—देवचन्द्र झा

विषय-सूची

(पूर्व-भागः)

(उत्तर-भागः)

बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्

व्याख्याकर्तृमङ्गलम्

(१)

निधाय हृदि [1]विश्वेश-पदाम्बुज-रजोऽनिशम् ।
पराशरसुधा-सिक्त-सूक्तितत्त्वाशयं ब्रुवे ॥

(२)

त्रिस्कन्धज्यौतिषे होरा-शास्त्रस्य गरिमा भृशम् ।
तत्रापि च कलौ पारा-शरी होरा मता बुधैः ॥

(३)

सविमर्श-सुधाधारा-सारैर्होरामिमामतः ।
विशोध्य विबुधप्रीत्यै विवृणोमि विशेषतः ॥

(४)

कृता यद्यप्यन्यैरपि विवृतयोऽस्यां बहुविधा-
स्तथाप्यायासो मे किमपि कमनीयं गमयति ।
अथाऽवाच्यः कोऽपि स्वमतिमनतिक्रम्य निगद-
न्निति प्राचां नीतिर्यदि तदिह भीतिर्भवतु का ? ॥

(५)

देवचन्द्रकृतामेतां सविमर्शां सुधाभिधाम् ।
विलोक्य विवृतिं प्रीतिमाप्नुवन्तु मनीषिणः ॥

---

१. विश्वेशो = 'विश्वेश्वरझा' नामा मम गुरुः तस्य ।

अथ सृष्टिक्रमवर्णनाध्यायः ॥ १ ॥

ग्रन्थ का उपक्रम—

अथैकदा सुखासीनं पार्श्वे हिमवतः शुभे ।
महर्षिप्रवरं पूज्यं पराशरमुदारधीः ॥ १ ॥
मैत्रेयो हि मुनिर्होराशास्त्रजिज्ञासया स्वयम् ।
साष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्येदमुवाच ह ॥ २ ॥

एक समय उदार विचार वाले मैत्रेय मुनि ने हिमालय के निकट पवित्र स्थान में सुखासीन परम पूज्य महर्षिप्रवर पराशर जी को साष्टाङ्ग प्रणाम कर होराशास्त्र जानने की इच्छा से यह कहा—॥ १–२ ॥

मैत्रेय उवाच—

भगवन् ! भवता लोककल्याणाय कलौ युगे ।
यथोदिता स्मृतिस्तद्वत् कृपयाऽवनताय मे ॥ ३ ॥
होराशास्त्रं प्रसिद्धं यत् त्रिस्कन्धज्यौतिषेऽद्भुतम् ।
तदेव दैवज्ञमुदे विस्तरादुच्यतामिह ॥ ४ ॥
कथमस्य हि विश्वस्य प्रभवोऽथ लयो भवेत् ।
नभःस्थायिग्रहाणाञ्च भूमिष्ठप्राणिनां मिथः ॥ ५ ॥
कीदृशोऽस्ति च सम्बन्धः फलं येन प्रजायते ।
एतत्सर्वं समाख्याहि त्वं दैवज्ञेषु विश्रुतः ॥ ६ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन् ! कलियुग में लोकोपकार के लिए जैसे आपने स्मृति का प्रतिपादन किया है, वैसे ही त्रिस्कन्ध ज्योतिष में विलक्षण, प्रसिद्ध होराशास्त्र को ज्योतिषियों की प्रसन्नता के लिए कृपया मुझे विस्तार पूर्वक कहें ।

इस संसार की उत्पत्ति एवं प्रलय की स्थिति कैसी है ? आकाशचारी ग्रह एवं पृथ्वी पर निवास करने वाले प्राणियों में कैसा सम्बन्ध है, जिससे ज्योतिषियों का फलादेश सही सिद्ध हो जाता है ? यह सब कृपया विस्तारपूर्वक मुझे कहिये, क्योंकि आप ज्योतिषियों में विख्यात हैं ॥ ३–६ ॥

पराशर उवाच—

मुनेऽधुनैष ते प्रश्नः कृतो लोकहितेच्छया ।
अतोऽहं परमं ब्रह्मन् ! शक्तिमत्परमेश्वरम् ॥ ७ ॥
सूर्यं नत्वा ग्रहपतिं जगदुत्पत्तिकारणम् ।
वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ॥ ८ ॥

शान्ताय गुरुभक्ताय सदा सत्पथगामिने ।
आस्तिकाय प्रदातव्यं ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यति ॥ ९ ॥
न देयं परशिष्याय नास्तिकाय शठाय च ।
दत्ते प्रतिदिनं दुःखं जायते नात्र संशयः ॥ १० ॥

पराशर ने कहा—हे मुने ! आपने यह प्रश्न लोकोपकार की भावना से किया है । अतः हे ब्रह्मन् ; परमशक्तिमान् संसारोत्पत्ति के कारण ग्रहों के मालिक, परमेश्वर-भगवान् सूर्य को प्रणाम कर, मैं ब्रह्माजी द्वारा कथित ज्यौतिषशास्त्र (का रहस्य) आप से कहता हूँ । यह ज्यौतिषोपदेश गुरुभक्त, शान्त, सतत सन्मार्ग पर चलने वाले आस्तिक व्यक्ति को ही देना चाहिए, जिससे कल्याण का होना सम्भव हो, इसे नास्तिक, परशिष्य या कुटिल व्यक्ति को नहीं देना ही श्रेयस्कर है । अनधिकारी को यह उपदेश देनेवाला प्रतिदिन दुखी रहता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७—१० ॥

सृष्टिक्रम का वर्णन—

एकोऽव्यक्तात्मको विष्णुरनादिः प्रभुरीश्वरः ।
शुद्धसत्त्वो जगत्स्वामी निर्गुणस्त्रिगुणान्वितः ॥ ११ ॥
संसारकारकः श्रीमान् निमित्तात्मा प्रतापवान् ।
एकांशेन जगत्सर्वं सृजत्यवति लीलया ॥ १२ ॥
त्रिपादं तस्य देवस्य ह्यमृतं तत्त्वदर्शिनः ।
विदन्ति तत्प्रमाणं च सप्रधानं तथैकपात् ॥ १३ ॥
व्यक्ताऽव्यक्तात्मको विष्णुर्वासुदेवस्तु गीयते ।
यदव्यक्तात्मको विष्णुः शक्तिद्वयसमन्वितः ॥ १४ ॥
त्रिशक्तियुक्तो व्यक्तात्मा गदितोऽनन्तशक्तिभृत् ।

अव्यक्तात्मा एक विष्णु, जो अनादि, सर्वशक्तिमान् , शुद्धतत्त्व, निर्गुण होते हुए भी तीनों गुणों (सत्त्व, रजः, तमः) से युक्त हैं, समस्त संसार के मालिक हैं । संसारकारक वे प्रभु अपने एक अंश (चरण) से समस्त संसार की सृष्टि एवं पालन लीलापूर्वक ही किया करते हैं । उनके अमृतस्वरूप तीनों चरणों को तत्त्वदर्शी लोग ही जानते हैं । उनका प्रधान (प्रकृति) सहित एक चरण व्यक्ताऽव्यक्तात्मक विष्णु वासुदेव कहलाते हैं ।

अव्यक्तात्मा विष्णु दो शक्तियों से युक्त हैं और व्यक्तात्मा विष्णु तीनों शक्तियों से समन्वित होकर अनन्त शक्तिसम्पन्न कहलाते हैं ॥ ११—१४ ॥

सत्त्वप्रधाना श्रीशक्तिर्भूशक्तिश्च रजोगुणा ॥ १५ ॥
शक्तिस्तृतीया या प्रोक्ता नीलाख्या ध्वान्तरूपिणी ।

वासुदेवश्चतुर्थोऽभूच्छ्रीशक्त्या प्रेरितो यदा ॥ १६ ॥
सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्ध इति मूर्तिधृक् ।
तमःशक्त्यान्वितो विष्णुर्देवः सङ्कर्षणाभिधः ॥ १७ ॥
प्रद्युम्नो रजसा शक्त्याऽनिरुद्धः सत्त्वया युतः ।

उपर्युक्त शक्तियों में सत्त्वप्रधाना श्रीशक्ति, रजःप्रधाना भूशक्ति एवं तमःप्रधाना तीसरी शक्ति अन्धकारस्वरूपा नीलसंज्ञक कही जाती है ।

श्रीशक्ति से प्रेरित विष्णु चतुर्थ वासुदेव के रूप में उद्भूत हुए । विष्णु की ही तीनों शक्तियों से संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, ये तीन मूर्त्तियाँ हैं । नीलसंज्ञक तमः-शक्ति से युक्त विष्णु संकर्षण, रजःशक्ति से युक्त प्रद्युम्न, तथा सत्त्वशक्तिसमन्वित अनिरुद्ध कहे जाते हैं ॥ १५–१७ ॥

महान् सङ्कर्षणाज्जातः प्रद्युम्नाद् यदहङ्कृतिः ॥ १८ ॥
अनिरुद्धात् स्वयं जातो ब्रह्माहङ्कारमूर्त्तिधृक् ।
सर्वेषु सर्वशक्तिश्च स्वशक्त्याधिकया युतः ॥ १९ ॥

संकर्षण से महत्तत्त्व की, प्रद्युम्न से अहंकार की और अनिरुद्ध से अहंकारमूर्ति-धारी ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । सब में सभी शक्तियाँ हैं, किन्तु अपनी २ शक्ति की मात्रा अधिक होती है । तात्पर्य यह है कि संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, इन तीनों में तीनों शक्तियों की सत्ता रहने पर भी अपनी २ शक्ति की मात्रा अधिक होती है । जैसे संकर्षण में तमःशक्ति की, प्रद्युम्न में भूशक्ति की एवं अनिरुद्ध में श्रीशक्ति की मात्रा अधिक है ॥ १८–१९ ॥

अहङ्कारस्त्रिधा भूत्वा सर्वमेतदविस्तरात् ।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेदहङ्कृतिः ॥ २० ॥
देवा वैकारिकाज्जातास्तैजसादिन्द्रियाणि च ।
तामसाश्चैव भूतानि खादीनि स्वस्वशक्तिभिः ॥ २१ ॥

संक्षेपतः अहंकार के तीन भेद—सात्त्विक, राजस तथा तामस हैं । सात्त्विक (वैकारिक) अहंकार से देवताओं की, राजस (तैजस अहंकार) से इन्द्रियों की एवं तामस अहंकार से आकाशादि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुई । ये सभी अपनी अपनी शक्तियों (गुणों) से युक्त होते हैं ॥ २०–२१ ॥

श्रीशक्त्या सहितो विष्णुः सदा पाति जगत्त्रयम् ।
भूशक्त्या सृजते स्रष्टा नीलशक्त्या हरोऽत्ति हि ॥ २२ ॥

विष्णु (व्यक्ताऽव्यक्तात्मक), जिन्हें वासुदेव भी कहते हैं, श्रीशक्तिसमन्वित होकर त्रैलोक्य का संरक्षण करते हैं । ब्रह्मा भूशक्ति के द्वारा सृष्टि का निर्माण करते हैं और रुद्र तमःशक्ति से उसका संहार करते हैं ॥ २२ ॥

सर्वेषु चैव जीवेषु परमात्मा विराजते ।
एवं हि तदिदं ब्रह्मन् ! स्थितं हि परमात्मनि ॥ २३ ॥
सर्वेषु चैव जीवेषु स्थितं ह्यंशद्वयं क्वचित् ।
जीवांशकोऽधिकस्तद्वत् परमात्मांशकः क्वचित् ॥ २४ ॥
सूर्यादयो ग्रहाः सर्वे ब्रह्मकामःद्विषादयः ।
एते चान्ये च बहवः परमात्मांशकाधिकाः ॥ २५ ॥
शक्तयश्च तथैतेषामधिकांशाः श्रियादयः ।
सशक्तयः सुराश्चान्ये ज्ञेया जीवांशकाधिकाः ॥ २६ ॥

सभी प्राणियों में परमात्मा विराजमान हैं। हे ब्रह्मन् ! समस्त संसार परमात्मा में ही स्थित है। सभी जीवों में परमात्मा और जीवात्मा दोनों का अंश विद्यमान रहता है। कहीं पर जीवात्मांश का बाहुल्य होता है तो कहीं परमात्मांश की ही अधिकता होती है। सभी सूर्यादि-ग्रहों मे तथा ब्रह्मा, शिवादि अन्यान्य देवों में परमात्मांश की ही अधिकता होती है। इसी तरह इनकी श्री आदि शक्तियों में परमात्मांश का बाहुल्य भी होता है। अन्य देवगण या शक्तियों में जीवांश अधिक होता है।

विमर्श :—अनीश्वरवादी सांख्यदर्शनानुसार दो प्रकार के तत्त्व हैं—प्रकृति और पुरुष। पुरुष चेतन है। वह शरीर, मन तथा इन्द्रियों से भिन्न और नित्य है। वह स्वयं कुछ भी कार्य नहीं करता बरन प्रकृति के परिणामों के उपभोक्ता मात्र है।

प्रकृति इस संसार का आदिकारण है। यह नित्य एवं जड़ है। इसका लक्ष्य पुरुष के उद्देश्य-साधन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। सत्त्व, रज तथा तम ये प्रकृति के तीन गुण या उपादान हैं। सृष्टि के पूर्व ये तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। ये ही तीनों—सत्त्व, रज तथा तम, सुख, दुःख एवं विषाद के कारण हैं। प्रकृति के अन्तर्गत उपर्युक्त तीनों गुणों का अस्तित्व प्रतिपादित होता है।

सांख्यदर्शनानुसार प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से सृष्टि का प्रारम्भ होता है। प्रकृति-पुरुष के संयोग से प्रकृतिस्थ गुणों की साम्यावस्था समाप्त हो जाती है। सत्त्व की अधिकता होने पर प्रकृति से महत् की उत्पत्ति होती है। महत् विश्व का महत्तम अंकुर है। महत् को बुद्धि भी कहते हैं। बुद्धि का रूपान्तर अहंकार में होता है। अहंकार में जब महत्त्व का बाहुल्य होता है, तो उससे दशों इन्द्रियों एवं एकादश मन की सृष्टि होती है। अहंकार में तम की प्रचुरता होने पर तन्मात्रओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पञ्चतन्मात्रओं से पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति है। इस प्रकार सांख्य में सब मिलाकर २५ तत्त्व हैं। पुरुष को छोड़ सभी तत्त्व प्रकृति के अन्तर्गत हैं, क्योंकि सभी भौतिक तत्त्वों का मूलकारण प्रकृति ही है। प्रकृति का कोई कारण नहीं है।

इस प्रकार सांख्यमतानुसार सृष्टि का मुख्य कारण प्रकृति-पुरुष का संयोग मात्र

है। अकेली प्रकृति जड़ होने के कारण एवं अकेला पुरुष निष्क्रिय होने के कारण सृष्टिकारक नहीं हो सकते।

पराशरोक्त सृष्टिक्रम सांख्योक्त सृष्टिक्रम से प्रभावित अवश्य है किन्तु भगवान् पराशर का सृष्टिक्रम पौराणिक सृष्टिक्रम पर विशेषतः आश्रित है। पुराण में विष्णु को प्रकृति-पुरुष दोनों का कारण माना गया है। विष्णुपुराणानुसार विष्णु के परम (उपाधि रहित) स्वरूप से प्रधान और पुरुष दो रूप होते हैं। उसके अनुसार भगवान् विष्णु ही कालशक्ति के द्वारा विश्व की सृष्टि एवं प्रलय किया करते हैं। उन्हें जगन्नियन्ता सृष्टि एवं प्रलय के समय भी एकमात्र निर्विकार परेश स्वीकार किया गया है। उन्हीं के निर्देशानुसार ब्रह्मा, जो उन्हीं के नाभिकमल पर स्थित हैं, सृष्टिकारक होते हैं। विष्णुपुराण ने ब्रह्मा को विष्णु का रूपान्तर माना है। शिवपुराणानुसार शिव की ही प्रेरणा से यह समस्त कार्य होता है। सृष्टिकार्य में रुद्र का भी सहयोग आवश्यक ही नहीं बरन अनिवार्य है, यह श्रीमद्भागवत एवं मार्कण्डेयपुराण ने भी स्वीकार किया है।

भगवान् पराशर ने व्यक्ताऽव्यक्तात्मक विष्णु को वासुदेव के नाम से प्रतिपादित किया है। उनकी ही तीनों मूर्तियाँ संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, तामस, राजस एवं सात्त्विक शक्तियों की प्रधानता से हैं, यह वे मानते हैं। पुराणों में नवविध सर्ग प्रतिपादित है। भगवान् पराशर ने भी देव, भूत आदि कतिपय सर्गों का प्रतिपादन किया है। पुराणानुसार ही उन्होंने श्रीशक्तिसमन्वित विष्णु को जगत्पालक, भूशक्तियुक्त ब्रह्मा को जगत्स्रष्टा, नीलशक्ति समन्वित रुद्र को जगद्ध्वंसक माना है।

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
सृष्टिक्रमवर्णनाध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ अवतारक्रमवर्णनाध्यायः ॥ २ ॥

मैत्रेय उवाच—

रामकृष्णादयो ये ये ह्यवतारा रमापतेः।
तेऽपि जीवांशसंयुक्ताः किंवा ब्रूहि मुनीश्वर ! ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे मुनीश्वर ! राम, कृष्ण आदि जो विष्णु के अवतार हैं, क्या वे भी जीवांश-संयुक्त हैं ? यह मुझे समझा कर कहिए ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

रामः कृष्णश्च भो विप्र ! नृसिंहः सूकरस्तथा।
एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—हे विप्र ! राम, कृष्ण, नृसिंह तथा सुकर ये चार अवता पूर्णतः परमात्मा के अंश हैं, अन्य अवतार जीवांश-समन्वित हैं।

अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः ।
जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः ॥ ३ ॥
दैत्यानां बलनाशय देवानां बलवृद्धये ।
धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहाञ्जाताः शुभाः क्रमात् ॥ ४ ॥

जन्मरहित परमात्मा के अनेक अवतार हैं। (सूर्यादि-) ग्रहरूपी जनार्दन (अवतार) जीवों के शुभाशुभ फल देने वाले हैं। दैत्यों के बलनाश, देवताओं की बलवृद्धि एवं धर्मसंस्थापन के लिये ही ग्रहों से ये कल्याणकर अवतार हुए हैं ॥ ३-४ ॥

तद्यथा—

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः ।
नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुद्धः सोमसुतस्य च ॥ ५ ॥
वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च ।
कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकराः ॥ ६ ॥
केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः ।
परात्मांशोऽधिको येषु ते सर्वे खेचराभिधाः ॥ ७ ॥

सूर्य आदि ग्रहों से राम, कृष्ण, नृसिंह, बुद्ध, वामन, भार्गव, कूर्म, सूकर तथा मीन ये नवावतार हुए हैं। इन से अन्य जो अवतार हैं, वे ग्रहों से ही हैं। जिन अवतारों में परमात्मांश अधिक है वे सभी खेचर (आकाशचारी देव) कहलाते हैं ॥५-७॥

जीवांशकता येषु जीवास्ते वै प्रकीर्तिताः ।
सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमात्मांशनिःसृताः ॥ ८ ॥
राम-कृष्णादयः सर्वे ह्यवतारा भवन्ति वै ।
तत्रैव ते विलीयन्ते पुनः कार्योत्तरे सदा ॥ ९ ॥
जीवांशनिःसृतास्तेषां तेभ्यो जाता नरादयः ।
तेऽपि तत्रैव लीयन्ते तेऽव्यक्ते समयन्ति हि ॥ १० ॥

जिनमें जीवांश की अधिकता है, वे जीव कहलाते हैं। सूर्यादिग्रहों से परमात्मांश निकल कर राम, कृष्ण, आदि के रूप में अवतार लेते हैं। राम, कृष्ण आदि के रूप में अवतीर्ण वे (परमात्मांश) अपना कार्य सम्पन्न कर उन्हीं सूर्यादि ग्रहों में विलीन हो जाते हैं। इसी तरह उन्हीं सूर्यादि ग्रहों से निर्गत जीवांश मनुष्यादि प्राणी होते हैं। वे भी अपना कार्यकाल समाप्त कर उन्हीं ग्रहों में लीन हो जाते हैं। वे सूर्यादि नवग्रह प्रलय के समय अव्यक्त (परमात्मा) में समाजाते हैं ॥ ८-१० ॥

इदं ते कथितं विप्र सर्वं यस्मिन् भवेदिति ।

भूतान्यपि भविष्यन्ति वेत्ति सर्वज्ञतामियात् ॥ ११ ॥
विना तज्ज्यौतिषं नान्यो ज्ञातुं शक्नोति कर्हिचित् ।
तस्मादवश्यमध्येयं ब्राह्मणैश्च विशेषतः ॥ १२ ॥
यो नरः शास्त्रमज्ञात्वा ज्यौतिषं खलु निन्दति ।
रौरवं नरकं भुक्त्वा चान्धत्वं चान्यजन्मनि ॥ १३ ॥

हे मैत्रेय ! मैंने प्रसन्न मन से सृष्टि, प्रलय, अवतार आदि सभी बातें आप से कही हैं। ये सब ज्ञान जिसमें होगा, वह भूत, भविष्यत् वर्तमान सभी का वेत्ता सर्वज्ञ हो जायगा। ज्यौतिष शास्त्र के विना यह कहीं कोई नहीं जान सकता है। अतः यह शास्त्र, विशेषतः ब्राह्मणों के लिए अवश्य पठनीय है। इसे बिना जाने ही जो इस शास्त्र की निन्दा करता है, वह रौरव नरक का भागी बनकर दूसरे जन्म में अन्धा हो जाता है ॥ ११–१३ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
अवतारवर्णनाध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः ॥ ३ ॥

मैत्रेय उवाच—

ग्रहावतारो भगवन् ! यथाऽभूत् तत्कृपालुना ।
यथावदुक्तं निखिलं श्रुत्वा प्रीतोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ १ ॥
पुनः पृच्छामि सर्वज्ञ ! ब्रूहि ग्रहगणस्य तु ।
गुणं रूपादिकं चैव विधिवत् प्रणताय मे ॥ २ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन् ! कृपालु आपने ग्रहों का अवतार यथावत् कहा, जिसे सुनकर मैं प्रसन्न हूँ। हे सर्वज्ञ ! पुनः मैं ग्रहों के गुण, रूप आदि के सबन्ध में नम्रता-पूर्वक पूछता हूँ जिसे आप मुझ को विधिवत् बतलावें ॥ १–२ ॥

पराशर उवाच—

नक्षत्राणां ग्रहाणां च यादृशी नभसि स्थितिः ।
कथयिष्यामि तामादौ शान्तचेता निशामय ॥ ३ ॥
तेजःपुञ्जा नु वीक्ष्यन्ते गगने रजनीषु ये ।
नक्षत्रसंज्ञकास्ते तु न क्षरन्तीति निश्चलाः ॥ ४ ॥
विपुलाकारवन्तोऽन्ये गतिमन्तो ग्रहाः किल ।
स्वगत्या भानि गृह्णन्ति यतोऽतस्ते ग्रहाभिधाः ॥ ५ ॥

पूर्वमाशां व्रजन्तोऽपि प्रवहप्रेरितास्तु ते ।
पश्चिमस्यां दिशि सदा गच्छन्त इव भान्ति वै ॥ ६ ॥

पराशर ने कहा—आकाशीय नक्षत्र एवं ग्रहों की स्थिति मैं बतलाता हूँ, शान्तचित्त होकर उसे सुनो। रात्रि के समय आकाश में जो तेजःपुञ्ज दीखते हैं वे ही निश्चल तारागण नहीं चलने के कारण नक्षत्र कहे जाते हैं। कुछ अन्य विपुल आकार वाले गतिशील वे (तेजःपुञ्ज) अपनी गति के द्वारा निश्चल नक्षत्रों को पकड़ लेते हैं, अतः वे ग्रह कहलाते हैं। वे (ग्रह) यद्यपि पूर्व की ओर चलने वाले हैं, फिर भी प्रवह वायु से प्रेरित होकर पश्चिम की दिशा में भी चलते दीख पड़ते हैं ॥ ३–६ ॥

राशिचक्रस्य ये भागाः समाः सप्तद्विसंख्यकाः ।
अश्विनी-भरणीत्यादि-नाम्ना ख्याता महीतले ॥ ७ ॥
तदर्कमितभागास्तु ज्ञेया मेषादिनामकाः ।
राशयः स्युः सुविदिता ग्रहाः सूर्यादिसंज्ञकाः ॥ ८ ॥
लग्नं भवति राशीनामुदयो यद्वशादिह ।
शुभं चाप्यशुभं सर्वं फलं ददति वै ग्रहाः ॥ ९ ॥

राशिचक्र का समान २७ विभाग अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। उसी भचक्र का समान द्वादश विभाग क्रमशः मेष, वृष, आदि १२ राशियाँ हैं। ग्रहों के नाम सूर्य आदि हैं। (क्षितिज में) राशियों का उदय लग्न कहलाता है। इसी लग्न के वश सूर्यादिग्रह शुभाशुभ फल देते हैं ॥ ७–९ ॥

नक्षत्राणां ग्रहाणां च संज्ञा ग्रन्थान्तराद् बुधैः ।
ज्ञेया, ग्रहा नव प्रोक्ताः सूर्याद्यास्तु खचारिणः ॥ १० ॥
तत्रार्कभौमशनयो राहुकेतू निशाधिपः ।
क्षीणश्चैते सदा पापाः, पापः पापयुतो बुधः ॥ ११ ॥
शेषाः सौम्यग्रहाः सन्ति सौम्याऽसौम्याः शुभाऽशुभाः ।
त्रिकोणत्रिषडायेशा विशेषात्तु शुभाऽशुभाः ॥ १२ ॥

नक्षत्र एवं ग्रहों का नामान्तर ग्रन्थान्तर से समझना चाहिए। आकाशचारी सूर्य आदि नवग्रह कहे गए हैं। इनमें रवि, भौम, शनि, राहु, केतु तथा क्षीण चन्द्र सदा ही पापग्रह हैं। इनसे युक्त बुध भी पापग्रह हैं। शेष बुध, गुरु, शुक्र तथा पूर्णचन्द्र शुभग्रह हैं। ये शुभ एवं अशुभग्रह सामान्यतः अच्छे एवं बुरे फल देने वाले होते हैं। त्रिकोण (नवम, पञ्चम) के ईश तथा त्रिषडायेश विशेषतः शुभ एवं अशुभ फलदायक होते हैं। अर्थात् नवमेश तथा पञ्चमेश शुभफल-दायक हैं और ३, ६, ११ के अधीश अशुभ फलदायक होते हैं ॥ १०–१२ ॥

ग्रहों की आत्मादि संज्ञा—

पराशर उवाच—

दिवाकरो हि विश्वात्मा मनः कुमुदबान्धवः ।
सत्त्वं कुजो बुधो वाणीदायको विबुधैः स्मृतः ॥ १३ ॥
देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः ।
क्रूरदृग् विबुधैरुक्तच्छायासूनुश्च दुःखदः ॥ १४ ॥

समस्त संसार की आत्मा सूर्य, चन्द्रमा मन, मंगल सत्त्व, बुध वाणी, गुरु ज्ञान एवं सुख, शुक्र वीर्य तथा छायापुत्र शनि—दुःखस्वरूप होते हैं। जन्मकुण्डली में सूर्यादि ग्रहों की प्रबलता से तत्तत्प्राणी में आत्मा, मन आदि की प्रबलता होती है ॥ १३–१४ ॥

ग्रहों की राजादि संज्ञा—

राजानौ भानुहिमगू नेता ज्ञेयो धरात्मजः ।
बुधो राजकुमारश्च सचिवौ गुरुभार्गवौ ॥ १५ ॥
प्रेष्यको रविपुत्रश्च सेना स्वर्भानुपुच्छकौ ।
एवं क्रमेण वै विप्र ! सूर्यादींस्तु विचिन्तयेत् ॥ १६ ॥

ग्रहों में सूर्य, चन्द्र राजा, मंगल सेनापति, बुध राजकुमार, गुरु, शुक्र मन्त्री, शनि भृत्य, राहु तथा केतु सेना के स्वरूप हैं।

ग्रहों का वर्ण—

रक्तश्यामो दिवाधीशो गौरगात्रो निशाकरः ।
नातिदीर्घः कुजो रक्तो दूर्वाश्यामो बुधस्तथा ॥ १७ ॥
गौरगात्रो गुरुर्ज्ञेयः शुक्रः श्यामस्तथैव च ।
कृष्णदेहो रवेः पुत्रो ज्ञायते द्विजसत्तम ! ॥ १८ ॥

ग्रहों में सूर्य का वर्ण रक्त-श्याम, चन्द्रमा का गौर, मध्याकार मंगल का लाल, और बुध का दूब की तरह श्याम, गुरु का गौर, शुक्र का श्यामल, शनि का कृष्ण वर्ण है ॥ १७–१८ ॥

ग्रहों के देव—

वह्न्यम्बुशिखिजा विष्णु-बिडौजः शचिका द्विज ! ।
सूर्यादीनां खगानां तु देवा ज्ञेयाः क्रमेण च ॥ १९ ॥

सूर्यादि ग्रहों के अग्नि, जल, कार्त्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी तथा ब्रह्मा ये सात क्रमशः देव हैं ॥ १९ ॥

ग्रहों का पुंस्त्वादि-निरूपण—

क्लीबौ द्वौ सौम्यशौरी च युवती-न्दुभृगु द्विज ! ।

नराः शेषाश्च विज्ञेया भानुभौमो गुरुस्तथा ॥ २० ॥
अग्नि-भूमि-नभस्तोय-वायवः क्रमतो द्विज ।
भौमादीनां ग्रहाणां तु तत्त्वान्येतानि वै क्रमात् ॥ २१ ॥

बुध-शनि नपुंसक, चन्द्र-शुक्र स्त्री, शेष-रवि, भौम, गुरु, पुरुष ग्रह हैं। भौमादि पाँच ग्रहों के अग्नि, भूमि, आकाश, जल, वायु, ये पाँच क्रमशः तत्त्व हैं ॥ २०–२१ ॥

ग्रहों के वर्ण गुण—

गुरुशुक्रौ विप्रवर्णौ कुजार्कौ क्षत्रियौ द्विज ! ।
शशिसौम्यौ वैश्यवर्णौ शनिः शूद्रो द्विजोत्तम ॥ २२ ॥
सात्त्विका भानुचन्द्रेज्या राजसौ सौम्यभार्गवौ ।
तामसौ कुजमन्दौ तु ज्ञेया विद्वद्वरैः सदा ॥ २३ ॥

गुरु-शुक्र ब्राह्मण, सूर्य-मंगल क्षत्रिय, चन्द्र बुध वैश्य-और शनि शूद्र वर्ण के हैं। सूर्य, चन्द्र, गुरु सात्त्विक, बुध, शुक्र राजस और मंगल एवं शनि तामस गुण वाले ग्रह हैं।

ग्रहों का स्वरूप—

मधुपिङ्गलदृक् सूर्यश्चतुरस्रः शुचिर्द्विज ! ।
पित्तप्रकृतिको धीमान् पुमानल्पकचो द्विज ! ॥ २४ ॥
बहुवातकफः प्राज्ञश्चन्द्रो वृत्ततनुर्द्विज ! ।
शुभदृङ् मधुवाक्यश्च चञ्चलो मदनातुरः ॥ २५ ॥
रक्ताक्षः क्रूरहृद् भौमश्चपलोदारमूर्त्तिकः ।
पित्तप्रकृतिकः क्रोधी कृशमध्यतनुर्द्विज ! ॥ २६ ॥
वपुः श्रेष्ठः श्लिष्टवाक् च ह्यतिहास्यरुचिर्बुधः ।
पित्तवान् कफवान् विप्र ! मारुतप्रकृतिस्तथा ॥ २७ ॥
बृहद्गात्रो गुरुश्चैव पिङ्गलो मूर्धजेक्षणः ।
कफप्रकृतिको धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २८ ॥
सुखी कान्तवपुः श्रेष्ठः सुन्दराक्षो भृगोः सुतः ।
कफाधिकानिलात्मा च काव्यकृद् वक्रमूर्धजः ॥ २९ ॥
कृशदीर्घतनुः शौरिः पिङ्गदृष्ट्यनिलात्मकः ।
स्थूलदन्तोऽलसः पङ्गुः खररोमकचो द्विज ! ॥ ३० ॥
धूम्राकारो नीलतनुर्वनस्थोऽपि भयङ्करः ।
वातप्रकृतिको धीमान् स्वर्भानुस्तादृशः शिखी ॥ ३१ ॥

मधु के समान पिंगल दृष्टि, चौकोर शरीर, शुभ्र, पित्तप्रकृति, बुद्धिमान् , अल्पकेशी सूर्यग्रही होते हैं। वात-कफ-प्रकृति, विद्वान् , गोलशरीर, सुन्दर दृष्टि, मीठी वाणी, चञ्चल तथा कामातुर चन्द्रग्रही होते हैं। लाल आँखें, क्रूर हृदय, चपल एवं उदारमूर्त्ति, पित्तप्रकृति, क्रोधी, दुबल तथा मध्यम शरीर वाले मंगलग्रही होते हैं। सुन्दर शरीर, अनेकार्थक वाक्य, हास्य प्रेम, कफवात प्रकृति, बुध का स्वरूप है। बड़ा शरीर, पीला केश तथा नेत्र, कफप्रकृति, बुद्धिमान् सभी शास्त्रों के अभिज्ञ गुरुग्रही होते हैं। सुखी, सुन्दर शरीर तथा नेत्र वाले, कफवात-प्रकृति, काव्यनिर्माता, घुँघराले बालों से युक्त शुक्रग्रही होते हैं। दुर्बल तथा लम्बा शरीर, पीली दृष्टि, वातप्रकृति, स्थूलदन्त, आलसी, लंगड़ा तथा कर्कश केशधारी शनिग्रही होते हैं। धूँआं के समान नील शरीर वाले, जंगली, वातप्रकृति तथा बुद्धिमान् राहु एवं केतुग्रही होते हैं ॥ २४–३१ ॥

सूर्यादिग्रहों के धातु आदि—

अस्थि रक्तस्तथा मज्जा त्वङ्मेदो वीर्यमेव च ।
स्नायुरेते धातवः स्युः सूर्यादीनां क्रमाद् द्विज ! ॥ ३२ ॥
देवालय-पयोवह्निक्रीडादीनां तथैव च ।
कोश-शय्याद्युत्कराणामीशाः सूर्यादयः क्रमात् ॥ ३३ ॥
अयनक्षणवारर्त्तु-मासपक्षसमा द्विज ! ।
सूर्यादीनां क्रमाज्ज्ञेया निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ॥ ३४ ॥
कटुश्च लवणस्तिक्तो मिश्रितो मधुरोऽम्लकः ।
कषायः क्रमशो ज्ञेयाः सूर्यादीनामिमे रसाः ॥ ३५ ॥

हड्डी, रक्त, मज्जा, त्वचा (चर्म) मेदा, वीर्य तथा स्नायु ये सात सूर्यादिग्रहों के क्रमशः धातु हैं। मन्दिर, जलाशय, अन्यागार, क्रीडास्थल, कोशागार, शयनगृह, तथा उत्कर (कूड़ा-कर्कट-खाना) ये सात स्थान क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के हैं। अयन (उत्तरायण तथा दक्षिणायन), क्षण, दिन, ऋतु, मास, पक्ष, वर्ष इन सातों के स्वामी क्रमशः सूर्यादिग्रह हैं। कटु, लवण, तिक्त (तीता), मिश्रित (कई एक रसों का मिलित रूप), मीठा, खट्टा, कसैला ये सात रस क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के हैं।

ग्रहों के दिक्-काल, बल —

बुधेज्यौ बलिनौ पूर्वे, रविभौमौ च दक्षिणे ।
वारुणे सूर्यपुत्रश्च सितचन्द्रौ तथोत्तरे ॥ ३६ ॥
निशायां बलिनश्चन्द्र-बुध-सौरा भवन्ति हि ।
सर्वदा ज्ञो बली ज्ञेयो दिने शेषा द्विजोत्तम ! ॥ ३७ ॥
कृष्णे च बलिनः क्रूराः सौम्या वीर्ययुता सिते ।
सौम्यायने सौम्यखेटो बली याम्यायनेऽपरः ॥ ३८ ॥

अब्द-मास-दिवा-होराऽधीशास्तु बलवत्तराः।
श. भौ. बु. गु. शु. सोराद्या वृद्धितो बलवत्तराः ॥ ३९ ॥

बुध, गुरु पूर्वदिशा में, सूर्य, मंगल दक्षिण में, शनि पश्चिम में, शुक्र तथा चन्द्र उत्तर में बली होते हैं।

चन्द्रमा, भौम, शनैश्चर, रात्रि में, बुध अहर्निश, शेष—सूर्य, गुरु, शुक्र दिन में सबल होते हैं। पापग्रह कृष्णपक्ष में, शुभग्रह शुक्ल पक्ष में, तथा पापग्रह दक्षिणायन में और शुभग्रह उत्तरायण में बली होते हैं।

वर्षेश, मासेश, दिनेश, होरेश, अपने-अपने समय में उत्तरोत्तर बली होते हैं।

शनि, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, सोम, रवि ये क्रमशः उत्तरोत्तर बली होते हैं। वराहमिहिर ने भी अपने बृहज्जातक में इसी तरह कहा है—

"दिक्षु बुधाङ्गिरसौ रविभौमौ सूर्यसुतः सितशीतकरौ च"
तथा—निशि शशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्नि चान्ये,
बहुलसितगताः स्युः क्रूरसौम्याः क्रमेण।
अयनदिवसहोरामासपैः कालवीर्यं
शकुबुगुशुचराद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः ॥ ३६–३९ ॥

वृक्षों के उत्पादक ग्रह—

स्थूलान् जनयति त्वर्को दुर्भगान् सूर्यपुत्रकः।
क्षीरोपेतांस्तथा चन्द्रः कटुकाद्यान् धरासुतः ॥ ४० ॥
सफलानफलाञ्जीवबुधौ, पुष्पतरून् कविः।
नीरसान् सूर्यपुत्रश्च एवं ज्ञेयाः खगा द्विज! ॥ ४१ ॥

सूर्य मोटे वृक्षों को, शनि कुत्सित या अभद्र वृक्षों को, चन्द्रमा दुग्धपूर्ण वृक्षों को, मंगल कटु (मिरचा आदि) वनस्पतियों को, गुरु सफल, बुध निष्फल (फलरहित) वृक्षों को, शुक्र फूल के वृक्षों को उत्पन्न करते हैं ॥ ४०–४१ ॥

सूर्यादिग्रहों के जाति-वस्त्रादिवर्णन—

राहुश्चाण्डालजातिश्च केतुर्जात्यन्तरस्तथा।
शिखिस्वर्भानुमन्दानां वल्मीकं स्थानमुच्यते ॥ ४२ ॥
चित्रकन्था फणीन्द्रस्य, केतोश्छिद्रयुतो द्विज!।
सीसं राहोर्नीलमणिः केतोर्ज्ञेयो द्विजोत्तम! ॥ ४३ ॥
गुरोः पीताम्बरं विप्र! भृगोः क्षौमं तथैव च।
रक्तक्षौमं भास्करस्य, इन्दोः क्षौमं सितं द्विज! ॥ ४४ ॥
बुधस्य त्वसितक्षौमं रक्तं तद्वत् कुजस्य च।
वस्त्रं चित्रं शनेर्विप्र! पट्टवस्त्रं तथैव च ॥ ४५ ॥

राहु चाण्डाल जाति के और केतु संकर जाति के स्वामी हैं। राहु, केतु, शनैश्चर का स्थान वल्मीक (दीमक वाला भिण्डा) है। राहु का वस्त्र चित्रकन्था (अनेक रंग की कथली) और केतु का छेद वाला वस्त्र है। राहु का धातु सीसा, और केतु का नीलमणि है। गुरु का वस्त्र पीला, शुक्र का रेशमी, सूर्य का लाल पट्टवस्त्र और चन्द्र का सफेद रेसम वस्त्र है। बुध का काला रेसम वस्त्र, मंगल का लाल वस्त्र और शनि का वस्त्र अनेक रङ्ग वाला पट्ट वस्त्र है ॥ ४२–४५ ॥

भृगोर्ऋतुर्वसन्तश्च कुजभान्वोश्च ग्रीष्मकः ।
चन्द्रस्य वर्षा विज्ञेया शरच्चैव तथा विदः ॥ ४६ ॥
हेमन्तोऽपि गुरोर्ज्ञेयः शनेस्तु शिशिरो द्विज ! ।
अष्टौ मासाश्च स्वर्भानोः केतोर्मासद्वयं द्विज ! ॥ ४७ ॥
राह्वारपङ्गुचन्द्राश्च विज्ञेया धातुखेचराः ।
मूलग्रहौ सूर्यशुक्रौ अपरे जीवसंज्ञकाः ॥ ४८ ॥
ग्रहेषु मन्दो वृद्धोऽस्ति आयुर्वृद्धिप्रदायकः ।
नैसर्गिके वहुसमा ददाति द्विजसत्तम ! ॥ ४९ ॥

वसन्त शुक्र का, ग्रीष्म मंगल तथा सूर्य का, वर्षा चन्द्र का, शरत् बुध का, हेमन्त गुरु का तथा शिशिर शनि का ऋतु हैं, अर्थात् वसन्तादि ऋतुओं के उपर्युक्त शुक्र आदि ग्रह अधिक हैं। राहु के आठ महीने तथा केतु के दो महीने होते हैं।

राहु, मङ्गल, शनि, चन्द्रमा धातुओं के, सूर्य, शुक्र, मूलों के तथा बुध, गुरु, केतु, जीवों के स्वामी हैं।

ग्रहों में वृद्ध शनि, नैसर्गिकावस्था में अनेक वर्षोंतक आयुर्वृद्धिकारक होते हैं ॥

ग्रहों के उच्चनीच स्थान—

अजो वृषो मृगश्चैव कन्या कर्को झषस्तुला ।
सूर्यादीनां क्रमादेते गदितास्तुङ्गराशयः ॥ ५० ॥
दशाग्निमनुयुक्तिथ्यक्षनक्षत्रनखाः क्रमात् ।
भागाः, सप्तमं तेभ्यो नीचं तैरेव भागकैः ॥ ५१ ॥

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुला ये सूर्यादि ग्रहों की उच्चराशियाँ हैं। इन राशियों में १०, ३, २८, १५, ५, २७, २०, अंशों पर उपर्युक्त ग्रहों का क्रमशः उच्चस्थान है। उच्च से सप्तम राशि में उन्हीं अंशों पर ग्रहों का नीच स्थान होता है ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

ग्रह—	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
उच्चराशि—	०	१	९	५	३	११	६
अंश—	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचराशि—	६	७	३	११	९	५	०
अंश—	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

ग्रहों का मूल त्रिकोण—

विंशत्यंशा रवेः सिंहे त्रिकोणमपरे गृहम् ।
इन्दोर्वृषेऽग्निभागास्तु तुङ्गमन्ये त्रिकोणकम् ॥ ५२ ॥
मेषे कुजस्य सूर्यांशास्त्रिकोणमपरे गृहम् ।
तिथ्यंशैः कन्यकाराशौ विदस्तुङ्गं ततः परे ॥ ५३ ॥
पञ्चांशकास्त्रिकोणाख्यास्तदग्रे तद्गृहं मतम् ।
गुरोर्धनुषि दिग्भागैस्त्रिकोणं तत्परं गृहम् ॥ ५४ ॥
तुलार्धं तु त्रिकोणं स्याद् भृगोरर्धं परं गृहम् ।
विंशत्यंशैर्घटे शौरेस्त्रिकोणं सद्म शेषकैः ॥ ५५ ॥

रवि का सिंह राशि में बीस अंश पर्यन्त मूलत्रिकोण, शेष दश अंश उनका स्वभवन है। चन्द्रमा का वृष राशि में तीन अंश तक उच्च, शेष (अग्रिम २७ अंश) मूलत्रिकोण कहलाता है। मेष राशि का आदिम १२ अंश तक मंगल का मूल त्रिकोण, शेष १८ अंश उनका स्वगृह है। कन्या राशि में १५ अंशतक बुध का उच्च, बाद का पाँच अंश उनका मूलत्रिकोण, शेष दश अंश उनका स्वभवन है।

धन में गुरु का दश अंश तक मूलत्रिकोण शेष उनका अपना घर है। तुलार्ध (तुला में १५ अंशतक) शुक्र का मूलत्रिकोण शेष उनका स्वभवन है। कुम्भ में २० अंश तक शनि का मूलत्रिकोण, शेष दश अंश उनका घर है ॥ ५२—५५ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
मूलत्रिकोण	सिंह में २० अंश	वृषमें अन्तिम २७ अंश	मेषमें १२ अंश	कन्यामें १६ अंश से २० अं.	धनमें १० अंश तक	तुलामें १५ अंश तक	कुम्भमें २० अंश तक
स्वराशि	सिंह में अन्तिम १० अंश	×	मेषमें अन्तिम १८ अंश	कन्यामें २१ अंशसे ३० अं.	धनमें अन्तिम २० अंश	तुलामें अन्तिम १५ अंश	कुम्भमें अन्तिम १० अंश
उच्च	×	वृषमें आदिम ३ अंश	×	कन्यामें आदिम १५ अंश	×	×	×

ग्रहों का वैसर्गिक मित्रामित्र :—

रवेः समो ज्ञः सितसूर्यपुत्रा वरी परे ते सुहृदो भवेयुः ।
चन्द्रस्य नारी रविचन्द्रपुत्रौ मित्रे समाः शेषनभश्चराः स्युः ॥५६॥

समौ सिताकौं शशिजश्च शत्रुर्मित्राणि शेषाः पृथिवीसुतस्य ।
शत्रुः शशी सूर्यसितौ च मित्रे समाः परे स्युः शशिनन्दनस्य ॥५७॥
गुरोर्ज्ञशुक्रौ रिपुसंज्ञकौ तु शनिः समोऽन्ये सुहृदो भवन्ति ।
शुक्रस्य मित्रे बुधसूर्यपुत्रौ समौ कुजार्यावितरावरी तौ ॥५८॥
शनेः समो वाक्पतिरिन्दुसूनुशुक्रौ च मित्रे रिपवः परेऽपि ।
ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननेन शत्रुत्वमित्रत्वसमत्वमुक्तमम् ॥५९॥

रवि का बुध सम, शुक्र, शनि शत्रु, अन्य (चन्द्र, भौम, गुरु) मित्र हैं। चन्द्रमा के सूर्य, बुध मित्र, अन्य सभी ग्रह सम हैं। मंगल के शुक्र, शनि, सम, बुध शत्रु, अन्य (सूर्य, चन्द्र, गुरु) मित्र हैं। बुध के चन्द्रमा शत्रु, सूर्य, शुक्र मित्र, शेष सम हैं। गुरु के बुध, शुक्र शत्रु, शनि सम, शेष (सूर्य, चन्द्र, मंगल) मित्र हैं। शुक्र के बुध शनि मित्र, मंगल, गुरु, सम, अन्य (रवि, चन्द्र) शत्रु हैं। शनि के गुरु सम, बुध-शुक्र मित्र, सूर्य-चन्द्र-मंगल शत्रु हैं। ग्रहों का यह स्वाभाविक मित्रामित्र-समत्व ब्रह्मा जी ने स्वयं बतलाया है ॥ ५६–५९ ॥

स्पष्टार्थ नैसर्गिक मित्रामित्र चक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
मित्र	चं. मं. गु.	सूर्य बुध.	सू. चं गु.	सू. शु.	सू. चं. मं.	बु. श.	बु. शु.
शत्रु	शु. श.	×	बु.	चं.	बु. शु.	चं. सू.	सू. चं. मं.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.

विमर्श—सत्याचार्य ने कहा है—अपने-अपने मूल त्रिकोण से धन भाव, उच्च, अष्टम, चतुर्थ, द्वादश, पञ्चम, नवम, स्थानों के अधिप मित्र, उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त स्थानों के स्वामी शत्रु, एवं मित्रत्व तथा शत्रुत्व दोनों में प्राप्त ग्रह सम होते हैं। जैसे सूर्य के मूलत्रिकोण सिंह से उपर्युक्त २।४।८।१२।५।९। तथा उच्च (मेष) के स्वामी क्रमशः बुध, मंगल, गुरु, चन्द्र, सूर्य के मित्र हुए। इसी प्रकार सिंह से उपर्युक्त स्थानातिरिक्त १।३।६।७।१०।११ स्थानों के स्वामी क्रमशः बुध, शुक्र, शनि, सूर्य के शत्रु हुए। किन्तु बुध शत्रु एवं मित्र दोनों वर्गगत होने के कारण सम होंगे। इसी तरह अन्य ग्रहों का भी नैसर्गिक मित्र, शत्रु, सम समझना चाहिए। सत्यानुसार—

स्वत्रिकोणाद् धनोच्चायुःसुखान्त्यमतिधर्मपाः ।
सुहृदः, शत्रवश्चान्ये समा उभयथोदिताः ॥

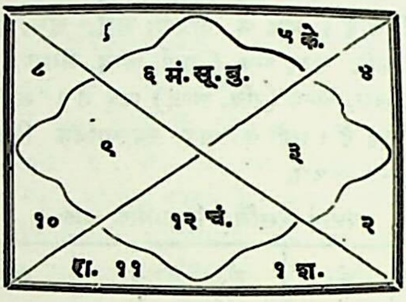
नैसर्गिक 'मित्रामित्रसमत्व' के लिए यही सिद्धान्त निष्पन्न हुआ।

ग्रहों का तात्कालिक मित्रामित्र—

दशायबन्धुसहजस्वान्त्यस्थास्ते परस्परम् ।
तत्काले सुहृदोऽन्यत्र संस्थिताः शत्रवः स्मृताः ॥ ६० ॥

किसी ग्रह के अपने स्थान (जिस राशि में वह स्थित हो) से १०।११।४।३।२।१२ स्थानों में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं। शेष १।५।६।७।८।९ स्थानों में स्थित ग्रह उनके शत्रु होते हैं। तात्पर्य यह है कि स्वस्थान से तीन आगे और तीन पीछे के स्थानों में स्थित ग्रह मित्र और शेष स्थानों में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं ॥६०॥

जन्माङ्गचक्र



उदाहरण—यहाँ सूर्य से २, ३, ४, १०, ११, १२, स्थानों में स्थित गुरु-शुक्र (सूर्य) के तात्कालिक मित्र हैं। और शेष १।५।६।७।८।९ स्थानों में स्थित मंगल, बुध, चन्द्र, शनि सूर्य के तात्कालिक शत्रु हैं। इसी तरह मंगल-बुध के भी तात्कालिक मित्र उपर्युक्त गुरु-शुक्र ही होंगे। किन्तु मंगल का तात्कालिक शत्रु सूर्य, बु०, चं०, श, एवं बुध का तात्कालिक शत्रु सू०, मं०, चं०, श० हैं।

इस कुण्डली के अनुसार तात्कालिक मित्रामित्रचक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
मित्र	गु. शु.	श.	गु. शु.	गु. शु.	सू. मं. बु.	मं. सू. बु.	चं.
शत्रु	मं. बु. . श.	सू. मं. बु. शु. गु.	सू. बु. चं. श.	सू. मं. चं. श.	शु. चं. श.	गु. चं. श.	सू. मं. बु. गु. शु.

पञ्चधा मैत्री—

नैसर्गिके तथा तात्कालिके मित्रेऽधिमित्रकम् ।
समे मित्रे च मित्रं तूभयत्राधिरिपू रिपौ ॥ ६१ ॥
समे शत्रौ शत्रुरेव शत्रौ मित्रे समः स्मृतः ।
एवं विचार्य गणकैः फलं वाच्यं यथोदितम् ॥ ६२ ॥

ग्रहों में नैसर्गिक एवं तात्कालिक दोनों प्रकार की मित्रता रहने पर अधिमित्र, निसर्गतः समत्व किन्तु तात्कालिक मित्रता होने पर मित्र, एवं नैसर्गिक तथा तात्कालिक दोनों प्रकार की शत्रुता रहने पर अधिशत्रु, निसर्गतः समत्व किन्तु तत्काल में शत्रुता रहने पर शत्रु, तथा निसर्गतः शत्रुत्व किन्तु तात्कालिक मित्रता रहने पर सम संज्ञा होती है। अर्थात् ग्रहों में नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रामित्र समत्व के आधार पर अधिमित्र, मित्र, अधिशत्रु, शत्रु तथा सम ये पाँच प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। इन सम्बन्धों के निर्णय करने के बाद ही फलादेश करना उचित है ॥ ६१–६२ ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य का गुरु नैसर्गिक एवं तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र है अतः सूर्य के गुरु अधिमित्र हुए। सूर्य के चन्द्र एवं मंगल निसर्गतः मित्र हैं किन्तु उपर्युक्त कुण्डली के आधार पर सूर्य के चन्द्र-मंगल दोनों शत्रु हैं अतः वे (चन्द्र-मंगल) सूर्य के सम हो जायँगे। सूर्य का शुक्र निसर्गतः शत्रु है किन्तु तत्काल में मित्र है अतः शुक्र भी सूर्य के सम होंगे। सूर्य के शनि निसर्गतः शत्रु हैं, तत्काल में भी शत्रु हैं, अतः सूर्य के शनि अधिशत्रु हुए। इसी प्रकार सभी ग्रहों की पञ्चधा मैत्री समझनी चाहिए। बुध सूर्य के स्वाभाविक सम, और तत्काल में शत्रु अतः शत्रु हुए।

पञ्चधा मैत्री-चक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
मित्र	×	श.	शु.	गु.	×	मं.	×
अधिमित्र	गु.	×	गु.	शु.	सू. मं.	बु.	×
शत्रु	बु.	मं. गु. शु.	श.	मं. श.	श.	गु.	गु.
अधिशत्रु	श.	×	बु.	चं.	शु.	च.	सू. मं.
सम	चं. मं. शु.	सू. बु.	सू. चं.	सू.	बु. चं.	श. सू.	बु. शु. चं.

ग्रहों का उच्चादि-स्थानबल—

स्वोच्चे शुभं बलं पूर्णं त्रिकोणे पादवर्जितम्।
स्वर्क्षे दलं मित्रगेहे पादमात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ ६३ ॥
पादार्धं समभे प्रोक्तं वियन्नीचास्तशत्रुभे।
तद्वदेवाशुभं ब्रूयाद् व्यत्ययेन विचक्षणः ॥ ६४ ॥

ग्रह यदि अपने उच्च में हों तो शुभप्रद इसका बल पूर्ण होता है। मूलत्रिकोण में रहने पर चतुर्थांशोन पूर्ण बल, स्वगृह में आधा, मित्रक्षेत्र में चतुर्थांश, सम के घर में अष्टमांश मात्र, नीच, अस्त, एवं शत्रुगृह में शून्य बल होता है। इसी तरह उच्चादि उपर्युक्त स्थानों में वैपरीत्य से अशुभप्रद बल भी समझना चाहिए ॥ ६३–६४ ॥

स्पष्टार्थं चक्र—

शुभबल

उच्च	मूलत्रिकोण,	स्वगेह,	मित्रगृह	समगृह	नी. श. अ.
१	·७५	·५०	·२५	·१२५	०

अशुभबल

उच्च	मू० त्रि०	स्वगृह	मित्रगृह	समगृ.	नी. श. अ.
०	·१२५	·२५	·५०	·७५	१·००

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेतायां बृहत्पाराशरहोरायां
ग्रहस्वरूपवर्णनाध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ ग्रहादिसाधनाऽध्यायः ॥ ४ ॥

ग्रहों का तात्कालिकीकरण :—

पञ्चाङ्गस्थो मिश्रमानकालः पङ्क्तिसमाह्वयः ।
सूर्योदयाद्यातकालः सावनेष्ट उदीरितः ॥ १ ॥
दिनाद्यमन्तरं यच्च तयोर्यातैष्यकं हि तत् ।
पङ्क्त्याधिक्ये यातसंज्ञमैष्यमिष्टेऽधिके स्मृतम् ॥ २ ॥
ऋणं धनं दिनाद्यं तद् गुणितं ग्रहभुक्तिभिः ।
खरसैर्विहृतं लब्धमंशाद्यं चालनं फलम् ॥ ३ ॥
पङ्क्तिग्रहेषु संशोध्यं योज्यं च क्रमशस्तदा ।
तात्कालिकग्रहा वामं पाते वक्रखगेऽपि तत् ॥ ४ ॥
नक्षत्रयातभोगाभ्यामिन्दुं संसाधयेद् बुधः ।

पञ्चाङ्गस्थित मिश्रमान-काल को पंक्ति कहते हैं। सूर्योदय से अभीष्ट समय तक का काल सावनेष्ट-काल कहा जाता है। दोनों कालों के दिनादिक अन्तर को यातकाल या ऐष्यकाल कहते हैं। इष्टकाल से पंक्तिकाल यदि आगे हो अर्थात् पंक्तिकाल से पहले ही यदि ग्रहों का तात्कालिकीकरण अभीष्ट हो तो पंक्तिकाल में से इष्टकाल को घटावें, दिनादिक अवशेष को ऋणात्मक या यातसंज्ञक समझें। पंक्तिकाल से इष्टकाल ही यदि आगे हो, अर्थात् पंक्तिकाल के बाद ग्रहों का तात्कालिकीकरण अभिप्रेत हो तो इष्टकाल से ही पंक्तिकाल को घटाकर दिनादिक शेष को धनात्मक या ऐष्य समझें। इस प्रकार आनीत ऋण-धन या यातैष्य दिनादिक को तत्तद्ग्रहगति से गुणाकर ६० से भाग देने पर जो अंशादिक लब्धि आवे उसे

पंक्तिकालिक ग्रहों में ऋण-धन करें। पात एवं वक्री ग्रहों में यातैष्यकाल-सम्बद्ध चालन फल धन-ऋण करें तो अभीष्टकालिक (तात्कालिक) ग्रह हो जायँगें।

विशेष—पञ्चाङ्ग में जिस समय के सगतिक ग्रह बनाए गए हों उसी समय को पंक्ति समझ कर उपर्युक्त रीति से क्रिया करनी चाहिए। ग्रहलाघवीय पञ्चाङ्ग में औदयिक स्पष्ट ग्रह बनाए जाते हैं। अतः उसमें उदयकाल को ही पंक्ति मान कर ग्रहों का तात्कालिकीकरण किया जाना चाहिए।

उदाहरण—किसी वैशाख कृष्ण पञ्चमी बुध को सूर्योदय से १३।५५ सावनेष्ट काल है, तथा षष्ठी गुरुवार को ४५।४८ पंक्तिकाल या मिश्रमान काल है।

यहाँ वारादि सावनेष्ट काल ४।१३।५५ से वारादि पंक्तिकाल ५।४५।४८ आगे है अतः वारादि पंक्ति में सावनेष्ट को घटाने से (५।४५।४८)—(४।१३।५५)= १।३२।३ = वारादि यातकाल या ऋणात्मक दिनादि। इससे पंक्तिस्थ सूर्य की स्पष्टा गति ५९′। ०″ को गोमूत्रिकानुसार गुणा करने से गुणन फल ९०।३०।५७ हुआ। इसमें ६० का भाग दिया तो १।३०′।३१″ ऋण चालन फल हुआ। पंक्तिस्थ स्पष्टसूर्य ११। २१। २८′।३१″ में चालनफल घटाने से ११।२२।२८′।३१″— १।३०′।३१″==११।२०।५८′।०″=तात्कालिक स्पष्ट सूर्य हुआ। इसी तरह अन्य ग्रहों का भी तात्कालिकीकरण होता है।

विमर्श—उपर्युक्त तात्कालिकीकरण पद्धति में पंक्तिस्थ स्पष्टागति को दिनादिक यातैष्य काल से गुणाकर ६० से भाग देना उचित नहीं है। मध्यमा गति पर से ही त्रैराशिक समुचित होता है। अल्पगति वाले ग्रहों में यह स्वल्पान्तर दोष अङ्गीकार कर लिया गया है। अधिक गतिवाले चन्द्रमा में अधिक स्थूलता के भय से भयात-भभोग के द्वारा ही उनका तात्कालिकीकरण समुचित है। चन्द्रमा-स्पष्ट करने की रीति निम्नलिखित है—

भयातं भोगविहृतं गतर्क्षाङ्कसमन्वितम्।
खवेदगुणितं भक्तं त्रिभिरंशादिकः शशी ॥ १ ॥

भयात को भभोग से भाग देने पर जो लब्धि आवे उसमें गत नक्षत्र की संख्या जोड़ दें। योगफल को ४० से गुणा कर तीन से भाग देने पर जो अंशादिक लब्धि हो, उसे ही तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा समझना चाहिए। जैसे अनुराधा नक्षत्र के भयात एवं भभोग क्रमशः ४५।५५। और ५७।१४ हैं। उपर्युक्त रीत्यनुसार पलात्मक भयात २७५५ में पलात्मक भभोग ३४३४ का भाग दिया तो २७५५÷ ३४३४=०।४८।८।११ यह लब्धि हुई। इसमें गतर्क्ष संख्या १६ को जोड़ दिया तो योग=१६।४८।८।११। हुआ। इसे ४० से गुणा कर तीन से भाग दिया—

$\frac{१६।४८।८।११ \times ४०}{३}$ = २२४।१′।४९″ यह अंशादिक स्पष्ट चन्द्रमा हुआ = ७।१४।१′।४९″

धूमादि अप्रकाश ग्रहों का साधन—

सत्र्यंशैस्त्रीन्दुभागैर्भैश्चतुर्भिश्च युतो रविः ॥ ५ ॥

धूमो नाम महादोषः सर्वकर्मविनाशकः ॥
धूमो मण्डलतः शुद्धो व्यतीपातोऽत्र दोषदः ॥ ६ ॥
सषड्भेऽत्र व्यतीपाते परिवेषस्तु दोषकृत् ।
परिवेषश्च्युतश्चक्रादिन्द्रचापश्च दोषदः ॥ ७ ॥
त्र्यंशोनात्यष्टिभागैश्च युतश्चापोऽशुभः शिखी ।
एकराशियुते केतौ सूर्यो राश्यादिको भवेत् ॥ ८ ॥
अप्रकाशग्रहाश्चैते दोषदाःपापिनः स्मृताः ।

स्पष्ट सूर्य में ४ राशि १३ अंश और २० कला जोड़ने से धूम नाम का महादोषकारक अप्रकाश ग्रह सभी कार्यों को नष्ट करने वाला होता है। धूम को १२ राशि में घटाने से दोषकारी व्यतीपात होता है। व्यतीपात में ६ राशि जोड़ने पर दोषकर परिवेषसंज्ञक ग्रह होता है। परिवेष को १२ राशि में घटाने पर इन्द्रचाप ग्रह होता है। इन्द्रचाप में १६ अंश तथा ४० कला जोड़ने पर अशुभकारक केतु ग्रह होता है। केतु में एक राशि जोड़ने पर स्पष्ट सूर्य हो जाता है। ये १ धूम, २ व्यतीपात, ३ परिवेष, ४ इन्द्रचाप ५ केतुसंज्ञक अप्रकाश ग्रह पापी तथा दोषद होते हैं ॥ ५–८ ॥

उदाहरण—जैसे स्पष्ट सूर्य-राश्यादि २।५°।२५′। १५″ में ४ ।१३° ।२०′।०″ जोड़ने से ६ । १८ । ४५′ । १५″ धूम हुआ। इस राश्यादि को १२ राशि में घटाने से १२ । ०° । ०′ । ०″—६ । १८ । ४५′ । १५″ = ५ । ११° । १४′ । ४५″=व्यतीपात। व्यतीपात राश्यादि में ६ राशि जोड़ने से ५ । ११° । १४′ । ४५″+ ६ । ०° । ०′ । ०″। = ११ । ११° । १४′ । ४५″ = परिवेष। इसे १२ राशि में घटाने पर १२ । ०° । ०′। ०″—११ । ११° । १४′ । ४५″ = ० । १८ । ४५′ । १५″ = इन्द्रचाप। इसमें १६ । ४०′ जोड़ने पर ०।१८ । ४५′ । १५″ + ० । १६°।४०′ ०″ = १ । ५° । २५′ ।१५″ = केतु। केतु राश्यादि में एक राशि जोड़ने पर २ । ५° । २५।१५″=स्पष्ट सूर्य राश्यादि।

अप्रकाश ग्रहों का फल—

रवीन्दुलग्नगेष्वेषु वंशायुर्ज्ञाननाशनम् ॥ ९ ॥
एषां पञ्चार्कदोषाणां स्थितिः पद्मासनोदिता ॥

उपर्युक्त धूम आदि पाँच अप्रकाश ग्रह सूर्य, चन्द्र या लग्न से युक्त हों तो क्रमशः वंश, आयु और ज्ञान का नाश होता है। इन पाँच (धूमादि) अर्कदोषों की स्थिति ब्रह्माजी ने कही है ॥ ९ ॥

गुलिकादि-साधन—

रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते ॥ १० ॥
दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद् गणयेत् क्रमात् ।
अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ॥ ११ ॥

रात्रिमप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात् पञ्चमादितः ।
गणयेदष्टमः खण्डो निरीशः परिकीर्तितः ॥ १२ ॥
शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशो यमघण्टकः ।
भौमांशो मृत्युरादिष्टो रव्यंशः कालसंज्ञकः ॥ १३ ॥
सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्पष्टः स्यात् स्वस्वदेशतः ।

सूर्यवारादि से शनिवार पर्यन्त गुलिक आदि का निरूपण किया जाता है— दिनमान को आठ भाग कर क्रमशः वारेश से गणना करें । प्रथम आदि सात भागों के अधिप वारेश क्रम से सातो ग्रह होते हैं । अष्टम भाग का अधिप कोई नहीं होता है । इस प्रकार शनि का भाग गुलिक कहलाता है । इसी तरह रात्रिमान को भी आठ भागकर वारेश से पाँचवें ग्रह से आरम्भ कर सात ग्रह प्रथम आदि सात भागों के अधिपति होते हैं । आठवाँ भाग यहाँ भी निरीश या बिना स्वामी का होता है । शनि का भाग गुलिक, गुरु का यमघण्ट, भौम का मृत्यु, रवि का कालवेला, बुध का अर्धप्रहर होता है ॥ १०–१३ ॥

गुलिक लग्न-साधन—

गुलिकारम्भकालेष्ट-समयाश्रयतस्तु यत् ॥ १४ ॥
लग्नं यत्साध्यते विद्भिर्गुलिकः स निगद्यते ।
नामान्तरं तु तस्यैव मान्दिरित्यभिधीयते ॥ १५ ॥

गुलिकारम्भ काल को इष्टसमय मानकर जो लग्नानयन पद्धति से लग्न बनाया जाय वही गुलिक कहलाता है । उसी गुलिक का संज्ञान्तर मान्दि भी है । दिनगत इष्टकाल होने पर दिन के गुलिकेष्ट से, एवं रात्रिगत इष्ट काल रहने पर रात्रिगत गुलिकेष्ट पर से लग्नानयन करना ही स्वाभाविक है ॥ १४–१५ ॥

प्राणपद की परिभाषा

पलैस्तु तिथिभिः प्राणपदभं समुदीरितम् ।
इष्टकालोद्भवं तत्तु चरागद्विभगे रवौ ॥ १६ ॥
युतमर्के तत्त्रिकोणे स्फुटं प्राणपदं हि तत् ।

एक प्राणपद राशि-प्रमाण १५ पल तुल्य माना गया है । चर-स्थिर-द्विस्वभाव राशिगत सूर्य में इष्टकालिक प्राणपद राशि को क्रमशः सूर्य, सूर्य से नवम, तथा उससे पञ्चम राशि में जोड़ देने पर स्पष्ट प्राणपद हो जाता है ।

उदाहरण—जैसे इष्टकाल=१५ घ. ।२० प.=९२० पल । ९२० ÷ १५=६१ रा० १० अं० । १२ से अधिक होने के कारण १२ से तष्टित करने पर = १।१०ं इसे पूर्वोक्त स्पष्ट सूर्य २ । ५ । २५′ । १५″ के द्विस्वभाव राशिगत होने के कारण, सूर्य से पञ्चम राशि

६ । ५ं । २५′ । १५″ में जोड़ने से ६ । ५ं । २५′ । १५″ + १ । १०ं । ०′ । ०″ = ७।१५।२५।१५ = स्पष्ट प्राणपद हुआ ।

प्राणपद का साधन—

घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता ॥ १७ ॥
दिवाकर हृता शेषं राशिश्चाथ पलात्मकम् ।
पूर्वशेषं द्विगुणितं लवाः स्फुटमुदीरिताः ॥ १८ ॥
एवं राश्यंशकौ सूर्यतत्त्रिकोणभभागयोः ।
योजयेत् क्रमशो विज्ञश्चरादौ संस्थिते रवौ ॥ १९ ॥
स्फुटं राश्यादिकं प्राणपदं, तत् प्रोच्यते पुनः ।

इष्टघटी को चार से गुणाकर गुणनफल में पन्द्रह से पल में भाग लेकर लब्धि जोड़ दें, योग में १२ से तष्टित करें शेष अंक को राशि समझें । पलात्मक शेष को द्विगुणित कर अंश समझें । इस प्रकार आगत राशि-अंश को चर-स्थिर-द्विस्वभाव राशियों में सूर्य की स्थिति के अनुसार स्पष्ट सूर्य के राशि-अंश में, सूर्य से नवम राशि के राशि-अंश में, तथा सूर्य से पञ्चम राशि के राशि-अंश में क्रमशः जोड़ दें तो स्फुट प्राणपद के राशि-अंश आदि होते हैं । इसी प्राणपद-साधन को "स्वेष्टकालं पलीकृत्य' आदि दूसरी रीति से कहता हूँ ॥ १७–१९ ॥

उदाहरण—जैसे इष्टकाल = १५ घ. ।२० प. घटी संख्या=१५। १५ × ४ = ६० । ६० + १ = ६१ क्योंकि २० प. ÷ १५ = १ = लब्धि शेष = ५। ६१ में १२ से तष्टित करने पर शेष = १ = राशि संख्या । पलात्मक शेष ५ को दो से गुणने पर ५ × २ = १० = अंश । इस प्रकार आनीत १ रा १० अंश को स्फुट सूर्य २ । ५ं । २५′ । १५″ के द्विस्वभाव राशिस्थ होने के कारण सूर्य से पञ्चम राशि ६ । ५ं ।२५′ । १५″ में जोड़ने से ६ । ५ं । २५′ । १५″ + १ । १०ं । ०′ । ०″ = ७ । १५ं । २५′ । १५″ = यही स्पष्ट प्राणपद हुआ । यदि स्पष्ट सूर्य चरराशिस्थ होते तो सूर्य के ही राशि-अंश में, स्थिर राशि में वे होते तो सूर्य से नवम राशि में आनीत राशि-अंश को जोड़ा जाता । किन्तु यहाँ स्पष्ट सूर्य द्विस्वभाव राशिगत हैं, अतः सूर्य से पञ्चम राशि (सूर्य + ४) में १ राशि तथा १० अंश जोड़े गए हैं ।

प्राणपद-साधन की दूसरी रीति—

स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तं भादिकं च यत् ॥ २० ॥
चरागद्विभगे भानौ भानौ युङ् नवमे सुते ।
स्फुटं प्राणपदं तच्च लग्नतो नवमे सुते ॥ २१ ॥
द्वितीये दशमे लाभे तुर्ये वापि शुभप्रदम् ।
अन्यत्र संस्थितं तच्च सुखदं नहि जन्मिनाम् ॥ २२ ॥

इष्टकाल को पल बनाकर १५ से भाग दें, जो राश्यादिक लब्धि आवे उसे चर-स्थिर-द्विस्वभाव-गत सूर्य के अनुसार सूर्य, सूर्य से नवम, तथा सूर्य से पञ्चम राशि के राश्यंश में क्रमशः जोड़ने पर प्राणपद के स्फुट राश्यादि होते हैं। वह प्राणपद लग्न से द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम, नवम, दशम तथा एकादशस्थ हो तो जातक को सर्वथा सौख्य, अन्यथा उपर्युक्त स्थान के अतिरिक्त स्थानों में रहने पर अशुभ कहना चाहिए।

घ. प.

उदाहरण—पूर्वोक्त इष्टकाल १५।२० = ९२० पल ९२० ÷ १५ = ६१ राशि, १० अं″ = १ रा, १० अं। स्पष्ट सूर्य २। ५ं। २५′। १५″ द्विस्वभाव गत है अतः सूर्य से पञ्चम ६। ५ं। २५′। १५″ में जोड़ने पर ६। ५ं। २५′। १५″ + १ रा.। १०ं।०′। ०″। = ६। ५ं। २५′। १५″ + १। १०ं। ०। ०। = ७। १५ं। २५′। १५″ = स्पष्ट प्राणपद हुआ।

विमर्श—१५ पलों का एक २ प्राणपद राशि माना गया है। अतः इष्टकाल में प्राणपद के लिए पलीकृत इष्टघटीपल में १५ से भाग देने पर प्राणपद के राशि-अंश आदि का होना उचित ही है।

पलीकृत इष्टघटीपल = इष्टघटी × ६० + पल

$$\text{अतः प्राणपद राश्यादि} = \frac{\text{इष्टघटी} \times ६० + \text{पल}}{१५}$$

$$= \frac{\text{इष्टघटी} \times ६०}{१५} + \frac{\text{पल}}{१५} = \text{इष्टघटी} \times ४ + \text{ल} + \frac{\text{शे०}}{१५} (१)$$

$= \text{प्राणपदराशि} + \frac{\text{शे०}}{१५}$। प्राणपद राशि यदि १२ से अधिक हों तो १२ से तष्टित करना स्वाभाविक ही है। पुनः शेषाङ्क तुल्य प्राणपद की द्वादशाल्प राशि संख्या होगी। $\frac{\text{शे०}}{१५}$ जो राश्यात्मक है, उसे ३० से गुणा करने पर अंश हो जायेंगे। अतः प्राणपद के

$\text{अंश} = \frac{\text{शे०}}{१५} \times ३० = \text{शे०} \times २$, अतः 'घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता' आदि तथा उपरि लिखित (१) स्वरूप देखने से 'स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तं भादिकं च यत्' 'आदि दोनों प्रकार प्राणपद साधन के लिए सर्वथा युक्तियुक्त है।

प्राणपद के द्वारा भ्रमकृत् क्रिया से इष्टकाल शोधन आदि ज्यौतिषरत्नाकरकार ने अपनी पुस्तक में लिखा है. यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। महर्षि ने प्राणपद का साधन फलादेश के लिए किया है यह बात अप्रकाश ग्रह फलाध्याय देखने से स्पष्ट हो जाती है। साथ ही "घटी चतुर्गुणा कार्या" आदि प्रथम प्राणपद-साधन प्रकार को असम्बद्ध या उपेक्षणीय कहना भी सर्वथा युक्तिविरुद्ध है, क्योंकि दोनों प्रकार एक ही उपपत्ति पर आधारित है, इसे मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है।

पलभा की परिभाषा तथा उसके द्वारा चरखण्ड का साधन—

मेषादौ सायनार्के तु दिनार्धजनिता हि या ।
द्वादशाङ्गुलशङ्कोर्भा पलभेत्युच्यते बुधैः ॥ २३ ॥
त्रिष्ठा सा गुणिता दिग्भिर्भुजङ्गैर्दशभिः क्रमात् ।
त्रिभिर्हृताऽन्तिमगता भवेयुश्चरखण्डकाः ॥ २४ ॥

सायनसूर्य मेषादिगत जब हों, अर्थात् जब दिन-रात बराबर हो तो मध्याह्न समय में १२ अङ्गुल शङ्कु की छाया पलभा कही जाती है। उस पलभा को तीन स्थानों में रखकर, १०, ८, १० से क्रमशः गुणा करें और अन्तिम गुणनफल में तीन से भाग भी दें तो क्रमशः तीन चरखण्ड होते हैं। इन चरखण्डों का उपयोग लङ्कोदय पर से स्वोदय साधन में होता है ॥ २३–२४ ॥

अं० व्यं०

उदाहरण—काशी की पलभा ५ । ४५ है। अतः (५।४५) × १० = ५७= प्रथम चरखण्ड। (५।४५) × ८ = ४६ = द्वि० चरखण्ड एवं (५।४५) × $\frac{१०}{३}$ =१९=तृ० चरखण्ड। यहाँ 'अर्धाधिके स्वयं ग्राह्यमर्धाल्पे त्याज्यम्' इसका उपयोग किया गया है।

लङ्कोदय से स्वोदय का साधन—

लङ्कोदया विघटिका गजभान्यङ्कगोऽश्विनः ।
त्रिपक्षदहना एताः क्रमोत्क्रमगताः पुनः ॥ २५ ॥
क्रमोत्क्रमस्थितैर्हीनयुताश्चरदलैस्तदा ।
स्वोदयाः स्युः क्रमान्मेषात्तुलादेरुत्क्रमात्तथा ॥ २६ ॥

२७८, २९९, ३२३, पलों को क्रम एवं उत्क्रम से रखकर क्रमोत्क्रमस्थित चरखण्डों को प्रथम तीन स्थानों में हीन, अग्रिम तीन स्थानों में युत करें तो मेषादि ६ राशियों के क्रम से, और तुलादि शेष राशियों के उत्क्रम से स्वोदय-मान होते हैं ॥ २५–२६ ॥

काशी का स्वोदय-मान—

२७८ – ५७ = २२१ = मेष, मीन
२९९ – ४६ = २५३ = वृष, कुम्भ
३२३ – १९ = ३०४ = मिथुन, मकर
३२३ + १९ = ३४२ = कर्क, धनु
२९९ + ४६ = ३४५ = सिंह, वृश्चिक
२७८ + ५७ = ३३५ = कन्या, तुला

लग्न-साधन-विधि—

स्फुटोऽर्कः सायनः कार्यो भुक्तभोग्यांशकाश्च ये ।
स्वीयोदयगुणा त्रिंशद्भक्ताः कालास्तदाह्वयाः ॥ २७ ॥

अभीष्टनाडीपलतो भोग्यकालान् विशोधयेत् ।
ततश्चाग्रिमराशीनां स्वोदयांश्चाथ शेषकम् ॥ २८ ॥
त्रिंशता गुणितं भक्तमशुद्धोदयतः फलम् ।
लवाद्यं सहितं मेषादिकैः शुद्धैस्तु राशिभिः ॥ २९ ॥
भुक्ते विधौ भुक्तकालान् षष्टिशुद्धेष्टकालतः ।
विशोध्य, गतराशीनां स्वोदयांस्तत्र शोधयेत् ॥ ३० ॥
लवाद्यं तु फलं शुद्धमशुद्धाजादिराशितः ।
अयनांशविहीनं सत् स्फुटं लग्नं प्रजायते ॥ ३१ ॥
षड्राशिसहितं तच्च सप्तमं भवनं मतम् ।

जिस समय स्पष्ट लग्न बनाना हो, उस समय के स्पष्ट सूर्य में तात्कालिक अयनांश जोड़ने से सायन सूर्य होता है। उस सायनार्क के भुक्त या भोग्य अंशादि को उस राशि के उदयमान से गुणा कर ३० से भाग दें लब्धि (पलादि) भुक्त या भोग्य काल होता है। भोग्य प्रकार से लग्न-साधन करते समय भोग्य काल को इष्टनाडीपल में घटाकर शेष में ऐष्य राशियों के उदय-मानों को (जहाँतक घट सके) घटावें। भुक्त प्रकार से लग्न स्पष्ट करने में सावनेष्ट काल को ६० में घटाकर जो शेष घटी-पल हो, उसमें भुक्त काल को घटावें, शेष में गतराशियों के उदयमानों को घटाना चाहिए। अर्थात् भोग्यांश पर से लग्न-साधन में सावनेष्ट घटीपल में ही भोग्य काल को घटाकर शेष में ऐष्य राशियों के उदयमानों को घटाया जाता है। किन्तु भुक्तांश पर से लग्न-साधन में सावनेष्ट को ६० में घटाने पर जो शेष रहे उसमें भुक्तकाल को पुनः भुक्तराशियों के उदयमानों को घटाना पड़ता है। इस प्रकार आगत शेष को ३० से गुणाकर अशुद्धोदय मान से भाग देने पर जो अंशादिक लब्धि आवे उसे, भोग्य प्रकार में शुद्ध राशिसंख्या में जोड़ने से, और भुक्त प्रकार में अशुद्ध राशिसंख्या में घटाने से सायन स्पष्टलग्न होता है। इसमें अयनांश घटाने पर स्पष्ट लग्न होता है। स्पष्ट लग्न में ६ राशियों के जोड़ने से सप्तम भवन या जायाभाव होता है ॥ २७–३१ ॥

उदाहरण—कल्पित स्पष्ट सूर्य = २ । ५° । २५′ । १५″ इष्टघटी २५ घ०।१५ प०
कल्पित अयनांश = २१° । ४६′ । ३″
सायनार्क = २ । २६° । ११′ । १८″
यहाँ सायनार्क के भुक्तांश = २६° । ११′ । १८″

३०°—भुक्तांश = ३०°—२६° । ११′ । १८″ = ३° । ४८′ । ४२″ = भोग्यांश । इस भोग्यांश को मिथुन राशि के काशी के उदयमान से गुणकर ३० से भाग दिया :—

$$\frac{(\text{३}^\circ \text{ । ४८}' \text{ । ४२}'') \times \text{३०४}}{\text{३०}} = \frac{\text{६०८ । १४५९२ । १२७६८}}{\text{३०}} = \frac{\text{८५४ । ४४ । ४८}}{\text{३०}} =$$

२८ । २९ । ३० = भोग्यकाल हुआ। यदि भुक्त प्रकार से लग्नानयन अभीष्ट होता (जैसा कि रात्र्यन्त समय में विशेषतः वाञ्छनीय होता है) तो यह काल भुक्तकाल कहलाता।

उपर्युक्त भोग्यकाल—२८।२९।३० को इष्टनाड़ी पल २५ × ६० + १५ में घटाया तो १५१५—२८।२९।३० = १४८६।३०।३० इसमें कर्क, सिंह, कन्या, तुला राशियों के उदयमानों को घटाने पर १४८६।३०।३०–(३४२+३४५+३३५ + ३३५)=१४८६। ३०।३०—१३५७ = १२९।३०।३० = शेष। इस शेष को ३० से गुणा किया और अशुद्ध वृश्चिकोदय मान ३४५ से भाग दिया $\frac{(१२९।३०।३०)\ ३०}{३४५} = \frac{३८८५।१५।०}{३४५} =$

११°।१५'।४१" इस अंशादि लब्धि को शुद्धराशि संख्या सात ७ में जोड़ दिया तो ७।११°।१५'।४१" इसमें अयनांश घटाया ७।११°।१५'।४१"—२°।४'।६।३"=६।११°।२'।९। ३८" यही स्पष्ट लग्न हुआ।

इसमें ६ राशि जोड़ देने पर सप्तम लग्न = ०।११°।२९'।३८" इसी तरह भुक्त प्रकार से भी स्पष्टलग्न किया जाता है। किन्तु भुक्त प्रकार से लग्नानयन में अंशादिलब्धि को अशुद्ध राशि-संख्या में घटाना पड़ता है ॥२७–३१॥

भुक्त भोग्य काल की अल्पता में विशेष—

स्वेष्टकालान्न संशुद्ध्येद् भुक्तं भोग्यं यदा तदा।
त्रिंशता गुणितं स्वेष्टं स्वोदयाप्तं लवादिकम् ॥ ३२ ॥
यत्तद्धीनं युतं कार्यं रवौ लग्नं स्फुटं भवेत्।

यदि पूर्व में आनीत भुक्त या भोग्यकाल इष्ट घटी-पल में नहीं घटे तो इष्टघटी को ३० से गुणाकर अपने उदयमान से भाग दें। भाग देने पर प्राप्त अंशादि फल को स्पष्ट सूर्य में क्रमशः हीन-युत करें। (अर्थात् भुक्तांश पर से लग्नसाधन किया जाता हो तो आगत अंशादिक फल को स्पष्ट सूर्य में घटा दें, और भोग्यांश पर से लग्नानयन में प्राप्त अंशादि फल को स्पष्ट सूर्य में जोड़ दें) तो स्पष्ट लग्न हो जायगा ॥ ३२ ॥

उदाहरणः— कल्पित सायन स्पष्ट सूर्य = २।२७।११'।१८"

भोग्यांश = २°।४८'।४२"

$\therefore$ भोग्यकाल = $\frac{(२°।४८'।४२")\ ३०४}{३०}$ = २८।२९।३०—पलादि। यदि कल्पित

इष्टघटीपल २५ मात्र हो तो २५ पल में २८ पल नहीं घटेंगे अतः $\frac{२५ \times ३०}{३०४} = \frac{७५०}{३०४} =$

२°।२८'।१" इस अंशादिक लब्धि को स्पष्ट सूर्य में जोड़ दिया = २।५°।२५'।१५" + २°।२८'।१" = २।७।५३,१,६" यही स्पष्ट लग्न हो गया।

नतोन्नत-परिज्ञान—

द्युरात्रिगतशेषेष्टघट्योरल्पं तदुन्नतम् ॥ ३३ ॥
नतं दिननिशोरर्द्धमुन्नतोनं प्रकीर्त्तितम् ।

दिन और रात्रि दोनों की गतघटी और शेषघटी इन दोनों में जो अल्प हो उसे उन्नत काल कहते हैं । उन्नत काल को दिनदल या रात्रिदल में घटाने से शेष नत-काल होता है ॥ ३३ ॥

उदाहरण—कल्पित सावनेष्ट काल = २५।१५ है तथा दिनमान ३३।५७ है तो दिनशेष ८।४२ ही अल्प होने के कारण उन्नत काल हुआ । इसे दिनार्धं १६।५८।३० में घटाने से १६।५८।३०—८।४२।० = ८।१६।३० यही नतकाल हुआ ।

दशमलग्न-साधनविधि—

नतात्पलीकृतात्पूर्वापरस्माद् भुक्तभोग्यतः ॥ ३४ ॥
लङ्कोदयैः साध्यते यल्लग्नं तद्दशमाभिधम् ।
सषड्भे दशमे ज्ञेयं चतुर्थं द्विजसत्तम ॥ ३५ ॥

पूर्वनत में लङ्कोदय पर से भुक्त प्रकार द्वारा, पश्चिमनत में लङ्कोदय पर से भोग्य प्रकार द्वारा जो लग्न-साधन किया जाता है वही दशमलग्न होता है । दशम लग्न में ६ राशि जोड़ने पर चतुर्थ लग्न होता है । (यदि रात्रिगत नतकाल हो तो सूर्य में ६ राशि जोड़ कर शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिए) ॥ ३४–३५ ॥

उदाहरण—पूर्वकल्पित उदाहरण में पश्चिमनत = ८।१६ = ४९६ पल । अतः दशम लग्न-साधन-रीति के अनुसार भोग्य प्रकार से लङ्कोदय के द्वारा साधित प्रथम लग्न दशम लग्न होगा ।

पूर्वकल्पित सायन स्पष्ट सूर्य २।२७°।११'।१८"

भोग्यांश = २°।४८'।४२"

अतः भोग्यकाल = $\frac{(२°।४८'।४२")\ ३२३}{३०} = \frac{९०८।१०।६}{३०}$ = ३०।१६।२० = भो.का. । इसे नतघटीपल ४९६ में घटाया ४९६—३०।१६।२० = ४६५।४३।४० इसमें अग्रिम कर्क राशि का लङ्कोदय ३२३ घटाया तो ४६५।४३।४०—३२३ = १४२।४३।४० । इसे ३० से गुणा कर अशुद्ध राशि सिंह के लङ्कोदय मान २९९ से भाग दिया $\frac{(१४२।४३।४०)३०}{२९९} = \frac{४२८१।५०।०}{२९९}$ = १४°।१९'।१४" इसमें शुद्धराशि संख्या ४ जोड़ दिया तो = ४।१४°।१९'।१४"। हुआ । इसमें अयनांश घटाया ४।१४°।१९'।१४"—२१°।४६'।३" = ३।२२°।३३'।११" यही दशम लग्न हुआ ।

इसमें ६ राशि जोड़ देने पर चतुर्थलग्न ९।२२°।३३'।११" हुआ ।

इस प्रकार प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम लग्नों का साधन हो गया ॥३४–३५॥

शेष भाव और सन्धियों का साधन—

लग्नं सुखात् सुखं कामाद् विशोध्य त्रिभिराहरेत् ।
एकांशं द्विगुणञ्चापि युञ्ज्याल्लग्नचतुर्थयोः ॥ ३६ ॥
षड्भावाः सन्धयश्चैवं पूर्वापरयुतेर्दलात् ।
ससन्धयः षडेवं ते भार्धयुक्ताः परेऽपि च ॥ ३७ ॥

प्रथम लग्न को चतुर्थ लग्न में और चतुर्थ लग्न को सप्तम लग्न में घटाकर तीन से अलग २ भाग दें। एकगुणित प्रथम लब्धि को लग्न में जोड़ने से द्वितीय भाव, द्विगुणित उसी लब्धि को लग्न में जोड़ने से तृतीय भाव होते हैं। इसी तरह द्वितीय लब्धि (सप्तम में चतुर्थ लग्न को घटाकर तीन से भाग देने पर जो लब्धि हुई) को चतुर्थ लग्न में जोड़ने से पञ्चमभाव, द्विगुणित उसी (द्वितीय) लब्धि को चतुर्थ लग्न में जोड़ने से षष्ठभाव होते हैं। इस प्रकार लग्नादि ६ भाव सिद्ध होते हैं। पूर्वापर भावों के योगार्ध को सन्धि कहते हैं। जैसे प्रथम-द्वितीय भावों के योगार्ध को प्रथम सन्धि, द्वितीय-तृतीय भावों के योगार्ध को द्वितीय सन्धि, इसी तरह आगे भी जानना। इस प्रकार आगत लग्नादि ६ भाव तथा ६ सन्धियों में ६ राशियों के जोड़ने पर अन्य सभी भाव तथा सन्धियाँ हो जायँगे। लग्न में ६ राशि जोड़ने से सप्तम भाव, प्रथम सन्धि में ६ राशि जोड़ने पर सप्तम की सन्धि, इसी तरह आगे भी सभी ससन्धि भावों का साधन हो जाता है।

जैसे पूर्व साधित प्रथम लग्न ६।११°।२९′।३८″

" चतुर्थ लग्न ९।२२°।३३′।११

प्रथम लग्न को चतुर्थ में घटाकर शेष में ३ से भाग देने पर

$\frac{९।२२°।३३′।११″—६।११°।२९′।३८″}{३} = \frac{३।३°।३′।३३″}{३}$ = १।३°।१′।११″। = लब्धि। एक-गुणित इसे प्रथम लग्न में जोड़ दिया ६।११°।२९′।३८″ + १।३°।११″१। = ७।२०″।३०′। ४९″ = द्वितीयभाव। द्विगुणित लब्धि को प्रथमलग्न में जोड़ने पर ६।११°।२९′।३८″ + २।२°।२′।२२″ = ८।२१°।३२′।००″ = तृतीय भाव।

पूर्वसाधित सप्तमलग्न = ०।११°।२९′।३८″

" चतुर्थलग्न = ९।२२°।३३′।११″

चतुर्थ को सप्तम में घटाकर तीन से भाग देने पर

$\frac{०।११°।२९′।३८″—९।२२°।३३′।११″}{३} = \frac{२।२६°।५६″।२७″}{३}$ = २८°।५८′।४९ = द्वितीय लब्धि। इस द्वितीय लब्धि को चतुर्थ में जोड़ने पर ९।२२°।३३′।११″ + ०।२८°।५८′। ४९″ = १०।२१°।३२′।१०″ = पञ्चमभाव। द्विगुणित द्वितीय लब्धि = (२८°।५८′।४९″) × २ = १।२७°।५७′।३८″। इसे चतुर्थलग्न में जोड़ने पर ९।२२°।३३′।११″ + १।२७°। ५७′।३८″ = ११।२०°।३०′।४९″ यही षष्ठ भाव हुआ।

प्रथम द्वितीय भावों का योगार्ध प्रथम सन्धि = (६।१९।२९।३८ + ७।२०।३०।४९) / २ =

(१४।१०।०।२७) / २ ७।५।०।१३।३० = प्र० सं०।

(द्वि.भा. + तृ.भा.) / २ = (७।२०।३०।४९ + ८।२१।३२।०) / २ = (१६।१२।२।४९) / २ = ८।६।१।२४।

३० = द्वि० सं०।

(तृ.भा. + च.भा.) / २ = (८।२१।३२।० + ९।२२।३३।११) / २ = (१८।१४।५।११) / २ = ९।७।२।३५।

३० = तृ० सं०।

(च.भा. + प.भा.) / २ = (९।२२।३३।११ + १०।२१।३२।०) / २ = (२०।१४।५।११) / २ = १०।७।२।

३५।३० = च० सं०।

(प.भा. + ष.भा.) / २ = (१०।२१।३२।० + ११।२०।३०।४९) / २ = (२२।१२।२।४९) / २ = ११।६।१।

२४।३० प० सं०।

(ष.भा. + स.भा.) / २ = (११।२०।३०।४९ + ०।१९।२९।३८) / २ = (०।१०।०।२७) / २ = ०।५।०।१३।

३० = ष० सं०।

इस प्रकार आगत ससन्धि भावों में ६-६ राशियाँ जोड़ने पर शेष सभी भाव या सन्धि होंगे।

ससन्धि द्वादशभाव—

प्रथम	संधि	द्वितीय	संधि	तृतीय	संधि	चतुर्थ	संधि	पञ्चम	संधि	षष्ठ	संधि
६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	०
१९	५	२०	६	२१	७	२२	७	२१	६	२०	५
२९	०	३०	१	३२	२	३३	२	३०	१	३०	०
३८	१३	४९	२४	०	३५	११	३५	०	२४	४९	१३
०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०
सप्तम	**संधि**	**अष्टम**	**संधि**	**नवम**	**संधि**	**दशम**	**संधि**	**एकाद.**	**संधि**	**द्वादश**	**संधि**
०	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	६
१९	५	२०	६	२१	७	२२	७	२१	६	२०	५
२९	०	३०	१	३२	२	३३	२	३०	१	३०	०
३८	१३	४९	२४	०	३५	११	३५	०	२४	४९	१३
०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०

नीलकण्ठी आदि ग्रन्थों में लग्नोन चतुर्थ के षष्ठांश को लग्न में जोड़ने से प्रथम सन्धि, ततः पर भी षष्ठांश को बार २ जोड़ने पर द्वितीय-तृतीय भाव तथा द्वितीय

तृतीय सन्धियाँ बनाने का विधान है। पुनः षष्ठांश को एक राशि में घटाकर शेष को चतुर्थ भाव में जोड़ने पर उसकी सन्धि, पुनः उसे जोड़ने पर पञ्चम, षष्ठ भाव तथा दोनों सन्धियां भी निष्पन्न होती हैं। पराशरोक्त प्रकार का ही इन ग्रन्थों में रूपान्तर है। दोनों की उपपत्ति एक ही है।

भाव-होरा-घटी-लग्न साधन—

अथ वक्ष्यामि ते भावलग्नादीनि द्विजोत्तम !।
यज्ज्ञानतः फलादेशे क्षमा होराविदो जनाः ॥ ३८ ॥
सूर्योदयात् पञ्चबाणदलैकघटिकामिताः।
भावहोराघटीलग्नमितयः क्रमशो द्विज ! ॥ ३९ ॥
इष्टनाडीपले पञ्चहृते राश्यादिकं फलम्।
यत्तदौदयिके सूर्ये योज्यमङ्गं तु भावजम् ॥ ४० ॥
एवमेते पुनर्द्वाभ्यां सङ्गुण्य विभजेच्छरैः।
लब्धं राश्यादिकं यत्तद्योज्यमौदयिके रवौ ॥ ४१ ॥
होरालग्नं स्फुटं तत् स्याद् घटीलग्नमथोच्यते।
इष्टनाडीमितान् राशीनर्कैः सन्तष्टितांस्तथा ॥ ४२ ॥
तत्पलार्धमितानंशानुदयार्के तु योजयेत्।
भादिकं तदिदं बोध्यं घटीलग्नं सदा बुधैः ॥ ४३ ॥

हे मैत्रेय ! अब मैं भावलग्न-आदि, बतलाता हूँ। इन भावलग्न आदि के जानकार होराशास्त्रज्ञ फलादेश में निपुण होते हैं। सूर्योदय से भावलग्न, होरालग्न, घटीलग्न क्रमशः ५, २½, १, घटी प्रमाण से व्यतीत होते हैं। अतः इष्टकाल में भावलग्न साधन के लिए इष्टनाडी पल को ५ से भाग लेने पर जो राश्यादिक लब्धि होवे उसे औदयिक सूर्य में जोड़ दें तो भावलग्न हो जायगा। इसी तरह इष्टघटी पलों को दो से गुण कर पाँच से भाग लें, राश्यादिक लब्धि को औदयिक सूर्य में जोड़ दें तो स्फुट होरालग्न हो जायगा। घटी लग्न साधन के लिए औदयिक सूर्य के राशि में १२ से तष्टित इष्टघटी तुल्य राशियों को और इष्ट पलार्धतुल्य अंशों को सूर्य के अंश में जोड़ दें, फिर जो राश्यादिक हों (१२ राशियों से अधिक होने पर पुनः तष्टित कर दें) वही घटीलग्न होगा ॥ ३८–४३ ॥

रा.

उदाहरण—इष्टघटी २५।१५ में पांच से भाग देने पर लब्धि = ५।३।०'।०"। इसे कल्पित औदयिक सूर्य २।५।१'।२०" में जोड़ने से ७।८'।१'।२०" = भावलग्न।

इष्टघटी २५।१५ को दो से गुणा करने पर ५०।३० हुआ। इसमें ५ से भाग देने से लब्ध राश्यादि = १०।६।०'।०"। इसे औदयिक सूर्य में जोड़ दिया २।५।१'।२०" + १०।६।०'।०" = ०।११।१'।२०" यह होरा लग्न हुआ।

१२ से तष्टित इष्टघटी तुल्य राशि = १, और पल १५ में २ से भाग देने पर ७।३०' औदयिक सूर्य के राशि, अंश, कला में जोड़ने पर २।५।१'।२०"+१।७।३०'।०" = ३।१२।३१'।२०" = घटीलग्न।

पूर्णं फलं ग्रहे भावसमे शून्यं तु सन्धिगे।
सन्धिद्वयान्तरगते भवेत्तद्भावजं फलम् ॥ ४४ ॥
सन्धिभ्यामधिके न्यूने फलमग्रिमपूर्वजम्।
भावलग्नातु तिथ्यंशैः पुरः पृष्ठगतैर्द्विज ॥ ४५ ॥
फलाभाव-फलारम्भौ सन्धीचापि विनिर्दिशेत्।

भावतुल्य ग्रह में उस भाव का पूर्ण फल और सन्धितुल्य ग्रह में शून्य फल होता है। दोनों सन्धियों के मध्य में कहीं भी ग्रह रहे तो उन्हीं दोनों सन्धियों के बीच वाले भाव का फल वह देता है। भाव की विराम सन्धि से अधिक ग्रह अग्रिम भाव में, आरम्भ सन्धि से न्यून ग्रह पूर्व भाव में फलप्रद होता है। भावलग्नों से १५ अंश आगे और १५ अंश पीछे क्रमशः फलाभाव तथा फलारम्भ के स्थान तथा दोनों सन्धियां होती हैं ॥ ४४—४५ ॥

विमर्श—तात्पर्य यह है कि तन्वादि भावों तथा द्वादश सन्धियों का साधन कर तदनुसार भाव कुण्डलीस्थ ग्रहों के द्वारा फलादेश उचित है। भावतुल्य ग्रह में पूर्णफल, सन्धिगत ग्रह होने पर शून्यफल, दो सन्धियों के बीच में ग्रहस्थिति होने पर उसी भाव का फल, आरम्भ सन्धि से ग्रह राशि आदि में कमी होने पर पूर्व भाव का फल, विराम सन्धि से ग्रह के अधिक होने पर अग्रिम भाव का फल आदि कहना चाहिए। तन्वादि भाव एवं सन्धियों का साधन सम्भव नहीं हो, तो ५, ५, घटी तुल्य भाव लग्नों, तथा भावों से १५ अंश पूर्व तथा १५ अंश बाद सन्धियों से फलादेश करना असङ्गत नहीं है क्योंकि दोनों में बहुत कम अन्तर पड़ने के कारण भावलग्नों के द्वारा भी फलादेश व्यावहारिक है। महर्षि पराशर ने अपने ग्रन्थ में ससन्धि द्वादश भाव तथा भावलग्न दोनों का निवेश किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तन्वादि भावों तथा सन्धियों के साधन में कठिनता का अनुभव कर ही सरल पांच-पांच घटी प्रमाण वाले भाव लग्नों के द्वारा भी फलादेश का निर्देश किया है। अतः भावलग्नों के द्वारा फलादेश की अपेक्षा तन्वादिभाव, एवं सन्धियों के साधन पूर्वक फलादेश उत्तम पक्ष अवश्य प्रतीत होता है। भाव लग्नों से ही फलादेश के लिए अभिनिवेश दिखलाना, मेरे विचार से समुचित नहीं है। फलादेश के लिए नियामक वचन महर्षियों के ही हो सकते हैं। अतः दोनों मार्ग प्रशस्त हैं, यही कहना श्रेयस्कर है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेतायां बृहत्पाराशरहोरायां
ग्रहादिसाधनाध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ राशिशीलाध्यायः ॥ ५ ॥

अहोरात्र-पदाद्यन्त्यलोपाद्धोरेति कथ्यते ।
तस्या हि ज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत् ॥ १ ॥
यदव्यक्तात्मको विष्णुः कालरूपो जनार्दनः ।
तस्याङ्गानि निबोध त्वं क्रमान्मेषादिराशयः ॥ २ ॥
मेषो वृषश्च मिथुनः कर्क-सिंह-कुमारिकाः ।
तुलालिचापमकराः कुम्भमीनौ यथाक्रमम् ॥ ३ ॥

'अहोरात्र' इस पद के आदिम एवं अन्तिम वर्ण लोप से 'होरा' की निष्पत्ति होती है। इस होरा (लग्न) के ज्ञानमात्र से जातक का कर्मफल (शुभाशुभफल) कहना चाहिए। काल स्वरूप जो अव्यक्तात्मा, जनार्दन, विष्णु हैं उन्हीं के अङ्ग मेषादि १२ राशियाँ हैं, ऐसा समझो। वे द्वादश राशियाँ क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ, तथा मीन हैं ॥ १–३ ॥

काल पुरुष के अङ्ग-विभाग—

शीर्षानने तथा बाहू हृत्क्रोडकटिवस्तयः ।
गुह्योरुयुगले जानुयुग्मे वै जङ्घके तथा ॥ ४ ॥
चरणौ द्वौ तथाऽजादेर्ज्ञेयाः शीर्षादयः क्रमात् ।

काल पुरुष के मस्तक तथा आनन, भुजद्वय, हृदय, उदर, कटि, वस्ति, लिङ्ग, गुदा, जङ्घाद्वय, घुटनें, घुटनें, घुटनों के निम्नभाग, तथा पैर में बारह अंग क्रमशः मेषादि द्वादश राशियां हैं ॥ ४ ॥

राशियों की चरादि संज्ञा—

चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रूराक्रूरौ नरस्त्रियौ ॥ ५ ॥
पित्तानिलत्रिधात्वैक्य-श्लैष्मिकाश्च क्रियादयः ।

मेषादि द्वादश राशियाँ चर-स्थिर-द्विस्वभाव, क्रूर-सौम्य, पुरुष-स्त्री, पित्त-वायु, त्रिधातु-कफ प्रकृतिक होती हैं। अर्थात् बारहों राशि क्रमशः चर, स्थिर, द्विस्वभाव संज्ञक हैं जैसा कि मेष, कर्क, तुला मकर-चर, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ-स्थिर, एवं मिथुन, कन्या, धनु, मीन-द्विस्वभाव संज्ञक हैं। इसी तरह विषम राशि—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु कुम्भ, क्रूर तथा पुरुष संज्ञक हैं। शेष सम ६ राशि—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर तथा मीन—सौम्य तथा स्त्री संज्ञक हैं। पुनः मेष, सिंह, धन—पित्त-प्रकृतिक; वृष, कन्या, मकर—वातप्रकृतिक; मिथुन, तुला, कुम्भ—त्रिधातु-प्रकृतिक और कर्क, वृश्चिक, मीन—कफ-प्रकृतिक हैं ॥ ५ ॥

राशियों के स्वरूप आदि कथन—

रक्तवर्णो बृहद्गात्रश्चतुष्पाद् रात्रिविक्रमी ॥ ६ ॥
पूर्ववासी नृपज्ञातिः शैलचारी रजोगुणी ।
पृष्ठोदयी पावकी च मेषराशिः कुजाधिपः ॥ ७ ॥

मेष राशि का वर्ण लाल, शरीर लम्बा, पाद चार, रात्रि में पराक्रम, पूर्व दिशा में निवास, क्षत्रिय जाति, पर्वतों में विचरण, रजो गुण, पृष्ठ से उदय, अग्नि तत्त्व, तथा स्वामी मंगल होते हैं ॥ ६–७ ॥

श्वेतः शुक्राधिपो दीर्घः श्चतुष्पाच्छर्वरीवली ।
याम्येट् ग्राम्यो वणिग् भूमी रजः पृष्ठोदयो वृषः ॥ ८ ॥

वृष राशि का वर्ण सफेद, लम्बा शरीर, चार पैर, रात्रि में बल, याम्य दिशा में निवास, गावों में विचरण, वैश्यजाति, भूमितत्त्व, रजोगुण, पृष्ठ से उदय तथा स्वामी शुक्र होते हैं ॥ ८ ॥

शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम् ।
प्रत्यङ्मरुद् द्विपाद्रात्रिवली ग्रामव्रजोऽनिली ॥ ९ ॥
समगात्रो हरिद्वर्णो मिथुनाख्यो बुधाधिपः ।

मिथुन का स्वरूप—गदा-वीणा सहित, पुरुष-स्त्री की जोड़ी, शीर्ष से उदय, पश्चिम दिशा में निवास, वायुतत्त्व, दो पैर, रात्रि में बल, ग्रामों में विचरण, वात प्रकृति, समान शरीर, हरित वर्ण, तथा स्वामी बुध होते हैं ॥ ९ ॥

पाटलो वनचारी च ब्राह्मणो निशि वीर्यवान् ॥ १० ॥
बहुपादी स्थूलतनुस्तथा सत्त्वगुणी जली ।
पृष्ठोदयी कर्कराशिर्मृगाङ्काधिपतिः स्मृतः ॥ ११ ॥

कर्क राशि का पाटल वर्ण, वन में विचरण, ब्राह्मण जाति, रात्रि में बल, अनेक पैर, मोटा शरीर, सत्त्व गुण, जलतत्त्व, पृष्ठ से उदय, तथा स्वामी चन्द्रमा होते हैं ॥ १०–११ ॥

सिंहः सूर्याधिपः सत्त्वी चतुष्पात् क्षत्रियो वनी ।
शीर्षोदयी बृहद्गात्रः पाण्डुः पूर्वेड् द्युवीर्यवान् ॥ १२ ॥

सिंह राशि का अधिप सूर्य, सत्त्वगुण, चार पैर, क्षत्रियवर्ण, जंगल में विचरण, शीर्ष से उदय, बड़ा शरीर, पाण्डुवर्ण, पूर्वदिशा में निवास, तथा दिन में बल होता है ॥ १२ ॥

पार्वतीयाथ कन्याख्या राशिर्दिनबलान्विता ।
शीर्षोदया च मध्याङ्गा द्विपाद्याम्यचरा च सा ॥ १३ ॥

सा सस्यदहना वैश्या चित्रवर्णा प्रभञ्जिनी ।
कुमारी तमसा युक्ता बालभावा बुधाधिपा ॥ १४ ॥

कन्या राशि का पर्वतीय प्रदेशों में विचरण, दिन में बल, शीर्ष से उदय, मध्यम शरीर, दो पैर, दक्षिण दिशा में निवास, सस्य सहित अग्नि का हाथ में धारण, वैश्यजाति, चित्रवर्ण, वायुतत्त्व, कुमार अवस्था, तमोगुण तथा स्वामी बुध होते हैं ॥ १३-१४॥

शीर्षोदयी द्युवीर्याढ्यो घटः कृष्णो रजोगुणी ।
पश्चिमो भूचरो घाती शूद्रो मध्यतनुर्द्विपात् ॥ १५ ॥
शुक्राधियोऽथ—

तुला राशि का शीर्ष से उदय, दिन में प्रबलता, कृष्णवर्ण, रजोगुण, पश्चिम दिशा में निवास, भूमि में विचरण, हिंसक प्रकृति, शूद्रजाति, मध्यमशरीर, दो पैर तथा स्वामी शुक्र होते हैं ॥ १५ ॥

स्वल्पाङ्गोबहुपादब्राह्मणोबिली ।
सौम्यस्थो दिनवीर्याढ्यः पिशङ्गो जलभूवहः ॥ १६ ॥
रोमस्वाढ्योऽतितीक्ष्णाग्रो वृश्चिकश्च कुजाधिपः ।

वृश्चिक राशि का शरीर छोटा, बहुत से पैर, ब्राह्मणजाति, बिल में संस्थान, उत्तर दिशा में निवास, दिन में प्राबल्य, पिशङ्गवर्ण, जलतत्त्व, भूमि में विचरण, रोमयुक्त शरीर, अत्यधिक तेज डंक, तथा स्वामी भौम होते हैं ॥ १६ ॥

पृष्ठोदयी त्वथ धनुर्गुरुस्वामी च सात्त्विकः ॥ १७ ॥
पिङ्गलो निशि वीर्याढ्यः पावकः क्षत्रियो द्विपात् ।
आदावन्ते चतुष्पादः समगात्रो धनुर्धनः ॥ १८ ॥
पूर्वस्थो वसुधाचारी बहुतेजः समन्वितः ।

धनुराशि का पृष्ठ से उदय, स्वामी गुरु, सत्त्वगुण, पिङ्गलवर्ण, रात्रि में प्राबल्य, अग्नितत्त्व, क्षत्रियवर्ण, पूर्वार्ध में दो पैर, और उत्तरार्ध में चार पैर, समान शरीर, धनुर्धारण, पूर्व दिशा में निवास, पृथ्वी पर विचरण, तथा अमित तेज होता है ॥ १७-१८॥

मन्देशस्तामसो भूमियाम्येट् च निशि वीर्यवान् ॥ १९ ॥
पृष्ठोदयी बृहद्गात्रः कर्बुरो वनभूचरः ।
आदौ चतुष्पादन्ते तु विपदो जलगो मतः ॥ २० ॥

मकर राशि का स्वामी शनि, तामस गुण, भूमितत्त्व, दक्षिण दिशा में निवास रात्रि में प्राबल्य, पृष्ठ से उदय, बड़ा शरीर, चित्रवर्ण, वन तथा भूमि में चलन, पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में पदराहित्य, और जल में संचरण होता है ॥ १९–२० ॥

कुम्भः कुम्भी नरो बभ्रुवर्णो मध्यतनुर्द्विपात् ।
द्युवीर्यो जलमध्यस्थो वातशीर्षोदयी तमः ॥ २१ ॥

शूद्रः पश्चिमदेशस्य स्वामी दैवाकरिः स्मृतः ।

कुम्भ राशि का घड़ा लिए हुए पुरुष जैसा स्वरूप, भूरा वर्ण, मध्यम शरीर, दो पैर, दिन में प्राबल्य, पानी के मध्य में संचार, वायुतत्त्व, शीर्ष से उदय, तामस गुण, शूद्रजाति, पश्चिम दिशा में निवास, तथा स्वामी शनि है ॥ २१ ॥

मीनौ पुच्छास्यसंलग्नौ मीनराशिर्दिवाबली ॥ २२ ॥
जली सत्त्वगुणाढ्यश्च स्वस्थो जलचरो द्विजः ।
अपदो मध्यदेही च सौम्यस्थो ह्युभयोदयी ॥ २३ ॥
सुराचार्याधिपश्चेत्थं राशीनामुदिता गुणाः ।
त्रिंशद्भागात्मकानां च स्थूलसूक्ष्मफलाय च ॥ २४ ॥

मीन राशि का मुख-पुच्छ मिलित-दो मछलियों का सा स्वरूप, दिन में प्राबल्य, जलतत्व, सत्त्वगुण, स्वस्थ चेहरा, जल में संचरण, विप्रजाति, पाद-राहित्य, मध्यम शरीर, उत्तर दिशा में निवास, मुख-पुच्छ दोनों से उदय, तथा स्वामी गुरु होता है ।

इस प्रकार स्थूल एवं सूक्ष्म फलादेशों के लिए त्रिंशद् भागात्मक राशियों का गुण मैंने बतलाया है ॥ २२–२४ ॥

जन्मकाल से गर्भाधान समय का ज्ञान—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुनिपुङ्गव ।
जन्मकालं च संशोध्य निषेकं परिशोधयेत् ॥ २५ ॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मैत्रेय ! त्वं विधारय ।
जन्मलग्नात् परिज्ञानं निषेकं सर्वजं तु यत् ॥ २६ ॥
यस्मिन् भावे भानविः स्यात्तस्य मान्देर्यदन्तरम् ।
लग्नभाग्यान्तरं योज्यं यच्च राश्यादि जायते ॥ २७ ॥
मासादि तन्मितं ज्ञेयं जन्मतः प्राग् निषेकजम् ।
यद्यदृश्यदलेड्गेशः तदेन्दोर्भुक्तभागयुक् ॥ २८ ॥
तत्काले साधयेल्लग्नं शोधयेत् पूर्ववत्तनुम् ।
तस्माच्छुभाशुभं वाच्यं गर्भस्थस्यविशेषतः ॥ २९ ॥
शुभाशुभं वदेत्पित्रोर्जीवनं मरणं तथा ।
एवं निषेकलग्नेन सम्यग् ज्ञेयं स्वकल्पनात् ॥ ३० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! (मैत्रेय !) जन्मलग्न के परिज्ञान से गर्भाधान के समय का ज्ञान कैसे किया जाय, इसे मैं (पराशर) बतलाता हूँ, आप सुनें । जिस भाव में जो शनि हो उसका गुलिक के साथ जो अन्तर हो, उसमें लग्न और नवम भाव के अन्तर को जोड़ दें । जोड़ने से जो राश्यादिक होवें तावन्मित मास, दिन आदि

जन्म से पहले गर्भाधान का समय समझना चाहिए। यदि लग्नेश अदृश्य चक्रार्ध में (लग्न से अग्रिम ६ राशि में) स्थित हों तो पूर्व सिद्ध राश्यादि में चन्द्रमा का भुक्तांश जोड़ें। इस प्रकार सिद्ध निषेक कालमें लग्न साधनकर गर्भ स्थित प्राणियों के शुभाशुभ फलों का निर्देश करना चाहिए। गर्भाधान कालिक लग्न के आधार पर जातक के पिता-माता के जीवन-मरण का भी फलादेश अपनी कल्पना से करें ॥२५-३०॥

उदाहरण—रविवार को २५।१५ इष्टघटी तथा दिनमान ३३।४० हो तो नियमानुसार दिनमान का सप्तम अष्टमांश गुलिक होगा। गुलिकारम्भकाल २५।१५ ही होगा, क्योंकि दिनमान का अष्टमांश ४।१२।३० है। अतः गुलिक लग्न या मान्दि पूर्वसाधित लग्न ६।११°।२९'।३८" ही हुआ। कल्पित शनि यदि ०।२५।१५।२० हो तो दोनों का अन्तर = ६।११°।२९'।३८"—०।२५°।१५'।२०" = ५।२४°।१४'।१८" इसमें लग्न एवं नवम भाव का अन्तर (६।११।२९।३८—२।२१°।३२'।० = ३।२७°। ५७'।३८") जोड़ने से ९।२२।११।५६ ये मास, दिन, घटी, पल जन्म से पूर्व गर्भाधान का समय हुआ।

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेतायां बृहत्पाराशरहोरायां
राशिशीलाध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ षोडशवर्गवर्णनाध्यायः ॥ ६ ॥

मैत्रेय उवाच—

ग्रहाणामथ राशीनां ये गुणा भवतोदिताः।
श्रुता इदानीं शुश्रूषु र्भावभेदांश्च तान् वद ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—आपके द्वारा कथित ग्रह एवं राशियों का गुण मैंने सुना। अब मैं भावों का भेद सुनना चाहता हूँ, उन्हें बतलावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

वर्गान् षोडश यत्प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि मैत्रेय ! श्रूयतामिति ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—लोकपितामह ब्रह्माजी ने सोलह वर्गों का जो वर्णन किया है, उसे मैं बतलाता हूँ। हे मैत्रेय ! सुनो—॥ २ ॥

षोडशवर्ग—

क्षेत्रं होरा च द्रेष्काणास्तुर्यांशः सप्तमांशकः।
नवांशो दशमांशश्च सूर्यांशः षोडशांशकः ॥ ३ ॥
विंशांशो वेदवाह्वंशो भांशस्त्रिंशांशकस्ततः।
खवेदांशोऽक्षवेदांशः षष्ट्यंशश्च ततः परम् ॥ ४ ॥

क्षेत्र—१, होरा—२, द्रेष्काण—३, चतुर्थांश—४, सप्तमांश—५, नवमांश—६, दशमांश—७, द्वादशांश—८, षोडशांश—९, विंशांश—१०, चतुर्विंशांश—११, सप्तविंशांश—१२, त्रिंशांश—१३, खवेदांश—१४, अक्षवेदांश—१५, षष्ट्यंश—१६ ये षोडशवर्ग हैं ॥ ३ ॥

तत्क्षेत्रं तस्य खेटस्य राशेर्यो यस्य नायकः ।
सूर्येन्द्वोर्विषमे राशौ समे तद् विपरीतकम् ॥ ५ ॥
पितरश्चन्द्रहोरेशा देवा सूर्यस्य कीर्त्तिताः ।
राशेरर्द्धं भवेद्धोरास्ताश्चतुर्विंशतिः स्मृता ॥ ६ ॥
मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ।

जिस राशि का जो ग्रह स्वामी है, उस ग्रह का वह राशि क्षेत्र (गृह) कहलाता है। मेष, मिथुन आदि विषम राशियों में पूर्वार्ध १५ अंश सूर्य की होरा, तथा उत्तरार्ध १५ अंश चन्द्रमा की होरा, और वृष, कर्क आदि सम राशियों में पूर्वार्ध १५ अंश चन्द्रमा की तथा उत्तरार्ध सूर्य की होरा होती है। चन्द्रहोरेश पितृगण, सूर्यहोरेश देवता होते हैं। राशि का आधा होरा कहलाती है। अतः वे २४ हैं। इन होराओं में मेषादि राशियों की दो आवृत्तियां होती हैं ॥ ५–६ ॥

उदाहरण—जैसे लग्न = ६।१९।२९′।३८″ तुला राशि है। यह शुक्र का क्षेत्र है क्योंकि तुला का स्वामी शुक्र हैं। साथ ही यह विषम राशि का उत्तरार्ध है अतः चन्द्रमा की होरा हुई ॥ ५–६ ॥

स्पष्टार्थ गृह चक्र—

गृह स्वामी	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
क्षेत्र (गृह)	सिं. +	कर्क +	मे. वृश्चि.	मि. क.	ध. मी.	वृष. तु.	मकर. कुम्भ.

स्पष्टार्थ होराचक्र—

स्वा.	राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
देवताः	१५ं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
पितरः	३०ं	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.

द्रेष्काण—

राशित्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः ।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत् ॥ ७ ॥
स्वपञ्चनवमानां च राशीनां क्रमशश्च ते ।
नारदाऽगस्तिदुर्वासा द्रेष्काणेशाश्चरादिषु ॥ ८ ॥

राशि का तृतीयांश द्रेष्काण कहलाता है। अर्थात् एक राशि में दश-दश अंश के तीन द्रेष्काण होते हैं। आरम्भ से १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण, ११ अंश से २० अंश तक द्वितीय द्रेष्काण एवं २१ अंश से ३० अंश तक तृतीय द्रेष्काण होता है। अतः १२ राशियों के द्रेष्काण ३६ होंगे।

प्रथम द्रेष्काण राशि का ही होता है, द्वितीय द्रेष्काण उससे पञ्चम राशि का, तथा तृतीय द्रेष्काण राशि से नवम राशि का होता है। चर, स्थिर, द्विस्वभाव, राशियों के द्रेष्काणाधिप क्रमशः नारद, अगस्ति तथा दुर्वासा होते हैं॥ ७–८॥

उदाहरण—पूर्वोक्त लग्न ६।१९।२९'।३८" तुला राशि के द्वितीय द्रेष्काण गत है अतः तुला से पञ्चम राशि मीन राशि का द्रेष्काण हुआ द्रेष्काणेश गुरु हुए। चर राशि के द्रेष्काण होने के नाते नारद ऋषि भी द्रेष्काणाधिप हुए।

स्पष्टार्थ द्रेष्काण चक्र—

स्वामी	राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
नारद	अंश	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
	१०	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.
अगस्ति		५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
	२०	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.
दुर्वासा		९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
	३०	गु.	श.	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.

चतुर्थांश—

स्वर्क्षादि-केन्द्रपतयस्तुर्यांशेशाः क्रियादिषु।
सनकश्च सनन्दश्च कुमारश्च सनातनः॥ ९॥

किसी राशि में चतुर्थांशों के स्वामी प्रथम, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम राशियों के स्वामी ही होते हैं। अर्थात् विचारणीय राशि के प्रथम चतुर्थांश का अधिप राशीश ही होंगे, द्वितीय चतुर्थांशपति उस (विचारणीय राशि) से चतुर्थ राशि के स्वामी, तृतीय चतुर्थांश का अधिप विचारणीय राशि से सप्तम का अधिप, एवं अन्तिम चतुर्थांश का स्वामी विचारणीय राशि से दशम का स्वामी होंगे॥ ९॥

उदाहरण—लग्न = ६।१९।२९'।३८" है। यह तुला के तृतीयचतुर्थांश में है। अतः तुला से सप्तम मेष का स्वामी मंगल चतुर्थांशेश तथा कुमार ऋषि हुए।

स्पष्टार्थ चतुर्थांश चक्र—

स्वामी	अंश	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सनक	७।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सनन्द	१५।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
कुमार	२२।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
सनातन	३०।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९

सप्तमांश—

सप्तांशपास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः ।
युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षादिनायकात् ॥ १० ॥
क्षारक्षीरौ च दध्याज्यौ तथेक्षुरससम्भवः ।
मद्यशुद्धजलावोजे समे शुद्धजलादिकाः ॥ ११ ॥

मेष, मिथुन, आदि विषम राशियों में राशीश से ७ राशियों के अधिप, और वृष, कर्क आदि सम राशियों में राशि के सप्तमेश से आगे ७ राशियों के अधिप सप्तमांशेश होते हैं। जैसे विषम मेष राशि में ७ सप्तमांश हैं। उनके अधिप मेषादि-तुलान्त राशियों के स्वामी ही होंगे, किन्तु सम (वृष) राशि में सप्तमांशों के स्वामी, वृष से सप्तम-वृश्चिक से आरम्भ कर वृष तक के राशियों के स्वामी होंगे।

विषम राशियों में क्षार, क्षीर, दधि, आज्य, इक्षुरस, मद्य, शुद्धजल ये और सम-राशियों में शुद्धजल, मद्य, इक्षुरस, आज्य, दधि, क्षीर, क्षार (विपरीतक्रम से) सप्तमांशों में नाम हैं ॥ १०—११ ॥

जैसे लग्न = ६।१९।२९'३८" है। यह विषम राशि तुला है। अतः सप्तमांशेश कुम्भ का स्वामी शनि हुआ। सप्तमांश का नाम इक्षुरस हुआ।

स्पष्टार्थ सप्तमांशचक्र—

नाम	अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	मं.	कु.	मी.
क्षार	४।१७	मं. १	मं. ८	बु. ३	श. १०	सू. ५	गु. १२	शु. ७	शु. २	गु. ९	चं. ४	श. ११	बु. ६
क्षीर	८।३४	शु. २	गु. ९	चं. ४	श. ११	बु. ६	मं. १	मं. ८	बु. ३	श. १०	सू. ५	गु. १२	शु. ७
दधि	१२।५१	बु. ३	श १०	सू. ५	गु. १२	शु. ७	शु. २	गु. ९	चं. ४	श. ११	बु. ६	मं. १	मं. ८
आज्य	१७।८	चं. ४	शु. ११	बु. ६	मं. १	मं. ८	बु. ३	श. १०	सू. ५	गु. १२	शु. ७	शु. २	गु. ९
इक्षुरस	२१।२५	सू. ५	गु. १२	शु. ७	शु. २	गु. ९	चं. ४	श. ११	बु. ६	मं. १	मं. ८	बु. ३	श. १०
मद्य	२५।४२	बु. ६	मं. १	मं. ८	बु. ३	श. १०	सू. ५	गु. १२	शु. ७	शु. २	गु. ९	चं. ४	श. ११
शुद्धजल	३०।०	शु. ७	शु. २	गु. ९	चं. ४	श. ११	बु. ६	मं.. १	मं. ८	बु. ३	श. १०	सू. ५	गु. १२

नवांश—

नवांशेशाश्चरे तस्मात् स्थिरे तन्नवमादितः ॥
उभये तत्पञ्चमादे-रिति चिन्त्यं विचक्षणैः ।
देवा नृराक्षसाश्चैव चरादिषु गृहेषु च ॥ १२ ॥

चर राशि में उसी राशि से, स्थिर राशि में उससे नवम राशि से और द्विस्वभाव राशि में उससे पञ्चम राशि से आरम्भ कर ९ राशियों तक गणनाकर राशियों के नवमांश समझना चाहिए। तत्तद्राशियों के स्वामी नवमांशेश होंगे।

तात्पर्य यह है कि चर राशि के प्रथमादि नौ नवांशों के अधिप उस चर राशि से आरम्भ कर नौ राशियों तक के स्वामी होंगे।

स्थिर राशि के नवांशों के अधिपति उस स्थिर राशि के नवम राशि से आरम्भ कर नौ राशियों के स्वामी होंगे, और द्विस्वभावराशि के नवांशेश उस द्विस्वभाव राशि के पञ्चम से आरम्भ कर नौ राशियों के स्वामी होंगे।

"मेषे नवांशा मेषाद्या वृषे तु मकरादिकाः। मिथुने तु तुलायाः युः कर्कटे कर्कटादिकाः। एवमग्रेऽपि" प्राचीनोक्त यह प्रसिद्ध है।

नवमांशों के नाम देव, नर, राक्षस, इसी क्रम से तीन आवृत्तियों को समझना चाहिए ॥ १२ ॥

जैसे—पूर्वकल्पित लग्न ६।११°।२९'।३८" किस राशि के नवमांश है और नवमांशेश कौन है? यदि यह देखना हो तो लग्न चर राशिस्थ होने के कारण उसी चर राशि (तुला) से आरम्भ कर २० अंशान्तर्गत होने से षष्ठराशि मीन का नवमांश हुआ और नवमांशेश गुरु हुए।

स्पष्टार्थ नवमांशचक्र—

नाम	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	नवमांश
देव	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	३।२०
नर	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	६।४०
राक्षस	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	१०।०
देव	चं. ४	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	मं. १	श. १०	शु. ७	१३।२०
नर	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	१६।४०
राक्षस	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	२०।००
देव	शु. ७	चं ४	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	मं. १	श. १०	शु. ७	चं. ४	मं. १	श. १०	२३।२०
नर	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	मं. ८	सू. ५	शु. २	श. ११	२६।४०
राक्षस	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	गु. ९	बु. ६	बु. ३	गु. १२	३०।०

दशमांश—

ओजे स्वतो दिगंशाः स्युर्युग्मे तन्नवमान्मताः ।
पूर्वादिदश दिक्पाला इन्द्राग्नियमराक्षसाः ॥ १३ ॥
वरुणो मारुतश्चैव कुबेरेशानपद्मजाः ।
अनन्ताश्च क्रमादोजे समे वा व्युत्क्रमेण तु ॥ १४ ॥

विषम राशियों में उसी राशि से आरम्भ कर दशराशियों के और समराशियों में उससे नवम राशि से आरम्भ कर दश राशियों के दशमांश होते हैं। पूर्व आदि दश दिक्पाल क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, मारुत, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त इन नामों से प्रसिद्ध हैं। विषम राशि में इन्हें क्रमशः और सम राशि में उत्क्रम से समझना चाहिए ॥ १३–१४ ॥

उदाहरण—पूर्वोक्त लग्न = ६।१९।२९'।३८" विषम राशि तुला है। अतः तुला से सप्तम राशि मेष का दशमांश और दसमांशेश भौम, कुबेर हुए।

स्पष्टार्थ दशमांशचक्र—

विषम स्वा.	अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	सम. स्वा.
इन्द्र	३	मं. १	श. १०	बु. ३	गु. १२	सू. ५	शु. २	शु. ७	चं. ४	गु. ९	बु. ६	श. ११	मं. ८	अनन्त
अग्नि	६	शु. २	श. ११	चं. ४	मं. १	बु. ६	बु. ३	मं. ८	सू. ५	श. १०	शु. ७	गु. १२	गु. ९	पद्मज
यम	९	बु. ३	गु. १२	सू. ५	शु. २	शु. ७	चं. ४	गु. ९	बु. ६	श. ११	मं. ८	मं. १	श. १०	ईशान
राक्षस	१२	चं. ४	मं. १	बु. ६	बु. ३	मं. ८	सू. ५	श. १०	शु. ७	गु. १२	गु. ९	शु. २	श. ११	कुवेर
वरुण	१५	सू. ५	शु. २	शु. ७	चं. ४	गु. ९	बु. ६	श. ११	मं. ८	मं. १	श. १०	बु. ३	गु. १२	वायु
वायु	१८	बु. ६	बु. ३	मं. ८	सू. ५	श. १०	शु. ७	गु. १२	गु. ९	शु. २	श. ११	चं. ४	मं. १	वरुण
कुवेर	२१	शु. ७	चं. ४	गु. ९	बु. ६	श. ११	मं. ८	मं. १	श. १०	बु. ३	गु. १२	सू. ५	शु. २	राक्षस
ईशान	२४	मं. ८	सू. ५	श. १०	शु. ७	गु. १२	गु. ९	शु. २	श. ११	चं. ४	मं. १	बु. ६	बु. ३	यम
पद्मज	२७	गु. ९	बु. ६	श. ११	मं. ८	मं. १	श. १०	बु. ३	गु. १२	सू. ५	शु. २	शु. ७	चं. ४	अग्नि
अनन्त	३०	श. १०	शु. ७	गु. १२	गु. ९	शु. २	श. ११	चं. ४	मं. १	बु. ६	बु. ३	मं. ८	सू. ५	इन्द्र

द्वादशांश—

द्वादशांशस्य गणनां तत्तत्क्षेत्राद् विनिर्दिशेत् ।
तेषामधीशाः क्रमशो गणेशाश्वियमाहयः ॥ १५ ॥

द्वादशांश की गणना विचारणीय राशि से ही आरम्भ कर क्रमशः १२ राशियों के द्वादशांश होते हैं । उनके अधीश गणेश, अश्विनीकुमार, यम, सर्प ये चार तीन आवृत्ति से होते हैं ॥ १५ ॥

उदाहरण—पूर्वोक्त लग्न ६।१९।२९'।३८'' है । एक द्वाद्दशांश का मान २।३० होगा, अतः तुला से अष्टमराशि वृष का द्वादशांश हुआ । द्वादशांशेश शुक्र एवं सर्प हुए ।

स्पष्टार्थ द्वादशांशचक्र—

स्वामी	अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
गणेश	२।३०	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु, ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२
आश्वनी कुमार	५।०	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १
यम	७।३०	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २
सर्प	१०।०	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३
गणेश	१२।३०	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४
अश्विनी कुमार	१५।०	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५
यम	१७।३०	शु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६
सर्प	२०।०	मं. ८	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७
गणेश	२२।३०	गु. ९	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८
अश्विनी कुमार	२५।०	श. १०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु. ९
यम	२७।३०	श. ११	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	मु. ७	मं. ८	गु. ९	श. १०
सर्प	३०।०	गु. १२	मं. १	शु. २	बु. ३	चं. ४	सू. ५	बु. ६	शु. ७	मं. ८	गु ९	श. १०	श. ११

षोड्शांश—

अजसिंहाश्वितो ज्ञेया नृपांशाश्वरभादिषु ।
अज-विष्णू हरः सूर्यो ह्योजे युग्मे प्रतीपकम् ॥ १६ ॥

चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशियों में क्रमशः मेष, सिंह, धनु से आरम्भ कर षोडशांश समझना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, विषम राशियों में क्रम से, और सम-राशियों में उत्क्रम से चार आवृत्ति में उन षोडशांशों के अधिप होते हैं ॥ १६ ॥

उदाहरण—लग्न = ६।१९।२९।३८ तुला चर है। अतः मेष से आरम्भ कर कुम्भ का षोडशांश हुआ। षोडशांशेश शनि एवं हर हुए। चक्र में देखने से स्पष्ट हो जायगा।

स्पष्टार्थ षोडशांशचक्र—

सं.	वि. स्वा.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	सम स्वा.	अं.	क.	वि.
१	ब्र,	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	सू.	१	५२	३०
२	वि,	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	ह.	३	४५	०
३	ह.	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	वि.	५	३७	३०
४	सू.	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	ब्र.	७	३०	०
५	ब्र.	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	सू.	९	२२	३०
६	वि.	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	ह.	११	१५	०
७	ह.	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	वि.	१३	७	३०
८	सू.	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	ब्रु.	१५	०	०
९	ब्रु.	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	सू.	१६	५२	३०
१०	वि.	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	ह.	१८	४५	०
११	ह.	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	वि.	२०	३७	३०
१२	सू.	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	ब्र.	२२	३०	०
१३	ब्र.	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	सू.	२४	२२	३०
१४	वि.	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	ह.	२६	१५	०
१५	ह.	३	७	११	२	७	११	३	७	११	३	७	११	वि.	२८	७	३०
१६	सू.	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	ब्र.	३०	०	०

विंशांश—

अथ विंशतिभागानामधिपा ब्रह्मणोदिताः ।
क्रियाच्चरे स्थिरे चापान् मृगेन्द्राद् द्विस्वभावके ॥ १७ ॥
कांली गौरी जया लक्ष्मीर्विजया विमला सती ।
तारा ज्वालामुखी श्वेता ललिता बगलामुखी ॥ १८ ॥
प्रत्यङ्गिरा शची रौद्री भवानी वरदा जया ।
त्रिपुरा सुमुखी चेति विषमे परिचिन्तयेत् ॥ १९ ॥

समराशौ दया मेधा छिन्नशीर्षा पिशाचिनी ।
धूमावती च मातङ्गी बाला भद्रा रुणाऽनला ॥ २० ॥
पिङ्गला छुच्छुका घोरा वाराही वैष्णवी सिता ।
भुवनेशी भैरवी च मङ्गला ह्यपराजिता ॥ २१ ॥

चर राशियों में मेष से, स्थिर राशियों में धनु से और द्विस्वभाव राशियों में सिंह से आरम्भकर विंशांश की गणना होती है। विषम राशियों में काली आदि और समराशियों में दया, मेधा आदि उनकी स्वामिनी होती हैं ॥ १७–२१ ॥

उदाहरण—लग्न ६।१९।२९'।३८" तुला है। चर राशि होने के कारण मेष से ही विंशांश का आरम्भ हुआ। १३ वां विंशांश मेष राशि का हुआ। अतः विंशांशेश मंगल, एवं प्रत्यङ्गिरा देवी हुई।

स्पष्टार्थ विंशांशचक्र—

सं.	वि. स्वा.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	स. स्वा.	अंश	सं.
१	काली	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	दया	१।३०	१
१	गौरी	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	मेधा	३।०	२
३	जया	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	६	छिन्नशीर्षा	४।३०	३
४	लक्ष्मी	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	पिशाची	६।०	४
५	विजया	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	धूमावती	७।३०	५
६	विमला	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	मातङ्गी	९।०	६
७	सती	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	बाला	१०।३०	७
८	तारा	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	३	१२	भद्रा	१२।०	८
९	ज्वालामु.	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	अरुणा	१३।३०	९
१०	श्वेता	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	अनला	१५।०	१०
११	ललिता	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	पिङ्गला	१६।३०	११
१२	बगला	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	छुच्छुका	१८।०	१२
१३	प्रत्यङ्गिरा	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	घोरा	१९।३०	१३
१४	शची	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	वाराही	२१।०	१४
१५	रौद्री	३	११	७	३	११	७	२	११	७	३	११	७	वैष्णवी	२२।३०	१५
१६	भवानी	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	सिता	२४।०	१६
१७	वरदा	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	भुवनेशी	२५।३०	१७
१८	जया	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	भैरवी	२७।०	१८
१९	त्रिपुरा	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	मंगला	२८।३०	१९
२०	सुमुखी	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	अपराजि.	३०।०	२०

चतुर्विंशांश—

सिद्धांशकानामधिपाः सिंहादोजभगे ग्रहे ।
कर्काद्युग्मभगे खेटे स्कन्दः पर्शुधरोऽनलः ॥ २२ ॥

विश्वकर्मा भगो मित्रो मयाऽन्तकवृषध्वजाः ।
गोविन्दो मदनो भीमः सिंहादौ विषमे क्रमात् ॥ २३ ॥
कर्कादौ समभे भीमाद् विलोमेन विचिन्तयेत् ।

विषम राशियों में सिंह से और समराशियों में कर्कादि क्रम से गिन कर चतुर्विंशांश समझना चाहिए। विषम राशियों में स्कन्द, पर्शुधर आदि क्रम से और समराशियों में भीम, मदन आदि विपरीतक्रम से इन चतुर्विंशांशों के देवता होते हैं ॥ २२–२३ ॥

उदाहरण—लग्न = ६।१९।२९'।३८" तुला विषम राशि हैं। अतः सिंह से गिन कर १६ वाँ चतुर्विंशांश मंगल का हुआ। देव विश्वकर्मा हुए ॥ २२–२३ ॥

चतुर्विंशांशचक्र—

सं.	विष. स्वा.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	समस्वा.	अंश
१	स्कंदः	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	भीमः	१।१५
२	पर्शुंधरः	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	मदनः	२।३०
३	अनलः	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	गोविंदः	३।४५
४	विश्वकः	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	वृषध्वजः	५।०
५	भगः	९	८	९	८	९	८	९	८	९	८	९	८	अंतकः	६।१५
६	मित्रः	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	मयः	७।३०
७	मयः	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	मित्रः	८।४५
८	अंतकः	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	भगः	१०।०
९	वृषध्वजः	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	विश्वक.	११।१५
१०	गोविंदः	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	अनलः	१२।३०
११	मदनः	३	[illegible]	३	२	३	२	३	२	२	२	३	२	पर्शुं[illegible]रः	१३।४५
१२	भीमः	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	[illegible]	१५।०
१३	स्कंदः	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	[illegible]मः	१६।१५
१४	पर्शुंधरः	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	मदनः	१७।३०
१५	अनलः	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	गोविंदः	१८।४५
१६	विश्वक॰	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	वृषध्वजः	२०।०
१७	भगः	९	८	२	८	९	८	९	८	९	८	९	८	अंतकः	२१।१५
१८	मित्रः	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	मयः	२२।३०
१९	मयः	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	मित्रः	२३।४५
२०	अंतकः	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	भगः	२५।०
२१	वृषध्वजः	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	विश्वक.	२६।१५
२२	गोविंदः	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	अनलः	२७।३०
२३	मदनः	३	२	३	२	३	२	३	२	३	२	३	२	पर्शुंधरः	२८।४५
२४	भीमः	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	स्कंदः	३०।०

भांश (सप्तविंशांश)—

भांशेशाः क्रमशो दस्रयमवह्निपितामहाः ।
चन्द्रेशादितिजीवाहि पितरोऽथ भगस्तथा ॥ २४ ॥

अर्यमार्कत्वष्टमरुच्छक्राग्निमित्रवासवाः ।
निऋत्युदकविश्वेऽजगोविन्दा वसवोऽम्बुपः ॥ २५ ॥
ततोऽजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चैव प्रकीर्त्तिताः ।
नक्षत्रेशास्तु भांशेशा अजादिचरराशितः ॥ २६ ॥

मेष, कर्क, तुला, मकर, इन चार चर राशियों से आरम्भकर मेषादि राशियों में सप्तविंशाधिप होते हैं। अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के दस्त्र, यम आदि स्वामी ही उनके देव हैं। चक्र देखने से स्पष्ट हो जायगा ॥ २४–२६ ॥

उदाहरण—लग्न ६।१९।२९′।३८″ तुला है। इसमें तुला से ही आरम्भ कर अठारहवाँ भाश मीन राशि का होगा। अतः भांशेश गुरु तथा वासव देवता हुए।

भांशचक्रम्—

सं.	स्वामिनः	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	अंशादि
१	अश्विनीकु.	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१ ६ ४०
२	यमः	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२ १३ २०
३	वह्निः	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३ २० ०
४	ब्रह्मा	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४ २६ ४०
५	चन्द्रमा	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५ ३३ २०
६	ईशः	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६ ४० ०
७	अदितिः	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७ ४६ ४०
८	जीवः	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८ ५३ २०
९	अहिः	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	१० ० ०
१०	पितरः	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	११ ६ ४०
११	भगः	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	१२ १३ २०
१२	अर्यमा	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१३ २० ०
१३	सूर्यः	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१४ २६ ४०
१४	त्वष्टा	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	१५ ३३ २०
१५	मरुत्	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	१६ ४० ०
१६	शक्राग्निः	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	१७ ४६ ४०
१६	मित्रः	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	१८ ५३ २०
१८	वासवः	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	२० ० ०
१९	राक्षसः	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	२१ ६ ४०
२०	वरुणः	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	२२ १३ २०
२१	विश्वेदेवः	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	२३ २० ०
२२	गोविंदः	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	२४ २६ ४०
२३	वसुः	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	२५ ३३ २०
२४	वरुणः	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	२६ ४० ०
२५	अजपात्	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	०	७	१०	२७ ४६ ४०
२६	अहिर्बुध्न्य	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२८ ५३ २०
२७	पूषा	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३० ० ०

त्रिशांश—

त्रिंशांशेशाश्च विषमे कुजार्कीज्यज्ञभार्गवाः ।
पञ्चपञ्चाष्टसप्ताक्षभागा व्यत्ययतः समे ॥ २७ ॥
वह्निः समीरशक्रौ च धनदो जलदस्तथा ।
विषमेषु क्रमाज्ज्ञेयाः समराशौ विपर्ययात् ॥ २८ ॥

विषम राशियों में ५, ५, ८, ७, ५, अंशक्रम से, मंगल, शनि, गुरु, बुध, शुक्र, और समराशियों में ५, ७; ८, ५, ५ अंशक्रम से शुक्र, बुध, गुरु, शनि, मंगल त्रिंशांशेश होते हैं। विषम राशियों में अग्नि, वायु, इन्द्र, कुबेर, और वरुण, और समराशियों में विपरीत क्रम से अर्थात् वरुण, कुबेर, इन्द्र, वायु, अग्नि त्रिंशांशों के अधिदेव होते हैं।

उदाहरण—जैसे लग्न ६।१९।२९'।३८" तुला विषम राशि है। अतः त्रिंशांशेश बुध, और अधिदेव कुबेर हुए ॥ २७–२८ ॥

स्पष्टार्थ विषमत्रिंशांशचक्र—

स्वामिनः	अंशाः	मेषः	मिथुनः	सिंहः	तुला	धनु.	कुंभः
वह्निः	५ ०	मं.	मं.	मं.	मं.	मं.	मं.
वायुः	१० ०	श.	श.	श.	श.	श.	श.
शक्रः	१८ ०	गु.	गु.	गु.	गु.	गु.	गु.
धनदः	२५ ०	बु.	बु.	बु.	बु.	बु.	बु.
जलदः	३० ०	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.

स्पष्टार्थ समत्रिंशांशचक्रम्—

स्वामिनः	अंशाः	वृषभ	कर्क.	कन्या	वृश्चिक.	मकर.	मीन.
जलदः	५ ०	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.	शु.
धनदः	१२ ०	बु.	बु.	बु.	बु.	बु.	बु.
शक्रः	२० ०	गु.	गु.	गु.	गु.	गु.	गु.
वायुः	२५ ०	श.	श.	श.	श.	श	श.
वह्निः	३० ०	मं.	मं.	म.	मं.	मं.	मं.

खवेदांश—

चत्वारिंशद्विभागानामधिपा त्रिषमे क्रियात् ।
विष्णुश्चन्द्रो मरीचिश्च त्वष्टा धाता शिवो रविः ॥ २९ ॥
यमो यक्षेशगन्धर्वौ कालो वरुण एव च ।
समभे तुलतो ज्ञेयाः स्वस्वाधिपसमन्विताः ॥ ३० ॥

विषम राशियों में मेष से, सम राशियों में तुला से आरम्भ कर खवेदांश (चत्वारिंशांश) के अधिपों का ज्ञान करना चाहिए। विष्णु, चन्द्र आदि क्रम से खवेदांशों के देव होते हैं। खवेदांश चक्र देखने से स्पष्ट हो जायगा।

उदाहरण—जैसे लग्न ६।१९।२९'।३''८ तुला विषम है। अतः मेष से आरम्भ कर छब्बीसवां भाग वृष राशि का हुआ। अतः खवेदांशेश शुक्र और देव चन्द्र हुए ॥ २९–३० ॥

स्पष्टार्थ खवेदांशचक्र—

सं.	स्वामिनः	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अं.	क.
१	विष्णुः	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	०	४५
२	चन्द्रः	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	१	३०
३	मरीचिः	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	२	१५
४	त्वष्टा	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	३	०
५	धाता	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	३	४५
६	शिवः	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	४	३०
७	रविः	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	५	१५
८	यमः	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	६	०
९	यक्षेश	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	६	४५
१०	गन्धर्वः	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	७	३०
११	कालः	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	८	१५
१२	वरुणः	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	९	०
१३	विष्णुः	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	९	४५
१४	चन्द्रः	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	१०	३०
१५	मरीचिः	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	११	१५
१६	त्वष्टा	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	१२	०
१७	धाता	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	१२	४५
१८	शिवः	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	१३	३०
१९	रविः	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	१४	१५
२०	यमः	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	१५	०
२१	यक्षेशः	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	१५	४५
२२	गन्धर्वः	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१६	३०
२३	कालः	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	१७	१५

२४	वरुणः	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१८	०
२५	विष्णुः	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१८	४५
२६	चन्द्रः	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	१९	३०
२७	मरीचिः	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	२०	१५
२८	त्वष्टा	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	२१	०
२९	धाता	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	२१	४५
३०	शिवः	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	२२	३०
३१	रविः	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	२३	१५
३२	यमः	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	२४	०
३३	यक्षेशः	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	२४	४५
३४	गन्धर्वः	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	२५	३०
३५	कालः	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	२६	१५
३६	वरुणः	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	२७	०
३७	विष्णुः	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	२७	४५
३८	चन्द्रः	२	८	२	८	२	८	३	८	२	८	२	८	२८	३०
३९	मरीचिः	२	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	२९	१५
४०	त्वष्टा	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	३०	०

अक्षवेदांश—

तथाऽक्षवेदभागाना-मधिपाश्चरभे क्रियात् ।
स्थिरे सिंहाद् द्विस्वभावे चापाद् ब्रह्मेशकेशवाः ॥ ३१ ॥

ईशाच्युतसुरज्येष्ठा विष्णुकेशाश्चरादिषु ।
देवता विबुधैरुक्ता बाणचन्द्रावृतिक्रमात् ॥ ३२ ॥

चरराशियों में मेष से स्थिर राशियों में सिंह से और द्विस्वभाव राशियों में धनु से आरम्भ कर अक्षवेदांशेश का ज्ञान होता है। चरराशियों में ब्रह्मा, शिव, विष्णु स्थिरराशियों में शिव, विष्णु, ब्रह्मा, एवं द्विस्वभाव राशियों में विष्णु, ब्रह्मा, शिव, पन्द्रह आवृत्तिक्रम से अधिदेव होते हैं।

उदाहरण—जैसे लग्न ६।१९'।२९'।३८' चरराशि का है। अतः मेष से आरम्भकर ३० वाँ अक्षवेदांश कन्या राशि का हुआ। अतः अक्षवेदांशेश बुध तथा केशव अधिदेव हुए ॥ ३१–३२ ॥

अत्तवेदांशचक्र—

सं.	मे.	वृ.	मि	क.	सिं	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी	अं.	क.
१	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	०	४०
२	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	१	२०
३	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	२	०
४	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	२	४
५	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	३	२०
६	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	४	०
७	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	४	४०
८	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	५	२०
९	९	१	५	९	१	२	९	१	५	९	१	५	६	०
१०	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	६	४०
११	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	७	२०
१२	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	८	०
१३	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	८	४०
१४	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	९	२०
१५	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	१०	०
१६	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	१०	४०
१७	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	११	२०
१८	६	०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	१२	०
१९	७	१	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	१२	४०
२०	८	२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	१३	२०
२१	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	१४	०
२२	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१४	४०
२३	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	१५	२०
२४	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१६	०
२५	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१६	४०
२६	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	१७	२०
२७	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	१८	०
२८	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	१८	४०
२९	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	१९	२०
३०	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	२०	०
३१	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	२०	४०
३२	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	२१	२०
३३	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	२२	०
३४	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	२२	४०
३५	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	२३	२०
३६	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	२४	०
३७	१	५	९	१	५	२	१	५	९	१	५	९	२४	४०
३८	२	६	१०	२	६	३	२	६	१०	२	६	०	२५	२०
३९	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	२६	०
४०	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	२६	४०
४१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	२७	२०
४२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	२८	०
४३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	२८	४०
४४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	२९	२०
४५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	३०	०

षष्ट्यंश—

राशीन् विहाय खेटस्य द्विघ्नमंशाद्यमर्कहृत् ।
शेषं सैकं च तद्राशिनाथाः षष्ट्यंशपाः स्मृताः ॥ ३३ ॥

स्पष्ट-ग्रह या लग्न के राशियों को छोड़कर अंशादिकों २ से गुणाकर १२ से तष्टित करें। अंश स्थान में जो शेष बचे उसमें एक जोड़ें। इस प्रकार उपलब्ध संख्या पर ग्रहाश्रित राशि से जो राशि हो उसी का अधिपति षष्ट्यंशेश होता है। इसका पूर्णतः स्पष्टीकरण उदाहरण एवं षष्ट्यंश चक्र से हो जाता है।

उदाहरण—जैसे लग्न = ६।१९।२९'।३८" है। इसमें राशि संख्या को छोड़ कर १९।२९'।३८" अंशादि को दो से गुणाकर ३८।५९।१६ गुणन फल के अंश स्थान में १२ से भाग लेने पर शेष २ में एक जोड़ने से ३ हुए। अतः तुला से तीसरे धनु राशि का स्वामी गुरु षष्ट्यंशपति होंगे ॥ ३३ ॥

षष्ट्यंशाधिदेव—

घोरश्च राक्षसो देवः कुबेरो यक्षकिन्नरौ ।
भ्रष्टः कुलघ्नो गरलो वह्निर्माया पुरीषकः ॥ ३४ ॥
अपांपतिर्मरुत्वांश्च कालः सर्पामृतेन्दुकाः ।
मृदुः कोमल-हेरम्बब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३५ ॥
देवार्द्रौ कलिनाशश्च क्षितीशकमलाकरौ ।
गुलिको मृत्युकालश्च दावाग्निर्घोरसंज्ञकः ॥ ३६ ॥
यमश्च कण्टकसुधाऽमृतपूर्णनिशाकराः ।
विषदग्धः कुलान्तश्च मुख्यो वंशक्षयस्तथा ॥ ३७ ॥
उत्पातकालसौम्याख्याः कोमलः शीतलाभिधः ।
करालदंष्ट्रचन्द्रास्यौ प्रवीणः कालपावकः ॥ ३८ ॥
दण्डभृन्निर्मलः सौम्यः क्रूरोऽतिशीतलोऽमृतः ।
पयोधिभ्रमणाख्यौ च चन्द्ररेखा त्वयुग्मपाः ॥ २९ ॥
समे भे व्यत्ययाज्ज्ञेयाः षष्ट्यंशेशाः सदा बुधैः ।
षष्ट्यंशस्वामिनस्त्वोजे तदीशाद् व्यत्ययात् समे ॥ ४० ॥
शुभषष्ट्यंशसंयुक्ता ग्रहाः शुभफलप्रदाः ।
क्रूरषष्ट्यंशसंयुक्ता नाशयन्ति खचारिणः ॥ ४१ ॥

विषम राशियों में घोर, राक्षस, देव, कुबेर आदि क्रम से, और समराशियों में चन्द्ररेखा, भ्रमण, पयोधि, सुधा आदि व्युत्क्रम से सष्ट्यंशदेव समझना चाहिए। शुभ-षष्ट्यंश युक्त ग्रह शुभफल देनेवाले होते हैं और क्रूर ग्रह के षष्ट्यंशसंयुक्त ग्रह नाश (हानि) कारक होते हैं ॥ ३४–४२ ॥

स्पष्टार्थं षष्ट्यंशचक्रम्—

सं.	वि० ष०	मे.	वृ.	मि	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी	स० ष०	अं.	क.
१	घोर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	इन्दुरेखा	०	३०
२	राक्षस	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	भ्रमण	१	०
३	देव	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	पयोधीश	१	३०
४	कुबेर	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	सुधा	२	०
५	यक्ष	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	अतिशी०	२	३०
६	किन्नर	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	क्रूर	३	०
७	भ्रष्ट	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	सौम्य	३	३०
८	कुलघ्न	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	निर्मल	४	०
९	गरल	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	दण्डायुध	४	३०
१०	अग्नि	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	कालाग्नि	५	०
११	माया	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	प्रवीण	५	३०
१२	पुरीष	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	इन्दुमुख	६	०
१३	अपांपति	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	दंष्ट्राकराल	६	३०
१४	मरुत्वान्	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शीतल	७	०
१५	काल	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	कोमल	७	३०
१६	अहि	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	सौम्य	८	०
१७	अमृत	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	कालरूप	८	३०
१८	चन्द्र	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	उत्पात	९	०
१९	मृदु	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	वंशक्षय	९	३०
२०	कोमल	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कुलनाश	१०	०
२१	हेरम्ब	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	विषदग्ध	१०	३०
२२	ब्रह्म	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	पूर्णचन्द्र	११	०
२३	विष्णु	११	२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	अमृत	११	३०
२४	महेश्वर	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	सुधा	१२	०
२५	देव	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	कण्टक	१२	३०
२६	आर्द्र	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	यम	१३	०
२७	कलिनाश	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	घोर	१३	३०
२८	क्षितीश्वर	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	दावाग्नि	१४	०
२९	कमलाकर	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	काल	१४	३०
३०	गुलिक	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	मृत्यु	१५	०
३१	मृत्यु	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	कुलिक	१५	३०
३२	काल	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कमलाकर	१६	०
३३	दावाग्नि	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	क्षितीश्वर	[illegible]	३०
३४	घोर	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	कलिनाश	१७	०
३५	यम	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	आर्द्र	१७	३०
३६	कण्टक	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	देव	१८	०
३७	सुधा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	महेश्वर	१८	३०
३८	अमृत	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	विष्णु	१९	०
३९	पूर्णचन्द्र	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	ब्रह्मा	१९	३०
४०	विषप्रदग्ध	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	हेरम्ब	२०	०
४१	कुलनाश	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	कोमल	२०	३०
४२	वंशक्षय	६	७	८	९	१०	११	१२	१	[illegible]	३	४	५	मृदु	२१	०
४३	उत्पात	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	चन्द्र	२१	३०
४४	काल	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	अमृत	२२	०
४५	सौम्य	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	अहिभाग	२२	३०
४६	कोमल	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	काल	२३	०
४७	शीतल	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	मरुत्वान्	२३	३०

४८	दंष्ट्राकराल	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	अपांपति	२४	०
४९	इन्दुमुख	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	पुरीष	२४	३०
५०	प्रवीण	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	माया	२५	०
५१	कालाग्नि	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	अग्नि	५५	३०
५२	दण्डायुध	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	गरल	२६	०
५३	निर्मल	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	कुलघ्न	२६	३०
५४	सउय	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भ्रष्ट	२७	०
५५	क्रूर	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	किन्नर	२७	३०
५६	अतिशीतल	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	यक्ष	२८	०
५७	सुधा	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	कुबेर	२८	३०
५८	पयोधीश	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	देव	२९	०
५९	भ्रमण	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	राक्षस	२९	३०
६०	इन्दुरेखा	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	घोर	३०	०

वर्गभेद—

वर्गभेदानहं वक्ष्ये मैत्रेय ! त्वं विधारय ।
षड्वर्गाः सप्तवर्गाश्च दिग्वर्गा नृपवर्गकाः ॥ ४२ ॥
भवन्ति वर्गसंयोगे षड्वर्गे किंशुकादयः ।
द्वाभ्यां किंशुकनामा च त्रिभिर्व्यञ्जनमुच्यते ॥ ४३ ॥
चतुर्भिश्चामराख्यं च छत्रं पञ्चभिरेव च ।
षड्भिः कुण्डलयोगः स्यान्मुकुटाख्यं च सप्तभिः ॥ ४४ ॥
सप्तवर्गेऽथ दिग्वर्गे पारिजातादिसंज्ञकाः ।
पारिजातं भवेद् द्वाभ्यामुत्तमं त्रिभिरुच्यते ॥ ४५ ॥
चतुर्भिर्गोपुराख्यं स्याच्छरैः सिंहासनं तथा ।
पारावतं भवेत् षड्भिर्देवलोकं च सप्तभिः ॥ ४६ ॥
वसुभिर्ब्रह्मलोकाख्यं नवभिः शक्रवाहनम् ।
दिग्भिः श्रीधामयोगः स्यादथ षोडशवर्गके ॥ ४७ ॥
भेदकं च भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिः स्यात्कुसुमाख्यकम् ।
चतुर्भिर्नागपुष्पं स्यात् पञ्चभिः कन्दुकाह्वयम् ॥ ४८ ॥
करेलाख्यं भवेत् षड्भिः सप्तभिः कल्पवृक्षकम् ।
अष्टभिश्चन्दनवनं नवभिः पूर्णचन्द्रकम् ॥ ४९ ॥
दिग्भिरुच्चैःश्रवा नाम रुद्रैर्धन्वन्तरिर्भवेत् ।
सूर्यकान्तं भवेत् सूर्यैर्विश्वैः स्याद्विद्रुमाख्यकम् ॥ ५० ॥

शक्रसिंहासनं शक्रैर्गोलोकं तिथिभिर्भवेत् ।
भूपैः श्रीवल्लभाख्यं स्याद् वर्गाख्यभेदैरुदाहृताः ॥ ५१ ॥

स्वोच्चमूलत्रिकोणस्व-भवनाधिपतेस्तथा ।
स्वारूढात् केन्द्रनाथानां वर्गा ग्राह्याः सुधीमता ॥ ५२ ॥

अस्तंगता ग्रहजिता नीचगा दुर्बलास्तथा ।
शयनादिगता दुःस्था ग्रहाः स्युर्योगनाशकाः ॥ ५३ ॥

हे मैत्रेय ! अब मैं वर्गभेदों को बतलाता हूँ, सुनो । षड्वर्ग में स्ववर्ग संयोग से किंशुक आदि संज्ञा होती है । दो वर्गों की स्थिति में किंशुक तीन से व्यञ्जन, चार से चामर, पाँच से छत्र और छः से कुण्डल संज्ञा कहनी चाहिए । सप्तवर्ग में भी इत्यादि स्ववर्गों से उपर्युक्त किंशुक आदि ही समझना चाहिए किन्तु सात स्ववर्गसंयोग से मुकुट नाम होता है । दशवर्ग में स्ववर्ग संयोग से पारिजात आदि संज्ञा होती है । जैसे—दो स्ववर्ग से पारिजात, तीन से उत्तम, चार से गोपुर, पाँच से सिंहासन, छः से पारावत, सात से देवलोक, आठ से ब्रह्मलोक, नौ से शक्रवाहन, और दश से श्रीधाम संज्ञा होती है ।

षोडश वर्ग में—दो (स्ववर्ग) से भेदक तीन से कुसुम, चार से नागपुष्प, पाँच से कन्दुक, छः से केरल, सात से कल्पवृक्ष, आठ से चन्दनवन, नौ से पूर्णचन्द्र, दश से उच्चैःश्रवाः, एग्यारह से धन्वन्तरि, बारह से सूर्यकान्त, तेरह से विद्रुम, चौदह से शक्र-सिंहासन पन्द्रह से गोलोक, सोलह से श्रीवल्लभ, नाम होते हैं । इस तरह वर्गभेद मैंने कहा है । इनमें अपने उच्च, मूलत्रिकोण, स्वराशि के स्वामियों के तथा लग्नपद से केन्द्राधीशों के वर्ग ग्राह्य (शुभ) होते हैं ।

अस्तंगत (सूर्य सान्निध्य से) ग्रहों के द्वारा पराजित, नीचगत, निर्बल, तथा शयनादि दुरवस्थागत ग्रहों के वर्ग अशुभकारक एवं उपर्युक्त योगों के नाशक होते हैं ॥ ४२–५३ ॥

स्पष्टार्थ किंशुकादि सप्तवर्ग संज्ञाचक्र—

२	३	४	५	६	७
किंशुक	व्यञ्जन	चामर	छत्र	कुण्डल	मुकुट

पारिजातादि दश वर्ग संज्ञाचक्र—

२	३	४	५	७	८	९	१०
पारिजात	उत्तम	गोपुर	सिंहासन	पारावत,	देवलोक,	शक्रवाहन,	श्रीधाम

विमर्श—सप्तवर्ग या दशवर्ग का जन्मकुण्डली में महत्त्वपूर्ण स्थान है । इन वर्गों के संयोग से किंशुक पारिजात आदि विशिष्ट योग, तदनुसार शुभ फलों का आदेश सभी अर्वाचीन जातक ग्रन्थों में भी किया गया है । साथ ही ग्रहों के बलाबल

का भी निर्णय इनसे जातककारों ने किया है। सप्तवर्ग को ग्रहों के बल का हेतु कहा गया है—

विलग्न-होरा-द्रेष्काण नवांश-द्वादशांशकाः।
त्रिंशांशकश्च षड्वर्गः शुभकर्मसु शस्यते॥
सप्तांशयुक्तः षड्वर्ग सप्तवर्गोऽभिधीयते।
जातकेषु च सर्वेषु ग्रहाणां बलकारणम्॥

दशवर्ग में यदि दशो वर्ग अपने ही हो जाय तो पराशर के मतानुसार श्रीधाम किसी-किसी जातक में वैशिषिक योग इसे कहा गया है। किन्तु गृह होरा द्रेष्काणादि दशवर्ग स्वकीय तभी सम्भव हैं यदि होरा और त्रिंशांश सभी ग्रहों के हों। होरेश सूर्य और चन्द्रमा ही होते हैं। त्रिंशांशेश सूर्य, चन्द्रमा, के अतिरिक्त ही ग्रह होते हैं। अतः श्रीधाम या वैशिषिक योग की सम्भावना ही असम्भव सी प्रतीत होती है। इसलिए 'वर्गसंयोगे' का आशय 'स्ववर्ग' न कर 'शुभ ग्रहों के वर्ग संयोग में' करना ही उपयुक्त होगा। शुभग्रहों के सभी वर्ग सम्भव हैं।

इति सविमर्श 'सुधा' व्याख्योपेतायां बृहत्पाराशरहोरायां षोडश-
वर्गवर्णनाध्यायः समाप्तः॥ ६॥

अथ वर्गविवेचनाध्यायः॥ ७॥

अथ षोडशवर्गेषु विवृणोमि विवेचनम्।
लग्ने देहस्य विज्ञानं होरायां सम्पदादिकम्॥ १॥

द्रेष्काणे भ्रातृजं सौख्यं तुर्यांशे भाग्यचिन्तनम्।
पुत्रपौत्रादिकानां वै चिन्तनं सप्तमांशके॥ २॥

नवमांशे कलत्राणां दशमांशे महत् पलम्।
द्वादशांशे तथापित्रोश्चिन्तनं षोडशांशके॥ ३॥

सुखासुखस्य विज्ञानं वाहनानां तथैव च।
उपासनाया विज्ञानं साध्यं विंशति भागके॥ ४॥

विद्या या वेद बाह्वंशे भांशे चैव बलाबलम्।
त्रिंशांशके रिष्टफलं खवेदांशे शुभाशुभम्॥ ५॥

अक्षवेदविभागे च षष्ट्यंशेऽखिलमीक्षयेत्।
यत्र कुत्रापि सम्प्राप्तः क्रूरषष्ट्यंशकाधिपः॥ ६॥

तत्र नाशो न सन्देहो मुने ! विधिवचो यथा ।
यत्र कुत्रापि सम्प्राप्तः क्लांशाधिपतिः शुभः ॥ ७ ॥
तत्र वृद्धिश्च पुष्टिश्च गर्गादीनां वचो यथा ।
इतिषोड़शवर्गाणां भेदास्ते प्रतिपादिताः ॥ ८ ॥

अब मैं षोडश वर्गों का विशेष विवेचन करता हूँ । लग्न से शरीर का, होरा से सम्पत्ति आदि का, द्रेष्काण सें भातृज सौख्य का, चतुर्थांश से भाग्य का, सप्तमांश से पुत्र-पौत्र आदि का, नवमांश से पत्नी का, दशमांश मे किसी विशिष्ट फल का, द्वादशांश से माता-पिता का, षोडशांश से हाथी घोड़ा आदि वाहनों के सुख-दुःख का, विंशांश से उपासना का, चतुर्विंशांस से विद्या का, भांश (सप्तविंशांश) से बलाबल का, त्रिंशांश से अरिष्टों के फल का खवेहीवेदांश से शुभ और अशुभ फलों का, अक्षवेदांश, तथा षष्ट्यंश से समस्त वस्तुओं का विवेचन करना चाहिये । जिस भाव में पाप षष्ट्यंशाधिप हों उस भाव का निःसन्देह नाश होता है और जिसमें षोडशांशाधीश शुभग्रह हों उस भाव की सम्पुष्टि या वृद्धि होती है । इस प्रकार मैंने षोडशवर्ग भेदों का विवेचन किया है ॥ १–८ ॥

उदयादिषु भावेषु खटेस्य भवनेषु वा ।
विंशोपकबलं वीक्ष्य शुभाशुभफलं दिशेत् ॥ ९
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विंशोपकबलं द्विज ।
यस्य विज्ञानमात्रेण विपाकं दृष्टिगोचरम् ॥ १०
विंशोपकबलं वीक्ष्यं सूर्यादीनां खचारिणाम् ।
स्वगृहोच्चे बलं पूर्णं शून्यं तत्सप्तमस्थिते ॥ ११ ॥
गृहस्थितिवशाज्ज्ञेयं द्विराश्यधिपतेस्तथा ।
मध्येऽनुपाततो ज्ञेयमोजयुग्मर्क्षभेदतः ॥ १२ ॥

लग्न-आदि द्वादश भावों, तथा स्पष्ट ग्रहों के राश्यादि में विंशोपक बल देखकर शुभाशुभ का निर्देश करना चाहिये ।

हे मैत्रेय ! अब मैं विंशोपक बल बतलाता हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से शुभाशुभ परिणाम दृष्टिगोचर होने लगता है । सूर्यादि ग्रहों का विंशोपक बल इस प्रकार देखना चाहिए—

अपने घर तथा उच्च में स्थित ग्रह का बल पूर्ण, और उच्च से सप्तम, अर्थात् नीच में स्थित उसका बल शून्य होता है । उच्च नीच के मध्य में स्थित होने पर अनुपात (त्रैराशिक) से बल का ज्ञान करना चाहिए । द्विराश्यधिप भौमादिक ग्रहों का बल अपने घर-विषम एवं सम राशि में स्थिति के अनुसार होता है ॥ ९–१२ ॥

विमर्शः—

उच्च स्थान में पूर्ण बल, नीच में शून्य, मध्य में अनुपात से बल का ज्ञान करना युक्तियुक्त ही है। उच्च नीच के मध्य में मध्यम बल होना भी स्वाभाविक है। उच्च से नीच तक क्रमशः बल का ह्रास एवं नीच से आगे उच्च तक क्रमशः बल की वृद्धि को ध्यान में रखकर ही इष्ट स्थान में अनुपात से बल का ज्ञान करना चाहिये।

उपर्युक्त १२ वें श्लोक में पूर्व प्रकाशित पुस्तकों में 'ग्रहस्थितिवशाज्ज्ञेयं द्विराश्यधिपतिस्तथा' पाठ है। यह पाठ प्रकरण से असम्बद्ध सा प्रतीत होता है। अतः मैंने उपर्युक्त पाठान्तर कर दिया है। भौमादि पाँच ग्रह दो दो राशियों (एक सम दूसरा विषम) के अधिप हैं। विषम राशि पुरुष राशि सम राशि स्त्री राशि है। पुरुष स्त्री राशि में स्थिति से बल में पार्थक्य होता है यह बात श्लोकान्त में "ओज युग्मर्क्षभेदतः कहकर महर्षि पाराशर ने स्पष्ट कर दी है। अतः परिवर्तित पाठ ही प्रकरण सम्बद्ध जँचता है।

सूर्यहोराफलं दद्युर्जीवार्कवसुधात्मजाः।
चन्द्रास्फुजिदर्कपुत्राश्चन्द्रहोराफलप्रदाः ॥ १३ ॥
फलद्वयं बुधो दद्यात् समे चेन्दोस्तदन्यके।
रवेः फलं स्वहोरादौ फलहीनं विरामके ॥ १४ ॥
मध्येऽनुपातात् सर्वत्र द्रेष्काणेऽपि विचिन्तयेत्।
गृहवत्तुर्यभागेऽपि नवांशादावपि स्वयम् ॥ १५ ॥
सूर्यः कुजफलं धत्ते भार्गवस्य निशापतिः।
त्रिंशांशके विचिन्त्यैवमत्रापि गृहवत् स्मृतम् ॥ १६ ॥

गुरु, सूर्य, भौम ये तीनों सूर्य होरा का फल, और चन्द्र, शुक्र शनैश्चर ये चन्द्र होरा का फल देते हैं। बुध, सूर्य चन्द्र दोनों के होरा फल देता है। सम राशियों में चन्द्रहोरा फल और विषम राशियों में सूर्यहोराफल विशेषतः होता है। होरा द्रेष्काण—आदि वर्गों के मध्य भाग में पूर्ण फल, अन्त में शून्य, और मध्यवर्ती किसी स्थान में अनुपात से फल समझना चाहिये। इसी तरह द्रेष्काण, चतुर्थांश, नवमांश, आदि सभी वर्गोंमें फल समझें। त्रिंशांश में रवि-मङ्गल का, चन्द्रमा-शुक्र का फल देते हैं। यहाँ (त्रिंशांश में) भी गृहवत् फल समझना चाहिये। १३–१६

षड्वर्ग—

लग्नहोराद्दकाणाङ्क-भागसूर्यांशका इति।
त्रिंशांशसहिताश्चैते षड्वर्गाः, त्रिश्वकाः क्रमात् ॥ १७ ॥
रस नेत्राब्धिपञ्चाश्विभूमयः—

षड्वर्ग में लग्न, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये छे परिगणित होते हैं। इनका विंशोपक बल क्रमशः ६, २, ४, ५, २, १ ये हैं॥ १७॥

सप्तवर्ग—

सप्तवर्ग के ।
सप्तसप्तमांशके तत्र विश्वकाः पञ्च लोचनम् ॥ १८ ॥
त्रयः सार्धं द्वयं सार्धवेदा द्वौ रात्रिनायकः ।
स्थूलं फलं च संस्थाप्य तत् सूक्ष्मं च ततस्ततः ॥ १९ ॥

सप्तमांश सहित षड्वर्ग सप्तवर्ग है । सप्तवर्ग में विंशोपक बल क्रमशः ५, २, ३, २½, ४½, २, १ ये हैं । इन बलों को स्थूल (वर्ग के मध्य स्थानीय) समझ कर तत्तस्थानीय सूक्ष्म फल अनुपात से जानना चाहिए ॥ १८–१९ ॥

दशवर्गः—

दशवर्गादिगंशाढ्याः कलांशाः षष्टिभागकाः ।
त्रयं क्षेत्रस्य विज्ञेयाः पञ्च-षष्ट्यंशकस्य च ॥ २० ॥
सार्धैकभागाः शेषाणां विश्वकाः परिकीर्तिताः ।

दिगंश, षोडशांश, षष्ट्यंश-युक्त-सप्तवर्ग दशवर्ग होते हैं । (लग्न, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, सप्तमांश, दशमांश, षोडशांश, षष्ट्यंश, ये दशवर्ग कहलाते हैं ।) इनमें क्षेत्र (लग्न) का विंशोपक बल ३, ३, षष्ट्यंश का ५, शेष होरा द्रेष्काण आदि आठो वर्ग में १½, १½, होते हैं । २०–२०½ ।

षोडशवर्ग—

अथ वक्ष्ये विशेषेण विश्वकां मम सम्मताम् ॥ २१ ॥
क्रमात् षोडशवर्गाणां क्षेत्रादीनां पृथक् पृथक् ।
होरा-त्रिंशांश-दृक्काणे कुचन्द्र शशिनः क्रमात् ॥ २२ ॥
कलांशस्य द्वयं ज्ञेयं त्रयं नन्दांशकस्य च ।
क्षेत्रे सार्धत्रयं, वेदाः स्मृताः षष्ट्यंशकस्य हि ॥ २३ ॥
अर्धमर्धं च शेषाणां ह्येतत् स्वीयमुदाहृतम् ।
पूर्णं विश्वाबलं विंशोधृतिः स्यादधिमित्रके ॥ २४ ॥
मित्रे पञ्चदश प्रोक्तं समे दश प्रकीर्तितम् ।
शत्रौ सप्ताधिशत्रौ च पञ्च विश्वाबलं भवेत् ॥ २५ ॥

अब मैं षोडशवर्गीय क्षेत्र (लग्न) आदि के विंशोपक बल अलग २ क्रमशः बताता हूँ । होरा, त्रिंशांश, दृकाण में क्रमशः १, १, १, बल, षोडशांश में २, नवमांश में ३, क्षेत्र (गृह) में ३½, षष्ट्यंश में ४, शेष ९ वर्गों में (प्रत्येक में) आधा आधा बल होता है । इस प्रकार षोडशवर्गीय समस्त (पूर्ण) बल, स्ववर्ग में २०, अधि-

मित्रवर्ग में १८, मित्र में १५, सम में १०, शत्रु में ७, अधिशत्रु में ५, होते हैं। ॥ २१–२५ ॥

स्फुटविंशोपक-बल—

वर्गविश्वाः स्वविश्वघ्नाः पुनर्विंशतिभाजिताः ।
विंशोपकं फलार्हं तत्पञ्चोनं फलदं नहि ॥ २६ ॥
तदूर्ध्वं स्वल्पफलदं दशोर्ध्वं मध्यमं स्मृतम् ।
तिथ्यूर्ध्वं पूर्णफलदं बोध्यं सर्वं खचारिणाम् ॥ २७ ॥

अधिमित्र आदि में कथित विंशोपक से वर्गविश्वा को गुणा कर बीस से भाग लें तो तत्तद्वर्ग में फलोपयुक्त स्पष्ट विंशोपक बल हो जायगा। ५ से कम होने पर वह फलप्रद नहीं होता है। ५ से अधिक और १० तक हो तो स्वल्प फलदायक, १० से अधिक और १५ तक रहने पर मध्यम फलप्रद, और १५ से अधिक २० तक रहने पर मध्यम फलप्रद होता है ॥ २६–२७ ॥

उदयास्तविंशोपक—

अथान्यदपि वक्ष्यामि मैत्रेय ! त्वं विधारय ।
खेटाः पूर्णं फलं दद्युः सूर्यात्सप्तमके स्थिताः ॥ २८ ॥
फलाभावं विजानीयात् समे सूर्यनभश्चरे ।
मध्येऽनुपातात् सर्वत्र ह्युदयास्त-विंशोपकाः ॥ २९ ॥

हे मैत्रेय ! अब मैं और भी बात बतलाता हूँ, तुम सुनो। सूर्य से सप्तम स्थान में स्थित ग्रह पूर्ण फल देता है। सूर्य के समान ग्रह निष्फल हुआ करता है। मध्य (सूर्य तथा उससे सप्तम के बीच) में विद्यमान ग्रह आनुपातिक फल देता है। अर्थात् ६ राशि अन्तरित होने से यदि पूर्ण फल, तो पद॰॰स्यप इष्टराशि के अन्तरित होने पर क्या ? इसी अनुपात से फल जानना चाहिये। यह उदयास्त विंशोपक सब जगह विचारणीय है ॥ २८–२९ ॥

वर्गविश्वाबलं ज्ञेयं फलमस्य द्विजर्षभः !
यच्च यत्र फलं बुद्ध्वा तत्फलं परिकीर्तितम् ॥ ३० ॥
वर्गविश्वाबलं चादावुदयास्त मतः परम् ।
पूर्णं पूर्णेऽतिपूर्णं स्यात् सर्वदैवं विचिन्तयेत् ॥ ३१ ॥
हीनं हीनेऽतिहीनं स्यात् स्वल्पेऽल्पात्यल्पकं स्मृतम् ।
मध्यं मध्येऽतिमध्यं स्याद् यावदस्य दशास्थितिः ॥३२॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! ग्रहों का वर्गविंशोपक जानकर जहाँ जो फल हो, उसका निर्देश करना चाहिये। प्रथमतः वर्ग विंशोपक ततः पर उदयास्त का भी विचार करें।

पूर्ण विंशोपक में पूर्ण, अतिपूर्ण, मध्य में मध्य, तथा अतिमध्य, हीन में हीन, तथा अतिहीन, और स्वल्प में भी स्वल्प तथा अति स्वल्प ये दो दो भेद होते हैं। तात्पर्य यह है कि पूर्ण, मध्य, हीन, स्वल्प, भेदक विंशोपक में भी उपर्युक्त दो दो भेद होते हैं। जैसे पूर्ण में १५ से १७½, तथा १७½ से २० तक, मध्य में १० से १२½, तथा १२½ से १५ तक, हीन में २½ से ५ तथा ० से २½ तक, एवं स्वल्प में ७½ से १० तथा ५ से ७½ तक। विंशोपक बलानुसार ही ग्रहों की समस्त दशाओं का फल भी समझना चाहिए ॥ ३०-३२ ॥

केन्द्रादि-संज्ञा—

अथान्यदपि वक्ष्यामि मैत्रेय शृणु सुव्रत ।
लग्नतुर्यास्तवियतां केन्द्रसंज्ञा विशेषतः ॥ ३३ ॥
द्विपञ्चरन्ध्रलाभानां ज्ञेया परफणाभिधा ।
त्रिषड्भाग्यव्ययानां स्यादापोक्लिममिति द्विज ॥ ३४ ॥
लग्नात् पञ्चमभाग्यस्य कोणसंज्ञा विधीयते ।
षष्ठाष्टव्ययभावास्तु दुःसंज्ञास्त्रिकसंज्ञकाः ॥ ३५ ॥
चतुरस्रं तुर्यरन्ध्रं कथयन्ति द्विजोत्तम ।
स्वस्थादुपचयर्क्षाणि त्रिषडायाम्बराणि हि ॥ ३६ ॥

हे सुव्रत मैत्रेय ! और भी बात बतलाता हूँ, सुनो। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम एवं दशम भावों की संज्ञा केन्द्र है। द्वितीय, पञ्चम, अष्टम तथा एकादश की परफण, शेष तृतीय, षष्ठ, नवम, एवं द्वादश की संज्ञा आपोक्लिम है। लग्न से पञ्चम तथा नवम, इन दोनों का बोध कोण संज्ञा से होता है। षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश, इन तीनों भावों की संज्ञा दुष्ट एवं त्रिक है। चतुर्थ एवं अष्टम को चतुरस्र शब्द से, तृतीय, षष्ठ, दशम तथा एकादश को उपचय (वृद्धि) संज्ञा से कहते हैं ॥ ३३-३६ ॥

तन्वादिभाव—

तनुर्धनं च सहजो बन्धुपुत्रारयस्तथा ।
युवतीरन्ध्रधर्माख्य-कर्मलाभव्ययाः क्रमात् ॥ ३७ ॥
संक्षेपेणैतदुदित-मन्यद् बुद्ध्यनुसारतः ।
किञ्चिद् विशेषं वक्ष्यामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ॥ ३८ ॥

तनु धन, सहज, बन्धु, पुत्र, अरि, जाया, रन्ध्र, धर्म, कर्म, लाभ, व्यय ये लग्नादि द्वादश भाव हैं। अतः इन्हीं भावों से इनका विचार किया जाना समुचित है। यह संक्षेपतः मैंने कहा है, इससे अतिरिक्त भी स्वबुद्ध्यनुसार समझना चाहिये। अब मैं ब्रह्मा के मुख से सुनी हुई विशेष बात बताऊँगा (सुनो) ॥ ३७-३८ ॥

नवमेऽपि पितुर्ज्ञानं सूर्याच्च नवमेऽथवा।
यत् किञ्चिद् दशमे लाभे तत्सूर्याद् दशमे शिवे ॥ ३९ ॥
तुर्ये तनौ धने लाभे भाग्ये यच्चिन्तनं च तत्।
चन्द्रात्तुर्ये तनौ लाभे भाग्ये तच्चिन्तयेद् ध्रुवम् ॥ ४० ॥
लग्नाद् दुश्चिक्यभवने यत्कुजाद् विक्रमेऽखिलम्।
विचार्यं षष्ठभावस्य बुधात् षष्ठे विलोकयेत् ॥ ४१ ॥
तनयस्य गुरोः पुत्रे, जायायाः सप्तमे भृगोः।
अष्टमस्य व्ययस्यापि मन्दान्मृत्यौ व्यये तथा ॥ ४२ ॥
यद्भावाद्यत् फलं चिन्त्यं तदीशात्तत्फलं विदुः।
ज्ञेयं तस्य फलं तद्धि तत्र चिन्त्यं शुभाशुभम् ॥ ४३ ॥

लग्न अथवा सूर्य से नवम भाव पर से पितृ-सुख दुःखादियों का विचार करना चाहिये। जिन विषयों का विचार लग्न से दशम एवं एकादश स्थान से किया जाता है, उनका विवेचन सूर्य के दशमैकादश स्थान से भी करना चाहिये। लग्न, चतुर्थ, धन भाग्य तथा लाभ भावों से विचारणीय विषयों का विचार चन्द्रमा से भी प्रथम, चतुर्थ, द्वितीय, नवम, एकादश स्थानों से करना समुचित है। लग्न से तृतीय स्थान से विचारणीय विषयों का विचार, मङ्गल से तृतीय स्थान से भी करना चाहिये। षष्ठभाव से विचारणीय (रोग, शत्रु, मातुल) विचार बुध से षष्ठ स्थान से भी उपयुक्त है। पुत्र का विचार गुरु से पञ्चम भाव, स्त्री का शुक्र से सप्तम भाव, एवं मृत्यु, तथा आयु का विचार शनि से अष्टम भाव से भी किया जाना चाहिये। व्यय का विचार शनि से व्यय स्थान से भी होता है। जिस भाव से जो विचारणीय है, भावेश से भी उसका विचार करना चाहिये ॥ ३९–४३ ॥

इति सविमर्श 'सुधा' व्याख्योपेतायां बृहत्पाराशर होरायां
वर्गविवेचनाध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथ दृष्टिभेदवर्णनाध्यायः ॥ ८ ॥

पराशर उवाच—

अथ मेषादिराशीनां द्वादशानां पृथक् पृथक्।
दृष्टिभेदं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं द्विजसत्तम ॥ १ ॥
राशयोऽभिमुखं विप्र ! प्रपश्यन्ति च पार्श्वभे।
चरः स्थिरान् यथा पश्येत् स्थिरोऽपिच तथा चरान् ॥ २ ॥

अनन्तिकगतानेवं ग्रहास्तत्र गता अपि।
द्विस्वभावो द्विभान् किन्तु नात्मानमवलोकते ॥ ३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! (मैत्रेय !) अब मैं मेषादि द्वादश राशियों का दृष्टिभेद अलग २ बताऊँगा, सुनो।

मेषादि सभी राशियाँ अपने सम्मुखस्थ तथा पार्श्वगत राशियों को देखती हैं। चर राशि समीपवर्त्ती स्थिर राशि को छोड़ अन्य सभी तीन स्थिर राशियों को, एवं स्थिर राशि अपने समीपवर्त्ती चर राशि को छोड़ अन्य सभी चर राशियों को देखती है। द्विस्वभाव राशियाँ अपने को छोड़ अन्य सभी द्विस्वभाव राशियों को देखती हैं। ग्रह भी तत्तद्राशि स्थित ग्रहों को देखते हैं।

जैमिनि सूत्रकार ने भी यही बात "अभिपश्यन्त्यृक्षाणि", "पार्श्वभे च" "तन्निष्ठाश्च तद्वत्" इन सूत्रों में कही है। दृष्टिचक्र देखने से पूर्णतः स्पष्टीकरण हो जायगा ॥ १–३ ॥

निरीक्षन्ते चरस्थास्तु स्थिरस्थान् द्युचरांस्तथा।
एवं स्थिरगताश्चापि चरस्थान् नान्तिकस्थिताम् ॥ ४ ॥
द्विस्वभावगताः खेटाः प्रपश्यन्ति द्विभस्थितान्।
ग्रहान् समस्तानपि तु नात्मना सह संस्थितान् ॥ ५ ॥

उपर्युक्त तृतीयश्लोकस्थ "ग्रहास्तत्र गता अपि" का स्पष्टीकरण इन दोनों श्लोकों में किया गया है।

चरराशिस्थ ग्रह निकटस्थ स्थिरराशिस्थित ग्रहों को छोड़ अन्य सभी स्थिरराशिगत ग्रहों को, इसी तरह स्थिरराशिगत ग्रह निकटवर्त्ती चर राशि में विद्यमान ग्रहों को छोड़, अन्य चरराशिस्थ ग्रहों को और द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह अपने सहचरों को छोड़ अन्य सभी द्विस्वभाव राशिगत ग्रहों को देखते हैं ॥ ४–५ ॥

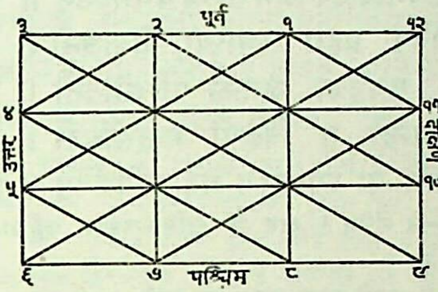
दृष्टिचक्रन्यास—

दृष्टिचक्रस्य विन्यासं वक्ष्येऽथ ब्रह्मणोदितम्।
विज्ञानमात्रतो यस्य दृष्टिभेदः प्रकाश्यते ॥ ६ ॥
प्राच्यामजवृषौ देयौ कर्कसिंहावुदग्दिशि।
प्रतीच्यां क्रमतोऽवाच्यां तुलाली नक्र कुम्भकौ ॥ ७ ॥
ईशाने मिथुनं कोणे कन्यां वायव्यसंज्ञके।
धनुर्विलिख्य नैर्ऋत्यामाग्नेय्यां विलिखेज्झषम् ॥ ८ ॥

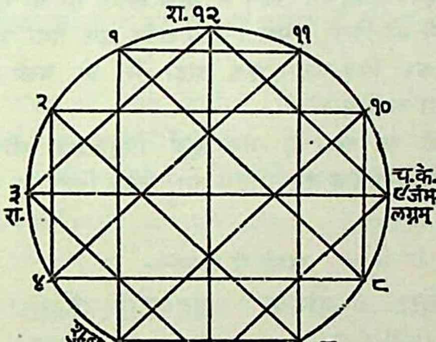
चतुष्कोणाकारचक्रं विन्यस्यैवं दृशं दिशेत् ।
वर्तुलाकारतो वापि दृष्टेः कार्या विचारणा ॥ ९ ॥

अब मैं ब्रह्माजी द्वारा कथित दृष्टि-चक्रन्यास कहूँगा, जिसके ज्ञान मात्र से राशि एवं ग्रहों की दृष्टि प्रस्फुट हो जाती है। चतुष्कोणाकार चक्र लिखकर उसकी पूर्व दिशा में मेष तथा वृष को, उत्तर दिशा में कर्क तथा सिंह को, पश्चिम दिशा में तुला

दृष्टिचक्र (चतुष्कोणाकार)



वर्तुलाकार दृष्टिचक्र



एवं वृश्चिक को, और दक्षिण दिशा में मकर तथा कुम्भ को लिखें। अवशिष्ट मिथुन, कन्या, धनु मीन (द्विस्वभाव) राशियों को क्रमशः ईशान, वायव्य, नैर्ऋति, तथा आग्नेय कोणों में रक्खें। इस प्रकार चतुष्कोणाकार चक्र या वृत्ताकार चक्र का निर्माण कर दृष्टि का विवेचन करें ॥ ६–९ ॥

इति सविमर्श सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
दृष्टिभेदवर्णनाध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

अथ सूतिकाध्यायः ॥ ९ ॥

पराशर उवाच—

अथाहं सूतिकाध्यायं वक्ष्यामि शृणु सुव्रत ! ।
पुरा प्रसङ्गवशतो ब्रह्मणा कथितं यथा ॥ १ ॥
यन्त्रैः स्पष्टतरो वेद्यो जन्मकालस्तथा पुनः ।
साध्याः स्पष्टखगाश्चैवं लग्नं साध्यं यथोदितम् ॥ २ ॥
लग्नद्वादशभावेषु ग्रहाः स्थाप्या, दिवाजनौ ।
सूर्यो रात्रौ सूर्यपुत्रो जनकौ परिकीर्तितौ ॥ ३ ॥
तथैव सितचन्द्रौ तु विज्ञेयौ मातृसंज्ञितौ ।
तयोर्मध्ये वली यः स्यात्तस्य गेहे जनिर्भवेत् ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं सूतिकाध्याय कहूँगा जिसे ब्रह्माजी ने प्रसंगवश मुझसे कहा था ।

सर्व प्रथम यन्त्रों के सहारे जन्म समय का सही ज्ञान कर तात्कालिक स्पष्टग्रह तथा लग्न का साधन करें । तात्कालिक लग्नवश निष्पन्न जन्माङ्ग चक्र में सभी ग्रहों की स्थापना भी कर देनी चाहिये । दिन में जन्म समय हो तो सूर्य को और रात्रि में जन्मसमय हो तो शनि को पिता समझें । इसी तरह शुक्र तथा चन्द्रमा को दिन तथा रात्रि में माता समझ कर पितृ-मातृ-संज्ञक ग्रहों में जो बली हो उसी के घर में जातक का जन्म कहना चाहिए ।

जैसे दिन में किसी का जन्म है, अतः सूर्य पितृसंज्ञक और शुक्र मातृसंज्ञक, हुए । इन दोनों के वलाबल देख कर जातक का जन्म पिता या माता के घर कहना चाहिए ॥ १–४ ॥

रास्ते में जन्म—

नीचराशिगताः सौम्या ग्रहदृष्टिविवर्जिताः ।
चन्द्रो यदि भवेल्लग्ने पथि जन्म विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥

शुभ ग्रह नीच राशिगत होकर किसी भी ग्रह से दृष्ट नहीं हों, और चन्द्रमा लग्नगत हों तो मार्ग में ही बच्चे का जन्म कहना चाहिये ॥ ५ ॥

सूतिकागृह में प्रकाश ज्ञान—

सबलो भौमदृष्टश्च स्वक्षेत्रादिषु संस्थितः ।
सूर्यो यदा तदा ज्ञेयं बहुदीपान्वितं गृहम् ॥ ६ ॥
जलभांशगतश्चन्द्रश्चतुर्थे भवने भवेत् ।
युक्तो मन्देन वा दृष्टोऽन्धकारे जायते जनिः ॥ ७ ॥

सबल सूर्य अपने घर अथवा उच्च में मङ्गल से देखे जाते हों तो सूतिकागृह अनेक दीपों से युक्त (सप्रकाश) रहे। यदि जलचर राशिगत चन्द्र चतुर्थ स्थान में शनि से युक्त अथवा दृष्ट हों तो अन्धेरे में ही बच्चे का जन्म कहना चाहिये। सारावलीकार ने भी कहा है—"बलवति सूर्ये दृष्टे बहुप्रदीपान् वदेत् कुपुत्रेण" ॥ ६-७ ॥

दीपादिज्ञान—

यस्मिन् भागे भवेत्सूर्यस्तत्र दीपं वदेत् सुधीः।
लग्नाद्वर्त्तिस्तथा चन्द्रात्तैलं वाच्यं मनीषिभिः ॥ ८ ॥
चरेऽर्के चञ्चलो दीपः स्थिरर्क्षे तु स्थिरो भवेत्।
द्विभे स्थितिर्द्वयोर्ज्ञेया सूर्यर्क्षवशतो बुधैः ॥ ९ ॥

जिस भाग में सूर्य अवस्थित हों घर के उसी भाग में दीप की स्थिति कहनी चाहिये। लग्न से वर्त्ती, और चन्द्रमा से तेल का ज्ञान करें। जन्म समय में चर राशि में सूर्य रहें तो दीप चञ्चल (दीपक लेकर कोई इधर उधर करे), स्थिर राशि में हों तो दीपक स्थिर, और द्विस्वभाव राशिगत सूर्य हों तो दीपक कभी स्थिर और कभी चञ्चल कहना चाहिये।

विमर्श—"यस्मिन् भागे स्थितः सूर्यः" का आशय 'सूर्य जिस राशि में स्थित हों वह राशि जिस दिशा का हो, घर के उसी भाग में दीपक कहें' किसी ने यही कहा है।

सारावलीकार ने "घर को बारह भागों में विभक्त कर मेषादि द्वादश राशियों को स्थापित करें। सूर्य जिस राशि में रहें उस राशि का विभाग घर में जहाँ पड़े वहीं दीपक की स्थिति कहनी चाहिये।—जैसा कि सारावली में है—

"द्वादशभागविभक्ते वासगृहेऽवस्थिते सहस्रांशौ।
दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले ॥"

लग्न से वत्ती के ज्ञान का तात्पर्य यह है कि लग्न के आरम्भ में ही जन्म हुआ हो तो जन्मकालासन्न में ही दीपक में बत्ती दी गई हो, ऐसा समझना चाहिए। लग्नान्त में जन्म होने पर बत्ती की भी अन्तिम अवस्था, और लग्न के मध्य में जन्म होने पर अनुपात से बत्ती का ज्ञान करना चाहिये। चन्द्रमा से तैल का बोध इसी प्रकार अर्थात् राश्यारम्भ में यदि जन्मकालिक चन्द्रमा हों तो तैल-पूर्ण दीपक, राशि मध्य में रहने पर अनुपात-सिद्ध तैल, राशि के अन्त में वह रहे तो दीपक में तेल का कुछ ही शेष कहें।

किसी का कथन है कि चन्द्रमा पूर्ण बली हों तो दीपक में पूर्ण तैल, क्षीण बली हों तो क्षीण तैल, कहना चाहिये।

वराहमिहिर ने भी कहा है—"स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्त्तिर्दीपोऽर्कयुक्तर्क्षवशाच्चराद्यः" ॥ ८-९ ॥

जन्मज्ञान—

शीर्षाच्छीर्षोदये वाच्यः पादात् पृष्ठोदये मतः ।
करात्तदुभये ज्ञेयः प्रसवः सर्वदेहिनाम् ॥ १० ॥

जन्म काल में लग्न यदि शीर्षोदय राशि का हो तो बच्चे का जन्म शीर्ष से, पृष्ठोदय राशि में पैर से, एवं उभयोदय राशि के लग्न होने पर हाथ से निष्क्रमणारम्भ कहना चाहिये ।

शीर्षोदय, पृष्ठोदय, उभयोदय राशियाँ जातक ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से अभिहित हैं—वराहमिहिर ने भी कहा है—"गोजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः, पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव ।" आदि ॥ ११ ॥

सूतिका गृह द्वार ज्ञान—

केन्द्रस्थग्रहयोगाद्वा लग्नर्क्षाद्वा बलाधिकात् ।
द्वारं वाच्यं तु गेहस्य दिगीशक्रमतः सदा ॥ ११ ॥

केन्द्र में स्थित ग्रहयोग वश सूतिका घर का द्वार कहना चाहिये । यदि अनेक ग्रह हों तो बलाधिक ग्रह की दिशा में द्वार कहें । ग्रहों की दिशा "प्राच्यादीशा रवि-सित कुजं-राहु-यमेन्दु सौम्यवाक्पतयः" इसी के अनुसार समझना चाहिए । यदि केन्द्र में कोई ग्रह नहीं हो तो लग्न राशि की दिशा में द्वार कहें ।

वराह मिहिर ने कहा है—"द्वारञ्च तद् वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्य-समन्वितैर्वा" मणित्थ ने भी कहा है कि लग्न में जिस राशि का द्वादशांश हो उस राशि की दिशा में द्वार कहें—

"लग्ने यो द्विरशांशस्तदभिमुखं सूतिकागृहे द्वारम्" ।

उपसूतिका ज्ञान—

लग्नचन्द्रान्तरालस्थग्रहैः स्युरुपसूतिकाः ।
दृश्यादृश्यविभागाभ्यां बहिरन्तश्च ताः स्मृताः ॥ १२ ॥
स्वर्क्षादौ द्विगुणा ज्ञेया वक्रोच्चे त्रिगुणा मताः ।
यत्रोभयस्य सम्प्राप्तिस्त्रैगुण्यं तत्र वै सकृत् ॥ १३ ॥
पापैस्तु विधवा ज्ञेयाः शोभनैः सधवाः स्मृताः ।

लग्न चन्द्रमा के बीच विद्यमान ग्रहों की संख्या तुल्य उपसूतिकाएँ (जन्म समय सूतिका के साथ रहनेवाली स्त्रियाँ) कहनी चाहिए । दृश्य तथा अदृश्य विभागों के अनुसार सूतिका गृह के बाहर एवं भीतर उपसूतिकाओं का निर्देश करें । दृश्य भाग (सप्तम भाव के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश तक) गत ग्रह संख्या तुल्य बाहर, तथा अदृश्य भाग (लग्न के भोग्यांश से सप्तम भाव के भुक्तांश तक) स्थित ग्रहसंख्या के समान घर के भीतर उपसूतिकाएँ कहें । अपने गृह, नवांश, द्रेष्काण में स्थित

ग्रह की संख्या को द्विगुणित अपने उच्च या वक्रत्व को प्राप्त ग्रह संख्या को द्विगुणित करके उपसूतिकाओं का निर्देश करें। यदि ग्रहस्थिति वश द्वैगुण्य, तथा त्रैगुण्य दोनों प्राप्त हों, अर्थात् यदि कोई ग्रह स्वगृहादि तथा वक्रत्वादि दोनों स्थिति युक्त हों तो एक बार त्रैगुण्य मात्र करना चाहिए। लग्न तथा चन्द्रमा के बीच स्थित पाप ग्रहों की संख्या के समान विधवाएँ तथा शुभ ग्रहों की संख्या के बराबर सधवाएँ कहनी चाहिए।

विमर्श—वराहमिहिर ने भी कहा है—

लग्नचन्द्रान्तरगतैर्ग्रहैः स्युरुपसूतिकाः।
वहिरन्तश्च चक्रार्धे दृश्यादृश्येऽन्यथा परे॥

दृश्यादृश्य चक्रार्ध के सम्बन्ध में कुछ आचार्यों ने उपर्युक्त दृश्यादृश्य को अदृश्य दृश्य के रूप में कहा है। दृश्यभाग (सप्तम भाव के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश तक) को अदृश्य भाग एवं उपरिलिखित अदृश्य भाग को दृश्य भाग कहा है। वराहमिहिर की भी सम्मति उपर्युक्त लेखानुसार ही है। क्योंकि लघुजातक में उन्होंने "शशिलग्नान्तरसंस्था ग्रहतुल्याः सूतिकाश्च वक्तव्याः। उदगर्धेऽभ्यन्तरगा बाह्याश्चक्रस्य दृश्यर्धे" कहा है। वस्तुतः दृश्य चक्रार्ध सप्तम भाव के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश तक का ही प्रदेश, क्षितिज से उपरिगत होने के कारण, होना चाहिये। लग्न के भोग्यांश से सप्तम भाव के भुक्तांश तक का प्रदेश, जो कि क्षितिज से अधोगत रहने के कारण अदृश्य है ही, अदृश्य चक्रार्ध के नाम से वाच्य है। १२-१३½।

चिह्नज्ञान—

कालाङ्गे यत्र भौमार्कौ तत्र ज्ञेयं तिलादिकम्॥ १४॥
शनिराहू स्थितौ यत्र तत्र श्यामलमादिशेत्।
लग्ने चन्द्रारशुक्राश्चेत्चिह्नं शिरसि संस्थितम्॥ १५॥
शुक्रेऽस्ते निधने राहुः वामकर्णेऽथ मस्तके।
गुरुः शुक्रोऽथवा भौमो यदि द्यूने व्यवस्थितः॥ १६॥
तदा चिह्नं भवेन्मूर्ध्नि ग्रहवर्णाऽनुसारतः।
चन्द्रो वा क्षितिजो लग्नेऽथवा शुक्रो भवेद्यदि॥ १७॥
द्वादशाब्दे तदा चिह्नं शीर्षे स्यान्नात्र संशयः।
त्रिकोणस्थार्किभौमाभ्यां गुदे लिंगेऽपि वा दिशेत्॥ १८॥
सुखे लग्नेऽथवा मन्दस्त्रिकोणे भार्गवो यदि।
मृत्युस्थौ बुधदेवेज्यौ जठरौ तत् समादिशेत्॥ १९॥
शुक्रार्कराहवश्चेत् स्युः सुखे लग्नेऽथवा कुजे।

तदा चिह्नं भवेन्नूनं वामपादे विशेषतः ॥ २० ॥
शुक्रो लग्नेऽष्टमे राहुश्चिह्नं वामश्रुतौ शिशोः ।
जीवो लग्ने मदे राहुस्तदा वामभुजे वदेत् ॥ २१ ॥
अष्टमे रजनीनाथो-व्ययस्थौ गुरुभार्गवौ ।
मदस्थौ मन्दमाहेयौ तदा चिह्नं भुजद्वये ॥ २२ ॥
शुक्रो धनेऽथ कर्मस्थौ सैंहिकेयशनैश्चरौ ।
अष्टमे दिवसाधीशो नाभौ चिह्नं तदा दिशेत् ॥ २३ ॥
शुक्रभौमौ तृतीयस्थौ द्वितीये रजनीपतिः ।
दशमे भवने मन्दश्चिह्नं कटिगतं भवेत् ॥ २४ ॥
त्रिषडाये यदा सौम्यो व्यये वाचस्पतिर्भवेत् ।
सहजे च भवेत् काव्यस्तदा चिह्नं हृदि स्थितम् ॥ २५ ॥

काल पुरुष के जिस अङ्ग में सूर्य, भौम हों, तिल आदि का चिह्न वहीं कहना चाहिए। शनि, राहु जहाँ स्थित हों वहाँ श्याम (लहसुन) चिह्न कहें। (काल पुरुष के अङ्गों का निर्देश वराहमिहिर ने बृहज्जातक में 'कालाङ्गानि वराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोडवासोभृत' इत्यादि श्लोक में किया है।)

लग्न में यदि चन्द्रमा, मङ्गल, शुक्र, हों तो शिर में, सप्तम में शुक्र, और अष्टम में राहु रहें तो बायें कान या मस्तक में चिह्न कहना चाहिये। गुरु, शुक्र या मङ्गल सप्तम में हों तो भी शीर्ष में ग्रहवर्ण के अनुसार चिह्न बतलायें, चन्द्रमा, मङ्गल या शुक्र लग्न में हों, तो बारह वर्ष में शीर्ष में निःसन्देह चिह्न कहना चाहिए। नवम या पञ्चम में शनि, मङ्गल हों तो गुदा या लिङ्ग में चिह्न कहें। शनि चतुर्थ या लग्न में हो, और शुक्र नवम या पञ्चम स्थान में स्थित हों, बुध, गुरु अष्टमस्थ हों तो पेट में चिह्न कहें। शुक्र, रवि, राहु यदि चतुर्थ स्थान गत हों, अथवा लग्न में मङ्गल हों तो विशेषतः बाएँ पाँव में चिह्न कहना चाहिये। लग्न में शुक्र, अष्टम में राहु बैठे हों तो जातक के बाएँ कान में चिह्न कहें। गुरु लग्न में, राहु सप्तम में हों, तो बाएँ भुज में, अष्टम में चन्द्र, बारहवें में गुरु-शुक्र और सप्तम में शनि-मङ्गल हों तो दोनों बाहुओं में चिह्न कहना चाहिए। धन स्थान में शुक्र, कर्म स्थान में राहु-शनि, और अष्टम में सूर्य हों तो नाभि में चिह्न कहें। शुक्र-मङ्गल तृतीय स्थान में, दूसरे स्थान में चन्द्रमा और दशम स्थान में शनि हों तो कटि प्रदेश में चिह्न कहना चाहिए। यदि बुध ३, ६, ११ स्थानों में से अन्यतम में, गुरु बारहवें में, और तीसरे में शुक्र, रहें तो हृदय में चिह्न कहना चाहिए।

वराहमिहिर ने अपने बृहज्जातक में द्रेष्काण के वश 'कंदृक्-श्रोत्र-नसा कपलो-हनव' इत्यादि श्लोक से अङ्ग-विभाग कर "तस्मिन् पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशेत्" इत्यादि एक पद्य मात्र से चिह्न ज्ञान किया है। १४–२५

पिता के परोक्ष में जन्म ज्ञान—

लग्ने मन्दो मदे भौमश्चन्द्रो लग्नं न पश्यति।
बुधशुक्रान्तरे चन्द्रः परोक्षे स्याज्जनिः पितुः ॥ २६ ॥

अष्टमे नवमे वापि चरभे यदि भास्करः।
परोक्षे जन्म जातस्य पितुः स्यान्नात्र संशयः ॥ २७ ॥

कर्मभावं विना दृश्ये चरभे यदि भास्करः।
लग्नं चन्द्रो न पश्येच्चेद् दूरसंस्थः शिशोः पिता ॥ २८ ॥

लग्न में शनि सप्तम में भौम रहें, लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो, और चन्द्रमा बुध-शुक्र के बीच में विद्यमान हों तो पितृपरोक्ष में जातक का जन्म कहना चाहिए। चर राशिगत अष्टम या नवम स्थान में सूर्य विद्यमान हों तो भी निःसन्देह पितृपरोक्ष में बच्चे का जन्म कहना चाहिए। दशम भावातिरिक्त किसी भी दृश्य चक्रार्ध स्थित चरराशि में सूर्य हों, और चन्द्रमा लग्न को नहीं देखते हों, तो भी पितृपरोक्ष में बच्चे का जन्म कहें। वराहमिहिर ने भी इसी तरह कहा है—पितुर्जनिः परोक्षस्य लग्नमिन्दावपश्यति। विदेशस्थस्य चरभे मध्याद् भ्रष्टे दिवाकरे ॥ तथा उदयस्थेऽपि वा मन्दे कुजे वाऽस्तमुपागते। स्थिते चान्तः क्षपानाथे शशाङ्कसुतशुक्रयोः ॥ २६—२८ ॥

पितृ-सौख्यहानिकर योग—

रात्रौ जन्म यदा यस्य, भौमयुक्तः शनैश्चरः।
चरस्थः परदेशे तु तातस्य निधनं वदेत् ॥ २९ ॥

अष्टमे वा व्यये पापा लग्नेशो बलसंयुतः।
सुखेऽथ नवमे वापि रोगयुक्तस्तदा पिता ॥ ३० ॥

लग्नस्थं सबलं सूर्यं शनिभौमौ प्रपश्यतः।
जन्मकाले तदा तस्य रोगयुक्तः पिता भवेत् ॥ ३१ ॥

चतुर्थे दशमे वापि शनिभौमार्कखेचराः।
शुभसम्बन्धहीनाश्चेत्तदा पितृसुखं नहि ॥ ३२ ॥

रात्रि में जन्म लेने वाले बच्चों की कुण्डली में यदि चरराशिस्थ शनि, भौम युक्त हों तो परदेश में उसके पिता की मृत्यु कहनी चाहिये। अष्टम या व्यय स्थान में दो से अधिक पापग्रह हों, और सबल लग्नेश चौथे या नवमें स्थान में हो, या जन्म समय में शनि-मङ्गल लग्नगत सबल सूर्य को देखते हों तो जातक का पिता रुग्ण

होता है। चौथे या दशमें स्थान में शनि-मङ्गल और सूर्य बैठे हों, और उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं पड़े तो जातक पितृसौख्य से वञ्चित हो जाता है ॥२९-३२॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
सूतिकाध्यायः समाप्तः ॥ ९ ॥

अथाऽरिष्टविवेचनाध्यायः ॥ १० ॥

पराशर उवाच—

मैत्रेयादौ जनुर्लग्नाद्रिष्टं तद्भङ्गमेव च।
विचार्य तदनु ब्रूयात् फलं तन्वादिभावजम् ॥ १ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय सर्व प्रथम बच्चे के जन्म-लग्न से बालारिष्ट और अरिष्ट-भङ्ग का विचार करें। इसके बाद ही तन्वादि भावों का फलादेश करना चाहिए ॥ १ ॥

चतुर्विंशतिवर्षाणि यावद् गच्छति जन्मतः।
जन्मारिष्टं तु तावत् स्यादायुर्दायं न चिन्तयेत् ॥ २ ॥

अरिष्टयोग—

षष्ठाष्टरिष्फगश्चन्द्रो ग्रहैः क्रूरैश्च वीक्षितः।
जातस्य मृत्युदः सद्यस्त्वष्टवर्षैः शुभेक्षितः ॥ ३ ॥
शशिवन्मृत्युदाः सौम्याश्चेद् वक्राः क्रूरवीक्षिताः।
शिशोर्जातस्य मासेन लग्ने सौम्यविवर्जिते ॥ ४ ॥
यस्य जन्मनि धीस्थाः स्युः सूर्यार्कीन्दुकुजाभिधाः।
तस्य त्वाशु जनित्री च भ्राता निधनमाप्नुयात् ॥ ५ ॥
पापेक्षितो युतो भौमो लग्नगो न शुभेक्षितः।
मृत्युदस्त्वष्टमस्थोऽपि सौरिणाऽर्केण वाऽन्वितः ॥ ६ ॥

छठे, आठवें या बारहवें (त्रिक) स्थानों में से कहीं भी स्थित चन्द्रमा पापग्रहों से दृष्ट हों, तो सद्यः मृत्युकारक होता है। यदि उसपर शुभग्रह की दृष्टि होवे, तो आठ वर्षों में मृत्यु होती है। वक्री शुभ ग्रह भी पाप ग्रहों से दृष्ट होने पर ही चन्द्र की तरह ही मृत्युकारक होते हैं। यदि लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो एक मास के भीतर ही बच्चे की मृत्यु हो जाती है। यदि जन्म समय में सूर्य, मङ्गल, शनि पञ्चमभवनस्थ होवें, तो शीघ्र ही बच्चे की माँ तथा भाई मर जाते हैं। लग्नस्थ भौम पापग्रह से युत दृष्ट हों, और शुभ ग्रह की दृष्टि उनपर नहीं होवे तो जातक का

मरण हो जाता है। अष्टमस्थ भी मङ्गल शनि या सूर्य से युक्त होने पर मरणकारक होता है ॥ ३–६ ॥

चन्द्र-सूर्यग्रहे राहुश्चन्द्र-सूर्ययुतो यदि।
सौरिभौमेक्षितं लग्नं पक्षमेकं स जीवति ॥ ७ ॥
कर्मस्थाने स्थितः सौरिः शत्रुस्थाने कलानिधिः।
क्षितिजः सप्तमे मात्रा सार्धं तु म्रियते शिशुः ॥ ८ ॥
लग्ने भास्करपुत्रश्च निधने चन्द्रमा यदि।
तृतीयस्थो यदा जीवः स याति यममन्दिरम् ॥ ९ ॥
होरायां नवमे सूर्यः सप्तमस्थः शनैश्चरः।
एकादशे गुरुः शुक्रो मासमेकं स जीवति ॥ १० ॥
व्यये सर्वे ग्रहा नेष्टाः सूर्य-शुक्रेन्दु-राहवः।
विशेषान्नाशकर्त्तारो दृष्ट्या वा भङ्गकारिणः ॥ ११ ॥

चन्द्र या सूर्य के ग्रहण के समय राहु चन्द्र-सूर्य युक्त हो, और लग्न पर शनि-मङ्गल की दृष्टि होवे तो जातक एक पक्ष मात्र जीवित रहता है। दशमस्थ शनि, षष्ठस्थ चन्द्रमा, और सप्तमस्थ मङ्गल हों तो माता के सहित बच्चे की मृत्यु कहनी चाहिए। लग्न में शनि, अष्टमस्थ चन्द्रमा और तीसरे में गुरु होवें तो भी जातक की मृत्यु हो जाती है। लग्न या नवम में सूर्य, सप्तमस्थ शनैश्चर, और एकादश स्थान में गुरु-शुक्र हों तो जातक एक मास तक जीवित रहता है। लग्न से १२ वें स्थान में कोई भी ग्रह इष्टकारक नहीं होते, विशेषतः रवि, शुक्र, चन्द्र और राहु अधिक हानिकारक होते हैं, किन्तु इनकी १२ वें पर दृष्टि अरिष्ट-भङ्ग कारक होती है ॥ ७–११ ॥

पापान्वितः शशी धर्म-द्यून-लग्नगतो यदि।
शुभैर्न चेदीक्षितयुतस्तदा मृत्युप्रदः शिशोः ॥ १२ ॥
सन्ध्यायां चन्द्रहोरायां गण्डान्ते निधनाय वै।
प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः स्याद् विनाशनम् ॥ १३ ॥
रवेस्तु मण्डलार्धास्तात् सायं सन्ध्या त्रिनाडिका।
तथैवार्धोदयात्पूर्वं प्रातः सन्ध्या त्रिनाडिका ॥ १४ ॥
चक्र-पूर्वापरार्धेषु क्रूर-सौम्येषु कीटभे।
लग्नगे निधनं याति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥
व्ययशत्रुगतैः क्रूरैर्मृत्यु-द्रव्यगतैरपि।

पापमध्यगते लग्ने सत्यमेव मृतिं वदेत् ॥ १६ ॥
लग्न-सप्तमगौ पापौ चन्द्रोऽपि क्रूरसंयुतः ।
यदा त्ववीक्षितः सौम्यैः शीघ्रान्मृत्युर्भवेत्तदा ॥ १७ ॥

पापयुक्त चन्द्रमा लग्न, सप्तम, या नवम में विद्यमान हों, और शुभ ग्रहों की दृष्टि या संयोग से रहित न हों तो जातक की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है । सन्ध्या, चन्द्रहोरा या गण्डान्त (कर्क, वृश्चिक, या मीन के अन्त) में जन्म हो, प्रत्येक स्थिति में चन्द्रमा और पापग्रह केन्द्रगत हों तो बच्चे का निधन कहना चाहिये । सूर्य के अर्धोदय से पूर्व ३ घटी प्रातः-सन्ध्या एवं सूर्य के अर्धास्त से बाद की ३ घटी सायं सन्ध्या होती है । (रामाचार्य ने भी सन्ध्या त्रिनाड़ी प्रमितार्क बिम्बादित्यादि कहा है ।) चक्र के पूर्वार्ध में पापग्रह, और उत्तरार्ध में शुभग्रह रहें तथा कर्क लग्न हो तो निःसन्देह जातक की मृत्यु हो जाती है । चक्र का पूर्वार्ध दशम भाव से चतुर्थ भाव तक और परार्ध चतुर्थ भाव से आगे दशम भाव तक समझना चाहिए । पापग्रह यदि १२, ६, ८, २, स्थानों में हों और लग्न दो पापग्रहों के बीच में पड़े, निश्चयतः शिशु की मृत्यु होती है । लग्न तथा तत्सप्तम में पापग्रह हों, चन्द्रमा भी पापग्रहयुक्त हो और शुभग्रहों की दृष्टि उनपर नहीं हो तो भी शीघ्र जातक की मृत्यु हो जाती है ॥ १२–१७ ॥

क्षीणे शशिनि लग्नस्थे पापैः केन्द्राष्टसंस्थितैः ।
यो जातो मृत्युमाप्नोति स विप्रेश ! न संशयः ॥ १८ ॥
पापयोर्मध्यगश्चन्द्रो लग्नाष्टान्त्यकलत्रगः ।
अचिरान्मृत्युमाप्नोति यो जातः स शिशुस्तदा ॥ १९ ॥
पापद्वय-मध्यगते चन्द्रे लग्नसमाश्रिते ।
सप्ताष्टगेन पापेन मात्रा सह मृतः शिशुः ॥ २० ॥
शनैश्चरार्कभौमेषु रिष्फ-धर्माष्टगेषु च ।
शुभैरवीक्ष्यमाणेषु यो जातो निधनं गतः ॥ २१ ॥
यद्द्रेष्काणे च यामित्रे यस्य स्याद्दारुणो ग्रहः ।
क्षीणचन्द्रो विलग्नस्थः सद्यो हरति जीवितम् ॥ २२ ॥
आपोक्लिमस्थिताः सर्वे ग्रहा बलविवर्जिताः ।
षड्मासं वा द्विमासं वा तस्यायुः समुदाहृतम् ॥ २३ ॥

लग्न में क्षीण चन्द्रमा, और पापग्रह केन्द्र या अष्टम गत हों, तो निःसन्देह जातक की मृत्यु हो जाती है । चन्द्रमा यदि दो पापों के बीच होकर लग्न, अष्टम, द्वादश या सप्तम गत हों तो शीघ्र ही जातक की मृत्यु हो जाती है । पापद्वय के बीच

का चन्द्रमा यदि लग्न गत हो, और सप्तम तथा अष्टम भाव भी यदि पापाक्रान्त होवे तो माता के साथ बच्चे की मृत्यु हो जाती है। शनि, रवि, और भौम, १२, ९, ८, भावों में हों, शुभ ग्रहों की उनपर दृष्टि नहीं होवे तो भी बच्चे का निधन हो जाता है। जिसके द्रेष्काण या सप्तम में पापग्रह हो, तथा क्षीणचन्द्रमा लग्नवर्त्ती होवे तो भी बच्चे की शीघ्र मृत्यु हो जाती है। निर्बल सभी ग्रह यदि आपोक्लिम राशियों में रहें, तो छे या दो ही महीने तक जातक की आयु होती है ॥ १८–२३ ॥

मातृकष्ट विचार—

पापैः खेटैस्त्रिभिश्चन्द्रो दृश्यते यदि जन्मनि।
मातृनाशो भवेत्तस्य शुभैर्दृष्टे शुभं वदेत् ॥ २४ ॥
धने राहुर्बुधः शुक्रः सौरिः सूर्यो यदा स्थितः।
तस्य मातुर्भवेन्मृत्यु मृते पितरि जायते ॥ २५ ॥
पापात्सप्तम-रन्ध्रस्थे चन्द्रे पापसमन्विते।
बलिभिः पापकैर्दृष्टे जातो भवति मातृहा ॥ २६ ॥
उच्चस्थो वाऽथ नीचस्थः सप्तमस्थो यदा रविः।
पानहीनो भवेद् बालस्त्वजा क्षीरेण जीवति ॥ २७ ॥
चन्द्राच्चतुर्थगः पापो रिपुक्षेत्रे यदा भवेत्।
तदा मातृवधं कुर्यात् केन्द्रे यदि शुभो न चेत् ॥ २८ ॥
द्वादशे रिपुभावे च यदा पापग्रहो भवेत्।
तदा मातुर्भयं विद्याच्चतुर्थे दशमे पितुः ॥ २९ ॥
लग्ने क्रूरो व्यये क्रूरो धनेऽसौम्यस्तथैव च।
सप्तमे भवने क्रूरः परिवारक्षयङ्करः ॥ ३० ॥
लग्नस्थे च गुरौ सौरौ धने राहौ तृतीयगे।
इति चेज्जन्मकाले स्याद् माता तस्य न जीवति ॥ ३१ ॥
क्षीणचन्द्रात् त्रिकोणस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः।
माता परित्यजेद् बालं षड्मासाच्च न संशयः ॥ ३२ ॥
एकांशकस्थौ मन्दारौ यत्र कुत्र स्थितौ यदा।
शशि-केन्द्रगतौ तौ वा द्विमातृभ्यां न जीवति ॥ ३३ ॥

जन्मकालिक चन्द्रमा को यदि तीन पापग्रह देखें, तो जातक की माता की मृत्यु कहें। चन्द्रमा पर शुभ ग्रहों की दृष्टि होवे, तो शुभ कहना चाहिये। धन स्थान में यदि राहु, बुध, शुक्र, सूर्य शनि ये पाँच ग्रह रहें तो पिता की मृत्यु के बाद

जातक की उत्पत्ति हो और माता की भी मृत्यु हो जाय। पापग्रह से सप्तम या अष्टम स्थित चन्द्रमा पापग्रह युक्त हों, और वली पापग्रहों की चन्द्रमा पर दृष्टि हो तो जातक मातृनाशक होता है। उच्च (मेष) या नीच (तुला) का रवि सप्तम भाव में पड़े, तो शिशु माता के दूध से वञ्चित रहकर बकरी के दूध से जीवित रहे। चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान गत पापग्रह शत्रु क्षेत्रगत हों, केन्द्र स्थान शुभ ग्रहों से रिक्त हो तो माता का निधन कहना चाहिए। बारहवें, या छठे स्थान में पापग्रह रहें तो माता को, दशम या चौथे में रहें तो पिता को कष्ट कहना चाहिए। लग्न, धन, व्यय, सप्तम भावों में यदि पापग्रह हों तो जातक के परिवार का विनाश कहना चाहिए। लग्न में गुरु, धन स्थान में शनि, तृतीय स्थान में राहु हों तो जातक की माता का मरण कहना चाहिए। क्षीण चन्द्र से नवम, पञ्चम में पापग्रह मात्र रहें, तो छै महीनों के भीतर बालक निःसन्देह मातृविहीन हो जाय। जिस किसी भी राशि में स्थित शनि, मङ्गल, एक अंशगत हो जाय या वे दोनों चन्द्रमा से केन्द्र स्थान में पड़े तो जातक दो माताओं (जननी तथा धात्री) से पालित होने पर भी जीवित नहीं रह सकता ॥ २४–३३ ॥

पितृकष्ट विचार—

लग्ने मन्दो मदे भौमः षष्ठस्थाने च चन्द्रमाः।
इति चेज्जन्मकाले स्यात् पिता तस्य न जीवति ॥ ३४ ॥
लग्ने जीवो धने मन्दरविभौमबुधास्तथा।
विवाहसमये तस्य बालस्य म्रियते पिता ॥ ३५ ॥

लग्न में शनि, सप्तम भाव में भौम, और षष्ठ स्थान में चन्द्रमा यदि जन्मकाल में हों तो जातक का पिता मर जाता है। लग्न में गुरु, धन स्थान में शनि, रवि, मङ्गल और बुध हों तो जातक के विवाह-समय में उसके पिता की मृत्यु हो जाती है ॥ ३४–३५ ॥

सूर्यः पापेन संयुक्तः पापमध्यगतोऽपि वा।
सूर्यात् सप्तमगः पापस्तदा पितृवधो भवेत् ॥ ३६ ॥
सप्तमे भवने सूर्यः कर्मस्थो भूमिनन्दनः।
राहुर्व्यये च यस्यैव पिता कष्टेन जीवति ॥ ३७ ॥
दशमस्थो यदा भौमः शत्रुक्षेत्र-समाश्रितः।
म्रियते तस्य जातस्य पिता शीघ्रं न संशयः ॥ ३८ ॥
रिपुस्थाने यदा चन्द्रो लग्नस्थाने शनैश्चरः।
कुजश्च सप्तमे स्थाने पिता तस्य न जीवति ॥ ३९ ॥

सूर्य पापग्रह युक्त, या पापद्वय मध्य गत हों, और सूर्य से सप्तम में भी पापग्रह

होवे, तो जातक के पिता की मृत्यु हो जाती है। यदि सप्तम स्थान में सूर्य, दशम स्थान में मङ्गल, और व्यय स्थान में राहु पड़े तो कठिनता से जातक के पिता जीवित रहें। दशम स्थान स्थित मङ्गल यदि शत्रु क्षेत्रगत हो तो जातक के पिता शीघ्र ही दिवंगत हो जाँय। षष्ठ स्थान में चन्द्र, लग्न में शनि, और सप्तम में मङ्गल हों तो भी जातक के पिता की मृत्यु हो जाती है ॥ ३६–३९ ॥

भौमांशकगते भानौ सौरिणा च निरीक्षिते।
प्राग् जन्मनो निवृत्तिः स्यान्मृत्युर्वाऽपि शिशोः पितुः ॥ ४० ॥

यदि सूर्य मङ्गल के नवांश गत हों, और उन पर शनि की दृष्टि रहे तो जातक का पिता पुत्र के जन्म से पहले ही विरक्त होकर गृहत्यागी या दिवंगत हो जाय ॥४०॥

पाताले चाम्बरे पापौ द्वादशे च यदा स्थितौ।
पितरं मातरं हत्वा देशाद्देशान्तरं व्रजेत् ॥ ४१ ॥
राहुजीवौ रिपुक्षेत्रे लग्ने वाऽथ चतुर्थके।
वत्सरे तु त्रयोविंशे पुत्रस्तातं न पश्यति ॥ ४२ ॥

चतुर्थ, दशम या द्वादश स्थान में दो पापग्रह हों तो माता-पिता के दिवङ्गत हो जाने पर जातक घर छोड़ कर एक देश से दूसरे देश तक भ्रमणशील हो जाता है। राहु और गुरु लग्न, चतुर्थ या षष्ठ स्थान में हों तो जातक के पिता की मृत्यु उसके २३ वें वर्ष में हो जाती है ॥ ४१–४२ ॥

भानुः पिता च जन्तूनां चन्द्रो माता तथैव च।
पापदृष्टियुतो भानुः पापमध्यगतोऽपि वा ॥ ४३ ॥
पित्ररिष्टं विजानीयाच्छिशोर्जातस्य निश्चितम्।
भानोः षष्ठाष्टमर्क्षस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः।
चतुर्थस्थानगैर्वापि पित्ररिष्टं विनिर्दिशेत् ॥ ४४ ॥
एवमिन्दोः स्थितैः रैर्मातृकष्टं विचिन्तयेत्।
कष्टं मृतिं वा जानीयाद् बलाबल-विवेकतः ॥ ४५ ॥

सूर्य सभी जन्तुओं के पिता, और चन्द्रमा माता कहे गए हैं। यदि सूर्य जन्म-समय में पाप ग्रहों से युत दृष्ट हों या पापद्वय के मध्यवर्ती होवें तो उस जातक के पिता को अरिष्ट कहना चाहिए। अथवा सूर्य से षष्ठ और अष्टम राशि पापग्रहाक्रान्त हो, और शुभ ग्रहों का योग या दृष्टि उसपर नहीं हो तो भी पिता को अरिष्ट होना चाहिए। इसी तरह चन्द्रमा से माता का अरिष्ट समझना चाहिए। अर्थात् चन्द्रमा पाप ग्रहों से युत-दृष्ट हों या पाप द्वय के मध्यवर्ती हों तो माता को अरिष्ट कहें। चन्द्रमा से षष्ठाष्टम गत पाप शुभ ग्रहों से अदृष्ट या असंयुक्त होने पर भी मात्ररिष्ट कारक होते हैं। बलाबल विवेक से अरिष्ट कष्टकारक या मरणकारक होता है।

विमर्श—प्रायः सभी जातक ग्रन्थों में अरिष्टाध्याय देखने को मिलता है। पराशरोक्त इस अरिष्टाध्याय को प्राचीनतम मानना सर्वथा उपयुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्वाचीन जातककारों ने अपने २ अरिष्टाध्याय में इस अरिष्टाध्याय का अनूदित स्वरूप बहुधा रक्खा है। अधिकतर जातककारों ने चन्द्रकृतारिष्ट का ही विशद वर्णन किया है। इसमें चन्द्रकृतारिष्ट के अतिरिक्त अन्य ग्रहों के द्वारा होने वाले अरिष्टों का भी वर्णन हैं।

पराशरीय अरिष्टाध्याय का तृतीय श्लोक—

षष्ठाष्टरिष्फगश्चन्द्रो ग्रहैः क्रूरैश्च वीक्षितः।
जातस्य मृत्युदः सद्यस्त्वष्टवर्षैः शुभेक्षितः॥

वराहमिहिर ने लघुजातक में कहा है–षष्ठाष्टमेऽपि चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः अष्टाभिः शुभदृष्टः" आदि।

इस अध्याय का चतुर्थ श्लोक—शशिवन्मृत्युदाः सौम्याः—आदि।

लघुजातक में—"शशिवत्सौम्याः पापैः' इत्यादि इस अध्याय का त्रयोदशश्लोक–"सन्ध्यायां चन्द्रहोरायां गण्डान्ते निधनाय वै। प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः स्याद् विनाशनम्' ॥ लघुजातक में "राश्यन्तस्थैः पापैः सन्ध्यायां हिमयूखहोरायाम्।

मृत्युः प्रत्येकस्थैः केन्द्रेषु शशाङ्कपापैश्च ॥

इस अध्याय का पञ्चदश श्लोक–"चक्रपूर्वापरार्धेषु क्रूरसौम्येषु कीटभे"।

लघुजातक में–"चक्रप्राक्पश्चार्धे शुभपापैः कीटभोदये मृत्युः"

इस प्रकार पराशरीय अधिकतर पद्यों का आशय वराहमिहिर ने लघुजातक एवं बृहज्जातक दोनों में व्यक्त किया है। किन्तु वह व्यक्तीकरण चन्द्रकृतारिष्ट तक ही सीमित है। इस ग्रन्थ में अनेकविध अरिष्टों का वर्णन तथा मातृपितृ-कष्ट विचार आदि अन्य जातकों की अपेक्षा विशद एवं प्रशस्त है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रेऽरिष्ट-
विवेचनाध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

अथाऽरिष्टभङ्गाध्यायः ॥ ११ ॥

पराशर उवाच—

इत्युक्तं तु मयाऽरिष्टं तद्भङ्गं शृण्वतः परम्।
रिष्टं, भङ्गं च दृष्ट्वैव जातकस्य फलं दिशेत् ॥ १ ॥
एकोऽपि ज्ञार्यशुक्राणां लग्नात् केन्द्रगतो यदि।
अरिष्टं निखिलं हन्ति तिमिरं भास्करो यथा ॥ २ ॥
एक एव बली जीवो लग्नस्थोऽरिष्टसंचयम्।
हन्ति पापक्षयं भक्त्या प्रणामः कृतः शूलिनः ॥ ३ ॥

एक एव विलग्नेशः केन्द्रसंस्थो बलान्वितः ।
अरिष्टं निखिलं हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा ॥ ४ ॥
शुक्लपक्षे क्षपाजन्म-लग्ने सौम्यनिरीक्षिते ।
विपरीतं कृष्णपक्षे तथारिष्ट-विनाशनम् ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा—उपर्युक्त अरिष्टों का उल्लेख मैंने किया है अब अरिष्टों का भङ्ग सुनो । अरिष्ट तथा उसके भङ्ग की विवेचना करके ही जातकों के सम्बन्ध में फलादेश करना चाहिए ।

अरिष्टभङ्ग—लग्न से १, ४, ७, १० वें स्थानों में बुध, गुरु, शुक्र में से कोई भी ग्रह रहें तो सभी अरिष्ट सूर्य के द्वारा अन्धकार की तरह नष्ट हो जाते हैं । एक भी बली गुरु लग्नगत होवें तो सभी अरिष्ट भक्तिपूर्वक शङ्करजी के प्रणाम से पापसमूह की तरह नष्ट हो जाते हैं । बली लग्नेश यदि केन्द्रगत हों तो भी सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं । शुक्ल पक्ष में रात्रि में जन्म हो, और लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो, या कृष्ण पक्ष में दिन का जन्म हो और लग्न पर पाप ग्रह की दृष्टि होवे तो भी सभी अरिष्ट समाप्त हो जाते हैं ॥ १–५ ॥

व्ययस्थाने यदा सूर्यस्तुलालग्ने तु जायते ।
जीवेत् स शतवर्षाणि दीर्घायुर्बालको भवेत् ॥ ६ ॥
लग्नाच्चतुर्थगः पापो गुरुः केतुत्रिकोणगः ।
कुलद्वयानन्दकरः स्वस्थो दीर्घायुरर्भकः ॥ ७ ॥
गुरुभौमौ यदा युक्तौ गुरुदृष्टोऽथवा कुजः ।
हत्वाऽरिष्टमशेषं च जनन्याः शुभकृद् भवेत् ॥ ८ ॥
चतुर्थे दशमे पापः सौम्यमध्ये यदा भवेत् ।
पितुः सौख्यकरो योगः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥ ९ ॥
सौम्यान्तरगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः ।
सद्यो नाशयतेऽरिष्टं तद्भावोत्थफलं न तत् ॥ १० ॥

तुला लग्न में १२ वें स्थान में सूर्य यदि हों तो जातक शतायु होता है । लग्न से चौथे में पाप ग्रह हो, गुरु १, ४, ७, १०, ९, ५ स्थानों में से अन्यतम में हो तो जातक स्वस्थ, दीर्घायु एवं मातापिता के दोनों कुल में आनन्ददायक होता है । गुरु-मङ्गल दोनों एकत्र संयुक्त हों या मंगल पर गुरु की दृष्टि होवे तो सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं और माता को भी शुभ होता है । चतुर्थ या दशम में स्थित पापग्रह शुभ ग्रहों के मध्य में पड़े, शुभ ग्रह केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) या त्रिकोण (९।५) में हों तो पिता को सौख्य कहना चाहिए । शुभ ग्रहों के बीच में पापग्रह हों, और

शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तो शीघ्र ही सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते है और उस भाव का असत्फल नहीं होता है ॥ ९–१० ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
अरिष्टभङ्गाध्यायः समाप्तः ॥ ११ ॥

अथ भावविवेचनाध्यायः ॥ १२ ॥

मैत्रेय उवाच—

श्रुतं रिष्टं च तद्भङ्गं भगवन् भवतोदितम् ।
अथ किं किं कुतो भावाद् विचार्यमिति कथ्यताम् ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहाः—हे भगवन् ! आप से मैंने बालारिष्ट तथा अरिष्टों का भङ्ग सुना । अब किन किन भावों से क्या २ विचार करना चाहिये यह कृपया बतलावें ।

तन्वादि भावों से विचारणीय विषय—

पराशर उवाच —

तनुं रूपं च ज्ञानं च वर्णं चैव बलाऽबलम् ।
प्रकृतिं सुख-दुःखं च तनुभावाद् विचिन्तयेत् ॥ २ ॥
कुटुम्बं च धनं धान्यं मृत्युजालममित्रकम् ।
धातुरत्नादिकं सर्वं धनस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ ३ ॥
विक्रमं भृत्य-भ्रात्रादि चोपदेश-प्रयाणकम् ।
पित्रोर्वै मरणं विद्वान् दुश्चिक्याच्च निरीक्षयेत् ॥ ४ ॥
वान्धवानथ यानानि मातृसौख्यादिकान्यपि ।
निधिक्षेत्र-गृहारामादिकं तुर्याद् विचारयेत् ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! शरीर, रूप, वर्ण ज्ञान, बलाबल, स्वभाव, सुख-दुःख इनका विचार तनुभाव से करना चाहिये । इसी प्रकार कुटुम्ब, धन, धान्य, मृत्यु, शत्रु, धातु-रत्न इनका विचार धन भाव से, पराक्रम, भृत्य, भाई, उपदेश, यात्रा, तथा माता-पिता के मरण का विचार तृतीय भाव से, बन्धु वान्धव, वाहन, मातृसुख, खजाना, जमीन, घर, वगीचा आदियों का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए । अन्य जातकों में—तनु भाव से विचारणीय विषय—"शरीरवर्णाकृतिलक्षणानि यशोगुणस्थान-सुखासुखानि । धनभाव से विचारणीय विषय—वित्तं नेत्रं मुखं विद्यां वाक् कुटुम्बाशनानि च ।"

तृतीय भाव से विचारणीय विषय—ज्येष्ठानुजस्थितिपराक्रमसाहसानि । आदि कहा गया है ॥ २–५ ॥

पञ्चमादि भावों से विचारणीय विषय—

यन्त्रं मन्त्रं तथा विद्यां बुद्धेश्चैव प्रबन्धकम् ।
पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत् पुत्रालयाद् बुधः ॥ ६ ॥
मातुलं मृत्युशङ्काञ्च शत्रूंश्चैव व्रणादिकान् ।
सपत्नीमातरं चापि शत्रुस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ ७ ॥
जायामध्वप्रयाणं च पदाप्तिं च वणिक्-क्रियाम् ।
मरणं च स्वदेहस्य जायाभावान्निरीक्षयेत् ॥ ८ ॥
आयुर्मृत्युपरं चापि गुदे चैवाङ्कुरादिकम् ।
पूर्वापर-जनुर्वृत्तं सर्वं रन्ध्राद् विचिन्तयेत् ॥ ९ ॥

यन्त्र, मन्त्र, विद्या, बुद्धि-वैभव पुत्र, राज्यापभ्रंश, इत्यादि का विचार पञ्चम भाव से । मामा, मरणऽऽशङ्का, शत्रु व्रण आदि, का विचार षष्ठ भाव से, स्त्री, मार्ग-यात्रा, पद-प्राप्ति, वाणिज्य, अपना मरण का विचार जाया भाव से । आयु, मृत्युस्थान, बवासीर, भगन्दर आदि, पूर्वजन्म वृत्त आदि अष्टम भाव से विचार करना चाहिये । अन्य जातक में पञ्चम भाव से विचारणीय विषय के सम्बन्ध में "पुत्रादेव महीप-पुत्र-पितृधीपुण्यानि सञ्चिन्तयेत्" ऐसा कहा गया है । षष्ठ भाव से विचारणीय विषय के सम्बन्ध में:—रोगारि-व्यसन-क्षतानि वसुधापुत्रारितश्चिन्तयेत्" । जाया भाव से विचारणीय विषय में "रणाङ्गणं चापि वणिक्क्रियाश्च जायाविचाराङ्गमनप्रयाणम्" आदि कहा गया है ॥ ६–९ ॥

नवमादि भावों से विचारणीय विषय—

धर्मं भाग्यमथो श्यालं भ्रातृ-पत्न्यादिकांस्तथा ।
तीर्थयात्रादिकं सर्वं धर्मस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ १० ॥
राज्यं चाकाशवृत्तिं च मानं च पितरं तथा ।
ऋणं चापि प्रवासं च व्योमस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ ११ ॥
नानावस्तुभवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च ।
आयं सशुसमृद्धिं च भवस्थानान्निरीक्षयेत् ॥ १२ ॥
व्ययं च वैरिवृत्तान्तं रिष्कमन्त्यादिकं तथा ।
व्ययाच्चैव हि जानीयादिति सर्वत्र बुद्धिमान् ॥ १३ ॥

भाग्य, श्याल (साला), भाभी आदि, तीर्थयात्रा इनका विचार धर्म (नवम) भाव से राज्य, आकाशवृत्त, पिता, सम्मान, ऋण, प्रवास इन सबों का दशम भाव से अनेकविध वस्तुओं की उत्पत्ति, पुत्र, स्त्री, आदि, आय, पशुसमृद्धि इनका एकादश

भाव से। व्यय, शत्रु-वृत्तान्त, रिष्फ, अन्त्य (मृत्यु) आदि का विचार व्यय (द्वादश) भाव से करना चाहिए ॥ १०–१३ ॥

भावफलों का शुभाशुभत्व—

यो यो भावो ग्रहैः सौम्यैः स्वेशैर्युक्तोऽथवेक्षितः।
युवा प्रबुद्धो राज्यस्थः, कुमारो यस्य वाधिपः ॥ १४ ॥
तद्दृष्टिवशतो ज्ञेयं तद्भावजफलं शुभम्।
यद्यद्भावपतिर्नष्ट-स्त्रिकेशाद्यैश्च संयुतः ॥ १५ ॥
भावं न वीक्षते सम्यग् ग्रहः सुप्तोऽथवा मृतः।
स्थविरः पीडितो वापि, नष्टं भावफलं वदेत् ॥ १६ ॥

जो जो भाव शुभग्रह, या अपने स्वामी से युत अथवा दृष्ट हों, जिसका पति (भावेश) युवा, प्रबुद्ध, कुमारादि अवस्थागत हो, और उसकी दृष्टि भाव पर पड़ती हो तो उस भाव का फल शुभप्रद अन्यथा अर्थात् भावेश नष्टादि अवस्थागत हों, त्रिकेशादि (६ । ८ । १२ । ३ । ११ स्थानों के अधिपों) से संयुक्त हों और अपने भाव को नहीं देखता हो तो भाव फल का नाश कहना चाहिये। इसी प्रकार प्रायः सभी अर्वाचीन जातककारों ने भी अपने २ ग्रन्थों में भाव फल की वृद्धि या हानि के सम्बन्ध में ऐसा ही कहा है। जातक-पारिजात में—

तन्वादिभावेषु शुभोदयेषु तद्भावनाथोपगतेक्षितेषु।
तदुक्तभावस्य सामृद्धिरुक्ता न पापखेटेक्षितसंयुतेषु ॥
यद्भावनाथो रिपु-रिष्फ-रन्ध्रे दुःस्थानपो यद्भवनस्थितस्तु।
तद्भावनाशं कथयन्ति तज्ज्ञाः शुभेक्षितश्चेत् फलमन्यथा स्यात् ॥

ऐसा है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
भावविवेचनाध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ प्रथम (तनु) भावफलाध्यायः ॥ १३ ॥

तनुपः केन्द्रकोणस्थोऽनिशं दद्यात्तनौ सुखम्।
स एव त्रिकगः पापसंयुतस्तनुसौख्यहृत् ॥ १ ॥
तनुपोऽस्तमितो नीच-शत्रुभस्थोऽतिरोगकृत्।
केन्द्र-त्रिकोणगाः सौम्याः सर्वरोगापहारकाः ॥ २ ॥

लग्नेश केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) या त्रिकोण (९ । ५) में स्थित हों) तो जातक को शारीरिक सौख्य होता है। वही (लग्नेश) यदि त्रिक (६ । ८ । १२) गत होकर पापग्रह से युक्त हों तो शारीरिक सौख्य नहीं कहना चाहिये। लग्नेश

यदि अस्तङ्गत हों, नीच स्थान, या शत्रुक्षेत्रगत हों तो शरीर में रोग कहना चाहिए। किन्तु शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण स्थान गत हों तो रोगों से मुक्त शरीर कहें ॥ १–२ ॥

लग्ने शशिनि वा पापग्रहैर्युक्तेऽथवेक्षिते।
सौम्यदृग्रहिते सौख्यं तनौ जातस्य नो भवेत् ॥ ३ ॥
लग्ने शुभे तु सुभगस्तत्र पापे तु दुर्भगः।
शुभग्रहैर्युते दृष्टे तनौ सौख्यं सुनिश्चितम् ॥ ४ ॥

लग्न या चन्द्रमा पर पापग्रहों की दृष्टि या संयोग हो, शुभ ग्रहों की दृष्टि नहीं रहे तो जातक शारीरिक सुख से वञ्चित होता है। लग्न में शुभ ग्रह रहें तो वह देखने में सुन्दर, पापग्रह रहें तो कुरूप होता है। लग्न पर शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि होने पर निःसन्देह उसे शारीरिक सुख होता है ॥ ३–४ ॥

केन्द्र-त्रिकोणगोऽङ्गेशो बुधो जीवोऽथवा भृगुः।
दीर्घायुर्मतिमान् जातो धनवान् राजवल्लभः ॥ ५ ॥
लग्नेशे चरराशिस्थे शुभग्रह-निरीक्षते।
कीर्त्ति-श्रीमान् महाभोगी देह-पुष्टि-समन्वितः ॥ ६ ॥
जीवः शुक्रो बुधो वापि लग्ने शशि-समन्वितः।
लग्नात् केन्द्रगतश्चापि राजलक्षण-संयुतः ॥ ७ ॥

लग्नेश, बुध, गुरु अथवा शुक्र केन्द्र या त्रिकोण गत हों तो जातक दीर्घायु, मतिमान्, धनी, तथा राजप्रिय होता है। चरराशिगत लग्नेश यदि शुभ ग्रह से दृष्ट हों तो भी जातक यशस्वी, धनी, शारीरिकसौख्य-सम्पन्न, तथा भोगेन्द्र होता है। चन्द्रयुक्त गुरु, बुध, या शुक्र लग्न या केन्द्र में हों तो जातक राजलक्षण युक्त होता है ॥ ५–७ ॥

अजे वृषेऽथवा सिंहे लग्ने सारे ससूर्यजे।
नालेन वेष्टितो जातो राश्यंशसदृशे तनौ ॥ ८ ॥
चतुष्पाद-गते सूर्ये द्विस्वभावगतैः परैः।
द्युचरैर्बलिभिर्जातो यमलत्वमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥

मेष, वृष, या सिंह लग्न में शनि या मंगल हों, तो लग्न में जिस राशि का नवांश हो वह अङ्ग जन्म के समय नाल-वेष्टित रहता है। सूर्य यदि चतुष्पद राशिगत हों, अन्य प्रबल ग्रह द्विस्वभाव राशिगत होवें तो यमल (युग्म) का जन्म होता है, अर्थात् दो बच्चे होते हैं ॥ ८–९ ॥

रविचन्द्रौ यदैकस्था-वेकांशकसमन्वितौ।
त्रिमात्रा च त्रिभिर्मासैः पित्रा भ्रात्रा च पोषितः ॥ १० ॥

एवमेव फलं वाच्यं चन्द्रादपि सदा बुधैः ।
अधुना जातकस्याङ्गे व्रणलक्ष्मादिकं शृणु ॥ ११ ॥

रवि-चन्द्रमा यदि एक राशिस्थ होते हुए एक ही नवांश में हों तो जातक जन्म से तीन मास तक तीन माताओं के दूध से, बाद पिता और भाई के द्वारा पोषित किया जाता है । इसी तरह चन्द्रमा पर से भी फलादेश करना चाहिये । अब जातक के अङ्ग में चिह्न या व्रण आदि का विवेचन सुनो ॥ १० ॥

भावाः प्रोक्तास्तु तन्वाद्या आद्ये लग्न-दृकाणके ।
शीर्षं च चक्षुषी कर्णौ नासे चापि कपोलके ॥ १२ ॥
हनूर्मुखं च तनुतः क्रमाद् दक्षिणवामगाः ।
द्वितीये तु क्रमात् कण्ठः स्कन्धौ बाहू च पार्श्वके ॥ १३ ॥
हृदये च तथा कुक्षी नाभिश्चेत्युदितं बुधैः ।
एवं तृतीय-द्रेष्काणे वस्तिर्मेढ्रं गुदं तथा ॥ १४ ॥
वृषणद्वय मूरू च जानुनी चापि जंघके ।
चरणश्चेत्यवयवाः पुरतः पृष्ठतस्तनोः ॥ १५ ॥
सपापेऽङ्गे व्रणं, क्रूरैः सबुधैर्नियतं च तत् ।
सशुभे शुभदृष्टे वा चिह्नमात्रं विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥

लग्न यदि प्रथम द्रेष्काण गत हो तो लग्न शीर्ष, लग्न से पर पूर्व द्वितीय-द्वादश (२ । १२) आँख, तृतीयैकादश (३।११) कान, चतुर्थ-दशम (४।१०) नाक, पञ्चम नवम (५ । ९) कपोल, षष्ठ-अष्टम (६ । ८) दाढी, और सप्तम मुख ये क्रमशः दक्षिण-वाम अङ्ग समझना चाहिये । इसी तरह द्वितीय द्रेष्काण गत लग्न हो तो लग्न कण्ठ, (२ । १२) स्कन्धद्वय, (३ । ११) भुजद्वय, (४ । १०) पार्श्वद्वय, (५।९) हृदय, (६ । ८) पेट, और सप्तम नाभि, तृतीय द्रेष्काण गत होने पर लग्न वस्ति, (२ । १२) लिङ्ग और गुदा, (३ । ११) अण्डकोश (४ । १०) जंघा, (५।९) ठेहुना, ६ । ८ घुटने का अधो भाग, और सप्तम पैर । ये अवयव लग्न के आगे और पीछे समझें जिस अंग में पाप ग्रह हों उसमें व्रण कहना चाहिये । बुध युक्त पाप यदि रहें तो निश्चित रूप से व्रण कहें । वहीं शुभ ग्रह के संयोग या दृष्टि होने पर चिह्न मात्र का निर्देश करें ॥ १२—१६ ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
प्रथम (तनु) भावाध्यायः समाप्तः ॥ १२ ॥

अथ द्वितीय (धन) भावफलाध्यायः ॥ १४ ॥

पराशर उवाच :—

श्रुतं त्वया तु मैत्रेय ! तनुभावगतं फलम् ।
धनभावगतं वच्मि समाकर्णय शान्तधीः ॥ १ ॥
धनाधिपो धने केन्द्रे त्रिकोणे वा यदा स्थितः ।
धनधान्ययुतो जातो जायते नात्र संशयः ॥ २ ॥
षष्ठेऽष्टमे व्यये वा चेद् धनक्षयकरस्तु सः ।
अर्थेऽर्थदः शुभे ज्ञेयः क्रूरस्तत्रार्थनाशकः ॥ ३ ॥
धनाधिपो गुरुर्यस्य धनस्थानस्थितो यदि ।
भौमेन सहितो वापि धनवान् स नरो भवेत् ॥ ४ ॥
धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे वा धनं गते ।
तावुभौ केन्द्रगौ कोणस्थितौ वा धनवान्नरः ॥ ५ ॥
धनेशे केन्द्रराशिस्थे लाभेशे तत्त्रिकोणगे ।
गुरु-शुक्रयुते दृष्टे धनलाभमुदीरयेत् ॥ ६ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! तनुभाव का फल तुमने सुना । अब धन भाव का फल बताता हूँ, सुनो ।

धनेश धन स्थान अथवा १ । ४ । ७ । १० । ९ । ५ स्थानों में कहीं भी रहें तो जातक निःसन्देह धनधान्य सम्पन्न होता है । वही (धनेश) (६ । ८ । १२ = त्रिक) में रहें तो धनक्षय होता है । धन स्थानगत शुभग्रह धनप्रद होते हैं और वहीं यदि पापग्रह हों तो धनक्षय कहें । धनेश गुरु यदि धन स्थान गत हों या मंगल के साथ हों तो जातक धनवान् होता है । धनेश लाभ स्थान में, या लाभेश धन स्थान में हों या वे दोनों केन्द्र या त्रिकोण में हों तो मनुष्य धनसम्पन्न होता है । धनेश केन्द्रगत हों, लाभेश उससे नवम या पञ्चम में हों, गुरु शुक्र से युक्त या दृष्ट हों तो पूर्ण धन-प्राप्ति कहनी चाहिए ॥१–६॥

वित्तेशे रिपुभावस्थे लाभेशेऽपि च तद्गते ।
वित्तलाभौ युतौ पापैर्दृष्टौ वा निःस्व एव सः ॥ ७ ॥
वित्ताययोः पती चास्तं गतौ पाप खगान्वितौ ।
जन्मप्रभृति दारिद्रयं भिक्षान्नं लभते नरः ॥ ८ ॥
षष्ठाष्टमव्ययगते धनलाभाधिपे तथा ।
लाभे कुजे धने राहौ राजदण्डाद्धनक्षयः ॥ ९ ॥

धनेश एवं लाभेश षष्ठभाव गत हों, तथा धन एवं लाभ भाव पापग्रहों से युत या दृष्ट हों तो जातक दरिद्र होता है। धनेश एवं लाभेश अस्तङ्गत होकर पापग्रहों से युक्त हों, तो जातक जन्म से ही दरिद्र होकर भिक्षान्न पर ही आश्रित रहता है। धनेश तथा लाभेश त्रिक (६। ८। १२) स्थान गत हों, मङ्गल एकादश में, तथा राहु धन स्थान में हों तो राजदण्ड से उसकी सम्पदा का विनाश कहना चाहिए ॥ ७–९ ॥

लाभे जीवे धने शुक्रे वित्तेशे शुभसंयुते।
व्यये शुभग्रहयुते धर्ममूलो धनव्ययः ॥ १० ॥
धनेशे परमोच्चस्थे किंवा स्वभवनाश्रिते।
गुरुणा वीक्षिते, जातः ख्यातः सर्वजनप्रियः ॥ ११ ॥
धनाधिपे शुभयुते स्थिते पारावतादिके।
विविधा धनसम्पत्तिः स्वतस्त-द्भवने भवेत् ॥ १२ ॥

लाभ स्थान गत गुरु, धन भावगत शुक्र, धनेश शुभग्रह संयुक्त, और द्वादश स्थान भी शुभग्रह युक्त हों तो जातक का धर्ममूलक धनव्यय कहना चाहिए। धनेश अपने उच्च या स्वभवन गत हों, और गुरु की उनपर दृष्टि होवे तो जातक सर्वजन प्रिय विख्यात व्यक्ति होता है। शुभग्रह युक्त धनेश पारावत आदि शुभवर्ग में स्थित हों, तो जातक के घर में स्वतः अनेकविध सम्पत्ति होती है ॥ १०–१२ ॥

नेत्रेशे बलसंयुक्ते शोभनाक्षो भवेन्नरः।
षष्ठाऽष्टम-व्यय-गते नेत्रे वैकल्यमादिशेत् ॥ १३ ॥
धनेशे पापसंयुक्ते धने पापसमन्विते।
असत्यवादी पिशुनो भवेद् वातरुजार्दितः ॥ १४ ॥

नेत्रेश (धनेश) सबल हो तो जातक सुन्दर नेत्र वाला होता है वही (नेत्रेश) ६। ८। १२ स्थानों में स्थित हों तो नेत्र में रोग कहना चाहिये। धनेश पापग्रह युक्त हों और धन स्थान भी पापाक्रान्त हों तो जातक असत्यवादी, पिशुन तथा वातरोग ग्रस्त होता है।

विमर्शः—धनभाव फलाध्याय में धन एवं लाभ भाव के सहारे धन-सम्पत्ति तथा नेत्र रोग का विचार किया गया गया है। किसी भी भाव का शुभाशुभ फल भावेश के स्थान, भाव पर शुभाशुभ के योग या दृष्टि, पर ही निर्भर करता है। तदनुसार धन भाव पर प्रकाश डालते समय धन भाव पर शुभ या पाप ग्रहों में से किसकी दृष्टि है, यह देखना स्वाभाविक ही है। इस तरह धनेश यदि केन्द्र या त्रिकोण, स्वभवन, स्वोच्च (जहाँ रहने से वे बली होते हैं) में हों तो धनभाव की पुष्टि, त्रिक (६। ८। १२) में रहने पर धन का क्षय कहना उचित ही है। धन भाव पर गुरु, शुक्र या अन्य शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा संयोग से भी धन-सम्पत्ति कहना स्वाभाविक ही है। धनेश के पारावतांशादि शुभ वर्ग गत होने पर भी सर्व सम्पत्ति का होना युक्तियुक्त

ही है। धनेश त्रिकस्थ हो, धन स्थान भी पाप ग्रह युक्त या दृष्ट हों तो निर्धन कहना भी स्वाभाविक है क्योंकि त्रिक (६। ८। १२) स्थान में जो भी ग्रह पड़े तो दुर्बल हो जाते हैं।

नेत्र का भी विचार धन भाव से किया जाता है। अतः धनेश (नेत्रेश) सबल हों तो शोभन नेत्र और दुर्बल (त्रिक गत) हों तो नेत्र रोग, धनेश पापयुक्त, तथा धन स्थान भी पापाक्रान्त होवे तो असत्यवादी आदि असत्फल भी नियमानुसार ही है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
धनभावफलाध्यायः समाप्तः ॥ १४ ॥

अथ तृतीय (सहज) भावफलाध्यायः ॥ १५ ॥

पराशर उवाचः—

अथ मैत्रेय ! ते वच्मि फलं सहजभावजम् ।
सहजे सशुभे, दृष्टे सौम्यैर्वा भ्रातृमान् जनः ॥ १ ॥
सभौमो भ्रातृभावेशो भ्रातृभावमभीक्षते ।
भ्रातृक्षेत्रगतो वापि सुखं भ्रातुर्विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥
तौ पापयोगतः पाप-क्षेत्रयोगेन वा पुनः ।
उत्पाद्य सहजान् सद्यो निहतो नात्र संशयः ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय अब मैं सहज भाव का फल बतलाता हूँ। सहजभाव ! शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो मनुष्य सहजसौख्य युक्त होता है। मङ्गल सहित सहजेश यदि सहज भाव को पूर्ण दृष्टि से देखें, या सहज भाव गत हों, तो भ्रातृसुख का निर्देश करना चाहिये। वे दोनों (सहजेश, मङ्गल) पाप ग्रहों से युक्त या पापग्रह के राशि में गत होने पर सहजों के शीघ्र घातक होते हैं ॥ १–३ ॥

स्त्रीग्रहो भ्रातृभावेशो भ्रातृगः स्त्रीग्रहोऽथवा ।
भगिनी स्यादथो भ्राता पुंगृहे पुंग्रहो यदि ॥ ४ ॥
मिश्रे मिश्रफलं ज्ञेयं बलाबल-विवेकतः ।
सहजेशकुजौ रन्ध्रे पापैर्युक्तौ च वीक्षितौ ॥ ५ ॥
सोदरघ्नौ, केन्द्रकोण-स्वोच्च-मित्र स्ववर्गगे ।
भ्रातृपे कारके वापि, भ्रातृभावसुखं दिशेत् ॥ ६ ॥
भ्रातृपे कारके वापि सौम्यैर्युक्तेऽथवेक्षिते ।
भावे वा बलसंयुक्ते भ्रातृवृद्धिः प्रजायते ॥ ७ ॥

सहजेश स्त्रीग्रह (चन्द्र-शुक्र) हो, अथवा स्त्रीग्रह सहज भावगत हो तो बहन का सुख, पुरुषराशि या पुरुषग्रह (सूर्य भौम गुरु) हो तो भ्रातृसुख, मिश्र (स्त्री पुरुषग्रह) दोनों हो तो दोनों का सुख कहना चाहिये। सहजेश तथा मंगल अष्टम भावगत होकर पापग्रहों से युत दृष्ट हों तो सहोदरों के नाशक होते हैं। सहजेश अथवा भ्रातृकारक ग्रह केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, मित्रगृह या स्ववर्गग हों तो भ्रातृसुख कहना चाहिए।

सहजेश या भ्रातृकारक ग्रह शुभग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों, सहज भाव भी सबल हों तो सहज (भाई-बहिन) की वृद्धि कहनी चाहिये॥ ४-७॥

भ्रातृभे बुधसंयुक्ते तदीशे चन्द्रसंयुते।
कारके मन्दसंयुक्ते भगिन्येकाग्रतो भवेत्॥ ८॥
पश्चात् सहोदरोऽप्येक स्तृतीयस्तु मृतो भवेत्।
कारके राहुसंयुक्ते विक्रमेशे तु नीचगे॥ ९॥
पश्चात् सहोदराभावः—पूर्वं तु तत्त्रयं भवेत्।
भ्रातृस्थानाधिपे केन्द्रे कारके तत्त्रिकोणगे॥ १०॥
जीवेन सहितेऽप्युच्चे वाच्या द्वादश सोदराः।
तत्राग्रजद्वयं तद्वत् स्वस्माच्चापि तृतीयकः॥ ११॥
सप्तमो नवमश्चैव द्वादशश्च मृतो भवेत्।
ज्ञेयाः सहोदराः शेषाः षट् स्युर्दीर्घायुषान्विताः॥ १२॥

सहज भाव बुध संयुक्त हो, सहजेश के साथ चन्द्रमा रहे, और भ्रातृकारक ग्रह शनि के साथ पड़े तो पहले एक बहन, पीछे एक भाई, और अपने से तृतीय मर जाता है। भ्रातृकारक राहु के साथ हो, सहजेश नीचगत हो तो अपने से बाद के सहोदरों का अभाव किन्तु अपने से बड़े तीन सोदर कहना चाहिये। तृतीयेश केन्द्रस्थ हो, भ्रातृकारक ग्रह उससे केन्द्र में गुरु के साथ उच्चस्थ हो तो १२ सहोदर होवें। उनमें अपने से दो ज्येष्ठ, तथा तीसरा सातवाँ, नवाँ, बारहवाँ मृत हो जाँय शेष ६, दीर्घजीवी होते हैं॥ १२॥

लाभेशेन युते भौमे गुरुणा सहितेऽपि वा।
सहजस्थानगे चन्द्रे सप्तसंख्याः सहोदराः॥ १३॥
सहजस्थानगे चन्द्रे पुंग्रहेणैव वीक्षिते।
भ्रातरस्तत्र कविना भगिन्यः संयुतेक्षिते॥ १४॥
अग्रजं दिनकृद्धन्ति मन्दः पृष्ठगतं तथा।
उभयं भूमिजो हन्ति सहजस्थो विनिश्चयात्॥ १५॥

मंगल आयेशयुक्त हो या गुरु-समन्वित हो, और सहज स्थानगत चन्द्रमा रहे तो

सोदरों की संख्या सात होती है। सहज स्थान स्थित चन्द्रमा पर पुंग्रह मात्र की दृष्टि होवे, तो सहोदर भाई, और शुक्र से युत दृष्ट हो तो बहन कहें। सहज स्थान स्थित सूर्य अग्रज का, शनि पृष्ठज का, मङ्गल अग्रज, पृष्ठज, दोनों का नाशक होते हैं॥ १३–१५॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
सहजभाव-फलाध्यायः समाप्तः॥ १५॥

अथ चतुर्थ (सुख) भावफलाध्यायः॥ १६॥

पराशर उवाचः—

मैत्रेय ! ते निगदितं भ्रातृभावगतं फलम्।
अधुना कथ्यते मातृभावजं तन्मुने शृणु॥ १॥
बन्धुभावगते बन्धुनाथे वा तत्र लग्नपे।
सौम्यखेटेक्षितयुते पूर्णगेहसुखं भवेत्॥ २॥
स्वर्क्षांशतुङ्गगे तुर्यनाथे सुखमनुत्तमम्।
गृहभूयानमात्रादिजातं वाद्यादिजं तथा॥ ३॥
तुर्यकर्मेशयोः केन्द्रे त्रिकोणे वा सहस्थितौ।
राजार्हे सदने वासो जातकस्य भवेद्ध्रुवम्॥ ४॥
तुर्यनाथे सौम्यखेटे शुभैर्युक्तेऽथवेक्षिते।
लग्नगे शशिजे जातो बन्धुपूज्यो भवेत्सदा॥ ५॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय सहज भाव का फल मैंने कहा है, अब सुख (भ्रातृ) भाव का फल कहता हूँ, सुनो। चतुर्थ स्थान में सुखेश या लग्नेश हो, और वह स्थान शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो पूर्णरूप से गेह-सौख्य होता है। सुखेश अपने गृह, स्वनवांश, अथवा अपने उच्चगत हो तो जातक को घर, जमीन, वाहन, माता तथा गीत-वाद्यादि का सुख कहना चाहिए। केन्द्र या त्रिकोण में सुखेश एवं राज्येश की सहावस्थिति हो तो जातक राजयोग्य प्रासाद में निवास करता है। शुभग्रह चतुर्थेश शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हों, और बुध लग्नगत हों तो जातक बन्धु पूज्य होवे॥ १–५॥

मातुः स्थाने शुभयुते तदीशे स्वोच्चराशिगे।
कारके बलसंयुक्ते मातृदीर्घायु रादिशेत्॥ ६॥
सुखेशे केन्द्रभावस्थे तथा केन्द्रे स्थिते भृगौ।
शशिजे चोच्चराशिस्थे यानसौख्यं वदेद् बुधः॥ ७॥

सुखे मन्दो रवियुतश्चन्द्रो भाग्यगतो यदि।
लाभस्थानगतो भौमो गोमहिष्यादिलाभकृत् ॥ ८ ॥
सुखे चरगृहासक्ते तथा तद्राशिनायके।
सभौमे व्ययषष्ठस्थे मूकत्वं याति मानवः ॥ ९ ॥
लग्नस्थानाधिपे सौम्ये सुखेशे नीचराशिगे।
कारके व्ययभावस्थे सुखेशे लाभसंयुते ॥ १० ॥
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते वाहनस्य सुखं वदेत्।
वाहने रविसंयुक्ते स्वोच्चे तद्राशिनायके ॥ ११ ॥
युते शुक्रेण यानाप्तिर्द्वात्रिंशे वत्सरे भवेत्।
कर्मेशेन युते बन्धुनाथे तुङ्गांशसंयुते ॥ १२ ॥
द्विचत्वारिंशके वर्षे नरो वाहनभावग्भवेत्।
लाभेशे सुखराशिस्थे सुखेशे लाभसंयुते ॥ १३ ॥
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते मानवो यानभाग्भवेत्।
शुभं भावस्य संपुष्टौ दुर्बलत्वेऽन्यथा फलम् ॥ १४ ॥

चतुर्थ भाव शुभग्रहयुक्त हो, चतुर्थेश अपने उच्च में रहे, और मातृकारक ग्रह सबल हो तो जातक की माता दीर्घायुष्य वाली होती है। सुखेश तथा शुक्र केन्द्रस्थ हों, बुध अपने उच्च में रहे तो वाहन-सुख कहना चाहिए। चतुर्थ स्थान में शनि तथा सूर्य रहें चन्द्रमा भाग्यभाव गत हो, मंगल एकादश स्थान गत हो तो जातक को बैल, भैंस आदि पशुओं का लाभ कहें। सुख स्थान चर राशि का हो, सुखेश मंगल के साथ छठे या बारहवें स्थान में हो तो जातक मूक (गंगा) होता है। लग्नेश शुभग्रह हो, सुखेश नीच राशिगत पड़ जाय, चतुर्थ भाव कारक १२ वें में हो, सुखेश लाभस्थान में रहे तो बारहवें वर्ष में वाहन-सुख कहना चाहिए। रवियुक्त वाहन स्थान हो, चतुर्थेश अपने उच्च में शुक्र-संयुक्त हो तो बत्तिसवें वर्ष यान की प्राप्ति होवे। सुखेश अपने उच्चांश में कर्मेश से संयुक्त हो तो ४२ वें वर्ष में वाहन-सुख होवे। लाभेश चतुर्थ स्थान में और चतुर्थेश लाभ स्थान में हों, तो १२ वें वर्ष में मनुष्य यान प्राप्त करे। इस प्रकार भाव की सम्पुष्टि रहने पर उस भाव से विचारणीय सभी पदार्थों की प्राप्ति और भाव की दुर्बलता में उनका अभाव कहना चाहिये ॥ ६–१४ ॥

इति सविमर्श-सुधा व्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
चतुर्थभावफलाध्यायः ॥ १६ ॥

अथ पञ्चम (सुत) भावफलाध्यायः ॥ १७ ॥

पराशर उवाच—

अथ पञ्चमभावस्य फलं वच्मि शृणु द्विज ! ।
लग्नेशे पञ्चमेशे च पञ्चमस्थानसंस्थिते ॥ १ ॥
केन्द्रकोणगते वापि पूर्णपुत्रभवं सुखम् ।
षष्ठाष्टमव्ययगते सुतेशे स्यात्दपुत्रता ॥ २ ॥
अस्तंगते पञ्चमेशे पापाक्रान्ते च दुर्बले ।
जायते न सुतस्तस्य जातोऽपि मृतिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥
षष्ठस्थाने सुताधीशे लग्नेशे भौमसंयुते ।
म्रियते प्रथमापत्यं काकवन्ध्या सधर्मिणी ॥ ४ ॥
सुताधीशो हि नीचस्थः षष्ठादित्रिकसंस्थितः ।
काकवन्ध्या भवेन्नारी सुते केतुबुधौ यदि ॥ ५ ॥
सुतेशो नीचगो यत्र सुतस्थानं न पश्यति ।
तत्र सौरिबुधौ स्यातां काकवन्ध्यात्वमाप्नुयात् ॥ ६ ॥
भाग्येशो मूर्त्तिवर्त्ती च सुतशो नीचगो यदि ।
सुते केतुबुधौ स्यातां सुतं कष्टाद् विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥
षष्ठादित्रिकसंस्थो वा नीचो वा ह्यरिगेहगः ।
पञ्चमेशः पञ्चमे चेत् पुत्रं कष्टाद् विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

पराशर ने कहा—हे विप्र अब मैं पञ्चमभाव का फल कहता हूँ सुनो। लग्नेश तथा पञ्चमेश यदि पञ्चम भाव में या केन्द्र (१।४।७।१०) तथा नवम में हों तो पूर्ण रूप से पुत्रजन्य सुख होवे। वही पञ्चमेश त्रिक (६।८।१२) में रहें तो पुत्राभाव कहना चाहिए। पञ्चमेश अस्तंगत, पापग्रहाक्रान्त या दुर्बल हो तो पुत्रोत्पत्ति नहीं होवे यदि कदाचित् हो भी जाय तो उस की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती। पञ्चमेश षष्ठस्थान में हो और लग्नेश मंगल से युक्त हो तो प्रथम सन्तान की मृत्यु और उसकी पत्नी काकवन्ध्या हो जाय। पञ्चमेश नीचस्थ होकर षष्ठादित्रिक स्थानों में रहे और पञ्चमभाव में केतु-बुध हों तो भी पत्नी काकवन्ध्या होती है। नीचस्थ पञ्चमेश पञ्चम-भाव को नहीं देखे और शनि-बुध पञ्चम स्थानस्थ हो तो भी काकवन्ध्या होती है। भाग्येश लग्नस्थ हो, पञ्चमेश नीचस्थ रहे और पञ्चम स्थान में केतु-बुध पड़े तो प्रयास (धर्मानुष्ठादि) से पुत्र होवे।

पञ्चमेश षष्ठ, अष्टम या व्ययस्थ हो, अथवा नीच या शत्रुराशिगत होकर पञ्चम में पड़े तो भी प्रयत्न से पुत्र होवे ॥ १–८ ॥

पुत्रस्थाने बुधक्षेत्रे मन्दक्षेत्रेऽथवा पुनः ।
मन्दे मान्दियुते दृष्टे तदा दत्तादयः सुताः ॥ ९ ॥
रविचन्द्रौ यदैकस्थावेकांशकसमन्वितौ ।
त्रिमातृभिरसौ किम्वा द्विपित्रापि च पोष्यते ॥ १० ॥
पञ्चमे षड्ग्रहैर्युक्ते तदीशे व्ययराशिगे ।
लग्नेशेन्दू बलयुतौ दत्तपुत्रोदयस्तदा ॥ ११ ॥
पञ्चमे सबलैर्जीवसितज्ञैः संयुतेक्षिते ।
बलान्विते सुतेशे च भवेयुर्बहवः सुताः ॥ १२ ॥

मिथुन, कन्या, मकर, या कुम्भ पञ्चम भाव पर शनि और गुलिक का संयोग या दृष्टि पड़े तो दत्तक पुत्र कहें । एक राशिस्थ रवि-चन्द्र एक ही नवांशगत हों तो जातक तीन माताओं या दो पिता से पोषित होवे । पञ्चम भाव में छेग्रह हों, पञ्चमेश १२ वें स्थान में रहे, लग्नेश तथा चन्द्रमा सबल हों तो भी दत्तक पुत्र होवे ।

पञ्चम भवन पर सबल बुध, गुरु, शुक्र का योग या दृष्टि पड़े और पञ्चमेश भी प्रबल रहे तो अनेक पुत्रों की उत्पत्ति कहनी चाहिये ॥ ९–१२ ॥

सुतेशे शशिसंयुक्ते चन्द्रद्रेष्काणगेऽपिच ।
कन्यकानां तदोत्पत्तिं निर्दिशेन्मतिमान्नरः ॥ १३ ॥

चन्द्रयुक्त पञ्चमेश चन्द्रमा के ही द्रेष्काण में हों तो कन्योत्पत्ति का निर्देश करना चाहिये ॥ १३ ॥

सुतेशे चरराशिस्थे सुधांशौ राहुणान्विते ।
पुत्रस्थानं गते मन्दे परजातं वदेच्छिशुम् ॥ १४ ॥
चन्द्रादष्टमगे जीवे लग्नादष्टमगे विधौ ।
पापखेटैरीक्षितयुते जातः स्याज्जारसम्भवः ॥ १५ ॥

पञ्चमेश चर राशिस्थ हो, चन्द्रमा राहु युक्त हो, और शनि पञ्चम स्थानगत हो तो जातक अपने पिता से उत्पन्न नहीं होता है । चन्द्रमा से अष्टमस्थ गुरु और लग्न से अष्टमस्थ चन्द्रमा पड़े, और वे (चन्द्र-गुरु) पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो भी जातक जारज होता है ॥ १४–१५ ॥

पुत्रस्थानाधिपे स्वोच्चे लग्नाच्चेद्द्वित्रिकोणगे ।
गुरुणा संयुते दृष्टे पुत्रभाग्यमुपैति सः ॥ १६ ॥
त्रिचतुःपापसंयुक्ते पञ्चमे शुभवर्जिते ।
नीचगे पञ्चमेशे च नीचसंस्थो भवेच्छिशुः ॥ १९ ॥

स्वोच्चस्थ पञ्चमेश लग्न से २, ४, ९, ५, स्थानों में प्राप्त हों, और उन पर गुरु

की दृष्टि या संयोग रहे तो वह पुत्रसौख्यवान् होता है। तीन या चार पापों से युक्त पञ्चमभाव शुभग्रह से सर्वथा रहित रहे, साथ ही पञ्चमदेश नीच राशिस्थ हो तो जातक नीचकर्मरत होता है ॥ १६–१७ ॥

पुत्र-प्राप्ति तथा वियोग का समय—

पुत्रस्थानं गते जीवे तदीशे भृगुसंयुते।
द्वात्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे वत्सरे जायते सुतः ॥ १८ ॥
सुतेशे केन्द्रभावस्थे कारकेण समन्विते।
षट्त्रिंशे त्रिंशदब्दे च पुत्रोत्पत्तिं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
लग्नाद् भाग्यगते जीवे जीवाद् भाग्यगते भृगौ।
लग्नेशे भृगुयुक्ते वा चत्वारिंशे सुतो भवेत् ॥ २० ॥
पुत्रस्थानं गते राहौ तदीशे पापसंयुते।
नीचराशिगतो जीवो द्वात्रिंशे पुत्रमृत्युदः ॥ २१ ॥
लग्नात् पञ्चमगे पापे जीवात् पञ्चमगेऽपि च।
षट्त्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे चत्वारिंशे सुतक्षयः ॥ २२ ॥
लग्ने मान्दिसमायुक्ते लग्नेशे नीचराशिगे।
षट्पञ्चाशन्मितेऽब्दे तु पुत्रशोकसमाकुलः ॥ २३ ॥

पंचमभाव में गुरु हो तथा पञ्चमेश शुक्र साथ में हो तो ३२ या ३३ वें वर्ष में पुत्रलाभ होता है। लग्न से नवें स्थान में गुरु हो और गुरु से नवें स्थान में शुक्र हो अथवा लग्नेश शुक्र से मिला हो तो ४० वें वर्ष में पुत्रलाभ होता है। पुत्रभाव में राहु हो तथा पञ्चमेश पापग्रह से युक्त हो तथा गुरु अपने नीच में हो तो ३२ वें वर्ष में पुत्र का निधन हो जाता है। शुक्र एवं लग्न से पंचम भाव में यदि पापग्रह हो तो ३३ या ३६ वर्ष में पुत्र का निधन हो जाता है। लग्न में गुलिक हो तथा लग्नेश अपने नीच में हो तो ५६ वें वर्ष में पुत्र का निधनजन्य शोक होता है ॥ १८–२३ ॥

दशादि-बहुसंख्यक पुत्रयोग—

चतुर्थे पापसंयुक्ते षष्ठेऽपि च तथाविधे।
सुतेशे परमोच्चस्थे लग्नेशेन समन्विते ॥ २४ ॥
कारके शुभसंयुक्ते दशसंख्यास्तु सूनवः।
परमोच्चगते जीवे धनेशे राहुसंयुते ॥ २५ ॥
भाग्येशे भाग्यसंयुक्ते संख्याता नव सूनवः।
पुत्रभाग्यगते जीवे सुतेशे बलसंयुते ॥ २६ ॥

धनेशे कर्मभावस्थे वसुसंख्यास्तु सूनवः ।
पञ्चमात् पञ्चमे मन्दे सुतस्थे च तदीश्वरे ॥ २७ ॥
सूनवः सप्तसंख्याश्च द्विगर्भे यमलं भवेत् ।
वित्तेशे पञ्चमस्थे च सुतस्थे पञ्चमाधिपे ॥ २८ ॥
षट्संख्याकसुतप्राप्तिस्तेषां च त्रिप्रजामृतिः ।
मन्दात् पञ्चमगे जीवे जीवाद् वा पञ्चमे शनौ ॥ २९ ॥
पञ्चमे पापसंयुक्ते पुत्रमेकं विनिर्दिशेत् ।
पञ्चमे पापसंयुक्ते गुरोः पञ्चमगे शनौ ॥ ३० ॥
जायान्तरे पुत्रलाभः कलत्रत्रयभाग् भवेत् ।
पञ्चमे पापसंयुक्ते जीवात् पञ्चमगे शनौ ॥ ३१ ॥
लग्नेशे धनभावस्थे, पञ्चमेशः कुजान्वितः ।
जातं जातं शिशुं हन्ति दीर्घायुश्चैव मानवः ॥ ३२ ॥

चतुर्थ तथा षष्ठ भाव पापयुक्त हो, परमोच्चगत पञ्चमेश लग्नेश के साथ रहे, और पुत्रकारक ग्रह भी शुभग्रहयुक्त हो तो दश पुत्र होवें। गुरु परमोच्चस्थ हों, धनेश एवं राहु का संयोग रहे, भाग्येश भाग्यस्थानगत होवे, तो नव संख्यक पुत्र कहना चाहिये। गुरु पञ्चम या नवम भावस्थ हो, पञ्चमेश प्रबल रहे, तथा धनेश कर्म स्थान गत हो तो आठ पुत्र कहें। पञ्चम भाव से पञ्चम में शनि हो, पञ्चमेश पञ्चम भाव में पड़े तो सात पुत्र होवें, जिनमें दो गर्भ में यमल (युग्म पुत्र) होते हैं। वित्तेश तथा पञ्चमेश पञ्चम भाव में हों तो छे पुत्र होवें जिनमें तीन का मरण हो जाय। शनि से पाँचवें गुरु या गुरु से पञ्चम शनि हो, और पञ्चम भवन पापयुक्त हो तो एक पुत्र कहना चाहिए।

पञ्चम भाव पापग्रह युक्त हो, और गुरु से पञ्चम में शनि रहे तो जातक को तीन पत्नी होवे जिनमें पहले के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों में पुत्र लाभ होता है। पञ्चम भवन पापयुक्त हो, गुरु से पञ्चमस्थ शनि पड़े, लग्नेश धन भावगत हो, और पंचमेश भौम युक्त होवे तो मनुष्य मृतात्मज होता है अर्थात् अनेक पुत्र होने पर भी पुत्र जीवित नहीं रहता, पर खुद दीर्घायु होता है ॥ २४–३२ ॥

विमर्श—"पुत्राद्देव महीपपुत्रपितृधीपुण्यानि सञ्चिन्तयेत्" के अनुसार पञ्चम भाव से देवता, राजा, पुत्र, पिता, बुद्धि, पुण्य इन सभी का विचार करना चाहिए।

किसी भाव के सम्बन्ध में सामान्यतः ये बातें विचारणीय होती हैं—(१) भावेश उत्तम स्थान (उच्च, स्वभवन, मूलत्रिकोण, मित्रक्षेत्र, केन्द्र १।४।७।१० त्रिकोण (९।५) में हो तो भाव प्रबल, और वही (भावेश) त्रिक (६।८।१२) नीचराशि,

शत्रुक्षेत्र में हों या अस्तङ्गत रहे तो भाव दुर्बल हो जाता है। (२) भाव शुभग्रह से युक्त या दृष्ट होते हुए पापग्रहों से अस्पृष्ट हो तो भाव सबल अन्यथा दुर्बल होता है। (३) भावेश अपने भाव में हों या उच्चादि उपर्युक्त स्थानों में रहकर अपने स्थान को देखता हो, शुभग्रह का भाव के साथ संयोग या दृष्टि हो तो भाव पूर्ण प्रबल होता है। इन्हीं मूल बातों को ध्यान में रखकर महर्षि पराशर ने भी पञ्चम भाव का फलादेश किया है।

मानव-जीवन में पञ्चम भाव का विद्या, पुत्र से सम्बन्ध होने के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः अन्य जातक ग्रन्थों की सहायता से इन दोनों पर विशेष प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है।

विद्या के विचार में पञ्चम, द्वितीय भाव तथा गुरु का प्राबल्य देखना चाहिए।

(१) पञ्चमेश बुध गुरु के साथ त्रिक (६।८।१२) में रहें तो जातक विद्या विहीन होता है। वही (पञ्चमेश) केन्द्र त्रिकोण आदि अच्छे स्थानों में हों तो उसे विद्यायुक्त कहना चाहिए।

(२) बुध, गुरु, पञ्चमेश सूर्य के साथ असंगत हो तो मनुष्य मन्दबुद्धि होता है। यदि वे (बुध, गुरु, पञ्चमेश) अपने-अपने भवन में हों तो बुद्धि में अल्पता नहीं कहनी चाहिए।

(३) पञ्चमेश या गुरु त्रिक में हो तो जातक गूंगा होता है।

(४) एकस्थान स्थित गुरु, राहु, शनि, बुध, शुक्र से देखे जांय तो शूद्र भी ब्राह्मण तुल्य प्रतिभा वाला और ब्राह्मण समस्त विद्या को प्राप्त करने वाला होता है।

(५) गुरु एवं द्वितीयेश बली हो और उन पर सूर्य, शुक्र की दृष्टि हो तो जातक व्याकरण शास्त्रज्ञ होता है।

(६) गुरु केन्द्रस्थ हों, द्वितीयेश बुध हों, या शुक्र स्वोच्चस्वग हो तो जातक गणितशास्त्र प्रेमी होता है।

(७) द्वितीय भावगत भौम शुभग्रह के साथ रहें और बुध की उनपर दृष्टि हो अथवा बुध केन्द्रगत हों तो भी जातक गणितज्ञ होता है।

(८) सचान्द्रि चन्द्र केन्द्रस्थ हों अथवा तृतयेश बुध के साथ केन्द्र में हों तो भी जातक गणितज्ञ होता है।

(९) यदि लग्नेश द्वितीय स्थान में हो और शुक्र द्वादशस्थान गत हों अथवा उच्चस्थ शुभग्रह केन्द्र में हों या लग्नेश पारावतांश गत हो और दोनों स्थिति में शुक्र द्वादश भावगत हों तो जातक वेदान्तशास्त्रज्ञ होता है।

(१०) यदि द्वितीयेश सूर्य अथवा मंगल हों और उस पर गुरु या शुक्र की दृष्टि हो तो जातक शास्त्रज्ञ होता है।

(११) गुरुयुक्त द्वितीयेश द्वितीय स्थानस्थ हों और इस पर पापग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक वाग्मी होता है।

(१२) बुध, गुरु द्वितीयस्थ हों और उस पर पापग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक सुव्याख्याता होता है।

(१३) द्वितीय स्थान शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक मिष्टभाषी एवं सत्यवक्ता होता है और वही भाव यदि पापग्रह से युत दृष्ट हो तो जातक दुर्मुख होता है।

(१४) धनस्थान में धनराशि का चन्द्रमा हो (ऐसा वृश्चिक लग्न में ही सम्भव है) तो जातक व्याख्याता एवं स्पष्टवादी होता है।

(१५) बुध केन्द्रस्थ हो और द्वितीयेश बली हो अथवा द्वितीयस्थ शुक्र और तृतीयस्थ अन्य शुभग्रह हों अथवा द्वितीय स्थान में उच्च या शुक्र हो और द्वितीयेश बली हों तो जातक ज्यौतिषशास्त्रज्ञ होता है।

(१६) द्वितीयेश बली, बुध केन्द्रस्थ और शुक्र पञ्चमस्थ हों तो भी जातक ज्यौतिषशास्त्र का अभिज्ञ होता है।

सन्ततिविचार—

सन्तति का विचार लग्न, चन्द्रमा, सप्तम भाव एवं गुरु से करना चाहिए।

गुरु से पञ्चम स्थान पापाक्रान्त हो, स्वयं भी गुरु पापयुक्त हों तो उस व्यक्ति की सन्तति जीवित नहीं रहती है। इसी तरह लग्न, चन्द्रमा एवं सप्तम भाव से भी देखना अर्थात् इनसे पञ्चम में पापग्रह हों और ये स्वयं भी पापयुक्त हों इन चारों में से एक योग होता हो तो विलम्बसे सन्तानोत्पत्ति होवे। दो योगों के रहने से सन्तान होकर भी मर जाय। तीन या चारों योग उपस्थित होने पर सन्तानोत्पत्ति होती ही नहीं है। ऐसी स्थिति में हरिवंशश्रवण, कन्यादान आदि पुण्यकार्य करना चाहिए।

गुरु से पञ्चमेश त्रिक (६।८।१२) में हो, लग्नेश त्रिकोणेश लग्न से त्रिक में हों तो पुत्र का सम्भव नहीं होता है। वे लग्नेश एवं त्रिकोणेश गुरु, बुध, शुक्र से युक्त हों तो विलम्बसे पुत्रोत्पत्ति होती है।

कर्कराशिस्थ चन्द्रमा पञ्चम भाव में हो तो उस मनुष्य को अल्प पुत्र एवं अधिक कन्याएँ होती हैं।

कुम्भ का शनि पञ्चम भाव में हो तो पाँच पुत्र और मकर का शनि पञ्चम भाव में पड़े तो तीन कन्याएँ अवश्य होती हैं।

बुध, शुक्र, चन्द्रमा, पञ्चम भावगत होने से कन्याप्रद होते हैं। केवल गुरु पञ्चम भावस्थ हों तो पाँच पुत्र होते हैं।

तृतीय भावस्थ बुध में दो पुत्र और तीन कन्याएँ, गुरु में पाँच पुत्र, सचन्द्र शनि में एक पुत्र, शुक्र में तीन पुत्र दो कन्याएँ, कुज में पुत्राभाव, एवं सचन्द्र राहु में पुत्रसौख्याभाव, होता है।

पापग्रह या गुरु चतुर्थ भावस्थ हो और अष्टम या पञ्चम में चन्द्रमा हो तो ३० वर्ष पर्यन्त सन्तान होने में विलम्भ होता है।

पञ्चमेश परमोच्च में पुंग्रह नवांशस्थ होते हुए सुत-भावगत हो और वह पापग्रहों से युतेक्षित नहीं हो तो अनेक पुत्र होते हैं।

वही पञ्चमेश निर्बल पापयुक्त या अस्तंगत हो तो पुत्र नहीं होता है। होता भी है तो शीघ्र मर जाता है।

पञ्चम भावस्थ शनि, राहु, या केतु गर्भनाशकारक होता है। पञ्चमस्थ रवि एवं मंगल सन्तति-क्षयकारक होता है।

बुध, गुरु, शुक्र अपनी राशि या उच्च का होकर यदि १।५।११।१०।९।७ भावों में हो तो राजा के समान बहुत धनी पुत्र होता है।

(१) यदि सूर्य लग्नस्थ हों और शनि सप्तम भाव में रहें, (२) बृहस्पति से अदृष्ट सूर्य, शनि, सप्तम भावगत हों और चन्द्रमा दशमस्थ हों, (३) सूर्यशनियुक्त षष्ठेश षष्ठस्थानस्थ हों और बुध से दृष्ट हों, (४) यदि शनि मंगल षष्ठ और चतुर्थ स्थान में हों, तो प्रत्येक स्थिति में जातक निःसन्तान होता है।

सन्तान संख्या—

(१) पञ्चमेश पुंग्रह (सू. मं. गु) के नवांश में हो तो नवांश संख्या तुल्य पुत्र, स्त्री ग्रह (चं. शु.) के नवांश में हो तो नवांश संख्या तुल्य कन्याएँ होती हैं।

(२) पञ्चम भाव पर जितने पुंग्रह की दृष्टि हो उतने पुत्र और जितने स्त्री-ग्रहों की दृष्टि हो उतनी कन्याएँ कहनी चाहिए।

(३) पञ्चम भाव के नवांश पर जितने पाप ग्रहों की दृष्टि हो और वह शुभ ग्रहों के संयोग या दृष्टि से वञ्चित रहे तो पाप ग्रह संख्या तुल्य गर्भों का नाश कहना चाहिए।

(४) पञ्चमेश या नवमेश सप्तम स्थान में हो या युग्म राशिगत हो और वह चन्द्र या शुक्र से युत दृष्ट हो तो कन्याबाहुल्य कहना चाहिये।

(५) गुरु, चन्द्र, सूर्य, इन ग्रहों के स्फुटों को जोड़ कर जो राश्यादि हो उसके नवांश संख्या तुल्य सन्तान होती है।

(६) लग्न से पञ्चमाधिप जितने नवांश में रहे वही सन्तान की संख्या कहनी चाहिये।

(७) पञ्चमेश, नवमेश तथा चतुर्थेश के स्फुटों के जोड़ने पर जो राश्यादि हो, उसकी नवांश-संख्या ही सन्तान की होती है।

(८) पञ्चम भाव की राश्यादि में जितनी नवांश संख्या बीती हो उतनी संतान की संख्या होती है। यदि पञ्चम पर शुभदृष्टि रहे तो सन्ततिसंख्या द्विगुणित हो जाती है। व्यतीत नवांशोंमें पापग्रह का जितना नवांश हो, उतनी सन्तान नष्ट हो जाती है। पापग्रह की पञ्चम पर दृष्टि रहने से नाश होने वाली सन्तान की संख्या द्विगुण हो जाती है।

(९) पञ्चमेश का नवांशाधिपति यदि स्व नवांश का हो तो उस जातक को एकमात्र पुत्र होता है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
पञ्चमभावफलाध्यायः ॥ १७ ॥

अथ षष्ठ(रोगादि)भावफलाध्यायः ॥ १८ ॥

पराशर उवाच—

अथ वच्मि फलं षष्ठभावगं ते मुनेऽधुना ।
येन ज्ञास्यसि जातस्य देहे रोग-व्रणादिकम् ॥ १ ॥
स्वभे षष्ठाधिपः पापो देहे वाऽप्यष्टमे स्थितः ।
तदा भवेद् व्रणो देहे भावराशिगतेऽङ्गके ॥ २ ॥
एवं पित्रादि-भावेशास्तत्तत्कारक-संयुताः ।
व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टम-युता यदि ॥ ३ ॥
तेषामपि व्रणं वाच्य-मादित्येन शिरोव्रणम् ।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेन नाभिषु ॥ ४ ॥
गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे ।
शशिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत् ॥ ५ ॥
लग्नाधिपः कुज-क्षेत्रे बुधक्षेत्रेऽपि वा स्थिते ।
यत्र कुत्र स्थितो ज्ञेन वीक्षितो मुखरुक्प्रदः ॥ ६ ॥

हे मुने ! अब मैं षष्ठ (रोगादि) भाव का फल बतलाता हूँ जिससे जातक के शारीरिक रोग-व्रण आदि का ज्ञान हो सकता है । पाप षष्ठेश अपने घर (षष्ठस्थान) लग्न या अष्टम स्थान में हो तो जातक के शरीर के षष्ठभावाश्रित अङ्ग में व्रणकारक होता है । इसी तरह पित्रादि-भावेश षष्ठेश से युक्त हो और षष्ठाष्टम गत हो तो पित्रादिकों को व्रणादि कहना । यदि षष्ठेश रवि उक्त स्थान में हो तो शिरोव्रण, चन्द्रमा हो तो मुखव्रण, मंगल हो तो कण्ठव्रण, बुध हो तो नाभिगत व्रण, गुरु हो तो नासिकाव्रण, शुक्र हो तो नेत्रव्रण, शनि हो तो पादव्रण और राहु केतु हो तो उदरव्रण कहना चाहिये । लग्नेश कुजक्षेत्र (मेष-वृश्चिक) या बुधक्षेत्र (कन्या-मिथुन) में होकर बुध-दृष्ट हो तो मुखव्रण होता है ॥ १–६ ॥

कुष्ठ योग—

लग्नाधिपौ कुजबुधौ चन्द्रेण सहितौ यदि ।
राहुणा शनिना सार्धं, कुष्ठं तत्र विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥
लग्नाधिपं विना लग्ने स्थितश्चेत्तमसा शशी ।
श्वेतकुष्ठं तदा कृष्णकुष्ठं च शनिना सह ॥ ८ ॥
कुजेन रक्तकुष्ठं स्यात्तत्तदेवं विचारयेत् ।

लग्नेश बुध-मंगल, चन्द्रमा, राहु शनि के साथ हों तो कुष्ठरोग का निर्देश

करें। लग्न में राहु के साथ चन्द्रमा हो, और लग्नेश वहाँ नहीं हो, तो श्वेत कुष्ठ कहें, शनि के साथ कृष्ण कुष्ठ, और मंगल के साथ रहने पर रक्त कुष्ठ कहना चाहिये।

गण्डादि रोग योग—

लग्ने षष्ठाष्टमाधीशौ रविणा चेत् समन्वितौ ॥ ९ ॥
ज्वरगण्डः कुजे ग्रन्थिः शस्त्रव्रणमथापि वा ।
बुधेन पित्तं गुरुणा रोगाभावं विनिर्दिशेत् ॥ १० ॥
स्त्रीभिः शुक्रेण शनिना वायुना संयुतो यदि ।
गण्डश्चाण्डालतो नाभौ केतुना तु गृहे भयम् ॥ ११ ॥
चन्द्रेण गण्डः सलिलैः कफश्लेष्मादिना भवेत् ।
एवं पित्रादि-भावान्तं तत्तत्कारकयोगतः ॥ १२ ॥
गण्डस्तेषां भवेदेव-मूह्यमेतन्मनीषिभिः ।

रवियुक्त षष्ठाष्टमेश लग्न में हो तो ज्वरगण्ड, मंगल के साथ होने पर ग्रन्थिवात या शस्त्रकृत व्रण, बुध के साथ हो तो पैत्तिक रोग, गुरु के साथ रहने पर रोगाभाव, शुक्र के साथ होने पर स्त्री द्वारा रोगोत्पत्ति, शनियुक्त होने पर वायु-प्रकोप, राहु के साथ होने पर वे (षष्ठेश, अष्टमेश) लग्न में रहें तो नाभि में व्रण, केतु के साथ में गृहभीति कहें। यदि चन्द्रमा से युक्त हो तो जलजगण्ड या कफश्लेष्मा का प्रकोप कहें। इसी तरह पित्रादि (दशम आदि) भावों के वश पिता आदियों के भी रोग का विचार करना चाहिये ॥ ९–१२½ ॥

रोगाप्तिसमय—

रोगस्थानगते पापे तदीशे पापसंयुते ॥ १३ ॥
राहुणा संयुते मन्दे सर्वदा रोगसंयुतः ।
रोगस्थानगते भौमे तदीशे रन्ध्रसंयुते ॥ १४ ॥
षष्ठे वा द्वादशे वर्षे ज्वररोगी भवेन्नरः ।
षष्ठस्थानगते जीवे तद्गृहे चन्द्रसंयुते ॥ १५ ॥
द्वाविंशैकोनत्रिंशेऽब्दे कुष्ठरोगं विनिर्दिशेत् ।
रोगस्थानं गते राहौ केन्द्रे मान्दिसमन्विते ॥ १६ ॥
लग्नेशे नाशराशिस्थे षड्विंशे क्षयरोगिता ।
व्ययेशे रोगराशिस्थे तदीशे व्ययराशिगे ॥ १७ ॥
ऊनत्रिंशेऽथवा त्रिंशे वर्षे गुल्मरुजं दिशेत् ।

रिपुस्थानगते चन्द्रे शनिना संयुते सति ॥ १८ ॥

पञ्चपञ्चाशदब्देषु रक्तकुष्ठं विनिर्दिशेत् ।
लग्नेशे लग्नराशिस्थे मन्दे शत्रुसमन्विते ॥ १९ ॥
एकोनषष्टिवर्षे तु वातरोगादितो भवेत् ।
रन्ध्रेशे रिपुराशिस्थे व्ययेशे लग्नसंस्थिते ॥ २० ॥
चन्द्रे षष्ठेशसंयुक्ते वसुवर्षे मृगाद्भयम् ।
षष्ठाष्टम-गतो राहुस्तस्मादष्टमगे शनौ ॥ २१ ॥
प्रथमे वा द्वितीयेऽब्दे जातकस्य द्विजोत्तम ।
भवेदग्निभयं तस्य त्रिवर्षे पक्षिदोषभाक् ॥ २२ ॥
षष्ठाष्टमगते सूर्ये तद्व्यये चन्द्रसंयुते ।
पञ्चमे नवमेऽब्दे तु जलभीतिं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥
अष्टमे मन्दसंयुक्ते रन्ध्राद्वा द्वादशे कुजः ।
दशमेऽब्देऽथवा त्रिंशे स्फोटकादि विनिर्दिशेत् ॥ २४ ॥
रन्ध्रेशे राहुसंयुक्ते तदंशे रन्ध्रकोणगे ।
द्वाविंशेऽष्टादशे वर्षे ग्रन्थि-मेहादि-पीडनम् ॥ २५ ॥
लाभेशे रिपुभावस्थे तदीशे लाभराशिगे ।
एकत्रिंशे भवेदब्दे शत्रुमूलाद्धनव्ययः ॥ २६ ॥
सुतेशे रिपुभावस्थे षष्ठेशे गुरुसंयुते ।
व्ययेशे लग्नभावस्थे तस्य पुत्रो रिपुर्भवेत् ॥ २७ ॥
लग्नेशे षष्ठराशिस्थे षष्ठेशेऽपि च षष्ठगे ।
दशमैकोनविंशेऽब्दे शुनकाद् भीतिरुच्यते ॥ २८ ॥

षष्ठस्थानगत पाप हो, षष्ठेश भी पापयुक्त हो, और शनि-राहु का संयोग हो तो सदैव जातक रोगाकुल होता है। षष्ठस्थान में मंगल हो, षष्ठेश अष्टम स्थान में हो, तो छठे या बारहवें वर्ष में मनुष्य ज्वररोग-ग्रस्त होवे। गुरु षष्ठस्थानगत हो, गुरु की राशि में चन्द्रमा हो, तो १२ या १९ वें वर्ष में कुष्ठरोग कहना चाहिए। राहु षष्ठ स्थान में हो, गुलिक केन्द्रगत हो, लग्नेश अष्टमस्थानस्थ हों तो २६ वें वर्ष में क्षयरोग (यक्ष्मा) कहना। व्ययेश षष्ठस्थान में, और षष्ठेश व्यय स्थान में हों, तो २९ या ३० वर्ष में गुल्मरोग होने का आदेश करें। षष्ठ स्थान में शनियुक्त चन्द्र हो तो ५५ वर्ष में रक्तकुष्ठ कहें। लग्नेश लग्न में, शनि षष्ठ स्थान में हो तो ५९ वें वर्ष में वातरोग की पीड़ा होती है। अष्टमेश षष्ठस्थान में, और व्ययेश लग्न में हों, तथा षष्ठेश और चन्द्रमा का संयोग होवे तो अष्टम वर्ष में हरिण से भय कहना चाहिये। षष्ठ या अष्टम में राहु हो और उससे अष्टमस्थ

शनि होवे तो प्रथम या द्वितीय वर्ष में अग्निभय और तृतीय वर्ष में पक्षी से भय कहें। षष्ठ या अष्टम में सूर्य हो और उनसे बारहवें में चन्द्रमा हो तो पाँचवें या नवमें वर्ष में जल से भय कहना चाहिये। अष्टमस्थान शनियुक्त हो और आठवें से बारहवें (७) में मंगल हो तो दशवें या तीसवें वर्ष में फोड़ों का प्रकोप कहना। राहुयुक्त अष्टमेश अपने नवमांश में होकर अष्टम से नवम या पञ्चम (९।५) में हों तो २२ या १८ वर्ष में ग्रन्थि, प्रमेह आदि रोग की पीड़ा होती है। लाभेश षष्ठभाव में, और षष्ठेश लाभभाव गत हो, तो ३१ वें वर्ष में शत्रुमूलक धननाश होता है। पञ्चमेश षष्ठ भाव में, षष्ठेश तथा गुरु का संयोग हो, और व्ययेश लग्नगत होवे तो उसको अपने पुत्र से शत्रुता होती है। लग्नेश एवं षष्ठेश षष्ठ राशिगत हो तो १० वें या १९ वे वर्ष में कुत्ते का भय कहना चाहिये॥ १३–२८॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
षष्ठभावफलाध्यायः॥ १८॥

अथ सप्तम(जाया)भावफलाध्यायः॥१९॥

पराशर उवाच—

अथ मैत्रेय! ते जाया-भावजं फलमुच्यते।
स्वर्क्षे स्वोच्चे तु जायेशे पूर्णजाया-सुखं वदेत्॥ १॥
कलत्रपो विना स्वर्क्षं स्थितः षष्ठेऽष्टमे व्यये।
रोगिणीं कुरुते नारीं तथा तुङ्गादिकं विना॥ २॥
सप्तमे तु स्थिते शुक्रेऽतीव कामी भवेन्नरः।
यत्र कुत्र स्थिते पापयुते स्त्रीमरणं भवेत्॥ ३॥

पराशर ने कहा :—हे मैत्रेय! अब मैं जाया भाव का फल कहता हूँ। जायेश (सप्तमेश) स्वभवन या स्वोच्च में रहे तो पूर्ण स्त्री-सुख होता है, किन्तु वही जायेश स्वभवन, स्वोच्च, स्ववर्गोत्तम, आदि को छोड़ अन्यत्र होते हुए छठें, आठवें, या बारहवें में पड़े तो उसकी स्त्री रुग्णा होती है। सप्तम भवन में शुक्र हो तो मनुष्य अत्यधिक कामी होता है। जहाँ कहीं भी स्थित शुक्र पापग्रहयुक्त हो तो स्त्री-मरण कारक होता है। अन्यत्र भी सखल शुक्र स्त्री-मारक कहा गया है जैसेः— "शुक्रः खलान्तरगतः सखलः, सिताद्वा पापा व्ययास्तमृतिगा रमणीहराः स्युः" ॥१–३॥

सौम्यैर्युक्तोऽथवा दृष्टः कलत्रेशो बलान्वितः।
कुरुते जातकं सर्वं सुख-सम्पत्ति-शालिनम्॥ ४॥
जायेशेऽस्तंगते नीच-रिपुभस्थेऽतिदुर्बले।
तदीयां सरुजा जाया बहुभार्यः स जायते॥ ५॥

कवेः शनेर्वा राशिस्थे सौम्यदृष्टे कलत्रपे।
स्वतुङ्गभे तदा जातो बहुदारः प्रजायते॥ ६॥

प्रबल जायेश शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो जातक सर्वसम्पत्तिशाली होता है। जायेश अस्तंगत, नीच तथा शत्रु राशि स्थित या अति दुर्बल हो तो उस जातक की स्त्री रुग्णा होती है और उसे अनेक स्त्री होने का योग होता है। जायेश शुक्र या शनि के राशि (वृष, तुला, मकर, कुम्भ) गत होते हुए शुभग्रहों से दृष्ट हो या स्वोच्चस्थ जायेश शुभदृष्ट हों तो निश्चय मनुष्य अनेक स्त्री वाला होता है॥ ४–६॥

वन्ध्यासञ्ज्ञो मदे भानौ चन्द्रे राशिसमाः स्त्रियः।
कुजे रजस्वलासञ्ज्ञो वन्ध्यासञ्ज्ञश्च कीर्त्तितः॥ ७॥
बुधे वेश्या च हीना च वणिक्-स्त्री वा प्रकीर्त्तिता।
गुरौ ब्राह्मणभार्या स्याद् गर्भिणी-सञ्ज्ञ एव च॥ ८॥
हीना च पुष्पिणी वाच्या मन्दराहुफणीश्वरैः।
कुजेऽस्ते सुस्तनी मन्दे दुर्बला व्याधिसंयुता॥ ९॥
कठिनोर्ध्वकुचाऽऽचार्ये सिते स्थूलोत्तमस्तनी।
पापे द्वादश-कामस्थे क्षीणचन्द्रस्तु पञ्चमे॥ १०॥
जातश्च भार्यावश्यः स्या-दिति जातिविरोधकृत्।
जामित्रे मन्दभौमे तु तदीशे मन्दभूमिजे॥ ११॥
वेश्या वा जारिणी वापि तस्य भार्या न संशयः।
भौमांशकगते शुक्रे भौमक्षेत्र-गतेऽथवा॥ १२॥
भौमयुक्तेऽथवा दृष्टे भगचुम्बनभाग् भवेत्।
मन्दांशकगते शुक्रे मन्द-क्षेत्र-गतेऽपि च॥ १३॥
मन्दयुक्ते च दृष्टे च शिश्न-चुम्बनतत्परः।
दारेशे स्वोच्च-राशिस्थे द्यूने शुभसमन्विते॥ १४॥
लग्नेशे बलसंयुक्ते कलत्रस्थानगे सति।
पुत्रपौत्रादि-संयुक्ता गुणाढ्या तस्य गेहिनी॥ १५॥
जायेशे रिपुनीचस्थे मूढे वा पापवीक्षिते।
पापेक्षितयुते वाऽस्ते जायाहानिं विनिर्दिशेत्॥ १६॥
षष्ठेऽष्टमे व्यये वापि मदेशो दुर्बलो यदि।
नीचराशिगतः किंवा, दारनाशं विनिर्दिशेत्॥ १७॥

कलत्र-स्थानगे चन्द्रे तदीशे व्ययराशिगे।
कारको बलहीनश्च दारसौख्यं न विद्यते ॥ १८ ॥

सप्तम स्थान में सूर्य रहें तो स्त्री वन्ध्या होती है। चन्द्रमा के रहने पर राशि स्वभावानुकूल स्वभाव वाली स्त्री होती है। मंगल के सप्तम भवनस्थ होने पर जातक को रजस्वला एवं वन्ध्या स्त्री से सङ्ग होता है। बुध के वहाँ रहने पर वेश्या, नीच जाति या बनियों की स्त्री से आसक्ति होती है। गुरु यदि वहाँ हो तो ब्राह्मणी तथा गर्भिणी का सङ्ग होवे। शनि, राहु, केतु, यदि हों तो हीन जाति या रजस्वला से सङ्ग कहना चाहिए। मङ्गल सप्तम भवन में हो तो सुन्दरस्तन वाली, शनि हो तो दुबली तथा रुग्णा, गुरु हो तो कठोर एवं उन्नत स्तन वाली, शुक्र हो तो स्थूल एवं उन्नत स्तन वाली स्त्री होती है।

जिस जातक के बारहवें एवं सातवें भाव में पापग्रह हों, और क्षीण चन्द्र पञ्चम में होवे तो वह स्त्री का वश्य तथा जाति का विरोध करने वाला होता है। सप्तम भवन में शनि-मंगल होवे या वे सप्तमेश हों, तो निःसन्देह उसकी स्त्री वेश्या या जार (पर पुरुष) में आसक्त होती है। शुक्र यदि मंगल के नवांश या मेष-वृश्चिकस्थ हो, और मङ्गल का संयोग अथवा दृष्टि शुक्र पर हो तो जातक भगचुम्बनकारी होवे। उसी तरह शुक्र शनि-क्षेत्र अथवा शनि-नवांशगत होकर शनि से युक्त अथवा दृष्ट हो तो वह दूसरे का लिङ्ग चुम्बन करने वाला होता है।

सप्तमेश अपने उच्च राशिस्थ हो, और सप्तम भवन शुभग्रह से युक्त हो, और प्रबल लग्नेश सप्तमस्थानस्थ होवे तो उसकी स्त्री पुत्र-पौत्रादियों से युक्त, गुणवती होती है। सप्तमेश शत्रु-क्षेत्र या नीच राशिगत या अस्तंगत होकर पापग्रह से दृष्ट हो, और सप्तमभवन भी—पापाक्रान्त या पापदृष्ट हो तो उसकी पत्नी का नाश कहना चाहिए। बलहीन सप्तमेश ६, ८, १२, स्थानों में या नीच राशि में प्राप्त हो तो भी स्त्री—का नाश होता है। चन्द्रमा सप्तम स्थान में, सप्तमेश बारहवें में हों और स्त्रीकारक ग्रह निर्बल होवे तो उसे स्त्री का सौख्य नहीं होता है ॥ ७–१८ ॥

द्विश्यादिपत्नीयोग—

नीचे पापर्क्षगे वापि सपापे च कलत्रपे।
क्लीबग्रहे सप्तमस्थे द्विभार्यो जायते नरः ॥ १९ ॥
कलत्रस्थानगे भौमे शुक्रे जामित्रगे शनौ।
लग्नेशे रन्ध्रराशिस्थे कलत्रत्रयवान् भवेत् ॥ २० ॥
द्विस्वभावगते शुक्रे स्वोच्चे तद्राशिनायके।
दारेशे बलसंयुक्ते बहुदार-समन्वितः ॥ २१ ॥

पापग्रह युक्त सप्तमेश नीच या पापग्रह राशि-गत हो और बुध, शनि, सप्तमस्थ होवे तो जातक दो स्त्री वाला होता है। सप्तम में मङ्गल-शुक्र तथा शनि हों और लग्नेश अष्टमस्थानगत होवें तो तीन स्त्री वाला जातक होता है। शुक्र द्विस्वभाव-

राशिगत हो, उस द्विस्वभाव राशि का अधिप अपने उच्चराशि गत हो, तथा दारेश सबल हों तो मनुष्य बहुत स्त्री वाला होता है ॥ १९–२१ ॥

विवाह का समय--

दारेशे शुभराशिस्थे स्वोच्चस्वर्क्षगते भृगौ ।
पञ्चमे नवमेऽब्दे तु विवाहः प्रायशो भवेत् ॥ २२ ॥
दारस्थानं गते सूर्ये तदीशे भृगुसंयुते ।
सप्तमैकादशे वर्षे विवाहः प्रायशो भवेत् ॥ २३ ॥
कुटुम्ब-स्थानगे शुक्रे दारेशे लाभराशिगे ।
दशमे षोडशाब्दे च विवाहः प्रायशो भवेत् ॥ २४ ॥
लग्नकेन्द्रगते शुक्रे लग्नेशे मन्द-राशिगे ।
वत्सरैकादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥ २५ ॥
लग्नात् केन्द्रगते शुक्रे तस्मात् कामगते शनौ ।
द्वादशैकोनविंशे च विवाहः प्रायशो भवेत् ॥ २६ ॥
चन्द्राज्जामित्रगे शुक्रे शुक्राज्जामित्रगे शनौ ।
वत्सरेऽष्टादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥ २७ ॥
धनेशे लाभराशिस्थे लग्नेशे कर्मराशिगे ।
अब्दे पञ्चदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥ २८ ॥

जायेश शुभग्रह की राशि में हो तथा शुक्र अपने उच्च या अपने भवन-स्थित होवे तो पञ्चम या नवम वर्ष में बहुधा विवाह होता है। सूर्य सप्तम स्थान में, और जायेश शुक्रयुक्त हों तो सप्तम या एकादश वर्ष में प्रायः विवाह होता है। शुक्र द्वितीय स्थान में हों और सप्तमेश एकादश में होवे तो दशवें या सोलहवें वर्ष में प्रायः विवाह होता है। शुक्र लग्नादि केन्द्रगत हो, और लग्नेश शनि-राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो ११ वें वर्ष में विवाह कहना चाहिये। लग्न से केन्द्र स्थान में शुक्र हो और शुक्र से सप्तम में शनि होवे तो १२ या १९ वर्ष में बहुधा विवाह होता है। चन्द्रमा से सप्तमस्थ शुक्र हो और शुक्र से सप्तम में शनि पड़े तो १८ वें वर्ष में प्रायः विवाह होता है। धनेश लाभ स्थानगत हों, और लग्नेश दशम में हो तो पन्द्रहवें वर्ष में विवाह होता है ॥ २२–२८ ॥

धनेशे लाभ-राशिस्थे लाभेशे धनराशिगे ।
अब्दे त्रयोदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥ २९ ॥
रन्ध्राज्जामित्रगे शुक्रे तदीशे भौमसंयुते ।
द्वाविंशे सप्तविंशेऽब्दे विवाहं लभते नरः ॥ ३० ॥

दारांशकगते लग्न-नाथे दारेश्वरे व्यये ।
त्रयोविंशे च षड्विंशे विवाहं लभते नरः ॥ ३१ ॥
रन्ध्रेशे दार-राशिस्थे लग्नांशे भृगुसंयुते ।
पञ्चविंशे त्रयस्त्रिंशे विवाहं लभते नरः ॥ ३२ ॥
भाग्याद् भाग्यगते शुक्रे तद्द्वये राहुसंयुते ।
एकत्रिंशात् त्रयस्त्रिंशे दारलाभं विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥
भाग्याज्जामित्रगे शुक्रे तद्द्यूने दारनायके ।
त्रिंशेऽथवा सप्तविंशे वर्षे पाणिग्रहो भवेत् ॥ ३४ ॥

धनेश लाभ स्थान में और लाभेश धन स्थान में हो, तो तेरहवें वर्ष में विवाह होता है। अष्टम से सप्तम (द्वितीय) में शुक्र हो और अष्टमेश मंगल से युक्त हो तो २२ या २७ वें वर्ष में विवाह होता है। लग्नेश यदि सप्तमेश के नवांश में हो, और सप्तमेश व्यय स्थानगत रहे तो २३ या २६ वें वर्ष में विवाह कहना चाहिये। अष्टमेश यदि सप्तम स्थान-गत हो और लग्न का नवांश शुक्र-संयुक्त हो तो २५ या ३३ वें वर्ष में विवाह होता है। भाग्य स्थान से नवम स्थान में शुक्र हो और उन दोनों में से किसी एक में (भाग्य स्थान या भाग्य से नवम स्थान में) राहु हो तो ३१ से ३३ वर्ष के बीच विवाह कहना चाहिये। भाग्य से सप्तम अर्थात् तृतीय स्थान में शुक्र हो और शुक्र से सप्तम (भाग्य भाव) में सप्तमेश हो तो ३० या २७ वें वर्ष में विवाह होता है ॥ २९–३४ ॥

स्त्री का मृत्यु-समय—

दारेशे नीच-राशिस्थे शुक्रे रन्ध्रारिसंयुते ।
अष्टादशे त्रयस्त्रिंशे वत्सरे दारनाशनम् ॥ ३५ ॥
मदेशे नाशराशिस्थे व्ययेशे मदराशिगे ।
तस्य चैकोनविंशाब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥
कुटुम्बस्थानगो राहुः कलत्रे भौम-संयुते ।
पाणिग्रहात्तृतीयेऽह्नि सर्पदंशाद् वधूमृतिः ॥ ३७ ॥
रन्ध्रस्थानगते शुक्रे तदीशे सौरिराशिगे ।
द्वादशैकोनविंशाब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ॥ ३८ ॥
लग्नेशे नीचराशिस्थे धनेशे निधनं गते ।
त्रयोदशे तु सम्प्राप्ते कलत्रस्य मृतिर्भवेत् ॥ ३९ ॥
यस्य जन्मनि षष्ठस्थः कुजो राहुः कलत्रगः ।
सूर्यपुत्रोऽष्टमस्थश्चेज्जाया तस्य न जीवति ॥ ४० ॥

सप्तमेश नीच-राशिस्थ हो, और शुक्र षष्ठ या अष्टम स्थानगत हो तो १८ या ३३ वें वर्ष में पत्नी का देहावसान होता है। राहु द्वितीयस्थानगत हो, और सप्तम भवन मंगल युक्त होवे तो विवाह के तीसरे दिन सर्पदंश से स्त्री की मृत्यु होती है। शुक्र अष्टमस्थ हो और अष्टमेश शनिराशि (मकर कुम्भ) में होवे तो १९ वें वर्ष में स्त्री का मरण होता है। लग्नेश अपने नीच राशिगत हो और धनेश अष्टमस्थ होवे तो ३३ वें वर्ष में पत्नी की मृत्यु हो जाती है। जिस जातक के जन्म समय में मंगल षष्ठ, राहु सप्तम और शनि अष्टम, स्थान में हों तो उसकी पत्नी मर जाती है ॥ ३५–४० ॥

विवाहत्रययोग का समय—

शुक्राज्जामित्रगे चन्द्रे चन्द्राज्जामित्रगे बुधे।
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे प्रथमं दशमाब्दिकम् ॥ ४१ ॥
द्वाविंशे च द्वितीयं स्यात् त्रयस्त्रिंशे तृतीयकम्।
विवाहं लभते मर्त्यो नात्र कार्या विचारणा ॥ ४२ ॥

शुक्र से सप्तमस्थ चन्द्रमा, चन्द्रमा से सप्तमस्थ बुध, और अष्टमेश यदि पञ्चम स्थानगत हो तो पहला विवाह दशवें वर्ष में, दूसरा २२ वें वर्ष में और तीसरा ३३ वें वर्ष में होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१–४२ ॥

जायाभाव-विमर्श—

विमर्श—(१) जायेश शुभयुक्त न होकर त्रिक में हो और नीच या अस्तङ्गत हो तो स्त्रीसुख नहीं होता है।

(२) त्रिकेश (६।८।१२ के स्वामी) जाया भाव गत हो और उसमें शुभ ग्रह का संयोग या दृष्टि नहीं हो अथवा सप्तमेश त्रिकेश भी हो तो स्त्रीसुख में बाधा होती है।

(३) यदि जायेश व्ययस्थ हो और लग्नेश एवं जन्मराशीश सप्तमस्थ हो तो भी जातक को स्त्री-सौख्य नहीं होता है।

(४) सचन्द्र शुक्र जिस भाव में हो वहाँ से सप्तमस्थ शनि-मङ्गल हो तो जातक विवाह से भी वञ्चित होता है।

(५) सप्तमस्थ शनि तथा चन्द्रमा के होने से जातक प्रायः अविवाहित रहता है।

(६) सप्तम में बुध शुक्र शुभग्रह की दृष्टि या योग से रहित रहे तो जातक स्त्रीविहीन होता है।

(७) शुक्र मङ्गल सप्तमभाव गत हो या नवम पञ्चम में हो तो भी जातक स्त्रीविहीन होता है।

(८) शुक्र किसी पापग्रह के साथ पञ्चम, सप्तम या नवम में हो तो जातक विवाह-वञ्चित हो सकता है या स्त्रीवियोग से पीड़ित रहता है।

(९) लग्न, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, द्वादश भावगत पाप ग्रह विशेषतः मङ्गल और शनि पत्नीघातक होते हैं।

(१०) पापग्रहों के बीच का शुक्र, या सपाप शुक्र, और शुक्र से सप्तम अष्टम तथा द्वादश गत पापग्रह स्त्री घातक होते हैं।

(११) चन्द्रमा से भी १।४।७।८।१२ स्थानों में पापग्रह दम्पति का (पति की कुण्डली में रहने से स्त्री का और पत्नी की कुण्डली में रहने से पति का) घातक होते हैं।

स्त्री-संख्या विचार—

(१) सप्तम में बुध गुरु, या रवि-मङ्गल के रहने से जातक एक स्त्री वाला होता है।

(२) लग्नेश तथा सप्तमेश दोनों ही लग्न या सप्तम में रहें तो जातक को दो स्त्रियां होती हैं।

(३) सप्तम या अष्टम में पापग्रह, और मंगल द्वादशस्थ हो, तथा द्वादशेश अदृश्य चक्रार्धगत हों तो जातक को द्वितीय विवाह अवश्य होना चाहिए।

(४) यदि सप्तमेश शुभग्रहों के साथ त्रिक में हों, और सप्तम में पापग्रह हों तो जातक दो स्त्री वाला होवे।

(५) लग्नेश द्वादशस्थ हों द्वितीयेश पापग्रह के साथ हो, और सप्तम स्थान भी पापग्रह से आक्रान्त होवे तो भी जातक को दो स्त्रियाँ होंगी।

(६) मङ्गल सप्तम, अष्टम, या द्वादशस्थान गत हो, और सप्तमेश की दृष्टि इस पर नहीं हो तो भी जातक द्वितीय स्त्री वाला होता है।

(७) सप्तम या द्वितीयस्थान पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो, और सप्तमेश या द्वितीयेश निर्बल हो तो भी जातक को दूसरा विवाह होना चाहिए।

(८) सप्तम या द्वितीय स्थान में बहुत से पापग्रह हों, या द्वितीयेश और सप्तमेश पर पापग्रह की दृष्टि हों, तो जातक को तीन विवाह होते हैं।

(९) यदि लग्न या द्वितीय, या सप्तम में कोई पापग्रह बैठा हो, सप्तमेश नीच या अस्तंगत हो तो भी जातक को तीन स्त्रियाँ होती हैं।

(१०) यदि नवमेश सप्तमगत, और सप्तमेश चतुर्थगत हो, अथवा सप्तमेश और एकादशेश केन्द्रगत हों तो दोनों योगों में जातक को बहुत स्त्रियां होती हैं।

विवाह-समय

(१) जायाकारक ग्रह और सप्तमेश इन दोनों में जो बली हो उसकी दशा अन्तर्दशा में विवाह होता है।

(२) स्फुट लग्नेश तथा सप्तमेश के योग की राश्यादि में जब गोचर का गुरु आवे, उस समय विवाह सम्भव है।

(३) जन्मकालिक चन्द्रराशि-स्वामी के स्फुट को अष्टमेश के स्फुट में जोड़ने पर जो राश्यादि आवे उसमें गोचर का गुरु जब आवे उस समय विवाह होना सम्भव है।

(४) लग्नेश जिस नवांश में हो उसका अधिप जिस राशिगत हो उससे द्वितीय स्थान में गोचर का चन्द्र और गुरु जब आवें तब विवाह सम्भव है।

(५) सप्तमेश और लग्नेश समीपवर्त्ती हो तो विवाह प्रायः कम अवस्था में ही होता है। इसी तरह लग्न या सप्तम भाव के समीप कोई शुभग्रह हों तो भी विवाह कम अवस्था में होवे।

(६) लग्न-सप्तम, द्वितीय में यदि शुभग्रह बैठे हो या शुभग्रह की दृष्टि हो तो भी विवाह अल्प ही अवस्था में होता है।

(७) लग्न, द्वितीय, सप्तम और शुक्र के पीडित होने से विवाह विलम्बतः होता है और शुभग्रह से युत दृष्ट होने पर कम ही अवस्था में कहना चाहिए।

योगानुसार स्त्री का विवरण—

(१) शुक्र चर राशि के हों, गुरु सप्तमभावगत और लग्नेश बली हो तो जातक की स्त्री पतिव्रता होती है।

(२) सप्तमेश गुरु पर यदि बुध-शुक्र को दृष्टि हो अथवा सप्तमस्थ गुरु पापग्रह की दृष्टि या संयोग से रहित हो तो भी जातक की स्त्री पतिव्रता होती है।

(३) सप्तम पर गुरु की पूर्ण दृष्टि होने से भी जातक की स्त्री दयालु, सुन्दरी एवं सच्चरित्रवती होती है। यदि सप्तम पर पापग्रह की पूर्ण दृष्टि हो तो उसकी स्त्री झगड़ालू और दुःख देने वाली होती है।

(४) लग्न में राहु वा केतु के रहने से स्त्री स्वामी के वशीभूत होती है।

(५) लग्नेश सप्तम में सप्तमेश पञ्चक में रहे तो जातक अपनी स्त्री के मतानुसार काम करता है।

(६) सप्तमेश शुभग्रह के साथ हो, या उच्चस्थ, स्वगृही या मित्रगृही हो तो भी स्त्री अच्छी सुशीला होती है। यदि सप्तमेश या शुक्र पर गुरु-बुध की दृष्टि हो या गुरु सप्तम स्थान में रहे, अथवा सप्तमेश केन्द्रगत होकर शुभग्रह से दृष्ट होता है। तो भी उसकी स्त्री पतिव्रता तथा गुणवती होती है।

(७) सप्तमेश भौम यदि स्वगृही, मित्रगृही, या उच्चस्थानगत हो, और शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो उसकी स्त्री निष्ठुर होती हुई भी पति की आज्ञा कारिणी तथा प्रेम करने वाली होती है। और वही मंगल [सप्तमेश] नीच, शत्रुगृही या अस्तंगत होवे तो स्त्री-कुलटा, या दुश्चरित्रा होती है।

(८) बली सप्तमेश गुरु मित्रगृही, उच्चस्थ, या स्वगृही हो तो जातक की स्त्री सन्तानवती, सदाचारशील, तथा धार्मिक विचार वाली होती है।

(९) सप्तमेश शुक्र पापग्रह युक्त या पापदृष्ट हो, अथवा शुक्र नीच स्थान या शत्रु नवांशगत हो तो उसकी स्त्री कठोर चित्त वाली, कुलटा होती है।

(१०) बली (सप्तमेश) शुक्र .शुभग्रह युक्त अथवा दृष्ट हो, शुभनवांशगत या मित्रगृही हो तो उसकी स्त्री पुत्रवती तथा सच्चरित्रा होती है।

(११) सप्तमेश शनि बली होते हुए शुभग्रह युक्त या दृष्ट हो तो उसकी स्त्री विनीता तथा उत्तम स्वभाव वाली होती है। वही शनि पापग्रह के साथ हो, नीच राशिस्थ अथवा नीच नवांश गत हो, पाप दृष्ट.हो तो उसकी स्त्री क्रूरा तथा कुलटा होती है।

(१२) यदि सप्तमेश त्रिकस्थ [६।८।१२] हो, शुक्र निर्बल हो या सप्तमेश और शुक्र नीचस्थ होकर शुभ-दृष्टिविहीन हो तो उसकी स्त्री अच्छी न होकर निकम्मी होती है।

[१३] यदि सप्तमेश, दशमेश एवं शुक्र बली तथा शुभनवांशगत हो, या सप्तमेश गुरु से संयुक्त या दृष्ट हो, या सप्तमेश पर शुक्र और सूर्य की दृष्टि पड़ती हो और गुरु सप्तमस्थ हो, तो जातक की स्त्री पतिव्रता, सल्लक्षणा होती है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
सप्तम भावफलाध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

अथ अष्टम(आयु)भावफलाध्यायः ॥ २० ॥

अथायुर्गेहगं वक्ष्ये फलं शृणु मुनेऽधुना।
केन्द्रगो मृतिनाथस्तु दीर्घायुष्यप्रदः स्मृतः ॥ १ ॥
आयुःस्थानाधिपः पापैः सहैवायुषि संस्थितः।
करोत्यल्पायुषं जातं लग्नेशोऽप्यत्र संस्थितः ॥ २ ॥
एवं हि शनिना चिन्ता कार्या तर्कैर्विचक्षणैः।
कर्माधिपेन च तथा चिन्तनं कार्यमायुषः ॥ ३ ॥

हे मैत्रेय! अब मैं अष्टम [आयुर्दाय] भाव का फल कहता हूँ, सुनो। अष्टमेश केन्द्रवर्त्ती हो तो जातक दीर्घायु होता है। अष्टमेश या लग्नेश पापग्रहों के साथ अष्टम में रहे तो मनुष्य अल्पायु होता है। इसी तरह शनि तथा दशमेश से भी आयु का विचार करना चाहिए ॥ १–३ ॥

दीर्घायुर्योग—

षष्ठे व्ययेऽपि षष्ठेशो व्ययाधीशो रिपौ व्यये।
लग्नेऽष्टमे स्थितो वापि दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥ ४ ॥
स्वस्थाने स्वांशके किंवा मित्रेशे मित्रमन्दिरे।
दीर्घायुषं करोत्येव लग्नेशोऽष्टमपः पुनः ॥ ५ ॥
लग्नाष्टमपकर्मेशमन्दाः केन्द्रत्रिकोणयोः।
लाभे वा संस्थितास्तद्वद् दिशेयुर्दीर्घमायुषम् ॥ ६ ॥
वीक्षितः केन्द्रगैः सौम्यैर्लग्नपोऽतिबलान्वितः।
सद्वित्तं सद्गुणं चापि दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥ ७ ॥
लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे चन्द्रे लाभसमन्विते।
रन्ध्रस्थानगते जीवे दीर्घायुष्यं न संशयः ॥ ८ ॥

एषु यो बलवांस्तस्यानुसाराद् दैवविद्वरः ।
विचार्य बहुधा विद्वान् जातकस्यायुरादिशेत् ॥ ९ ॥

षष्ठेश अथवा व्ययेश षष्ठ, व्यय स्थान गत हो या लग्न और अष्टम भाव में हो तो जातक दीर्घायु होता है । लग्नेश अष्टमेश तथा पञ्चमेश अपने क्षेत्र, अपने नवांश या मित्र के घर में हो तो भी जातक दीर्घायु होता है । लग्नेश, अष्टमेश, दशमेश तथा शनि केन्द्र, त्रिकोण अथवा लाभ स्थानगत हो तो भी दीर्घायु कहना चाहिये । प्रबल लग्नेश केन्द्रगत शुभ ग्रहों से देखा जाय तो धन, गुण से युक्त जातक दीर्घायु होता है । लग्नेश अपने उच्चराशि, चन्द्रमा लाभस्थान, तथा गुरु अष्टम स्थान गत हों तो जातक दीर्घायु होता है ।

इनमें जो प्रबल योग हो तदनुसार ही अभिज्ञ ज्यौतिषी आयु का निर्देश करें ॥ ४–९ ॥

अल्पायुर्योग—

अष्टमाधिपतौ केन्द्रे लग्नेशे बलवर्जिते ।
विंशत्यब्दानसौ जीवेद् द्वात्रिंशत्परमायुषम् ॥ १० ॥
रन्ध्रेशे नीचराशिस्थे रन्ध्रे पापग्रहैर्युते ।
लग्नेशे दुर्बले जातः स्वल्पायुर्भवति ध्रुवम् ॥ ११ ॥
रन्ध्रेशे पापसंयुक्ते रन्ध्रे पापग्रहैर्युते ।
व्यये क्रूरग्रहैर्युक्ते जातमात्रं मृतिर्भवेत् ॥ १२ ॥
पापाः केन्द्रत्रिकोणस्थाः सौम्याः षष्ठेऽष्टमे यदि ।
नीचस्थ-रन्ध्रपे लग्ने जातः सद्यो मृतो भवेत् ॥ १३ ॥
पञ्चमे पापसंयुक्ते रन्ध्रेशे पापसंयुते ।
रन्ध्रे पापग्रहैर्युक्ते स्वल्पायुष्यः प्रजायते ॥ १४ ॥
रन्ध्रेशे रन्ध्रराशिस्थे चन्द्रे पाप-समन्विते ।
शुभैरदृष्टे जातस्य मासान्ते च मृतिर्भवेत् ॥ १५ ॥

अष्टमेश केन्द्रस्थ और लग्नेश निर्बल हो तो बीस वर्ष से ३२ वर्षों के भीतर ही उसकी आयु होती है । अष्टमेश नीच राशिस्थ हो, और अष्टम भी पापग्रहाक्रान्त हो, और लग्नेश निर्बल हो तो निश्चयतः जातक स्वल्पायु होता है । अष्टमेश तथा अष्टम स्थान दोनों पापयुक्त हो, और बारहवाँ भी पापग्रहों से संयुक्त होवे तो जातक जन्म लेते ही मर जाता है । पापग्रह केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों और शुभग्रह षष्ठ या अष्टमगत हों, और नीचराशिगत अष्टमेश यदि लग्नस्थ होवे तो जातक की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है । पञ्चम तथा अष्टम पापग्रहाक्रान्त हो, और अष्टमेश भी पापग्रहयुक्त हों तो भी जातक स्वल्पायु होता है । अष्टमेश अष्टमस्थ हो,

चन्द्रमा पापग्रहयुक्त हो, और चन्द्र पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो मासान्त में जातक की मृत्यु हो जाती है ॥ १०–१५ ॥

इति सविमर्श सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
अष्टमभावफलाध्यायः समाप्तः ॥ २० ॥

अथ नवम(भाग्य)भावफलाध्यायः ॥ २१ ॥

पराशर उवाच—

अथाकर्णय मैत्रेय ! भाग्यभावफलं पुनः ।
भाग्येशे सबले भाग्ये भाग्यवाञ्जायते नरः ॥ १ ॥
धर्मस्थानगते जीवे तदीशे केन्द्रसंस्थिते ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते बहुभाग्ययुतो भवेत् ॥ २ ॥
भाग्येशे बलसंयुक्ते भाग्ये भृगुसमन्विते ।
जीवे केन्द्रगते लग्नात् पिता भाग्यसमन्वितः ॥ ३ ॥
भाग्यस्थानाद् द्वितीये वा सुखे भौमसमन्विते ।
भाग्येशे नीचराशिस्थे पिता निर्धन एव वै ॥ ४ ॥
भाग्येशे परमोच्चस्थे भाग्यांशे जीवसंयुते ।
लग्नाच्चतुष्टये शुक्रे दीर्घजीवी पिता भवेत् ॥ ५ ॥
भाग्येशे केन्द्रभावस्थे गुरुणा च निरीक्षिते ।
तत्पिता वाहनैर्युक्तो राजा वा तत्समो भवेत् ॥ ६ ॥
भाग्येशे कर्मभावस्थे कर्मेशे भाग्यराशिगे ।
शौम्येक्षिते धनाढ्यश्च कीर्त्तिमांस्तत्पिता भवेत् ॥ ७ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब भाग्य भाव का फल सुनो । प्रबल भाग्येश यदि भाग्यस्थान-गत होवे तो जातक भाग्यवान् होता है । गुरु भाग्यस्थ हो, भाग्येश केन्द्रस्थ हो, और लग्नेश भी प्रबल हों तो पूर्ण भाग्यशाली जातक होता है । बलिष्ठ भाग्येश शुक्रयुक्त होकर भाग्यस्थानगत होवे, और गुरु लग्न से (१।४।७।१०) स्थानों में हो तो जातक का पिता भाग्यवान् होता है । भाग्य स्थान से दूसरे या चौथे में मंगल हो और भाग्येश अपने नीचराशिगत हो तो जातक' का पिता निर्धन होता है । भाग्येश परमोच्चांशस्थ हो, भाग्य भाव का नवांश गुरुयुक्त हो, और लग्न से केन्द्र स्थानों में शुक्र हो तो जातक का पिता दीर्घायु होता है । केन्द्रस्थित भाग्येश गुरुदृष्ट हो तो जातक का पिता वाहनों से युक्त राजा या राजतुल्य होता

है। भाग्येश कर्मस्थान में और कर्मेश भाग्यस्थानगत हों और शुभ ग्रह की दृष्टि होवे तो जातक का पिता धनाढ्य एवं यशस्वी होता है ॥ १–७ ॥

पितृभक्ति-योग—

परमोच्चांशगे सूर्ये भाग्येशे लाभसंस्थिते ।
धर्मिष्ठो नृपवात्सल्यः पितृसेवी भवेन्नरः ॥ ८ ॥
लग्नात् त्रिकोणगे सूर्ये भाग्येशे सप्तमस्थिते ।
गुरुणा सहिते दृष्टे पितृभक्ति-समन्वितः ॥ ९ ॥

सूर्य अपने परमोच्चांश (मेष के १०) पर स्थित हो, भाग्येश लाभस्थानगत हो, तो जातक धर्मिष्ठ, राजप्रिय, तथा पितृसेवी होता है। लग्न से नवम, पञ्चम, में सूर्य हो और सप्तमस्थानस्थित भाग्येश गुरु से युत या दृष्ट हो तो जातक पितृभक्त होता है ॥ ८–९ ॥

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे ।
द्वात्रिंशात्परतो भाग्यं वाहनं कीर्त्तिसम्भवः ॥ १० ॥

भाग्येश धनभावगत, और धनेश भाग्यस्थानगत हो तो ३२ वर्ष के बाद जातक वाहन तथा यश का भागी होता है ॥ १० ॥

पितृ-शात्रव योग—

लग्नेशे भाग्यराशिस्थे षष्ठेशेऽपि च तत्रगे ।
अन्योन्यवैरं ब्रुवते जनकः कुत्सितो भवेत् ॥ ११ ॥

षष्ठेश युक्त लग्नेश यदि भाग्य राशिस्थ हो तो पिता पुत्र में परस्पर शत्रुता होती है। साथ ही पिता कुत्सित स्वभाव का होता है ॥ ११ ॥

भिक्षाशित्व योग—

कर्माधिपेन सहितो विक्रमेशोऽतिनिर्बलः ।
भाग्येशो नीचगो वाऽस्तो योगो भिक्षाशनो मतः ॥ १२ ॥

अति दुर्बल तृतीयेश दशमेश के साथ हो और भाग्येश अपने नीच राशिस्थ अथवा अस्त (रवि सान्निध्य वश) हो तो जातक भिक्षाशनशील होता है ॥ १२ ॥

पितृमरण योग—

षष्ठाष्टम-व्यये भानौ रन्ध्रेशे भाग्यसंयुते ।
व्ययेशे लग्नराशिस्थे पञ्चमस्थे तु षष्ठपे ॥ १३ ॥
जातस्य जननात् पूर्वं जनकस्य मृतिर्भवेत् ।
रन्ध्रस्थानगते सूर्ये रन्ध्रेशे भाग्यगे सति ॥ १४ ॥
जातस्य प्रथमाब्दे तु पितुर्मरणमादिशेत् ।
व्ययेशे भाग्यराशिस्थे नीचांशे भाग्यनायके ॥ १५ ॥

तृतीये षोडशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत् ।
लग्नेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे भानुसंयुते ॥ १६ ॥
द्वितीये द्वादशे वर्षे पितुर्मरणमादिशेत् ।
भाग्याद्रन्ध्रगते राहौ भाग्याद् भाग्यगते रवौ ॥ १७ ॥
षोडशेऽष्टादशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत् ।
राहुणा सहिते सूर्ये चन्द्राद् भाग्यगते शनौ ॥ १८ ॥
सप्तमैकोनविंशाब्दे तातस्य मरणं ध्रुवम् ।
भाग्येशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे भाग्यराशिगे ॥ १९ ॥
वर्षे वेदार्णवमिते पितुर्मरणमादिशेत् ।
रव्यंशे च स्थिते चन्द्रे लग्नेशे रन्ध्रसंयुते ॥ २० ॥
पञ्चत्रिंशेवैकचत्वारिंशद्वर्षे मृतिः पितुः ।
पितृस्थानाधिपे सूर्ये मन्दभौमसमन्विते ॥ २१ ॥
पञ्चाशद्-वत्सरे प्राप्ते जनकस्य मृतिः भवेत् ।
भाग्यात् सप्तमगे सूर्ये राहौ भ्रातुर्नगस्थिते ॥ २२ ॥
षष्ठे वा पञ्चविंशेऽब्दे पितुर्मरणमादिशेत् ।
रन्ध्रजामित्रगे मन्दे मन्दाज्जामित्रगे रवौ ॥ २३ ॥
त्रिंशेऽब्द एकविंशे षड्-विंशे वा निधनं पितुः ।
भाग्येशे नीचराशिस्थे तदीशे भाग्यराशिगे ॥ २४ ॥
षड्विंशे वा त्रयस्त्रिंशे पितुर्मरणमादिशेत् ।

४, ८, १२, स्थानों में सूर्य, भाग्य स्थान में अष्टमेश, लग्न में व्ययेश, पञ्चम में षष्ठेश हो तो जातक के जन्म से पहले ही पिता की मृत्यु हो जाती है। सूर्य अष्टम में, अष्टमेश नवम में, हो तो जातक के जन्म से पहले ही वर्ष में पिता का मरण हो जाता है। भाग्य स्थान में व्ययेश, और भाग्येश अपने नीचांश में हो तो तीसरे या १६ वें वर्ष में पिता का मरण होता है।

लग्नेश अष्टम में और अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो दूसरे या बारहवें वर्ष में पिता का मरण कहना चाहिए। भाग्य स्थान से अष्टम (लग्न से चतुर्थ) में राहु हो और भाग्य स्थान से नवम (लग्न से पञ्चम) में सूर्य हो तो १६ वें या १८ वें वर्ष में पिता का मरण होता है। राहु के साथ सूर्य हो और चन्द्रमा से नवमस्थ शनि हो तो ७ वें या १९ वें वर्ष में निश्चित रूप से पिता का मरण होता है। भाग्येश बारहवें में, व्ययेश भाग्य स्थान में हो, तो ४४ वें वर्ष में पिता का मरण कहना चाहिए। सूर्य के नवांश में चन्द्रमा हो और लग्नेश अष्टम स्थान

में हो तो ३५ या ४१ वें वर्ष में पिता का मरण होता है। दशमेश सूर्य यदि शनि या मंगल के साथ हो तो जातक के जन्म से ५० वें वर्ष में पिता का मरण होता है। भाग्य से सप्तम (लग्न से तृतीय) में रवि हो और नावरे से नवम (भाग्य) में राहु हो तो छठे या २५ वें वर्ष में पिता का मरण कहना चाहिए। आठवें से सातवें (धन स्थान) में शनि हो और शनि से सातवें में सूर्य हो तो ३०, २१, या २६ वें वर्ष में पिता का मरण कहना चाहिए। भाग्येश यदि नीच राशिस्थ हो, और उस नीच राशि का स्वामी भाग्य स्थान में हो तो २६ या ३३ वें वर्ष में पिता का मरण कहना चाहिए ॥ १३–२४ ॥

भाग्योदय काल—

परमोच्चांशगे शुक्रे भाग्येशेन समन्विते ॥ २५ ॥
भ्रातृस्थाने शनियुते बहुभाग्याधिपो भवेत् ।
गुरुणा संयुते भाग्ये तदीशे केन्द्रराशिगे ॥ २६ ॥
विंशाद्वर्षात्परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ।
परमोच्चांशगे सौम्ये भाग्येशे भाग्यराशिगे ॥ २७ ॥
षट्त्रिंशाच्च परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ।
लग्नेशे भाग्यराशिस्थे भाग्येशे लग्नसंयुते ॥ २८ ॥
गुरुणा संयुते द्यूने लाभः स्याद्धनयानयोः ।

शुक्र यदि भाग्येश के साथ अपने परमोच्चांश में प्राप्त हो, और सहज स्थान यदि शनियुक्त होवे तो जातक बहुत भाग्यशील होता है। भाग्य स्थानगत गुरु हो, और भाग्येश केन्द्रराशिगत हो तो २० वर्ष की अवस्था के बाद भाग्योदय कहना चाहिए। बुध यदि अपने परमोच्चांशगत हों, और भाग्येश नवमभावगत हों तो ३६ वर्ष की अवस्था के बाद भाग्योदय का निर्देश करें। लग्नेश यदि भाग्यराशिगत हों, भाग्येश लग्नस्थ हों, और सप्तमस्थ गुरु हों तो धन, वाहन की प्राप्ति कहनी चाहिए ॥ २५–२८½ ॥

दौर्भाग्य योग—

भाग्याद् भाग्यगते राहौ भाग्येशे निधनं गते ॥ २९ ॥
अथवा नीचराशिस्थे भाग्यहीनो भवेन्नरः ।
भाग्यस्थानगते मन्दे शशिना च समन्विते ॥ ३० ॥
लग्नेशे नीचराशिस्थे भिक्षाशी च नरो भवेत् ।
ज्ञेयमित्थं फलं भाग्येशाङ्गेशावस्थितेर्वशात् ॥ ३१ ॥

भाग्य स्थान से नवम में राहु, भाग्येश अष्टमभाव या नीच राशिगत हों तो मनुष्य भाग्यहीन होता है। शनि यदि भाग्यस्थान में चन्द्रयुक्त हो, और लग्नेश

नीच राशिगत हों तो जातक भीख मांग कर जीवन बिताता है। इस प्रकार भाग्येश एवं लग्नेश की स्थिति से भाग्यभाव का फलादेश करना चाहिए ॥ २९–३१ ॥

विमर्श—भाग्यविमर्श करते समय भाग्य से सम्बद्ध सभी (लग्न, धन, सुख, नवम, दशम, एकादश,) भावों पर ध्यान देना आवश्यक है। इन्ही भावों में ग्रह स्थिति या इन भावेशों की स्थिति, शुभाशुभ ग्रहों के योग या दृष्टि, सभी बातों पर ध्यान देना चाहिए। सभी राज योग भाग्य-विमर्श के ही अन्तर्गत हैं। अतः इस विमर्श को विस्तृत होने की अधिक सम्भावना रहने पर भी संक्षपेतः कुछ मुख्ययोगों का विवरण देता हूँ।

१. भाग्येश, गुरु, शुक्र सपाप होकर त्रिक में बैठा हो तो जातक भाग्यहीन होता है और वे ही केन्द्र या त्रिकोण गत होकर शुभग्रह युक्त या दृष्ट हो तो मनुष्य भाग्यशाली होता है।

२. नवमेश केन्द्रगत हो, नवम स्थान में शुभग्रह या शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा नवमेश की दृष्टि पड़े तो जातक भाग्यशाली होता है।

नवमेश जहां बैठा हो उसका स्वामी भाग्यकारक होता है नवमेश भाग्यपोषक और लग्नेश भाग्यसूचक होता है अतः तीनों की स्थिति पर ही भाग्य का निर्देश करें।

३. लग्न, पञ्चम, द्वितीय में बलवान् ग्रह रहें तो भी जातक भाग्यशाली होता है।

४. धनेश धन स्थान या राज्य स्थान में पड़े तो भी मनुष्य धनाढ्य होता है।

५. चतुर्थेश, नवमेश-द्वितीय स्थान में हो, या शुक्र गुरु द्वितीय स्थान में हो तो मनुष्य पूर्ण धनी होता है।

६. द्वितीयेश, नवमेश केन्द्र गत हों और शुभग्रह की उस पर दृष्टि या शुभ संयोग हो तो जातक पूर्ण धनाढ्य होता है।

७. नवमेश लग्नस्थ होकर बृहस्पति से दृष्ट हो मनुष्य राजबन्ध होता है। लग्नेश एवं सुखेश अपने२ घर को पूर्णदृष्टया देखें तो भी मनुष्य पूर्णसम्पत्तिशाली होता है।

८. धनेश धन में, सुखेश चतुर्थस्थान में, लग्नेश लग्न में, वा नवमेश लग्न में हों तो मनुष्य श्रेष्ठ राज-सिंहासनभागी होता है।

९. गुरु शुक्र दोनों केन्द्र त्रिकोण या लाभ स्थानों (१।४।७।१०।९।५।११) में सुखेश सहित हों तो घर, वाहन भूमि सहित राजा होता है।

१०. भाग्येश यदि त्रिकोण में गुरुदृष्ट हो तो मनुष्य सुवर्ण, वस्त्र, वाहनादि सहित नरेश होता है।

११. धनेश लाभ में लाभेश नवम में, नवमेश तथा दशमेश द्वितीय भाव में हो तो जातक धन, गुण, सुखादि सहित राजमान्य एवं धर्मात्मा होता है।

१२. नवमेश सहित पञ्चमेश नवमभाव में हो वा नवमेश से दृष्ट हो तथा पुत्र भाव कारक ग्रह पञ्चम में हो तो पुत्रभाग्यवृद्धि होती है।

१३. बली लाभेश अपने घर या उच्च में हो तो सभी प्रकार के लाभ होते हैं। लाभेश दुर्बल, नीचस्थ, या त्रिकगत हो तो लाभ नहीं होता है।

१४. लग्नेश उच्चराशि में और नवमेश केन्द्र या त्रिकोणगत हो तो जातक जीवनान्त तक समृद्ध रहता है ।

१५. द्वितीयेश नवमेश या लाभेश केन्द्रगत हो और गुरु यदि लाभेश हो, जैसा कि वृष या कुम्भ लग्न में ही सम्भव है, तो जातक राज्यसुखभोक्ता या राजा होता है ।

१६. लग्नेश नवमेश चतुर्थस्थान में हो या चतुर्थेश नवमेश लाभ स्थानगत हो तो जातक पूर्ण धनी होता है ।

१७. धनेश लाभ स्थान में लाभेश भाग्य स्थान में और भाग्येश पञ्चम स्थान में हों तो जातक बहुत ही धनाढ्य होता है ।

१८. केन्द्रेश त्रिकोणेश के सम्बन्ध (चार प्रकार के सम्बन्ध-सहवास सम्बन्ध, परस्पर दृष्टि सम्बन्ध, परस्पर राशिस्थिति सम्बन्ध और अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध) से राज योग होता है । यह योग नवमेश दशमेश के सम्बन्ध से विशिष्ट होता है । नवमेश दशमेश के सम्बन्ध में पञ्चमेश का भी सम्बन्ध हो जाय तो कहना क्या ?

१९. जन्म समय में एक भी ग्रह परमोच्चराशिगत हो और उसे अतिमित्र ग्रह देखता हो तो जातक राजा होता है बलवान् शुक्र यदि एकादश या द्वादश स्थान में हो तो भी जातक राजा होता है । दो या तीन ग्रह उच्च में हो चन्द्रमा कर्कस्थ हो लग्न पूर्ण बली हो तो जातक सर्वत्र पूज्य राजा होता है ।

२०. धन, मेष, सिंह लग्न में स्थित मंगल अपने मित्र से देखा जाय तो जातक स्वभुजोपार्जित राज्य का भोक्ता होता है । यदि बलवान् सूर्य, चन्द्र, गुरु तृतीय नवम पञ्चम भाव गत हो तो वह मनुष्य कुवेर तुल्य राजा होवे ।

२१. जन्म समय में लग्नस्थ गुरु, केन्द्रस्थ बुध हो, और नवमेश की उस पर दृष्टि हो तो मनुष्य राजा के समान धनी होता है । शनि केन्द्र, या त्रिकोण या उच्च का होकर बली हो, और उसे लग्नेश देखता हो तो भी जातक राज-सदृश धनाढ्य होता है ।

२२. जन्म समय में लग्नस्थ चन्द्र, सुखस्थ गुरु, दशमस्थ शुक्र और अपने उच्च या अपने घर का शनि हो तो वह मनुस्य राजा या राज-तुल्य होता है ।

२३. जिसके जन्म काल में छे ग्रह उच्चस्थ हों तो वह राजाधिराज होता है । पाँच ग्रह उच्च के हों और गुरु लग्न में हो तो भी राजा होता है ।

२४. शनि कुम्भलग्नस्थ हो और चार ग्रह उच्चस्थ हो तो वह पृथ्वी का राजा होता है । यदि मेषलग्नस्थ बुध और गुरु स्वोच्चस्थ हो तो भी मनुष्य राजा होता है ।

२५. स्वगेह या स्वोच्चस्थित भौमादि पाँच ग्रह यदि केन्द्रगत हो तो क्रमशः रुचक, भद्र, हंस, मालव्य और शश योगों के होने के कारण जातक विख्यात महा-पुरुष होता है ।

२६. मीनलग्न में पूर्णबली चन्द्रमा हो, मंगल स्वोच्चस्थ हो, और शनि कुम्भस्थ हो तो जातक राजा होता है ।

२७. जन्म समय में मंगल मकर लग्न में हो, और कर्क का चन्द्रमा होवे तो भी मनुष्य राजा होता है ।

२८. धनभाव गत गुरु-शुक्र राजयोग कारक होता है।

२९. जन्म समय में लग्नेश केन्द्रस्थ, कर्मेश चतुर्थस्थ, और भाग्येश लग्नस्थ हों तो मनुष्य दीर्घजीवी राजा होता है।

३०. जिसके जन्मलग्नेश नीच, अस्त, और शत्रुराशि के अतिरिक्त केन्द्र में हो और अन्यग्रह युक्त भी न हो तो जातक राजा होता है।

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोडाशास्त्रे नवम(भाग्य) भावफलाध्यायः समाप्तः ॥ २१ ॥

अथ दशम (कर्म) भावफलाध्यायः ॥ २२ ॥

पराशर उवाच—

अतः परं तु श्रोतव्यं त्वया कर्मभवं फलम् ।
चतुर्मुखादिभिर्यच्च प्रोक्तं लोकहितैषिभिः ॥ १ ॥
स्वराश्यंशोच्चगे पूर्णबलोपेते तु कर्मपे ।
पितृसौख्यान्वितो जातः पुण्यकर्मा सुकीर्त्तिमान् ॥ २ ॥
कर्माधिपो बलोनश्चेत् कर्मवैकल्यमादिशेत् ।
राहुः केन्द्रत्रिकोणस्थो ज्योतिष्टोमादियागकृत् ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा—

(हे मैत्रेय !) इसके बाद कर्मभाव फल जिसे लोककल्याण की भावना से ब्रह्मादिक ने कहा है, सुनो। पूर्णबली कर्मेश अपनी राशि, नवांश, या उच्च में हो तो जातक पितृसौख्य युक्त पुण्यकार्य करने वाला, तथा यशस्वी होता है। यही कर्मेश निर्बल हो तो जातक कर्महीन होवे। राहु केन्द्र या नवम पञ्चम गत हो तो वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करने वाला होता है ॥ १–३ ॥

सौम्ययुक्ते शुभस्थाने संस्थिते कर्मपे सति ।
वाणिज्यतो राजतो वा लाभो हानिर्विपर्यये ॥ ४ ॥
दशमे पापसंयुक्ते कामे पापसमन्विते ।
दुष्कृतिं लभते मर्त्यः स्वजनानां विदूषकः ॥ ५ ॥
कर्मेशे नाशराशिस्थे सैंहिकेय-समन्विते ।
जनद्वेषी महामूर्खो दुष्कृतिं लभते नरः ॥ ६ ॥
कर्मेशे द्यूनराशिस्थे मन्दभौमसमन्विते ।
धनेशे पापसंयुक्ते शिश्नोदरपरायणः ॥ ७ ॥

कर्मेश शुभस्थान में शुभग्रहों से युक्त हो तो जातक को वाणिज्य अथवा राजाश्रय से लाभ होता है। इसके विपरीत (पाप युक्त कर्मेश अशुभ स्थान स्थित

हों) अशुभ फल कहना । दशम तथा एकादशस्थान पापग्रहाक्रान्त हों तो मनुष्य दुष्कर्म करने वाला स्वजन का द्वेषी होता है । कर्मेश अष्टमस्थ होकर राहु युक्त हों तो जातक जनद्वेषी महामूर्ख तथा दुष्कर्मकारक होता है ।

कर्मेश शनि या मंगल के साथ सप्तम में हो, और सप्तमेश भी पापग्रह युक्त हो तो जातक व्यभिचारी तथा पेटू होता है ॥ ४–७ ॥

शोभन योग—

तुङ्गराशिं समाश्रित्य कर्मेशे गुरुसंयुते ।
भाग्येशे कर्मराशिस्थे मानैश्वर्यप्रतापवान् ॥ ८ ॥
लाभेशे कर्मराशिस्थे कर्मेशे लग्नसंयुते ।
तावुभौ केन्द्रगौ वापि सुखजीवनभाग् भवेत् ॥ ९ ॥
कर्मेशे जलसंयुक्ते मीने गुरुसमन्विते ।
वस्त्राभरणसौख्यादि लभते नात्र संशयः ॥ १० ॥

गुरुयुक्त कर्मेश अपने उच्चस्थ हो, भाग्येश कर्मराशि गत हो तो जातक मान ऐश्वर्य एवं प्रताप पूर्ण होता है । लाभेश दशम में, कर्मेश लग्न में हो या दोनों केन्द्रस्थ हो तो मनुष्य सुखी होता है । बली दशमेश गुरुयुक्त होकर मीन में हों तो जातक को निःसन्देह वस्त्र, आभूषण आदि का सौख्य होता है ॥ ८–१० ॥

अशोभन योग—

लाभस्थानगते सूर्ये राहुभौमसमन्विते ।
रविपुत्रेण संयुक्ते कर्मच्छेत्ता भवेन्नरः ॥ ११ ॥

राहु, मङ्गल और शनि के साथ सूर्य लाभ स्थान में हों तो मनुष्य कर्मध्वंसक होता है ॥ ११ ॥

सत्कर्मयोग—

मीने जीवे भृगुयुते लग्नेशे बलसंयुते ।
स्वोच्चराशिगते चन्द्रे सम्यग् ज्ञानार्थवान् भवेत् ॥ १२ ॥
कर्मेशे लाभिराशिस्थे लाभेशे लग्नसंस्थिते ।
कर्मराशिस्थिते शुक्रे रत्नवान् स नरो भवेत् ॥ १३ ॥
केन्द्रत्रिकोणगे कर्मनाथे स्वोच्चसमाश्रिते ।
गुरुणा सहिते दृष्टे सत्कर्मसहितो भवेत् ॥ १४ ॥
कर्मेशे लग्नभावस्थे लग्नेशेन समन्विते ।
केन्द्रत्रिकोणगे चन्द्रे सत्कर्मनिरतो भवेत् ॥ १५ ॥

शुक्रयुक्त गुरु मीनस्थ हो, लग्नेश भी प्रबल हों, चन्द्रमा अपने उच्चराशिगत हों तो जातक अच्छे ज्ञान एवं सम्पत्ति से परिपूर्ण होता है । कर्मेश यदि लाभ स्थान में, और लाभेश लग्न में स्थित हों तथा शुक्र दशमस्थ हों तो जातक रत्नों से परिपूर्ण

होता है। कर्मेश स्वोच्चस्थ होकर केन्द्र या त्रिकोण में हों और गुरु से युत या दृष्ट हों तो मनुष्य कार्यशील होता है। कर्मेश, लग्नेश दोनों लग्न में हों और चन्द्रमा केन्द्र या त्रिकोण गत होवे तो जातक शुभ कार्य संलग्न होता है ॥ १२–१५ ॥

असत्कर्म योग—

कर्मस्थानगते मन्दे नीचखेचरसंयुते।
कर्मेशे पापसंयुक्ते कर्महीनो भवेन्नरः ॥ १६ ॥
कर्मेशे रन्ध्रराशिस्थे रन्ध्रेशे कर्मसंस्थिते।
पापग्रहेण संयुक्ते दुष्कर्मनिरतो भवेत् ॥ १७ ॥
कर्मेशे नीचराशिस्थे कर्मस्थे पापखेचरे।
कर्मभात् कर्मगे पापे कर्मवैकल्यमादिशेत् ॥ १८ ॥

नीचस्थ ग्रह के साथ शनि यदि दशमस्थान गत हो, दशम के नवमांश भी पापग्रहाक्रान्त हो तो जातक कर्मरहित होता है। कर्मेश अष्टम में, अष्टमेश कर्मस्थान में हो और पापग्रह का संयोग हो तो जातक दुष्कर्म संलग्न होता है। कर्मेश अपने नीचराशिगत हो, कर्मस्थान पापग्रहाक्रान्त हो, दशमस्थान से दशम (लग्न से सप्तम) भी पापयुक्त हों तो जातक निष्क्रिय होता है ॥ १६–१८ ॥

कीर्त्तिमद्योग—

कर्मस्थानगते चन्द्रे तदीशे तत्त्रिकोणगे।
लग्नेशे केन्द्रभावस्थे सत्कीर्त्तिसहितो भवेत् ॥ १९ ॥
लग्नेशे कर्मभावस्थे कर्मेशे बलसंयुते।
देवेन्द्रगुरुणा दृष्टे सत्कीर्त्तिसहितो भवेत् ॥ २० ॥
कर्मस्थानाधिपे भाग्ये लग्नेशे कर्मसंयुते।
लग्नात्पञ्चमगे चन्द्रे ख्यातकीर्त्तिः प्रजायते ॥ २१ ॥
एतत्समासतः कर्मभावजं गदितं फलम्।
ज्ञेयमन्यत्तु लग्नेश-कर्मेशाश्रयतो बुधैः ॥ २२ ॥

दशमभावगत चन्द्रमा हो, दशमेश चन्द्रमा से नवम पञ्चम में हो और लग्नेश केन्द्रस्थ हो तो जातक शुभ्रयश वाला होता है। लाभेश दशमस्थ हो, कर्मेश प्रबल हो, और गुरु की उन पर दृष्टि हो तो जातक शुभ्र कीर्त्तिशाली होता है। कर्मेश भाग्यस्थ हो, लग्नेश कर्मस्थानगत हो, और लग्न से पञ्चम में चन्द्रमा रहे तो जातक विख्यातनामा होता है। संक्षेपतः यह कर्मभाव फल जानना। अन्य विशेष लग्नेश एवं कर्मेश के सम्बन्ध से जानना चाहिए ॥ १९–२२ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पराशरहोराशास्त्रे दशम (कर्म) भावफलाध्यायः समाप्तः ॥ २२ ॥

अथ एकादश(आय)भावफलाध्यायः ॥ २३ ॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि ते लाभभावजातं फलं मुने ।
यच्छुभाशुभजिज्ञासा नृणां स्वाभाविकी मता ॥ १ ॥
लाभाधिपो यदा लाभे तिष्ठेत् केन्द्रत्रिकोणयोः ।
बहुलाभं तदा कुर्यात्तुङ्गगोऽर्कांशगोऽपि वा ॥ २ ॥
लग्नेशे धनराशिस्थे जनेशे केन्द्रसंस्थिते ।
गुरुणा सहिते भावे गुरुलाभं विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥
सौम्ययुक्ते तृतीयस्थे लग्नेशे सति, जातकः ।
षट्त्रिंशे वत्सरे प्राप्ते सहस्रद्वय-निष्कभाक् ॥ ४ ॥
केन्द्रत्रिकोणगे चांयनाथे शुभसमन्विते ।
चत्वारिंशे तु सम्प्राप्ते स सहस्रार्ध-निष्कभाक् ॥ ५ ॥
लाभस्थाने गुरुयुते धने चन्द्रसमन्विते ।
भाग्यस्थानगते शुक्रे षट्सहस्राधिपो भवेत् ॥ ६ ॥

पराशर ने कहाः—हे मुने ! अब मैं लाभ भाव का फल कहता हूँ । लाभ के सम्बन्ध में शुभाशुभ जानने की अभिलाषा स्वभावतः मनुष्यों में होती है । लाभेश लाभस्थान या केन्द्र, त्रिकोण, अथवा उच्चस्थ होकर सूर्यांश के भीतर (अस्तङ्गत) हो, तो भी पूर्ण लाभ कहना चाहिए । लाभेश धनस्थान, और धनेश केन्द्र में गुरु के साथ हों तो प्रचुर लाभ कहें । शुभग्रह युक्त लाभेश तृतीयस्थान में हों तो ३६ वें वर्ष में जातक दो हजार स्वर्ण मुद्रा प्राप्त करता है । शुभग्रह युक्त आयेश केन्द्र या त्रिकोण में हों तो ४० वें वर्ष में जातक सहस्रार्ध (५००) निष्क का भागी होता है । गुरु यदि लाभस्थान में, चन्द्रमा धनस्थान में, और शुक्र भाग्यस्थान में हों तो जातक षट्सहस्र (६०००) निष्क का अधिप होता है ॥ १–६ ॥

लाभाच्च लाभगे जीवे चन्द्रे चान्द्रिसमन्विते ।
धन-धान्याधिपः श्रीमान् रत्नाद्याभरणैर्युतः ॥ ७ ॥
लाभेशे लग्नभावस्थे लग्नेशे लाभसंयुते ।
त्रयस्त्रिंशे तु सम्प्राप्ते भवेन्निष्क-सहस्रभाक् ॥ ८ ॥
धनेशे लाभराशिस्थे तदीशे धनराशिगे ।
विवाहात् परतश्चैव बहुभाग्यं समादिशेत् ॥ ९ ॥

धैर्येशे लाभराशिस्थे लाभेशे भ्रातृसंस्थिते ।
भ्रातृभावाद्धनप्राप्ति-र्दिव्याभरणसंयुतः ॥ १० ॥

लाभ स्थान से एकादश में चन्द्र, बुध के साथ गुरु, हो, तो जातक विविध रत्न, आभूषण, आदि के साथ धन-धान्य का मालिक होता है। लाभेश लग्न में लग्नेश लाभ में हो तो ३३ वें वर्ष में हजार स्वर्ण मुद्रा प्राप्त करने वाला मनुष्य होता है। धनेश लाभस्थान में और लाभेश धनस्थान में हों तो विवाहानन्तर जातक विशिष्टभाग्योदय युक्त होता है। तृतीयेश लाभस्थान में, और लाभेश तृतीय में हों तो जातक को भ्रातृगण से धनप्राप्ति, तथा दिव्य आभरणों से युक्त कहना चाहिए ॥ ७–१० ॥

अलाभकृद्योग—

लाभेशे नीचभेऽस्ते वा त्रिके पापसमन्विते ।
कृते भूरिप्रयत्नेऽपि नैव लाभः कदाचन ॥ ११ ॥

लाभेश अपने नीच, अस्तंगत या त्रिक (६।८।१२) में पाप ग्रह युक्त हों तो प्रचुर प्रयत्न करने पर भी लाभ नहीं होता है ॥ ११ ॥

इति, सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
एकादश(आय)भावफलाध्यायः समाप्तः ॥ २३ ॥

अथ द्वादश(व्यय)भावफलाध्यायः ॥ २४ ॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि मैत्रेय ! व्ययभावगतं फलम् ।
स्वराशिगे तुङ्गगे वा सौम्ययुक्तेक्षितेऽपि वा ॥ १ ॥
व्ययेशेऽथ व्यये सौम्यैर्युते दृष्टे शुभव्ययः ।
चन्द्रो व्ययाधिपो धर्मलाभमन्त्रेषु संस्थितः ॥ २ ॥
स्वोच्चे स्वर्क्षे निजांशे वा लाभधर्मात्मजांशके ।
दिव्यागारादिपर्यङ्को दिव्यगन्धैकभोगवान् ॥ ३ ॥
परार्धरमणो दिव्य-वस्त्रमाल्यादिभूषणः ।
परार्ध्यवित्तसंयुक्तो दिनानि नयति प्रभुः ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा:—हे मैत्रेय ! अब मैं व्यय भाव का फल कहता हूँ। व्ययेश अपने राशि, या उच्च में होकर शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हों अथवा व्ययेश व्ययस्थ होकर शुभ ग्रहों से युत दृष्ट हों तो जातक का शुभ कार्यों में व्यय कहना चाहिए। व्ययाधिप चन्द्रमा यदि नवम, एकादश या पञ्चम स्थानों में से कहीं अपने उच्च

(वृष) अपने राशि अपने नवांश में हों अथवा एकादश नवम पञ्चम भाव के नवांशगत हों तो जातक दिव्यागार, सुन्दर पलङ्ग सुगन्धित द्रव्य आदि का भोग करने वाला होता है। उपर्युक्त योगयुक्त जातक दिव्यवस्त्र, आभूषण, माल्य, असंख्य सम्पत्ति से युक्त होकर विलासपूर्ण जीवन बिताता है ॥ १–४ ॥

एवं स्वशत्रु-नीचांशेऽष्टांशे वाप्यष्टमे रिपौ।
संस्थितः कुरुते जातं कान्ता-सुखविवर्जितम् ॥ ५ ॥
व्ययाधिक्यपरिक्रान्तं दिव्यभोगनिराकृतम्।
स हि केन्द्रत्रिकोणस्थः स्वस्त्रियालङ्कृतः स्वयम् ॥ ६ ॥
जातकस्य यथा प्रोक्तं फलं लग्नान्महर्षिभिः।
एवं भ्रात्रादिभावेभ्यस्तत्तत् सर्वं विचारयेत् ॥ ७ ॥

व्ययेश अपने शत्रुगृह नीचराशि, या नीचनवांश, षष्ठ अष्टम स्थान अथवा उसके नवांश में हों तो जातक स्त्री-सौख्य या अन्य दिव्य भोगों से वञ्चित रहता है। उसे निरर्थक व्यय से भी खिन्न रहना पड़ता है। वहीं (व्ययेश) केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तो वह अपने स्त्रीसुख से परिपूर्ण होता है। जिस प्रकार लग्न से भावों का फलादेश जातक का किया गया है उसी तरह तृतीय आदि भावों से सहज, मातृ, पुत्र आदि के भी भावों का फलादेश करना चाहिए ॥ ५–७ ॥

दृश्या-दृश्यार्धचक्रस्था ग्रहास्तु फलदाः क्रमात्।
प्रत्यक्षतः परोक्षे च ज्ञेयमेतद् विदा सदा ॥ ८ ॥

दृश्य तथा अदृश्य अर्धचक्र में स्थित ग्रह क्रमशः प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से फलदायक होते हैं ॥ ८ ॥

विमर्श—दृश्यार्ध चक्र सप्तम से लग्न बिन्दु पर्यन्त और अदृश्यार्धचक्र लग्न से सप्तम भाव तक कहे जाते हैं। यह दृश्यादृश्य विभाग वैज्ञानिक एवं युक्ति-संगत है। लग्न से सप्तम तक क्रान्ति वृत्त का प्रदेश क्षितिज के अधोगत होने के कारण अदृश्य, एवं सप्तम से लग्न के भुक्तांश तक का क्रान्तिवृत्तीय प्रदेश क्षितिज से ऊपर रहने के कारण दृश्य कहे जाते हैं। अतः दृश्यादृश्य भागस्थित ग्रह क्रमशः प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से फलदायक कहे गए हैं ॥ ८ ॥

व्ययस्थानगतो राहुर्भौमार्काभ्यां हि संयुतः।
तदीशे चार्कसंयुक्ते नरके पतनं भवेत् ॥ ९ ॥
व्ययस्थानगते सौम्ये तदीशे स्वोच्चराशिगे।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे मुक्तिः स्यान्नेह संशयः ॥ १० ॥
व्ययेशे पापसंयुक्ते व्यये वापि समन्विते।
पापग्रहेण संदृष्टे देशाद्देशान्तरं गतः ॥ ११ ॥

व्ययेशे शुभराशिस्थे व्ययर्क्षे शुभसंयुते ।
शुभग्रहेण संदृष्टे स्वदेशात् संचरो भवेत् ॥ १२ ॥
व्यये मन्दादिसंयुक्ते भूमिजेन समन्विते ।
शुभदृष्टेरसम्प्राप्तिः पापमूलाद्धनार्जनम् ॥ १३ ॥
लग्नेशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे लग्नसंयुते ।
भृगुपुत्रेण संयुक्ते धर्ममूलाद्धनव्ययः ॥ १४ ॥

मंगल, सूर्य के साथ राहु यदि व्ययस्थानगत हो, या व्ययेश सूर्य के साथ हो तो मनुष्य नरकगामी होता है। व्ययस्थान में शुभग्रह हों, व्ययेश अपने उच्च राशिगत होकर शुभग्रह से युत दृष्ट हों तो निःसन्देह मनुष्य मोक्षभागी होता है। व्ययेश पापग्रह युक्त हो, व्ययस्थान भी पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक देश-देशान्तर घूमने वाला होता है। व्ययेश तथा व्ययस्थान शुभराशि एवं शुभग्रह से युत दृष्ट हों तो जातक स्वदेश में ही भ्रमणशील होता है। व्यय स्थान शनि, मंगल आदि पाप ग्रहों से युक्त हो और शुभग्रह की उस पर दृष्टि नहीं हो तो जातक को पापमूलक धनोपार्जन होता है। लग्नेश व्ययस्थान गत हों और व्ययेश लग्नगत होकर शुक्र संयुक्त हों तो धर्ममूलक धनव्यय होता है ॥९–१४॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
द्वादश (व्यय) भावफलाध्यायः समाप्तः ॥ २४ ॥

अथ भावाधीशफलाध्यायः ॥ २५ ॥

लग्नेशे लग्नगे हृष्ट-पुष्टाङ्गश्च पराक्रमी ।
मनस्वी चातिचपलो द्विभार्यः परगोऽपि च ॥ १ ॥
लग्नेशे धनगे विज्ञो लाभसौख्यान्वितोऽनिशम् ।
सुशीलो धर्मविन्मानी बहुभार्यो गुणैर्युतः ॥ २ ॥
लग्नेशे सहजे याते सिंहतुल्य-पराक्रमी ।
सर्वसम्पद्युतो मानी द्विभार्यो मतिमान्नरः ॥ ३ ॥
लग्नेशे तुर्यगे जातो मातृसौख्य-समन्वितः ।
बहुभ्रातृयुतः कामी गुणसौन्दर्यसंयुतः ॥ ४ ॥
लग्नेशे पुत्रगे क्रोधी सुतसौख्यं च मध्यमम् ।
प्रथमापत्यनाशः स्यान्मानवान् राजवल्लभः ॥ ५ ॥

लग्नेश के लग्नस्थ होने पर जातक हृष्ट पुष्टाङ्ग, पराक्रमी मनस्वी, अतिचपल,

दो स्त्री वाला एवं परस्त्रीगामी होता है वही धनभावगत हो तो मनुष्य विज्ञ, लाभ एवं सौख्यपूर्ण, सुशील धर्मवेत्ता, अभिमानी अनेक स्त्री वाला और गुणयुक्त होता है। सहज भावगत लग्नेश यदि हो तो जातक सिंहतुल्य पराक्रम वाला सभी सम्पत्तियों से युक्त स्वाभिमानी, दो स्त्री वाला तथा बुद्धिमान् होता है। चतुर्थभावगत लग्नेश हो तो जातक मातृसौख्य तथा अनेक भाइयों से युक्त, कामी, गुणी तथा देखने में सुन्दर होता है। लग्नेश पञ्चमभावगत हो तो मनुष्य क्रोधी, मानी तथा राजवल्लभ होता है। साथ ही उसकी प्रथम सन्तान नष्ट हो जाती और उसे पुत्रसौख्य मध्यम होता है ॥ १–५ ॥

लग्नाधिपेऽरिगे पापग्रहयुक्तेक्षितेऽपि वा।
शत्रोः पीडा भवेत्तस्य कष्टं शारीरिकं तथा ॥ ६ ॥
लग्नेशे सप्तमे क्रूरे भार्या तस्य न जीवति।
विरक्तो वा प्रवासी वा दरिद्रो वा नृपोऽपि वा ॥ ७ ॥
लग्नेशेऽष्टमभावस्थे सिद्धविद्यो गदाकुलः।
परनारीरतश्चौरो द्यूतासक्तोऽतिकोपनः ॥ ८ ॥
लग्नेशे नवमे याते भाग्यवान् जनवल्लभः।
विष्णुभक्तः पटुर्वाग्मी पुत्रदारधनैर्युतः ॥ ९ ॥
लग्नेशे कर्मगे राज-पूज्यस्तातसुखान्वितः।
निजोपार्जितवित्तोऽतिप्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ॥ १० ॥
लग्नेशे लाभभावस्थे बहुलाभन्वितो जनः।
सद्यशोगुणशीलाढ्यो बहुदारः प्रजायते ॥ ११ ॥
लग्नेशे व्ययगे जातस्तनुसौख्यसमुज्झितः।
निरर्थव्ययकृत् क्रोधी, न युक्ते नेक्षिते शुभैः ॥ १२ ॥

लग्नेश षष्ठभावगत होकर पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक को शत्रुजन्य पीड़ा तथा शारीरिक क्लेश होता है। पाप लग्नेश सप्तमस्थ हो तो जातक स्त्रीविहीन होता है। ऐसा मनुष्य विरक्त या परदेशभ्रमणशील,—दरिद्र या राजा होता है। लग्नेश अष्टमस्थ हो तो जातक रोगी, परस्त्रीगामी, चोर, जुआरी, क्रोधी तथा सिद्ध-विद्या वाला होता है। लग्नेश नवम भावगत हो तो जातक भाग्यशील, जनप्रिय, विष्णुभक्त, मितभाषी, पुत्र स्त्री धन से परिपूर्ण होता है। कर्मस्थ लग्नेश के होने पर मनुष्य पितृसौख्यपूर्ण, राजपूज्य तथा अपने भुजबल से धनोपार्जन करके प्रसिद्ध पुरुष होता है। लग्नेश लाभस्थ हो तो बहुविध लाभ, शुभ्रयश, सद्गुण, तथा अनेक स्त्री वाला मनुष्य होता है। लग्नेश व्ययस्थ हो तो जातक शरीरसुखवञ्चित होता है शुभग्रह का योग या दृष्टि व्यय भाव पर नहीं हो तो वह निरर्थक व्यय करने वाला,

तथा क्रोधी भी होता है। शुभग्रह के संयोग या दृष्टि से उपर्युक्त फल अल्प होता है ॥ ६–१२ ॥

धनेश फल—

धनेशे तनुगे कामी परकार्यरतो धनी ।
कण्टकः स्वकुटुम्बस्य निष्ठुरः पुत्रवान् जनः ॥ १३ ॥
धनेशे धनगे बालो धनवान् गर्वसंयुतः ।
द्विदारो वा त्रिदारो वा सुतहीनः प्रजायते ॥ १४ ॥
धनेशे सहजस्थे तु विक्रमी मतिमान् गुणी ।
लोलुपः कामुकः पापयुक्ते स्याद्देवनिन्दकः ॥ १५ ॥
धनेशे तुर्यगे नानाविध-सम्पत्तिसंयुतः ।
सगुरौ सभृगौ वापि तुङ्गस्थे राजसन्निभः ॥ १६ ॥
धनाधिपे तु सूनुस्थे सदार्थार्जनतत्परैः ।
सूनुभिः स्वैर्युतो जातो जायते धनवानपि ॥ १७ ॥
धनेशे रिपुगे सौम्य-युते शत्रोर्धनागमः ।
पापोपेतेऽर्थहानिः स्याद् गुदे चोर्वोर्भवेच्च रुक् ॥ १८ ॥
धनेशे सप्तमे पापैर्युते दृष्टे जनो भिषक् ।
परदाररतस्तस्य जाया च व्यभिचारिणी ॥ १९ ॥
धनेशे मृत्युभावस्थे भूमिद्रव्यान्वितो जनः ।
जायासौख्यं भवेदल्पं ज्येष्ठभ्रातृसुखं नहि ॥ २० ॥
धनेशे भाग्यगे जातो धनवानुद्यमी पटुः ।
बाल्ये रोगी सुखी पश्चाद् यावदायुः समाप्यते ॥ २१ ॥
धनेशे दशमे यस्य कामी मानी स पण्डितः ।
बहुदारधनैर्युक्तः पुत्रसौख्यविवर्जितः ॥ २२ ॥
धनेशे लाभगे जातः सर्वदोद्योगतत्परः ।
यशस्वी मानसंयुक्तो भवेल्लाभान्वितः सदा ॥ २३ ॥
धनेशे व्ययगे जातो मानसाहससंयुतः ।
पराश्रयी भवेज्ज्येष्ठ-सूनुसौख्यसमुज्झितः ॥ २४ ॥

धनेश के लग्नस्थ होने पर मनुष्य धनी, निठुर, पुत्रवान् दूसरे के कार्य में तत्पर और अपने कुटुम्ब वर्ग के लिए काँटे स्वरूप होता है। धनेश धनभावगत हो

तो जातक धनी, अभिमानी, दो या तीन स्त्री वाला और पुत्रविहीन होता है। धनेश सहजभावगत हो तो मनुष्य गुणी, बुद्धिमान्, पराक्रमी, लोभी, कामी होता है। यदि वहाँ पाप ग्रह भी हो तो वह देवनिन्दक भी होता है। धनेश सुखस्थान में हो तो अनेकविध सम्पत्तियों से युक्त जातक होवे। वही धनेश गुरु, या शुक्र सहित या उच्चस्थ होकर चतुर्थ स्थान में हों तो मनुष्य राजा के समान होता है।

धनेश पञ्चमस्थ हो तो धनोपार्जन करने वाले अनेक पुत्रों से युक्त मनुष्य धनवान् होता है। शुभयुक्त धनेश षष्ठस्थ हों तो शत्रु से धनागम होता है। पापयुक्त धनेश षष्ठस्थ हों तो धनहानि और गुदा तथा वक्ष स्थल में रोग होता है। सप्तमस्थ धनेश पाप ग्रहों से युत दृष्ट हो तो मनुष्य वैद्य होता है—और स्वयं तथा उसकी स्त्री दोनों व्यभिचारी होते हैं। धनेश अष्टमभावस्थ हों तो मनुष्य को भूमि द्रव्य आदि का सौख्य पूर्ण, स्त्री सौख्य अल्प, ज्येष्ठ भ्रातृ सुख का अभाव होता है। भाग्यस्थानगत धनेश रहें तो मनुष्य धनी, उद्यमी बचपन में रोगी और बाद जीवनान्त पर्यन्त सुखी होता है। दशमगत धनेश के होने पर मनुष्य कामी, मानी, पण्डित अनेक स्त्रियों से युक्त तथा पुत्रसौख्य रहित होता है। लाभगत धनेश रहें तो मनुष्य उद्योगशील, यशस्वी, मानी तथा सतत लाभान्वित होता है। व्ययगत धनेश हो तो मनुष्य साहसी परिश्रमी तथा ज्येष्ठपुत्रसौख्य से वञ्चित रहता है ॥ १३–२४ ॥

तृतीयेश फल—

तनुस्थिते तृतीयेशे पुरुषार्थपरोऽर्थवान् ।
अविद्यः किन्तु मतिमाञ् जायते साहसी नरः ॥ २५ ॥
धनस्थे सहजेशे तु परदारार्थलोलुपः ।
निर्विक्रमो जनः स्थूलः स्वल्पारम्भी न सौख्यभाक् ॥२६॥
तृतीयस्थे तृतीयेशे विक्रमी भ्रातृसौख्ययुक् ।
धनपुत्रान्वितो हृष्टो भुनक्ति सुखमद्भुतम् ॥ २७ ॥
तृतीयेशे सुखस्थें तु सुखी भवति मानवः ।
अतिक्रूरा तस्य भार्या धनाढ्यो मतिमान् स्वयम् ॥ २८ ॥
तृतीयेशे सुतस्थे तु जातः सुतयुतो गुणी ।
पापेक्षित-युते क्रूरा भार्या तस्य प्रजायते ॥ २९ ॥
तृतीयेशे रिपौ याते भ्रातृशत्रुर्महाधनी ।
मातुलानां सुखं न स्यान्मातुल्या भोगमिच्छति ॥ ३० ॥
तृतीयेशे सप्तमस्थे बाल्ये कष्टयुतः सदा ।
पश्चात् सौख्यं च लभते नृपानुगमने रतः ॥ ३१ ॥

तृतीयेशेऽष्टमस्थे तु जातः स्यात् स्तेनकर्मकृत् ।
सेवावृत्तिपरश्चान्ते नृपालान्मृत्युमादिशेत् ॥ ३२ ॥
तृतीयेशे तु नवमे स्त्रीभिर्भाग्योदयो भवेत् ।
पितृसौख्योज्झितो जातः किन्तु पुत्रादिसौख्यभाक् ॥ ३३ ॥
तृतीयेशे तु कर्मस्थे बाहूपार्जितवित्तवान् ।
दुष्टस्त्रीपोषणे सक्तो नानासौख्ययुतो नरः ॥ ३४ ॥
तृतीयेशे तु लाभस्थे स्वभुजार्जितवित्तवान् ।
मूर्खः कृशो महारोगी साहसी परसेवकः ॥ ३५ ॥
तृतीयेशे व्ययस्थे तु व्ययकृद् दुष्कृतौ जनः ।
तत्पिता क्रूरचेताः स्यात् स्त्रीभिर्भाग्योदयो भवेत् ॥ ३६ ॥

तृतीयेश लग्नस्थ हो तो जातक पुरुषार्थ करने वाला धनी, साहसी, बुद्धिमान् किन्तु अपढ़ होता है । तृतीयेश के धनस्थ होने पर मनुष्य परस्त्री तथा परधन का लालची, पराक्रमरहित, स्थूल, कार्यारम्भ में अरुचिशील, तथा सौख्यरहित होता है । सहजेश यदि सहजस्थ हों तो मनुष्य पराक्रमशील, भ्रातृसौख्यपूर्ण, धन, पुत्र सम्पन्न सतत हृष्ट होकर अद्भुत सौख्य भोक्ता होता है । तृतीयेश सुखस्थ हो तो मानव सुखी धनाढ्य तथा बुद्धिमान् होता है किन्तु उसकी पत्नी क्रूरा होती है । सहजेश पञ्चमस्थ हो तो जातक गुणी तथा पुत्रसौख्ययुक्त होता है । सहजेश के साथ पापग्रह का संयोग अथवा उसकी दृष्टि हो तो उसकी स्त्री क्रूर स्वभाव वाली होती है । सहजेश षष्ठस्थ हो तो भाइयों से शत्रुता, मामा से सुखाभाव, महारानी और मामी से प्रेम करने वाला जातक होता है । तृतीयेश सप्तमस्थ हो तो जातक बचपन में दुःखी, बाद में सुखी तथा राजानुगामी होता है । अष्टमस्थ सहजेश हो तो जातक चोर होता है । सेवावृत्ति में लीन वह अन्त में राजा के द्वारा मृत्यु पाता है । तृतीयेश नवमस्थ हो तो स्त्रियों के द्वारा भाग्योदय कहना चाहिए । ऐसे जातक को पितृ सौख्य नहीं होता किन्तु पुत्रादि सौख्यों से वह परिपूर्ण होता है । तृतीयेश कर्मस्थ हो तो मनुष्य अपने बाहुबल से धनोपार्जन करने वाला अनेकविध सौख्यपूर्ण और दुष्ट स्त्री के पोषण में रत होता है । तृतीयेश लग्नस्थ हो तो जातक मूर्ख दुर्बल, रोगी, साहसी, दूसरे का सेवक तथा अपने भुजबल से धनोपार्जन करने वाला होता है । तृतीयेश व्ययभावगत हो तो मनुष्य दुष्कर्म में खर्चा करने वाला होता है उसका पिता निष्ठुरस्वभाव वाला होता और स्त्रियों से उसका भाग्योदय होता है ॥ २५–३६ ॥

सुखेश फल—

तुर्येशे तनुभावस्थे जननीसौख्यसंयुतः ।

विद्यासद्गुणसम्पन्नो भूमिवाहनवान्नरः ॥ ३७ ॥

तुर्येशे तु द्वितीयस्थे नानासम्पत्समन्वितः ।
कुटुम्बी साहसी मानी भोगी च कुहकान्वितः ॥ ३८ ॥
तुर्येशे सहजस्थे तु स्वभुजार्जितवित्तवान् ।
उदारो गुणवान् दाता दासयुक्तः पराक्रमी ॥ ३९ ॥
तुर्येशे तु तुरीयस्थे मन्त्री सर्वधनाधिपः ।
चतुरः शीलवान् मानी सुविज्ञः स्त्रीप्रियः सुखी ॥ ४० ॥
तुर्येशे सुतभावस्थे सुखी सर्वजनप्रियः ।
विष्णुभक्तिरतो मानी स्वभुजार्जितवित्तवान् ॥ ४१ ॥
तुर्येशे शत्रुभावस्थे हतमातृसुखो भवेत् ।
मनस्वी व्यभिचारी च चौरः क्रोधी दुरात्मवान् ॥ ४२ ॥
तुर्येशे सप्तमगते बहुविद्यासमन्वितः ।
पित्रार्जितधनत्यागी सभायां मूकवद् भवेत् ॥ ४३ ॥
तुर्येशेऽष्टमगे जातो गेहादिसुखवञ्चितः ।
मातापित्रोः सुखं स्वल्पं क्लीबो वा जारजो भवेत् ॥४४॥
तुर्येशे भाग्यगे लोकप्रियोऽनेकसुखान्वितः ।
मानी गुणान्वितो विष्णुभक्तियुक्तो भवेन्नरः ॥ ४५ ॥
सुखेशे कर्मगेहस्थे राजमान्यो भवेन्नरः ।
रसायनी महाहृष्टो यतात्मा सुखसंयुतः ॥ ४६ ॥
तुर्येशे लाभभावस्थे सदैवान्योपकारकः ।
उदारो गुणवान् दाता नित्यरोगी जनो भवेत् ॥ ४७ ॥
तुर्येशे व्ययगे हीनभवनादिसुखो नरः ।
मूर्खो दुर्व्यसनासक्तोऽलमश्चापि प्रजायते ॥ ४८ ॥

सुखेश लग्नस्थ हो तो मनुष्य मातृसौख्य विद्या सम गुण, भूमि, वाहन, सभी से परिपूर्ण होता है । सुखेश धनस्थानगत हो तो मनुष्य सर्वविध सम्पत्ति से युक्त, साहसी, मानी, अनेक परिवार वाला, मायावी तथा विलास-शील होता है । सुखेश तृतीयभावस्थ हों तो मनुष्य उदार गुणी, दान देने वाला, पराक्रमी, भृत्यों से युक्त, और अपनी भुजाओं के बल से धनोपार्जन करने वाला होता है । सुखेश सुख स्थान गत हो तो मनुष्य सर्वसम्पत्तियुक्त, मन्त्री सुशील, चतुर सर्वथा सुखी सुविज्ञ, मानी, तथा स्त्री से अधिक प्रेम करने वाला होता है । पञ्चम भावस्थ सुखेश हों तो जातक सुखी तथा सर्वजनप्रिय होता है । वह ईश्वरभक्त तथा अपने भुजबल से

धरोपार्जन करता है। सुखेश षष्ठभावस्थ हो तो मातृसुखविहीन, क्रोधी, व्यभिचारी दुरात्मा तथा मनस्वी होता है। सप्तमभावगत सुखेश हो तो जातक अनेक विद्याओं के वेत्ता, पैत्रिकसम्पत्ति को छोड़ने वाला सभाजव होता है। सुखेश अष्टमस्थ हो तो जातक गृहादिसुखहीन, नपुंसक या जार से उत्पन्न होता है—ऐसे जातक को माता पिता का भी सुख स्वल्प होता है।

सुखेश यदि भाग्यस्थानगत हो तो मनुष्य जनप्रिय, अनेकसौख्यपूर्ण, मानी, गुणी तथा विष्णुभक्त होता है। दशमस्थ सुखेश हो तो जातक राजपूज्य, परम हृष्ट, सुखी, जितेन्द्रिय तथा रसायनों का जानकार होता है। लाभस्थ सुखेश हो तो मनुष्य उदार, परोपकारी, गुणी, दाता तथा सतत रोगी होता है। सुखेश व्ययस्थ हो तो भवन-सौख्य-विहीन, मूर्ख दुर्व्यसनयुक्त तथा आलसी जातक होता है॥ ३७–४८॥

पुत्रेश-फल—

सुखेशे तनुगे सूरिरन्यवित्तापहारकः।
कृपणः कुटिलश्चैव सुतसौख्यान्वितो जनः॥ ४९॥
सुतेशे धनगेऽनेक-सूनुर्धनयशोऽन्वितः।
मानी स्त्रीवल्लभो जातः कुटुम्बपरिपालकः॥ ५०॥
सुतेशे तु तृतीयस्थे जातः स्याद् भ्रातृवल्लभः।
मायावी पिशुनश्चैव कृपणः स्वार्थसाधकः॥ ५१॥
सुतेशे तुर्यगे जातो मातृसौख्यान्वितः सदा।
लक्ष्मीयुक्तः सुबुद्धिश्च सचिवोऽप्यथवा गुरुः॥ ५२॥
सुतेशे सुतगे सौम्य-युक्ते जातः सुतान्वितः।
सपापे सुतहीनोऽपि गुणयुक्तः सुहृत्प्रियः॥ ५३॥

पञ्चमेश यदि—लग्नस्थ हो तो जातक कृपण, कुटिल, विद्वान् पुत्रसौख्यविहीन तथा परधनहारक होता है। धनस्थ हो तो मनुष्य अनेक पुत्र, धन, यश, आदि से परिपूर्ण मानी, स्त्री-जनप्रिय तथा परिजनपालक होता है। तृतीयस्थ हो तो जातक भाइयों का प्रिय, मायावी, चुगलखोर, कजूंस तथा अपने स्वार्थों का साधक होता है। सुखभाव गत हो तो जातक मातृ-सुखसम्पन्न, धनवान्, मतिमान्, सचिव (मंत्री) अथवा गुरु (राजगुरु या अध्यापक) होता है। पञ्चमभावगत पञ्चमेश शुभग्रहयुक्त हो तो जातक पुत्र-सौख्यपूर्ण, पापग्रहयुक्त होने पर पुत्र-विहीन, गुणवान् तथा मित्रप्रिय होता है॥ ४९–५३॥

सुतेशे शत्रुगृहगे सुतः शत्रुत्वमाप्नुयात्।
मृतो वा दत्तकः किंवा क्रीतो वा तनयो भवेत्॥ ५४॥
सुतेशे कामगे मानी सर्वधर्म-समन्वितः।
सदोपकारनिरतः सुतसौख्ययुतो नरः॥ ५५॥

सुतेशेऽष्टमगे जातो मितसूनुसुखो भवेत् ।
कासश्वासी क्रोधयुक्तः सुखहीनश्च जायते ॥ ५६ ॥
सुतेशो नवमे यस्य तत्सुतो नृपसन्निभः ।
जनोऽसौ ग्रन्थनिर्माता विख्यातः कुलदीपकः ॥ ५७ ॥
सुतेशे कर्मगेहस्थे जायते जातको नृपः ।
शुभ्रकीर्तिः प्रभुर्नानाविधसौख्यसमन्वितः ॥ ५८ ॥
सुतेशे लाभभावस्थे विद्वान् लोकप्रियो जनः ।
चतुरो ग्रन्थनिर्माता धनिकोऽनेकसूनुयुक् ॥ ५९ ॥
सुतेशे रिष्फभावस्थे पुत्रसौख्यविवर्जितः ।
जातकः क्रीततनयो ग्राह्यपुत्रोऽथवा भवेत् ॥ ६० ॥

सुतेश यदि षष्ठभावगत हो तो पुत्र मरजाय, दत्तक या क्रीत पुत्र हो अथवा उसका पुत्र शत्रु होता है । सप्तमस्थ होने पर मनुष्य मानी, धार्मिक, परोपकारी तथा पुत्र-सौख्यपूर्ण होता है । अष्टमभावगत होने पर जातक क्रोधी, कास-श्वास रोग युक्त, दुखी, तथा अल्प पुत्रसौख्य वाला होता है । नवमस्थ होने पर जातक का पुत्र राजा के समान होता है । खुद भी ग्रन्थ लिखनेवाला, वंश में विख्यात होता है । दशमस्थ पञ्चमेश यदि हों तो जातक राजा होता है । उसका निर्मल यश व्याप्त रहता है और वह अनेक सौख्यभागी होता है । एकादशभावस्थ पञ्चमेश हो तो मनुष्य विद्वान्, जनप्रिय, धनी, ग्रन्थनिर्माणकुशल, तथा अनेक पुत्रों से युक्त होता है । व्ययभावस्थ पञ्चमेश हो तो मनुष्य पुत्रसौख्यहीन, क्रीत या दत्तक पुत्र वाला होता है ॥ ५४—६० ॥

रोगेश-फल—

षष्ठेशे तनुगे मानी जातकस्तु रुजान्वितः ।
कीर्तिवित्तगुणोपेतो ज्ञातिशत्रुश्च साहसी ॥ ६१ ॥
षष्ठेशे वित्तगे जातो वंशख्यातोऽतिसाहसी ।
वक्ता सुखी प्रवासी च स्वकर्त्तव्यपरो भवेत् ॥ ६२ ॥
षष्ठेशे विक्रमस्थे तु भ्रातृशत्रुः क्रुधान्वितः ।
जातो विक्रमहीनः स्याद् दासस्तस्योत्तरप्रदः ॥ ६३ ॥
षष्ठेशे तुर्यभावस्थे जातो मातृसुखोज्झितः ।
मनस्वी पिशुनो द्वेषी चलचितोऽपि वित्तवान् ॥ ६४ ॥
षष्ठेशे सुतगे जातश्चलमित्रधनादिकः ।
स्वार्थी दयालुः सुखितो द्वेषकृत्तनयादिभिः ॥ ६५ ॥

षष्ठेशे रिपुभावस्थे शत्रुता ज्ञातिभिः सदा ।
मित्रत्वमन्यजातीयैः मध्यमर्थादिजं सुखम् ॥ ६६ ॥
षष्ठेशे सप्तमे जातो जायासुखविवर्जितः ।
वित्तकीर्त्तिगुणोपेतः साहसी मानवान् भवेत् ॥ ६७ ॥
षष्ठेशेऽष्टमगे रोगी वैरयुक्तो मनीषिभिः ।
परस्त्रीवित्तलाभार्थी जातकः शौचवर्जितः ॥ ६८ ॥
षष्ठेशे नवमे जातः काष्ठपाषाणविक्रयी ।
व्यवहारे क्वचिद्धानिः क्वचिद्वृद्धिश्च तस्य हि ॥ ६९ ॥
षष्ठेशे कर्मगे जातो वक्ता ख्यातो निजान्वये ।
पितृभक्तिविहीनश्च प्रवासे सुखितो भवेत् ॥ ७० ॥
षष्ठेशे लाभभवने धनाप्ती रिपुतो भवेत् ।
धनवान् गुणवान् मानी साहसी सुतवर्जितः ॥ ७१ ॥
षष्ठेशे रिष्फगे जातो विद्वेष्टा स्यान्मनीषिणाम् ।
व्यसनेऽर्थव्ययी जीवहिंसासक्तश्च जायते ॥ ७२ ॥

षष्ठेश यदि लग्नगत हो तो जातक रोगी, मानी, यशस्वी, धनी, गुणी साहसी तथा अपने सम्बन्धियों का शत्रु होता है । यदि वह धनगत हो तो मनुष्य अपने वंश में विख्यात, साहसी, वक्ता, सुखी परदेश में निवास करने वाला तथा अपने कर्तव्य में तत्पर रहता है । षष्ठेश यदि सहजगत हो तो मनुष्य भाइयों का दुश्मन, क्रोधी, पराक्रमहीन, अशिष्ट नौकर वाला होता है । षष्ठेश यदि चतुर्थस्थ हो तो वह मातृसुखवञ्चित होता है और वह मनस्वी, चुगलखोर, दूसरों से द्वेष करनेवाला, और चञ्चल प्रकृति होते हुए भी धनी होता है । यदि पञ्चम भावस्थ षष्ठेश हो तो मित्र, धन आदि सभी उसके अस्थिर रहते हैं। वह स्वार्थी दयावान्, सुखी, तथा पुत्रादिकों से द्वेष करने वाला होता है । यदि षष्ठेश षष्ठस्थ हो तो अपने सम्बन्धियों से सदा शत्रुता, दूसरी जातिवालों से मित्रता, और मध्यम धनादिक सुखवाला होता है । यदि सप्तमभावगत हो तो मनुष्य स्त्रीसौख्यविहीन, धन, गुण से सम्पन्न साहसी तथा मानी होता है । यदि षष्ठेश अष्टमभावस्थ हो तो मनुष्य रोगी, विद्वद्द्वेषी, दूसरे की स्त्री तथा धन को प्राप्त करने के इच्छुक और अपवित्र रहा करता है । यदि षष्ठेश नवमस्थ हो तो जातक लकड़ी पत्थल वेचने वाला व्यापार में कभी हानि और कभी वृद्धि वाला होता है। यदि दशमभावस्थ हो तो, अपने वंश में विख्यात, वक्ता, पितृभक्तिविहीन, सुखपूर्वक परदेश में रहने वाला होता है । यदि षष्ठेश एकादशस्थ हो तो मनुष्य शत्रु से धन प्राप्ति करने वाला धनी, गुणी, मानी साहसी तथा अपुत्र होता है । यदि व्ययभावस्थ षष्ठेश हो तो जातक विद्वानों का द्वेषी, दुर्व्यसन में खर्च करने वाला और जीव-हिंसक होता है ॥ ६१–७२ ॥

जायेश फल—

जायेशे तनुगे जातः परजायासु लम्पटः ।
दुष्टो धीरोऽतिचतुरो भवेद् वातामयार्दितः ॥ ७३ ॥
जायेशे धनभावस्थेऽनेकस्त्रीभिः समागमः ।
स्त्रीद्वारा वित्तसंलाभः दीर्घसूत्री च जायते ॥ ७४ ॥
जायेशे सहजस्थे तु जायते मृतसन्ततिः ।
कदाचिद् दुहितुः प्राप्तिर्जीवेद्यत्नात्तु तत्सुतः ॥ ७५ ॥
जायेशे तुर्यभावस्थे जाया नैव पतिव्रता ।
धर्मात्मा सत्यसंयुक्तः स्वयं दन्तरुजान्वितः ॥ ७६ ॥

जायेश यदि लग्नगत हो तो मनुष्य परस्त्री-लम्पट, दुष्ट, गम्भीर अति चतुर, तथा वातरोगी होता है। धनगत हो तो अनेक स्त्रियों से सम्भोग, स्त्री द्वारा धनप्राप्ति, और दीर्घसूत्री होता है। सहज भावस्थ जायेश हो तो जातक मृतापत्य होता है—कभी पुत्री पैदा होती है और प्रयत्न से एक पुत्र भी जीवित रहता है। जायेश चतुर्थस्थ हो तो उस जातक की स्त्री पतिव्रता नहीं होती है किन्तु स्वयं वह धर्मात्मा सत्यशील तथा दन्तरोगी होता है ॥ ७३–७६ ॥

जायेशे सुतगे मानी भवेत् सर्वधनाधिपः ।
सदैव हर्षसंयुक्तो नरः सर्वगुणैर्युतः ॥ ७७ ॥
जायेशे शत्रुभावस्थे जाया तस्य च रोगिणी ।
तया वा सह विद्वेषः क्रोधनः स च निस्सुखः ॥ ७८ ॥
जायेशे सप्तमे जातो जायासुखसमन्वितः ।
धैर्यबुद्धियुतो विद्वान् वातरोगी ऽ जायते ॥ ७९ ॥
जायेशे रन्ध्रगे जायासुखं न लभते क्वचित् ।
दुःशीला रोगिणी तस्य भार्या नैव वशंवदा ॥ ८० ॥
जायेशे नवमस्थे तु नानास्त्रीभिः समागमः ।
नानारम्भी भवेत् तस्य स्त्रीषु चित्तं हि केवलम् ॥ ८१ ॥
जायेशे कर्मणे जातः सुतवित्तादिसंयुतः ।
धर्मात्मा जायते किन्तु वश्या तस्य नहि प्रिया ॥ ८२ ॥
जायेशे लाभगे जातो जायातो वित्तवान् भवेत् ।

सुतादिजं सुखं स्वल्पं कन्याधिक्यं च जायते ॥ ८३ ॥

जायेशे रिष्फगे जातो दरिद्रः कृपणस्तथा ।
वस्त्राजीवी पुमान् किन्तु व्ययशीला च तत्प्रिया ॥ ८४ ॥

जायेश यदि पञ्चमभावस्थ हो तो मनुष्य मानी, सम्पत्तिशाली, सतत प्रसन्न तथा सभी गुणों का आगार होता है। षष्ठभाव गत यदि वह हो तो जातक की पत्नी रुग्णा होती है, या उसके साथ जातक को द्वेष होता है। खुद वह क्रोधी तथा दुःखी रहता है। जायेश यदि जायाभावगत हो तो मनुष्य पत्नीसुखयुक्त होता है। साथ ही वह धीर, सुबुद्ध विद्वान् तथा वातरोगी होता है। जायेश अष्टमस्थ हो तो जातक स्त्रीविहीन होता है और उसकी स्त्री दुःशीला, रुग्णा तथा वश में नहीं रहने वाली होती है। नवमस्थ जायेश हो तो जातक अनेक स्त्रियों से सम्भोग करने वाला होता है। वह अनेक कार्यों का आरम्भ करता है पर उसका चित्त स्त्रियों में ही लगा रहता है। दशमस्थ जायेश हो तो मनुष्य धर्मात्मा, पुत्र, वित्त आदि से युक्त होता है, किन्तु स्त्री उसके अधीन नहीं रहती है। लाभभावगत जायेश हो तो स्त्रीद्वारा धन की प्राप्ति होती है। उस व्यक्ति को पुत्रसौख्य अल्प होता है किन्तु कन्याएँ अधिक होती हैं। द्वादशभावस्थ जायेश हो तो मनुष्य दरिद्र, कृपण, तथा वस्त्र के द्वारा जीविका चलाने वाला होता है। उसकी स्त्री अधिक खर्च करने वाली होती है ॥ ७७–८४ ॥

अष्टमेशफल—

अष्टमेशे तु तनुगे सुरभूसुरनिन्दकः ।
हतदेहसुखो नित्यं जातकः स्याद् व्रणान्वितः ॥ ८५ ॥
अष्टमेशे धनगते जातो बाहुबलोज्झितः ।
स्वल्पवित्तयुतस्तस्य नष्टार्थाप्तिः प्रजायते ॥ ८६ ॥
अष्टमेशे तृतीयस्थे हतभ्रातृसुखो नरः ।
दुर्बलो दासरहितश्चालसोऽपि प्रजायते ॥ ८७ ॥
अष्टमेशे तु सुखगे सुहृद्द्रोहपरः पुमान् ।
जननी-गेहभूसौख्य-सहितोऽपि भयान्वितः ॥ ८८ ॥
अष्टमेशे सुतस्थे तु स्वल्पापत्योऽर्थवान्नरः ।
जायते मन्दधिषणो दीर्घायुष्यसमन्वितः ॥ ८९ ॥
अष्टमेशे तु रिपुगे त्रिजेता द्विषतां भवेत् ।
रुजार्त्तः शैशवे तोयात् सर्पादपि भयं व्रजेत् ॥ ९० ॥
अष्टमेशे तु कामस्थे जायाद्वितयसंयुतः ।
सति तस्मिन् सपापे तु व्यवसाये धनक्षयः ॥ ९१ ॥

अष्टमेश लग्नस्थ हो तो जातक देव ब्राह्मण निन्दक, शारीरिकसुखरहित तथा सतत व्रणयुक्त रहता है। अष्टमेश धनभावगत हो तो मनुष्य बाहुबल रहित, थोड़ी

सम्पत्ति वाला, तथा नष्ट अर्थ की प्राप्ति करने वाला, होता है। अष्टमेश सहजस्थ हो तो भ्रातृ-सौख्य रहित, दुर्बल, निर्भृत्य, और आलसी होता है। सुखस्थ अष्टमेश हो तो मनुष्य मित्रद्रोही, मातृ, गृह, भूमि आदियों के सुख से वञ्चित रहने पर भी मस्त रहता है। अष्टमेश पञ्चमभावस्थ हो तो मनुष्य अल्प सन्तान वाला तथा धनी होता है। उसकी बुद्धि मन्द होती है और वह दीर्घजीवी होता है। शत्रुभावगत अष्टमेश हो तो जातक शत्रुओं का विजेता, बचपन में रुग्ण और जल तथा सर्प से उसे भय होता है। अष्टमेश सप्तमस्थ हो तो दो स्त्रियाँ होती हैं। सपाप वह सप्तमस्थ हो तो व्यापार में धनक्षय होता है ॥ ८५–९१ ॥

अष्टमेशेऽष्टमस्थे तु दीर्घायुष्मान् जनो भवेत् ।
बलहीने तु मध्यायुः स्तेनश्च गुरुनिन्दकः ॥ ९२ ॥
अष्टमेशे तु भाग्यस्थे महापापी च नास्तिकः ।
परस्त्रीधनलुब्धोऽसौ दुःस्वभावा च तत्प्रिया ॥ ९३ ॥
अष्टमेशे तु कर्मस्थे तातसौख्यसमुज्झितः ।
सौख्यदृग्युतिहीने तु पिशुनः कर्मवर्जितः ॥ ९४ ॥
अष्टमेशे भवे बाल्ये दुःखी चान्ते सुखी नरः ।
निःस्वः क्रूरयुते, सौम्ययुक्ते दीर्घायुषान्वितः ॥ ९५ ॥
अष्टमेशे व्ययस्थे तु नरः स्याद् दुष्कृतौ व्ययी ।
क्रूरयुक्ते विशेषेण स्वल्पायुष्मान् प्रजायते ॥ ९६ ॥

अष्टमेश अष्टमस्थ हो तो मनुष्य दीर्घायु होता है उसे निर्बल रहने पर मध्यायु, चोर, तथा गुरुनिन्दक होता है। भाग्यस्थ अष्टमेश हो तो जातक महापापी, नास्तिक दूसरे की स्त्री, धन पर लालच करने वाला होता है। उसकी स्त्री दुष्टस्वभाव की होती है। अष्टमेश कर्मस्थ हो तो जातक को पितृसुख नहीं होता है। अष्टमेश यदि शुभग्रह की दृष्टि या संयोग से विहीन हो तो जातक चुगलखोर तथा निष्क्रिय होता है। अष्टमेश एकादशभावस्थ हों तो जातक बचपन में दुखी और अन्त में सुखी होता है। वही लाभस्थ अष्टमेश पापयुक्त हो तो जातक निर्धन, और शुभग्रहयुक्त हो तो दीर्घायु होता है। व्ययस्थ अष्टमेश हो तो मनुष्य दुष्कार्य में खर्च करने वाला होवे। पापयुक्त होनेपर विशेष रूप से उपर्युक्तफल, तथा स्वल्पायु उसे कहना चाहिए ॥ ९२–९६ ॥

नवमेश-फल—

भाग्येशे तनुभावस्थे रूपशीलयुतः सुधीः ।
जनेश-जनता-पूज्यः सद्भाग्यो जायते जनः ॥ ९७ ॥
भाग्येशे वित्तगे जाया-सुतादिसुखसंयुतः ।
लोकप्रियः कामयुक्तो धनी विद्वान् भवेन्नरः ॥ ९८ ॥

भाग्येशे सहजस्थे तु रूपशीलगुणैर्युतः।
धन-सोदर्य-सुखभाग् जायते जातकः सदा ॥ ९८ ॥
भाग्येशे सुखगे जातो जननी-भक्तिसंयुतः।
सर्वसम्पद् गेह-यान-सौख्ययुक्तो भवेज्जनः ॥ १०० ॥
भाग्येशे सुतगे जातो गुरुभक्तिरतः सदा।
सुतभाग्ययुतो धीरो धार्मिको जनवल्लभः ॥ १०१ ॥

भाग्येश लग्नस्थ हो तो जातक रूपशीलसम्पन्न विद्वान् राजा तथा प्रजा दोनों का पूज्य तथा सौभाग्यशाली होता है। धनभावगत हो तो मनुष्य स्त्री, पुत्रादि सुखों से युक्त, कामी, धनी, विद्वान् तथा जनप्रिय होता है। भाग्येश तृतीयस्थ हो तो जातक रूपशील धन-सम्पन्न, गुणी तथा सोदरसुखयुक्त होता है। चतुर्थस्थ भाग्येश हो तो जातक मातृभक्त, सम्पत्ति, गृह, वाहन-सौख्यपूर्ण होता है। भाग्येश पञ्चमस्थ हो तो मनुष्य गुरुभक्त, धार्मिक, विद्वान् जनप्रिय तथा सौभाग्यशालीपुत्र से युक्त होता है ॥ ९७–१०१ ॥

भाग्येशे शत्रुगृहगे भाग्यहीनो भवेज्जनः।
वैरिभिश्चार्दितो नित्यं मातुलादिसुखोज्झितः ॥ १०२ ॥
भाग्येशे तु कलत्रस्थे कलत्रात् सुखसम्भवः।
यशःसद्गुणसम्पन्नो जायते जातकः सदा ॥ १०३ ॥
भाग्येशे निधनस्थे तु जनो भाग्यविवर्जितः।
न जातु ज्यायसो भ्रातुः सुखं जन्मनि तस्य वै ॥ १०४ ॥
भाग्येशे नवमेऽनेक-भ्रातृसौख्ययुतः पुमान्।
गुणसौन्दर्यसद्भाग्यैः सम्पन्नोऽसौ प्रजायते ॥ १०५ ॥
भाग्येशे दशमस्थे तु लोकवन्द्यो गुणी नरः।
भूपस्तत्सदृशोऽमात्यः सेनाध्यक्षोऽथवा भवेत् ॥ १०६ ॥
भाग्येशे भवगेहस्थे नित्यं वित्तागमो भवेत्।
गुरुभक्तिरतो नित्यं पुण्यशीलो गुणी नरः ॥ १०७ ॥
भाग्येशे रिष्फगे भाग्य-हीनो जातः प्रजायते।
सत्कृतौ व्ययतो निःस्वोऽतिथिसत्कृतितत्परः ॥ १०८ ॥

भाग्येश शत्रुभावगत हो तो भाग्यहीन होता है। उसे शत्रुओं से सतत पीड़ा तथा मातुलसुखवञ्चित होता है। भाग्येश सप्तमभावस्थ हो तो स्त्री से सौख्य, यश तथा सद्गुणों से परिपूर्ण जातक होता है। अष्टमस्थ हो तो मनुष्य भाग्यहीन तथा बड़े भाई के सुख का जीवन भर अभाव वाला होता है। नवमस्थ भाग्येश हो तो

जातक भ्रातृसौख्य, सद्गुण, सौन्दर्य तथा सौभाग्य से परिपूर्ण होता है। दशमस्थ भाग्येश हो तो मनुष्य गुणवान् लोकपूज्य राजा अथवा तत्सदृश मन्त्री या सेनाध्यक्ष होता है। लाभभावस्थ भाग्येश हो तो जातक को नित्य धनागम होता है। वह गुरुभक्त, गुणी तथा पुण्यवान् होता है। भाग्येश व्ययस्थ हो तो जातक भाग्यहीन, सत्कार्य तथा अतिथिसेवाजन्य खर्च से दरिद्र हो जाता है ॥ १०२–१०८ ॥

कर्मेश-फल—

दशमेशे तु लग्नस्थे जातो विद्यागुणान्वितः।
बाल्ये रोगी सुखी पश्चादर्थवृद्धिर्दिने दिने ॥ १०९ ॥
दशमेशे तु वित्तस्थे नृपवन्द्यो गुणी धनी।
तातादिसौख्यसम्पन्नो दाता जातस्तु जायते ॥ ११० ॥
दशमेशे तृतीयस्थे गुणी वाग्मी पराक्रमी।
सत्यधर्मयुतो भ्रातृ-प्रैष्यसौख्यान्वितो जनः ॥ १११ ॥
दशमेशे तु तुर्यस्थे गुणाढ्यः सुखितो धनी।
मातृभक्तो धराधाम-यानोपेतो भवेन्नरः ॥ ११२ ॥

दशमेश लग्नगत हो तो जातक विद्या, गुणसम्पन्न होता है। वह बाल्यावस्था में रुग्ण किन्तु बाद में सुखी तथा दिनों दिन धनवृद्धि वाला होता है। धनभावगत दशमेश हो तो जातक राजपूज्य, गुणी, धनी, पित्रादि सौख्य पूर्ण, तथा दानी होता है। सहजगत कर्मेश हो तो बालक गुणी, वाग्मी, पराक्रमी, सत्यधर्म युक्त भाई नौकर आदि के सौख्य से पूर्ण होता है। चतुर्थस्थ दशमेश हो तो जातक सुखी, धनी, तथा गुणसम्पन्न होता है। वह माता का भक्त तथा भूमि-गृह-वाहन से परिपूर्ण होता है ॥ १०९–११२ ॥

दशमेशे सुतस्थे तु धनं नित्यं प्रमोदवान्।
पुत्रवान् बहुविद्याभिर्भूषितो मानवो भवेत् ॥ ११३ ॥
दशमेशे तु शत्रुस्थे शत्रुभिः परिपीडितः।
निःस्वोऽथ निपुणस्तातसुखहीनोऽपि जायते ॥ ११४ ॥
दशमेशे तु जायास्थे जायासौख्ययुतो गुणी।
सत्यधर्मपरो वाग्मी मनस्वी जायते जनः ॥ ११५ ॥
दशमेशेऽष्टमस्थे तु जातकः परनिन्दकः।
निष्क्रियः किन्तु दीर्घायुर्जायते नात्र संशयः ॥ ११६ ॥
दशमेशे तु भाग्यस्थे सुतवित्तादिसौख्ययुक्।
नृपो नृपतिवंश्यः स्याद्राजतुल्योऽन्यवंशजः ॥ ११७ ॥

दशमेशे तु कर्मस्थे सत्यवादी पराक्रमी ।
गुरुभक्तोऽखिले कृत्ये निपुणः सुखितो भवेत् ॥ ११८ ॥
दशमेशे तु लाभस्थे सुत-वित्तयुतो गुणी ।
सत्यवादी प्रसन्नात्मा सुखितो जातको भवेत् ॥ ११९ ॥
दशमेशे व्ययस्थे तु व्ययकृन्नृपतेर्वशात् ।
दक्षो रिपुजनाद् भीतोऽनिशं चिन्तातुरो नरः ॥ १२० ॥

पञ्चस्थ दशमेश हो तो जातक धन, पुत्र युक्त विद्याओं से पूर्ण नित्य हृष्ट-पुष्ट रहा करता है। षष्ठस्थानगत वह हो तो जातक शत्रुपीडित होता है। वह निपुण होते हुए भी दरिद्र तथा पितृसौख्यवर्जित होता है। सप्तमभावस्थ दशमेश हो तो मनुष्य स्त्रीसौख्यपूर्ण, गुणी, सत्यधर्मनिष्ठ तथा मनस्वी, होता है। अष्टमस्थ दशमेश हो तो जातक दूसरे का निन्दक, निष्क्रिय और दीर्घायु होता है। भाग्यस्थ उसे रहने पर जातक धनपुत्रसौख्ययुक्त होता है। ऐसा जातक यदि राजवंश में हो तो वह राजा होवे और अन्य वंश में राजा के समान होता है। दशमेश दशमस्थ हो तो जातक सत्यवादी, पराक्रमी, गुरुभक्त, सभी, कार्यों में निपुण तथा सुखी होता है। दशमेश लाभस्थ हो तो मनुष्य धन, पुत्र, तथा गुण से युक्त होता है। वह सतत प्रसन्न, सत्यवादी एवं सुखी होता है। व्ययस्थ दशमेश होतो राजा के द्वारा व्ययशील, निपुण, शत्रुभीत, और सतत चिन्ताकुल होता है ॥ ११३–१२० ॥

लाभेश-फल—

लाभेशे तनुगे वक्ता धनवान् सात्विको जनः ।
काव्यकृत्समदृष्टिश्च नित्यं वित्तागमो भवेत् ॥ १२१ ॥
लाभेशे वित्तगे जातो धन-धर्मसुखान्वितः ।
सर्वत्र सिद्धिसुग् दानपरो जायेत निश्चितम् ॥ १२२ ॥
लाभेशे सहजे मातृसौख्ययुक्तः पुमान् भवेत् ।
निपुणः सर्वकार्येषु भीतिः शूलरुजापि च ॥ १२३ ॥
लाभेशे मातृगे मातृपक्षतोऽर्थाप्तिमाञ् जनः ।
भूगेहसौख्यसम्पन्नस्तीर्थाटनपरो भवेत् ॥ १२४ ॥
लाभेशे पञ्चमगते सुखितो धर्मतत्परः ।
सुशीलैर्गुणिभिः पुत्रैः विद्याविद्भिर्वृतो भवेत् ॥ १२५ ॥
लाभेशे षष्ठभावस्थे नानारोगसमन्वितः ।
क्रूरः प्रवासी रिपुभिरर्दितः स जनो भवेत् ॥ १२६ ॥

लाभेशे सप्तमगते जातः कामयुतो गुणी ।
उदारः स्त्रीयशो दारवंशादर्थाप्तिमानपि ॥ १२७ ॥
लाभेशेऽष्टमगे जातो विफलः सर्वकर्मसु ।
दीर्घायुष्मानपि परं भार्यायाः प्राग् मृतिर्भवेत् ॥ १२८ ॥

लाभेश के लग्नगत होने पर मनुष्य धनी सात्त्विक प्रवृत्ति वाला, काव्यनिर्माता, समदृष्टि तथा सतत धनागम शील होता है। धनगत लाभेश हो तो जातक धन, धर्म, सौख्य से पूर्ण, सर्वत्र सिद्धियुक्त तथा दानी होता है। सहजस्थ वे हो तो मनुष्य भ्रातृसौख्यपूर्ण सभी कार्यों से निपुण और शूल रोग से विभीत होता है। लाभेश चतुर्थस्थ हो तो मातृपक्ष से धनप्राप्ति, भूमि, गृह सौख्य से युक्त तथा तीर्थाटनशील जातक होता है। पञ्चमस्थ लाभेश हो तो जातक सुखी धर्मपरायण तथा विद्वान् सुशील तथा गुणी पुत्रों से युक्त होता है। षष्ठस्थ लाभेश हो तो जातक अनेक रोगों का शिकार, क्रूरस्वभाव वाला, प्रवासी तथा शत्रुओं से पीड़ित होता है। लाभेश दारभावगत हो तो जातक गुणी, कामी, उदार, स्त्री के अधीन और स्त्रीवंश से अर्थप्राप्ति वाला होता है। अष्टमस्थ लाभेश हो तो जातक सर्वत्र कर्म-विफल, दीर्घायु, तथा अपने समक्ष स्त्री का मरण देखने वाला होता है ॥१२१–१२८॥

लाभेशे भाग्यगे जातो राजपूज्यो धनाधिपः ।
चतुरः सत्यवादी च निजधर्मसमन्वितः ॥ १२९ ॥
लाभेशे दशमस्थे तु नृपमान्यो यतात्मवान् ।
सत्यवादी गुणी चापि स्वधर्मे तत्परो नरः ॥ १३० ॥
लाभेशे लाभगे जातोऽखिलकृत्येषु लाभवान् ।
सद्विद्यासुखेनापि समृद्धः प्रत्यहं भवेत् ॥ १३१ ॥
लाभेशे व्ययगे जातो म्लेच्छसंसर्गकारकः ।
कामुको बहुकान्तश्च सत्कृतौ व्ययकृद् भवेत् ॥ १३२ ॥

भाग्यस्थानगत लाभेश हो तो मनुष्य राजवन्द्य धनी, चतुर, सत्यवादी, अपने धर्म में परायण होता है। कर्मस्थ वे हो तो मनुष्य राजपूज्य, संयतात्मा (जितेन्द्रिय) सत्यवादी, गुणी तथा स्वधर्मतत्पर होता है। लाभेश लाभस्थ हो तो मनुष्य को सभी कार्यों में लाभ, सद्विद्या तथा सौख्य से प्रत्यह समृद्ध होता है। व्ययस्थ लाभेश हो तो जातक म्लेच्छों से संसर्ग करने वाला कामी, अनेक स्त्री वाला तथा सत्कार्य में व्ययशील होता है ॥ १२९–१३२ ॥

व्ययेश-फल—

व्ययेशे तनुगे जातो व्ययप्रकृतिको भवेत् ।
दुर्बलः कफरोगी च धनविद्याविवर्जितः ॥ १३३ ॥

व्ययेशे धनगे जातो धर्मशीलः प्रियंवदः ।
सत्कृत्यव्ययकृन्नित्यं सुखितोऽथ गुणी भवेत् ॥ १३४ ॥
व्ययेशे भ्रातृगे भ्रातृसुखहीनो जनो भवेत् ।
स्ववपुःपोषणे सक्तः परद्वेषकरश्च सः ॥ १३५ ॥
व्ययेशे तुर्यगे जातो जननीसौख्यवञ्चितः ।
भूवाहनगृहैश्चापि विहीनो जायते नरः ॥ १३६ ॥

व्ययेश लग्नस्थ हो तो जातक व्ययप्रकृतिक, दुर्बल, कफरोगी, निर्धन तथा मूर्ख होता है । धनगत वे हो तो मनुष्य धार्मिक प्रिय बोलने वाळी, अच्छे कामों में खर्चा करने वाळा, गुणी तथा सौख्यसम्पन्न होता है । सहजस्थ व्ययेश हो तो मनुष्य सहजसौख्यहीन, अपने ही शरीरपोषण में लीन तथा दूसरों का द्वेष करने वाळा होता है । चतुर्थस्थ वे हो तो जातक मातृ, भूमि, यान, गेह सभी सुखों से वञ्चित होता है ॥ १३३–१३६ ॥

व्ययेशे पुत्रगे पुत्रहेतोर्भूरिव्ययी नरः ।
विद्यापुत्रविहीनश्च सदा तीर्थाटने रतः ॥ १३७ ॥
व्ययेशे शत्रुगे शत्रुः स्वजनस्य च पापधीः ।
दुःखितः कोपनो जातः परजायासु लम्पटः ॥ १३८ ॥
व्ययेशे स्त्रीगृहस्थे स्त्रीकृते भूरिकृतव्ययः ।
वञ्चितः स्त्रीसुखेन स्यान्निर्विद्यो निर्बलो नरः ॥ १३९ ॥
व्ययेशे रन्ध्रगे जातो मध्यायुष्मान् प्रियंवदः ।
सर्वसद्गुणसम्पन्नो लाभयुक् सर्वदा भवेत् ॥ १४० ॥
व्ययेशे धर्मगे जातो भवेत् स्वार्थपरायणः ।
सुहृद्भिर्गुरुभिर्नित्यं द्वेषबुद्धिविधायकः ॥ १४१ ॥
व्ययेशे पितृभावस्थे पितृतः स्वल्पसौख्यभाक् ।
भूपतिद्वारसम्बद्ध-धनव्ययकरोभवेत् ॥ १४२ ॥
व्ययेशे लाभगे लाभहेतौ लाभो न जायते ।
कदाचित् परवित्तस्य लाभः स्तोकः प्रजायते ॥ १४३ ॥
व्ययेशे व्ययगे जातो भवेद् भूरिव्ययी सदा ।
देहसौख्यविहीनोऽसौ लोकद्वेषी च कोपनः ॥ १४४ ॥

पञ्चम भावस्थ व्ययेश हो तो पुत्र के लिए अधिक व्यय करना पड़ता है । ऐसा जातक पुत्र, विद्या विहीन होकर सदा तीर्थाटनरत होता है । व्ययेश षष्ठस्थ हो

तो जातक अपने जनों का भी दुश्मन तथा पाप बुद्धि होता है। ऐसा जातक क्रोधी दुखी तथा परस्त्रियों में लम्पट होता है। व्ययेश सप्तमस्थ हो तो स्त्री के लिए बहुत व्ययशील मनुष्य होता है। वह स्त्रीसुख से वञ्चित निर्बल तथा अपद होता है। अष्टमस्थ व्ययेश हो तो मनुष्य प्रियभाषी तथा मध्यम आयुवाला होता है। वह सभी सद्गुणों से युक्त सतत लाभपूर्ण होता है। भाग्यभावस्थ व्ययेश हो तो मनुष्य स्वार्थी, मित्रों तथा गुरुजनों से नित्य द्वेष करने वाला होता है। व्ययेश दशमस्थ हो तो पिता से स्वल्प सुख वाला जातक होता है। वह राजद्वार-सम्बद्ध होकर धनव्यय करने वाला होता है। व्ययेश लाभस्थ हो तो लाभ के योग होने पर भी हानि ही होती है। कभी दूसरे के धन का थोड़ा लाभ हो जाता है। व्ययेश व्ययस्थ हो तो सतत अधिक व्ययशील मनुष्य होता है। वह शारीरिक सौख्य से वञ्चित होकर लोगों से द्वेष करने वाला तथा क्रोधी होता है ॥ १३७–१४४ ॥

न्यूनाधिक फल-विचार

एतत्ते कथितं विप्र ! फलं यद् भावनाथजम् ।
बलाबलविवेकेन सकलं तद् विनिर्दिशेत् ॥ १४५ ॥
द्विभेशस्य नभोगस्य विज्ञाय द्विविधं फलम् ।
फले तुल्ये विरोधेऽपि स्यादभावो द्वयोरपि ॥ १४६ ॥
विभिन्ने तु फले तत्र प्राप्तिः स्यादुभयोरपि ।
ग्रहे पूर्णबले जाते फलं पूर्णं समादिशेत् ॥ १४७ ॥
अर्धमर्धबले हीनबले पादं विनिर्दिशेत् ।
भावस्थभावनाथानां फलमित्थमुदीरितम् ॥ १४८ ॥

हे मैत्रेय ! मैंने भावेशजन्य फल जो कहा है वह फल उनके बालाबल विचार कर कहना चाहिए। द्विराशीश (भौमादि-शन्यन्त) ग्रहों का द्विविध फल भावाधिपत्य के अनुसार कहें। समान फल में विरोध होने पर दोनों फलों का अभाव कहें। भिन्न-भिन्न फल होने पर दोनों (शुभ या अशुभ) की प्राप्ति कहें। पूर्णबल ग्रह हो तो पूर्ण फल, अर्धबल होने पर आधा, हीनबल ग्रह हो तो चतुर्थांश फल का निर्देश करें। यह भावस्थित भावेशों का फल मैंने कहा है।

द्विराशीश भौमादि शन्यन्त ग्रह किसी लग्न में दो भावों के अधिप होंगे। उपर्युक्त भावाधिपत्य के अनुसार द्विविध फल का होना स्वाभाविक है। वह फल यदि भिन्न भिन्न हो तो दोनों फल कहना चाहिए। समान फल में विरोध हो—जैसे एक से राज्य प्राप्ति, दूसरे से दारिद्र्य—तो दोनों फल में से कोई भी आदेश योग्य नहीं है ॥१४५–१४८॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
भावाधीशफलाध्यायः समाप्तः ॥ २५ ॥

अथ धूमाद्यप्रकाशग्रहफलाध्यायः ॥ २६ ॥

पराशर उवाच—

सूर्यादीनां तु सप्तानां ग्रहाणां भावजं फलम् ।
गदितश्चाप्रकाशानामथ मैत्रेय ! तद् ब्रुवे ॥ १ ॥
शूरो विमलनेत्रांशः सुस्तब्धो निर्घृणः खलः ।
मूर्त्तिस्थे खलु धूमाख्ये गाढरोषो नरः सदा ॥ २ ॥
रोगी धनी तु हीनाङ्गो राज्यापहृतमानसः ।
द्वितीये भावगे धूमे मन्दप्रज्ञो नपुंसकः ॥ ३ ॥
मतिमान् शौर्यसंयुक्त इष्टवित्तः प्रियंवदः ।
धूमे सहजभावस्थे धनाढ्यो धनवान् भवेत् ॥ ४ ॥
कलत्राङ्गपरित्यक्तो नित्यं मनसि दुःखितः ।
चतुर्थेऽधिगते धूमे सर्वशास्त्रार्थचिन्तकः ॥ ५ ॥
स्वल्पापत्यो धनैर्हीनो धूमे पञ्चमसंस्थिते ।
गुरुता सर्वभक्षं च सुहृन्मन्त्रविवर्जितः ॥ ६ ॥
बलवान् शत्रुवधको धूमे च रिपुभावगे ।
बहुतेजोयुतः ख्यातः सदा रोगविवर्जितः ॥ ७ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! सूर्यादि सातों ग्रहों के भावाधिपत्यजन्य फल कहा गया है । अब मैं धूमाद्यप्रकाशग्रहों का फल कहता हूँ ।

लग्नगत धूमग्रह हो तो जातक शूर, विमलदृष्टि, स्तब्ध, निर्दय, दुष्ट तथा अत्यधिक क्रोधी होता है ।

धनभावस्थित धूमग्रह हो तो जातक रोगी, धनी, विकलाङ्ग, राज्य से अपहृत चित्त वाला, मन्दबुद्धि, तथा निर्वीर्य होता है। धूमग्रह सहजभावगत हो तो मनुष्य शूर, बुद्धिमान् , मधुरभाषी, तथा धन-धान्यपूर्ण होता है । चतुर्थ भावगत धूम हो तो स्त्री परित्यक्त होने के कारण सतत मानसिकदुःख से युक्त और समस्त शास्त्रों का चिन्तक होता है। पञ्चमस्थ धूमग्रह हो तो जातक धनहीन, अल्प सन्तान वाला, गौरवी, सर्वभक्षी और मित्रों के विचार से अलग रहता है । षष्ठस्थ धूम हो तो जातक बलिष्ठ, शत्रुजेता, तेजस्वी, सतत नीरोग, तथा विख्यात होता है ॥ १–७ ॥

निर्धनः सततं कामी परदारेषु कोविदः ।
धूमे सप्तमभावस्थे निस्तेजाः सर्वदा भवेत् ॥ ८ ॥

विक्रमेण परित्यक्तः सोत्साहः सत्यसंगरः ।
अप्रियो निष्ठुरः स्वार्थी धूमे मृत्युगते सति ॥ ९ ॥
सुतसौभाग्यसम्पन्नो धनी मानी दयान्वितः ।
धर्मस्थाने स्थिते धूमे धर्मिष्ठो बन्धुवत्सलः ॥ १० ॥
सुतसौभाग्यसंयुक्तः सन्तोषी मतिमान् सुखी ।
कर्मस्थे मानवो नित्यं धूमे सत्यपदस्थितः ॥ ११ ॥
धनधान्यहिरण्याढ्यो रूपवांश्च कलान्वितः ।
धूमे लाभगते चैव विनीतो गीतकोविदः ॥ १२ ॥
पतितः पापकर्मा च द्वादशे धूमसङ्गते ।
परदारेषु संसक्तो व्यसनी निर्घृणः शठः ॥ १३ ॥

सप्तमभावगत धूम हो तो मनुष्य दरिद्र, कामी परस्त्रीलम्पट और हमेशा निस्तेज रहता है। अष्टमस्थ धूम हो तो जातक पराक्रमहीन किन्तु उत्साहपूर्ण, सत्यनिष्ठ कटुभाषी, निष्ठुर तथा स्वार्थपरायण होता है। भाग्यस्थ धूम हो तो जातक धनी, मानी, पुत्रसौभाग्यपूर्ण, दयावान् धार्मिक, तथा बान्धवप्रिय होता है। कर्मस्थ धूम हो तो मनुष्य बुद्धिमान् सन्तोषी सुखी, पुत्र-सौख्यपूर्ण, सन्मार्ग पर स्थित होता है। लाभभावगत धूम हो तो मानव धन, धान्य, रत्न से परिपूर्ण, रूपवान्, कलाओं का वेत्ता, विनम्र, तथा गायक होता है। द्वादश भावगत धूम हो तो मनुष्य पतित, पाप करने वाला, परस्त्रीगामी, निर्दय, दुर्व्यसनशील तथा धूर्त होता है ॥ ८–१३ ॥

पात-फल—

मूर्त्तौ पाते च सम्प्राप्ते जातो दुःखप्रपीडितः ।
क्रूरो घातकरो मूर्खो बन्धूनां द्वेषकारकः ॥ १४ ॥
जिह्मोऽतिपित्तवान् भोगी धनस्थे पातसंज्ञके ।
निर्घृणश्चाकृतज्ञश्च दुष्टात्मा पापकृत् तथा ॥ १५ ॥
स्थिरप्रज्ञो रणी दाता धनाढ्यो राजवल्लभः ।
पाते तु सहजे याते सेनाधीशो भवेन्नरः ॥ १६ ॥
बन्धव्याधिसमायुक्तः सुतसौभाग्यवर्जितः ।
चतुर्थगो यदा पातस्तदा स्यान्मनुजस्तु सः ॥ १७ ॥
दरिद्रो रूपसंयुक्तः पाते पञ्चमभावगे ।
कफपित्तानिलैर्युक्तो निष्ठुरो निरपत्रपः ॥ १८ ॥

शत्रुहन्ता सुपुष्टश्च सर्वास्त्राणां प्रयोगकृत् ।
कलासु निपुणः शान्तः पाते शत्रुगते सति ॥ १९ ॥
धनदारसुतैस्त्यक्तः स्त्रीजितश्चातिदुःखितः ।
पाते कलत्रगे कामी निर्लज्जः परसौहृदः ॥ २० ॥
विकलाक्षो विरूपश्च दुर्भगो द्विजनिन्दकः ।
मृत्युस्थाने स्थिते पाते रक्तपीडाप्रपीडितः ॥ २१ ॥
बहुव्यापारको नित्यं बहुमित्रो बहुश्रुतः ।
पाते तु धर्मभावस्थे स्त्रीप्रियोऽतिप्रियंवदः ॥ २२ ॥
सस्त्रीको धर्मकृच्छान्तो धर्मकार्येषु कोविदः ।
पाते तु कर्मभावस्थे महाप्राज्ञो विचक्षणः ॥ २३ ॥
प्रभूतधनवान् मानी सत्यवादी दृढव्रतः ।
अश्वाढ्यो गीतसंसक्तः पाते लाभगते सति ॥ २४ ॥
कोपी च बहुकर्माढ्यो व्यङ्गो धर्मस्य दूषकः ।
व्ययस्थाने गते पाते विद्वेषी निजबन्धुषु ॥ २५ ॥

पात लग्नगत हो तो जातक दुःखी, क्रूरस्वभाव वाला, घातक, मूर्ख, और अपने बान्धवों का द्वेष करने वाला होता है । धनगत पात हो तो मनुष्य कुटिल, अति पित्त-प्रकृति, विलासी, निर्दयी, अकृतज्ञ, दुष्टात्मा तथा पापी होता है । सहजस्थ पात हो तो जातक स्थिरबुद्धि, रणकुशल दानी, धनी, राजप्रिय, और सेनाधीश होता है । चतुर्थस्थ पात हो तो मनुष्य बन्धन तथा व्याधि से युक्त और पुत्रसौख्यहीन, होता है । पञ्चम-भावस्थ पात हो तो मनुस्य दरिद्र, देखने में सुन्दर, त्रिदोष (कफपित्तवात) से पीड़ित निष्ठुर एवं निर्लज्ज होता है । षष्ठस्थ पात हो तो जातक शत्रुहन्ता, स्वयं सुपुष्ट, सभी अस्त्रों को चलाने वाला, कलाओं में निपुण, तथा शान्त होता है । जायाभावगत पात हो तो जातक धन, स्त्री, पुत्रों से परित्यक्त, या स्त्री के अधीन, अत्यन्त दुखी कामी निर्लज्ज तथा दूसरों से मैत्री करने वाला होता है । अष्टमस्थ पात हो तो मनुष्य नेत्ररोगी, कुरूप ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला तथा रक्तपीडा से दुखी होता है ।

धर्मभावगत पात रहे तो मनुष्य अनेक कार्यों में हाथ बटाने वाला बहुमित्र, बहुश्रुत, स्त्री से अधिक प्रेम करने वाला तथा मधुरभाषी होता है । कर्मस्थ पात रहे तो जातक लक्ष्मीवान् धर्मवेत्ता, शान्त, धर्मकार्य में अभिरुचि दिखाने वाला, तथा महाप्राज्ञ होता है । लाभभावस्थ पात हो तो मनुष्य प्रचुरधनशाली, मानी, सत्यनिष्ठ, दृढव्रत, अश्वयानयुक्त, तथा गायक होता है । व्ययस्थ पात हो तो जातक क्रोधी, अनेक कार्यों में मन लगाने वाला, विकलाङ्ग, धर्मद्वेषी, और अपने बन्धुओं से द्वेष करने वाला होता है ॥ १४–२५ ॥

परिधि-फल—

विद्वान् सत्यरतः शान्तो धनवान् पुत्रवान् शुचिः ।
दाता च परिधौ मूर्त्तौ जायते गुरुवत्सलः ॥ २६ ॥
ईश्वरो रूपवान् भोगी सुखी धर्मपरायणः ।
धनस्थे परिधौ नूनं प्रभुर्भवति मानवः ॥ २७ ॥
स्त्रीवल्लभः सुरूपाङ्गो देवस्वजनसङ्गतः ।
तृतीये परिधौ भृत्यो गुरुभक्तिसमन्वितः ॥ २८ ॥
परिधौ सुखभावस्थे विस्मितं त्वरिमङ्गलम् ।
अक्रूरं त्वथ सम्पूर्णं कुरुते गीतकोविदम् ॥ २९ ॥
लक्ष्मीवान् शीलवान् कान्तः प्रियवान् धर्मवत्सलः ।
पञ्चमे परिधौ जातः स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥ ३० ॥
व्यक्तोऽर्थः पुत्रवान् रोगी सर्वसत्त्वहिते रतः ।
परिधौ रिपुभावस्थे शत्रुहा जायते नरः ॥ ३१ ॥
स्वल्पापत्यः सुखैर्हीनो मन्दप्रज्ञः सुनिष्ठुरः ।
परिधौ द्यूनभावस्थे स्त्रीणां व्याधिश्च जायते ॥ ३२ ॥
अध्यात्मचिन्तकः शान्तो दृढकायो दृढव्रतः ।
धर्मवांश्च सुसत्त्वश्च परिधौ रन्ध्रभावगे ॥ ३३ ॥
पुत्रान्वितः सुखी कान्तो धनाढ्यो लौल्यवर्जितः ।
परिधौ धर्मगे मानी त्वल्पसन्तुष्टमानसः ॥ ३४ ॥
कलासु कुशलो भोगी दृढकायो ह्यमत्सरः ।
परिधौ दशमे प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ३५ ॥
स्त्रीरोगी गुणवांश्चैव मतिमान् स्वजनप्रियः ।
लाभे तु परिधौ याते मन्दाग्निरुपपद्यते ॥ ३६ ॥
व्ययस्थे परिधौ जातो गुरुनिन्दापरायणः ।
दुर्मतिर्दुःखितो नित्यं जायते व्ययकृत्तथा ॥ ३७ ॥

लग्नस्थ परिधि हो तो जातक विद्वान् सत्यनिष्ठ, शान्त, धनी, पुत्रवान् पवित्र दानी, तथा गुरुरक्त होता है। धनगत परिधि हो तो मनुष्य शक्तिसम्पन्न, सुन्दर, भोगी, सुखी, धर्मरत, तथा लोकनायक होता है। सहजस्थ परिधि हो तो जातक स्त्री का प्रिय, सुन्दर स्वरूप वाला, देवता एवं स्वजनों का प्रेमी, भृत्यवृत्ति करने वाला

तथा गुरुभक्त होता है। सुखभावगत वह हो तो जातक विस्मययुक्त, शत्रु का मङ्गल-कारक, साधुस्वभाव वाला, तथा गायक होता है। पञ्चमभावस्थ परिधि रहे तो मनुष्य धनी, शीलवान् , सुन्दर, जनप्रिय, धर्मिष्ठ, तथा स्त्रीवल्लभ होता है। षष्ठभावस्थ परिधि हो तो मनुष्य प्रख्यात धनी, पुत्रवान् , रुग्ण, सभी प्राणियों का हितैषी, तथा शत्रुहन्ता होता है। जायाभावस्थ वह हो तो मनुष्य कम सन्तान वाला दुःखी, मन्दबुद्धि, निर्दय तथा रुग्णस्त्रीवाला होता है। अष्टमभावस्थ परिधि रहे तो जातक अध्यात्म चिन्तनशील, शान्त, दृढ़शरीर, दृढ़प्रतिज्ञ, धार्मिष्ठ तथा पराक्रमी होता है। भाग्यभावगत वह हो तो मनुष्य पुत्रवान् , सुखी, सुन्दर धनी, सुस्थिर मानी तथा थोड़े में हो सन्तुष्ट होनेवाला होता हैं। दशम भावगत परिधि हो तो जातक अनेक कलाओं में प्रवीण, भोगी, बलिष्ठशरीर वाला, निष्कपट, तथा सभी शास्त्रों में पारङ्गत होता है। एकादश भावगत परिधि हो तो मनुष्य रुग्ण स्त्री वाला, गुणवान्, बुद्धिमान्, आत्मीय व्यक्तियों का प्रिय, तथा मन्दाग्निरोग युक्त होता है। व्ययभावस्थ परिधि हो तो मनुष्य गुरुनिन्दक, दुर्बुद्धि, सतत दुःखी तथा व्ययशील होता है॥ २६–३७॥

चापफल—

धनधान्य-हिरण्याढ्यः कृतज्ञः सम्मतः सताम्।
सर्वदोष-परित्यक्तश्चापे तनुगते नरः॥ ३८॥

प्रियंवदः प्रगल्भाढ्यो विनीतो विद्यया युतः।
धनभावगते चापे रूपवान् धर्मतत्परः॥ ३९॥

कृपणोऽतिकलाभिज्ञश्चौर्यकर्मरतः सदा।
सहजे धनुषि प्राप्ते हीनाङ्गो गतसौहृदः॥ ४०॥

सुखी गोधन-धान्यादि-राजसम्मान-पूजितः।
कार्मुके सुखसंस्थे तु नीरोगो जायते नरः॥ ४१॥

रुचिमान् दीर्घदर्शी च देवभक्तः प्रियंवदः।
चापे पञ्चमगे जातो विवृद्धः सर्वकर्मसु॥ ४२॥

शत्रुहन्ताऽतिधूर्त्तश्च सुखी प्रीतिरुचिः शुचिः।
षष्ठस्थानगते चापे सर्वकर्म-समृद्धिभाक्॥ ४३॥

ईश्वरो गुणसम्पूर्णः शास्त्रविद्धार्मिकः प्रियः।
चापे सप्तमभावस्थे भवतीति न संशयः॥ ४४॥

परधर्मरतः क्रूरः परदार-परायणः।
अष्टमस्थानगे चापे विकलाङ्गो भवेज्जनः॥ ४५॥

तपस्वी व्रतचर्यासु निरतो विद्ययाधिकः ।
धर्मस्थे सति चापे तु मानवो लोकविश्रुतः ॥ ४६ ॥
बहुपुत्रधनैश्वर्यो गोमहिष्यादिमान् भवेत् ।
कर्मस्थे चापसंयुक्ते जायते लोकविश्रुतः ॥ ४७ ॥
चापग्रहे लग्नगते लाभयुक्तो भवेन्नरः ।
नीरोगो दृढकोपाग्निर्मन्त्रस्त्रीपरमास्त्रवित् ॥ ४८ ॥
खलोऽतिमानी दुर्बुद्धिर्निर्लज्जो व्ययसंस्थिते ।
चापे परस्त्रीसंयुक्तो जायते निर्धनः सदा ॥ ४९ ॥

चाप यदि लग्नगत हो तो जातक धन-धान्य-रत्नों से पूर्ण, कृतज्ञ, सज्जनों का प्रिय, और समस्त दोषों से मुक्त होता है। धन भावगत चाप रहे तो मनुष्य प्रिय बोलनेवाला, ढीठ, विद्वान्, सुन्दर तथा धर्मिष्ठ होता है। सहजस्थ वह हो तो कृपण, कलाओं का अभिज्ञ, चोर, दुर्बल तथा मित्रहीन होता है। चाप चतुर्थस्थ हो तो मनुष्य सुखी, गाय, धन, धान्यादिकों से राजा का सम्मान प्राप्त करनेवाला, तथा नीरोग होता है। पञ्चमस्थ चाप हो तो मनुष्य कान्तिमान्, दूरदर्शी, देवताओं का भक्त, मधुरभाषी, तथा सभी कार्यों में बढ़ा हुआ होता है। षष्ठस्थ चाप हो तो जातक शत्रुओं को जीतनेवाला, अत्यधिक धूर्त्त, सुखी, प्रेमी, पतित तथा सभी कामों में समृद्धिशील होता है। जायागत चाप हो तो मनुष्य प्रभुत्व-सम्पन्न, गुणी, शास्त्रज्ञ, धार्मिक तथा लोकप्रिय होता है। अष्टमस्थ चाप रहे तो जातक पापकर्म में लीन, क्रूर, परस्त्रीगामी तथा विकलाङ्ग होता है। भाग्यस्थचाप हो तो जातक व्रतादि में लीन, तपस्वी, विद्वान् तथा लोकविख्यात होता है। कर्मस्थ चाप हो तो मनुष्य अनेक पुत्र, धन तथा ऐश्वर्य से परिपूर्ण, गाय-भैंस आदि पशुयुक्त, तथा लोकप्रसिद्ध होता है। लाभभावस्थ चाप हो तो मनुष्य सर्वत्र लाभयुक्त, नीरोग, प्रचण्डकोपाग्निवाला, मन्त्रज्ञ, स्त्रीप्रेमी तथा विशेष अस्त्रों का अभिज्ञ होता है। व्ययभावस्थ चाप रहे तो मनुष्य दुष्ट, घमण्ड वाला, दुर्बुद्धि, निर्लज्ज परस्त्रीसक्त तथा दरिद्र होता है ॥ ३८–४९ ॥

शिखिफल—

कुशलः सर्वविद्यासु सुखी वाङ्निपुणः प्रियः ।
केतौ मूर्त्तिगते जातः सर्वकामान्वितो भवेत् ॥ ५० ॥
वक्ता प्रियंवदः कान्तो धनस्थानगते सति ।
काव्यकृत् पण्डितो मानी विनीतो वाहनान्वितः ॥ ५१ ॥
कृपणः क्रूरकर्मा च कृशाङ्गो धनवर्जितः ।
सहजस्थे तु शिखिनि तीव्ररोगी प्रजायते ॥ ५२ ॥

रूपवान् गुणसम्पन्नः सात्त्विकोऽतिश्रुतिप्रियः ।
सुखसंस्थे तु शिखिनि सदा भवति सौख्यभाक् ॥ ५३ ॥
सुखी भोगी कलाविच्च ध्वजे पञ्चमभावगे ।
युक्तिज्ञो मतिमान् वाग्मी गुरुभक्तिसमन्वितः ॥ ५४ ॥
मातृपक्षक्षयकरो रिपुजिद् बहुबान्धवः ।
रिपौ शिखिनि सम्प्राप्ते शूरः कान्तो विचक्षणः ॥ ५५ ॥
द्यूतासक्तमना नित्यं कामी भोगसमन्वितः ।
सप्तमस्थे तु शिखिनि वेश्यासु-कृतसौहृदः ॥ ५६ ॥
नीचकर्मरतः पापो निर्लज्जो निन्दकः सदा ।
मृत्युस्थाने तु शिखिनि गतस्त्र्यपरपक्षकः ॥ ५७ ॥
लिङ्गधारी प्रसन्नात्मा, सर्वभूतहिते रतः ।
धर्मगे शिखिनि प्राप्ते धर्मकार्येषु कोविदः ॥ ५८ ॥
सुखसौभाग्यसम्पन्नः कामिनीनां च वल्लभः ।
दाता द्विजसमायुक्तः कर्मस्थे शिखिनि ध्रुवम् ॥ ५९ ॥
नित्यलाभः सुधर्मी च लाभे शिखिनि संस्थिते ।
धनाढ्यः सुभगः शूरः सुयज्ञश्चातिकोविदः ॥ ६० ॥
पापकर्मरतः शूरः श्रद्धाहीनोऽघृणो नरः ।
परदाररतो रौद्रः शिखिनि व्ययगे सति ॥ ६१ ॥

शिखी (अप्रकाशग्रह) लग्नस्थ हो तो जातक सभी विद्याओं में निपुण, सुखी, वाक्पटु, प्रिय तथा सभी कामनाओं से परिपूर्ण होता है। धनस्थ वह हो तो बालक वक्ता, मधुरभाषी, सुन्दर, कवि, विद्वान् मानी, नम्र तथा वाहनों से युक्त होता है। सहजस्थ शिखी हो तो मनुष्य कञ्जूस, निष्ठुर, दुर्बलाङ्ग, धनहीन तथा वातव्याधिपूर्ण होता है। सुखस्थ शिखी हो तो मनुष्य, सुन्दर, गुणयुक्त, सात्त्विकप्रकृतिवाला, वेदप्रेमी तथा सर्वदा सौख्यपूर्ण होता है। पञ्चमस्थ शिखी हो तो मनुष्य सुखी, भोगी, कलाभिज्ञ, युक्तियों का जानकार, बुद्धिमान्, वाग्मी तथा गुरुभक्तिरत होता है। षष्ठस्थ शिखी हो तो जातक मातृपक्ष का नाश करनेवाला, शत्रुजेता, अनेक बान्धव वाला, शूर, सुन्दर तथा विद्वान् होता है। सप्तमस्थ वह हो तो मनुष्य सतत जुआड़ी, कामी, भोगविलासशील, तथा वेश्यागामी होता है। अष्टमस्थ शिखी हो तो मनुष्य नीचकर्मरत, पापिष्ठ, निर्लज्ज, परनिन्दक तथा स्त्रीसौख्यविहीन होता है भाग्यस्थ शिखी हो तो मनुष्य संन्यास आदि विशेष वेष धारण करनेवाला, प्रसन्नचेता, सभी प्राणियों का हितैषी और धर्म कार्यों में निपुण होता है। कर्मस्थ वह

हो तो मनुष्य विशिष्टसौख्यसम्पन्न, कामिनियों का प्रिय, दान देनेवाला तथा ब्राह्मणों से सम्पर्क करनेवाला होता है ! एकादशस्थ शिखी हो तो मनुष्य को सतत लाभ, धर्म में प्रेम और धन, सौन्दर्य, शौर्य, सत्कर्म तथा विद्वत्ता सभी प्राप्त होते हैं। व्ययस्थ शिखी हो तो मनुष्य पापिष्ठ, वीर, श्रद्धा एवं दया से रहित, दूसरे की स्त्री में आसक्त तथा भयङ्कर होता है ॥ ५०–६१ ॥

गुलिक फल—

रोगार्त्तः सततं कामी पापात्माधिगतः शठः ।
लग्नस्थे गुलिके मर्त्यः खलभावोऽतिदुःखितः ॥ ६२ ॥
विकृतो दुःखितः क्षुद्रो व्यसनी च गतत्रपः ।
धनस्थे गुलिके जातो निःस्वो भवति मानवः ॥ ६३ ॥
चार्वङ्गो ग्रामपः पुण्यैः संयुतः सज्जनप्रियः ।
मान्दौ तृतीयगे जातो जायते राजपूजितः ॥ ६४ ॥
रोगी सुखपरित्यक्तः सदा भवति पापकृत् ।
सुखगे गुलिके जातो वातपित्ताधिको भवेत् ॥ ६५ ॥
विस्तुतिर्विधनोऽल्पायुर्द्वेषी क्षुद्रो नपुंसकः ।
सुतस्थानगते मान्दौ स्त्रीजितो नास्तिको भवेत् ॥ ६६ ॥
वीतशत्रुः सुपुष्टाङ्गो रिपुस्थाने यमात्मजे ।
सुदीप्तः सम्मतः स्त्रीणां सोत्साहः सुदृढो हितः ॥ ६७ ॥
स्त्रीजितः पापकृज्जारः कृशाङ्गो गतसौहृदः ।
जीवितः स्त्रीधनेनैव सप्तमस्थे शनेः सुते ॥ ६८ ॥
क्षुधालुर्दुःखितः क्रूरस्तीक्ष्णरोगोऽतिनिर्घृणः ।
मान्दौ तु रन्ध्रगे निःस्वो जायते गुणवर्जितः ॥ ६९ ॥
बहुक्लेशः कृशतनुर्दुष्टकर्मातिनिर्घृणः ।
मान्दौ धर्मस्थिते मन्दः पिशुनो बहिराकृतिः ॥ ७० ॥
पुत्रान्वितः सुखी भोक्ता देवाग्न्यर्चनवत्सलः ।
दशमे गुलिके जातो योगधर्माश्रितः सुखी ॥ ७१ ॥
सुखी भोगी प्रजाध्यक्षो बन्धूनां च हिते रतः ।
लाभे यमात्मजे जातो नीचाङ्गः सार्वभौमकः ॥ ७२ ॥
नीचकर्माश्रितः पापो हीनाङ्गो दुर्भगोऽलसः ।
व्ययगे गुलिके जातो नीचेषु कुरुते रतिम् ॥ ७३ ॥

गुलिक लग्नगत हो तो मनुष्य रुग्ण, नित्यकामुक, पापिष्ठ, शठ, दुष्टस्वभाववाला तथा अतिदुःखी होता है। धनस्थ वह हो तो जातक विकारयुक्त, दुःखी, क्षुद्र स्वभाव वाला, दुर्व्यसनशील, निर्लज्ज तथा दरिद्र होता है। सहजस्थ गुलिक हो तो मनुष्य सुन्दर, ग्रामपति, पुण्यवान् सज्जन-प्रेमी तथा राजवन्द्य होता है। सुखस्थ वह हो तो, जातक सुखहीन, रुग्ण, सतत-पापरत तथा वातपित्त की अधिकता वाला होता है। पञ्चमस्थ गुलिक रहे तो मनुष्य परनिन्दक, दरिद्र, अल्पायु, दूसरों से द्वेष करनेवाला, क्षुद्रविचारशील, नपुंसक, स्त्रीवश तथा नास्तिक होता है। षष्ठस्थ गुलिक हो तो मनुष्य निःसपत्न, पुष्ट अङ्ग वाला, कान्तिमान् स्त्रियों का प्रिय, उत्साह-सम्पन्न, सुहृद तथा हितकारक होता है। सप्तमस्थ वह हो तो जातक स्त्री के अधीन, पापिष्ठ, परस्त्री-गामी, दुर्बलाङ्ग, मित्रहीन और स्त्री-धन से ही जीनेवाला होता है। अष्टमस्थ गुलिक हो तो जातक क्षुधार्त्त, दुःखी, निष्ठुर, तीव्ररोष व्यक्त करनेवाला, अतिनिर्दय, निर्धन तथा गुणहीन होता है। नवमस्थ वह हो तो जातक अनेक कष्टयुक्त, दुर्बल, दुष्कर्मरत, अतिनिर्दय, मन्दबुद्धि, चुगलखोर तथा बाहरी आकार वाला होता है। दशमस्थ गुलिक हो तो जातक पुत्रवान्, सुखी, भोगपरायण, देवता तथा अग्नि की पूजा का प्रेमी, योगधर्मरत तथा सुखी होता है। आयस्थ वह हो तो मनुष्य सुखी, भोगी, लोगों में अग्रगण्य, बन्धुओं के हित में लीन, छोटा शरीर वाला तथा सर्वत्र मान्य होता है। व्ययस्थ वह हो तो मनुष्य नीच कर्म करने वाला, पापी, हीनाङ्ग, कुरूप, आलसी, तथा नीच के साथ रति करनेवाला होता है ॥ ६२—७३ ॥

प्राणपद-फल—

मूकोन्मत्तो जडाङ्गस्तु हीनांगो दुःखितः कृशः।
लग्ने प्राणपदे क्षीणो रोगी भवति मानवः ॥ ७४ ॥
बहुधान्यो बहुधनो बहुभृत्यो बहुप्रजः।
धनस्थानस्थिते प्राणे सुभगो जायते नरः ॥ ७५ ॥
हिंस्रो गर्वसमायुक्तो निष्ठुरोऽतिमलिम्लुचः।
तृतीयगे प्राणपदे गुरुभक्तिविवर्जितः ॥ ७६ ॥
सुखस्थे तु सुखी कान्तः सुहृद् रामासु वल्लभः।
गुरौ परायणः शीतः प्राणे वै सत्यतत्परः ॥ ७७ ॥
सुखभाक् सत्क्रियोपेतस्तूपचारदयान्वितः।
पञ्चमस्थे प्राणपदे सर्वकाम-समन्वितः ॥ ७८ ॥
बन्धुशत्रुवशस्तीक्ष्णो मन्दाग्निर्निर्दयः खलः।
षष्ठे प्राणे रोगयुक्तो वित्तपोऽल्पायुरेव च ॥ ७९ ॥

ईर्ष्यालुः सततं कामी तीव्ररौद्रवपुर्नरः ।
सप्तमस्थे प्राणपदे दुराराध्यः कुबुद्धिमान् ॥ ८० ॥
रोगसन्तापिताङ्गश्च प्राणपादेऽष्टमे सति ।
पीडितः पार्थिवैर्दुःखैर्भृत्यबन्धुसुतोद्भवैः ॥ ८१ ॥
पुत्रवान् धनसम्पन्नः सुभगः प्रियदर्शनः ।
प्राणे धर्मस्थिते भृत्यः सदाऽदुष्टो विचक्षणः ॥ ८२ ॥
वीर्यवान् मतिमान् दक्षो नृपकार्येषु कोविदः ।
दशमे वै प्राणपदे देवार्चनपरायणः ॥ ८३ ॥
विख्यातो गुणवान् प्राज्ञो भोगी धनसमन्वितः ।
कामस्थानस्थिते प्राणे गौराङ्गो मानवत्सलः ॥ ८४ ॥
क्षुद्रो दुष्टस्तु हीनाङ्गो विद्वेषी द्विजबन्धुषु ।
व्यये प्राणे नेत्ररोगी काणो वा जायते नरः ॥ ८५ ॥

प्राणपद लग्नस्थ हो तो, मनुष्य गूंगा, पागल, जडाङ्ग, दुर्बल, दुःखी, पतला और रोगी होता है। धनस्थ वह हो तो जातक अनेक धन-धान्य, भृत्य पुत्रों से युक्त, तथा देखने में सुन्दर होता है। सहजस्थ प्राणपद हो तो जातक, हिंसक, घमंडी, निष्ठुर, अत्यन्त मलिन तथा गुरुओं में अनादर रखने वाला होता है। सुखस्थ वह हो तो मनुष्य सुखी, सुन्दर, साफ हृदय वाला, स्त्रियों का प्रेमी, गुरुभक्त, मृदु तथा सत्यपरायण होता है। पञ्चमस्थ प्राणपद हो तो जातक सुखी, सत्कार्यरत, दयावान् तथा सभी कार्यों में दक्ष होता है। षष्ठस्थ वह हो तो बन्धुओं तथा शत्रुओं के अधीन रहनेवाला, तेज, मन्द-अग्निवाला, निर्दय, दुष्ट, रोगी, धनी तथा अल्पायु होता है। सप्तमस्थ प्राणपद रहे तो मनुष्य सतत कामी, बहुत भयावह शरीरवाला, किसी से भी नहीं मानने वाला, तथा दुर्बुद्धि होता है। अष्टमस्थ वह हो तो रोगसन्तप्त, राजपीड़ित तथा बन्धु-भृत्य-पुत्र कृत दुःखों से दुःखित होता है। नवमस्थ प्राणपद रहे तो मनुष्य पुत्रवान्, धनी, देखने में भव्य, सौभाग्यशील, सेवावृत्ति शील, सज्जन तथा विद्वान् होता है। दशमस्थ वह हो तो जातक वीर्यवान्, बुद्धिमान्, निपुण, राजकार्य में प्रवीण तथा देवपूजापरायण होता है। एकादश भावस्थ प्राणपद हो तो मनुष्य विख्यात, गुणी, विद्वान्, भोगी, धनी, गौराङ्ग तथा सम्मानप्रिय होता है। व्ययस्थ प्राणपद हो तो जातक क्षुद्र विचार वाला, दुष्ट, हीनाङ्ग, ब्राह्मण तथा बन्धुओं से द्वेष करने वाला और नेत्ररोगी अथवा काना होता है ॥ ७४–८५ ॥

इति धूमादिसंज्ञानां ग्रहाणां फलमीरितम् ।
सूर्यादीनां नभोगानामपि तद् विमृशेद् बुधः ॥ ८६ ॥

इत्थं विवेकतोऽतीव शुभं वाप्यशुभं तथा।
मध्यमं भावजनितं फलं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ८७ ॥

इस तरह धूमादिसंज्ञक ग्रहों का फल मैंने कहा है। सूर्यादिग्रहों का भी फल जानकर विवेक से शुभ, अशुभ, अति शुभ, अत्यशुभ, वा मध्यम भावजफल कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि धूमाद्यप्रकाश ग्रहों का तथा सूर्यादि प्रकाश ग्रहों का भावजनित फल जान कर दोनों की समता में अति शुभ वा अत्यशुभ फल कहना चाहिए। दोनों फलों की विषमता में अर्थात् अप्रकाश ग्रहों का फल अशुभ तथा सूर्यादि ग्रहों का शुभ फल हो तो मध्यम फल कहना उचित है ॥ ८६–८७ ॥

इति सविमर्श सुधा-व्याख्योपेते बृहत्पाराशर-होराशास्त्रे धूमाद्यप्रकाशग्रहफलाध्यायः समाप्तः ॥ २६ ॥

अथ गुरु-स्पष्टदृष्टिविवेचनाध्यायः ॥ २७ ॥

मैत्रेय उवाचः—

महर्षे! भावजं प्रोक्तं खेटानां फलमद्भुतम्।
अधुना कृपया ब्रूहि तेषां दृष्टिं स्फुटां प्रभो! ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

ग्रहास्त्र्यंशं त्रिकोणं च चतुरस्रं तु सप्तमम्।
पश्यन्ति पादसंवृद्धया फलदाश्च तथैव ते ॥ २ ॥
पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनि-जीव-कुजाः पुनः।
विशेषतश्च त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् ॥ ३ ॥
एषा स्थानान्तरवशाद् दृष्टिः सामान्यतो बुधैः।
उदिता, खगयोः स्पष्टान्तरात् सा तु स्फुटा मता ॥ ४ ॥

मैत्रेय ने कहा :—हे महर्षे ग्रहों के द्वारा भावों का अद्भुत फल आपने कहा। अब कृपया उन ग्रहों की स्फुट दृष्टि के सम्बन्ध में कहें।

पराशर ने कहा :—सभी ग्रह त्र्यंश (३।१०), त्रिकोण (९।५), चतुरस्र (४।८) तथा सप्तम को चरण-वृद्धि से देखते हैं और तदनुसार ही फल देते हैं। सप्तम को सभी ग्रह देखते हैं। शनि, जीव तथा मंगल, क्रमशः तृतीय, दशम, नवम पञ्चम, चतुर्थाष्टम को विशेषतः पूर्णदृष्टि (चारो चरण) से देखते हैं।

स्थान वश से उक्त यह दृष्टि सामान्य है। स्पष्टान्तर पर से जो (निम्नलिखित रीति से) दृष्टि है वही स्फुट दृष्टि होती है ॥ १–४ ॥

स्पष्ट-दृष्टिसाधन-प्रकार—

दृश्याद् विशोध्य द्रष्टारं शेषे षड्राशितोऽधिके ।
दिग्भ्यो विशोध्य तद्भागा द्विभक्ताः स्फुटदृग्भवेत् ॥ ५ ॥
शराधिके विना राशिं भागा द्विघ्नाः स्फुटा हि सा ।
वेदाधिके त्यजेद् भूताद् भागा दृष्टिः, त्रिभाधिके ॥ ६ ॥
विशोध्यार्णवतो द्वाभ्यां लब्धं त्रिंशद्युतं च सा ।
कराधिके विना राशिं भागास्तिथियुतास्तथा ॥ ७ ॥
रूपाधिके विना राशिं भागा भक्ता दृशाऽपि सा ॥

भाव या ग्रहों को देखने वाला ग्रह द्रष्टा, और जो भाव या ग्रह देखे जाते, वे दृश्य कहलाते हैं। ग्रहों की स्फुट दृष्टि जानने के लिए द्रष्टृ ग्रह के स्फुट राश्यादि को दृश्य ग्रह या भाव के राश्यादि में घटावें, शेष यदि ६ राशि से अधिक हो तो १० राशि में उसे घटाकर अंश बनावें। और दो से भाग दें तो स्पुट दृष्टि होगी। यदि पूर्वोक्त द्रष्टा एवं दृश्य का अन्तर पाँच से अधिक हो तो राश्यतिरिक्त अंशादि को द्विगुणित करने से स्फुट दृष्टि होगी। वही अन्तर चार राशियों से अधिक हो तो उसे पाँच राशि में घटा कर शेषांश तुल्य ही दृष्टि समझनी चाहिए। वही अन्तर तीन राशि से अधिक हो तो चार राशि से उसे घटाकर शेष के आधे में ३० जोड़ने से दृष्टि होती है। वही अन्तर २ से अधिक हो तो केवल अंश को १५ में जोड़ दें तो दृष्टि होगी। यदि १ राशि मात्र से वह अन्तर अधिक हो तो अंशादि का आधा स्फुट दृष्टि होगी ॥ ५–७½ ॥

उदाहरण :—जैसे तन्वादि भावों पर सूर्य की स्फुट दृष्टि जानने के लिए सूर्य को द्रष्टा तथा तन्वादि भावों को दृश्य समझ कर पूर्वोक्त नियमानुसार दृष्टि-साधन करना चाहिए। जैसे पूर्वोक्त कल्पित स्पष्ट सूर्य = २।५°।२५′।१५″। ग्रहादि-साधनाध्याय में अंकित तनुभाव = ६।१९°।२९′।३८″ उपर्युक्त नियमानुसार स्पष्ट सूर्य राश्यादि को लग्न में घटाने से ६।१९°।२९′।३८″—२।५°।२५′।१५″ = ४।१४°।४′।२३″ = अन्तर यह चार से अधिक है, अतः ५ राशि में घटाने से ५।०°।०′।०″—४।१४।४।२३ = ०।१५°। ५५′।३७″। यही अंशादि स्फुट दृष्टि हुई। धन भाव पर सूर्य की स्फुट दृष्टि साध्य हो तो स्फुट सूर्य को धन भाव राश्यादि ७।२०°।३०′।४९″ से घटाने पर ७।२०°।३०′।४९″—२।५°।२५′।१५″=५।१५°।५′।३४″। यह चूंकि ५ राशि से अधिक है। अतः द्विगुणित अंशादि = ३०।११।८ यही स्फुट दृष्टि हुई। सहज भाव पर दृष्टि = ८।२१।३२।०—२।५।२५।१५ = ६।१६।६।४५।

चूँकि यह अन्तर षड्भाधिक है अतः १० में घटाने से १०।०।०।०—६।१६।६।४५ = ३।१३।५३।१५। इसका आधा = ५१।५६।३७ यही स्फुट दृष्टि हुई। इसी तरह भाव या ग्रह कोई भी दृश्य हो तो उपर्युक्त नियम से दृष्टि साधन करना चाहिए।

दृश्य द्रष्ट्रन्तर यदि १० राशि से अधिक अथवा एक राशि से अल्प हो तो दृष्टि शून्य जानना ॥ ५—७½ ॥

कुज, गुरु, शनि की दृष्टि-साधन में विशेषता

एवं सामान्यतो दृष्टिसाधनाय विधिः स्मृतः ॥ ८ ॥
मन्दक्षितिज-जीवानां दृष्टौ बोध्या विशेषता।
शनेः शेषेऽङ्कभमिते भोग्यांशा, एकभे पुनः ॥ ९ ॥
भुक्तांशा युग्मगुणिता द्विभेंऽशार्धोनिताः खषट्।
अष्टभे त्रिंशता युक्ता भुक्तांशाः स्फुटदृग् भवेत् ॥१०॥
भौमे त्रिसप्तभे शेषे षष्टिर्भुक्तलवोनिताः।
सार्धांशकास्तिथियुता द्विभे पूर्णाऽङ्कभे मता ॥११॥
गुरोस्त्रिसप्तभे भुक्तांशार्धं पञ्चाब्धिसंयुतम्।
द्विघ्नभुक्तांशकैरूना षष्टिर्दृष्टिर्गजाब्धिभे ॥१२॥

पूर्वोक्त विधि सामान्यतः ग्रहों के दृष्टि-साधन के लिए कहा है। शनि, भौम, गुरु के दृष्टि-साधन में विशेषता समझनी चाहिए। शनि के दृष्टि-साधन में द्रष्टा (शनि) और दृश्य के अन्तर करने पर राशिस्थान में नौ हो तो भो नयांश को, एक हो तो भुक्तांश को दो से गुणा करे, अन्तर में दो राशि रहे तो भुक्तांश के आधे को ६० में घटावें, और अन्तर करने पर राशिस्थान में ८ हो तो भुक्तांश को ३० में जोड़ दें तो स्फुट दृष्टि होती है। मंगल के दृष्टि साधन में द्रष्टा मंगल को दृश्य में घटाने पर राशि-स्थान में ३, ७, हो तो भुक्तांश को ६० में घटा दें, यदि राशिस्थान में २ हो तो सार्ध भुक्तांश (ड्यौढ़ा) में १५ जोड़ दें, और यदि राशिस्थान ६ अङ्क हो तो पूर्ण दृष्टि १ या ६०' होती है। गुरु द्रष्टा हो तो उपर्युक्त अन्तर में ३, या ७ राशि रहे तो भुक्तांशार्ध को ४५ में जोड दें, तथा ४ या ८ राशि बचे तो द्विगुण भुक्तांश को ६० में घटा दें तो स्फुट दृष्टि होती है। राश्यङ्क अन्य हो तो पूर्ववत् दृष्टि-साधन करें ॥ ८—१२ ॥

उदाहरण :—

जैसे कल्पित द्रष्टा शनि = ५।१५।३०।२५ दृश्य ग्रह = ७।५।३५।४०। अतः दृश्य-द्रष्टा = ७।५।३५।४०—५।१५।३०।२५ = १।२०।५।१५ यहाँ राशिस्थान में एक अंक है, अतः नियमानुसार भुक्तांशादि २०।५।१५ को २ से गुणने पर = २०।१०।३० यही स्फुट दृष्टि हुई। यहीं पर कल्पित दृश्य = ७।२५।३५।४० तो दृश्य-द्रष्टा = २।१०।५।१५ यह राश्यादि अन्तर होगा। इसमें चूँकि राशिस्थान में दो है अतः अंशादि के आधे के ६० में घटाने पर स्फुट दृष्टि होगी।

जैसे अंशादि = १०।५।१५। इसका आधा = ५।२।३७। इसे ६० में घटाया = ६०—५।२।३७ = ५४।५७।२३ यह कलादि स्फुट दृष्टि हुई। इसी प्रकार उपर्युक्त नियमानुसार सभी स्थितियों में शनि, गुरु, मंगल का दृष्टिसाधन समझना चाहिए ॥

इत्थं भवेदिनादीनां स्फुटा दृष्टिः सतां मता ।
भावानां च फलं विज्ञैर्वाच्यं तदनुसारतः ॥ १३ ॥

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहोंकी स्फुट दृष्टि होती है। भावों का फल भी इसी दृष्टि के अनुसार समझना चाहिए ॥ १३ ॥

इति सविमर्श-सुधा व्याख्योपेते बृहत्पाराशर-होराशास्त्रे
गुरुस्पष्टदृष्टिविवेचनाध्यायः ॥ २७ ॥

अथ स्पष्टबलनिर्णयाध्यायः ॥ २८ ॥

पराशर उवाच :—

अथ स्थानं दिशा-चेष्टा-कालस्पष्ट-बलं ब्रुवे ।
नीचोनं तु ग्रहं भार्धाधिके चक्राद् विशोधयेत् ॥ १ ॥
भागीकृत्य त्रिभिर्भक्तं फलमुच्चबलं भवेत् ।
मूलत्रिकोण-स्वर्क्षाधि-मित्र-मित्र-समारिषु ॥ २ ॥
अधिशत्रुगृहे चापि स्थितानां क्रमशो बलम् ।
पञ्चाब्धि-खाग्नि-नखर-तिथि-दिग्-युगदृष्टयः ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा :—अब मैं ग्रहों के स्थान, दिशा, चेष्टा, कालादि सम्बद्ध स्पष्टबल बतलाऊँगा। उच्च बल जानने के लिए स्पष्टग्रह में नीच राश्यादि को घटाकर, ६ राशि से कम शेष में उसी के अंश को ३ से भाग लें तो फल उच्च बल होता है। पूर्वोक्त शेष ६ राशि से अधिक हो तो उसे १२ राशियों में से घटाकर शेषांश को त्रिभक्त करें तो उच्च बल होगा। अपने मूलत्रिकोण में स्थित ग्रह का ४५', स्वगृह में ३०', अधिमित्र गृह में २०', मित्रगृह में १५', सम के घर में १०', शत्रुगृह में ४', अधिशत्रु के घर में २' बल होता है।

उदाहरण :—

जैसे स्पष्ट सूर्य = २।५°।२५'।१५"। इसमें सूर्य के नीचराश्यादि ६।१०।०।० को घटाया २।५।२५।१५—६।१०।०।० = ७।२५।२५।१५ यह ६ राशि से अधिक है, अतः बारह राशि में घटाने पर ४।४।३४'।४५" = १२४।३४'।४५"। इसमें ३ से भाग देने पर = ४१'।३२" यह उच्चबल हुआ।

यहाँ सूर्य मिथुन (बुध के घर) में हैं। बुध सूर्य का सम है अतः स्थान बल १० हुआ ॥ १–३ ॥

गृह-होरा-स्व-द्रेष्काण-सप्तांशकार्कांशसम्भवम् ।
बलं तदैक्यं त्रिंशांशबलयुक सप्तवर्गजम् ॥ ४ ॥

गृह, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश सम्बन्धी बलों का योग सप्तवर्गज बल होता है ॥ ४ ॥

समविषम भांशस्थ-सितेन्दुबल—

सितेन्दू युग्मभांशेंऽक्षिमितमोजगताः परे ।

केन्द्रादिस्थ-खेटबल—

केन्द्रादिषु स्थिताः खेटाः सकलार्धाङ्घ्रिदाः क्रमात् ॥ ५ ॥

शुक्र, चन्द्रमा, समगृह या समनवमांश में रहने पर अन्य ग्रह विषम राशि या विषम नवांशस्थ होने पर चरण मात्र (१५ कला) बल देते हैं ।

केन्द्रस्थित समस्त गृह (६०′) परफणस्थग्रह आधा (३०′) और आपोक्लिमस्थग्रह अंघ्रिमित (१५′) मात्र बल देते हैं ॥ ५ ॥

द्रेष्काण-बल—

आद्यमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु स्थिताः क्रमात् ।
पुंनपुंसकयोषाख्या दद्युः पादमितं बलम् ॥ ६ ॥

पुरुष, क्लीब तथा स्त्रीग्रह क्रमशः आदिम, मध्यम तथा अन्तिम (तृतीय) द्रेष्काणस्थ होने पर चरण मात्र बल देते हैं । (सूर्य, मंगल, गुरु पुरुष ग्रह हैं । बुध, शनि, क्लीब, शेष स्त्रीग्रह हैं ॥ ६ ॥

दिग्बल—

अर्कात् कुजात् सुखं जीवाज्ज्ञाच्चाऽस्तं लग्नमार्कितः ।
मध्यलग्नं भृगोश्चन्द्राद् हित्वा षड्भाधिके सति ॥ ७ ॥
चक्राद् विशोध्य भागास्तु रामाप्तास्तद्दिशो बलम् ।

सूर्य, मंगल से चतुर्थ भाव को, गुरु और बुध से सप्तम भाव को, शनि से लग्न को, शुक्र और चन्द्रमा से दशम को घटाकर शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाकर, अंश करें । उनमें ३ से भाग देने पर ग्रहों का दिग्-बल होता है । स्फुट ग्रह तथा भावों के द्वारा उदाहरण अति सरल है ॥ ७ ॥

नतोन्नतबल—

भौमचन्द्रशनीनां तु नता घट्यो द्विसंगुणाः ॥ ८ ॥
शुद्धास्ताः षष्टितोऽन्येषां कलाद्यं तद्बलं भवेत् ।
बौधं नतोन्नतबलं रूपं ज्ञेयं सदा बुधैः ॥ ९ ॥

नत घटी को दो से गुणा करने पर मंगल, चन्द्रमा, तथा शनि का बल होता है । ६० में इसे घटा देने से शेष अन्यग्रहों का कलादिक बल होता है । बुध का नतोन्नतबल सदैव एक (पूर्ण = ६०′) समझना चाहिए ।

(नतोन्नत का परिज्ञान ग्रहादिसाधनाध्याय में है) ॥ ८–९ ॥

पक्षबल—

चन्द्राच्छुद्धो रविः षड्भादूनः शोध्यस्तु चक्रतः ।
शेषांशा वह्निविहृताः शुभानामुदितं द्विज ! ॥ १० ॥
पक्षजं बलमिन्दुज्ञशुक्रार्याणां तु षष्टितः ।
शोध्यं तदेव विज्ञेयमिनारार्किसमुद्भवम् ॥ ११ ॥

स्पष्ट सूर्य को स्फुट चन्द्र के राश्यादि में घटाकर ६ राशि से अधिक शेष में १२ राशि में घटावें । शेष के अंशादि को तीन से भाग दें तो चन्द्रमा, बुध, शुक्र तथा गुरु, इन शुभग्रहों का पक्षज बल हो जाता है । इनके पक्षबल को ६० में घटाने पर पापग्रह (सूर्य, भौम तथा शनि) का पक्षबल होगा ॥ १०—११ ॥

उदाहरणः—

जैसे स्पष्टसूर्य = २।५।२५।१५

कल्पितचन्द्र = ९।२५।३७।४५

चन्द्र—सूर्य = ९।२५।३७।४५—२।५।२५।१५ = ७।२०।१२।३० यह ६ राशि से अधिक है, अतः १२ राशि में घटाने से १२।०।०।०—७।२०।१२।३० = ४।९।४७। ३०। इसका अंशादि = १२९।४७।३३ इसमें ३ से भाग देने पर ४३।१५।५० यह पक्षजबल चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु, (शुभग्रहों) का हुआ । इसे—६० में घटाने पर १६।४४।१० = सूर्य, भौम, शनि, (पापग्रहों) का पक्षजबल ॥ १०—११ ॥

दिनरात्रित्र्यंशबल—

ज्ञार्कमन्देन्दुशुक्रारा दिनरात्र्योस्त्रिभागपाः ।
तत्रैतेषां बलं पूर्णं देवेज्यस्य तु सर्वदा ॥ १२ ॥

दिन रात्रि के त्रिभागों के अधिप क्रमशः बुध, सूर्य, शनि, चन्द्र, शुक्र, भौम होते हैं । अपने-अपने त्रिभाग में पूर्ण बल होता है । गुरु का सर्वदैव त्र्यंशबल पूर्ण (६०) होता है ॥ १२ ॥

वर्ष-मास-दिन होराबल—

वर्षमासदिनेशानां तिथिर्त्रिंशच्छरार्णवाः ।
होराधिपबलं पूर्णमिति ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ १३ ॥

वर्षेश, मासेश, दिनेश का बल क्रमशः १५′, ३०′, ४५′ और होरेश का पूर्ण ६०′ बल होता है ॥ १३ ॥

स्फुटनैसर्गिक बल—

षष्टिः सप्तहृतैकादिसप्तभिर्गुणिता तदा ।
मन्दारज्ञेज्यशुक्रेन्दुसूर्याणां स्यात् स्फुटं बलम् ॥ १४ ॥

सप्तभक्त ६० कला को एकादि सात से गुणने से क्रमशः शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, सूर्य इन सातो ग्रहों का नैसर्गिक स्फुट बल होता है ॥ १४ ॥

उदाहरण स्पष्ट है।

अयनबल—

शराब्धयोऽमराः सूर्याः खण्डकाः, सायनग्रहाः।
तद्दोराशिसमा खण्डयुतिर्भोग्यसमाहतात् ॥ १५ ॥
अंशादिकात् खरामाप्त-युता अंशादयो मताः।
सायने तुलमेषादौ धनर्णं शनिचन्द्रयोः ॥ १६ ॥
राशित्रये, तथा ज्ञे तु धनं, व्यस्तं तु शेषके।
तदंशा विहृता रामै रायनं बलमीरितम् ॥ १७ ॥

४५, ३३, १२ ये तीनं खंडे होते हैं। आयनबल ज्ञान के लिए सायनग्रह के भुज बनावें। इसमें राशितुल्य खण्डों का योग करें। अंशादि शेष को भोग्य खण्ड से गुणा कर ३० से भाग दें। लब्धि को राशितुल्य खण्डों के योग में जोड़ें तो अंशादि समझना चाहिए। ३० से अधिक अंश होने पर राशि बनावें। इन राश्यादिकों को सायन शनि, चन्द्र तुलादि ६ राशिगत हों तो ३ राशि में जोड़े, और मेषादि ६ राशि गत हों तो ३ राशि में घटावें। बुध में मेषादि तुलादि दोनों स्थिति में ३ राशि जोड़ें। शेष ग्रह सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्र में विपरीत—मेषादि ६ राशिगत होने पर ३ राशि जोड़ें और तुलादि में तीन राशि में घटावें। इस प्रकार आगत अंशादि का त्रिभाग आयन बल होता है।

उदाहरण :—जैसे कल्पित सायन सूर्य = २।२८।३२।१० यह तीन राशि से कम है, अतः यही भुज हुआ। भुज राशि संख्या तुल्य प्रथम द्वितीय खण्डों का योग = ४५ + ३३ = ७८। अंशादि २८।३२।१० को भोग्य खण्ड १२ से गुणने पर ३४२। २६।० इसमें ३० से भाग देने पर ११।१४'।४०"। इसे खण्डों के योग ७८ में जोड़ने पर ८९।१४'४०" = २।२९।१४।४०। चूंकि सायनसूर्य मेषादिगत हैं अतः ३ राशि में जोड़ने पर ५।२९।१४।४० इसके अंश का तृतीयांश = $\frac{१६९।१४'।४०''}{३}$ = ५९।४४।५३ = अयनबल हुआ ॥ १५–१७ ॥

बल में विशेषता—

सूर्यस्यायनजं यत् स्याद्बलं चेष्टाख्यकं च तत्।
चन्द्रचेष्टाबलं पक्षबलमेकमुदीरितम् ॥ १८ ॥

सूर्य का आयनबल और चेष्टाबल समान होते हैं। चन्द्रमा का चेष्टाबल तथा पक्षबल एक ही होते हैं अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के बलानयन में एक ही बल साधन करने से दोनों बलों का ज्ञान हो जाता है ॥ १८ ॥

दृग्बल—

शुभाशुभदृशां पादैर्युगयुक् तु बलैक्यकम्।
ज्ञेज्यदृष्टियुतं तर्हि स्फुटं ग्रहबलं स्मृतम् ॥ १९ ॥

बलैक्य में शुभग्रहों के दृष्टियोग के चतुर्थांश को जोड़ने से तथा पाप ग्रहों की दृष्टि के चतुर्थांश को घटाने से जो शेष बचे उसमें बुध, गुरु की दृष्टि को जोड़ दें तो ग्रहों का स्पष्टबल होता है ॥ १९ ॥

मिथः संयुध्यतोस्ताराग्रहयोर्यद् बलान्तरम् ।
धनं बले विजेतुस्तन्निर्जितस्य बलेऽन्यथा ॥ २० ॥

परस्पर युद्धरत मंगलादि ताराग्रहों के षड्बलैक्यान्तर को विजेता के बल में जोड़ना चाहिए। और विजित ग्रह के बल में घटाने पर स्पष्ट बल होगा ॥ २० ॥

ग्रहों की अनेकविधगति तथा गतिबल—

वक्रानुवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा ।
शीघ्रा शीघ्रतरा चेति ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥ २१ ॥

षष्टिर्वक्रगतेर्वीर्यमनुवक्रगतेर्दलम् ।
पादो विकलभुक्तेः स्यात् समायास्तु दलं स्मृतम् ॥ २२ ॥
पादो मन्दगतेस्तस्य दलं मन्दतरस्य च ।
शीघ्रभुक्तेस्तु पादोनं दलं शीघ्रतरस्य तु ॥ २३ ॥

वक्रा, अनुवक्रा, विकला, मन्दा, मन्दतरा, मध्या, शीघ्रा तथा शीघ्रतरा ये आठ प्रकार की ग्रहगति है। वक्रगति ग्रह का बल ६०' अतिवक्र का ३०, विकलगति का १५' मध्यगति ग्रह का ३०', मन्दगति ग्रह का १५', मन्दतरगति वाले का पादार्ध (७'।३०") शीघ्रगति ग्रह का ४५', अतिशीघ्र गति का ३०' बल होता है ॥२१-२३॥

चेष्टाकेन्द्र तथा भौमादि ग्रहो का चेष्टाबल—

मध्यमस्पष्टराश्यादिग्रहयोगदलोनितम् ।
स्वस्वशीघ्रोच्चकं षड्भाधिकं चक्राद विशोधितम् ॥ २४ ॥
चेष्टाकेन्द्रं कुजादीनां, भागीकृत्य त्रिभिर्भजेत् ।
चेष्टाबलं भवति यद् बलमेवं तु षड्विधम् ॥ २५ ॥
स्थानजं दिग्भवं कालदृष्टिचेष्टानिसर्गजम् ॥

अपने शीघ्रोच्च में से मध्यस्पष्टग्रह योगार्ध को घटावें ६ राशि से अधिक शेष हो तो १२ राशि में घटाने पर भौमादि ग्रहों का चेष्टाकेन्द्र होता है। चेष्टा केन्द्र के अंश को ३ से भागलेने पर जो लब्धि होवे वही चेष्टाबल होता है। इस प्रकार स्थानबल, दिग्बल, कालबल, दृष्टिबल, चेष्टाबल तथा निसर्गजबल ये षड्विध बल होते हैं। केशवीय जातक-पद्धति में—मध्यस्पष्टयुतेर्दलोनितचलं चेष्टाख्यकेन्द्रं कुजाद्य ॥ इत्यादि कहा गया है ॥ २४—२५३ ॥

अथ भावबलोपपादन—

ग्रहाणां बलमित्युक्तं शृणु भावबलं पुनः ॥ २६ ॥
द्वन्द्वकन्यातुलाधन्विपूर्वार्धघटतोऽस्तभम् ।
सुखं गोऽजमृगाद्यार्धसिंहचापोत्तरार्धतः ॥ २७ ॥
कर्क्यालितस्तनुं, खं तु मीनान्नक्रान्तिमार्धतः ।
विशोध्याङ्काधिकं तच्चेच्छोध्यमर्काल्लवीकृतम् ॥ २८ ॥
त्रिभक्तं सदसद्दृष्टिपादयुक्तोनितं क्रमात् ।
बुधेज्यदृग्युतं तत्तु स्वस्वेशबलसंयुतम् ॥ २९ ॥
स्फुटं भावबलं चैतदन्यत्तु प्रागुदीरितम् ।

इस तरह मैंने ग्रहों का स्फुटबल कहा है, अब भावबलसाधन सुनो। मिथुन, कन्या, तुला, धनु का पूर्वार्धं तथा कुम्भ का भावबल साध्य हो तो इनमें से सप्तम भाव राश्यादि को घटावें, मेष, वृष, मकर का पूर्वार्ध, सिंह तथा धनु का उत्तरार्धं, इनके भावबल साधन के लिए चतुर्थ भाव को इनमें से घटावें, कर्क वृश्चिक के भावबल के लिए इनमें से लग्न को घटावें, मकरोत्तरार्धं तथा मीन के बल साधन में इनसे दशमभाव को घटावें, शेष का अंश बनाकर और तीन से भाग दें, शेष ६ राशि से अधिक हो तो उसे १२ राशि से घटाकर अंशीकृत करें और तीन से भाग दें। उसमें भावपर पड़ने वाली शुभग्रहों की दृष्टि के चतुर्थांश जोड़ दें और पाप ग्रहों की दृष्टि के चतुर्थांश को घटावें, और बुध, गुरु की दृष्टि हो तो इसे भी जोड़ दें पुनः अपने स्वामी का बल भी मिलावें तो भाव का स्फुटबल होगा ॥ २६–२७ ॥

भावबल में विशेषता—

विदिज्योपेतभावस्य बलमेकेन संयुतम् ।
मन्दाररवियुक्तस्य बलमेकेन वर्जितम् ॥ ३० ॥
दिवाशीर्षोदयाश्चैव सन्ध्यायामुभयोदयाः ।
नक्तं पृष्ठोदयाश्चैव दद्युरङ्घ्रिमितं बलम् ॥ ३१ ॥

यदि भाव बुध या गुरु से युक्त हो तो उसके बल में एक जोड़ देना चाहिए और वही भाव शनि, मंगल, सूर्य (पापग्रह) से युक्त हो तो आनीत भावबल में एक (६०) घटा देना चाहिए। दिन में इष्टकाल हो तो शीर्षोदय वाले राशिभाव, रात्रि गत इष्ट हो तो पृष्ठोदय वाले राशिभाव, सन्ध्यागत इष्ट हो तो उभयोदय राशिभाव एक चरण अतिरिक्त बल देता है। तात्पर्य यह है कि पूर्वानीत स्फटभाव बल में इस विशेष के अनुसार सिद्ध एक चरण बल और मिलाना चाहिए ॥ ३०–३१ ॥

सुखलिखादि का प्रतिपादन—

अङ्काग्नयोऽङ्करामाश्च खरसाः करसिन्धवः ।

नवाग्नयः क्षुराः शून्याग्नयो दिग्गुणिताः क्रमात् ॥ ३२ ॥

चेद्बलैक्यमिनादीनां ज्ञेयाः सुबलिनस्तदा ।
ततोऽपिच बलाधिक्ये पूर्णतो बलिनो मताः ॥ ३३ ॥

रव्यादि ग्रहों के षड्बलैक्य क्रमशः यदि ३९०, ३६०, ३००, ४२०, ३९०, ३३०, तथा ३०० हो तो १′ (रव्यादि सप्तग्रह) सुबली कहलाते हैं । इससे अधिक होने पर वे पूर्णबली होते हैं। कम बलैक्य में मध्यबली या अल्पबली समझना स्वाभाविक है । (यहां उपर्युक्त बल कलादि है) ॥ ३२–३३ ॥

स्थानादि बलों में सुबलित्व के लिए संख्या—

गुरुसौम्यरवीणां तु भूतषट्केन्दवो द्विज ! ।
पञ्चाग्नयः खभूतानि करभूमिसुधाकराः ॥ ३४ ॥
खाग्नयश्च क्रमात् स्थानदिक्चेष्टासमयाऽयने ।
सितेन्द्वोस्त्र्यग्निचन्द्राश्च खेषवः खाग्नयः शतम् ॥ ३५ ॥
खाब्धयो लिप्तिका भौममन्दयोः षड्नव क्रमात् ।
त्रिंशत् खवेदाः सप्ताङ्गा नखाश्चेत्थमुदीरिताः ॥ ३६ ॥

गुरु, बुध, रवि के स्थानबल दिग्बल, कालबल, चेष्टाबल, और अयनबल में बलाङ्क क्रमशः १६५′ । ३५′ । ५०′ ११२′ । ३०′ ये हों और शुक्र चन्द्र के १३३′ । ५०′ । ३०′ । १००′ । ४०′, तथा मंगल शनि के ९६ । ३०′ । ४० । ६७′ । २०′ हो तो स्थानादि बल में भी वे सुबली समझे जाते हैं ॥ ३४–३६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

ग्रहाः	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	सुयल्यङ्क
षड्बलैक्य में—	३९७′	३६०′	३००′	४३०′	३९०′	३३०′	३००′	,, ,,
स्थान बल में,	१६५′	१३३′	९′६	१६५′	१६५′	११३′	९′६	,, ,,
दिग्बल में,	३५′	५०′	३०′	३५′	३५′	५०′	३०′	,, ,,
चेष्टाबल में,	५०′	३०′	४०′	५०′	५०′	३०′	४०′	,, ,,
कालबल में	११२′	१००′	६७′	११२′	११२′	१००′	६७′	,, ,,
अयन बल में	३०	४०′	२०′	३०′	३०′	४०′	२०′	,, ,,

भावफलप्रद ग्रह—

एवं कृते बलैक्ये तु फलं वाच्यं सदा बुधैः ।
भावस्थानग्रहैः प्रोक्तयोगे ये योगहेतवः ॥ ३७ ॥
बली तेषु च यः कर्त्ता स एवास्य फलप्रदः ।
योगेष्वाप्तेषु बहुषु न्याय एवं प्रकीर्तितः ॥ ३८ ॥

इस तरह बलेश का ज्ञान कर लेने पर फलादेश करना चाहिए । भाव एवं ग्रहों की स्थिति से जो योग कहे हैं उनमें योग कारक ग्रहों में सबसे बली ग्रह कर्त्ता (योग कारक) कहलाते हैं । वही अपने गुण-स्वभावानुसार फलप्रद होते हैं । अनेक ग्रह एक ही भाव के बहुविध योग करने वाले हों तो यही न्याय अपनाना चाहिए ।

जैसे अनेक ग्रहों में से कुछ भाग्यवृद्धिकारक और कुछ भाग्यक्षयकारक हो तो दोनों तरह के ग्रहों का बलैक्य लाना चाहिए। अधिक बलैक्य वाला ही ग्रह अपना फल देता है ॥ ३७–३८ ॥

फलादेशाधिकारी—

गणितेषु प्रवीणोऽथ शब्दशास्त्रे कृतश्रमः।
न्यायविद् बुद्धिमान् होरास्कन्धश्रवणसम्मतः ॥ ३९ ॥
ऊहापोह-पटुर्देशकालवित् संयतेन्द्रियः।
एवंभूतस्तु दैवज्ञोऽसंशयं सत्यमादिशेत् ॥ ४० ॥

गणितशास्त्र में प्रवीण, व्याकरण में श्रमशील, न्याय का जानकार, बुद्धिमान्, ज्यौतिष के होरास्कन्ध के श्रवण-मनन में निष्णात, ऊहापोह (सदनुमान) करने में पटु, देश-कालवेत्ता, और जितेन्द्रिय, ज्योतिषी ही सत्य फलादेश कर सकता है ॥ ३९–४० ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
स्पष्टबलनिर्णयाध्यायः समाप्तः ॥ २८ ॥

अथेष्ट-कष्ट-विवेचनाध्यायः ॥ २९ ॥

पराशर उवाच—

श्रृणु मैत्रेय ! ते वच्मि खेटानामिष्टकष्टकम्।
दशाशुभाशुभफलं यद्वशात् प्रदिशन्ति ते ॥ १ ॥

पराशर ने कहा :—हे मैत्रेय ! मैं ग्रहों के इष्ट-कष्ट का वर्णन करता हूँ। ग्रह-दशा का शुभाशुभ फल उसी के अनुसार देते हैं ॥ १ ॥

उच्चरश्मि का आनयन—

नीचोनं तु ग्रहं भार्धाधिक्ये चक्राद् विशोधयेत्।
उच्चरश्मिर्भवेद्राशिः सैको द्विघ्नांशसंयुतः ॥ २ ॥

ग्रह में अपना नीच राश्यादि को घटावें। शेष राशि में एक जोड़ दें और अंशादि को द्विगुणित करें तो उच्चरश्मि होती है। नीचोन ग्रह ६ राशि से अधिक हो तो वे १२ राशि से घटाकर शेष क्रिया करें ॥ २ ॥

उदाहरण—जैसे स्पष्ट सूर्य = २।५।२५′।१५″ सूर्य का नीच राश्यादि = ६।१०। अतः नीचोन सूर्य = २।५।२५′।१५—६रा०।१०°।०′।०″ = ७।२५।२५′।१५″ चूंकि यह ६ राशि से अधिक है अतः १२ राशि में घटाया १२ रा०। ०°।०′।०″—७।२५।२५। १५ = ४।४।३४।४५। इसके राशि में एक जोड़ दिया और शेषांश को दूना किया तो ५।९।९।३० = यही उच्चरश्मि हुई। इसी तरह सभी ग्रहों की उच्चरश्मि का साधन किया जाता है।

चेष्टारश्मि—

भौमादीनां पुरोक्तं यच्चेष्टाकेन्द्रं द्विजोत्तम।
ततः संसाधयेत् तेषां रश्मिमुक्तोच्चरश्मिवत् ॥ ३ ॥
सत्रिभः सायनार्कोऽथ व्यर्केन्दुश्च यथाक्रमम्।
चेष्टाकेन्द्रं रवीन्द्वोस्तच्छोध्यमङ्गाधिकेऽर्कतः ॥ ४ ॥

हे विप्र ! भौमादि पांचों ग्रहों का जो चेष्टाकेन्द्र पहले कहा गया है उसी के द्वारा पूर्वोक्त उच्चरश्मि की तरह ही इनकी भी उच्चरश्मि का साधन करना चाहिए।

सायनसूर्य में ३ राशि जोड़ने से सूर्य का एवं चन्द्रराश्यादि में सूर्य राश्यादि को घटाने से चन्द्रमा का चेष्टाकेन्द्र होता है। वह (चेष्टा केन्द्र) ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि से घटाना चाहिए। पुनः उच्चरश्मि साधनोक्त नियमानुसार राशि स्थान में एक जोड़ने और अंशादि को दूना करने पर चेष्टा रश्मि होती है ॥ ३–४ ॥

उदाहरण :—

जैसे सूर्य २।५।२५।५ अयनांश = २३।३।४८ अतः सायनार्क = २।२८।२८।५३, इसमें ३ राशि जोड़ने से ५।२८।२८।५३ (यह षड्भाल्प है अतः १२ राशि में घटाने की आवश्यकता नहीं है) पुनः राशि स्थान में १ राशि जोड़ने तथा अंशादि को दूना करने पर ७।२६!५७।४६ यही सूर्य की चेष्टारश्मि हुई। चन्द्र की चेष्टारश्मि साधन में व्यर्केन्दु (चन्द्र में सूर्य को घटाने से) को चेष्टाकेन्द्र समझ कर ६ राशि से अधिक होने पर १२ राशि में घटाने के बाद पूर्वोक्तवत् राशिस्थान में एक जोड़ने अंशादि को दूना करने से चन्द्ररश्मि हो जायगी ॥ ३–४ ॥

शुभाशुभ रश्मि निर्णय—

उच्चरश्मिवदानीय चेष्टारश्मि द्वयोर्युतेः।
दलं तु शुभरश्मिः स्यादष्टभ्यो वर्जितोऽशुभः ॥ ५ ॥

उच्चरश्मि तथा चेष्टारश्मि का योगार्ध शुभरश्मि होती है। शुभरश्मि को आठ में घटाने पर शेष अशुभ रश्मि होगी।

जैसे पूर्वसाधित सूर्य की उच्चरश्मि = ५।९।९।३० सूर्य की चेष्टारश्मि = ७।२६।५७।४६ दोनों का योगार्ध = १८।३।३८ = शुभरश्मि। इसे ८ में घटाने पर ७।११।५६।२ = अशुभरश्मि ॥ ५ ॥

इष्टकष्टानयन—

व्येकौ चेष्टोच्चरश्मी तु संगुण्य दशभिस्तयोः।
योगार्धमिष्टमुदितं कष्टमिष्टोनखाङ्गकम् ॥ ६ ॥

चेष्टारश्मि, उच्चरश्मि, दोनों में एक-एक घटाकर दश से पृथक्-पृथक् गुणा करें। दोनों का योगार्थ इष्ट शुभ होता है। इष्ट को ६० में घटाने पर शेष कष्ट होता है ॥६॥

उदाहरण :—

सूर्योच्चरश्मि = ५।९।९।३०, इसमें एक घटाकर १० से गुणा करने पर =

४०।१०।१०।३०० = ४१।३१।३५।०० (सवर्णन करने पर) इसी तरह चेष्टारश्मि ७।२६।५७।४६ में एक घटा कर दशगुणित करने पर = ६०।२६०।५७०।४६० सवर्णन से—६४।२९।३७।४० । दोनों का योग १०६।११।२।४० । इसका आधा = ५३।०।३६। २० = ५३।१ यह सूर्य का इष्ट हुआ। इसे ६० में घटाने पर ६०।०—५३।१ = ६। ५९ = सूर्य का कष्ट हुआ।

स्थानवश सप्तवर्गज शुभाऽशुभानयन—

स्वोच्चे मूलत्रिकोणे च स्वर्क्षेऽधिसुहृदि द्विज !
मित्रर्क्षे च समर्क्षे च शत्रुभे चातिशत्रुभे ॥ ७ ॥
नीचे च षष्टि-पञ्चाब्धि-खाग्न्याकृतिशरेन्दवः ।
नागा वेदाः करौ शून्यं शुभमेतत् फलं क्रमात् ॥ ८ ॥
वर्जितं षष्टितश्चैतदवशिष्टमसद्गृहे ।
तदर्धं तु फलं प्रोक्तमन्यवर्गे शुभाऽशुभम् ॥ ९ ॥

ग्रह अपने उच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, अधिमित्रगृह, मित्रभवन, समगृह, शत्रुगृह, अधिशत्रुगृह, स्वनीच, इन स्थानों में क्रमशः ६०, ४५, ३०, २२, १५, ८, ४, २, २०, शुभगृहाङ्क होते हैं। इन अङ्कों को ६० में घटाने से उपर्युक्त स्थानों में अशुभ गृहाङ्क होते हैं।

इसी प्रकार होरादि षड्वर्ग में आगत अङ्क के आधे को शुभाऽशुभ समझना चाहिए ॥ ७–९ ॥

जैसे रवि २।५।२५।१५ अपने सम बुध क्षेत्रग हैं अतः शुभगृहांक ८ कला मात्र, अशुभगृहांक ५२' कला। होरादि में प्राप्त का आधा होगा।

उच्चादि में शुभ तथा अशुभ—

पञ्चस्विष्टफलं षष्ठे समे तस्मात् परं त्रिषु ।
अशुभं तु फलं ज्ञेयमिति विज्ञैरुदाहृतम् ॥ १० ॥

उच्चादि (उच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, अधिमित्र गृह और मित्रगृह) स्थानों में कोई भी ग्रह शुभ और षष्ठ (सम के गृह) में सम तथा अन्य शत्रु, अधिशत्रु, तथा नीच इन तीन स्थानों में अशुभ होता है ॥ १० ॥

दिग्बलादि में शुभाशुभत्व—

दिग्बलं दिक्फलं तस्य तथा दिनफलं भवेत् ।
तयोः फलं शुभं प्रोक्तमूनितं षष्टितोऽशुभम् ॥ ११ ॥
शुभाधिक्ये फलं सत्स्यादितरच्च ततोऽन्यथा ।
दशाफलं तथा भाव-फलं ग्रहगणस्य वै ॥ १२ ॥

दिग्बल ही दिक्फल, और दिनबल ही दिनफल समझना चाहिए। उन दोनों के आगत शुभ फल को ६० में घटाने पर अशुभ फल होता है। शुभ की अधिकता सं

ग्रहों का दशाफल या भावफल शुभ होगा अन्यथा अशुभ की अधिकता में दोनों का फल अशुभ होगा ॥ ११–१२ ॥

शुभाशुभ की स्पष्टता—

बलैः षड्भिस्तु संगुण्य हरेत्तद्बलयोगतः ।
तत्तद्बलफलानि स्युरशुभानि शुभानि च ॥ १३ ॥
शुभपापफलाभ्यां च दृष्टिं हन्याद् बलं तदा ।
शुभपापोत्थिते दृष्टी बले स्यातां तथैव ते ॥ १४ ॥

पूर्वानीत फल को पृथक्-पृथक् बलों से गुणाकर षड्बलयोग से भाग लेने पर लब्धि तुल्य शुभ तथा अशुभ फल आवेंगे। अपने-अपने शुभाऽशुभ फलों से अपनी-अपनी दृष्टि तथा अपने-अपने बल को गुणा करने से क्रमशः शुभाशुभ दृष्टि तथा शुभाशुभ बल होते हैं ॥ १३–१४ ॥

ग्रहभाव फलों में विशेषता—

भावानां च फले प्रोक्ते पतीनां च फले उभे ।
राशिः सद्ग्रहयुक्तश्चेद् भावसाधनजं फलम् ॥ १५ ॥
शुभे युञ्ज्याद् वियुञ्ज्यात्तत्त्वशुभे तत्स्फुटं भवेत् ।
पापश्चेदन्यथा चैवं बले दृष्ट्यां द्विजोत्तम ! ॥ १६ ॥
तुङ्गादिस्थे फलं युञ्ज्यान्नीचारिस्थे गृहेऽन्यथा ।
इत्थं विज्ञाय वक्तव्यं शुभाशुभफलं बुधैः ॥ १७ ॥
एवं रीत्याऽष्टवर्गेऽपि फलं ज्ञेयं मनीषिभिः ।
स्थान-संकलनं कार्यं करणे तु तदन्यथा ॥ १८ ॥
राशिद्वयगते भावे तद्राश्यधिपतेः क्रिया ।
स्थानाधिकेन भावेन भावलाभः प्रकीर्त्तितः ॥ १९ ॥
तत्समाने च तद्भावे तदानीं स्थानदान् ग्रहान् ।
संयोज्य स्थानसंख्याया दलमेतत् फलं भवेत् ॥ २० ॥
शुभाऽशुभफलं बोध्यमेवं सग्रहभावजम् ।

भाव एवं भावपति दोनों के शुभाशुभ फल कहे जा चुके हैं। दोनों का फलयोग वास्तव फल होता है। भाव यदि शुभग्रह युक्त हो तो भावज फल को शुभफल में जोड़े और अशुभ फल में घटावें तो वास्तव शुभाशुभ फल होते हैं। यदि भाव असद्ग्रह (पाप) युक्त हो तो भावज फल को अशुभ फल में जोड़े और शुभ फल में घटावें तो वास्तव फल होंगे। इसी तरह दृष्टि एवं बल में भी करना चाहिए। ग्रह उच्चादि (उच्च, स्वगेह मित्रगृह अधिमित्र गृह मूलत्रिकोण) स्थान गत हो तो आगत

फल को शुभफल में जोड़े और अशुभ फल में घटावें, वही ग्रह नीचादि स्थानगत हो तो शुभफल में घटावें और अशुभफल में जोड़े। इसी तरह अष्टवर्ग में भी स्थान (अधिक शुभ) में जोड़े और करण (अशुभ) में घटाना चाहिये। यदि राशिद्वयगत एक भाव पड़े तो दोनों राशिस्वामियों के अनुसार क्रिया होती है। दोनों में जिसमें स्थानाधिक (अष्टवर्ग रेखा की अधिकता) हो उस भावफल में वृद्धि होती है। यदि ग्रह के समान भाव हो तो स्थानद ग्रहों के योग कर स्थान (रेखा) संख्या के आधा के समान फल होता है इस प्रकार ग्रह एवं भावों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए ॥ १५–२० ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
इष्टकष्टविवेचनाध्यायः समाप्तः ॥ २९ ॥

अथारूढपदाध्यायः ॥ ३० ॥

पराशर उवाच—

अथ वच्मि नभोगानां भावानां च विशेषतः।
फलादेश-विधानाय राश्यारूढपदं द्विज ! ॥ १ ॥
यावदुन्मितभे तिष्ठेल्लग्नतो लग्नपः क्रमात्।
तावदुन्मितभे तस्मात्पदं लग्नस्य कीर्त्यते ॥ २ ॥
इत्थमेव पदं चान्यभावानामपि जायते।
प्राधान्यं तत्र विज्ञेयं मुने ! लग्नपदस्य वै ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं विशेष फलादेश के लिए ग्रह तथा भावों का राश्यारूढपद बतलाता हूँ। लग्नेश लग्न से जितने अग्रिम राशि में विद्यमान हो, उससे उतने ही अग्रिम राशि को लग्न का पद कहा जाता है। इसी तरह अन्य भावों का भी पद-ज्ञान किया जाता है। जैसे मेष लग्न है, लग्नेश भौम सिंह में हैं, अतः सिंह से पञ्चम धन लग्न का पद कहलायेगा। एवं किसी भी भाव से जितनी दूरी पर वह भावेश रहेंगे, उस स्थान से उतनी ही दूरी पर उस भाव का पद होता है। परञ्च इन पदों में प्रधानता लग्नपद की ही होती है अर्थात् पद से साधारणतः लग्नपद ही समझा जाता है ॥ १–३ ॥

अपवाद—

स्वस्थानस्य पदत्वे तु दशमं पदमिष्यते।
सप्तमस्य तथात्वे तु तुरीयं पदमीरितम् ॥ ४ ॥
तुरीयस्थेऽधिपे प्रोक्तं तुर्यमेव यथा पदम्।
सप्तमस्थेऽधिपे चैवं दशमं पदमीक्षितम् ॥ ५ ॥

स्वस्थान पद यदि हो तो दशम को पद समझना, इसी तरह सप्तम यदि पद हो तो चतुर्थ को पद समझना चाहिए। अर्थात् स्वस्थान तथा सप्तम को पद नहीं मानना चाहिए। जैसे चतुर्थं स्थान में लग्नस्वामी हो तो उससे चतुर्थ सप्तम का पदत्व प्राप्त होगा, किन्तु ऐसा न होकर चतुर्थ को ही पद समझना चाहिए। इसी तरह स्वामी यदि सप्तमस्थ हो तो उससे सप्तम अपना ही स्थान होगा। ऐसी स्थिति में अपने स्थान को पद नहीं समझ कर दशम को ही समझना, अभिलषित है ॥ ४–५ ॥

ग्रहों के पद—

यतो नभोगतो यावन्मिते भे तद्गृहं भवेत्।
ततस्तावन्मितं भं तु ग्रहारूढं बुधा विदुः ॥ ६ ॥
गृहद्वयवतामेवं सबलं भवनं च यत्।
गणयेत्तदवध्येवं पदं बोध्यं ततो बुधैः ॥ ७ ॥

ग्रह से जितने आगे अर्थात् ग्रहाधिष्ठित राशि से जितने संख्यक राशि ग्रह का स्वगृह हो उससे उतने संख्यक स्थान को ग्रह का आरूढ या पद कहते हैं। भौमादि पञ्चक ग्रह जो दो दो राशियों के अधिप हैं अर्थात् जिनके दो दो राशि स्वभवन हैं उनके लिए दोनों भवनों में प्रबल राशि को ही स्वभवन समझकर गणनाकर उक्त रीति से पद या आरूढ समझना चाहिए ॥ ६–७ ॥

एकादश स्थान का फल—

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि किञ्चित्पदगतं फलम्।
पदादेकादशे स्थाने शुभग्रहयुतेक्षिते ॥ ८ ॥
लक्ष्मीवाञ्जायते बालो न्यायोपार्जितवित्तकः।
पापेक्षितयुते तत्र भवेदन्यायतोऽर्थवान् ॥ ९ ॥

(हे मैत्रेय!) अब पदाश्रित फल कहूँगा (सुनो)। पद से एकादश स्थान शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो जातक न्यायोपार्जन से सम्पत्तिशाली होता है। यदि वही स्थान पापग्रह युक्त या पापदृष्ट हो तो अन्याय से उसे अर्थ-लाभ होता है ॥ ८–९ ॥

मिश्रैर्मिश्रफलं ज्ञेयमुच्चमित्रादिवेश्मगैः।
बहुधा जायते लाभ-सुखाप्तिश्चाप्यनेकधा ॥ १० ॥
आरूढा लाभभवनं पश्येयुश्चेन्नभश्चराः।
खगादृष्टे व्यये तर्हि जातः स्याद्राजसन्निभः ॥ ११ ॥
पदादाये द्युसद्दृष्टियुत्याधिक्ये द्विजोत्तम!
सार्गले चापि तत्रापि बह्वर्गलसमागमे ॥ १२ ॥
शुभग्रहार्गले ब्रह्मन्! तत्राप्युच्चग्रहार्गले।

शोभनस्वामिना दृष्टे लग्नभाग्यादिगेन वा ॥ १३ ॥
जातस्य प्रबलं भाग्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम् ।
खगश्चेदुक्तयोगेषु द्वादशं नहि पश्यति ॥ १४ ॥

(उपर्युक्त पद से एकादश स्थान) मिश्रग्रह शुभ, पाप दोनों से युत दृष्ट हो तो सुनीति तथा अनीति दोनों प्रकार से अर्थ प्राप्ति होती है। यदि वह ग्रह अपने उच्चादि स्थानों में हो तो अनेकरूप से लाभ तथा सुख-प्राप्ति होती है। पद से एकादश स्थान को सभी ग्रह देखते हों, व्ययस्थान पर किसी ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो वह जातक राजा के समान होता है। पद से एकादश में अधिक ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो भाग्यवृद्धि, तत्रापि एकादश स्थान सार्गल हो तो अधिक भाग्यवृद्धि, अनेक अर्गलाओं की स्थिति में शुभग्रहकृत अर्गला हो तो और भी भाग्यवृद्धि, उसमें भी वह शुभग्रह अपने उच्च का यदि हो तो उससे भी अधिक भाग्यवृद्धि, तत्रापि वह (एकादश स्थान) लग्न, भाग्य आदि स्थानगत शुभ स्वामी से देखे जाते हों तो और भी भाग्यवृद्धि कहनी चाहिए। इस तरह उत्तरोत्तर वृद्धिशील जातक का भाग्य होता है, यदि पद से द्वादश स्थान में कोई ग्रह नहीं हो। द्वादश स्थान में किसी ग्रह के रहने से उत्तरोत्तर भाग्यवृद्धि में कमी कहना अर्थतः सिद्ध है ॥ १०—१४ ॥

पद से द्वादश का फल—

पदाद् व्यये तु मैत्रेय ! शुभपापयुतेक्षिते ।
व्ययाधिक्यं भवेदेवं विशेषोपार्जनात् सदा ॥ १५ ॥
सुमार्गात् शोभनखगैः कुमार्गात् पापखेचरैः ।
मिश्रैर्मिश्रफलं वाच्यं धनाप्तिर्लाभगे भवेत् ॥ १६ ॥
पदारूढाद् व्यये शुक्रभानुस्वर्भानुवीक्षिते ।
राजमूलाद् व्ययो वाच्यश्चन्द्रदृष्ट्या विशेषतः ॥ १७ ॥
पदारूढाद् व्यये सौम्ये शुभखेटयुतेक्षिते ।
ज्ञातिमध्ये व्ययो नित्यं, पापदृष्ट्या कलेर्व्ययः ॥ १८ ॥
पदाद्व्यये सुराचार्ये वीक्षिते चान्यखेचरैः ।
करमूलाद् व्ययोवाच्यो जातकस्य द्विजोत्तम ॥ १९ ॥
आरूढाद् द्वादशे सौरे धरापुत्रेण संयुते ।
अन्यग्रहेक्षिते विप्र ! भ्रातृमूलाद्धनव्ययः ॥ २० ॥
पदात्तु द्वादशे स्थाने गे योगा गदिता मया ।
लाभभावेऽपि ते योगा लाभयोगकराः सदा ॥ २१ ॥

हे मैत्रेय ! पद से द्वादश स्थान पर शुभाशुभ ग्रहों का योग या उनकी दृष्टि

हो तो सतत उपार्जन और काफी खर्चा कहना। शुभग्रहों की युति या दृष्टि में सन्मार्ग से और पापग्रहों की युति या दृष्टि में कुमार्ग से उपार्जन कहें। मिश्रग्रह (शुभ तथा पाप दोनों) की युति दृष्टि से मिश्र फल अर्थात् सन्मार्ग तथा कुमार्ग दोनों तरह से आय और दोनों रूप में व्यय भी कहना। पद से लाभ स्थान पर यदि ग्रहों की युति-दृष्टि हों तो धनलाभ होता है। पद से द्वादश स्थान पर शुक्र, सूर्य, राहु की दृष्टि हो तो राजमूलक धन-व्यय और चन्द्रमा की दृष्टि उस पर हो तो विशेष रूप से राजा के द्वारा धन-व्यय होवे। पद से द्वादश में बुध हो और शुभ ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो सम्बन्धियों के लिए नित्य व्यय कहें और पापग्रह की युति-दृष्टि से कलह के कारण व्यय कहना चाहिए। उक्त स्थान में गुरु हों और अन्य ग्रहों की दृष्टि होवे तो करमूलक व्यय कहना। पद से द्वादश में शनि-भौम-युक्त हो और अन्य ग्रहदृष्ट हो तो भ्रातृमूलक धनव्यय होता है। इस प्रकार द्वादश स्थान के संबन्ध में जो ये योग कहे गए हैं वे लाभ भाव से सम्बद्ध होने पर धन-लाभकर होते हैं ॥ १५–२१ ॥

आरूढ से सप्तम का फल—

पदतः सप्तमे राहुरथवा संस्थितः शिखी।
कुक्षिव्यथायुतो बालः शिखिना वाऽतिपीडितः ॥ २२ ॥
पदात् सप्तमगे केतौ पापखेटयुतेक्षिते।
साहसी श्वेतकेशी च दीर्घलिङ्गी भवेन्नरः ॥ २३ ॥
पदतः सप्तमे स्थाने गुरुशुक्रनिशाकराः।
एको द्वयं त्रयो वापि लक्ष्मीवान् जातको भवेत् ॥ २४ ॥
पदात्तु सप्तमे तुङ्गे शुभो वाप्यशुभो ग्रहः।
श्रीमान् सोऽपि भवेन्नूनं सत्कीर्त्तिसहितो द्विज ॥ २५ ॥
ये पदात् सप्तमे भावे योगाः प्रागुदिता यथा।
ते तथैव बुधैर्बोध्या द्वितीयेऽपि द्विजोत्तम ! ॥ २६ ॥

पद से सप्तमस्थ राहु या केतु हो तो जातक पेट की व्यथा से पीडित होता है। सप्तमस्थ केतु पापग्रह-युक्त या दृष्ट हो तो जातक साहसी, सफेद बाल वाला तथा दीर्घलिङ्गी होता है। उक्त स्थान में गुरु, चन्द्र, शुक्र इनमें से एक या दो अथवा तीनों रहें तो मनुष्य सम्पत्तिशाली होता है। उच्चस्थ शुभ या पाप में से कोई भी पद से सप्तमस्थ हो तो जातक यशस्वी सम्पत्ति-शाली होता है। पद से सप्तम में ग्रहों के रहने से जैसा फल कहा गया है वैसा ही फल पद से द्वितीय में भी ग्रहों की स्थिति से कहना चाहिए ॥ २२–२६ ॥

तुङ्गस्थः शशिजः किंवा जीवो वा कविरेव वा।
एको बली धनगतः श्रियं दिशति देहिनः ॥ २७ ॥

ये योगाश्च पदे लग्ने यथावदुदिता मुने !
कारकांशस्य कुण्डल्यां निर्बाधं ते सतां मताः ॥ २८ ॥

उच्चस्थ बुध, गुरु, शुक्र में से एक भी, अथवा कोई अन्य भी बली ग्रह पद से दूसरे स्थान में हो तो मनुष्य श्रीमान् होता है। पद या लग्नवश भावों के जो फल होते हैं वे फल कारकांश कुण्डली से भी समझने चाहिए ॥ २७–२८ ॥

आरूढात् वित्तभे सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत् ।
सर्वज्ञो जातको वाऽथ कविर्वादी च भार्गवे ॥ २९ ॥
आरूढात् केन्द्र-कोणेषु कलत्रपदसंस्थिते ।
लग्नद्यूनपदे वापि बलवत्खचरान्विते ॥ ३० ॥
श्रीमांश्च जायते नूनं देशे विख्यातिमान् भवेत् ।
षष्ठाष्टमव्यये जायापदे निःस्वो हि जातकः ॥ ३१ ॥
पदे द्यूनेऽपि वा केन्द्रे कोणे चोपचये यदि ।
सुवीर्यः संस्थितः खेटो भार्या-भर्तृ-सुखप्रदः ॥ ३२ ॥
आरूढात् सप्तमपदे स्थितं केन्द्र-त्रिकोणयोः ।
सौहार्दं खलु दम्पत्योः शत्रुत्वं स्यात् त्रिके ध्रुवम् ॥ ३३ ॥
एवं लग्नपदाद् विप्र ! पुत्रादीनां पदे सति ।
मित्रामित्रे विजानीयाद्धानिवृद्धी च दैववित् ॥ ३४ ॥
तनुद्यूनपदे केन्द्र-कोणे वापि त्रिलाभयोः ।
स्थिते सति भवेज्जातो नूनं राजा धराधिपः ॥ ३५ ॥
विलग्नपदतश्चैवं वित्तादिकपदादपि ।
पदद्वितयमालोक्य फलं वाच्यं सदा बुधैः ॥ ३६ ॥

आरूढ (पद) से द्वितीय स्थान शुभग्रहयुक्त हो तो जातक सार्वभौम राजा या सर्वज्ञ होता है। यदि शुक्र द्वितीय स्थान में हो तो वह कवि तथा विवाद करने वाला होता है। पद से १।४।७।१०।९।५ में सप्तम का पद हो या दोनों पद सबल ग्रह-युक्त हो तो जातक निश्चयतः विख्यात धनी होता है। यदि सप्तम का पद आरूढ से त्रिकगत हो तो जातक दरिद्र होता है। पद या उससे सप्तम, केन्द्र, कोण, उपचय (७।१।४।७।१०।९।५।३।११) स्थानों में बलिष्ठ ग्रह हो तो जातक को दाम्पत्यसुख होता है। पद से सप्तम का पद यदि केन्द्र या त्रिकोण में हो तो दम्पति में पारस्परिक सौहार्द रहता है, और त्रिक में हो तो दोनों में शत्रुता होती है। हे विप्र ! इसी तरह लग्नपद से पुत्रादिकों का पद केन्द्र या त्रिकोण में हो तो पुत्रादिकों के साथ परस्पर मैत्री, और त्रिक के होने से शत्रुता जाननी चाहिए। इसी तरह जिस

भाव का पद लग्नपद से केन्द्र या त्रिकोण में हो उस भाव की वृद्धि, त्रिक में पड़ने से उसकी हानि होती है। लग्न तथा सप्तम दोनों के पद यदि केन्द्र या त्रिकोण में पड़े या उपचय (३।११ मात्र) में हो तो जातक पृथ्वी का राजा होता है। इसी तरह लग्नपद, धनादिपदों को देखकर धनादिभावों का भी फल समझना चाहिए ॥ २९–३६ ॥

इति सविमर्श-सुधा-व्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
आरूढाध्यायः समाप्तः ॥ ३० ॥

अथोपपदफलाध्यायः ॥ ३१ ॥

पराशर उवाच—

अधुना ते फलं वक्ष्ये ब्रह्मन्नुपपदाश्रितम् ।
यज्ज्ञानाज्जायते विज्ञो ज्ञातस्य फलसूचकः ॥ १ ॥
प्रधानस्याङ्गभावस्यानुचरस्य पदं हि यत् ।
तदेवोपपदं गौडं किंवोपारूढमुच्यते ॥ २ ॥
तस्मिन्नुपपदे सौम्यगेहे शुभयुतेक्षिते ।
ज्ञेयं चारुतरं सौख्यं पुत्रस्त्रीसम्भवं मुने ! ॥ ३ ॥
सपापे पापदृष्टे वा तस्मिन्नेव हि पापभे ।
दारादिसुखहीनो वा परिव्रजति जातकः ॥ ४ ॥
तत्र सद्ग्रहदृग्योगे दारनाशो न जायते ।
स्वतुङ्गस्वभमित्रर्क्षगतो भानुर्न पापवान् ॥ ५ ॥
नीचारिभवनस्थश्चेत् पापोऽसौ गदितो बुधैः ।

पराशर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब मैं उपपदाश्रित फल कहूँगा। जिसके ज्ञान से विज्ञ जातक का फलादेश करने में समर्थ होता है। अङ्ग (लग्न) भाव प्रधान है। उसके अनुचर (सुतभाव) का जो पद हो वही उपपद, उपारूढ या गौड भी कहलाता है। वह उपपद शुभग्रह का घर हो और उस पर शुभग्रहों का योग या दृष्टि पड़े तो जातक को स्त्रीपुत्रादि का पूर्णसुख प्राप्त होता है। वही उपपद पापग्रह का घर हो और सपाप या पापग्रह-दृष्ट हो तो जातक स्त्री-विहीन या परिव्रजनशील (संन्यासी) होता है। उसी पर शुभग्रह की दृष्टि या युति हो तो स्त्रीनाश नहीं कहना चाहिए। अपने उच्च, स्वगृह तथा मित्रगृहस्थ सूर्य पाप नहीं समझे जाते हैं तथा नीच या शत्रु-क्षेत्रगत वे पाप होते हैं ॥ १–५ ॥

द्वितीये तूपपदतः सौम्यग्रहनिरीक्षिते ॥ ६ ॥
शुभर्क्षे शुभसंयोगे फलं पूर्ववदादिदिशेत् ।
द्वितीये तूपपदतो नीचांशे नीचखेचरैः ॥ ७ ॥
पापैर्वा संयुते जातो भवेद् दारविनाशकः ।
तुङ्गांशे तुङ्गसंस्थे वा दृष्टे वोच्चस्थखेचरैः ॥ ८ ॥
रूपलक्षणसम्पन्नाऽनेकदारो नरो भवेत् ।
द्वितीये वोपपदके मिथुनर्क्षे स्थिते जनः ॥ ९ ॥
जायेत तर्हि नियतं बहुभार्यासमन्वितः ।
द्वितीये वोपपदके स्वस्वामिखचरान्विते ॥१०॥
स्वराशिस्थे तदीशे वा ततोऽन्यत्रापि संस्थिते ।
उत्तरायुषि निर्दारो भवत्येव न संशयः ॥११॥

उपपद से दूसरी शुभराशि, शुभग्रह-युक्त या शुभ-दृष्ट हो तो पूर्ववत् (स्त्री-पुत्रादि-सुख) कहना चाहिए।

उपपद से दूसरा नीचस्थ ग्रह का नवांश हो, और नीचस्थित ग्रहों से या पाप ग्रहों से युक्त हो तो जातक की स्त्री का विनाश हो जाता है। वही (उपपद से दूसरा) उच्चस्थ ग्रह का नवांश हो, या किसी ग्रह का उच्च हो, और उच्चस्थ ग्रहों से देखा जाता हो तो जातक को रूप तथा लक्षणयुक्त अनेक स्त्रियां होती हैं। उपपद या उससे दूसरे में मिथुन राशि पड़े तो निश्चयतः जातक को अनेक स्त्रियां होती हैं। उपपद या उससे दूसरा अपने-अपने स्वामी से युक्त हो या अन्यत्र भी उसका स्वामी स्वराशिस्थ हो तो अन्तिमावस्था में वह स्त्रीविहीन हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६–११ ॥

स्वराशौ संस्थिते खेटे नित्याख्ये दारकारके ।
उत्तरायुषि निर्दारो भवत्येव न संशयः ॥ १२ ॥
तुङ्गर्क्षे तूपपदपे नित्ये वा दारकारके ।
सद्वंशाद्दारलाभः स्यान्नीचस्थे तद्विपर्ययः ॥ १३ ॥
सौम्यसम्बन्धतश्चोपपदे किं वा द्वितीयके ।
सुरूपगुणसम्पन्ना जाया जातस्य जायते ॥ १४ ॥

नित्य स्त्री-कारक ग्रह (सप्तमेश आदि) स्वराशिस्थ हो तो मनुष्य वृद्धावस्था में मृतस्त्रीक हो जाता है। वही (नित्य दारकारक) या उपपदेश उच्चराशिस्थ हो तो सद्वंश से स्त्री की प्राप्ति होती है। और उनके नीचस्थ होने पर नीच वंशोत्पन्ना स्त्री

मिलती है। उपपद या उससे दूसरे पर शुभ ग्रहों की दृष्टि, या योग आदि सम्बन्ध हो तो उस जातक की स्त्री सुन्दरी तथा गुणयुक्त होती है ॥ १४ ॥

द्वितीये तूपपदतो मन्दराहुयुते सति।
त्यागोऽपवादतः पत्न्यास्तन्मृतिर्वा प्रजायते ॥ १५ ॥
तत्रैव सितकेतुभ्यामुपारूढेऽपि वा युते।
रक्तप्रदररोगार्त्ता जायते तस्य भामिनी ॥ १६ ॥
अस्थिस्रावयुता जाया तत्र सौम्यध्वजान्विते।
तत्र मन्दागुरवयो जायास्थिज्वरकारकाः ॥ १७ ॥
स्थूलाङ्गीं कुरुतो बालां विदगू तत्र संस्थितौ।
मन्दारौ विद्गृहे चेत्तु जायो नासारुजान्विता ॥ १८ ॥
ईदृगेव फलं भौमगेहेऽपि गदितं बुधैः।
तत्रैव गुरुमन्दाभ्यां जाया कर्णाक्षिरोगयुक् ॥ १९ ॥
तत्रेतरर्क्षगौ ज्ञारौ राहुजीवौ यदापि वा।
तदा जातस्य जाया स्याद्दन्तरोगनिपीडिता ॥ २० ॥
मन्दागू मन्दभवने पङ्गुर्वातार्दिता प्रिया।
सौम्येक्षितयुते तत्र न दिशेत् फलमीदृशम् ॥ २१ ॥

उपपद से दूसरे स्थानपर शनि, राहु का संयोग हो तो जातक अपवाद के कारण स्त्री का परित्याग करता है या स्त्री की मृत्यु हो जाती है। उपपद या उससे दूसरे में शुक्र केतु हो तो रक्तप्रदर रोग से पीडिता उसकी स्त्री होती है। वहीं बुध-केतु के संयोग से आस्थिस्राव, और शनि, राहु-सूर्य के रहने से अस्थिज्वरपीडिता स्त्री होती है। वहीं यदि बुध-राहु हों तो स्त्री स्थूलाङ्गी और बुध-क्षेत्र (कन्या-मिथुन) में शनि मंगल हो तो नाक के रोग से युक्ता स्त्री होती है। मंगल के घर में भी ऐसा ही फल होता है। वहीं गुरु, शनि हो तो स्त्री कान, आंख के रोगों से युक्ता होती है। उसी उपपद या उससे द्वितीय में स्वराशिभिन्न राशि के मंगल, बुध, या राहु, गुरु हों तो स्त्री दन्तरोग-युक्ता होती है। वहीं शनि क्षेत्र (मकर-कुम्भ) में शनि-राहु पड़े तो स्त्री वात रोग से पीड़िता होती है ॥ १५–२१ ॥

पदोपपदलग्नेभ्यो यद् भं सप्तमगं भवेत्।
ततस्तदधिपात्तस्य नवांशाद् वा फलं दिशेत् ॥ २२ ॥

इस तरह पद, उपपद तथा लग्न से जो सप्तम राशि हो उससे, उसके अधिप से या उसके नवांश से फलादेश कहना चाहिए ॥ २२ ॥

पुत्र विचार—

नवमे मन्दविच्चन्द्रैरुक्तेभ्यो द्विज ! संस्थितैः ।
अनपत्यमथो राहुजीवार्कैर्बहुसूनुता ॥ २३ ॥
तत्रेन्दुनैकपुत्रस्तु तत्सौख्यं मिश्रतश्चिरात् ।
देवेज्यहेलिफणिभिः प्रतापी बलवीर्ययुक् ॥ २४ ॥
प्रचण्डविजयी पुत्रो रिपुनिग्रहकारकः ।
भौमार्किभ्यां युते तस्मिन्नपुत्रो जायते नरः ॥ २५ ॥
परपुत्रयुतो वापि सहोत्थसुतवान् भवेत् ।
तस्मिन्नोजगते राशौ जातश्चानेकपुत्रवान् ॥ २६ ॥
अनोजे सति मैत्रेय ! स्वल्पापत्यः प्रजायते ।

उपर्युक्त स्थानों से नवम में शनि, बुध, चन्द्र हो तो जातक निःसन्तान होता है और वहीं यदि गुरु, राहु, सूर्य हों तो वह बहुपुत्र होता है ! नवम में एक मात्र चन्द्रमा के रहने से जातक को एक पुत्र से पुत्रसौख्य कहना । यदि मिश्रग्रह हों तो विलम्बतः पुत्रसौख्य होवे । गुरु, सूर्य, राहु यदि इसमें हों तो जातक प्रतापी बलवीर्य-युक्त, शत्रुओं पर विजय पाने वाला होता है । यदि मंगल से युक्त उपर्युक्त नवम हो तो जातक अपुत्र होता है या दत्तक पुत्र या भ्रातृज से पुत्रवाला होता है । उक्त स्थान विषम राशि हो तो अनेक पुत्र और समराशि हो तो अल्प पुत्र कहना चाहिए ॥ २३–२६½ ॥

मुने ! सिंहे तूपपदे निशानाथ-युतेक्षिते ॥ २७ ॥
स्वल्पप्रजोऽङ्गनायां तु नरः कन्याप्रजो भवेत् ।
सुतभावनवांशाच्च तथा सन्तानकारकात् ॥ २८ ॥
इत्थं त्रिंशांशकुण्डल्यां योगं चापि विलोकयेत् ।

सिंह में उपपद हो, चन्द्रमा से युत या दृष्ट हो तो मनुष्य स्वल्पप्रज (कम पुत्र वाला) और कन्या में उपपद और चन्द्रमा का योग या दृष्टि हो तो अधिक कन्या वाला होता है । इसी तरह पुत्रभाव के नवांश, सन्तानकारक ग्रह, तथा त्रिंशांश कुण्डली पर से विचार करना चाहिए ॥ २७–२८ ॥

सहजविचार—

परतस्त्र्यायगौ मन्दराहू भ्रातृविनाशिनौ ॥ २९ ॥
तत्राये ज्यायसो भ्रातुस्तृतीये चानुजन्मनः ।
स्वव्यवहितगर्भस्य नाशस्तत्र स्थिते सिते ॥ ३० ॥
लग्ने पदे लये वापि दैत्याचार्ययुतेक्षिते ।
निर्दिशन्ति फलं होरातत्त्वज्ञास्तादृशं द्विज ॥ ३१ ॥

त्र्यायगाः शशिभौमज्ञ-सुराचार्या द्विजोत्तम ।
बलवीर्य-प्रतापाढ्य-बहुभ्रातृप्रदायिनः ॥ ३२ ॥
मन्द-भौमयुते दृष्टे तृतीयैकादशे सति ।
कनिष्ठज्येष्ठयोर्नाशं वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥ ३३ ॥
यदा लाभे तृतीये वा शौरिरेको हि संस्थितः ।
तदा जातं विहायान्ये विनश्यन्ति सहोदराः ॥ ३४ ॥
तृतीयैकादशे केतौ भगिन्या बहुशः सुखम् ।
भ्रातुरल्पसुखं तस्य निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ॥ ३५ ॥

पद से तीसरे या एगारहवें में स्थित शनि-राहु भ्रातृघातक होते हैं। ११ में स्थित रहने पर बड़े भाई का और तीसरे में रहने पर छोटे भाई का विनाश होता है। इन स्थानों में यदि शुक्र रहे तो अपने से व्यवहित मातृगर्भ का नाश होता है। लग्न पद या अष्टम में शुक्र रहें या इन स्थानों पर शुक्र की दृष्टि हो तो भी वैसा ही फल होता है। यदि ३, ११ में चन्द्र, भौम, बुध, गुरु हों तो बल, पराक्रम तथा प्रतापशाली भाइयों की बहुलता होती है ३, ११, में शनि-मंगल रहें या इनकी उन दोनों स्थानों पर दृष्टि हो तो भी बड़े तथा छोटे भाइयों का विनाश कहना चाहिए। उपर्युक्त दोनों स्थानों (३।११) में एक 'ही' शनि विद्यमान रहे तो जातक को छोड़ अन्य सभी सहोदरों का नाश हो जाता है। ३, ११ में केतु के रहने पर बहन का सुख अधिक और भ्रातृसुख अल्प होता है ॥ २९–३५ ॥

आरूढात् शत्रुभावस्थे पापे तु शुभवर्जिते ।
शुभसम्बन्धरहिते चौरो भवति निश्चितम् ॥ ३६ ॥
सप्तमे द्वादशे स्थाने सैंहिकेययुतेक्षिते ।
ज्ञानवांश्च भवेद् बालो बहुभाग्ययुतो द्विज ॥ ३७ ॥
आरूढे संगते सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत् ।
सर्वज्ञस्तत्र जीवे तु कविर्वादी च भार्गवे ॥ ३८ ॥
पदादुपपदाद्वापि धनस्थे शुभखेचरे ।
सर्वद्रव्याधिपः श्रीमान् जायते द्विजसत्तम ॥ ३९ ॥
यस्योपपदतो वित्ताधिपतौ वित्तसंस्थिते ।
पापखेचरसंयुक्ते चौरो भवति निश्चितम् ॥ ४० ॥

पद से षष्ठभावस्थ पापग्रह शुभग्रह या शुभ सम्बन्ध से रहित हो तो जातक चोर होता है। सप्तम या द्वादश स्थान राहु से युक्त या दृष्ट हो तो जातक ज्ञानी तथा भाग्यशील होता है। पद यदि बुध युक्त हो तो मनुष्य सभी देशों का अधिपति

होता है। गुरु यदि पदगत हो तो जातक सर्वज्ञ, शुक्र के रहने पर कवि तथा वादी होता है। पद या उपपद से द्वितीय स्थान शुभग्रह-युक्त हो तो जातक सभी द्रव्यों का अधिप तथा बुद्धिमान् होता है। धनेश उपपद से द्वितीयस्थानगत होकर पापग्रह युक्त हो तो जातक चोर होता है ॥ ३६-४० ॥

उपारूढकलत्रेशादगौ मैत्रेय ! वित्तगे।
दन्तुरो जायते जातः केतौ चाप्यस्फुटोक्तिमान् ॥ ४१ ॥
यदि तत्रैव मन्दः स्यात्तदा कुत्सितरूपवान्।
मिश्रखेचरसंयोगात् फलं मिश्रं विनिर्दिशेत् ॥ ४२ ॥

उपपद से सप्तमेश से द्वितीय स्थान में यदि राहु हो तो जातक दन्तुर (ऊँचा दांतवाला) और केतु हो तो अस्पष्ट बोलने वाला होता है। यदि वहीं शनि हो तो कुरूप होता है। शुभ-पाप दोनों का संयोग हो तो मिश्रित फल कहना चाहिए ॥ ४१-४२ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
उपपदफलाध्यायः समाप्तः ॥ ३१ ॥

अथार्गलाफलाध्यायः ॥ ३२ ॥

मैत्रेय उवाच—

महर्षे ! दयया या मे गदिता प्रागिहार्गला।
तस्या रूपं फलं चापि श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा :—हे महर्षिवर ! कृपाकर आपने जो अर्गला पहले कही है उसका स्वरूप तथा फल अब मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

पराशर उवाच :—

भावखेटफलं विप्र ! यया भवति निश्चितम्।
सार्गला मुनिभिः प्रोक्ता वच्मि तां शृणु यत्नतः ॥ २ ॥
तुर्ये द्वितीये लाभे च ग्रहे सति तु सार्गला।
तस्यास्तु बाधकाः खेटा व्योमरिष्फतृतीयगाः ॥ ३ ॥
दुर्बलाः स्वल्पसंख्या वा खेटाः स्युर्नैव बाधकाः।
तृतीये बहवः क्रूरा यत्र बाधाविधायिनः ॥ ४ ॥
विपरीतार्गला वेद्या तत्रापि मुनिसत्तम !।
सार्गलं ग्रहभावोत्थं तथापि फलमीरितम् ॥ ५ ॥

पञ्चमं चार्गला-स्थानं नवमं तद् विरोधकम् ।
वैपरीत्येन तमसोर्ग्रहयोरर्गला भवेत् ॥ ६ ॥

एकग्रहार्गला प्रोक्ता मुनिभिस्तु दवीयसी ।
द्विग्रहा मध्यमा, त्र्यादिग्रहा चैवोत्तमा मता ॥ ७ ॥

द्विविधा त्वर्गला प्रोक्ता राशितः खेटतस्तथा ।
बाधाविरहिता भव्यफलदा निष्फलाऽन्यथा ॥ ८ ॥
यो राशिर्यो ग्रहश्चापि सार्गलो जायते द्विज ! ।
तस्य पाकदशामध्ये फलं निःसंशयं भवेत् ॥ ९ ॥

पराशर ने उत्तर दिया—हे मैत्रेय ! जिस अर्गला के द्वारा भाव या ग्रह का फल निश्चित रूप से होता है उसी अर्गला के सम्बन्ध में मैं कहता हूँ, सुनो । यदि किसी ग्रह या स्थान से चतुर्थ, द्वितीय या एकादश स्थान में ग्रह होवे तो अर्गला योग होता है । इन तीनों स्थानीय अर्गलाओं के क्रमशः १०।१२।३ स्थानगत ग्रह बाधक होते हैं । अर्थात् अर्गला योग रहने पर भी बाधक योग रहे तो अर्गला का कोई प्रभाव नहीं होता है । अर्गला प्रतिबन्धक ग्रह अर्गलाकारक ग्रहों की अपेक्षा दुर्बल या संख्या में अल्प हो तो भी अर्गला का प्रतिबन्ध नहीं कहना चाहिए । तीसरे स्थान में बहुत से पापग्रह—(तीन या तीन से अधिक) अर्गलायोग बाधक हों तो विपरीतार्गला होती है, अर्थात् ग्रहभावोत्थ फल बाधारहित होता है । पञ्चम में ग्रह रहने से अर्गला योग होता है किन्तु नवम में भी ग्रह रहे तो उस अर्गला का प्रतिबन्ध होता है । विपरीत गतिवाले राहु-केतुओं के लिए अर्गला एवं तद्बाधक स्थान विपरीत समझना । अर्थात् राहु-केतु से १०।१२।३ स्थानों में ग्रह के रहने से अर्गला योग, और क्रमशः ४।२।११ स्थानों में ग्रह के होने से प्रतिबन्ध कहना चाहिए। एकग्रहजनित अर्गला छोटी, द्विग्रहजनित मध्यम (मझोली) तीन या तीन से अधिक ग्रह-जनित प्रबल (श्रेष्ठ) अर्गला होती है । इस तरह राशि एवं ग्रह से द्विविध अर्गला कही गई है । बाधारहित अर्गला भव्य फल देनेवाली होती है और बाधित अर्गला निष्फल होती है । जो राशि या ग्रह सार्गल होवे उसका फल उसके दशाकाल में समझना चाहिए ॥ २–९ ॥

अर्गला-फल—

पदे लग्ने सप्तमे वा निराभासार्गला यदि ।
प्रसिद्धस्तर्हि सद्भाग्यशाली जायेत मानवः ॥ १० ॥
ग्रहः क्रूरोऽथवा सौम्यो यस्य निर्बाधकार्गले ।
स्थितस्तद्वीक्षिते लग्ने प्राबल्यायोपकल्पते ॥ ११ ॥

अर्गलायुजि वित्ते तु सस्यसंपत्समन्वितः ।
विक्रमे सहजादीनां सदा सुखमुदीरितम् ॥ १२ ॥
तादृशे तुर्यभावे तु गेहादि-सुखमुत्तमम् ।
सुते तथाविधे जाते मतिमान् सुतसौख्यवान् ॥ १३ ॥
शत्रुभीः सार्गले शत्रौ द्यूने जायादिजं सुखम् ।
रन्ध्रे तु बहुशः क्लेशो भाग्ये स्याद् भाग्यवाञ्जनः ॥ १४ ॥
राजपूज्यो नरो व्योम्नि सदाये स्याद्धनागमः ।
तादृशे रिष्फभावे तु सर्वत्रैव व्ययोऽधिकः ॥ १५ ॥
शुभग्रहार्गले नूनं सुखं नैकविधं स्मृतम् ।
पापेतु तादृशे चाल्पं मिश्रे मध्यं विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥
त्रिकोणे सार्गले जाते जायते यो हि जातकः ।
सुख-सौभाग्य-सम्पन्नो नृपो वा नृपसन्निभः ॥ १७ ॥

पद, लग्न, या सप्तम में निर्बाध अर्गला हो तो जातक सौभाग्यशील तथा विख्यात होता है । जिसके अर्गला स्थान में शुभ या अशुभग्रह अवधित रूप में रहे, उस ग्रह की लग्न पर दृष्टि होने से उक्त योग और प्रबल हो जाता है अर्थात् जातक पूर्ण सौभाग्यशाली तथा विख्यात होता है । धन तथा सहज भावों में अर्गला होने से धनादि सस्यसम्पत्ति तथा सहज का सौख्य कहना चाहिए । सार्गल तुर्यभाव हो तो गेहादि सौख्य, सुतभाव हो तो जातक बुद्धिमान् एवं पुत्रसौख्यपूर्ण होवे । षष्ठ में शत्रुभय एवं सप्तम सार्गल हो तो स्त्रीसुख, अष्टम में बहुविधक्लेश सार्गल नवम में भाग्यवान् जातक होता है । दशम सार्गल हो तो राजपूज्य, एकादश में धनागम, और व्ययभाव सार्गल हो तो अधिक व्यय होता है । शुभग्रह की अर्गला में अनेक विध सौख्य, पापग्रह में अल्पसुख और मिश्रग्रह जनित अर्गला में मध्यम सुख कहना चाहिए । लग्न नवम तथा पञ्चम स्थान यदि सार्गल हो तो जातक राजा या राजा के समान होता है ॥ १०–१७ ॥

विमर्श—अर्गला योग एवं उसके प्रतिबन्ध का विचार जैमिनिसूत्र में भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है । दृश्य एवं द्रष्टृ ग्रह के सहारे किया गया फलादेश महर्षियों ने अपने अनुभवों के आधार पर ही किया है । अधिकतर जातककारों ने इस प्रकरण को अपने जातक ग्रन्थों में नहीं दिया है । महर्षिजैमिनि ने अपने जैमिनि सूत्र में अर्गला योगकारक सूत्र—'दारभाग्यशूलस्थार्गला निध्यातुः' कहा है । दार भाग्यशूल का आशय चतुर्थ, द्वितीय, एकादश क्रमशः होता है सांकेतिक पद्धति के आधार पर ही ऐसा अर्थ निष्पन्न होता है । सांकेतिक अर्थ के निष्पादन के लिए 'कटपयवर्गभवैरिह पिण्डान्त्यैरक्षरैरङ्काः । नञे च शून्ये ज्ञेये तथा स्वरे केवले कथितम्' वृद्धकारिकोक्त यह वचन सर्वथा आदरणीय है । अङ्कज्ञान के लिए कादिनौ, टादि

नौ, पादि पांच, यादि आठ, ये चार वर्ग स्वीकृत किए गए हैं। नकार, ञकार, तथा स्वर के लिए शून्य माना गया है। इसी नियम के अनुसार दार का अर्थ चतुर्थ, भाग्य का द्वितीय, तथा शूल का एकादश हो जाता है। 'अंकानां वामतो गतिः' के अनुसार कटपयादि वर्गों के आधार पर आगत अंकों का न्यास कर भावों की संख्या बारह होने के कारण १२ से उसमें भाग दें शेष से भावों का बोध होता है। जैसे दार में 'द् आ र् अ' ये चार वर्ण हैं। 'द' के लिए 'र' के लिए दो,=२८ अङ्क उपलब्ध होंगे। स्वर आ, अ, के लिए शून्य होता है। अतः उपलब्ध अङ्क २८ मात्र हुए। १२ से तष्टित करने पर ४ शेष होंगे। अतः दार से चतुर्थभाव, इसी तरह भाग्य से द्वितीय भाव, और शूल से एकादश भाव का बोध होगा। इस प्रकार महर्षि जैमिनि द्वारा प्रतिपादित अर्गला योग प्रस्तुत ग्रन्थोक्त 'तुर्ये द्वितीये लाभे च ग्रहे सति तु साऽर्गला' के समान ही है। जैमिनि ने आगे 'कामस्था भूयसा पापानाम्' कहा है। तात्पर्य यह है कि तृतीय स्थान में स्थित अर्गला पापग्रहों की बहुलता से होती है अर्थात् द्रष्टा से तृतीय स्थान में दो से अधिक पापग्रह हो तो निर्बाध अर्गला होती है। महर्षि पराशर ने भी—'तृतीये बहवः क्रूरा यत्र बाधाविधायिनः। विपरीतार्गला वेद्या तत्रापि मुनिसत्तम!"

इस पद्य के द्वारा निर्बाध अर्गला को ही व्यक्त किया है। महर्षि जैमिनि ने अर्गला बाधक स्थान तथा प्रतिबन्ध का भाव 'रिष्फ-नीच-कामस्था विरोधिनः' तथा 'न न्यूना विबलाश्च' इन दोनों सूत्रों के द्वारा प्रतिपादित किया—रिष्फ, नीच, काम का अर्थ पूर्वोक्त रीति से दशम, द्वादश तथा तृतीय होता है। अर्थात् चतुर्थस्थानस्थ अर्गला का दशमस्थ ग्रह बाधक होते हैं। द्वितीयस्थानस्थ अर्गला का द्वादशस्थ ग्रह, एवं एकादश स्थानस्थ अर्गला का तृतीय स्थानस्थग्रह बाधक होते हैं। इस प्रकार बाधक ग्रह यदि अर्गलायोगकारक ग्रहों की अपेक्षा संख्या में न्यून या निर्बल हों तो उपर्युक्त प्रतिबन्ध निष्फल हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थकार महर्षि पराशर ने—

"तस्यास्तु बाधका खेटा व्योमरिष्फतृतीयगाः।
दुर्बलाः स्वल्पसंख्या वा खेटाः स्युर्नैव बाधकाः॥"

कहकर ठीक जैमिनिसूत्रोक्त तथ्यों का ही प्रतिपादन किया है। दोनों महर्षियों ने अपनी-अपनी शैली में एक ही तथ्य का प्रतिपादन किया है। किसने किसका अनुकरण किया यह निश्चय करना कठिन है क्योंकि दोनों महर्षियों में प्राचीनता का निर्णय पुष्ट प्रमाणाभाव में जटिल है। जो भी हो, दोनों ग्रन्थों में अर्गला तथा प्रतिबन्ध आदि और प्रस्तुत ग्रन्थ में फलादेश, अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा विशिष्ट अभिधान अवश्य है।

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
अर्गलाफलाध्यायः समाप्तः ॥ ३२ ॥

अथ कारकाध्यायः ॥ ३३ ॥

पराशर उवाच—

अथ वक्ष्यामि खेटानामात्मप्रभृतिकारकान् ।
सूर्यादि-मन्दपर्यन्तान् राह्वन्तान् वा द्विजोत्तम ॥ १ ॥
यदि खेटौ समावंशै राह्वन्तान् गणयेद् द्विज ! ।
एवं सप्ताथवाष्टौ स्युः कारकाः सम्मताः सताम् ॥ २ ॥
मध्ये रव्यादिखेटानां यो ग्रहोंऽशाधिको भवेत् ।
स वेद्यः कारकाधीशो बुधैरात्माख्यकारकः ॥ ३ ॥
कलाधिकस्त्वंशसाम्ये कलासाम्ये ग्रहो मुने !
विकलाधिक एवात्माभिधः कारक उच्यते ॥ ४ ॥
न भवेद्राशिकलयोराधिक्यादात्मकारकः ।
कारकोंऽशाधिको ग्राह्यो ह्यल्पांशः कारकोऽन्तिमः ॥ ५ ॥
मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखेटः स एव हि ।
विपरीतगतेर्भागा अगोः शोध्या नभोऽग्नितः ॥ ६ ॥
भागक्रमादधोऽधःस्था नभोगाश्चरकारकाः ।
तेषां मध्ये प्रधानं स्यादात्मकरक एव हि ॥ ७ ॥
स एव जातकेशोऽपि मुने ! सद्भिरुदीरितः ।
यथा भूमौ प्रसिद्धोऽस्ति नराणां क्षितिपालकः ॥ ८ ॥
सर्ववार्ताधिकारी च बन्धकृन्मोक्षकृत् तथा ।

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) अब मैं सूर्यादि शनि पर्यन्त सात ग्रहों या सूर्यादि राहु पर्यन्त आठ ग्रहों से सम्बद्ध आत्मादि कारकों को बतलाता हूँ । यदि दो ग्रह अंशादिकों में समान हों तो रवि राहु तक आठ ग्रहों से कारकों का विचार करें । इस तरह सात या आठ कारक होते हैं यह विद्वानों का मत है । सूर्यादि ग्रहों के बीच जो ग्रह अधिक अंशादि वाला हो वह आत्मकारक होता है । यदि अंशों में समता दीख पड़े तो अधिक कलावाला ग्रह और कला में भी समता होने पर अधिक विकला वाला ग्रह आत्मकारक होता है । (सर्वथा समता होने पर वली ग्रह को आत्म कारक समझना चाहिए) राशि तथा कला की अधिकता से आत्मकारक नहीं होते प्रत्युत अंश की अधिकता से आत्मकारक तथा सर्वाल्प अंशवाला अन्तिम कारक होता है । मध्य अंश वाला ग्रह मध्यग्रह जिसे उपग्रह भी कहा जाता है । विपरीत गतिशील राहु के कारकविचार में उसके अंश को ३० से घटाने से शेषांश को कारक

समझना चाहिए। इस प्रकार अंशानुक्रम से अधोऽधः स्थित ग्रहगण चरकारक होते हैं। उन कारकों में प्रधान आत्मकारक ही होता है, वही जातकेश भी कहा जाता है। जैसे पृथ्वी पर मनुष्यों के बीच राजा सभी विषयों का अधिकारी, बन्धन मोचन में समर्थ तथा विख्यात होता है उसी तरह आत्मकारक को भी समझना चाहिए ॥ १–८ ॥

यथा राजाज्ञया विप्र ! पुत्रामात्यादयः सदा ।
समर्था लोककार्येषु तथैवाऽन्येऽपि कारकाः ॥ ९ ॥
आत्मानुकूलवशतः स्युः स्वकीयफलप्रदाः ।
यथा विरुद्धे नृपतौ सर्वेऽमात्यादयो द्विज ! ॥१०॥
न कार्यं कर्तुमात्मीयजनानां प्रभवन्ति हि ।
तथा सत्फलदा नान्ये विरुद्धे त्वात्मकारके ॥११॥
यथाऽनुकूले नृपतौ समेऽमात्यादयो मुने ! ।
न क्षमाः कर्तुमशुभं तथान्ये नाशुभप्रदाः ॥१२॥

हे मैत्रेय ! जिस तरह राजा की आज्ञा से पुत्र (राजकुमार) मन्त्री आदि सभी जनकार्य सम्पादन में समर्थ होते हैं उसी तरह सभी कारक आत्मकारक की अनुकूलता से अपने-अपने फल देते हैं। राजा के विरुद्ध रहने पर जैसे मन्त्री प्रभृति अपने आत्मीय जनों के भी कार्य करने में असमर्थ होते हैं उसी प्रकार आत्म कारक की प्रतिकूलता में कोई भी ग्रह शुभफलप्रद नहीं होते हैं। राजा के अनुकूल रहने पर सभी अमात्यगण या दूसरे भी अहित करने में असमर्थ होते हैं। (आत्मकारक को राजा से समता दिखलाकर इसकी प्रधानता व्यक्त की गई है) ॥ ९–१२ ॥

अन्य कारक—

आत्मकारकभागांशेभ्यः स्वल्पांशोऽमात्यकारकः ।
तदूनभागको भ्राता तदल्पो मातृकारकः ॥ १३ ॥
तदल्पांशस्तु जनकः तदूनांशः सुताभिधः ।
तदूनभागको ज्ञातिर्हीनभागस्ततस्तु यः ॥ १४ ॥
स एव मुनिभिः प्रोक्तः कारको दारसंज्ञकः ।
ब्रह्मणैव पुरा प्रोक्ताः सप्तैते चरकारकाः ॥ १५ ॥
जननीकारकं केचिदामनन्ति सुताभिधम् ।
अंशौ समौ ग्रहौ द्वौ च जायेतां यस्य जन्मनि ॥ १६ ॥
ततोऽग्रिमः कारकस्तु विप्र ! लुप्यति निश्चितम्।
तत्फलं सदसज्ज्ञेयं स्थिरकारकतो मुने ॥ १७ ॥

स्थिर कारक

आत्मकारक के अंशादिकों से अल्प अंशवाला ग्रह अमात्यकारक, इससे कम अंशवाला भ्रातृकारक, इससे न्यूनांश ग्रह मातृकारक, उससे न्यून अंशवाला पितृकारक, उससे अल्प अंशवाला पुत्रकारक, इससे अल्पांशग्रह ज्ञातिकारक, और इससे कम अंश वाला स्त्रीकारक होते हैं। ये सात चरकारक ब्रह्माजी के द्वारा कथित हैं। कुछ आचार्य भ्रातृकारक को ही पुत्र कारक मानते हैं। यदि दो ग्रहों में अंशादि तुल्य हो तो दोनों एक ही कारक समझे जाते और अग्रिम कारक को लुप्त माना जाता है। ऐसी स्थिति में अग्रिमकारक का शुभाशुभ फलादेश (वक्ष्यमाण) स्थिरकारक के द्वारा किया जाना चाहिये ॥ १३–१७ ॥

अथ स्थिरान् कारकांस्ते कथयामि द्विजोत्तम ! ।
बलवानर्कसितयोः स वेद्यः पितृकारकः ॥ १८ ॥
ग्रहो बलीन्दुकुजयोः कथ्यते मातृकारकः ।
कुजात् स्वसाऽपि च श्यालोऽनुजो माताऽपि चिन्त्यते ॥ १९ ॥
बुधतो मातृजातीया विज्ञेया मातुलादयः ।
जीवात् पितामहः, स्वामी सिततः, शनितः सुतः ॥ २० ॥
केतुतः स्त्री पिता माता श्वश्रूः श्वशुर एव च ।
मातामहप्रभृतयो विचार्याः स्थिरकारकैः ॥ २१ ॥

हे मैत्रेय ! अब मैं स्थिर कारकों को कहता हूँ। सूर्य-शुक्र में बली पितृकारक, चन्द्र-भौम में प्रबल मातृकारक होते हैं। मंगल से बहन, साले, छोटे भाई, तथा माता का भी विचार किया जाता है। बुध से मातृपक्षीय मातुल आदि, गुरु से पितामह, शुक्र से स्वामी, शनि से पुत्र, केतु से स्त्री, पिता, माता, सास, श्वशुर, मातामह, आदि का विचार किया जाता है। उपर्युक्त ग्रह ही स्थिर कारक होते हैं ॥ १८–२१ ॥

विमर्श :—

महर्षि जैमिनि ने अपने जैमिनि सूत्र में निम्नसूत्र प्रस्तुत प्रसङ्ग में दिया है। इन सूत्रों में प्रस्तुत अध्यायोक्त सभी बातें आ जाती हैं उनका आत्मकारक सूत्र है :— "आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगः सप्तानामष्टानां वा" कलादिभिः का अर्थ अंशादिभिः है। इसके बाद "तस्यानुसरणादमात्यः, तस्य भ्राता, तस्य माता, तस्य पिता, तस्य पुत्रः, तस्य ज्ञातिः, तस्य दाराश्च, मात्रा सह पुत्रमेके समामनन्ति" इन आठ सूत्रों में वे सभी बाते हैं जिन्हें महर्षि पराशर ने इस अध्याय के आरम्भ से १५½ श्लोकों में व्यक्त किया है। आत्मकारक की प्रधानता महर्षि जैमिति ने भी व्यक्त की है पर पराशर की तरह नहीं। स्थिर कारकों को भी महर्षिजैमिनि ने "भगिन्यारतः श्यालः कनीयान् जननी च" अर्थात् मंगल से बहन, साले, छोटे भाई, माता का विचार करना कहा है। "मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया इत्युत्तरतः" बुध से मातुल आदि का

विचार करने को कहा गया है। "पितामहः पतिपुत्रौ गुरुमुखादेव जानीयात्" गुरु से पितामह, पति, पुत्र का विचार करना कहा गया है। आगे के सूत्र में—महर्षि जैमिनि ने "पत्नी पितरौ श्वशुरौ मातामहाः इत्यन्तेवासिनः" कहा है। अन्तेवासी का अर्थ छात्र होता है, अतः कई विद्वानों ने गुरु के छात्र शुक्र को समझकर शुक्र से स्त्री, माता पिता, सास श्वशुर, मातामह का विचार करना बतलाया है। किन्तु अन्तेवासी का यौगिक अर्थ ग्रहों के अन्त में परिगणित होने के कारण केतुग्रह ही उपयुक्त हैं। केतु का परिगणन चरकारक में भी पराशर ने किया है अतः केतु को स्थिरकारक भी मानना अनुचित नहीं है। महर्षि जैमिनि एवं पराशर की उक्तियों में सर्वथा साम्य दीख पड़ता है।

कारकानथ ते वच्मि ग्रहभावानुसारतः।
सूर्यतः पुण्यभे तातो विधोर्माता तुरीयके॥ २२॥
कुजात् तृतीयतो भ्राता मातुलः शशिजाद्रिपौ।
सुरेज्यात् पञ्चमात् पुत्रः कलत्रं सप्तमे सितात्॥ २३॥
मन्दादष्टमतो मृत्युस्तातादीनां विविच्यते।
इत्थं विचिन्त्य गणकैर्वाच्यं तत्तत्फलं मुने!॥ २४॥

हे मुने! अब मैं कारकग्रह तथा भाव के अनुसार कारकों को बतलाता हूँ। सूर्य से नवम पितृकारक, चन्द्रमा से चतुर्थ मातृकारक, बुध से षष्ठ मातुलकारक गुरु से पञ्चम पुत्रकारक, शुक्र से सप्तम स्त्रीकारक, शनि से अष्टम पिता की मृत्यु (कारक) समझकर फलादेश करना चाहिए॥ २२–२४॥

योगकारक ग्रह—

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि योगानां कारकान् ग्रहान्।
जातकस्य तु जन्माङ्गे जायन्ते ये स्थितेर्वशात्॥ २५॥
स्वर्क्षे तुङ्गे च मित्रर्क्षेऽन्योन्यं केन्द्रगता ग्रहाः।
भवेयुः कारकास्तत्र कर्मगस्तु विशेषतः॥ २६॥
खगास्तनौ तुरीयेऽस्ते स्वभतुङ्गगता यथा।
स्युर्योगकारकास्ते तु विशेषात् कर्मभावगाः॥ २७॥
स्वमित्रोच्चर्क्षगो हेतुर्मिथश्चेत्केन्द्रसंस्थितः।
लग्नात् केन्द्रेतरे गेहे सोऽपि कारक ईरितः॥ २८॥
नीचवंशोद्भवो यस्तु वर्त्तमाने च कारके।
मैत्रेय! सोऽपि नृपवद् धनसौख्ययुतो भवेत्॥ २९॥

नृपान्वयप्रसूतस्तु राजा स्यान्नात्र संशयः ।
एवं कुलानुसारेण फलं कारकतो गदेत् ॥ ३० ॥

अब मैं योगकारक ग्रहों, जो जातक की कुण्डली में स्थितिवश होते हैं, को बतलाता हूँ । ग्रह यदि अपने भवन, उच्च, मित्रक्षेत्र, में होते हुए परस्पर केन्द्रगत हों तो योगकारक (विशेष शुभफलद) होते हैं । दशमस्थ होने पर विशेषतः योगकारक होते हैं । स्वभवन, स्वोच्च में स्थित ग्रह लग्न, चतुर्थ, सप्तमस्थ होने पर भी योगकारक होते हैं किन्तु दशमस्थ होने पर विशेष रूप से योगकारक कहे गए हैं । इसी तरह लग्न से केन्द्रेतर भवन में अपने-अपने उच्चादिगत ग्रह परस्पर केन्द्र में हो, अर्थात् उच्चादिगत ग्रह किसी भावगत होते हुए परस्पर अपने से (१।४।७।१०) में हो तो भी योगकारक होते हैं । ऐसे योगों में उत्पन्न जातक यदि नीच वंशज होवे तो राजतुल्य धन तथा सौख्यसम्पन्न होता है और राजवंशीय जातक तो निश्चयतः राजा होता है । इस प्रकार वंशानुसार कारकों से फलादेश करना चाहिए ॥२५–३०॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि विशेषं भावकारकान् ।
जातस्य यज्जनुर्लग्नं तद् विद्यादात्मकारकम् ॥ ३१ ॥
धनभावं विजानीयाद् दारकारकमेव तु ।
एकादशे चाग्रजस्य कनिष्ठस्य तृतीयके ॥ ३२ ॥
सुते सुतं विजानीयाज्जायां सप्तमभावतः ।
सुतस्थाने तु यः खेटः सोऽपि कारक उच्यते ॥ ३३ ॥

अब मैं भावों से कारक बतलाता हूँ । जातक के जन्मलग्न को आत्मकारक, धनभाव को जायाकारक, एकादशभाव को अग्रज कारक, तृतीय को कनिष्ठभ्रातृकारक, पञ्चम को पुत्रकारक, सप्तम को स्त्रीकारक और पञ्चम स्थान में रहने वाले को भी कारक समझना चाहिए ॥ ३१–३३ ॥

द्वादशभाव कारक—

सूर्यो गुरुः कुजः सोमो गुरुर्भौमः सितः शनिः ।
गुरुश्चन्द्रसुतो जीवो मन्दश्च भावकारकाः ॥ ३४ ॥

सूर्य, गुरु, मंगल, चन्द्र, गुरु, भौम, शुक्र, शनि, गुरु, बुध, गुरु, तथा शनि ये तन्वादि भावों का क्रमशः कारक हैं ॥ ३४ ॥

भावों का शुभत्वाऽशुभत्व—

पुनस्तन्वादयो भावाः स्थाप्यास्तेषां शुभाशुभम् ।
लाभस्तृतीयो रन्ध्रश्च रिपुर्वित्तं व्ययस्तथा ॥ ३५ ॥
ज्योतिर्विद्भिरिमे भावा अशुभाः समुदीरिताः ।
एषां योगेन यो भावो नाशं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥

केन्द्रत्रिकोणनामानो भावा भद्राः प्रकीर्त्तिताः ।
एतेषां योगमात्रेण ह्यशुभोऽपि शुभो भवेत् ॥ ३७ ॥

लग्नादि द्वादश भावों में ११।३।८।६।२।१२। ये भाव अशुभ होते हैं। इनके योग से जो भाव हो उसका लोप समझना चाहिए। शेष १।४।७।१०।५।९ ये केन्द्र त्रिकोणाख्य भाव शुभ होते हैं। इनके संयोग से जो भाव बने वह सदा शुभ होता है।

ग्रहादि साधनाध्याय में भावों का आनयन किया हुआ है। शुभ भावों के संयोग से सिद्ध भाव अशुभ रहने पर भी शुभफलद होगा एवं अशुभ भावों के योग से निष्पन्न भाव का नाश समझना चाहिए ॥ ३५-३७ ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
कारकाध्यायः समाप्तः ॥ ३३ ॥

अथ कारकांशफलाध्यायः ॥ ३४ ॥

कारकांश फल—

कारकांशग्रहफलं वच्मि विप्र ! शृणुष्व यद् ।
नवांशेऽजादिराशिस्थे विधिना भाषितं पुरा ॥ १ ॥
आत्माख्यकारकेऽजांशे शश्वद्भीतिप्रदा गृहे ।
भवेयुराखुमार्जारा विशेषात् क्रूरयोगतः ॥ २ ॥
वृषांशगे भवेत् सौख्यं चतुष्पद-सकाशतः ।
मिथुनांशे तु जायेरन् कण्डूप्रभृतयो गदाः ॥ ३ ॥
कर्कटांशे भयं त्वद्भ्यः सिंहांशे श्वपदात्तु तत् ।
कन्यांशे स्थूलता कण्डूस्तथा भीरनलाद् भवेत् ॥ ४ ॥
तुलांशे स्याद् वणिग्वृत्तिर्निर्माता वाससामपि ।
वृश्चिकांशे भयमहेः मातुर्स्तिस्तथा स्तने ॥ ५ ॥
चापांशे तूच्चतः पातोऽथवा वाहनतो भवेत् ।
नक्रांशे जलजन्तुभ्यः कम्बुमुक्ताप्रवालतः ॥ ६ ॥
विहगेभ्योऽपि लाभः स्याज्जातकस्य न संशयः ।
घटांशे तु तडागादिनिर्माणात् कीर्त्तिमान् भवेत् ॥ ७ ॥
मीनांशे जायते विप्र ! जातः सायुज्यमुक्तिभाक् ।
अशुभं नैव सद्दृष्ट्या शुभं नाऽशुभदृष्टितः ॥ ८ ॥

हे विप्र ! अब मैं मेषादि नवांशगत आत्मकारक ग्रह का फल कहता हूँ जो ब्रह्मा जी के द्वारा पुराने समय में कहा गया है। आत्मकारक ग्रह मेष नवांशगत हो तो जातक के घर में चूहे तथा विलाड़ों का उपद्रव, (विशेषतः पापग्रह के संयोग या दृष्टि से) होता रहता है। वृष के नवांश में आत्मकारक ग्रह हों तो चतुष्पदों (गो-महिषी आदि पशुओं) से सौख्य होता है। मिथुन नवांशगत वे हों तो खुजली आदि रोगों का भय, कर्क नवांशगत आत्मकारक ग्रह के होने से पानी में डूबने का भय, सिंहनवांशगत होने पर हिंसक जन्तुओं से भय, कन्यानवांश में खुजली, स्थूलता तथा अग्निभय तुलांश में व्यापारवृत्ति तथा वस्त्रनिर्माण कौशल, वृश्चिक नवांश में आत्मकारक ग्रह हों तो सर्प का भय तथा माता के स्तन में पीड़ा, धनुरंशगत वे हों तो ऊँची जगह या वाहन से गिरने का भय, मकर के नवांशगत आत्मकारक ग्रह हों तो जलजन्तुओं (मत्स्यादि), शंख, मोती, मूंगा तथा पक्षियों से लाभ, कुम्भांश में आत्मकारक के रहने पर तालाब आदि के निर्माण से सुयश, तथा मीनांश में वे रहें तो सायुज्य मुक्ति जातक को कहें। साथ ही शुभग्रह की दृष्टि रहने पर अशुभ फल और अशुभग्रह की दृष्टि रहने पर शुभफल नहीं होते हैं। अर्थात् शुभग्रह की दृष्टि रहे तो शुभफल, और पाप दृष्टि से शुभफलाभाव कहना चाहिए ॥ १–८ ॥

कारकांशेऽथवा लग्नस्यांशे सौम्ये सति ग्रहे।
मैत्रेय ! सौम्यदृष्टे स्यान्नृपो जातो न संशयः ॥ ९ ॥
कारकांशाद् ग्रहाः सौम्याः पापदृग्योगवर्जिताः।
केन्द्रकोणगताः कुर्युर्धनिनं च बुधं नरम् ॥१०॥
मिश्रग्रहैः फलं मिश्रं ज्ञेयं विद्धिः शुभाऽशुभम्।
स्वभे स्वतुङ्गे सौम्यर्क्षे स्थिते तूपग्रहे सति ॥११॥
पापैरदृष्टे चैवान्ते कैवल्यं तस्य निर्दिशेत्।

आत्मकारक अथवा लग्न के नवांश में शुभग्रह का संयोग हो या उस पर शुभ दृष्टि होवे तो जातक निःसन्देह राजा होता है। कारकांश से केन्द्र (१।४।७।१०) या कोण (९।५) में शुभग्रह हो, साथ ही पापग्रह की दृष्टि या योग उस पर नहीं होवे तो जातक धनी तथा विद्वान् होता है। मिश्रग्रहों (शुभ-पाप) से मिश्र फल (शुभाऽशुभ) समझना चाहिए। उपग्रह (मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखेटः) स्वगृह, स्वोच्च या शुभग्रह की राशि में होकर पापग्रह से अदृष्ट हों तो जातक जीवनान्त में मुक्तिभागी होता है ॥ ९–११½ ॥

इन्द्वारभृगुवर्गस्थे कारके पारदारिकः।
अन्यथा संस्थिते तस्मिन्नन्यथा फलमादिशेत् ॥ १२ ॥

चन्द्र, भौम, शुक्र के वर्ग में आत्मकारक हों तो मनुष्य दूसरे की स्त्री में लीन रहता है। अन्यत्र स्थित होने पर अन्यथा फल समझना चाहिए ॥ १२ ॥

कारकांशस्थग्रह फल—

कारकांशे स्थिते सूर्ये राजकार्यरतो भवेत् ।
सितेक्षिते विधौ पूर्णे जातो भोगी सुधीरपि ॥ १३ ॥
बलाढ्ये मंगले तत्र जातकः कुन्तधारकः ।
अग्न्याजीवी भवेत् किंवा रसवादी न संशयः ॥ १४ ॥
तत्रस्थे सबले सौम्ये वाणिज्ये निपुणः सुधीः ।
कलासु शिल्पकृत्येषु प्रवीणः परमो भवेत् ॥ १५ ॥
निगमागमविज्ञानी सत्कर्मा तत्रगे गुरौ ।
भृगौ तत्र शताब्दायुः कामुको नृपकार्यकृत् ॥ १६ ॥
विशिष्टकर्मतः ख्यातो राजमान्योऽपि सूर्यजे ।
अगौ धनुर्धरश्चौरो लोहयन्त्रादिकारकः ॥ १७ ॥
भिषग् विषाणामपि वा, केतौ स्तेनः प्रजायते ।
व्यवहारी गजादीनामिति विज्ञैः प्रकीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

आत्मकारक के नवांश में सूर्य हो तो जातक राजकार्य-निरत, शुक्रदृष्ट पूर्णचन्द्र हो तो विद्वान् तथा भोगेन्द्र होता है। सबल मंगल वहाँ हो तो जातक बर्छी धारण करनेवाला, अग्नि से जीविका चलाने वाला या रसवादी होता है। आत्मकारक के नवांश में प्रबल बुध हो तो जातक वाणिज्य वृत्ति में निपुण, शिल्पकलाओं में प्रवीण तथा विद्वान् होता है। गुरु वहाँ हो तो जातक वेदशास्त्र को जाननेवाला सत्यकार्य करनेवाला, और शुक्र के वहां होने पर कामी राजकार्यकर्त्ता तथा शताब्दायु होता है। शनि आत्मकारक के नवांशगत हों तो जातक विशिष्ट कार्य से विख्यात, तथा राजपूज्य होता है। राहु के वहां रहने पर जातक चोर, धनुर्धारी, लोहे का औजार बनानेवाला, अथवा विषवैद्य होता है। केतु यदि वहां रहे तो चोर तथा हाथियों का व्यापार करनेवाला होता है, ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ १३—१८ ॥

विशेष—

कारकांशे यदार्कागू तदाभयमहेर्भवेत् ।
सौम्यदृष्टौ न भीतिः स्यान्मृत्युः स्यात् क्रूरवीक्षितौ ॥ १९ ॥
सौम्यषड्वर्गगौ तौ चेद् भिषग् विषविनाशकः ।
भौमेक्षिते कारकांशे भानुस्वर्भानुसंयुते ॥ २० ॥
अन्यग्रहा न पश्यन्ति स्ववेश्म-परदाहकः ।
तत्रेन्दुजेन संदृष्टे नाग्निदो जायते जनः ॥ २१ ॥

जीवदृष्टे तु पापर्क्षे समीपगृहदाहकः ।
सितेक्षिते तु नैव स्याद्दहनं वेश्मनो मुने ॥ २२ ॥

आत्मकारक के नवांश में यदि सूर्य, राहु, दोनों रहें तो सर्पभय कहना चाहिए; शुभग्रह की दृष्टि रहने से भयाभाव, और पापदृष्टि से मृत्यु हो जाती है। शुभग्रह के षड्वर्ग में वे दोनों हों तो जातक विषवैद्य होता है। आत्मकारक का नवांश मंगल से दृष्ट तथा सूर्य, राहु से संयुक्त हों और अन्यग्रहों की दृष्टि नहीं रहे तो जातक अपने तथा पराये घरों को जलानेवाला, होता है। बुध की दृष्टि रहे तो जातक दाहक नहीं होता। यदि पाप का षड्वर्ग गुरुदृष्ट हो तो जातक पड़ोस के घरों को जलानेवाला होता है। शुक्र की दृष्टि रहने पर गृहदाह नहीं होता है ॥ १९–२२ ॥

कारकांशे सगुलिके दृष्टे पूर्णेन्दुना सति ।
जातकः स्तेननीतस्वः स्वयं चौरोऽथवा भवेत् ॥ २३ ॥
खगादृष्टे समान्दौ तु गरदो वा गरैर्मृतः ।
निःसंशयं भवेदण्डवृद्धिरिन्दुसुतेक्षिते ॥ २४ ॥
कारकांशे ध्वजोपेते पापखेचरवीक्षिते ।
कर्णच्छेदोऽथवा कर्णरोगो जातस्य जायते ॥ २५ ॥
तत्र भार्गवसंदृष्टे यज्ञकर्मरतो नरः ।
सौम्यसौरीक्षिते तु स्याद् वीर्यहीनो जनो ध्रुवम् ॥ २६ ॥
दासीपुत्रो भवेत्तत्र सौम्यभार्गववीक्षिते ।
किंवा पौनर्भवः पुत्रो मुने ! निःसंशयं भवेत् ॥ २७ ॥
तापसो मन्दसंदृष्टे दासो वा जातको भवेत् ।
केवलेनार्किणा तत्र दृष्टे सन्न्यासवाञ्छनः ॥ २८ ॥
सितसूर्येक्षिते तत्र राज्ञो भृत्यः प्रजायते ।
इतीरितं समासेन कारकांशफलं मुने ! ॥ २९ ॥

आत्मकारक के नवांश में गुलिक (अप्रकाशग्रह) रहे और उस पर पूर्णचन्द्र की दृष्टि हो तो जातक या तो स्वयं चौर्यवृत्ति-रत हो अथवा चोरों के द्वारा उसका धनापहरण होता है। सगुलिक आत्मकारक के नवांश पर यदि किसी ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक विष देने वाला या विष से मरने वाला होता है। बुध की दृष्टि यदि हो तो निःसन्देह अण्डवृद्धि होती है। आत्मकारक के नवांश में केतु हो और पापग्रह की उस पर दृष्टि हो तो जातक के कर्ण कट जाय या कर्ण रोग हो। उस पर यदि शुक्र की दृष्टि हो तो जातक यज्ञकार्यरत होता है। बुध-शनि की दृष्टि रहने पर मनुष्य निर्वीर्य होता है। आत्मकारक के नवांश पर बुध-शुक्र की दृष्टि हो तो जातक दासीपुत्र अथवा पुनर्भू स्त्री का पुत्र होता है। शनि की दृष्टि रहने पर जातक

तापस या दास होता है। केवल शनि की दृष्टि रहने से जातक संन्यासी होता है—सूर्य-शुक्र की दृष्टि से राजप्रेष्य होता है। संक्षेप में यह कारकांश फल मैंने कहा है ॥ २६-२९ ॥

विमर्श—कारकांश फलाध्याय प्रायः महर्षि जैमिनि प्रणीत समस्त सूत्रों का पद्यबद्ध स्वरूप मात्र प्रतीत होता है। महर्षि पराशर यदि जैमिनि के पूर्ववर्त्ती हों तो जैमिनि सूत्र पराशरोक्ति का अनुकरण मात्र सिद्ध होगा। कुछ भी हो दोनों महर्षि सर्वथा मान्य हैं।

महर्षि जैमिनि ने अपने कारकांश फलाध्याय में "अथ स्वांशो ग्रहाणाम्, पञ्चमूषिकमार्जाराः, तत्र चतुष्पादः, शेषाः श्वापदानि, 'समे वाहनादुच्चाच्च पतनम्,' तत्र रवौ राजकार्यपरः, पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगी विद्याजीवी च, धातुवादी कुन्तायुधो वह्निजीवी च भौमे, वणिजस्तन्तुवायाः शिल्पिनो व्यवहारविदश्च सौम्ये, कर्मज्ञाननिष्ठा वेदविदश्च जीवे, राजकीयाः कामिनः शतेन्द्रियाश्च शुक्रे, प्रसिद्धकर्मा जीवः शनौ, धानुष्का श्चौराश्च जाङ्गलिकाः लौहयन्त्रिणश्च राहौ, गजव्यवहारिणश्चौराश्च केतौ, रविराहुभ्यां सर्पनिधनम्, शुभदृष्टे तन्निवृत्तिः, कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा, शुक्रदृष्टे न दाहः, गुरुदृष्टे त्वासमीपगृहात्, सगुलिके विषदो विषहतो वा, चन्द्रदृष्टे चौरापहृतधनश्चौरो वा, बुधमात्रदृष्टे बृहद्बीजः, तत्र केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः कर्णरोगो वा, बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः, बुधशुक्रदृष्टे पौनःपुनिको दासीपुत्रो वा, शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा, शनिमात्रदृष्टे सन्न्यासाभासः, रविशुक्रदृष्टे राजप्रेष्यः।' इन सभी सूत्रों का आशय पूर्वप्रतिपादित पराशरोक्त पद्यों में स्फुट रूप से परिलक्षित होता है ॥

कारकांश से द्वितीयादि स्थानों का फल—

कारकांशाद् द्वितीये तु वर्गे शुक्रारयोर्जनः।
परस्त्रीनिरतो, दृष्टियोगतो जीवनावधि ॥ ३० ॥
केतौ तत्र फलाभावो देवेज्ये स्त्रीरतः सदा।
अगौ द्रव्यविनाशः स्याद्धनगे कारकांशतः ॥ ३१ ॥
कारकांशाद् विक्रमस्थे क्रूरे जातः सुवीर्यवान्।
शुभे तत्र गते खेटे जातो भीरुर्न संशयः ॥ ३२ ॥
ततस्तुर्ये तु शीतांशुसितसंयुतवीक्षिते।
अपि वा तुङ्गगे तत्र ग्रहेजातस्तु हर्म्यवान् ॥ ३३ ॥
जीवे दारुमयं तत्र मन्दागुभ्यां शिलामयम्।
भौमध्वजाभ्यां युक्ते तु गृहं स्यादिष्टिकामयम् ॥ ३४ ॥
तृणस्य रविणा वेद्यं शशिनाऽनावृतस्थले।
पत्न्या सह भवेद्योग इति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥ ३५ ॥

कारकांश से दूसरे में शुक्र, मंगल का षड्वर्ग हो तो मनुष्य परस्त्रीसंसक्त

होता है। इन दोनों की दृष्टि या संयोग रहे तो उसे आजीवनान्त परस्त्रीरत कहना चाहिए। कारकांश से दूसरे में केतु हो तो यह फल (आमरणान्त परस्त्री से आसक्ति) नहीं कहना चाहिए। गुरु के रहने पर जातक स्त्रैण होता है, और कारकांश से दूसरे में राहु हो तो धननाश कहें। कारकांश से तीसरे में पापग्रह हो तो जातक शूर होता है और शुभग्रह वहां हो तो वह कातर होता है। आत्मकारक के नवांश से चौथे में शुक्र, चन्द्र का संयोग या दृष्टि हो अथवा वहां उच्च का ग्रह हो तो जातक का घर कोठा (पक्का भवन) होता है। उस चतुर्थ में गुरु हों तो काष्ठमय, शनिराहु के रहने से प्रस्तरमय, मंगलकेतु के होने पर ईंटे का, सूर्य के होने पर तृण का घर कहना चाहिए। कारकांश से चतुर्थ में चन्द्रमा हो तो अनाच्छादित (वेपर्द) स्थान में अपनी पत्नी से संयोग कहें ॥ ३०–३५ ॥

कारकांश से पञ्चम स्थान का फल—

सुते स्वर्भानुभौमाभ्यां जातकस्तु क्षयामयी।
तत्रैव चन्द्रदृष्ट्या तु भवेत् फलमसंशयम् ॥ ३६ ॥
भौमदृष्ट्या तु जातः स्यात् पिटकादिरुजान्वितः।
जलोदरो वा ग्रहणीरोगः स्यात् केतुदृष्टितः ॥ ३७ ॥
तत्रैव सागुमान्दौ तु भीतिर्गरल-सम्भवा।
तत्रेन्दुजे विदेहः स्यात् किंवा दण्डधरो यतिः ॥ ३८ ॥
सूर्ये त्वसिधरो बालो भौमे प्रासयुतो भवेत्।
सूर्यपुत्रे तु धानुष्कः लौहयन्त्रकरस्त्वगौ ॥ ३९ ॥
घटीयन्त्रकरः केतौ काव्यकर्त्ता भृगोः सुते।
वक्ता च काव्यतत्त्वज्ञो जातकः स्यान्न संशयः ॥ ४० ॥

कारकांश से पञ्चम में राहु-मंगल हो तो जातक राजयक्ष्मा से पीडित होता है। उस पर चन्द्रमा की यदि दृष्टि हो तो निःसन्दिग्ध रूप से वह रोग होवे। कारकांश से पञ्चम पर मंगल की दृष्टि हो तो पिटक—(पिड़की) आदि रोग, केतु की दृष्टि हो तो जलोदर अथवा ग्रहणी रोग, राहु सहित गुलिक वहां (कारकांश से पञ्चम में) हो तो विषभय कहना चाहिए।

वहां बुध यदि हों तो जातक विदेह अथवा दण्डी संन्यासी, सूर्य हों तो खड्ग-धारी, मंगल हों तो कुन्त (बर्छी) धारण करनेवाला होता है। शनि वहां हों तो जातक धनुर्धारण करनेवाला, राहु हो तो लोहे का यन्त्र बनानेवाला, केतु हो तो घड़ी बनाने वाला, शुक्र हो तो काव्यतत्त्वज्ञ, काव्यनिर्माता तथा वाग्मी होता है ॥ ३६–४० ॥

विशेष—

कारकांशे तत्सुते वा जीवेन्दू यदि संस्थितौ।
ग्रन्थकर्त्ता भवेद् बालः सर्वविद्याविशारदः ॥ ४१ ॥

सितेन तु मनागल्पः सौम्यनात्यल्पको मतः ।
जीवमात्रयुते तत्र सर्वज्ञो ग्रन्थकारकः ॥ ४२ ॥
वेदवेदान्तशब्दानां तत्त्वज्ञो जायते नरः ।
भौमेन न्यायशास्त्रज्ञः, मीमांसाविद् बुधेन तु ॥ ४३ ॥
मन्देन तु सभामूको भानुना गीततत्त्ववित् ।
शशिना सांख्य-साहित्य-योग-गानविशारदः ॥ ४४ ॥
अगुना शिखिना वापि जातो गणिततत्त्ववित् ।
तत्र चेज्जीवसम्बन्धः साम्प्रदायिकशास्त्रवित् ॥ ४५ ॥
कारकांशाद्धनेऽप्येवं केषांचन मते फलम् ।

आत्मकारक के नवांश तथा उससे पांचवें स्थान में चन्द्र और गुरु का संयोग हो तो जातक ग्रन्थकार और गुरु मात्र के संयोग से वह सर्वज्ञ होता है। भौम वहां रहें तो जातक नैयायिक, बुध के वहां रहने पर मीमांसा-शास्त्रज्ञ, शनि के होने पर सभामूक, रवि के रहने पर गायक, चन्द्रमा यदि वहां रहें तो सांख्ययोग, (शास्त्र), साहित्य तथा गान का विशारद-राहु-केतु वहां हों तो गणित मर्मज्ञ, होता है। इन योगों में गुरु का सम्बन्ध यदि हो तो साम्प्रायिक-शास्त्रज्ञ जातक होता है। आत्मकारक के नवांश से द्वितीय स्थान से भी ऐसा ही फल कतिपय आचार्यों ने कहा है ॥ ४१–४५ ॥

कारकांश से षष्ठस्थान का फल—

कारकांशाद्रिपौ पापग्रहे कृषिकरो नरः ।
आलस्ययुक् सौम्यखेटे सहजेऽपीदृशं फलम् ॥ ४६ ॥

आत्मकारक के नवांश से षष्ठस्थान में पापग्रह हों तो जातक कर्षक, शुभग्रह हों तो आलसी होता है। तृतीय स्थान से भी यह फल समझना चाहिए ॥ ४६ ॥

सप्तमस्थान का फल—

मदे शशीज्यौ कारकांशात्तज्जाया सुभगोत्तमा ।
कवौ कामातुरा प्रोक्ता कलापूर्णेन्दुजे स्मृता ॥ ४७ ॥
स्वान्वये रक्षिता सूर्ये वयोज्येष्ठा च सौरिणा ।
तापसी रोगयुक्ता वा विधवा स्यादगौ मुने ! ॥ ४८ ॥

कारकांश से सप्तम में चन्द्रगुरु रहें तो जातक की स्त्री सुन्दरी होती है। शुक्र सप्तम में तो उसकी स्त्री कामातुरा, बुध हो तो कलापूर्णा, रवि हो तो अपने कुल में रक्षिता, शनि हो तो वयोऽधिका, तापसी तथा रुग्णा होती है। राहु कारकांश से सप्तम में हो तो उसकी स्त्री विधवा होवे ॥ ४७–४८ ॥

अष्टमस्थान फल—

ससौम्यनाथे निधने दीर्घायुः कारकांशतः ।
क्रूरदृष्टयन्विते ऽल्पायुः मध्यमायुस्तु मिश्रकैः ॥ ४९ ॥

कारकांश से अष्टम शुभग्रह या स्वाधिप से युक्त हो तो जातक दीर्घायु होता है। पापग्रह की दृष्टि या योग अष्टम पर हों तो वह अल्पायु होता और पाप, शुभ, दोनों तरह के ग्रहों की दृष्टि तथा संयोग से मध्यायु उसे कहना चाहिए ॥ ४९ ॥

नवमस्थान का फल—

कारकांशाच्च नवमे शुभखेट-युतेक्षिते ।
सत्यवादी गुरौ भक्तः स्वधर्मनिरतो नरः ॥ ५० ॥
कारकांशाच्च नवमे पापग्रह-युतेक्षिते ।
स्वधर्मनिरतो बाल्ये मिथ्यावादी तथाऽन्तिमे ॥ ५१ ॥
कारकांशात्तु नवमे शनिराहुयुतेक्षिते ।
गुरुद्रोही भवेद् विप्र ! शास्त्रेषु विमुखो नरः ॥ ५२ ॥
कारकांशात्तु नवमे गुरुभानुयुतेक्षिते ।
तदापि च गुरुद्रोही गुरुवाक्यं न मन्यते ॥ ५३ ॥
कारकांशात्तु नवमे कुजकाव्ययुतेक्षिते ।
षड्वर्गादिकयोगे तु मरणं पारदारिकम् ॥ ५४ ॥
कारकांशात्तु नवमे चन्द्रचन्द्रजदृग्युते ।
परस्त्रीसंगसाद् बालो बन्धको भवति ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
जीवमात्रेण नवमे संयुते वा निरीक्षिते ।
स्त्रीलोलुपो भवेद् बालो विषयी चापि जायते ॥ ५६ ॥

कारकांश से नवम स्थान शुभग्रह से संयुक्त या दृष्ट हो तो जातक सत्यवादी गुरुभक्त तथा अपने धर्म में आसक्त होता है। वही नवम पापग्रह से युत-दृष्ट हो तो जातक बचपन में धर्मपरायण, और अन्तिमावस्था में मिथ्यावादी, हो जाता है। कारकांश से नवम शनि-राहु से युतदृष्ट हो तो वह (जातक) गुरुद्रोही तथा शास्त्र विमुख होता है। वही नवम सूर्य-गुरु से युतदृष्ट हो तो भी गुरुद्रोही, गुरुवाक्य को नहीं माननेवाला होता है। वही नवमस्थान भौम-शुक्र से युतदृष्ट हो तो उसीके षड्वर्गादि के योग में परस्त्री (जिसमें जातक आसक्त रहे) का मरण हो जाता है। वही नवमस्थान चन्द्र-बुध से युतदृष्ट हो तो परस्त्री-संगम प्रयुक्त वह उसी स्त्री के अधीन हो जाता है। नवम स्थान गुरुमात्र से युत-दृष्ट हो तो बालक स्त्रीलोलुप तथा विषयासक्त होता है ॥ ५०—५६ ॥

दशमस्थान का फल—

दशमे कारकांशात्तु शुभखेटान्वितेक्षिते ।
स्थिरवित्तो भवेद् बालो गम्भीरो बहुवीर्यवान् ॥ ५७ ॥
कारकांशात्तु दशमे क्रूरग्रहयुतेक्षिते ।
व्यवसायेऽर्थहानिः स्यात्स्वतातसुखवञ्चितः ॥ ५८ ॥
कारकांशात्तु दशमे सौम्यभार्गवदृग्युते ।
व्यापारे बहुलाभः स्यान्महत्कर्मकृदप्यसौ ॥ ५९ ॥
दशमे कारकांशात्तु सूर्येन्दुयुतवीक्षिते ।
सुरेज्ययुतदृष्टेऽपि जातो भवति भूपतिः ॥ ६० ॥

आत्मकारक के नवांश से दशम स्थान शुभग्रह से युतदृष्ट हो तो जातक स्थिर सम्पत्तिवाला, गम्भीर तथा बहुत बलवान् होता है। वही दशम स्थान पापग्रह से युत-दृष्ट हो तो व्यापार में अर्थहानि, तथा पिता के सौख्य से वञ्चित जातक होता है। उसी दशम स्थान पर बुधशुक्र की दृष्टि या संयोग हो तो व्यापार में बहुत लाभ, तथा जातक बड़े-बड़े कार्यों का करनेवाला होता है। कारकांश से दशम स्थान में यदि सूर्य-चन्द्र से युक्त या दृष्ट हो तथा गुरु का भी योग या दृष्टि उस पर हो तो जातक राजा होता है ॥ ५७–६० ॥

एकादश स्थान का फल—

एकादशे कारकांशात् सन्नभोगान्वितेक्षिते ।
सर्वत्र लाभवाञ् जातः सदा सोदरसौख्ययुक् ॥ ६१ ॥
तत्रैव क्रूरदृग्योगात्सद्वृत्त्यर्थलाभवान् ।
पराक्रमयुतो विश्वविश्रुतो जायते जनः ॥ ६२ ॥

कारकांश से एकादश स्थान शुभग्रहों से युत-दृष्ट हो तो सभी क्षेत्रों में जातक लाभान्वित तथा भ्रातृसौख्यपूर्ण होता है। वही एकादश-स्थान पाप ग्रहों से युत-दृष्ट हो तो असद्वृत्ति से लाभवान् पराक्रमी तथा विश्वविख्यात जातक होता है ॥६१-६२॥

द्वादशस्थान का फल—

कारकांशात्तु रिष्फस्थे सौम्ये सत्कर्मणि व्ययः ।
पापेऽसत्कर्मणि प्रोक्तः खेटासत्त्वे शुभं फलम् ॥ ६३ ॥
कारकांशाद् व्ययस्थाने स्वर्क्षोच्चस्थे शुभग्रहे ।
सद्गतिर्जायते तस्य शुभलोकमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
कारकांशाद् व्यये केतौ शुभखेटैर्युतेक्षिते ।
तदा तु जायते मुक्तिः सायुज्यपदमाप्नुयात् ॥ ६५ ॥

कारकांशाद् व्ययगते मेषे धनुषि वा ध्वजे ।
शुभग्रहेण संदृष्टे कैवल्यपदमाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
व्यये च केवले केतौ पापग्रहयुतेक्षिते ।
न मुक्तिर्जायते तर्हि शुभलोकं न पश्यति ॥ ६७ ॥
रविणा संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते ।
रविभक्तो भवेज्जातो निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ॥ ६८ ॥
चन्द्रेण संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते ।
गौर्यां भक्तिर्भवेत्तस्य शाक्तीको जायते नरः ॥ ६९ ॥
शुक्रेण संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते ।
श्रियामतितरां भक्तिर्जायतेऽसौ समृद्धिमान् ॥ ७० ॥
कुजेन सहिते केतौ स्कन्दभक्तो भवेन्नरः ।
वैष्णवो बुधसौरिभ्यां गुरुणा शिवभक्तिमान् ॥ ७१ ॥
राहुणा तामसीं दुर्गां किंवा भूतादिकान् भजेत् ।
हेरम्बभक्तः शिखिना स्कन्दभक्तोऽथवा भवेत् ॥ ७२ ॥
कारकांशाद् व्यये सौरिः पापराशौ यदा भवेत् ।
तदा तु क्षुद्रदेवस्य भक्तिस्तस्य न संशयः ॥ ७३ ॥
पापर्क्षेऽपि व्यये शुक्रे तदापि क्षुद्रसेवकः ।
एवमेव फलं ज्ञेयं शत्रौ चामात्यकारकात् ॥ ७४ ॥

आत्मकारक के नवांश से द्वादशस्थ शुभग्रह हों तो शुभकार्य में, पापग्रह रहें तो असत्कार्य में व्यय कहें । वह (१२ वाँ स्थान) ग्रहविहीन रहे तो शुभ फल समझना चाहिए । उपर्युक्त द्वादश स्थान में स्वगृही या स्वोच्चस्थ शुभग्रह हो तो जातक को अन्त में सद्गति तथा शुभलोक प्राप्त होता है । कारकांश से व्ययस्थ केतु शुभग्रहों से युत-दृष्ट हो तो जातक मुक्त होकर सायुज्य पदभागी होता है । उक्त द्वादशस्थान मेष या धनु में स्थित केतु शुभग्रह से देखे जाँय तो भी मोक्ष होता है । उक्त द्वादशस्थान में स्थित केतु मात्र पापग्रह से युत-दृष्ट हो तो जातक को शुभलोक या मुक्ति नहीं होती है । कारकांश से द्वादशस्थ केतु सूर्ययुत हो तो सूर्य में भक्ति, चन्द्रयुक्त हो तो पार्वती में भक्ति और शाक्त वह होता है । शुभयुक्त उक्त स्थान हो तो जातक समृद्धिशाली तथा लक्ष्मीभक्त होता है । कारकांश से व्ययस्थान में मंगल-केतु हो तो जातक स्कन्द (कार्त्तिकेय) भक्त, बुध-शनि हो तो विष्णुभक्त, गुरु हो तो शिवभक्त, राहु हो तो तामसी दुर्गा का या प्रेतादि का भक्त, केतु हो तो गणेश या कार्त्तिकेय का भक्त जातक होता है । कारकांश से व्ययस्थान पापराशि में

शनि हो या शुक्र हो तो जातक क्षुद्र देवता में भक्ति करनेवाला होता है। अमात्य-कारक से षष्ठ स्थानवश ऐसा ही फल समझना चाहिए ॥ ६३–७४ ॥

विशेष—

कारकांशात् त्रिकोणस्थे मुने! क्रूरग्रहोदये।
मन्त्र-तन्त्र-विदां वर्यो जायते जातको ध्रुवम् ॥ ७५ ॥
पापसंवीक्षिते तत्र तन्त्र-निग्राहको भवेत्।
शुभैर्निरीक्षिते तत्र जातोऽनुग्राहको भवेत् ॥ ७६ ॥

कारकांश से नवम पञ्चमस्थ दो पापग्रह हो तो जातक मन्त्र-तन्त्र का जानकार होता है। पापग्रह की दृष्टि उसपर हो तो वह निग्रह करने वाला और शुभग्रह की दृष्टि में अनुग्रहकारक होता है ॥ ७५–७६ ॥

रसवादी नरश्चन्द्रे कारकांशे सितेक्षिते।
विदोक्षिते भिषग्वर्यः सर्वरोगहरो मुने! ॥ ७७ ॥
सितेक्षिते विधौ तुर्ये श्वेतकुष्ठी भवेज्जनः।
कुजेक्षिते राजरोगी रक्तपित्तार्त्तिमान् नरः ॥ ७८ ॥
शिखिना वीक्षिते तत्र नीलकुष्ठयुतो भवेत्।
कुजागू तुर्यगौ किंवा सुतगौ चेद् द्विजोत्तम ॥ ७९ ॥
क्षयरोगो भवेत्तस्य चन्द्रदृष्ट्या विशेषतः।
कारकांशात् तुर्यसून्वोः केवलः संस्थितः कुजः ॥ ८० ॥
पिटकादि भवेत्तस्य निर्विशङ्कं द्विजोत्तम।
जलोदरो वा ग्रहणी ध्वजे तत्रैव संस्थिते ॥ ८१ ॥
स्वभानुगुलिकौ तस्मिन् विषवैद्यः प्रजायते।
कारकांशात् सुते भावे शनिमात्रे स्थिते सति ॥ ८२ ॥
धनुर्विद्याधरो भल्लो जायते नात्र संशयः।
शिखिमात्रे तु तत्रस्थे घटिकायन्त्रकृज्जनः ॥ ८३ ॥
सौम्ये तु दण्डिसंन्यासी स्याद् वा परमहंसवत्।
कुजे राहौ रवौ तत्र संस्थिते क्रमशो द्विज ॥ ८४ ॥
कुन्त-लौहास्त्र-खड्गानां धारको जायते जनः।

आत्मकारक के नवांश में शुक्रदृष्ट चन्द्रमा हो तो जातक रस (स्वर्णादि भस्म) का जानकार या निर्माता होता है। बुध की दृष्टि रहे तो सर्वरोगनाशक उत्कृष्ट वैद्य होता है। आत्मकारक के नवांश से चतुर्थस्थ चन्द्र शुक्रदृष्ट हो तो जातक श्वेतकुष्ठी, मंगलदृष्ट हो तो रक्तपित्त-पीड़ित राजरोगी, केतुदृष्ट हो तो नीलकुष्ठ रोगी

होता है। कारकांश से ४ या ५ में मंगल या राहु हो तो जातक क्षयरोगी, चन्द्रमा की दृष्टि रहने पर विशेषतः क्षयरोग (राजयक्ष्मा) का शिकार वह होता है। कारकांश से चतुर्थ या पञ्चम में भौम मात्र स्थित हो तो पिटकादि रोगों का उपद्रव जातक को कहना चाहिए। केतु के वहाँ रहने से जलोदर या संग्रहणी रोग कहें। राहु या गुलिक वहाँ हो तो जातक विषवैद्य होता है। कारकांश से पञ्चमस्थ शनि मात्र हो तो जातक धनुर्धारी होता है। वहाँ केवल केतु रहें तो वह घटीयन्त्र (घड़ी) निर्माता, बुध रहे तो दण्डी संन्यासी, या परमहंस, मंगल रहें तो कुन्तधारी, राहु रहें तो लौहास्त्रधारी, सूर्य हो तो खड्गधारी होता है॥ ७७–८४॥

पञ्चमस्थान का पुनः विशेषफल

स्वांशेऽथ पञ्चमे वापि कवौ वाग्मी कविर्जनः॥ ८५॥
गुरौ तत्र तु सर्वत्र ग्रन्थकृत् शब्दशास्त्रवित्।
वेदवेदान्ततत्त्वज्ञः प्रगल्भो न सभासु च॥ ८६॥
उक्तस्थानगते सौरौ सभामूको भवेज्जनः।
कारकांशे तत्सुते वा कुजे नैयायिको भवेत्॥ ८७॥
साहित्य-सांख्ययोगेषु निपुणो गानकृद् विधौ।
वेदान्ततत्त्वविद् गानमर्मज्ञो भास्करे भवेत्॥ ८८॥
गणितज्यौतिषे शास्त्रे निपुणः शिखिनि स्मृतः।
तत्रैव जीवसम्बन्धात् साम्प्रदायिकशास्त्रवित्॥ ८९॥
एवं वित्ते विक्रमे वा कारकांशाद् विचिन्तयेत्।
कारकांशाद्धने वापि तृतीये केतुसंयुते॥ ९०॥
वाक्स्तब्धता, क्रूरदृष्टे विशेषात् तत्फलं दिशेत्।

कारकांश अथवा उससे पञ्चमस्थ शुक्र हो तो जातक कवि, तथा वक्ता, गुरु हो तो वह सर्वज्ञ, ग्रन्थकार एवं शब्दशास्त्र वेत्ता, वेद-वेदान्त के तत्त्वज्ञ, एवं सभा में प्रगल्भ होता है। उपर्युक्त स्थानों में बुध हो तो जातक सभामूक होवे। कारकांश या उससे पञ्चम में भौम हो तो नैयायिक, चन्द्रमा हो तो साहित्य एवं सांख्ययोग में निपुण तथा गायक वह होता है। सूर्य उक्त स्थानगत हो तो जातक वेदान्ततत्त्वज्ञ, तथा गानमर्मज्ञ होता है। शनि के उपर्युक्त स्थानस्थ होने पर जातक गणित ज्यौतिष में निपुण, वहीं गुरु के सम्बन्ध से सम्प्रदाय-सिद्ध शास्त्र का जानकार होता है। इसी तरह कारकांश से दूसरे या तीसरे में केतु रहें तो जातक वाक्स्तब्ध (बोलने में अक्षम) होता है, पापग्रह की दृष्टि रहे तो विशेष रूप से उसे वाक्स्तब्ध कहना चाहिए॥ ८५–९०॥

केमद्रुम योग—

कारकांशात्तथारूढात् लग्नतो वार्थरन्ध्रयोः ॥ ९१ ॥
केमद्रुमः समे क्रूरे विशेषाच्चन्द्रदृष्टितः ।
अस्मिन् प्रकरणे प्रोक्ता ये योगास्ते मया मुने ! ॥ ९२ ॥
तत्तद्राशि-ग्रहदशा-मध्ये ते फलदायिनः ।
एवं दशाप्रदाद्राशेर्द्वितीयाष्टमयोर्द्विज ! ॥ ९३ ॥
ग्रहसाम्ये तु विज्ञेयो योगः केमद्रुमोऽधमः ।
दशारम्भे ग्रहान् लग्नसहितान् साधयेद् बुधः ॥ ९४ ॥
तत्रापि पूर्ववत् केमद्रुम-योगं विचिन्तयेत् ।
एवं तन्वादिभावानां रव्यादिद्युपदां सदा ॥ ९५ ॥
तत्तत्स्थितिवशादेव फलं वाच्यं तु धीमता ।
कारकांशफलं चैतदुक्तं संक्षेपतस्तु ते ॥ ९६ ॥

आत्मकारक के नवांश, या आरूढ (पद) अथवा लग्न से दूसरे तथा अष्टम स्थान में तुल्यसंख्यक पापग्रह हो तो केमद्रुम योग होता है, यदि चन्द्रदृष्टि उस पर रहे तो प्रबल केमद्रुम (अशुभकारक समझना चाहिए)। इस प्रकरण में जो योग कहे गए हैं उनका फल तत्तद्राशि और ग्रहों की दशा में समझना चाहिए। इस तरह दशाप्रद राशि से दूसरे तथा अष्टम में ग्रह-साम्य हो तो भी अशुभकारक केमद्रुम योग होता है। दशारम्भ के समय में भी स्पष्ट ग्रह एवं लग्न का साधन कर केमद्रुम योग (लग्न से दूसरे तथा अष्टम में पापग्रह की तुल्यता होना) का विचार करें। इस तरह लग्नादि भावों तथा सूर्यादिग्रहों की स्थिति के अनुसार फलादेश करना चाहिए। यह संक्षेपतः कारकांश फल समझना ॥ ९१–९६ ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
कारकांशफलाध्यायः समाप्तः ॥ ३४ ॥

अथ योगाध्यायः ॥ ३५ ॥

पराशर उवाच—

इत्थं ते कथितं विप्र ! कारकांशात् फलं मया ।
शृणु भावाधिपवशात्फलं खेचरयोगजम् ॥ १ ॥
केन्द्राधिपतयः सौम्या दिशन्ति नहि सत्फलम् ।
क्रूरा नैवाशुभं कुर्युस्त्रिकोणेशाः शुभाः स्मृताः ॥ २ ॥

केन्द्रत्रिकोणताहेतोर्लग्नं तु शुभदं परम् ।
पञ्चमं नवमं चैव विशेषधनमुच्यते ॥ ३ ॥
कलत्रं दशमं चैव विशेषसुखमुच्यते ।
पतयस्त्रिषडायानां सदा पापफलप्रदाः ॥ ४ ॥
वित्तरन्ध्रव्ययेशास्तु फलदाः सङ्गतेर्वशात् ।
स्थानान्तरानुगुण्यात्ते बलिनस्तु यथोत्तरम् ॥ ५ ॥
भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः ।
त्रिषडायाधिपत्वे तु विशेषादशुभः स्मृतः ॥ ६ ॥
लग्नत्रिकोणपवशात् स एव शुभदो मतः ।
न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत् ॥ ७ ॥

पाराशर ने कहा :—हे मैत्रेय ! कारकांश के वश फलादेश मैंने किया है, अब भावों के आधिपत्य से ग्रहयोग-फल कहता हूँ, सुनो ! शुभग्रह केन्द्रेश होने पर शुभफलद नहीं होते और पापग्रह केन्द्राधिप होने पर अशुभफल नहीं देते, त्रिकोणेश शुभग्रह हो या पापग्रह, सभी शुभफलप्रद होते हैं। अर्थात् स्वाभाविक शुभग्रह केन्द्रेश होने पर शुभफलद नहीं और स्वाभाविक पापग्रह केन्द्रेश होने पर अशुभफल नहीं होते। त्रिकोणेश कोई (शुभ या पाप) भी हो शुभप्रद ही कहे गए हैं। लग्न का परिगणन केन्द्र तथा त्रिकोण दोनों में होने के कारण लग्नेश शुभप्रद होते हैं। पञ्चम तथा नवमभाव विशेषधन, और (सप्तम, दशमभाव विशेषसुख कहे जाते हैं। त्रिषडायेश (३।६।११ के अधिप) शुभग्रह या पापग्रह कोई भी हो, पापफल ही देते हैं। धनेश, अष्टमेश तथा व्ययेश साहचर्य एवं स्थानानन्तरानुगुण्य (जिस स्थान पर बैठे हों तदनुसार) से फलप्रद होते हैं। वे केन्द्रेश, त्रिकोणेश तथा त्रिषडायेश उत्तरोत्तर प्रबल होते हैं। अर्थात् लग्नेश से चतुर्थेश, चतुर्थेश से सप्तमेश, और सप्तमेश से दशमेश प्रबल होते हैं। इसी तरह पञ्चमेश से नवमेश, तृतीयेश से षष्ठेश, एवं षष्ठेश से एकादशेश और धनेश से अष्टमेश, अष्टमेश से व्ययेश प्रबल होते हैं। अष्टमेश चूँकि भाग्य (नवम) से द्वादश स्थान या भाग्यव्यय (क्षय) कारक जो अष्टम स्थान, उसके मालिक हैं अतः शुभफलप्रद नहीं होते अर्थात् अशुभफलद होते हैं। वे (अष्टमेश) त्रिषडाधीश भी हो तो और अधिक अशुभफलद होते हैं। परन्तु अष्टमेश त्रिकोणेश (लग्न पञ्चम नवम के अधिप) हो तो शुभप्रद हो जायँगे। रन्ध्रेशत्व (अष्टमेशत्व) दोष सूर्य-चन्द्र में नहीं समझना चाहिए ॥ १–७ ॥

नैसर्गिक शुभाशुभग्रह कथन—

सुरासुरेज्यौ तु शुभौ शशाङ्को मध्यमः स्मृतः ।
उदासीनस्तु शशिजः सूर्यारशनयोऽशुभाः ॥ ८ ॥

पूर्णेन्दुविद्गुरुसिता बलिनस्तु यथोत्तरम् ।
क्षीणचन्द्रेनमन्दारा बलिनस्तूत्तरोत्तरम् ॥ ९ ॥
केन्द्राधिपत्यदोषस्तु शुभखेटेऽपि विश्रुतः ।
विधुविज्जीवकाव्यानां बलिनस्ते यथोत्तरम् ॥ १० ॥

गुरु शुक्र स्वभावतः शुभ हैं । चन्द्रमा मध्यम, बुध उदासीन, तथा सूर्य, मंगल, शनि स्वभावतः पापग्रह हैं । पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र ये (शुभग्रह) उत्तरोत्तर बली होते हैं । इसी तरह क्षीणचन्द्र, सूर्य, शनि और मंगल ये (पापग्रह) उत्तरोत्तर प्रबल होते हैं । केन्द्राधिपत्य दोष शुभग्रह में भी कहा गया है । वह दोष चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र में उत्तरोत्तर प्रबल समझना चाहिए । लघुपाराशरी में महर्षि ने "केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् बुधशुक्रयोः" कहा है ॥ ८–१० ॥

राजयोग—

केन्द्रकोणाधिपत्योश्चेदन्योन्यभवने स्थितिः ।
किंवा द्वयोरेकराशौ स्थितिर्वैकोऽन्यगेहगः ॥ ११ ॥
दृष्टः परेण, वा पूर्णदृग्दृष्टौ योगकारकौ ।
विश्रुतो नृपतिर्वापि जातो योगेऽत्र जायते ॥ १२ ॥

केन्द्रेश त्रिकोणेश दोनों परस्पर भवन में हों (१) या दोनों एक राशि में सम्मलित हों (२) अथवा एक दूसरे स्थान में हों और दूसरा उसको देखता हो (३) या दोनों परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखते हों (४) चारों स्थितियाँ राजयोगकारक होती हैं । अर्थात् केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश उपर्युक्त चारों स्थिति में राजयोगकारक होते हैं ! इन योगों में उत्पन्न बालक विख्यात या राजा होता है ॥ ११–१२ ॥

विशेष—

एक एव ग्रहः केन्द्रपतिः कोणपतिश्च सन् ।
केन्द्रगः कोणगो वापि योगकृत् स्याद् विशेषतः ॥ १३ ॥
पापानां केन्द्रनाथत्व-प्रयुक्ता शुभकारिता ।
त्रिकोणस्यापि नाथत्वे न केन्द्रेशत्वमात्रतः ॥ १४ ॥
यदा केन्द्रत्रिकोणेशौ क्रूरस्थानपती तदा ।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ॥ १५ ॥
यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ॥ १६ ॥
यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ ।
नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ ॥ १७ ॥

एक ही ग्रह केन्द्रेश तथा त्रिकोणेश होकर यदि केन्द्रस्थ अथवा त्रिकोण (९।५) स्थ हो तो विशेष रूप से योगकारक होता है। केन्द्रेश होने पर पापग्रह शुभकारक होते हैं, किन्तु उनकी यह शुभकारिता त्रिकोणेश होने से ही सम्भव है न कि केन्द्रेश मात्र होने पर। केन्द्र-त्रिकोणेश यदि पापस्थाने (३।६।११) श भी हों तो केन्द्रेश त्रिकोणेश के सम्बन्ध मात्र से राजयोग नहीं होता है। प्रवल राहु-केतु जिस भाव में रहे, या जिस भावपति से संयुक्त हो, तदनुसार ही फल देते हैं। यदि वे राहु केतु केन्द्र या त्रिकोण में रह कर अन्यतर नाथ से सम्वद्ध हो अर्थात् केन्द्र (१।४। ७।१०) स्थ राहु-केतु का त्रिकोण (९।५) स्थ से या त्रिकोणस्थ का केन्द्रस्थ से सम्बन्ध हो तो योगकारक होते हैं ॥ १३–१७ ॥

मैत्रेय उवाच—

लग्ने कुत्र प्रजातस्य खेटाः स्युर्योगकारिणः।
के वा सन्फलदास्ते तु वोधनीया महामते ! ॥ १८ ॥

मैत्रेय ने पूछा—

किस लग्न में उत्पन्न जातक के कौन ग्रह योगकारक होते हैं, और कौन-कौन ग्रह अशुभफलद होते हैं, कृपया इसे बतलावें ॥ १८ ॥

पराशर उवाच—

क्रूराः शनिज्ञदैत्येज्याः सौम्यौ देवेज्यभास्करौ।
केवलेन तु योगेन मन्देज्यौ न शुभौ मतौ ॥ १९ ॥
पापकृत्त्वमपि प्रोक्तं परतन्त्रतया गुरोः।
मारकाधिपतिः शुक्रः प्रबलो मारको मतः ॥ २० ॥
पापाः शन्यादयः खेटास्तत्सम्बन्धात्तु मारकाः।
अजलग्नप्रजातस्य वेद्यमेतत्फलं बुधैः ॥ २१ ॥

पराशर ने कहा—मेषलग्नोत्पन्न जातक के लिए शनि, बुध, शुक्र, पापफलद सूर्य, गुरु शुभफलद होते हैं। शनि-गुरु केवल योगमात्र से शुभफलद (राजयोग-कारक) नहीं होते हैं। गुरु परतन्त्र (दूसरे पाप से सम्बद्ध) होने पर पापकारी भी निश्चयतः होते हैं। शुक्र मारकेश होने पर प्रबल मारक होते हैं। शन्यादिग्रह पापी हैं, अतः मारकेश शुक्र से सम्वद्ध होने पर ये भी मारक होते हैं। इस तरह मेषलग्नोत्पन्न जातक का फल समझना चाहिए ॥ १८–२१ ॥

विमर्श—इस अध्याय में महर्षि पराशर ने निम्न बातें कही हैं।

(१) त्रिकोणेश सर्वदैव शुभप्रद और त्रिषडायाधीश अशुभफलदायक होते हैं। (२) केन्द्राधीश शुभग्रह शुभफलद नहीं होते और वे केन्द्राधीश पापग्रह हों तो अशुभफलद भी नहीं हैं। (३) पञ्चमेश से नवमेश, तृतीयेश से षष्ठेश, षष्ठेश से एकादशेश, एवं लग्नेश से चतुर्थेश, चतुर्थेश से सप्तमेश, और सप्तमेश से दशमेश

प्रबल होते हैं। (४) लग्न से द्वितीयेश एवं द्वादशेश शुभग्रह के साहचर्य से शुभद और पाप के साहचर्य से अशुभफलद होते हैं। (५) अष्टमेश शुभप्रद नहीं होते हैं। वे यदि त्रिषडायीश भी हों तो और भी अशुभकारक होते हैं, किन्तु त्रिकोण (१।५।९) के स्वामी यदि हों तो वे (अष्टमेश) शुभद होते हैं। (६) केन्द्राधिपत्यदोष चन्द्र-बुध-गुरु-शुक्र का क्रमशः प्रबल होता है। शुक्र मारक होने पर प्रबल मारक भी होता है।

केन्द्रेश त्रिकोणेश के परस्पर सम्बन्ध होने पर राजयोग होता है। सम्बन्ध चतुर्विध होते हैं—(१) परस्पर भवन में स्थित हों, (२) केन्द्रेश त्रिकोणेश दोनों एकत्र सम्मिलित हों, (३) एक दूसरे के भवन में हो और दूसरा उसको देखता हो, इन चारों स्थितियों में राजयोग होता है। नवमेश दशमेश का यदि कोई उपर्युक्त सम्बन्ध हो तो विशिष्ट योग समझना। केन्द्रेश त्रिकोणेश यदि एक ही ग्रह हो जैसा कि वृष लग्न में होता है तो भी राजयोग होता है। केन्द्रेश त्रिकोणेश के सम्बन्ध रहने पर भी त्रिषडायेश से सम्बन्ध होने पर राजयोग खण्डित हो जाता है। केन्द्रस्थ राहुकेतु त्रिकोणाधीश से, या त्रिकोणस्थ वे केन्द्राधीश से सम्बद्ध हों तो भी राजयोग होता है।

उपर्युक्त शुभाशुभग्रहानुसार मेषलग्नोत्पन्न जातक के लिए सूर्य पञ्चमेश होने के कारण शुभप्रद होंगे क्योंकि त्रिकोणेश सदैव शुभद होते हैं। भौम अष्टमेश होने के नाते अशुभप्रद, किन्तु वही लग्नेश भी हैं अतः शुभप्रद ही होंगे। बुध तृतीय-षष्ठ के स्वामी हैं अतः पापफलद हैं। गुरु व्ययेश होते हुए भी नवमेश हैं अतः शुभप्रद होंगे। शुक्र द्वितीय तथा सप्तम के अधीश हैं। दोनों स्थान मारक स्थान है अतः शुक्र मारकेश हुए, साथ ही केन्द्रेश होते हुए वे त्रिकोणेश नहीं होने के कारण अशुभप्रद ही होंगे। अतः शुक्र प्रबल मारक तथा पापफलद हुए। शनि दशमेश होने से शुभप्रद किन्तु वे ही लाभेश भी हैं अतः पापफलदत्व उसमें रह ही गया। इस प्रकार सभी लग्नोत्पन्न जातक का शुभाशुभग्रह का विवेचन किया जा सकता है।

वृषलग्नजात के शुभाशुभग्रह—

जीवशुक्रेन्दवः पापाः शुभौ शनिदिवाकरौ।
राजयोगकरो मन्दो ज्ञोऽल्पसत्फलदो मतः॥ २२॥
जीवादयो महीजश्च सन्ति कारकलक्षणाः।
द्विजोत्तम! फलान्येवं वृषलग्नभवानि वै॥ २३॥

वृषलग्नोत्पन्न जातक के लिए गुरु शुक्र-चन्द्र, ये तीनों पापफलद, सूर्य-शनि, शुभफलद शनि राजयोगकारक तथा बुध कुछ अल्पशुभद होते हैं। जीवादि (गुरु-शुक्र चन्द्र) तथा मंगल मारक होते हैं॥ २२–२३॥

मिथुनलग्नोद्भव के शुभाऽशुभग्रह—

भौमजीवारुणाः पापा एक एव कविः शुभः।
शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा॥ २४॥

प्रधानमारकश्चन्द्रः फलदः संगतेर्वशात् ।
युग्मलग्नभवस्यैतत्फलं सद्भिरुदीरितम् ॥ २५ ॥

मङ्गल, गुरु, सूर्य, मिथुनलग्नोत्पन्न जातक के लिए, पापफलद और एकमात्र शुक्र शुभप्रद होते हैं। शनि (नवमेश होने के कारण) योगकारक होता हुआ गुरु से संयुक्त होने पर मेष लग्न के समान ही फलद होता है। चन्द्रमा मुख्य मारक ग्रह हैं जो साहचर्य से फलप्रद होते हैं ॥ २४–२५ ॥

कर्कोत्पन्न के शुभाऽशुभग्रह—

भार्गवेन्दुसुतौ पापौ चन्द्रारगुरवः शुभाः ।
भूरिसौख्यकरो भौमः पूर्णयोगविधायकः ॥ २६ ॥
हन्ता शनिस्तथा सूर्यः फलदः संगतेर्वशात् ।
फलमेतन्निगदितं कर्कलग्ने तु जन्मिनः ॥ २७ ॥

कर्क लग्नोत्पन्न जातक के लिए शुक्र बुध पापफलद, चन्द्र, भौम, तथा गुरु शुभफलद होते हैं। इन में भी भौम पूर्ण योग कारक तथा पूर्ण मंगलप्रद होते हैं। शनि मारक तथा सूर्य साहचर्य से फलप्रद होते हैं ॥ २६–२७ ॥

सिंहलग्नजात के शुभाशुभग्रह—

क्रूरा ज्ञमन्दभृगवः सौम्या भौमेज्यभानवः ।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं गुरुशुक्रयोः ॥ २८ ॥
निहन्ता सौरिरिन्दुश्च फलदः संगतेर्वशात् ।
सिंहोद्भवस्य जातस्य प्रोक्तमेतत् फलं बुधैः ॥ २९ ॥

सिंहलग्नोत्पन्न जातक के लिए बुध, शुक्र, शनि पाप, भौम, गुरु, सूर्य शुभ होते हैं। गुरु-शुक्र (त्रिकोणेश केन्द्रेश होने पर भी) योग मात्र से शुभफलद नहीं होते शनि (सप्तमेश होने के कारण) मारक, और चन्द्र (व्ययेश) साहचर्य से फलद होते हैं ॥ २८–२९ ॥

कन्यालग्नजात के शुभाशुभग्रह—

कुजजीवेन्दवः पापाः शुभदौ सौम्यभार्गवौ ।
भार्गवेन्दुसुतावेव भवेतां योगकारकौ ॥ ३० ॥
निहन्ता कविरर्कस्तु फलदः साहचर्यतः ।
जन्मिनः कन्यकालग्ने प्राज्ञैरेतत्फलं स्मृतम् ॥ ३१ ॥

कन्यालग्नोत्पन्न जातक के लिए कुज, गुरु, चन्द्र पापफलद, बुध-शुक्र शुभप्रद, तथा शुक्र-बुध ही योगकारक, शुक्र-मारक, सूर्य साहचर्य से फलप्रद होते हैं ॥ ३०–३१ ॥

तुलालग्नज जातक के शुभाशुभग्रह—

जीवार्कभूमिजाः पापाः शनैश्चरबुधौ शुभौ ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्रतत्सुतौ ॥ ३२ ॥
कुजो निहन्ति जीवाद्याः क्रूरा मारकलक्षणाः ।
एक एव समः काव्यश्चेति तौलिभवे फलम् ॥ ३३ ॥

तुलालग्नोत्पन्न जातक के लिए गुरु, सूर्य, मङ्गल पापफलद, शनि-बुध शुभफलद, और चन्द्र-बुध राजयोगकारक, मङ्गल मारक जीवादि ग्रह मारक लक्षण, तथा शुक्र सम होते हैं ॥३२–३३॥

वृश्चिकलग्नोत्पन्न जातक के शुभाशुभग्रह—

शुक्रवित्सौरयः पापाः शुभौ गुरुनिशाकरौ ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥ ३४ ॥
समो भौमोऽसुरेज्याद्या मारकाः स्युः शुभेतराः ।
फलमेतदलौ जन्मवतो हि समुदीरितम् ॥ ३५ ॥

वृश्चिकलग्नोत्पन्न जातक के लिए शुक्र, बुध, शनि, पापफलद, गुरु-चन्द्र शुभफलद, सूर्य-चन्द्रमा योगकारक, मङ्गल सम, और शुक्र आदि पापी ग्रह मारक होते हैं ॥३४-३५॥

धनुर्लग्नोत्पन्न के शुभाऽशुभग्रह—

एक एव कविः पापः शुभौ कुजदिवाकरौ ।
भास्करज्ञौ योगकरौ निहन्ता तनयो रवेः ॥ ३६ ॥
समो जीवोऽथ दैत्येज्यो मारकत्वेन लक्षितः ।
चापोदये तु जातस्य प्रोक्तमेतत् फलं बुधैः ॥ ३७ ॥

धनुर्लग्नोत्पन्न जातक के लिए एक शुक्र ही पापफलद, कुज, सूर्य, शुभफलप्रद, सूर्य, बुध योगकारक, शनि मारक, गुरु सम, और शुक्र मारक लक्षण वाले होते हैं।

मकरलग्नोत्पन्न के शुभाशुभग्रह—

कुजजीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
स्वयं हन्ता न मन्दः स्यान्निघ्नन्त्यारादयोऽशुभाः ॥ ३८ ॥
समो भानुर्निगदितः कविरेकः सुयोगकृत् ।
नक्रोदये प्रजातस्य ज्ञेयमेतत्फलं बुधैः ॥ ३९ ॥

मकरलग्नोत्पन्न जातक के लिए मङ्गल, गुरु, चन्द्र, पापफलद, बुध, शुक्र शुभद, और मङ्गल आदि पापग्रह मारक होते हैं। शनि (लग्नेश होने के नाते) स्वयं मारक नहीं होता है। उसके लिए सूर्य सम, और शुक्र योगकारक है ॥ ३८–३९ ॥

कुम्भलग्नोत्पन्न के शुभाशुभग्रह—

जीवचन्द्रकुजाः पापाः शुभौ काव्यशनैश्चरौ ।
राजयोगकरो विज्ञैर्भार्गवः समुदीरितः ॥ ४० ॥
निघ्नन्तीनारजीवास्तु सौम्यो मध्यफलप्रदः ।
घटोदये प्रजातस्य ज्ञेयमेतत् फलं बुधैः ॥ ४१ ॥

कुम्भलग्नज जातक के लिये गुरु, चन्द्र, भौम पापकलद, शुक्र-शनि शुभद, राजयोगकारक-शुक्र, बुध मध्यफलप्रद, तथा मारक गुरु, सूर्य, मंगल होते हैं ॥४०–४१॥

मीनोत्पन्न के शुभाऽशुभग्रह—

मन्दशुक्रांशुमत्सौम्याः पापा भौमविधू शुभौ ।
महीसुतगुरू योगकर्तृत्वेन स्मृतौ बुधैः ॥ ४२ ॥
मारकौ बुधमन्दौ स्तो न हन्ता मारकः कुजः ।
झषोदये प्रजातस्य ज्ञेयमेतत् फलं बुधैः ॥ ४३ ॥

मीनलग्नोत्पन्न जातक के शनि, शुक्र, सूर्य बुध ये पापफलद, भौम चन्द्र-शुभप्रद, मंगल गुरु योगकारक, भौम (द्वितीयेश होने के कारण) मारक होते हुए भी मारक नहीं, और बुध-शनि मारक होते हैं ॥ ४२–४३ ॥

भावाधीशत्वतश्चेत्थं जनुर्लग्नानुसारतः ।
शुभाऽशुभत्वमुदितं खेचराणां द्विजोत्तम ! ॥ ४४ ॥

इस प्रकार भावाधिपत्य एवं जन्म लग्न के अनुसार ग्रहों का शुभ या अशुभ होना समझना चाहिए ॥ ४४ ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
योगाध्यायः समाप्तः ॥ २५ ॥

अथ नाभसयोगफलाध्यायः ॥ ३६ ॥

पराशर उवाच—

अधुना नाभसान् योगान् मुख्यान् द्वात्रिंशदुन्मितान् ।
वच्मि, तेषां प्रभेदाः स्युरष्टादशशतोन्मिताः ॥ १ ॥
आश्रयाख्यास्त्रयो योगा दलयोगद्वयं ततः ।
आकृतिर्विंशतिमिताः संख्याः सप्तमिता मताः ॥ २ ॥

पराशर ने कहा :—(हे मैत्रेय) अब मैं बत्तीस प्रमित मुख्य नाभस योगों को बतलाता हूँ जिनके प्रभेद १८०० हैं । आश्रय योग तीन, दलयोग दो, आकृतियोग बीस, संख्यायोग सात हैं ॥ १–२ ॥

नाभसयोगों का नाम—

रज्जुनामाऽथ मुसलो नलश्चेत्याश्रयत्रयम् ।
मालाभुजङ्गमौ चेति योगौ ज्ञेयौ दलाभिधौ ॥ ३ ॥
गदयोगश्च शकटः शृङ्गारकविहङ्गमौ ।
हलवज्रयवाश्चैव कमलं वापियूपकौ ॥ ४ ॥
शरशक्तिदण्डनौका-कूटच्छत्रधनूंषि च ।
अर्धेन्दुयोगश्चक्राख्यः समुद्रश्चेति विंशतिः ॥ ५ ॥
अथ वीणा दाम पाशः केदारः शूलसंज्ञकः ।
युगगोलाविति सप्ते योगा दन्तमिता मताः ॥ ६ ॥

रज्जु, मुसल, तथा नल ये तीन आश्रय योग हैं। माला और सर्प ये दोनों योग दलसंज्ञक हैं। गदा, शकट, पक्षी, हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, धनुष् (चाप), अर्धचन्द्र, चक्र तथा समुद्र ये बीस योग आकृति-संज्ञक हैं। वीणा, दाम, पाश, केदार, शूल, युग तथा गोल ये सात संख्या योग हैं। इस प्रकार सभी ये (३२) बत्तीस नाभस योग कहे गए हैं।

यहाँ यह भी ध्येय है कि चर, स्थिर द्विस्वभाव राशियों पर आश्रित होने के कारण आश्रय योग, ग्रहों की स्थिति से उत्पन्न आकृति के आधार पर आकृति योग, तथा एकादि राशि में ग्रहों की स्थिति से वीणादि योग, ये सभी संज्ञाएँ सहेतुक हैं ॥ ३–६ ॥

आश्रय-दलयोगों के लक्षण—

अखिलैश्चरगैः खेटैः स्थिरगैर्द्विस्वभावगैः ।
क्रमाद्रज्जुश्च मुसलो नलश्चेत्याश्रया मताः ॥ ७ ॥
शुभैः केन्द्रत्रितयगैः क्रूरैर्वा दलनामकौ ।
मालाभुजङ्गौ सदसत्फलदौ क्रमशो मतौ ॥ ८ ॥

चर राशि में सभी ग्रह हों तो रज्जुयोग, स्थिर राशिस्थ हों तो मुसलयोग; और द्विस्वभावगत हों तो नलयोग होते हैं। ये तीनों योग आश्रय योग हैं। सभी शुभग्रह तीन केन्द्र स्थानों और पापग्रह केन्द्रातिरिक्त स्थानों में हों तो मालायोग, एवं सभी पापग्रह ३ केन्द्रों में और शुभग्रह केन्द्रातिरिक्त स्थानों में रहें तो सर्प योग होते हैं। ये दोनों योग दल संज्ञक हैं ॥ ७–८ ॥

आकृति योग लक्षण—

आसन्नकेन्द्रद्वयगैर्गदाख्यो निखिलैः खगैः ।
लग्नास्तगैस्तु शकटो विहगो गृहकर्मगैः ॥ ९ ॥

त्रिकोणसंस्थितैः खेटैर्योगः श्रृङ्गाटकाभिधः ।
धर्मारिकर्मगैः किंवा सहजास्तायगैर्द्विज ! ॥ १० ॥
हिबुकायुर्व्ययस्थैर्वा हलयोग उदीरितः ।
लग्नास्तगैः शुभैः खेटैरशुभैरम्बुकर्मगैः ॥ ११ ॥
वज्राख्ययोग उदितो विपरीतगतैर्यवः ।
ग्रहैस्तु सकलैः सर्वकेन्द्रगैः कमलाभिधः ॥ १२ ॥
केन्द्रतोऽपरराशिस्थैः समैर्वापीपदाभिधः ।
लग्नतुर्यास्तकर्मभ्यश्चतुःस्थानस्थितैर्ग्रहैः ॥ १३ ॥
यूपः शरः शक्तिदण्डौ क्रमाद्योगा उदीरिताः ।
लग्नात्तुर्यासप्तमाच्च दशमात् सप्तमस्थितैः ॥ १४ ॥
ग्रहैर्नौका तथा कूटच्छत्रचापाः क्रमान्मताः ।
नावाद्यैरन्यराशिभ्यः प्रवृत्तैरर्धचन्द्रकम् ॥ १५ ॥
एकान्तरगतैर्लग्नाच्चक्रं षड्राशिगैर्ग्रहैः ।
तद्वद् वित्तात् समुद्रः स्यादित्याकृतिजसंग्रहः ॥ १६ ॥

आसन्नवर्त्ती दो केन्द्र स्थानों मे सभी ग्रह हों तो गदा नामक योग, लग्न और सप्तम में सभी ग्रह हों तो शकट योग, चतुर्थ-दशम में सभी ग्रह हों तो विहग योग होता है। यदि त्रिकोण (१।५।९) संस्थित सभी ग्रह हों तो श्रृङ्गाटक योग कहलाता है। २।६।१० या ३।७।११ अथवा ४।८।१२ में सभी ग्रह हों तो हल संज्ञक योग होता है। शुभग्रह लग्न तथा तत्सप्तम में हों और पाप ग्रह चतुर्थ दशमस्थ हों वज्रयोग इसके विपरीत (लग्न-सप्तम में पापग्रह और चतुर्थ-दशम में शुभग्रह हों) यव योग होता है। सभीग्रह चारो केन्द्र में ही हों तो कमल योग, और केन्द्र से अन्य (परफण तथा आपोक्लिम) में ही सभी ग्रह हों तो वापी संज्ञक योग होता है। लग्न से चतुर्थ स्थान तक सभी ग्रह हों तो यूप योग, चतुर्थ से चार स्थानों में (सप्तम तक) सभी ग्रह हों तो शरयोग, सप्तम से चार स्थानों में (दशम तक) सभी ग्रह रहें तो शक्ति योग एवं दशम से चार स्थानों में सभी ग्रहों के रहने पर दण्ड योग होता है। लग्न से लगातार सात राशियों में सभी ग्रहों के रहने से नौका, चतुर्थ से सात राशियों में सभी ग्रहों के रहने से कूट, सप्तम से ७ राशियों में सभी ग्रहों के होने पर छत्र, और दशम से सात स्थानों में सातो ग्रहों के रहने पर चाप योग होता है। केन्द्र से भिन्न सात स्थानों में सातो ग्रह हों तो आठ प्रकार का अर्धचन्द्र योग होता है:— जैसे दूसरे से लेकर अष्टम स्थान पर्यन्त प्रत्येक स्थान में एक एक सातो ग्रह हों तो प्रथम अर्धचन्द्र। तृतीय से नवम तक एक एक कर सातो ग्रह रहें तो द्वितीय अर्धचन्द्र। इसी तरह अष्टविध अर्धचन्द्र योग समझना। लग्न से एकान्तर करके (१।३

५।७।९।११) छे स्थानों में सभी ग्रह हों तो चक्रयोग, और द्वितीय भाव से एकान्तर कर (२।४।६।८।१०।१२) स्थानों में सभी ग्रह हों तो समुद्र योग होता है उपर्युक्त बीसो योग आकृति योग नाम से व्यवहृत होते हैं ॥ ९–१६ ॥

संख्यायोगलक्षण—

एकर्क्षगैः खगैर्गोलो राशिद्वयगतैर्युगः ।
त्रिचतुर्भगतैः शूलः केदारश्च क्रमात् स्मृतः ॥ १७ ॥
एवं पञ्चर्क्षगैः पाशी दामयोगस्तु षड्भगैः ।
सप्तराशिगतैर्वीणायोगाश्चेदुदिता नहि ॥ १८ ॥

सभी ग्रह एक रशिगत हों तो गोल योग, दो राशियों में हो तो युग, त्रिराशिगत हों तो शूल योग, चार राशियों में ही हो तो केदार योग होते हैं। इसी तरह पाँच राशियों में सभी ग्रहों के होने पर पाश योग, छे राशियों में होने पर दाम योग और सात राशियों मे सातो ग्रहों के होने पर वीणा योग समझने चाहिए। परन्तु ये योग तभी होंगे यदि इनमें पूर्वोक्त योगलक्षण घटित नहीं हो पूर्वोक्त लक्षण युक्त होने पर इन योगों की स्थिति न होकर पूर्वोक्त योग ही मान्य होते हैं ॥ १७–१८ ॥

रज्ज्वादियोगफल—

अटनप्रियाः सुरूपाः परदेशस्वास्थ्यभागिनो मनुजाः ।
क्रूराः खलस्वभावा रज्जुप्रभवाः सदा कथिताः ॥ १९ ॥
मानज्ञानद्रविणैर्युक्ता नृपतिप्रियाः , ख्याताः ।
बहुपुत्राः स्थिरचित्ता मुसलसमुत्था भवन्ति नराः ॥ २० ॥
न्यूनातिरिक्तदेहा धनसञ्चयभागिनोऽतिनिपुणाश्च ।
बन्धुहिताश्च सुरूपा नलयोगे सम्प्रसूयन्ते ॥ २१ ॥
नित्यं सुखप्रधाना वाहनवस्त्रान्नभोगसम्पन्नाः ।
कान्ताः सुबहुस्त्रीका मालायां सम्प्रसूताः स्युः ॥ २२ ॥
विषमाः क्रूरा निःस्वा नित्यं दुःखार्दिताः सुदीनाश्च ।
परभक्षपाननिरताः सर्पभवा भवन्ति नराः ॥ २३ ॥
सततोद्युक्तार्थवशा यज्वानः शास्त्रगेयकुशलाश्च ।
धनकनकरत्नसम्पत्संयुक्ता मानवा गदायां तु ॥ २४ ॥
रोगार्ताः कुनखा मूर्खाः शकटाऽनुजीविनो निःस्वाः ।
मित्रस्वजनविहीनाः शकटे जाता भवन्ति नराः ॥ २५ ॥
भ्रमणरुचयो विकृष्टा दूताः सुरताऽनुजीविनो धृष्टाः ।
कलहप्रियाश्च नित्यं विहगे योगे सदा जाताः ॥ २६ ॥

रज्जुयोगोत्पन्न मनुष्य :—भ्रमण प्रेमी, देखने में सुन्दर, परदेश में स्वस्थ क्रूर तथा दुष्ट स्वभाव का होता है।

मुसलयोगोत्पन्न मनुष्य :—मानी, ज्ञानी, धनसम्पत्तियुक्त, राजप्रिय, विख्यात, अनेक पुत्रवान् तथा स्थिर बुद्धि वाला होता है। नलोत्पन्न जातक :—हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग धनसञ्चयकर्त्ता, अत्यन्त कुशल, बन्धु-बान्धव प्रेमी तथा सुन्दर होता है। मालायोगोत्पन्न मनुष्य सतत सुखी, वाहन, वस्त्र, अन्न आदि भोग्य सामग्रियों से युक्त, तथा अनेक सुन्दरी स्त्रियों से युक्त होता है।

सर्पयोगज जातक कुटिल, दुष्ट, निर्धन, सतत दुःखपीडित, दीन तथा दूसरों के ही अन्न जल पर जीवित रहता है। गदायोगोत्पन्न जातकः—सतत अर्थोद्योगरत, यज्ञ कराने वाला, शास्त्र तथा गान में प्रवीण, और धन तथा स्वर्णादि रत्नों से परिपूर्ण होता है।

शकटयोगोत्पन्न मनुष्य रोग पीडित, कुत्सित नखवाला, मूर्ख, गाड़ी चलाकर आजीविका चलाने वाला, निर्धन, मित्रवर्ग तथा आत्मीय जनों से विहीन होता है।

विहग योगज जातक भ्रमणशील, पराधीन, दूत, सुरत से जीविका वाला, ढीठ, झगड़ालू होता है॥ १९–२६॥

श्रृङ्गाटकादियोगफल—

प्रियकलहः समरसहाः सुखिनो नृपतेः प्रियाः शुभकलत्राः।
आढ्या युवतिद्वेष्याः श्रृङ्गाटकसम्भवा मनुजाः॥२७॥
बह्वाशिनो दरिद्राः कृषीवला दुःखिताः सोद्वेगाः।
बन्धुसुहृद्भिर्युक्ताः प्रेष्या हलसंज्ञके पुरुषाः॥२८॥
आद्यन्तवयः सुखिनः शूराः सुभगा निरीहाश्च।
भाग्यविहीना वज्रे जाताः खला विरुद्धाश्च॥२९॥
व्रतनियममङ्गलपरा वयसो मध्ये सुखार्थपुत्रयुताः।
दातारः स्थिरचित्ता यवयोगभवाः सदा पुरुषाः॥३०॥
विभवगुणाढ्याः पुरुषाः स्थिरायुषो विपुलकीर्त्तयः शुद्धाः।
शुभशतकाः पृथ्वीशाः कमलभवा मानवा नित्यम्॥३१॥

श्रृङ्गाटकयोगोत्पन्न मानव युद्धप्रेमी सुखी, राजवल्लभ, सुन्दर स्त्री वाला धनी, स्त्री से द्वेष करने वाला होता है।

हलयोगोत्पन्न पुरुष बहुत खाने वाला, दरिद्र, कृषक, दुःखी, उद्विग्न, बन्धु और मित्रों से युक्त, तथा दासवृत्ति का होता है। वज्रयोगज मनुष्य बाल्य काल तथा वृद्धावस्था में सुखी, शूर, देखने में सुन्दर, निरीह भाग्यरहित, दुष्ट तथा जनविरोधी होता है। यवयोगोद्भव व्यक्ति व्रत, नियम तथा माङ्गलिक कार्य में रत, अवस्था के मध्य में सुख, धन, पुत्र से युक्त, दान देने वाला, तथा स्थिर बुद्धि वाला होता है।

कमलयोगोत्पन्न मनुष्य ऐश्वर्य तथा गुणों से युक्त, दीर्घायु, विपुलकीर्ति, शुद्ध, तथा सैकड़ो सत्कर्म करने वाला राजा होता है ॥ २७–३१ ॥

वापी प्रभृति योगफल—

निधिकरणे निपुणधियः स्थिरार्थसुखसंयुताः सुतयुताश्च।
नयनसुखसम्प्रहृष्टा वापीयोगेन राजानः ॥ ३२ ॥
आत्मविदिज्यानिरतः स्त्रिया युतः सत्त्वसम्पन्नः ।
व्रतयमनियमे निरतो यूपे जातो विशिष्टश्च ॥ ३३ ॥
शरकाराः कारेशाः मृगयाधनसेविताश्च मांसादाः ।
हिंस्राः कुशिल्पकाराः शरयोगे मानवाः प्रसूयन्ते ॥ ३४ ॥
धनरहितविफलदुःखितनीचालसाश्चिरायुषः पुरुषाः ।
संग्रामबुद्धिनिपुणाः शक्त्यां जाताः स्थिराः सुभगाः ॥ ३५ ॥
हृतपुत्रदारनिःस्वाः सर्वत्र च निर्घृणाः स्वजनवाह्याः ।
दुःखितनीचप्रेष्या दण्डप्रभवा भवन्ति नराः ॥ ३६ ॥
सलिलोपजीविविभवा बह्वाशाः ख्यातकीर्त्तयो दुष्टाः ।
कृपणा मलिना लुब्धा नौसञ्जाताः खलाः पुरुषाः ॥ ३७ ॥

वापीयोगोत्पन्न मनुष्य—धन संग्रह में प्रवीण, स्थिर धन, स्थिर सुख तथा पुत्रों से युक्त, नेत्र-सुखकारी–नृत्यादिकों से प्रसन्न–राजा होता है।

यूपयोगज मनुष्य आत्मज्ञानी, यज्ञ-कार्यरत, स्त्रीयुक्त, पराक्रमी, व्रत, यम, नियम, में तत्पर, विशिष्ट पुरुष होता है। शरयोगोत्पन्न मनुष्य शर बनाने वाला, कारा के अधिप (जेलर), शिकार से धन–सम्पन्न, मांसाशी, हिंसक, तथा कुत्सितकर्म करने वाला होता है। शक्तियोगज मानव :—निर्धन, विफलताओं से दुःखित, नीच, आलसी, दीर्घायु, युद्धकुशल, स्थिर तथा सुरूपवान् होता है। दण्डोद्भव मनुष्य पुत्र स्त्री से विहीन, निर्धन, सर्वत्र निर्दय, आत्मीयजनों से बहिष्कृत, दुःखी, नीच, तथा दासवृत्तिवाला होता है। नौका योगोत्पन्न जातक जलजीवी पदार्थों या जीवों से जीविका चलानेवाला, बड़ी बड़ी आशा करनेवाला, विख्यात यश वाला, दुष्ट, कन्जूस, हृदय का मलिन, तथा लालची होता है ॥ ३२–३७ ॥

कूटादियोग फल—

अनृतकथनबन्धनपा निष्किञ्चनाः शठाः क्रूराः ।
कूटसमुत्था नित्यं भवन्ति गिरिदुर्गवासिनो मनुजाः ॥ ३८ ॥
स्वजनाश्रयो दयावान् नानानृपवल्लभः प्रकृष्टमतिः ।
प्रथमेऽन्त्ये वयसि नरः सुखवान् दीर्घायुरातपत्री स्यात् ॥३९॥

आनृतिकगुप्तपालाश्चौराः कितवाश्च कानने निरताः ।
कार्मुकयोगे जाता भाग्यविहीनाः शुभा वयोमध्ये ॥ ४० ॥
सेनापतयः सर्वे कान्तशरीरा नृपप्रिया बलिनः ।
मणिकनकभूषणयुता भवन्ति योगेऽर्धचन्द्राख्ये ॥ ४१ ॥
प्रणताऽशेषनराधिप-किरीटरत्नप्रभास्फुरितपदः ।
भवति नरेन्द्रो मनुजश्चक्रे यो जायते योगे ॥ ४२ ॥
बहुरत्नधनसमृद्धा भोगयुता धनजनप्रियाः ससुताः ।
उदधिसमुत्थाः पुरुषाः स्थिरविभवाः साधुशीलाश्च ॥ ४३ ॥

कूटयोगोत्पन्नबालक—असत्यभाषी, कारेश (जेलर), अकिञ्चन, शठ, क्रूर, पहाड़ तथा किलाओं में रहने वाला होता है। छत्र योगोत्पन्न मनुष्य अपने जनों का भरण पोषण करने वाला, दयालु राजगणप्रिय, उत्कृष्ट बुद्धि वाला आद्य तथा अन्तिम अवस्था में सुखी तथा दीर्घायु होता है। चापयोगज जातक असत्यभाषी, कारागार का अधिप, चोर, धूर्त्त, जंगल में घूमने वाला, भाग्यहीन, और अवस्था के मध्य में सौख्यपूर्ण होता है।

अर्धचन्द्र योगोत्पन्न जातक सेनापति, सुन्दर शरीर वाला, राजवल्लभ, बली, मणि, सुवर्ण तथा भूषणों से युक्त होता है। चक्रयोगोत्पन्न जातक नतमस्तक राजगण के मुकुटरत्नों की कान्ति से उज्ज्वल चरण वाला चक्रवर्त्ती राजा होता है। समुद्र योगोद्भूत जातक अनेक रत्नों से परिपूर्ण, धनसमृद्ध, भोगी, जनप्रिय, पुत्रवान्, स्थिर विभव वाला, तथा साधु स्वभाव का होता है ॥ ३८–४३ ॥

वीणादि योगफल—

प्रियगीतनृत्यवाद्या निपुणाः सुखिनश्च धनवन्तः ।
नेतारो बहुभृत्या वीणायां कीर्त्तिताः पुरुषाः ॥ ४४ ॥
दाम्नि स्यादुपकारी नयधनयुक्तो महेश्वरः ख्यातः ।
बहुसुतरत्नसमृद्धो धीरो जायेत विद्वांश्च ॥ ४५ ॥
पाशे बन्धनभाजः कार्ये दक्षाः प्रपञ्चकाराश्च ।
बहुभाषिणो विशीला बहुभृत्याः सम्प्रतानाश्च ॥ ४६ ॥
सुबहूनामुपयोज्याः कृषीवलाः सत्यवादिनः सुखिनः ।
केदारे सम्भूताश्चलस्वभावा धनैर्युक्ताः ॥ ४७ ॥
तीक्ष्णालसधनहीना हिंस्राः सुबहिष्कृता महाशूराः ।
संग्रामे कीर्त्तियुताः शूले योगे भवन्ति नराः ॥ ४८ ॥
पाखण्डवादिनो वा धनरहिता वा बहिष्कृता लोके ।

सुतमातृधर्मरहिता युगयोगे ये नरा जाताः ॥ ४९ ॥
बलसंयुक्ता विधना विद्या-विज्ञानवर्जिता मलिनाः ।
नित्यं दुःखितदीना गोले योगे भवन्ति नराः ॥ ५० ॥
सर्वास्वपि दशास्वेते भवेयुः फलदायिनः ।
प्राणिनामिति विज्ञेयाः प्रवदन्ति तवाग्रजाः ॥ ५१ ॥

वीणायोगज जातक—गीत, नृत्य तथा वाद्य का प्रेमी, कुशल, सुखी, धनी, नेता, तथा अनेक सेवक वाला होता है।

दामयोगोत्पन्न जातक—जनोपकारी, न्यायोपार्जित धन वाला, महान्-ऐश्वर्यशाली, विख्यात, अनेक पुत्र तथा रत्नों से समृद्ध, धीर तथा विद्वान् होता है।

पाशयोगोत्पन्न जातक—जेल जानेवाला, कार्य में दक्ष, प्रपञ्ची, बहुत भाषण करनेवाला, शीलरहित, अनेक सेवक वाला तथा विशाल परिवार वाला होता है।

केदारयोगज जातक—बहुतों का उपकारक, किसान, सत्यवादी, सुखी, चञ्चल स्वभाव वाला तथा धनी होता है।

शूलयोगोत्पन्न जातक—प्रखरस्वभाव, आलसी, दरिद्र, हिंसक, समाज से बहिष्कृत, शूर, तथा युद्ध में विख्यात होता है। युगयोगोत्पन्न बालक पाखण्डी, धनहीन, समाज-बहिष्कृत, और माता-पुत्र-धर्म से रहित होता है। गोलयोगज मनुष्य, बलशाली, निर्धन, विद्या-विज्ञान से रहित, हृदय का मलिन तथा सतत दुःखी होता है। उक्तयोगज फल सभी ग्रहों की दशा में (जन्मतः जीवनान्त तक) होते हैं ऐसा प्राचीनाचार्यों का मत है ॥ ४४–५१ ॥

इति सविमर्श-सुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
नाभसयोगाध्यायः समाप्तः ॥ ३६ ॥

अथ बहुविधयोगाध्यायः ॥ ३७ ॥

शुभाशुभ योगलक्षण—

पराशर उवाच—

योगौ लग्नगते सौम्येऽसौम्ये सति शुभाऽशुभौ ।
तदेवं क्रमशो योगौ सौम्याऽसौम्यैर्व्ययार्थगैः ॥ १ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !) लग्नगत शुभग्रह हों तो शुभयोग और पापग्रह हों तो अशुभयोग होता है। इसी तरह (लग्न में ग्रहाभाव रहने पर) दूसरे तथा बारहवें स्थानों में शुभग्रह के रहने पर शुभ योग और पापग्रह के होने पर पाप योग होता है ॥ १ ॥

शुभाऽशुभ योग फल—

शुभयोगोद्भवो वाग्मी रूपशीलगुणान्वितः ।
पापयोगोद्भवः कामी पापकर्मा परार्थयुक् ॥ २ ॥

शुभयोगोत्पन्न जातक—वाग्मी, सौन्दर्यशील तथा गुणयुक्त होता है और पापयोगोत्पन्न कामुक पापकर्मकारी तथा परधनापहारक होता है ॥ २ ॥

गजकेसरी योग तथा फल—

लग्नाद् वेन्दोर्गुरौ केन्द्रे सौम्यैर्युक्तेऽथवेक्षिते ।
गजकेसरियोगोऽयं न नीचास्तरिपुस्थिते ॥ ३ ॥
गजकेसरिसञ्जातस्तेजस्वी धनवान् भवेत् ।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो नरः ॥ ४ ॥

लग्न या चन्द्रमा से केन्द्रस्थान (१।४।७।१०) में गुरु शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट हों और ये नीच स्थान, अस्तङ्गत या षष्ठस्थ नहीं हों तो गजकेसरी योग होता है । उसमें उत्पन्न जातक तेजस्वी, धनी, मेधावी, गुणी, तथा राजवल्लभ होता है ॥३–४॥

सफल अमलकीर्तियोग—

लग्नादथेन्दुस्थानाद् वा दशमे शुभसंयुते ।
योगोऽयममला नाम कीर्त्तिराचन्द्रतारकी ॥ ५ ॥
राजपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः ।
परोपकारी गुणवानमला-योगसम्भवः ॥ ६ ॥

लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान शुभग्रह मात्र से युक्त हो तो अमलकीर्ति योग होता है । इसमें उत्पन्न जातक राजपूज्य, भोगेन्द्र, दानी, बन्धुजनप्रिय, परोपकारी तथा गुणवान् होता है ॥ ५–६ ॥

सफल पर्वतयोग—

सौम्ययुक्ते रिपौ रन्ध्रे किंवा ग्रहविवर्जिते ।
ससद्ग्रहेषु केन्द्रेषु पर्वतो योग ईरितः ॥ ७ ॥
यशस्तेजो भाग्ययुक्तो दानी वक्ता विनोदवान् ।
पुरनेता शास्त्रवेत्ता कामी स्यात् पर्वतोद्भवः ॥ ८ ॥

षष्ठाष्टम स्थान ग्रहरहित या शुभग्रहयुक्त हो और केन्द्रस्थान शुभग्रहयुत हो तो पर्वतयोग होता है । पर्वतयोगोत्पन्न जातक यशस्वी, तेजस्वी, भाग्यवान्, दानी, वक्ता, विनोदी, पुरनायक, शास्त्रवेत्ता तथा कामी होता है ॥ ७–८ ॥

सफल काहलयोग—

अन्योन्यकेन्द्रगौ जीवसुखेशौ, सबलेऽङ्गपे ।
स्वक्षोंच्चगे सकर्मेशे सुखेशे वा तु काहलः ॥ ९ ॥

ओजस्वी साहसी मूर्खश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
यत्-किञ्चिद्-ग्रामनाथश्च जातः स्यात् काहलोद्भवः ॥ १० ॥

गुरु तथा सुखेश परस्पर केन्द्रगत हों, लग्नेश प्रबल हो, अथवा दशमेश सहित सुखेश स्वभवन या स्वोच्चस्थ हों तो भी काहल योग होता है। काहलयोगोत्पन्न बालक तेजस्वी, साहसी, मूर्ख, चतुरङ्ग सैनिकों से युक्त कतिपय ग्रामों का स्वामी होता है ॥ ९–१० ॥

सफल चामरयोग—

उच्चगे लग्नपे केन्द्रे चामरो जीववीक्षिते ।
सौम्यद्वयान्विते लग्ने व्योम्नि भाग्येऽथवा मदे ॥ ११ ॥
दीर्घायुर्विबुधो भूपो भूपवन्द्योऽथवा नरः ।
वक्ताऽनेककलाभिज्ञो जातश्चामरयोगजः ॥ १२ ॥

उच्चस्थित लग्नेश यदि केन्द्रगत हो और गुरु से देखे जायँ तो, अथवा दो शुभग्रह लग्न, नवम, दशम, या सप्तम भावगत हों तो भी चामर योग होता है। चामरयोगज बालक राजा या राजवन्द्य, वक्ता तथा अनेक कलाओं का जानकार होता है ॥ ११–१२ ॥

सफल शङ्खयोग—

अन्योन्यकेन्द्रगौ सूनुशत्रुपौ सबलेऽङ्गपे ।
किंवा चरेऽङ्गकर्मेशे शङ्खः प्रबलभाग्यपे ॥ १३ ॥
दयावान् सुकृती विद्वान् सुतवित्तकलत्रवान् ।
दीर्घायुश्च शुभाचारः शङ्खे जातः प्रजायते ॥ १४ ॥

पञ्चमेश, षष्ठेश परस्पर केन्द्रगत हों, लग्नेश सबल हो या लग्नेश, दशमेश चरराशिस्थ हों तथा भाग्येश प्रबल हों तो शंखयोग होता है। शंखयोगोत्पन्न जातक दयालु, पुण्यवान् , विद्वान् , पुत्र, धन, स्त्री से युक्त, दीर्घायु, तथा शुभ आचरण वाला होता है ॥ १३–१४ ॥

सफल भेरीयोग—

धनान्त्यसप्तमाङ्गस्थैः खेटैर्बलिनि भाग्यपे ।
भेरी वा प्रबले तस्मिन् केन्द्रेऽङ्गेशेज्यभार्गवैः ॥ १५ ॥
सद्वृत्तः सुखभोगाढ्यो दारार्थसुतकीर्तिमान् ।
नृपतिः सद्गुणोपेतो भेरीयोगोद्भवो भवेत् ॥ १६ ॥

भाग्येश प्रबल हो और सभी ग्रह लग्न, द्वितीय, सप्तम, द्वादश स्थानों में हों या प्रबलभाग्येश रहें और केन्द्र में लग्नेश गुरु तथा शुक्र हों तो दोनों स्थितियों में भेरी

योग होता है । भेरीयोगोत्पन्न जातक सद्‌व्यवहारयुक्त, सुखभोगों से पूर्ण, स्त्री, पुत्र धन, यश, तथा सद्‌गुणवान् राजा होता है ॥ १५–१६ ॥

सफल मृदङ्गादि योग—

स्वर्क्षोच्चस्था ग्रहाः केन्द्रकोणगाः सबलेऽङ्गपे ।
मृदङ्गस्तत्र जातस्तु राजा वा राजसन्निभः ॥ १७ ॥
मदेशे व्योमगे तूच्चे सभाग्येशेऽपि कर्मपे ।
श्रीनाथयोगो जातोऽत्र राजा स्यादिन्द्रसन्निभः ॥ १८ ॥
पुत्रस्थे व्योमपे केन्द्रे विदीने बलिनि स्वभे ।
इन्दोर्विदिज्ये वा कोणे भवे भौमे तु शारदः ॥ १९ ॥
राजमान्यो बुधः सौख्यतपोधर्मसमन्वितः ।
दारातनयवित्ताढ्यः भवेत् शारदसम्भवः ॥ २० ॥

लग्नेश प्रबल हों और सभी ग्रह अपने भवन या उच्चस्थ होकर केन्द्र या कोण में हों तो मृदंग योग होता है । उसमें उत्पन्न जातक राजा अथवा राजसदृश होता है । उच्चस्थ जायेश कर्मस्थानगत हो, भाग्येश कर्मेश का संयोग हो तो श्रीनाथयोग होता है । इस योग में उत्पन्न बालक इन्द्र सदृश राजा होता है । कर्मेश पञ्चमस्थ हो, बली बुध सूर्य स्वक्षेत्री होकर केन्द्रस्थ हों, अथवा चन्द्रमा से नवम पञ्चम में बुध या गुरु और एकादश में भौम हो तो शारद योग होता है । शारद योगोत्पन्न जातक राजमान्य, विद्वान्, सुख-तप-धर्म से युक्त, तथा स्त्री-पुत्र-धनपूर्ण होता है ॥ १७–२० ॥

सफल मत्स्ययोग—

शुभे लग्नतपःसंस्थे शुभाशुभयुते सुते ।
क्रूरे च तुर्यरन्ध्रस्थे मत्स्ययोगः प्रकीर्त्तितः ॥ २१ ॥
दयालुः कालविद् विद्वान् बुद्धिरूपगुणान्वितः ।
यशोवलतपोयुक्तो मत्स्ययोगोद्भवो भवेत् ॥ २२ ॥

लग्न तथा नवम में शुभग्रह, पञ्चम में शुभ तथा पाप और चतुर्थ अष्टम में पाप ग्रह हों तो मत्स्ययोग होता है । मत्स्ययोगोत्पन्न जातक दयालु, कालवेत्ता, विद्वान्, सौन्दर्य, बुद्धि तथा गुणों से युक्त एवं यश, बल, तपस्या से परिपूर्ण होता है ॥ २१–२२ ॥

सफल कूर्मयोग

शुभाः सुतरिपुस्त्रीगा मित्रोच्चस्वगृहांशगाः ।
क्रूरास्त्र्यायागाः स्वर्क्षतुङ्गगाः कूर्मसंज्ञकः ॥ २३ ॥

योगेऽत्र जातो गुणवान् सुखितः कीर्तिधर्मयुक् ।
उपकारपरो धीरो राजा वा जननायकः ॥ २४ ॥

मित्रगृह उच्च या स्वक्षेत्र स्वनवांश में प्राप्त शुभग्रह पञ्चम, षष्ठ या सप्तम में हों, पापग्रह (३।११।१) में स्वराशि या उच्च के हों तो कूर्म संज्ञक योग होता है। कूर्मयोगज जातक गुणी, सुखी, यशस्वी तथा धर्मिष्ठ होता है। वह जनोपकार करने वाला जननायक अथवा राजा होता है ॥ २३–२४ ॥

खड्गयोग—

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यगेहगे ।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोग उदीरितः ॥ २५ ॥
खड्गयोगोद्भवो जातो बुद्धिवीर्यसुखार्थवान् ।
शास्त्रवेत्ता कृतज्ञश्च निपुणो जायते जनः ॥ २६ ॥

भाग्येश धनस्थ और धनेश भाग्यस्थ हो, और लग्नेश केन्द्र (१।४।७।१०) या (९।५) में स्थित हों तो खड्ग योग होता है। इस योग में उत्पन्न बालक बुद्धि-बल-सुख-धन से परिपूर्ण, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ तथा कार्यकुशल होता है ॥२५–२६ ॥

सफल लक्ष्मीयोग—

सबले लग्नपे भाग्यनाथे स्वर्क्षोच्चगेऽथवा ।
मूलत्रिकोणगे केन्द्रे लक्ष्मीयोगः प्रजायते ॥ २७ ॥
लक्ष्मीयोगोद्भवो जातो रूपधर्मधनैर्युतः ।
गुणकीर्तिवृतो भूपोऽनेकसूनुसमन्वितः ॥ २८ ॥

लग्नेश प्रबल हो, भाग्येश स्वभवन, स्वोच्च या मूलत्रिकोणस्थ होकर केन्द्रगत हो तो लक्ष्मीयोग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक सुन्दर, धर्मिष्ठ, धनी, गुणी, यशस्वी राजा तथा अनेक पुत्रों से परिपूर्ण होता है ॥ २७–२८ ॥

सफल कुसुमयोग—

स्थिरलग्ने भृगौ केन्द्रे सशुभे कोणगे विधौ ।
कर्मगे भानुतनये योगः कुसुमनामकः ॥ २९ ॥
तत्रोत्पन्नो भवेद्राजा तत्समो वा सुखान्वितः ।
वदान्यो गुणभोगाढ्यो बुधः ख्यातोऽन्वये भवेत् ॥ ३० ॥

स्थिर लग्न हो, शुक्र केन्द्रगत हों, शुभग्रहयुक्त चन्द्रमा नवम या पञ्चम में हों शनि दशमस्थ हों तो कुसुम योग होता है। कुसुमयोगोत्पन्न जातक सर्वसौख्य—सम्पन्न राजा या राजसदृश विद्वान्, गुणी, भोगेन्द्र एवं वंशख्यातहोता है ॥ २९–३० ॥

सफल कलानिधि योग—

द्वितीये पञ्चमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते ।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः स्यात् स कलानिधिः ॥ ३१ ॥
विद्यार्थगुणसम्पन्नः सुखितो राजपूजितः ।
नीरुजो निर्भयः कामी कलानिधिसमुद्भवः ॥ ३२ ॥

द्वितीय या पञ्चम में स्थित गुरु, बुध शुक्र से युत या दृष्ट हो, अथवा गुरु, बुध-शुक्र क्षेत्र (मिथुन कन्या वृष तुला) में स्थित हों तो कलानिधियोग होता है। इस योग में उत्पन्न बालक विद्या, धन, गुण से युक्त, सुखी, राजमान्य, नीरोग, निर्भय तथा कामुक होता है ॥ ३१–३२ ॥

सफल पारिजात योग—

अङ्गेशतत्स्थराशीश-तत्स्थभेशतदंशपाः ।
स्वोच्चे केन्द्रे त्रिकोणे वा पारिजातः प्रकीर्त्तितः ॥ ३३ ॥
तत्र जातो भवेद्धर्म-सर्वैश्वर्यबलान्वितः ।
नृपतिः समरप्रेमी दयार्द्रहृदयः सदा ॥ ३४ ॥

लग्नेश जिस राशि में उसका अधिप, फिर वह (अधिप) जिस राशिगत हो उसका स्वामी और उनके नवांशेश यदि उच्च में केन्द्र या त्रिकोण में हों तो पारिजात योग होता है। पारिजातयोगोत्पन्न जातक सर्वविध ऐश्यर्य युक्त, बली, दयालु तथा युद्धप्रेमी होता है ॥ ३३–३४ ॥

उदाहरण—जैसे मेषलग्नेश मङ्गल कर्कस्थ है, कर्कराशीशचन्द्र अपने उच्च वृष में है, वृषेश शुक्र केन्द्रस्थ है, वृष राशि में गुरु का नवांश है और नवांशेश गुरु भी त्रिकोण (नवम) स्थ है तो दोनों प्रकार से पारिजात योग प्राप्त है ॥ ३३–३४ ॥

सफल हरि-हर-ब्रह्मयोग—

हरियोगोऽर्थरन्ध्रान्त्यगतैरर्थेशतः शुभैः ।
हरयोगस्तु जायेशात् सुखभाग्याष्टगैश्च तैः ॥ ३५ ॥
ब्रह्माभिधस्तु तनुपात् सुखव्योमभवस्थितैः ।
एतेषु च समुत्पन्नः सुखविद्यासुतार्थवान् ॥ ३६ ॥

धनेश से दूसरे आठवें बारहवें स्थानों में शुभग्रह हों तो हरियोग, सप्तमेश से ४।९।८ स्थानों में वे हों तो हरयोग तथा लग्नेश से ४।१०।११ स्थानों में शुभग्रह हों तो ब्रह्मयोग होता है। इन योगों में उत्पन्न बालक सुखी, विद्वान् धनी तथा पुत्रवान् होता है ॥ ३५–३६ ॥

लग्नाधियोग—

शुभैस्तनोः कामरन्ध्रगतै र्दृग्युतिवर्जितैः ।
पापानां, तर्हि लग्नाधियोगस्तज्जः सुखी सुधीः ॥ ३७ ॥

लग्न से ७।८ में शुभग्रह हो पापग्रहों की दृष्टि योग उन पर नहीं हो तो लग्नाधियोग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक सुखी तथा विद्वान् होता है ॥३७॥

पारिजातादिगत लग्नेश का फल—

पारिजातगते लग्नपतौ जातः सुखान्वितः।
वर्गोत्तमस्थे नीरोगो गोपुरस्थे धनी मतः ॥ ३८ ॥
सिंहासनस्थिते राजा विद्वान् पारावताश्रिते।
ऐरावते राजवन्द्यो देवलोके सुयानवान् ॥ ३९ ॥

लग्नेश पारिजातवर्गस्थ हो तो जातक सुखी होता है। वर्गोत्तमस्थ हो तो रोग रहित, गोपुर में धनधान्यपूर्ण, सिंहासन में राजा, पारावत में विद्वान्, ऐरावत में राजवन्द्य, और देवलोक में सुवाहन वाला होता है ॥ ३८–३९ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
बहुविधयोगाध्यायः समाप्तः ॥ ३७ ॥

अथ चन्द्रयोगाध्यायः ॥ ३८ ॥

चन्द्रयोग फल—

पराशर उवाच—

सहस्ररश्मितश्चन्द्रे कण्टकादिगते सति।
न्यूनमध्यवरिष्ठानि धनधीनैपुणानि हि ॥ १ ॥

पराशरने कहा (हे मैत्रेय !) सूर्य से चन्द्रमा केन्द्र परफण आपोक्लिम में हों तो जातक को सम्पत्ति, बुद्धि तथा नैपुण्य अल्प, मध्य तथा उत्कृष्ट मात्रा में होवे। सूर्य से चन्द्र १।४।७।१० में हों तो उपर्युक्त धनादि अल्प मात्रा में, २।५।८।११ में हों तो मध्यम रूप में, और ३।६।९।१२ में हों तो उत्तम रूप में होते हैं ॥ १ ॥

धनाधन योग—

स्वांशेऽधिमित्रस्यांशे वा स्थितेऽथ दिवसे शशी।
गुरुणा दृश्यते तत्र जातो वित्तसुखान्वितः ॥ २ ॥
स्वांशेऽधिमित्रस्यांशे वा स्थिते रात्रौ निशाकरः।
भृगुणा वीक्षितस्तर्हि सुखितो धनिको नरः ॥ ३ ॥
विपरीते त्वतो जीवभृगुभ्यामवलोकिते।
जातोऽत्र योगजः स्वल्पवित्तो वा निःस्व एव हि ॥ ४ ॥

दिन में जन्म होने पर चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश में स्थित हो और गुरु की दृष्टि भी चन्द्र पर हो तो जातक धन तथा सौख्य से परिपूर्ण होता है। वही

चन्द्र रात्रि में जन्म होने पर, अपने या अपने अधिमित्र के नवांशगत होकर शुक्र से दृष्ट हो तो भी मनुष्य सुखी तथा धनी होता है इसके विपरीत और गुरु शुक्र के दृष्टथभाव में जातक अल्पधन अथवा निर्धन होता है ॥ २–४ ॥

अधियोग—

इन्दोः षष्ठाष्टमदगैरधियोगः शुभग्रहैः ।
बलानुसारतस्तत्र नृपोऽमात्यो बलाधिपः ॥ ५ ॥

चन्द्रमा से ६।७।८ स्थानों में शुभग्रह हों तो अधियोग होता है । उसमें उत्पन्न जातक ग्रहों के बलानुसार राजा, मन्त्री या सेनापति होता है ॥ ५ ॥

धनयोग

चन्द्राद् वृद्धिगतैः सौम्यैर्निखिलैस्तु महाधनी ।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमानेकेन परिकीर्त्तितः ॥ ६ ॥

चन्द्रमा से वृद्धि (उपचय ३।६।१०।११) स्थानगत सभी शुभग्रह हों तो जातक पूर्ण धनी, दो शुभग्रह हों तो मध्यमधन वाला और एक शुभग्रह हो तो अल्पधन वाला होता है ॥ ६ ॥

सुनफाऽनफादुरुधरायोग—

रविं विना विधोर्वित्तरिष्फोभयगतैर्ग्रहैः ।
सुनफाचानफायोगः क्रमाद् दुरुधराभिधः ॥ ७ ॥

चन्द्रमा से द्वितीय, द्वादश या उभयगत सूर्यातिरिक्त ग्रहों के द्वारा क्रमशः सुनफा, धनफा, दुरुधरा योग होते हैं । अर्थात् चन्द्रमा से दूसरे में सूर्यातिरिक्त ग्रह हों तो सुनफा, १२ वें में (सूर्यातिरिक्त) ग्रह हों तो अनफा, एवं २।१२ दोनों में (सूर्यातिरिक्त) ग्रह हों तो दुरुधरा योग होता है ।

बराहमिहिर ने भी—'रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगैः सुनफा । उभयस्थितै र्दुरुधरा' कहा है ॥ ७ ॥

सुनफाऽनफादियोगों का फल—

भूपो भूपसमो वापि मतिवित्तप्रसिद्धिमान् ।
सुनफायोगजो जातः स्वबाहुबलवित्तवान् ॥ ८ ॥
नृपो नीरुक् सुशीलश्च यशस्वी लोकविश्रुतः ।
सुभगस्त्वनफोद्भूतो नानाविधसुखान्वितः ॥ ९ ॥
सद्वित्तवाहनयुतो दानशीलश्च सौख्यभाक् ।
सदासो हतशत्रुश्च सदा दुरुधरोद्भवः ॥ १० ॥

सुनफायोगोत्पन्न जातक राजा या राजसदृश, मतिमान्, धनी, विख्यात, तथा स्वबाहुबलोपार्जित वित्त वाला होता है । अनफा योगज बालक राजा, नीरोग, सुशील,

यशस्वी, लोकविख्यात, सुन्दर तथा अनेकविधसौख्यपूर्ण होता है। दुरुधरोत्पन्न मनुष्य धनी, यानवान्, दानी, सुखी, नौकरों से युक्त, तथा हतशत्रु होता है ॥ ८–१० ॥

केमद्रुमयोग—

रविं विनेन्दुतः कश्चिद् ग्रहो नैवार्थरिष्फगः।
केमद्रुमाभिधो योगः केन्द्रे ग्रहयुते न सः ॥ ११ ॥
तत्र जातो भवदेव विद्याहीनोऽतिनिन्दितः।
निःस्वो नानापत्तियुक्तो मानवो मतिवर्जितः ॥ १२ ॥

सूर्यातिरिक्त कोई ग्रह चन्द्र से २।१२ में नहीं हो, और लग्न से भी केन्द्रस्थानों में कोई ग्रह नहीं हो तो केमद्रुम योग होता है। केमद्रुम योगोत्पन्न जातक विद्या-बुद्धि-विहीन, निर्धन, नानापत्तियुक्त तथा निन्दित होता है ॥ ११–१२ ॥

विमर्शः—सुनफा अनफा दुरुधरा केमद्रुम ये चार योग सभी जातक ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं। बृहज्जातककार वराहमिहिर ने "हित्वार्कं सुनफाऽनफा दुरुधरा स्वान्त्योभयस्थै ग्रहैःशीतांशोः कथितोऽन्यथातु बलिभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ। केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमोनेष्यते" चारो योगों का लक्षण तथा केमद्रुम का भङ्ग भी दर्शाया है। अर्थात् चन्द्रमा से दूसरे स्थान में सूर्यातिरिक्त एक वा एकाधिक ग्रह रहें तो सुनफा, चन्द्रमा से द्वादशस्थानगत सूर्यातिरिक्त एक वा एकाधिक ग्रह के रहने पर अनफा, चन्द्रमा के दोनों पार्श्व में (२।१२) स्थानों में ग्रहस्थिति से दुरुधरा और उपर्युक्त योगत्रयाभाव में अर्थात् चन्द्रमा से दोनों स्थानों में ग्रहाभाव रहने से केमद्रुम योग कहा गया है। चन्द्रमा से दूसरे या बारहवें स्थान का सूर्य योगकारक नहीं होते हैं। इस प्रकार भौमादि पाँच ग्रहों के द्वारा सुनफा तथा अनफा के ३१ भेद दुरुधरा योग के १८० भेद होते हैं। "त्रिंशत्सरूपाः सुनफानफाख्याः षष्टित्रयं दौरुधरे प्रभेदाः" वाराहमिहिर ने कहा है।

सुनफा, अनफा, दुरुधरा योगों का फल अच्छा है। केमद्रुम का फल अच्छा नहीं है। केमद्रुम योगोत्पन्न जातक दरिद्र होता है और उसके राजयोग भी विनष्ट हो जाते हैं—"योगे केमद्रुमे प्राप्ते यस्मिन् कस्मिंश्च जातके। राजयोगा विनश्यन्ति हरिं दृष्ट्वा यथा द्विपाः" किन्तु केमद्रुम योग के भंग भी अनेक हैं। केमद्रुम योग होने पर भी यदि चन्द्रमा या शुक्र केन्द्रगत होकर गुरु दृष्ट हो तो केमद्रुम योग नहीं होता है। चन्द्रमा शुभग्रहयुक्त हो या शुभग्रहों के मध्यस्थ होकर जीवदृष्ट हो तो भी केमद्रुम नहीं कहना चाहिए।

चन्द्रमा अधिमित्रक्षेत्र में अपनी उच्चराशि में, अपने गृह या नवांश में हों और गुरु उसे देखता हो तो भी केमद्रुम का भंग कहना चाहिए। पूर्णचन्द्र लग्नस्थ हो और शुभग्रह से युक्त हो या दशवें भाव में वह उच्च का हो और गुरु उसे देखता हो तो भी केमद्रुम भंग कहना चाहिए।

इस प्रकार केमद्रुमापवाद को देखकर ही केमद्रुम का फलादेश करना श्रेयस्कर है।

चन्द्रयोग की महत्ता—

चन्द्रयोगो निरस्यान्ययोगजातं फलं स्वकम् ।
प्रयच्छति विशेषेण वेद्यमेतद् बुधैः सदा ॥ १३ ॥

चन्द्रयोग की विशेषता है कि अन्ययोगज फल को हटाकर चन्द्रयोग अपना फल विशेषरूप से देता है ॥ १३ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
चन्द्रयोगाध्यायः समाप्तः ॥ ३८ ॥

अथ रवियोगाध्यायः ॥ ३९ ॥

वेशि-वोशि उभयचर योग—

पराशर उवाच—

विनेन्दुं रवितो वित्त-रिष्फोभयगतैर्ग्रहैः ।
वेशि-वोशी क्रमाद्योगौ तथोभयचरो मतः ॥ १ ॥

पराशरने कहा (हे मैत्रेय !) सूर्य से द्वितीय स्थानगत चन्द्रातिरिक्त ग्रहों के रहने से वेशियोग, द्वादशस्थानगत चन्द्रातिरिक्त ग्रहों के होने से वोशि योग और द्वितीय द्वादश दोनों में कुजादि ग्रहों के रहने से उभयचर योग होता है १ ॥

वेशि-वोशि-तथोभयचर-योगफल—

वेशियोगोद्भवो जातः सत्यवादी सदालसः ।
समदर्शी सुखी स्वल्पधनो दीर्घवपुः पुमान् ॥ २ ॥
दक्षो दानी बली विद्वान् यशस्वी वोशिसम्भवः ।
सदोभयचरे सौख्ययुङ् नृपस्तादृशोऽथवा ॥ ३ ॥
योगे सत्खेटजे त्वेवं फलं ज्ञेयं विपश्चिता ।
असत्खगसमुद्भूते विपरीतं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥

वेशियोगोत्पन्न बालक सत्यवादी, सतत आलसी, समदर्शी, सुखी, स्वल्पधनी, तथा लम्बा शरीर वाला होता है। वोशियोगज जातक कुशल, दानशील, बली, विद्वान्, कीर्त्तिमान् होता है। उभयचरोत्पन्न को सौख्यपूर्ण-राजा या राजसदृश व्यक्ति कहना चाहिए। उपर्युक्त फल शुभग्रहज योग में कहें, पापज योग में विपरीत फलादेश (अशुभ) कहना ॥ २–४ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
रवियोगाध्यायः समाप्तः ॥ ३९ ॥

अथ राजयोगाध्यायः ॥ ४० ॥

राज-योग—

पराशर उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राजयोगान् द्विजोत्तम ।
येषां विज्ञानमात्रेण नृपपूज्यो जनो भवेत् ॥ १ ॥
पुरा पुरारिणा योगा उक्ता ये शैलजाग्रतः ।
तेषां सारमहं वक्ष्ये तवाग्रे द्विजनन्दन ! ॥ २ ॥
कारकांशेऽथवा जन्मलग्ने द्विज विचिन्तयेत् ।
द्वौ द्वौ स्पष्टग्रहौ यत्नाद्राजयोगविधायकौ ॥ ३ ॥
आत्मकारकपुत्राभ्यां योगमेकं प्रकल्पयेत् ।
तनुपञ्चमनाथाभ्यां तथैव द्विजसत्तम ! ॥ ४ ॥
तनुस्तनुपयोरात्मस्तनुकारकयोर्मिथः ।
सम्बन्धतो वीर्यतश्च पूर्णोऽर्धोऽङ्घ्रिरयं सदा ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! (मैत्रेय !) अब मैं राजयोगों को बतलाऊँगा जिनके ज्ञानमात्र से मनुष्य राजवन्द्य हो जाता है। पहले भगवान् शङ्कर ने पार्वती के समक्ष जो कहा उसी का सार आपके सामने रखता हूँ (सुनो) कारकांश तथा जन्मलग्न दोनों से राजयोग कारक दो-दो स्फुट ग्रहों से योग का विचार करें। एक आत्मकारक तथा पुत्रकारक से और दूसरा योग लग्नेश तथा पञ्चमेश से। इनके परस्पर सम्बन्ध तथा बल के अनुसार ही सम्पूर्ण, आधा, या चतुर्थांश योग समझें ॥ १–५ ॥

महाराज-योग—

पुत्रभावस्थिते लग्नाधीशे लग्ने सुताधिपे ।
तनौ वा सुतभावे वा स्वर्क्षे स्वांशे स्वतुङ्गभे ॥ ६ ॥
आत्मजात्माभिधौ स्यातां कारकौ शुभवीक्षितौ ।
महाराजाभिधो योगस्तत्रजो विश्रुतः सुखी ॥ ७ ॥
कारकौ भाग्यनाथश्च तनुपुत्रकलत्रभे ।
सौम्यग्रहेक्षितयुतौ राजभोगप्रदौ मतौ ॥ ८ ॥
कारकाल्लग्नपाद्वापि वित्ते पुत्रेऽथवा सुखे ।
सौम्यग्रहान्विते बालो नृपतिः स्यान्न संशयः ॥ ९ ॥

क्रूरग्रहेक्षितयुते विक्रमे रिपुभे ततः।
जातको नृपतिर्मिश्रे जायते धनसंयुतः ॥ १० ॥

लग्नेश पञ्चमभावस्थ और पञ्चमेश लग्नस्थ हो, आत्मकारक तथा पुत्रकारक ग्रह-लग्न, पञ्चम, स्वक्षेत्र स्वनवांश या अपने उच्च में स्थिर होकर शुभग्रह से दृष्ट हों तो महाराजाख्य योग है, उसमें उत्पन्न बालक विख्यात तथा सुखी होता है। भाग्येश तथा आत्मकारकग्रह लग्न पञ्चम सप्तम में स्थित होकर शुभग्रहों से दृष्ट हों तो राजयोगकारक होते हैं। कारक या लग्नेश से २।५।४ स्थान शुभग्रह युक्त हों तो बालक निःसन्देह राजा होता है। उन (कारक, लग्नेश) से ३।६ स्थान केवल पापग्रह से युत या दृष्ट हों तो जातक राजा होवे शुभ पाप दोनों से युत दृष्ट होने पर मिश्रफल (धनी) कहना चाहिए ॥ ६–१० ॥

अन्यराजयोग—

सिते स्वांशेऽथवा तस्मात् सुते गुर्विन्दुदृग्युते।
तनौ तनुपदे वापि राजवर्गो भवेन्नरः ॥ ११ ॥
जन्माङ्गेऽपि च होराङ्गे कलाङ्गे येन केनचित्।
वीक्षिते त्वेकखेटेन योगेषु त्रिषु भूपतिः ॥ १२ ॥

कारकांश या उससे पञ्चम में स्थित शुक्र पर गुरु चन्द्र की दृष्टि या योग हो या लग्न या लग्नपदस्थ शुक्र पर गुरु चन्द्र की युति या दृष्टि हो, दोनों स्थितियों में जातक राजवर्गीय (राजसम्बद्ध या राजा ही) होता है। जन्मलग्न, होरालग्न या घटीलग्न पर किसी एक ग्रह की दृष्टि हो तो जातक राजा होता है ॥ ११–१२ ॥

एकग्रहेक्षितयुते लग्नषड्वर्गके नृणाम्।
नियतं राजयोगः स्यात् फलं दृष्ट्यनुसारतः ॥ १३ ॥
पूर्णदृष्ट्या पूर्णयोगोऽर्धदृष्ट्या तु तदर्धकः।
पाददृष्ट्या पादयोगो विज्ञेयः क्रमतो बुधैः ॥ १४ ॥

लग्न से षड्वर्ग (गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश) यदि एक ही ग्रह से युत या दृष्ट हो तो भी राजयोग होता है। वह राजयोग दृष्ट्यनुसार फलप्रद होता है—पूर्ण दृष्टि रहने पर पूर्ण योग, आधी दृष्टि से आधायोग और पाददृष्टि से चतुर्थांशयोग समझना चाहिए ॥ १३–१४ ॥

स्वर्क्षोच्चगे ग्रहे लग्नत्रितये नृपतिर्भवेत्।
तनावंशे दृकाणे वा तथाभूते ग्रहेऽपि च ॥ १५ ॥
सेन्दुसद्ग्रहसंयुक्ते पदे जीवे तु वित्तगे।
असंशयं राजयोगः स्वतुङ्गस्थग्रहेक्षिते ॥ १६ ॥

लग्न त्रितय (जन्मलग्न, होरालग्न, घटीलग्न) में स्वराशिस्थ या स्वोच्चस्थ ग्रह

हो अथवा लग्न, द्रेष्काण या लग्न के नवांश इन तीनों में उच्च का ग्रह हो तो जातक राजा होता है। पद सचन्द्रशुभग्रह युक्त हो, धन स्थान भी गुरुपूर्ण हो, और उस पर उच्चस्थ ग्रह की दृष्टि हो तो निःसन्दिग्ध जातक राजा होता है ॥ १५–१६ ॥

शुभे लग्ने शुभे त्वर्थे तृतीये पापखेचरे।
चतुर्थे तु शुभे प्राप्ते राजा वा तत्समोऽपि वा ॥ १७ ॥
स्वोच्चगो हरिणाङ्को वा जीवो वा शुक्र एव वा।
सौम्यो बली धनगतः श्रियं दिशति देहिनः ॥ १८ ॥
षष्ठेऽष्टमे तृतीये वा नीचस्थानस्थिता ग्रहाः।
स्वर्क्षोच्चगोऽङ्गपो लग्नमीक्षते राजयोगकृत् ॥ १९ ॥
रिपुरन्ध्रान्त्यपा अस्ता नीचे वा शत्रुभे स्थिताः।
स्वर्क्षस्वतुङ्गगोऽङ्गेशो राज्यदो लग्नदर्शकः ॥ २० ॥
स्वर्क्षतुंगस्थकर्मेशः राज्यदोलग्नवीक्षकः।
सद्ग्रहाः केन्द्रगाश्चापि नियतं राज्यदायकाः ॥ २१ ॥

लग्न, धन तथा चतुर्थ भाव शुभग्रह युक्त हो, तृतीय स्थान पापग्रह क्रान्त हो तो जातक राजा या तत्सदृश होता है। चन्द्रमा गुरु, शुक्र या प्रबल बुध में से एक भी स्वोच्चस्थ होकर धनभावगत हो तो भी जातक लक्ष्मीवान्, होता है: नीच के ग्रह षष्ठ, अष्टम या तृतीय स्थानगत हो, अपने क्षेत्र या अपने उच्च का लग्नेश लग्न को देखता हो तो भी राजयोगयुक्त जातक होता है। ६।८।१२ के स्वामी—अस्तंगत, नीचप्राप्त या शुभग्रहगत हों, और स्वभवन या स्वोच्च का लग्नेश लग्न को देखता हो तो भी राजयोग होता है। स्वभवन या अपने उच्च का राज्येश यदि लग्न को देखे, या सभी शुभग्रह केन्द्रगत हों तो जातक निश्चयतः राज-योग भागी होता है ॥ १७–२१ ॥

कारकः सौम्यराशौ वा सौम्यांशे धनकारकः।
सौम्ये तदंशतः केन्द्रगते जायेत भूपतिः ॥ २२ ॥
अन्योन्यं केन्द्रगं लग्नपरं जायापदं यदा।
त्र्याये कोणेऽथवा तर्हि भूपो भवति निश्चितम् ॥ २३ ॥
भावहोराकला-लग्ने द्वयं त्रितयमेव वा।
पश्येत् स्वतुङ्गगः खेटो राजयोगप्रदायकः ॥ २४ ॥
राशेर्द्रेष्काणतोंऽशाच्च राशेरंशादथापि वा।
यद्वा राशिदृकाणाभ्यां लग्नदर्शी तु योगदः ॥ २५ ॥

आरूढे सौम्यखेटे तु चद्राक्रान्ते विशेषतः।
क्रान्ते च गुरुशुक्राभ्यां केनाप्युच्चग्रहेण वा ॥ २६ ॥
दुष्टार्गलग्रहाभावे राजयोगो न संशयः।
शुभारूढे तत्र चन्द्रे धने देवगुरौ तथा ॥ २७ ॥

आत्मकारक ग्रह शुभराशि या शुभनवांशगत हों तो जातक धनी होता है। कारकांश से केन्द्रस्थान (१।४।७।१०) में शुभग्रह हो तो जातक राजा होता है। लग्न का पद और जायाभाव का पद परस्पर केन्द्रगत हो या तृतीय एकादश में या नवम पञ्चम में रहे तो जातक निश्चयतः राजा होता है। भावलग्न, होरालग्न, घटीलग्न, इनमें से दो को या तीनों को अपने उच्च का कोई ग्रह देखे तो जातक राजा होता है। उपर्युक्त तीनों लग्नों की राशि, द्रेष्काण, नवांश, अथवा राशिनवांश या राशि तथा द्रेष्काण को लग्न राशि देखे तो भी राजयोग होता है। लग्न पद किसी उच्चस्थ ग्रह चन्द्रमा और गुरु, शुक्र से युक्त हो, और दुर्ग्रह के प्रतिबन्धाभाव हो तो निश्चयतः राजयोग होता है। शुभग्रह युक्त पद में चन्द्र हो और दूसरे में गुरु हो तो भी राजयोग होता है ॥ २२–२७ ॥

षष्ठाष्टमव्ययेशास्तु नीचगा लग्नदर्शिनः।
राजयोगकरा नृणां भवन्ति नहि संशयः ॥ २८ ॥
तुर्यकर्मस्वलाभेशैर्वीक्षिते सति लग्नभे।
पदे सद्ग्रहसंयुक्ते पदादाये सितेक्षिते ॥ २९ ॥
नृपो वा नृपतुल्यो वा भवेज्जातो न संशयः।
रिपुरन्ध्रतृतीयायस्थितो नीचगतो ग्रहः ॥ ३० ॥
तनुं पश्यति वा लग्नांशतः केन्द्रगते शुभे।
क्षमादण्डप्रदो भूपो जायते नात्र संशयः ॥ ३१ ॥

त्रिकेश (षष्ठाष्टमव्ययेश) भी नीचस्थ होकर लग्न को देखें तो राजयोगकारक होते हैं। चतुर्थेश, दशमेश, धनेश तथा लग्नेश इनकी लग्न पर दृष्टि रहे, पद शुभग्रह युक्त हो और पद से एकादश स्थान पर शुक्र की दृष्टि हो तो जातक राजा या राज-सदृश होता है। ६।८।३।११ स्थानस्थित नीचगत भी ग्रह लग्न को देखता हो या लग्न के नवांश राशि से केन्द्र में शुभग्रह हो तो जातक निःसन्देह निग्रहानुग्रहकारी राजा होता है ॥ २८–३१ ॥

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि राजयोगादिकं परम्।
ग्रहाणां स्थानभेदेन फलं दृष्टयनुसारतः ॥ ३२ ॥
तपःस्थानाधिपो मन्त्री मन्त्राधीशो विशेषतः।
उभावन्योन्यसंदृष्टौ जातश्चेदिह राज्यभाक् ॥ ३३ ॥

यत्र कुत्रापि संयुक्तौ तौ वापि समसप्तगौ ।
राजवंशोद्भवो बालो राजा भवति निश्चितम् ॥ ३४ ॥
वाहनेशस्तथा माने मानेशो वाहने स्थितः ।
बुद्धिधर्माधिपाभ्यां तु दृष्टश्चेदिह राज्यभाक् ॥ ३५ ॥
सूनुव्योमसुखाङ्गेशा यदा धर्मपसंयुताः ।
दिगन्तव्याप्तयशसं नृपं कुर्वन्ति जातकम् ॥ ३६ ॥
सुखकर्माधिपौ वा तु मन्त्रिनाथेन संयुतौ ।
धर्मपेनाथवा युक्तौ जातश्चेदिह राज्यभाक् ॥ ३७ ॥
धर्मपेनाथवा लग्ननाथेन सुतपेऽन्विते ।
गते तनौ तुरीये वा व्योम्नि स्यान्नृपतिर्नरः ॥ ३८ ॥
धर्मस्थाने गुरौ याते स्वगृहे भृगुसंयुते ।
पञ्चमेशयुते किंवा जातश्चेदिह राज्यभाक् ॥ ३९ ॥
दिनार्धाच्च निशार्धाच्च परं सार्धद्विनाडिका ।
शुभा तदुद्भवो राजा किंवा तत्सदृशो भवेत् ॥ ४० ॥

(पराशर ने कहा)—अब मैं ग्रहों के स्थान-भेद तथा दृष्ट्यनुसार होनेवाले राजयोगों को बतलाऊँगा (सुनो)। नवमेश मन्त्री होता है और पञ्चमेश विशेषतः मन्त्री (मुख्यमन्त्री) होता है। दोनों में पारस्परिक दृष्टि सम्बन्ध हो तो जातक राज्याधिकारी होता है। जहां कहीं भी दोनों (नवमेश, पञ्चमेश) संयुक्त हों या एक दूसरे से (परस्पर) सप्तमस्थानगत हों तो राजवंशोत्पन्न बालक निश्चयतः राजा होता है। सुखेश (चतुर्थेश) दशमस्थ हो और दशमेश चतुर्थस्थ हो और नवमेश पञ्चमेश की उप पर दृष्टि होवे तो भी जातक राजा होता है। पञ्चमेश, दशमेश, सुखेश, और लग्नेश नवमेश, के साथ हों तो जातक विख्यात राजा होता है। चतुर्थ दशम के अधीश (सुखेश, कर्मेश) पञ्चमेश या नवमेश के साथ संयुक्त हो तो बालक राजा होता है। पञ्चमेश धर्मेश या लग्नेश के साथ १।४।१० स्थानों में से कहीं हो तो मनुष्य राजा होता है। शुक्र संयुक्त गुरु अपने भवन धर्मस्थान (नवम) में हो या पञ्चमेश से युक्त हो तो मनुष्य राजा होता है। मध्याह्न तथा मध्यरात्रि के बाद ढाई दण्ड शुभ समय होता है। इसमें उत्पन्न जातक राजा या तत्सदृश होता है ॥ ३२–४० ॥

चन्द्रः कविं कविश्चन्द्रं त्र्यायगोऽन्योन्यमीक्षितः ।
क्वापि स्थितौ मिथो दृष्टौ राजयोगकरः स्मृतः ॥ ४१ ॥
वर्गोत्तमनवांशस्थे शशाङ्के बलशालिनः ।
चतुःप्रभृतिभिः खेटैर्वीक्षिते स्यान्नृपो नरः ॥ ४२ ॥

वर्गोमांशगे लग्ने त्र्यधिकैरिन्दुवर्जितैः ।
खगैः संवीक्षिते नूनं जायते नृपतिर्नरः ॥ ४३ ॥

तृतीय एकादशस्थ चन्द्रमा और शुक्र परस्पर एक दूसरे को देखें या जहाँ कहीं भी रहकर परस्पर दृष्टि वाले दोनों हों तो राजयोगकारक होते हैं । (तृतीयैकादश में राशिदृष्टिवश परस्पर दृष्टि समझनी चाहिये) । चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांशस्थ होकर चतुः-पञ्चादि (४ या ५) ग्रहों से देखें जाँय तो भी राजयोग होता है । लग्न वर्गोत्तमनवांशगत हो, और चन्द्रातिरिक्त तीन ग्रहों से यदि देखे जाय तो भी जातक राजा होता है ॥ ४१–४३ ॥

त्रिभ्योऽप्यूनैस्तु तुङ्गस्थैर्ग्रहैर्नृपतिवंशजः ।
नृपस्तदन्यवंशस्तु नृपतुल्यो धनादिभिः ॥ ४४ ॥
खगैः स्वतुङ्गकोणस्थैश्चतुःपञ्चमितैर्नृपः ।
दुष्कुलीनोऽपि जातः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ४५ ॥
ग्रहैः स्वतुङ्गगैः षड्भिः सम्राड् भवति मानवः ।
इत्थं मैत्रेय ! विविधा राजयोगाः सतां मताः ॥ ४६ ॥
एकश्चन्द्रसुतो जीवः कविर्वा तुङ्गसंस्थितः ।
केन्द्रे च सद्ग्रहोपेते राजा राजसमोऽथवा ॥ ४७ ॥
निखिलैः केन्द्रगैः सौम्यैरसौम्यैस्त्रिरसायगैः ।
दुष्कुलेऽपि प्रजातः स्यान्नरो भूपो न संशयः ॥ ४८ ॥

जन्म समय में ३ से अल्प भी ग्रह उच्चस्थ हों तो राजवंशज जातक राजा होवे और साधारण वंशज मनुष्य धनादियों से राजा के समान होता है । चार-पाँच ग्रह अपने उच्च या नवम-पञ्चम में स्थित हों तो दुष्कुलीन भी जातक निःसन्देह राजा होता है । छे ग्रह उच्चस्थ हों तो मनुष्य सम्राट् होता है । एक भी बुध, गुरु या शुक्र उच्चस्थ हो और शुभग्रह केन्द्रस्थ हों तो जातक राजा या राजसदृश होता है । सभी शुभग्रह केन्द्रगत हों, और सभी पापग्रह ३।६।११ में स्थित हों तो निःसंशय दुष्कुलज भी जातक राजा होता है ॥ ४४–४८ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
राजयोगाध्यायः समाप्तः ॥ ४० ॥

अथ राजाश्रययोगाध्यायः ॥ ४१ ॥

पराशर उवाच—

राज्येशे तु जनुर्लग्नादमात्येशयुतेक्षिते ।
अमात्यकारकेणापि प्रधानत्वं नृपालये ॥ १ ॥
लग्नाधीशेक्षिते लाभे पापदृग्युतिवर्जिते ।
राजालये प्रधानत्वं जायते स्वकुलेऽपि च ॥ २ ॥
अमात्यकारकेणापि कारकेन्द्रे समन्विते ।
तीव्रबुद्धियुतो बालो नृपामात्यः प्रजायते ॥ ३ ॥
बलाढ्ये सद्ग्रहोपेतेऽमात्याख्ये कारके सति ।
स्वर्क्षे स्वतुङ्गगे वा स्यान्नृपामात्यो न संशयः ॥ ४ ॥
तनुमूनुतपःसंस्थे मुनेऽमात्याख्यकारके ।
विश्रुतो जायते जातो ध्रुवं मन्त्री महीपतेः ॥ ५ ॥
अमात्यकारकश्चात्मकारकात् केन्द्रकोणगः ।
सुखी जातोऽनिशं राज्ञः कृपापात्रं तदाश्रयी ॥ ६ ॥
आत्मकारकतो लग्नात् पदाद्वा विक्रमे रिपौ ।
स्थितेष्वखिलपापेषु जातः सेनापतिर्भवेत् ॥ ७ ॥
स्वर्क्षतुङ्गगते केन्द्रे कोणे-वा कारके स्थिते ।
धर्मेशयुतदृष्टे च राजमन्त्री नरो भवेत् ॥ ८ ॥
कारके चन्द्रराशीशे लग्नगे सौम्यसंयुते ।
मन्त्रित्वे मुख्ययोगोऽयं वार्धके नात्र संशय ॥ ९ ॥

पराशर ने कहा (मैत्रेय !) जन्मलग्न से राज्येश अमात्यकारकेश या अमात्येश से युत-दृष्ट हो तो वह जातक राजभवन में प्रधान होता है । लाभस्थान लग्नाधीश से दृष्ट हो और पाप ग्रह का संयोग या दृष्टि उस पर नहीं रहे तो राजभवन तथा अपने वंश में भी जातक प्रधान होता है । यदि आत्मकारकग्रह अमात्यकारक-संयुक्त हो तो जातक तीव्रबुद्धियुक्त राजमन्त्री होता है । अमात्यकारकग्रह शुभग्रह-युक्त बलशाली अपने भवन या अपने उच्च में हो तो जातक निःसन्देह राजमन्त्री होता है । अमात्यकारक ग्रह लग्न, पञ्चम या नवम में स्थित हो तो जातक विख्यात, तथा राजमन्त्री होता है । आत्मकारक से केन्द्र या नवम-पञ्चम में अमात्यकारक हो तो जातक सुखी और सतत राजाश्रित एवं राजा का कृपापात्र बना रहता है । आत्मकारक, लग्न, या पद से तृतीय या षष्ठ में सभी पापग्रह हों तो जातक

सेनापति होता है। आत्मकारकग्रह स्वभवन, या स्वोच्चस्थ होकर केन्द्र या नवम-पञ्चम में हो, और नवमेश का उस पर संयोग या दृष्टि हो तो जातक निःसन्दिग्ध राजमन्त्री होता है। आत्मकारक जन्मराशीश होकर शुभग्रह से युक्त लग्नगत हो तो वार्धक्य में राजमन्त्री होता है ॥ १–९ ॥

कारके शुभसंयुक्ते पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
नवमे दशमे वा स्याद् राजसम्बन्धतो धनम् ॥ १० ॥
कारके नवमे याते लग्ने भाग्यपदेऽथवा।
जातः स्याद्राजसम्बद्धो योगेऽस्मिन्नात्र संशयः ॥ ११ ॥
लग्नेशे लाभगेहस्थे पापदृष्टिविवर्जिते।
कारके शुभसंयुक्ते लाभस्तस्य नृपालयात् ॥ १२ ॥
कर्मगे लग्नपे लग्नगते कर्मपतावपि।
राजसम्बन्धकृद्योगो विशेषात् समुदीरितः ॥ १३ ॥

शुभग्रहयुक्त आत्मकारकग्रह पञ्चम, सप्तम, नवम या दशम में हो तो राजाश्रय से धनागम कहना चाहिए। आत्मकारक नवमभाव में और नवमभाव का पद लग्न में हो तो जातक राजसम्बद्ध होता है। लग्नेश लाभस्थ होकर पापग्रहों की दृष्टि से रहित हो और आत्मकारकग्रह शुभग्रहयुक्त हो तो राजभवन से जातक को धनलाभ होता है। लग्नेश दशमस्थ, और दशमेश लग्नस्थ हो तो विशेषरूप से राजसम्बन्धकारी यह योग होता है ॥ १०–१३ ॥

आत्मकारकतो मातृभावगाबिन्दुभार्गवौ।
नृपलक्ष्मयुतं जातं कुरुतो नृपवन्मुने ! ॥ १४ ॥
सुतेशसहिते लग्नपतौ किंवात्मकारके।
केन्द्रगे कोणगे वापि जातः स्यान्नृपतेः सुहृत् ॥ १५ ॥

आत्मकारक से चतुर्थस्थ चन्द्र-शुक्र हों तो जातक राजचिह्नयुक्त राजसदृश सौख्यपूर्ण होता है। लग्नेश या आत्मकारक पञ्चमेश के साथ केन्द्र या नवम पञ्चम में हों तो जातक राजा का मित्र होता है ॥ १४–१५ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे राजाश्रय-योगाध्यायः समाप्तः ॥ ४१ ॥

अथ धनयोगाध्यायः ॥ ४२ ॥

पराशर उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धनयोगं विशेषतः ।
यत्र निःसंशयं जातो धनाढ्यः स्याद्द्विजोत्तम ! ॥ १ ॥
पञ्चमे भार्गवक्षेत्रे तस्मिन् शुक्रेण संयुते ।
लाभे भूमिसुतोपेते बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ २ ॥
पञ्चमे शशिजक्षेत्रे तत्रैव शशिजे स्थिते ।
इन्द्वारेज्ययुते लाभे बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ३ ॥
पञ्चमे तु रविक्षेत्रे तस्मिन्नेव रवौ स्थिते ।
लाभे मन्देन्दुदेवेज्ये बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ४ ॥
पञ्चमे तु शनिक्षेत्रे तस्मिन्नर्कजसंयुते ।
लाभेऽर्केन्दुयुते चापि बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ५ ॥
पञ्चमे तु गुरुक्षेत्रे तस्मिन् गुरुयुतेऽपि च ।
लाभे बुधयुते जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ६ ॥
पञ्चमे भूसुतक्षेत्रे तस्मिन् भौमसमन्विते ।
लाभगे भार्गवे जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ७ ॥
पञ्चमे शशिनः क्षेत्रे तत्र चन्द्रमसि स्थिते ।
मन्दे त्वायगते जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ॥ ८ ॥
भानुक्षेत्रगते लग्ने तस्मित् भानौ स्थिते सति ।
भौमेन गुरुणा युक्ते दृष्टे वा स्याद्युतो धनैः ॥ ९ ॥
चन्द्रक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् चन्द्रसमन्विते ।
जीवेन चान्द्रिणा युक्ते दृष्टे जातो धनी भवेत् ॥ १० ॥

पराशर ने कहा—अब मैं धनयोग बतलाता हूँ । धनयोग में उत्पन्न बालक निःसन्देह धनी होता है । पञ्चमभाव शुक्रक्षेत्र (वृष-तुला) में शुक्र यदि विद्यमान हों तथा लाभस्थान भौमयुक्त हो तो जातक प्रचुर द्रव्यवान् होता है । बुधक्षेत्र (कन्या-मिथुन) पञ्चम में बुध रहें, और लाभ स्थान में चन्द्र, भौम, गुरु हों तो भी जातक प्रचुर धनवान् होता है । उपर्युक्त पञ्चमभाव रविक्षेत्र (सिंह) में सूर्य स्वयं रहें और लाभस्थान शनि, चन्द्र, गुरु, से युक्त हो तो भी जातक पूर्ण धनाढ्य होता है । शनिक्षेत्रीय (मकर, कुम्भ) पञ्चम में शनि रहें और लाभभवन सूर्य,

चन्द्रयुक्त हो तो जातक पूर्ण धनवान् होता है।। गुरुक्षेत्रीय (धनु, मीन) पञ्चम स्थान में गुरु स्वयं रहें, और लाभस्थान बुधयुक्त हो तो भी जातक महाधनी होता है। भौमक्षेत्रीय (मेष, वृश्चिक) पञ्चमस्थान में मंगल हों और लाभस्थान में शुक्र हों तो भी जातक पूर्णधनी होता है। चन्द्रक्षेत्रीय (कर्क) पञ्चम में चन्द्रमा हों और आयस्थान शनि युक्त हो तो जातक महाधनी होता है। सूर्यक्षेत्रीय (सिंह) लग्न में सूर्य रहें, और भौम गुरु का योग या दृष्टि हो तो जातक धनी होता है। चन्द्रक्षेत्रीय (कर्क) लग्न में चन्द्रमा रहें और बुध-गुरु का योग या दृष्टि हो तो भी जातक धनी होता है ॥ १—१० ॥

भौमक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भौमयुते सति ।
सौम्यशुक्रार्कजैर्दृष्टे युक्ते श्रीमान्नरो भवेत् ॥ ११ ॥
बुधक्षेत्रस्थिते त्वङ्गे तस्मिन् सौम्ययुते यदि ।
सुरेज्यार्कियुते दृष्टे धनी जायेत जातकः ॥ १२ ॥
गुरुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् गुरुयुतेऽपि च ।
बुधभौमयुते दृष्टे जातको धनिको भवेत् ॥ १३ ॥
भृगुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भृगुयुतेऽपि च ।
बुधमन्दयुते दृष्टे जातको जायते धनी ॥ १४ ॥
लग्ने तु रविजक्षेत्रे तत्रैव रविजे स्थिते ।
कुजेज्याभ्यां युते दृष्टे जातको धनिको भवेत् ॥ १५ ॥

मेष-वृश्चिक लग्न में मंगल हो, और बुध, शुक्र, शनि की उस पर दृष्टि रहे तो जातक लक्ष्मीवान् होता है। मिथुन कन्या लग्न में बुध रहें और गुरु शनि का योग या दृष्टि हो तो जातक धनी होता है। धनु, मीन, लग्न में गुरु रहें और मंगल, बुध का योग या दृष्टि उन पर होवे तो भी जातक धनी होता है वृष, तुला लग्न में शुक्र हों और बुध, शनि का योग या दृष्टि रहे तो भी जातक धनी होता है। मकर, कुम्भ लग्न में शनि हों और मंगल, गुरु का लग्न के साथ संयोग या लग्न पर दृष्टि हो तो जातक धनी होता है ॥ ११—१५ ॥

विशेषाद् धनदौ ज्ञेयौ सूनुभाग्याधिपौ तथा ।
नभोगा अपि तद्युक्ताः स्वदशासु धनप्रदाः ॥ १६ ॥
शुभाऽशुभफलं तत्र सदसद्ग्रहयोगजम् ।
बलाबलं विचार्यैव वक्तव्यं दैवकोविदैः ॥ १७ ॥

पञ्चमेश नवमेश विशेषतः धनप्रद होते हैं। उन दोनों के साथ युक्त ग्रह भी अपनी-अपनी दशा में धनप्रद होते हैं। शुभ अशुभ ग्रहों के संयोग या ग्रहों के बलाबल का विचार कर फलादेश करना चाहिए ॥ १६—१७ ॥

पारिजातादिगतकेन्द्रेश का फल—

केन्द्रपः पारिजातस्थस्तदा दाता भवेन्नरः।
उत्तमे ह्युत्तमो दाता गोपुरे पुरुषत्वयुक्॥ १८॥
सिंहासने भवेन्मान्यः शूरः पारावतांशके।
सभापतिर्देवलोके द्वितीये तु मुनिर्मतः।
ऐरावते तु सन्तुष्टो जायते जातकः सदा॥ १९॥

केन्द्रेश पारिजातांशगत हो तो जातक-दानी, और उत्तमांश में रहने पर विशेष दानी, गोपुरांशत होने पर पौरुषयुक्त, सिंहासनस्थ होने पर लोकमान्य, पारावतांश में रहे तो शूर, देवलोकगत होने पर सभापति, द्वितीय (ब्रह्मलोक) गत होने पर मुनि और ऐरावतांश में रहने पर सर्वदा वह सन्तुष्ट रहता है॥ १९॥

पारिजातादिगत पञ्चमेश फल—

परिजाते सुताधीशे विद्या चैव कुलोचिता।
उत्तमे चोत्तमा ज्ञेया गोपुरे भुवनाङ्किता॥ २०॥
सिंहासने तथा वाच्या साचिव्येन हि संयुता।
पारावते तु मैत्रेय! ब्रह्मविद्या प्रकीर्तिता॥ २१॥
सुतेशे देवलोकस्थे कर्मयोगयुतो भवेत्।
उपासना द्वितीये स्याद् भक्तिस्त्वैरावते स्मृता॥ २२॥

पञ्चमेश यदि पारिजातांशगत हो तो कुलोचित विद्या, उत्तमांश में होनेपर उत्कृष्ट विद्या, गोपुरांश में रहनेपर विश्वविख्याति, सिंहासन में मन्त्रित्व, देवलोकांशगत पञ्चमेश हो तो कर्मयोग, द्वितीय (ब्रह्मलोक) स्थ होने पर देवोपासना, ऐरावतांश में ईश्वर भक्ति कहें॥ २०—२२॥

पारिजातादिगत धर्मेश फल—

धर्मेशे पारिजातस्थे तीर्थकृत्त्वत्र जन्मनि।
प्राक्तने जनने बोध्यं तदेवोत्तमवर्गके॥ २३॥
गोपुरे मखकर्ता च परे चैवात्र जन्मनि।
सिंहासने भवेद् वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ २४॥
सर्वधर्मपरित्यागी परात्मैकपदाश्रितः।
पारावते परो हंसो भवेदेवात्र जन्मनि॥ २५॥
त्रिदण्डी लगुडी वाल्याद्देवलोके न संशयः।
ब्रह्मलोके प्रयातीन्द्र-पदं कृत्वाऽश्वमेधकम्॥ २६॥

ऐरावते तु धर्मात्मा स्वयं धर्मो भविष्यति।
रामादि-कुन्तिपुत्रादि-तुल्यो जातो हि जायते॥ २७॥

पारिजातांशगत धर्मेश हो तो जातक वर्तमान जन्म में तीर्थकारी, उत्तमांश में रहनेपर प्राक्तन जन्म में तीर्थ करने वाला, गोपुरांश में रहने पर यज्ञकर्त्ता, सिंहासन में वीर, सत्यवक्ता तथा जितेन्द्रिय, सभी धर्मों का परित्याग कर एकमात्र परब्रह्मपद में लीन, पारावतांश में परमहंस, देवलोक में दण्डी या त्रिदण्डी (स्वामी), ब्रह्मलोकांश में धर्मेश के रहनेपर अश्वमेध यज्ञकर इन्द्रपद को प्राप्त करनेवाला, ऐरावतांश में स्वयं धर्मावतार धर्मात्मा, जैसे कि राम, युधिष्ठिर प्रभृति हुए, होता है॥ २३–२७॥

योगकारकग्रहफल—

विष्णुस्थानं स्मृतं केन्द्रं लक्ष्मीस्थानं त्रिकोणकम्।
तयोरधीशसम्बन्धो राजयोगकरो नृणाम्॥ २८॥
पारिजाते स्थितौ तौ चेन्नृपो लोकानुरञ्जकः।
उत्तमे चोत्तमो भूपो गजवाजिरथादिमान्॥ २९॥
गोपुरे नृपशार्दूलः पूजितांघ्रिर्नृपैर्भवेत्।
सिंहासने चक्रवर्त्ती सर्वक्षोणीप्रपालकः॥ ३०॥
अस्मिन् योगे हरिश्चन्द्रो मानवश्चोत्तमस्तथा।
बलिर्वैश्वानरोऽप्येवमन्ये भूमण्डलाधिपाः॥ ३१॥
वर्त्तमानयुगे राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
भविता शालिवाहादिर्विजयश्रीयुतो मुने!॥ ३२॥
पारावतांशके चैवं जाता मन्वादयस्तथा।
देवलोके समे जाता अवतारा हरेरिह॥ ३३॥
ब्रह्मप्रभृतयो ब्रह्मलोके जातास्तु लोकपाः।
स्वायंभुवो मनुस्त्वैरावतांशे तूदितः पुरा॥ ३४॥

केन्द्र (१।४।७।१०) विष्णुस्थान, और त्रिकोण (१।५।९) लक्ष्मी-स्थान कहा गया है। इन स्थानों (केन्द्रेश-त्रिकोणेश) का सम्बन्ध मनुष्यों के राजयोगकारक होते हैं।

वे दोनों (केन्द्रेश-त्रिकोणेश) पारिजातांश में रहें तो जातक लोकानुरञ्जक राजा होता है। उत्तमांश में रहनेपर हाथी, घोड़ा, रथ आदि वाहनयुक्त उत्तम राजा होता है। गोपुरांश में वे दोनों हों तो जातक राजवन्दित राजश्रेष्ठ होता है। सिंहासनांश में रहनेपर समस्त पृथ्वी का पालक चक्रवर्त्ती राजा होता है। इसी योग में राजा

हरिश्चन्द्र, उत्तम मनु, बलि, वैश्वानर तथा अन्य भी भूमण्डलाधीश हुए। वर्त्तमान युग में भी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, और भविष्यत् में शालिवाहन शक होने वाले हैं। इसी तरह मनु आदि पारावतांश में, विष्णु के सभी अवतार देवलोकांश में, ब्रह्मादिक लोकपाल ब्रह्मलोकांश में, और स्वायंभुवमनु ऐरावतांश में केन्द्रेश त्रिकोण के योगकारक रहने से उत्पन्न हुए॥ २८–३४ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
धनयोगाध्यायः समाप्तः ॥ ४२ ॥

अथ दारिद्र्ययोगाध्यायः ॥ ४३ ॥

मैत्रेय उवाच—

विविधा वित्तदा योगा उदिता भवताऽधुना।
कथ्यतां भगवन्! योगा ये स्युर्दारिद्र्यकारिणः ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

लग्नेशे रिष्फगे रिष्फाधिपे लग्नगते सति।
मारकेशयुते दृष्टे निर्धनो मनुजो भवेत् ॥ २ ॥
लग्नपे रिपुगे लग्नगते रिपुपतावपि।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ ३ ॥
लग्नेन्दू केतुना युक्तौ, लग्नेशे निधनं गते।
मारकेशयुते दृष्टे जातो वै निर्धनो भवेत् ॥ ४ ॥
षष्ठाष्टमव्ययगते लग्नेशे पापसंयुते।
वित्तपेऽरिभगे नीचे राजवंश्योऽपि निर्धनः ॥ ५ ॥
लग्नेशे त्रिकनाथेन युक्ते पापेक्षितेऽथवा।
मन्दान्विते तत्र सद्भिरदृष्टे निर्धनो जनः ॥ ६ ॥
मन्त्रेशो धर्मनाथश्च रिपुरिष्फस्थितौ क्रमात्।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ ७ ॥

मैत्रेय ने कहा :—हे भगवन्! आपने अनेक धनदयोग कहा, अब दारिद्र्य योगों को कृपया बतलावें।

पराशर ने उत्तर दिया :—लग्नेश व्ययस्थ, और व्ययेश लग्नस्थ हो और मारकेश (२।७ के अधीश) से युत या दृष्ट हों तो जातक निर्धन होता है। लग्नेश षष्ठस्थ, और षष्ठेश लग्नस्थ हो और मारकेश से युत-दृष्ट होने पर जातक निःस्व होता है।

लग्न, चन्द्रमा केतुयुक्त हो, लग्नेश अष्टमगत हो और मारकेश से युत या दृष्ट होनेपर जातक दरिद्र होता है। पापयुक्त लग्नेश त्रिकस्थ हो, वित्तेश षष्ठस्थ या नीचस्थ हो तो राजवंशोत्पन्न भी जातक दरिद्र होता है। त्रिकेशयुक्त लग्नेश पापयुक्त हो या शनियुक्त वे शुभग्रह से अदृष्ट हों तो जातक निर्धन होता है। पञ्चमेश षष्ठस्थ और धर्मेश द्वादशस्थ हो और मारकेश से युत दृष्ट हो तो जातक दरिद्र होता है ॥ १—७ ॥

पापग्रहे लग्नगते राज्यधर्माधिपौ विना।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ ८ ॥
त्रिकाधिपा यत्र भावे तदीशाश्च त्रिके स्थिताः।
क्रूरेक्षितयुताश्चापि जातो दुःखी च निर्धनः ॥ ९ ॥
चन्द्राक्रान्तनवांशेशो मारकेशयुतो यदि।
मारकस्थानगो वापि निर्धनो जातको भवेत् ॥ १० ॥
लग्नेशतन्नवांशेशा-वरिरन्ध्रव्ययस्थितौ।
मारकेशयुतौ दृष्टौ जातोऽसौ निर्धनो नरः ॥ ११ ॥
शुभस्थानगताः पापाः पापस्थानगताः शुभाः।
धनार्त्तो जायते बालो भोजनेन प्रपीडितः ॥ १२ ॥
त्रिकाधीशयुताः खेटाः कोणनाथेक्षणोज्झिताः।
दशापाके तु ते ज्ञेया वित्तनाशविधायकाः ॥ १३ ॥
लग्नाद् वा कारकाद् वापि रन्ध्रे रिष्फे द्विजोत्तम ! ।
कारकाङ्गपयोर्दृष्ट्या निःस्वो जातो भवेद् ध्रुवम् ॥ १४ ॥

नवमेश, दशमेश के अतिरिक्त पापग्रह लग्नस्थ हो और उसपर मारकेश का योग अथवा दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है। त्रिकेश जिस भाव में हों तद्भावेश यदि त्रिकस्थ होवे, और उन (भावेश) पर पापग्रह की युति या दृष्टि रहे तो भी जातक दुःखी तथा निःस्व होता है। चन्द्राश्रित नवांशेश मारकेशयुक्त हो या मारकस्थानगत हो, लग्नेश तथा लग्न-नवांशेश त्रिकस्थ हों और उन पर मारकेश की दृष्टि या संयोग हो तो जातक निर्धन होता है। पापग्रह शुभस्थानगत और शुभग्रह पापस्थानस्थ हो तो भी जातक धनार्त्त होता है प्रत्युत भोजन की भी कमी होती है। जिन ग्रहों पर (९.५) के स्वामियों की दृष्टि नहीं हो, और वह त्रिकेश से युक्त हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा के समय में धनक्षय होता है। लग्न या आत्मकारक ग्रह से अष्टम, या द्वादश पर लग्नेश तथा आत्मकारक की दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है ॥ ८—१४ ॥

कारकात् कारकेशस्तु लग्नतो लग्नपोऽन्तिमम् ।
पश्येतां चेन्नरस्तर्हि व्ययशीलो न संशयः ॥ १५ ॥

कारक से आत्मकारकेश और लग्न से लग्नेश अन्तिमभाव (१२) को देखें तो जातक खर्चीला होता है ॥ १५ ॥

सबाधकान् निःस्वयोगान् वच्मि सम्प्रति ते मुने ।
वित्तस्थौ कुजसौरी तु कथितौ धननाशकौ ॥ १६ ॥
बुधेक्षितौ महावित्तं कुरुतो नियतं द्विज ! ।
निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः ॥ १७ ॥
महाधनयुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ ।
एवमेव फलं सौरौ वित्तस्थेऽर्केक्षिते वदेत् ॥ १८ ॥

हे मुने ! मैं अब सबाधक दारिद्रय योगों को बतलाता हूँ । धनभावस्थित शनि मंगल धननाशक होते हैं, किन्तु उन पर बुध की दृष्टि हो तो जातक महाधनी होता है । धनस्थ सूर्य पर शनि की दृष्टि रहे तो जातक दरिद्र होता है और शनि की दृष्टि नहीं हो तो जातक विख्यात एवं महाधनी होता है । इसी तरह वित्तस्थ शनि पर सूर्य की दृष्टि रहने पर फल समझना । ॥१६–१८ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
दारिद्र्ययोगाध्यायः समाप्तः ॥ ४३ ॥

अथ आयुर्दायाध्यायः ॥ ४४ ॥

मैत्रेय उवाच—

वित्ताविचत्तकरौ योगौ भगवन् ! भवतोदितौ ।
ब्रूहि मे सम्प्रति नृणामायुर्ज्ञानं विशेषतः ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—(हे महर्षे !) आपने धनयोग तथा दारिद्र्ययोग बतलाए । अब मुझे (कृपया) मनुष्यों की आयु के सम्बन्ध में विशेषरूप से बतलावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

शृणु मैत्रेय ! ते वच्मि लोककल्याणकारकम् ।
तदायुर्ज्ञानमधुना सुराणामपि दुर्लभम् ॥ २ ॥
गदिताऽनेकधाऽनेकैर्भेदांस्तस्य मुनीश्वरैः ।
तत्सारमधुनोद्धृत्य यथावत् कथयाम्यहम् ॥ ३ ॥

खेटाः स्वतुङ्गनीचादिराशिस्थितिवशात् तथा ।
ऋक्षाणि राशयश्चायुर्दिशन्तीह यथाबलम् ॥ ४ ॥
पिण्डायुरादौ तत्राहं खेटस्थित्यनुसारतः ।
ब्रवीम्याकर्णय मुने ! सावधानतयाऽधुना ॥ ५ ॥
क्रमशः स्वस्वतुङ्गस्थभास्करादिग्रहेषु हि ।
अङ्केन्दुतत्त्वतिथ्यर्कबाणेन्द्विन्दुकरा नखाः ॥ ६ ॥
आयुःपिण्डा निगदिता नीचस्थेषु तदर्धकम् ।
मध्ये विवेकतो ज्ञेयं स्फुटमायुःप्रमाणकम् ॥ ७ ॥
तुङ्गशुद्धं खगं षड्भादूनं चक्राद् विशोध्य यत् ।
पिण्डैः संगुणितं शेषं हायना आदिमानतः ॥ ८ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! लोकोपकारक आयुर्ज्ञान अब मैं बतलाता हूँ। महर्षियों ने उसके अनेक भेद बतलाए हैं। मैं उनका सार निकाल कर कहता हूँ। रव्यादिग्रह अपने उच्च-नीचादिराशिवश आयुःप्रद होते हैं। अश्विन्यादि नक्षत्र एवं मेषादि राशियाँ भी बलानुसार आयुर्वृद्धि या आयुर्ह्रासकर होती हैं। हे मुने ! ग्रहस्थित्यनुसार प्रथमतः पिण्डायु बतलाता हूँ, सावधानतया उसे सुनो। सूर्यादिग्रह अपने-अपने उच्च में रहने पर क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१, २०, वर्ष, नीच में इनके आधे, और मध्य में (उच्च नीच के बीच में) रहने से अनुपात से स्पष्ट आयुःप्रमाण समझना चाहिए।

जिस ग्रह का आयुःस्पष्ट करना हो उसके राश्यादि में उच्च-राश्यादि को घटाकर शेष राश्यादि को स्वपठित पिण्डायु से गुणा कर विकला से राशिपर्यन्त सवर्णन से जो भगणादि हो वही वर्षादि आयुर्दाय उस ग्रह का समझना। उच्च राश्यादि को घटाने पर शेष, षड्राश्यल्प हो तो १२ में घटाना चाहिए।

[जैसे उदाहरण—सूर्य कृत स्पष्टायु साध्य हो तो स्फुट सूर्य राश्यादि २।५°।२५'।१५" में सूर्योच्चराश्यादि ०।१०।०।० को घटाने से २।५°।२५'।१५"—०।१०°।०°।०"= १।२५°।२५'।१५"। यह ६' राशि से अल्प है अतः १२ राशि से घटाने पर शेष १२।०°।०'।०"—१।२५°।२५'।१५" = १०।४°।३४'।४५"। इसे सूर्योच्चपठितपिण्ड १९ से गुणा करने पर १९०।७६।६४६।८५५। इसे (सवर्णन करने) पर १९१।२७।०।१५। राशि स्थान में १२ का भाग दिया तो सूर्य का वर्षादि-आयुर्दाय = १५।११।२७।०।१५ हुआ) इसी तरह यदि स्फुटचन्द्र = ३।१४°।१८।२६" हो तो इसमें चन्द्रोच्च राश्यादि को घटा कर शेष=३।१४°।१८'।२६"—१।३°।०'।०"=२।११°।१८'।२६", यह भी षड्भाल्प है अतः १२ में से घटाने पर १२।०°।०'।०"—२।११°।१८'।२६ = ९।१८।४१°।३४"। इसे चन्द्रोच्च पठित पिण्डमान २५ से गुणा करने पर २२५।४५०।१०२५।८५०। हुआ। इसे सवर्णित करने से २३२।४७।१९।१०। हुआ। राशिस्थान में १२

से भाग दिया तो वर्षादि स्पष्टचन्द्रमा की आयु = १९।४।४७।१९।१० हुई इसी तरह अन्य ग्रहों का भी आयुर्दाय साधन करना चाहिए ॥ २–८ ॥

संस्कार विशेष—

अस्तंगतो ग्रहः स्वार्धमपहाय सितार्कजौ ।
शत्रुक्षेत्रगतस्त्र्यंशं हरेद् वक्रगतिं विना ॥ ९ ॥

जो ग्रह अस्तंगत (सूर्यसान्निध्य से) हो वह आगत आयु के आधे को ह्रास करता है, किन्तु शुक्र-शनि अस्त भी हों तो भी आनीत आयु में ह्रास नहीं होता। इसी तरह वक्रगति ग्रह के अतिरिक्त ग्रह शत्रुक्षेत्रगत हों तो आनीत आयु का तृतीयांश ह्रास हो जाता है, किन्तु वक्री ग्रह में यह ह्रास नहीं होता है ॥ ९ ॥

आयुर्दाय नें चक्रपात से ह्रास—

खगः क्रमात् समस्तार्धत्रिपादेषु रसांशकम् ।
क्रूरो रिष्फादुत्क्रमस्थस्तदर्धं तु हसेच्छुभः ॥ १० ॥
एकत्रैकस्त्वनेकेषु स्वभागं बलवान् हरेत् ।
क्षीणेन्दुरत्र विज्ञेयो पापो नैव कदाचन ॥ ११ ॥

व्यय भाव से उत्क्रम (उलटा) रूप में स्थित पाप ग्रह क्रमशः अपने आयुर्दाय का सम्पूर्ण, आधा, तृतीयांश, तुर्यांश, पञ्चमांश, तथा षष्ठांश का अपहरण-कारक होते हैं। अर्थात् द्वादश भाव से १२, ११, १०, ९, ८, ७, नें स्थित पापग्रह पूर्वोक्त आयु का अपहरण करते हैं। उन्हीं स्थानों में स्थित शुभग्रह क्रमशः $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{४}$, $\frac{१}{६}$, $\frac{१}{८}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{१२}$, अंश का अपहारक होते हैं। अर्थात् व्यय स्थान से द्वादश में स्थित शुभग्रह हो तो आयु का अर्धमात्र अंश का ह्रास होता है और वहीं पापग्रह हों तो पूरी आयु का ह्रास कहना। एक स्थान में अनेक ग्रह हों तो बली ग्रह के ही अंश का ह्रास होता है। आयुर्दाय साधन में क्षीणचन्द्र पाप नहीं प्रत्युत शुभ ही समझे जाते हैं। वराह-मिहिर ने भी यह कहा है—

सर्वार्धत्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः क्षीयन्ते, व्ययभवनादसत्सु वामम् ।
सत्स्वर्धं ह्रासति तथैकराशिगानामेकोंऽशं हरति बली तथाह सत्यः ॥ १०–११ ॥

सपाप लग्न में विशेष—

तनुगेऽर्के कुजे मन्दे विलग्नांशकला द्विज !
ग्रहायुषा तु संगुण्य चक्रलिप्ताभिराहरेत् ॥ १२ ॥
शोधयेदाप्तवर्षादि स्वायुषोऽथ सदीक्षिते ।
तद्दलं ज्ञेयमित्येष विशेषः परिकीर्त्तितः ॥ १३ ॥

यदि लग्न में सूर्य, भौम, शनि (कोई भी पाप) हो तो लग्नांशों की कला को प्रत्येक ग्रह की आयु से गुणा कर चक्रलिप्ता (२१६००) से भाग लें। लब्धवर्षादि

को पूर्वागत आयुर्दाय से घटाकर शेष को ही स्पष्ट आयु समझें। लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि रहने से लब्ध वर्षादि के आधे को ही घटाना चाहिए ॥ १२–१३ ॥

लग्नायुर्दाय—

लग्नाङ्कतुल्यवर्षाणि विवेकादंशकादिभिः ।
मासाद्याश्चेति लग्नायुः कैश्चिदुक्तं मनीषिभिः ॥ १४ ॥
सबलेलग्नभेशे भ-सममंशसमोंऽशपे ।
मध्येऽनुपाताल्लग्नायुर्विशेषोऽयमुदीरितः ॥ १५ ॥

किसी आचार्य ने कहा है कि लग्न में जितनी राशियाँ हों उतने वर्ष और अंशादिकों से अनुपात के द्वारा मासादि का ज्ञान कर दोनों का योग लग्नायु होती है। वस्तुतः लग्नराशीश बली हो तो राशितुल्य, और लग्न के नवांश स्वामी प्रबल हों तो नवांश तुल्य, वर्ष समझना चाहिए। दोनों (राशि तथा नवांश) प्रबल हों तो दोनों के आयुर्दाय का योग स्पष्ट लग्नायुर्दाय कहना ॥ १४–१५ ॥

निसर्गायुर्दाय—

मुनेऽधुना निसर्गायुर्ग्रहाणां ते मयोच्यते ।
क्रमादिन्द्वारविच्छुक्रजीवेनशनिवत्सराः ॥ १६ ॥
भूकराङ्काः, कृतिधृती, नखाः शून्येषवः स्मृताः ।
जनुः समयतश्चैता निसर्गप्रभवा दशा ॥ १७ ॥

हे मुने ! अब मैं निसर्गायु बतलाता हूं। जन्म से लेकर क्रमशः चन्द्र का १ वर्ष, मंगल के २ वर्ष, बुध के ९ वर्ष, शुक्र के २० वर्ष, गुरु के १८ वर्ष, सूर्य के २० वर्ष, शनि के ५० वर्ष आयुर्दाय होते हैं। ये ही नैसर्गिक दशा-वर्ष-प्रमाण भी समझना चाहिए ॥ १६–१७ ॥

अंशायुर्दाय—

अंशायुरधुना वच्मि सलग्नद्युषदां मुने ! ।
ग्रहोंऽशभसमान्येव हायनानि ददाति वै ॥ १८ ॥
भादिकं खेचरं हन्यान्नागाभ्रशशिभिस्तु यत्।
भगणादिं, तष्टमर्कैस्तदाब्दादिस्फुटं मतम् ॥ १९ ॥
पिण्डायुषि यथा ह्रासस्तथाऽत्रापि बुधैः स्मृतः।
केचिद् वदन्ति विबुधा विशेषमपरं त्विह ॥ २० ॥
ग्रहे स्वभोच्चे त्रिगुणं स्वनवांशे तथोत्तमे ।
द्विगुणं, स्वदृक्काणेऽपि, साधितायुः स्फुटं तदा ॥ २१ ॥

द्वयोर्यत्र गतः खेटस्तत्रापि त्रिगुणं मतम् ।
ह्रासद्वयेऽधिको ग्राह्यस्तदायुः स्पष्टमीरितम् ॥ २२ ॥
इत्थं चेतरजन्तूनां हत्वा तत्परमायुषा ।
भजेत् परायुषो नृणां तदायुः स्पष्टमीरितम् ॥ २३ ॥

हे मुने ! अब मैं लग्न तथा ग्रहों का अंशायुर्दाय बतलाता हूँ। ग्रह राशि-नवांश तुल्य वर्ष देते हैं। अर्थात् ग्रह जितनी राशि के नवांश पर रहते उतने वर्ष उनका आयुर्दाय होता है। राश्यादि ग्रह को १०८ से गुणा कर, सवर्णन के द्वारा भगणादि बनावें, बारह से अधिक रहने पर १२ से तष्टित करें तो शेष भगणादि तुल्य वर्षादि उस ग्रह का स्पष्ट आयुर्दाय समझना। पिण्डायुः साधन में जैसा ह्रास कहा गया है वैसा ही अंशायुर्दाय में भी ह्रास कहना चाहिए। पिण्डायुः साधन में ह्रास :—अस्तंगत में आधा, शत्रुगृह में तृतीयांश आदि कहा गया है। अंशायुर्दाय में कतिपय विद्वानों ने विशेष संस्कार कहा है :—जैसा कि ग्रह स्वोच्च या स्वभवनस्थ हो तो उसकी आगत आयु को त्रिगुणित, स्वनवांश या स्वद्रेष्काण में हो तो आयु को द्विगुण करने पर वास्तविक आयु होती है। यदि दोनों स्थिति प्राप्त हो अर्थात् एक ही ग्रह स्वोच्चस्थ तथा स्वनवांशस्थ हैं तो त्रिगुणित मात्र करना चाहिए। इसी तरह आधा, तृतीयांश दोनों ह्रास प्राप्त हो तो अधिक ह्रास अर्थात् आधे को ही ग्रहण करें। यह स्पष्ट वर्षादि मनुष्यों की आयु समझनी चाहिए। अन्य जन्तुओं का भी इसी तरह आयुः साधन कर अपने-अपने परमायुः प्रमाण से गुणा करें और मनुष्य के परमायु से भाग देने पर जो वर्षादि लब्धि आवे उसे ही उन जन्तुओं का स्पष्ट आयुर्दाय समझें ॥ १८–२३ ॥

जन्तुओं का परमायुःप्रमाण—

अतः परं मुने ! नानाविधजातीयजन्मिनाम् ।
परमायुरहं वच्मि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ २४ ॥
देवतानामृषीणां च तत्रायुरमितं स्मृतम् ।
सहस्रं कीरवलिभुग्गृध्रकौशिकचक्रिणाम् ॥ २५ ॥
शतत्रयं भेकभल्लशशादनवनौकसाम् ।
सार्धैकशतमब्दानां क्रव्यादानामुदीरितम् ॥ २६ ॥
मानवानां च करिणां विंशाधिकशतं मतम् ।
उष्ट्रासभयोस्तत्त्वमितं तुरगजं रदाः ॥ २७ ॥
वृषभाणां कासराणां वेदनेत्रमितं स्मृतम् ।
नखा अहिभुजामेवमजादीनां तु षड्दश ॥ २८ ॥

चतुर्दशमरालानां कोकिलानां शुनां तथा ।
कपोतानां द्वादशाब्दा अष्टौ स्युस्ताम्रचूडजाः ॥
बुद्बुदादिखगानां तु परमायुः स्मृतं नगाः ॥ २९ ॥

हे मैत्रेय ! अब मैं विभिन्नजातीय प्राणियों का परमायुः-प्रमाण बतलाता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनें। देवता तथा ऋषियों की परमायु अमित (अत्यधिक) वर्ष होती है। सुग्गा, कौआ, गीध, उल्लू, तथा साँप इनकी परमायु सहस्र वर्ष प्रमित, मेढक, भालू, श्येन तथा बन्दर की परमायु ३०० वर्षमित, राक्षसों की १५० वर्ष, मनुष्य तथा हाथियों की आयु १२० वर्ष, ऊंट तथा गदहे की परमायु २५ वर्ष-घोड़े की ३२ वर्ष, बैल-भैंसों की २४ वर्ष, मयूरों की २० वर्ष, भेड़-बकरों की १६ वर्ष, हंसों की १४ वर्ष, कोयल, कुत्ते तथा कबूतरों की १२ वर्ष, मुर्गे की ८ वर्ष, बुलबुल आदि पक्षियों की ७ वर्ष परमायु होती है ॥ २४–२९ ॥

मुने ! यत्सम्प्रति मया त्रिविधं त्वायुरीरितम् ।
तत्रादेयं कदा किञ्च विद्धिरेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ ३० ॥
लग्नेशे भास्करे चेन्दौ सबले सौम्यवीक्षिते ।
अंशायुश्चापि पिण्डायुर्निसर्गायुः क्रमात् स्मृतम् ॥ ३१ ॥
उभयोर्बलतुल्यत्वे योगार्धं साधितायुषोः ।
त्रयाणां तद्युतेस्त्र्यंशतुल्यमायुरुदीरितम् ॥ ३२ ॥

हे मुने ! जो मैंने तीन प्रकार की आयु कही है, उसमें कब क्या ग्राह्य है, इसे सुनो ! सूर्य, चन्द्र, लग्नेश में—प्रबल लग्नेश शुभग्रह से दृष्ट हो तो अंशायु, तीनों में सूर्य बली हो तो पिण्डायु, और चन्द्रमा प्रबल हो तो निसर्गायु [illegible] होती है। यदि दो तुल्य बल हों तो दोनों के आयुर्दाय का योगार्ध और तीनों के बलसाम्य में तीनों प्रकार के आयुर्दाय के योग का त्र्यंश ग्राह्य होता है ॥ ३०–३२ ॥

अन्यरीति से आयु-साधन—

ब्रवीम्यथापरं चापि समाकर्णय तद् द्विज ! ।
लग्नेशरन्ध्रतस्तद्वत् शशाङ्कशनितस्तथा ॥ ३३ ॥
स्पष्टमायुः कैश्चिदुक्तं होरालग्नविलग्नतः ।
तत्र तु प्रथमो योगो लग्नरन्ध्रपतः स्मृतः ॥ ३४ ॥
द्वितीयश्चन्द्रशनितो लग्नहोराविलग्नतः ।
तृतीय आयुषो योगो विज्ञेयो विबुधैः सदा ॥ ३५ ॥
चरभे संस्थितौ द्वौ चेद् दीर्घमायुस्तदा स्मृतम् ।
स्थिरे द्विभे तथैकैकस्तत्राप्यायुस्तदेव हि ॥ ३६ ॥

चरे स्थिरे तथैकैको मध्यमायुस्तदा भवेत् ।
उभौ द्विभे प्रयातौ चेत् तदाप्यायुस्तु मध्यमम् ॥ ३७ ॥
चरे त्वेको द्विभे चान्यः स्थिरगौ चेदुभावपि ।
तदा स्वल्पायुरेव स्याजन्मिनो नात्र संशयः ॥ ३८ ॥
योगाभ्यां वा त्रिभिर्योगैर्निष्पन्नं नेयमेव तत् ।
त्रयाणां तु विसंवादे होरालग्नविलग्नतः ॥ ३९ ॥
विधौ तनौ मदे वापि चन्द्रार्किजनितं तदा ।
कक्ष्याया ह्रासवृद्धी च चिन्तनीये प्रयत्नतः ॥ ४० ॥

हे प्रिय ! अब मैं अन्य रीति से आयुर्दाय साधन बतलाता हूँ, सुनो । लग्नेश, अष्टमेश, शनि, चन्द्र, तथा लग्न एवं होरालग्न के द्वारा कई एक महर्षि ने आयु का साधन किया है । लग्नेश-अष्टमेश से प्रथम योग, शनि-चन्द्र से दूसरा योग, लग्न होरालग्न से तीसरा योग ऋषियों ने कहा है । दोनों चरराशिस्थ हों तो दीर्घायु, एक स्थिर तथा दूसरा द्विस्वभावगत हो तो भी दीर्घायु, एक चर तथा दूसरा स्थिर में हो तो मध्यायु, दोनों द्विस्वभावराशिगत हों तो भी मध्यायु, एक चर में दूसरा द्विस्वभाव में या दोनों स्थिर राशिगत हों तो निःसन्देह जातक का अल्पायुयोग समझना । दो या तीनों योगों से निष्पन्न आयु ही मान्य होती है । तीनों योगों में विषमता हो अर्थात् तीनों से तीन प्रकार की आयु आवे तो लग्न तथा होरालग्न से सिद्ध ही ग्राह्य है । परन्तु इस स्थिति में लग्न या सप्तम में चन्द्र हो तो द्वितीय योग (शनि, चन्द्र,) से सिद्ध आयु ही माननी चाहिए । कक्ष्या के ह्रास तथा वृद्धि का भी विचार करना चाहिए ॥ ३३–४१ ॥

दीर्घ, मध्य, अल्प आयु के भेद—

दीर्घायुषि त्रिभियोगैर्विंशोत्तरशताब्दकाः ।
योगाभ्यां नागककुभो रसाङ्का एकयोगतः ॥ ४१ ॥
मध्यमे तु त्रिभिर्योगैरशीति-समवत्सराः ।
द्विसप्ततिस्तु योगाभ्यां चतुःषष्टिस्तथैकतः ॥ ४२ ॥
योगैस्त्रिभिस्तथाल्पे तु द्वात्रिंशत्समवत्सराः ।
रसाग्नयस्तु योगाभ्यां शून्यवेदास्तथैकतः ॥ ४३ ॥
चत्वारिंशच्च षट्त्रिंशद् द्वात्रिंशच्च बुधैः क्रमात् ।
दीर्घमध्याल्पका ज्ञेयाः खण्डा आयुःप्रसाधने ॥ ४४ ॥

तीनों प्रकार के दीर्घायु प्राप्त होने पर १२०, वर्ष दो प्रकार से दीर्घायु में १०८ वर्ष और एक प्रकार से प्राप्त होने पर ९६ वर्ष समझना चाहिए । इसी तरह तीनों

प्रकार से मध्यायु प्राप्त होने पर ८० वर्ष, दो प्रकार से मध्यायु में ७२ वर्ष, और एक प्रकार से मध्यायु हो तो ६४ वर्ष ग्राह्य होते हैं। अल्पायु भी तीनों प्रकार से प्राप्त हो तो ३२ वर्ष, दो प्रकार से अल्पायु में ३६ वर्ष, और एक प्रकार से अल्पायु हो तो ४० वर्ष समझना। इस तरह प्राप्त दीर्घादि आयु में ४०।३६।३२ खण्ड होते हैं जिनके द्वारा स्पष्ट आयु-साधन करना चाहिए ॥ ४१—४४ ॥

स्पष्टार्थं चक्र—

दीर्घायुः	एकयोगे-९६	योगद्वये १०८	योगत्रये १२०
मध्यायुः	एकयोगे-६४	योगद्वये-७२	योगत्रये ८०
अल्पायुः	योगत्रये-३२	योगद्वये-३६	एकयोगे-४०
खण्डानि	३२	३६	४०

आयुः स्फुटीकरण की रीति—

राश्यादौ पूर्णमायुः स्यादन्ते खण्डसमा क्षतिः।
मध्येऽनुपातजनिता क्षतिर्बोध्याऽन्यदा पुनः ॥ ४५ ॥
योगकृद्ग्रहभागानां योगे तत्संख्ययोद्धृते।
आप्तभागा यथालब्धखण्डेन गुणिता हृता ॥ ४६ ॥
त्रिंशता प्राप्तवर्षाद्यैरूनं स्पष्टायुरीरितम्।

योगकारक ग्रह राश्यादिगत हो तो उपर्युक्त पूर्णायु, वही राश्यन्त में हो तो खण्डतुल्य हानि कहनी चाहिए। राशि के मध्य में रहने पर अनुपात जन्य हानि होती है। अन्यत्र योगकारक ग्रहों के अंशों का योग कर उसमें योगकारक ग्रहों की संख्या से भाग दें, लब्ध अंशादि को प्राप्त खण्ड से गुणा कर ३० से भाग दें लब्ध वर्षादि को दीर्घ आदि वर्षादिसंख्या में घटाने से स्पष्ट आयु हो जाती है ॥ ४५-४६ ॥

विमर्श—मानव-जीवन में आयुर्विचार कितना महत्त्वपूर्ण है, यह किसी से छिपी बात नहीं है। सारा संसार मानव-जीवन पर ही निर्भर करता है। आयुर्विचार मानव के सम्बन्ध में निश्चित मत प्रकट करता है।

प्रायः सभी प्राचीन महर्षियों या अर्वाचीन जातककारों ने आयुर्विचार पर अपना अपना खास दृष्टिकोण अपनाया है। महर्षि जैमिनि ने "आयुः पितृदिनेशाभ्याम्" से लेकर अपने जैमिनिसूत्र के द्वितीयाध्यायस्थ सम्पूर्ण प्रथम पाद में आयु का ही निर्णय किया है। पिण्डायु, निसर्गायु, अंशायु के अतिरिक्त आयु-साधन की रीति प्रस्तुत ग्रन्थकार महर्षि पराशर ने इसी अध्याय में जो दी है, वह महर्षि जैमिनि द्वारा प्रतिपादित आयुः साधन का ही रूपान्तर है। निःसन्दिग्ध रूप से यह कहना सम्भव नहीं है कि किसने किसका रूपान्तर किया है। महर्षि पराशर की शैली पौराणिक है किन्तु महर्षि जैमिनि की सूत्रशैली है। इस प्रकार शैली में पार्थक्य होने पर भी विषय में एकरूपता ही है। इस अध्याय के ३२वें श्लोक से ४ श्लोक तक का समस्त

विषय महर्षि जैमिनि के अधोलिखित सूत्रों में अङ्कित हैं। (१) आयुः पितृदिनेशाभ्याम् (२) प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् (३) प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यम् (४) मध्ययोराद्यन्तयोर्वा हीनम् (५) एवं चन्द्रमन्दाभ्याम् (६) पितृकालतश्च (७) संवादात्प्रामाण्यम् (८) विसंवादे पितृकालः (९) पितृलाभगेचन्द्रे चन्द्रमन्दाभ्याम् (१०) शनौ योगहेतौ कच्याह्रासः (११) पितृलाभगे गुरौ केवलशुभदृग्योगिनि च कच्यावृद्धिः। यही आयुर्विचार अधिक प्रशस्त एवं मान्य है, यों तो जातक-तत्त्व में आयुर्दायानयन १२ प्रकार से किया गया है। विस्तारभय से उन प्रकारों का प्रदर्शन असम्भव है किन्तु उपर्युक्त महर्षि पराशर एवं महर्षि जैमिन्युक्त प्रकार का उदाहरण के द्वारा स्पष्टीकरण करना उपयुक्त समझता हूँ।

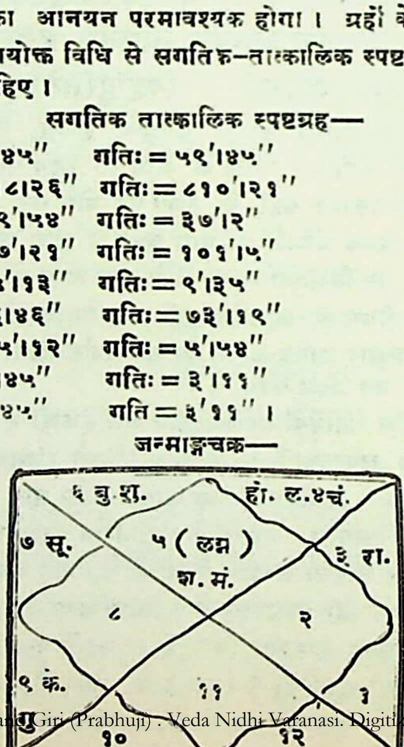
उदाहरण—संवत् १९४६ कार्त्तिक कृष्णाष्टमी घट्यादिमान = २६।१३ तदुपरि नवमी, पुनर्वसुनक्षत्रमान = ४।२६ तदुपरि पुष्य। सिद्धियोगघट्यादिमान = २४।२३ तदुपरि साध्ययोग।

सूर्योदयानन्तर इष्टघटीपल = ५३।११ मिश्रमान = ४४।१६। तात्कालिक सूर्य = ६।२°।९'।४५" दिनमान = २८।३१ रात्रिमान = ३१।२९। अयनांश = २०।५१।०९। प्रथम लग्न राश्यादि = ४।२५°।३३'।५३" दशम लग्न = १।२५°।१९°।१४"। होरालग्न = ३।११°।४९'।४५" इस समय में यदि किसी का जन्म है तो सर्वप्रथम सगतिक तात्कालिक स्पष्टग्रहों का आनयन परमावश्यक होगा। ग्रहों के तात्कालिकीकरण के लिए ग्रहादिसाधनाध्यायोक्त विधि से सगतिक-तात्कालिक स्पष्टग्रहों का साधन कर के आयुर्विचार करना चाहिए।

सगतिक तात्कालिक स्पष्टग्रह—

सू = ६।२°।९'।४५"	गतिः = ५९'।४५"
चन्द्र = ३।१४'।१८।२६"	गतिः = ८१०'।२१"
भौम = ४।२२°।३९'।५४"	गतिः = ३७'।२"
बुध = ५।२१'।३७'।२१"	गतिः = १०१'।५"
गुरु = ८।११°'।२५'।१३"	गतिः = ९'।३५"
शुक्र = ५।३'।५'६।४६"	गतिः = ७३'।१९"
शनि = ४।११°।१५'।१२"	गतिः = ५'।५४"
राहु = २।१६°।७'।४५"	गतिः = ३'।११"
केतु = ८।१६°।७'।४५"	गति = ३'।११"।

जन्माङ्गचक्र—



उपर्युक्त श्लोक ३३ से ४० तक के नियमानुसार आयुर्विचार—

लग्नेश अष्टमेश पर से—लग्नेश सूर्य, और अष्टमेश गुरु हैं। सूर्य चर (तुला) में और गुरु द्विस्वभाव (धनु) में हैं अतः पराशरोक्त 'चरे स्वेको द्विभे चान्यः' अथवा महर्षि जैमिन्युक्तसूत्र "मध्ययोराद्यन्तयोर्वा हीनम्" के अनुसार अल्पायु योग सिद्ध हुआ।

लग्न स्थिर (सिंह) में और होरालग्न चर (कर्क) में हैं अतः पराशरोक्त "चरे स्थिरे तथैकैको मध्यमायुः" तथा जैमिन्युक्त 'प्रथमद्वितीसयोरन्तयोर्वा मध्यम्' के अनुसार मध्यमायु योग सिद्ध हुआ।

शनि स्थिर (सिंह) में और चन्द्रमा चर (कर्क) में हैं अतः उपर्युक्त नियमानुसार मध्यमायु योग ही सिद्ध हुआ। अतः 'योगाभ्यां वा त्रिभिर्योगैर्निष्पन्नं नेयनेव तत्' या 'सम्वादात्–प्रामाण्यम्' के अनुसार मध्यमायु योग ही मान्य होगा।

स्पष्टायुर्वर्षादि साधन—

पूर्वोक्त आयुःस्पष्टीकरण रीति में 'योगकृद्ग्रहभागानां योगे तत्संख्ययोद्धृते' आदि के अनुसार अंशादियोगकारकग्रह—

लग्न = २५°।३३'।५३"
होरालग्न = ११।४९।४५"
शनैश्चर = ११।१५'।१२"
चन्द्र = १४°।१८'।२६"
योग = ६२।५७।१६।

इसमें योगकारक ग्रह संख्या ४ से भाग दिया तो लब्ध अंशादि = १५°।४४'। १९"। इसको दो प्रकार से मध्यायु योग सिद्ध होने के कारण द्वितीय खण्ड ३६ से गुणा किया तो गुणनफल = ५४०°।६६०'।२८५" = ५५१°।४'।४५" = ५५१° + $\frac{४'}{६०} + \frac{४५''}{३६००}$ = ५५१° + $\frac{१°}{१५} + \frac{१°}{८०}$।

इसमें ३० से भाग देने पर लब्धवर्ष = १८।

वर्षावशेष = $\frac{११ + \frac{१}{१५} + \frac{१}{८०}}{३०}$ को १२ से गुणा करने पर

मासात्मक = १२ $\left(\frac{११ + \frac{१}{१५} + \frac{१}{८०}}{३०}\right)$ = २ $\left(\frac{११ + \frac{१}{१५} + \frac{१}{८०}}{५}\right)$

= $\frac{२२ + \frac{२}{१५} + \frac{१}{४०}}{५}$, प्रथम खण्ड में भाग-देने पर लब्ध मास = ४ मासावशेष

= $\frac{२ + \frac{२}{१५} + \frac{१}{४०}}{५}$ को ३० से गुणा किया तो दिनात्मक = ३० $\left(\frac{२ + \frac{२}{१५} + \frac{१}{४०}}{५}\right)$

६ $\left(२ + \frac{२}{१५} + \frac{१}{४०}\right)$ = १२ + $\frac{१२}{१५} + \frac{३}{२०}$ = १२ + $\frac{४}{५} + \frac{३}{२०}$ अतः लब्धदिन = १२।

दिनावशेष = $\frac{४}{५} + \frac{३}{२०}$ को ६० से गुणा किया तो घट्यात्मक = ६० $\left(\frac{४}{५} + \frac{३}{२०}\right)$ = ४८ + ९ = ५७ = घटी।

अतः लब्ध वर्षादि = १८।४।१२।५७।००। इसे दो योग सम्बद्ध मध्यायु वर्ष ७२ से घटाने पर ७२—(१८।४।१२।५७।०) = ५३।७।१७।३।०। = स्पष्टायु वर्षादि।

विशेष—

सन्दे योगकरे कक्ष्याह्रासो वृद्धिर्मता परैः ।
नहि स्वभोच्चगे नो वा क्रूरमात्रान्वितेक्षिते ॥ ४७ ॥
गुरौ विलग्नसद्गे केवलं सद्युतेक्षिते ।
कक्ष्योपचितिरुक्तस्यायुषो जायेत सत्तम ॥ ४८ ॥

शनि के योगकारक होने पर कक्ष्या का ह्रास होता है परन्तु कतिपय आचार्यों ने योगकारक शनि में कक्ष्या की वृद्धि कही है। यह ह्रास-वृद्धि, शनि यदि स्वगृही या स्वोच्चस्थ हो अथवा पापग्रहमात्र से युतदृष्ट हो तो, नहीं होती है। अर्थात् यथावत् कक्ष्या रह जाती है।

लग्न या सप्तम में गुरु हो तथा केवल शुभग्रह से ही युतदृष्ट हो तो कक्ष्या की वृद्धि होती है ॥ ४७–४८ ॥

कक्ष्याह्रासवृद्धि का लक्षण—

निरायुष्यल्पमायुः स्यादल्पायुषि तु मध्यमम् ।
मध्यमायुषि दीर्घं च दीर्घायुष्यमितं मतम् ॥ ४९ ॥
कक्ष्यावृद्धिर्गुरौ त्वेवं जायते योगकारके ।
अतो विपर्ययेणैव कक्ष्याह्रासोऽर्कजे मतः ॥ ५० ॥

कक्ष्यावृद्धि की स्थिति में अनायु में अल्पायु, अल्पायु में मध्यायु, मध्यायु में दीर्घायु, और दीर्घायु में अमितायु होती है। गुरु के योगकारक होने पर कक्ष्यावृद्धि और शनि के योगहेतु में कक्ष्या का ह्रास अर्थात् अमितायु में दीर्घायु, दीर्घायु में मध्यायु, मध्यायु में अल्पायु, और अल्पायु में हीनायु, समझना चाहिए ॥ ४९–५० ॥

मैत्रेय उवाच—

भगवन्नायुषो नानाभेदास्तु भवतोदिताः ।
कियन्तस्ते कदाऽनायुरधिकायुश्च जातकः ॥ ५१ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन् आप ने आयु के अनेक प्रकार बतलाए, परन्तु वे सब कितने हैं और कब अनायु या अधिकायु योग होता है, कृपया बतलावें ॥ ५१ ॥

पराशर उवाच—

सप्तधायुर्मतं बालारिष्टं योगजरिष्टकम् ।
अल्पमध्यमदीर्घं च दिव्यं चामितमेव च ॥ ५२ ॥
बालारिष्टेऽष्टवर्षाणि नखाब्दा योगरिष्टके ।
दीर्घे विंशोत्तरशतं दिव्ये दशशताब्दकम् ॥ ५३ ॥
अमितायुस्ततोऽग्रे स्यात् पुण्यवद्भिरवाप्यते ।

बालारिष्ट, योगजरिष्ट, अल्प, मध्यम, दीर्घ, दिव्य, तथा अमित ये सात प्रकार के आयुर्दाय हैं। बालारिष्ट में ८ वर्ष, योगारिष्ट में २० वर्ष, दीर्घायु में १२० वर्ष, दिव्यायु में १००० वर्ष, अमितायु में सहस्राधिक वर्ष जो पुण्यवान् को ही प्राप्त होता है ॥ ५२–५३½ ॥

अमितदिव्ययुगान्तायुर्योग—

कर्कोदये शशिगुरू केन्द्रगौ बुधभार्गवौ ।
शेषास्त्रिलाभरिपुगा अमितायुःप्रदा ग्रहाः ॥ ५४ ॥
क्रूरास्त्रिलाभरिपुगाः केन्द्रकोणगताः शुभाः ।
निधने शुभराशिस्थे दिव्यायुः स्यान्नरस्तदा ॥ ५५ ॥
जीवे केन्द्रे गोपुरांशे सिते पारावतांशके ।
त्रिकोणे कर्कटतनौ जातो जीवेद् युगावधि ॥ ५६ ॥
पारावतांशके भौमे देवलोकांशके शनौ ।
जीवे सिंहासने लग्ने जातको मुनिसन्निभः ॥ ५७ ॥

कर्क लग्न में चन्द्रमा, गुरु हों बुध, शुक्र केन्द्रगत हों, शेष ग्रह त्रिषडाय स्थित हों तो जातक अमितायु होता है। पापग्रह त्रिषडाय में और शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों और अष्टम भाव शुभग्रह की राशि हो तो जातक दिव्य आयुर्दाय वाला होता है। केन्द्रस्थ गुरु गोपुरांश में और त्रिकोणस्थ शुक्र पारावतांश में हो और कर्क लग्न रहे तो जातक युगान्तावधि जीवित रहता है। मंगल पारावतांश में शनि देवलोकांश में सिंहासनस्थ गुरु लग्न में हों तो जातक मुनिसदृश आयुवाला होता है ॥ ५४–५७ ॥

पूर्णायुर्योग—

सुयोगादायुषो वृद्धिः कुयोगाद्धानिरिष्यते ।
तस्माद्योगा उदीर्यन्ते पूर्णमध्याल्पकारकाः ॥ ५८ ॥
सौम्यखेटान्विते केन्द्रे सशुभे लग्नपे सति ।
किंवा जीवेक्षिते तत्र पूर्णायुः स्यान्नृणां तदा ॥ ५९ ॥
लग्नपे केन्द्रगे जीवभार्गवाभ्यां समन्विते ।
वीक्षिते वा वदेदायुः पूर्णमेव न संशयः ॥ ६० ॥
ग्रहैस्त्रिभिस्तु तुङ्गस्थैस्तनुरन्ध्राधिपान्वितैः ।
पापैर्विवर्जिते मृत्यौ पूर्णायुर्नियतं तदा ॥ ६१ ॥
त्रिभिर्ग्रहैस्तु रन्ध्रस्थैः स्वर्क्षतुङ्गसुहृद्गगैः ।
बलाढ्ये लग्नपे चापि दीर्घमायुः स्मृतं तदा ॥ ६२ ॥

स्वर्क्षतुङ्गगतेनापि केनचिद् द्युचरेण चेत् ।
युतो रन्ध्रपतिर्वापि मन्दो दीर्घायुरादिशेत् ॥ ६३ ॥

त्र्यरिलाभगतैः क्रूरैः सद्ग्रहैः केन्द्रकोणगैः ।
बलाढ्ये लग्नपे दीर्घं दिशेदायुरसंशयम् ॥ ६४ ॥

मदारिमृत्युभावस्थै ग्रहैः सौम्यैर्द्विजोत्तम ! ।
दुश्चिक्यायगतैः क्रूरैः पूर्णमायुर्नृणां भवेत् ॥ ६५ ॥

क्रूरैररिव्ययगतैः केन्द्रगे लग्नपे सति ।
मृतिपे सूर्यसुहृदि पूर्णायुः स्यान्न संशयः ॥ ६६ ॥

क्रूरा रन्ध्रस्थिताः कर्मभावेशश्चेत् स्वतुङ्गगः ।
दीर्घमायुस्तदापि स्याज्जातकस्य न संशयः ॥ ६७ ॥

द्विस्वभावस्थिते लग्ने लग्नपे केन्द्रगे सति ।
स्वर्क्षे तुङ्गे त्रिकोणे वा दीर्घायुर्जायते जनः ॥ ६८ ॥

तनौ तु द्विस्वभावस्थे बलिनो लग्नपाद्यदि ।
क्रूरौ केन्द्रगतौ स्यातां तर्हि दीर्घायुरादिशेत् ॥ ६९ ॥

सुयोग रहने पर आयु की वृद्धि और कुयोग से आयु की हानि होती है, अतः दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु कारक योगों को बतलाता हूँ। केन्द्र सद्ग्रह युक्त और लग्नेश भी शुभग्रहान्वित हो या गुरु से देखे जाते हों तो जातक पूर्णायु होता है। गुरु शुक्र युक्त लग्नेश केन्द्रगत हो या केन्द्रगत लग्नेश गुरु-शुक्र-दृष्ट हों तो भी जातक पूर्णायु होता है। लग्नेश और अष्टमेश से युक्त तीन ग्रह अपने-अपने उच्चस्थानगत हों और अष्टमस्थान पापग्रह-वर्जित हो तो निश्चय ही जातक पूर्णायु होवे। अष्टमस्थ तीन ग्रह स्वभवन, स्वोच्च स्वमित्रक्षेत्रस्थ हों और लग्नेश भी प्रबल हों तो जातक दीर्घायु होवे। अष्टमेश या शनि किसी भी स्वगृही या अपने उच्च में स्थित ग्रह के साथ हों तो जातक दीर्घायु होता है। पापग्रह ३,६, ११, में और शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों और लग्नेश भी प्रबल हों तो निःसन्देह जातक दीर्घायु होता है। शुभग्रह ६।७।८ भावों में, और पापग्रह ३।११ में हों तो जातक दीर्घायु होता है। पापग्रह ६।१२ में, लग्नेश केन्द्र में और अष्टमेश सूर्य के मित्र हों तो जातक दीर्घायु होता है। पापग्रह अष्टम में और कर्मेश अपने उच्चगत हों तो जातक दीर्घायु होता है। लग्न द्विस्वभावराशि का हो और लग्नेश केन्द्र, स्वभवन, स्वोच्च या त्रिकोण में हों तो भी जातक दीर्घायु होता है। लग्न द्विस्वभाव राशि का हो और बली लग्नेश से दो पापग्रह केन्द्र में हों तो जातक दीर्घायु होता है ॥ ५८—६९ ॥

दीर्घमध्याल्पायुर्योग—

लग्नरन्ध्रपयोर्मध्ये ग्रहो यः स्याद् बलाधिकः ।
तस्मिंश्च केन्द्रगे दीर्घमायुर्जातस्य निश्चितम् ॥ ७० ॥
मध्यमं स्यात् पणफरे स्थित आपोक्लिमेऽल्पकम् ।
लग्नपे सूर्यसुहृदि स्याद्दीर्घं तु समे समम् ॥ ७१ ॥
स्वल्पमायू रिपौ तद्वद्वेद्यं रन्ध्राधिपादपि ।
सुहृत्समारिराशिस्थे तत्रैवं फलमादिशेत् ॥ ७२ ॥

लग्नेश, अष्टमेश के बीच जो अधिक बलशाली हो वह केन्द्रगत हो तो दीर्घायु, पणफरस्थ हो तो मध्यायु, और आपोक्लिमस्थ हो तो अल्पायु जातक होता है । लग्नेश सूर्य के मित्र हो तो दीर्घायु, सम हो तो मध्यायु और शत्रु हो तो अल्पायु कहना चाहिए । इसी तरह अष्टमेश से भी फलादेश करना चाहिए । लग्नेश और अष्टमेश अपने क्षेत्र में हों तो दीर्घायु, समराशिगत हों तो मध्यायु और शत्रुराशिस्थ हों तो अल्पायु जातक होता है ॥ ७०–७२ ॥

अल्पायुर्योग—

त्रिक्रमेशकुजौ द्वौ वा मृत्युनाथार्कनन्दनौ ।
क्रूरेक्षितयुतावस्तौ वा तदाल्पायुरादिशेत् ॥ ७३ ॥
रिपौ रन्ध्रेऽथवा रिष्फे सक्रूरे लग्नपे सति ।
सद्दृष्टियुतिहीने तु स्वल्पायुर्वाप्यसन्ततिः ॥ ७४ ॥
यदि केन्द्रगताः क्रूराः सौम्यखेटैरवीक्षिताः ।
निर्बलो लग्नपश्च स्यात् जातोऽत्राल्पायुरीरितः ॥ ७५ ॥
धने सपापे रिष्फे च सद्ग्रहेक्षणवर्जिते ।
सत्खेटयुतिहीने च स्वल्पमायुर्विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
निर्बलौ लग्नमृतिपावस्तनीचादिगौ यदि ।
तदाल्पायुः, सदसतोर्योगान्मध्यायुरीरितम् ॥ ७७ ॥

विक्रमेश तथा मङ्गल ये दोनों या अष्टमेश एवं शनि, पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हों अथवा अस्तंगत हों तो जातक अल्पायु होता है । ६, ८, या १२ में सपाप लग्नेश हो और उस पर शुभग्रह का संयोग या दृष्टि नहीं हो तो जातक अल्पायु या निःसंतान होता है । केन्द्रस्थ पापग्रहों पर शुभग्रहों की दृष्टि यदि नहीं हो और लग्नेश दुर्बल हो तो जातक अल्पायु होता है । द्वितीय तथा द्वादश पापग्रह युक्त हो शुभग्रहों की दृष्टि या संयोग उन पर नहीं हो तो भी जातक अल्पायु होता है । लग्नेश, अष्टमेश,

दोनों अस्तंगत या नीचादिस्थानस्थित हों तो जातक अल्पायु होता है, किन्तु शुभाशुभ-ग्रहों के योग होने पर मध्यायु कहना चाहिए ॥ ७३—७७ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
आयुर्दायाध्यायः समाप्तः ॥ ४४ ॥

अथ मारकभेदाध्यायः ॥ ४५ ॥

मैत्रेय उवाच—

भगवन् ! विविधा योगा श्राविता भवता पुरा ।
अधुना ब्रूहि कृपया भेदान् मारकसम्भवान् ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन् ! आपने बहुत से आयुर्योग बतलाए। अब कृपया मारक ग्रहों के भेद बतलावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

अतः परं च ते वच्मि शृणु मारकलक्षणम् ।
यज्ज्ञानतो नृणामायुर्निर्णये स्युर्बुधाः क्षमाः ॥ २ ॥
त्रिविधाश्चायुषो योगाः स्वल्पायुर्मध्यमोत्तमाः ।
द्वात्रिंशत् पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत् ॥ ३ ॥
चतुष्षष्ट्याः पुरस्तात्तु, ततो दीर्घमुदाहृतम् ।
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं ज्ञातव्यं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥
चतुर्विंशति-वर्षान्तमायुर्ज्ञातुं न शक्यते ।
जपहोमचिकित्साद्यैर्बालरक्षां च कारयेत् ॥ ५ ॥
पितृदोषैर्मातृदोषैर्म्रियन्ते केचिदन्यथा ।
स्वकीयारिष्टयोगाच्च, त्रिविधा बालमृत्यवः ॥ ६ ॥

पराशर ने कहा—अब मैं कारक लक्षण बतलाता हूँ, सुनो ! इससे आयु के निर्णय करने में पण्डितगण क्षम हो सकेंगें। स्वल्पायु, मध्यमायु, उत्तमायु ये त्रिविध आयुर्योग कहे गए हैं। ३२ वर्ष तक अल्पायु, ३२ से ६४ वर्ष तक मध्यायु, और ६४ के बाद दीर्घायु। शत वर्ष से अधिक आयु को उत्तमायु कहा गया है। २४ वर्ष पर्यन्त चूंकि आयुर्ज्ञान नहीं किया जा सकता है, अतः तबतक जप, होम, चिकित्सा आदि के द्वारा बालकों की रक्षा करनी चाहिए। कतिपय बच्चे पितृदोष से कई एक मातृदोष से मर जाते हैं, और अन्य बच्चे अपने बालारिष्ट के कारण मरते हैं। इस प्रकार बच्चों की मृत्यु में त्रिविध कारण होते हैं ॥ २—६ ॥

मारकस्थान—

तनो रन्ध्रं तृतीयञ्च स्थानद्वितयमायुषः।
तद्व्ययस्थं द्वितीयं तु सप्तमं चापि मारकम् ॥ ७ ॥
सप्तमापेक्षया तत्र द्वितीयं प्रबलं मतम्।
एतयोरधिपौ वैतत्स्थानगा अशुभास्तथा ॥ ८ ॥
एतदीशयुताश्चापि मारकाख्याः समे स्मृताः।
दशान्तरदशास्वेषां नृणां मरणसम्भवः ॥ ९ ॥
अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च ॥ १० ॥
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने ॥ ११ ॥
सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु ॥ १२ ॥
मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः ॥ १३ ॥

लग्न से अष्टम और तृतीय आयु का स्थान है। आयुःस्थान से बरहवाँ (लग्न से दूसरा और सातवाँ) मारक स्थान कहलाता है। इन दोनों में भी सप्तम स्थान की अपेक्षा दूसरा अधिक प्रबल होता है। मारक स्थानों के अधिप (मारकेश) या मारकस्थान में प्राप्त पापग्रह, और मारकेश के साथ रहने वाले ग्रह, सभी मारक संज्ञक होते हैं। इन्हीं मारकों की दशा एवं अन्तर्दशा में मनुष्यों का मरण सम्भव होता है। आयुर्दाय योगानुसार मारक के समय नहीं प्राप्त होने पर कभी-कभी द्वादशेश से सम्बद्ध शुभग्रहों की दशा में भी मरण हो जाता है। कभी केवल पापग्रह की दशा में ही मरण सम्भव है। इस प्रकार मारकेश के अभाव में विद्वद्गण कल्पना से मरणकारक का निश्चय करें। मारकग्रह अपने साथ सम्बन्ध रहने पर शुभग्रह (त्रिकोणेश) की अन्तर्दशा में नहीं मारता प्रत्युत बिना सम्बन्ध के भी पापग्रह की अन्तर्दशा में वह मारक होता है। मारकेश के साथ सम्बन्ध रहने पर पापकारी शनि अन्य सभी मारकों को हटाकर खुद मरणकारक होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ७–१३ ॥

अन्य मारकलक्षण—

अथापरं च ते वच्मि शृणु मारकलक्षणम्।
अल्पायुर्योगजातस्य विपत्तारा मृतिप्रदा ॥ १४ ॥

प्रत्यरौ मृतिमाप्नोति मध्यायुर्योगजातकः ।
दीर्घायुर्योगजातानां वधभे तु मृतिर्भवेत् ॥ १५ ॥
षष्ठद्रेष्काणपश्चैव तथा वैनाशिकाधिपः ।
विपत्ताराप्रत्यरीशा वधभेशास्तथैव च ॥ १६ ॥
आद्यन्तपौ च विज्ञेयौ चन्द्राक्रान्तगृहात्तथा ।
पापग्रहौ मारकौ चेच्छुभौ तावामयप्रदौ ॥ १७ ॥
षष्ठाधिपदशायां च निधनं प्रायशो नृणाम् ।
षष्ठाष्टरिष्फनाथानामपहारे मृतिर्द्विज ! ॥ १८ ॥
मारका बहवः खेटा यदि वीर्यसमन्विताः ।
तत्तद्दशान्तरे विप्र ! रोगकष्टादिसम्भवः ॥ १९ ॥
मारका ये निगदितास्तेषां यः प्रबलो भवेत् ।
स एव तु यथावस्थं मृत्युदो वामयप्रदः ॥ २० ॥

अब मैं दूसरा मारक लक्षण बतलाता हूँ सुनो । अल्पायु योगोत्पन्न जातक की विपत्तारा (तृतीय) मृत्युप्रद होती है । मध्यायुर्योगजात व्यक्ति प्रत्यरि तारा में, और दीर्घायु योगवाला व्यक्ति वध नामक तारा में मरता है । षष्ठ द्रेष्काणेश तथा विनाशनक्षत्र (जन्म नक्षत्र से २३ वाँ) का स्वामी, विपत् प्रत्यरि तथा बध-संज्ञक ताराओं का अधिप, एवम् चन्द्राधिष्ठित राशि से दूसरे तथा द्वादश के स्वामी, दोनों यदि पापी हों तो ये सभी मारक होते हैं । शुभग्रह वे दोनों हों तो कष्टप्रद होते हैं । प्रायः मनुष्यों की मृत्यु षष्ठेश की दशा में सम्भव होती है । षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश की अन्तर्दशा मारकेश की दशा में जब प्राप्त हो तब मृत्यु की विशेष सम्भावना होती है । यदि बहुत से मारकग्रह बली हों तो उनकी दशा अन्तर्दशा में मरण या कष्ट रोग आदि की सम्भावना होती है । सभी उक्त मारकों में जो सर्वाधिक प्रबल हो, वही अपनी अवस्थानुसार जातक का मरण अथवा कष्ट देनेवाला होता है ॥ १४–२० ॥

तमोग्रह की मारकता—

तनावस्तेऽष्टमे रिष्फे भवेतां चेत्तमोग्रहौ ।
अथवास्ते मारकेशाद् मारकाधिपसंगतौ ॥ २१ ॥
मारकौ तौ तु विज्ञेयौ दशान्तरदशास्वपि ।
अलौ नक्रे यस्य जन्म तस्य राहुस्तु मारकः ॥ २२ ॥
राहुर्निजदशामध्ये रिपुरन्ध्रव्ययस्थितः ।
न सद्ग्रहेक्षितयुतस्तदा कष्टकरः स्मृतः ॥ २३ ॥

तमोग्रह (राहु-केतु) लग्न, सप्तम, अष्टम, द्वादश में अथवा मारकेश से सप्तम में या मारकेश के साथ हों तो वे मारक होते हैं। वृश्चिक, मकर में जिसका जन्म हो उसके लिए राहु मारक होता है। ६।८।१२ में स्थित राहु यदि शुभग्रहों की दृष्टि या संयोग से रहित हो तो कष्टकारक होता है ॥ २१–२३ ॥

तीसरे स्थान से मरण का कारणज्ञान—

तृतीये लग्नतोऽर्केण सबलेन समन्विते।
भवेन्मैत्रेय! जातस्य मरणं नृपहेतुकम् ॥ २४ ॥
तृतीये चन्द्रयुग्दृष्टे मरणं राजयक्ष्मणा।
व्रणेन वाग्निशस्त्राद्यैर्भौमेन तु मृतिर्भवेत् ॥ २५ ॥
मन्दागुयुतदृष्टे वा तृतीये तु मुने! विषात्।
जलादनलदाहाद् वा गर्त्ते निपतनादपि ॥ २६ ॥
बन्धनादुच्चपाताद्वा मृतिर्जातस्य सम्भवेत्।
सेन्दुना गुलिकेनैवं तत्र युक्तेऽथवेक्षिते ॥ २७ ॥
निधनं कृमिकुष्ठादिसम्भवं निश्चितं भवेत्।
तृतीये ज्ञेक्षितयुते भवति ज्वरतो मृतिः ॥ २८ ॥
तत्र जीवेक्षितयुते शोफप्रभृतितो मृतिः।
कवियुक्तेक्षिते तत्र प्रमेहाद्वा मृतिर्भवेत् ॥ २९ ॥
तत्रानेकग्रहयुते मृतिर्विविधहेतुभिः ॥ ३० ॥

लग्न से तीसरे में प्रबल सूर्य हो तो जातक का मरण राजा के कारण होता है। तृतीय स्थान में चन्द्रमा का योग या दृष्टि हो तो राजयक्ष्मा से मृत्यु होती है। वही तृतीय भाव भौम से युत दृष्ट हो तो व्रण, शस्त्र या अग्नि से, शनि, राहु से युत-दृष्ट होने पर विष, जल, अग्निदाह, गर्त्त में गिरने, या ऊँची जगह से गिरने या बन्धन से जातक की मृत्यु होती है। तृतीय भाव सचन्द्रमान्दि से दृष्ट या युक्त हो तो कृमि या कुष्ठ से निश्चय ही मरण होता है। बुध से युत-दृष्ट तृतीय भाव हो तो ज्वर से मृत्यु होती है। तृतीयस्थान गुरु से युत-दृष्ट हो तो शोफ आदि रोगों से, शुक्र से युत-दृष्ट होने पर प्रमेह से जातक की मृत्यु होती है। अनेक ग्रहों के योग या दृष्टि होने पर अनेक कारणों से मृत्यु कहनी चाहिए ॥ २४–३० ॥

मरणदेश—

तृतीये शुभयोगेन शुभदेशे मृतिर्भवेत्।
पापेन कीकटे देशे मिश्रैर्मिश्रस्थले मृतिः ॥ ३१ ॥

तृतीय भाव में शुभग्रह के संयोग से तीर्थादि शुभस्थान में, पापग्रह के योग से

दुःस्थान (शास्त्रगर्हित) में और शुभ-पाप दोनों के संयोग से मध्यम स्थान में मृत्यु कहनी चाहिए ॥ ३१ ॥

ज्ञानपुरस्सर मरण—

तृतीये गुरुशुक्राभ्यां युते ज्ञानेन वै मृतिः ।
इतरैर्द्युचरैर्युक्ते त्वज्ञानेन स्मृता हि सा ॥ ३२ ॥

गुरु-शुक्र तृतीयस्थ हों तो ज्ञानपूर्वक मरण होता है । अन्य ग्रहों से युक्त तृतीय के रहने पर अज्ञान से मृत्यु होती है ॥ ३२ ॥

तृतीयगे तु चरभे मृतिः स्यादन्यदेशजा ।
स्थिरभे स्वगृहे ज्ञेया द्विभे जायेत वर्त्मनि ॥ ३३ ॥

तृतीय भाव में चरराशि हो तो जातक की मृत्यु परदेश में होती है । स्थिर राशि में अपने घर पर और द्विस्वभाव राशि तृतीय भाव में हो तो रास्ते में ही मृत्यु हो जाती है ॥ ३३ ॥

अन्यथा मरण निमित्त—

लग्नतो रन्ध्रतो मृत्योर्निमित्तं सद्भिरीरितम् ।
रवौ रन्ध्रगते वह्नेर्मृतिरिन्दौ तु वारिणा ॥ ३४ ॥
भूमिजे शस्त्रतः सौम्ये ज्वराज्जीवे तु रोगतः ।
कवौ तु क्षुधया मन्दे मृतिः स्यात्तु पिपासया ॥ ३५ ॥

लग्न तथा अष्टम स्थान से मरण का निमित्त कहा गया है । रवि यदि अष्टमस्थ हो तो अग्नि से, चन्द्रमा यदि रन्ध्रस्थ रहे तो जल से, मंगल के वहाँ रहने पर शस्त्र से, बुध रहें तो ज्वर से, गुरु हों तो रोग से, शुक्र अष्टमस्थ हों तो क्षुधा से और शनि यदि वहाँ रहें तो प्यास से मृत्यु होती है ॥ ३४–३५ ॥

मरणानन्तर शवस्थिति—

असत्सन्मिश्रखेटानां द्रेष्काणै रन्ध्रभस्थितैः ।
शवस्यान्ते परिणतिर्भसितक्लेदशोषणैः ॥ ३६ ॥
अहिवर्गदृक्काणैस्तु श्वानगोमायुभिर्भवेत् ।
शवस्य भक्षणं किंवा गृध्रादिकविहगङ्गमैः ॥ ३७ ॥

अष्टम भाव में क्रूरग्रह का द्रेष्काण हो तो शव का परिणाम अग्नि में जलने से भस्म, शुभग्रह का द्रेष्काण हो तो जल में प्रक्षेप से क्लिन्नता, और मिश्रग्रह का द्रेष्काण अष्टमस्थ हो तो शव का परिणाम शोषण अर्थात् शव सूख जाता है । यदि सर्प का द्रेष्काण हो तो कुत्ते आदि हिंसक जन्तुओं या गीध आदि पक्षियों के द्वारा शव भक्षित होता है ॥ ३६–३७ ॥

सर्पद्रेष्काण—

मध्योऽन्तिमः कुलीरे स्यादलौ चादिममध्यमौ ।
झषे तथान्तिमस्त्र्यंशैरहिवर्गा उदीरिताः ॥ ३८ ॥

कर्क में दूसरा तथा तीसरा, वृश्चिक में प्रथम तथा दूसरा, मीन में तीसरा द्रेष्काण सर्प द्रेष्काण कहलाता है ॥ ३८ ॥

पूर्वजन्मस्थान—

सूर्याचन्द्रमसोर्मध्ये यो बलाढ्यो भवेद् द्विज ! ।
स चेज्जीवदृक्काणस्थो जातस्वर्गात् समागतः ॥ ३९ ॥
चन्द्रकव्योरिन्दुलोकाद् मर्त्यलोकादिनारयोः ।
शनिज्ञयोस्तु निलयादिति जन्माङ्गतो वदेत् ॥ ४० ॥

सूर्य-चन्द्रमा में बली ग्रह गुरु द्रेष्काणस्थ हो तो जातक स्वर्गलोक से यहाँ आया है ऐसा समझना । चन्द्र, शुक्र के द्रेष्काणस्थ हो तो चन्द्रलोक से, शनि, भौम के द्रेष्काण में हो तो मर्त्यलोक से, और शनि, बुध के द्रेष्काणगत होने पर नरक से आया समझना चाहिए ॥ ३९–४० ॥

मरणानन्तर स्थिति—

क्रमाज्जीवः कवीन्दू च कुजार्कौ बुधसूर्यजौ ।
सुरेन्दुभूमिनरकान् नेतारोऽरिमदाष्टगाः ॥ ४१ ॥
रिपुरन्ध्रदृक्काणेशमध्ये यः प्रबलो ग्रहः ।
स स्वं लोकं नयेदन्ते चेन्न तत्र ग्रहस्थितिः ॥ ४२ ॥

गुरु, शुक्र चन्द्र, कुज रवि, बुध शनि, ये ६।७।८ स्थानों में प्राप्त होने पर जातक क्रमशः देवलोक, चन्द्रलोक, मर्त्यलोक तथा नरकलोक को मरणानन्तर जाता है । अर्थात् लग्न से ६।७।८ स्थानों में से कहीं भी गुरु रहे तो जातक मरणानन्तर देवलोक में जायगा ऐसा समझना । उन स्थानों में अधिक ग्रह होने पर बलीग्रह से यह विचार करना चाहिए । यदि उपर्युक्त ६।७।८ में ग्रहाभाव हो तो षष्ठाष्टम भाव के द्रेष्काणेश में बलवान् ग्रह के लोक में मरणानन्तर जाता है ॥ ४१–४२ ॥

स्वतुङ्गादिस्थितेस्तस्योत्तममध्यावराः क्रमात् ।
तत्तल्लोकान्तरे नृणां स्थितयो गदिता बुधैः ॥ ४३ ॥

उक्त ग्रह के उच्चादिस्थानों में रहने से परलोक में भी उत्तम, सम के घर में रहने पर मध्यम, नीचादि स्थानों में रहने पर अधम स्थान प्राप्त होगा ऐसा समझना चाहिए ॥ ४३ ॥

मारकस्येतरे भेदा ये तु राशिग्रहोत्थिताः ।
वक्ष्यामि तान् दशाध्यायावसरे ते द्विजोत्तम ॥ ४४ ॥

राशिग्रहजन्य मारकों का भेद दशाध्याय वर्णन के अवसर पर बतलाऊँगा ॥४४॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
मारकभेदाध्यायः समाप्तः ॥ ४५ ॥

अथ ग्रहावस्थाफलाध्यायः ॥ ४६ ॥

मैत्रेय उवाच—

यदवस्थानुसारेण फलमुक्तं खचारिणाम् ।
सभेदां तामवस्थां तु कृपया कथय प्रभो ! ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—अवस्थानुसार ग्रहों का जो फलादेश किया गया है, हे प्रभो ! कृपया उन अवस्थाओं तथा उनके भेदों को बतलावें ।

पराशर उवाच—

नानावस्थासु खेटानां मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ।
बालप्रभृतयो मुख्यास्ता ब्रवीमि शृणु द्विज ! ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—ग्रहों की अनेकविध अवस्थाओं में बाल आदिक अवस्थाएं मुख्य हैं, जिन्हें मैं बतलाता हूँ । हे प्रिय ! उन अवस्थाओं को आप सुनें ॥ २ ॥

सफलबालाद्यवस्था—

षड्भिरंशैः क्रमादोजे समेस्याद् व्युत्क्रमान्मुने ।
ग्रहो बालः कुमारश्च युवा वृद्धो मृतस्तथा ॥ ३ ॥
बाले फलं चतुर्थांशमर्धं कौमारके स्मृतम् ।
पूर्णं तु मरणे किञ्चिद् वृद्धे शून्यं मृते ग्रहे ॥ ४ ॥

विषम राशियों में छे-छे अंशों से ग्रहों की बाल, कुमार, युवा, वृद्धतथा मृत ये पांच अवस्थाएं क्रमशः होती हैं । सम राशियों में छे-छे अंशों से विपरीतक्रम से (मृत, वृद्ध, युवा, कुमार, बाल) अवस्थाएं समझनी चाहिए । बाल्यावस्था-स्थित ग्रहफल चतुर्थांश, कुमारावस्था का आधा, युवावस्था में पूरा, वृद्धावस्थापन्न ग्रह का फल अत्यल्प मात्र, और मृतावस्थापन्न ग्रह का शून्य फल होता है ॥ ३—४ ॥

सफल जाग्रदाद्यवस्था—

निजर्क्षतुङ्गपो जाग्रत् स्वप्नो मित्रसमर्क्षयोः ।
सुषुप्तिर्वैरिभे नीचे ग्रहावस्था त्रिधा मता ॥ ५ ॥
पूर्णं मध्यं तथा शून्यं जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
क्रमादेवं फलं विज्ञैः कथितं मुनिभिः पुरा ॥ ६ ॥

अपने क्षेत्र या स्वोच्च में रहने वाले ग्रह जाग्रदवस्था, मित्र या उदासीन के घरों में रहनेवाले ग्रह स्वप्नावस्था, और शत्रुक्षेत्र तथा स्वनोच में रहनेवाले सुषुप्त्यवस्था में होते हैं। जाग्रदवस्था में पूर्णफल, स्वप्नावस्था में मध्यम, तथा सुषुप्त्यवस्था में शून्यफल देनेवाले वे होते हैं ॥ ५–६ ॥

ग्रहों की दीप्ताद्यवस्था—

दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनश्च दुःखितः ।
विकलश्च खलः कोपी ग्रहावस्था नवोदिताः ॥ ७ ॥

ग्रहों की नौ अवस्थाएँ से क्रमशः दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, दीन, दुखी, विकल, खल तथा क्रुद्ध होती हैं ॥ ७ ॥

दीप्ताद्यवस्थाओं के लक्षण—

स्वोच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वर्क्षे स्वस्थोऽधिमित्रभे ।
मुदितो मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते ॥ ८ ॥
शत्रुभे दुःखितश्चाथ विकलः पापसंयुतः ।
खलः खलग्रहे ज्ञेयः कोपीस्यादर्कसंयुतः ॥ ९ ॥
जन्मकालेऽन्यथा वापि भावे यादृग् ग्रहो भवेत् ।
तद्भावजं फलं तादृग् ज्ञेयं विज्ञैर्विशेषतः ॥ १० ॥

उच्च में रहने पर ग्रह दीप्त, स्वक्षेत्र में स्वस्थ, अधिमित्रगृह में मुदित, मित्र-भवन में शान्त, उदासीन के घर में रहने पर दीन, शत्रुक्षेत्रगत होने पर दुखी, पाप-ग्रहयुक्त होने पर विकल, पापराशि में रहने पर खल और सूर्ययु रहने पर क्रुद्ध होते हैं। जन्म-समय या अन्य समय में भी ग्रह उपर्युक्त नवावस्थाओं के अनुसार ही भावजफल देते हैं ॥ ८–१० ॥

दीप्ताद्यवस्थापन्न ग्रहों का दशाफल—

पाके प्रदीप्तस्य धराधिपत्यमुत्साहशौर्यं धनवाहने च ।
स्त्रीपुत्रलाभं शुभबन्धुपूजां क्षितीश्वरान्मानमुपैति विद्याम् ॥ ११ ॥
स्वस्थस्य खेटस्य दशाविपाके स्वास्थ्यं नृपाल्लब्धधनादिसौख्यम् ।
विद्यां यशः प्रीतिमहत्त्वमाराद्दारार्थभूम्यादिजधर्ममेति ॥ १२ ॥
मुदान्वितस्यापि दशाविपाके वस्त्रादिकं गन्धसुतार्थधैर्यम् ।
पुराणधर्मश्रवणादिलाभं द्विपादियानाम्बरभूषणाप्तिम् ॥ १३ ॥
दशाविपाके सुखधर्ममेति शान्तस्य भूपुत्रकलत्रयानम् ।
विद्याविनोदान्वितधर्मशास्त्रं ... ... च ॥ १४ ॥

स्थानच्युतिर्बन्धुविरोधिता च दीनस्य खेटस्य दशाविपाके ।
जीवत्यसौ कुत्सितहीनवृत्त्या त्यक्तो जनै रोगनिपीडितः स्यात् ॥१५॥
दुःखार्दितस्यापि दशाविपाके नानाविधं दुःखमुपैति नित्यम् ।
विदेशगो बन्धुजनैर्विहीनश्चौराग्निभूपैर्भयमातनोति ॥१६॥
वैकल्ययुक्खेटदशाविपाके वैकल्यमायाति मनोविकारम् ।
मित्रादिकानां मरणं विशेषात् स्त्रीपुत्रयानाम्बरचौरपीडाम् ॥१७॥
दशाविपाके कलहं वियोगं खलस्य खेटस्य पितुर्वियोगम् ।
शत्रोर्जनानां धनभूमिनाशमुपैति नित्यं स्वजनैश्च निन्दाम् ॥१८॥
कोपान्वितस्यापि दशाविपाके पापाः समायान्ति बहुप्रकारैः ।
विद्याधनस्त्रीसुतबन्धुनाशः पुत्रादिकृच्छ्रं त्वथ नेत्ररोगः ॥१९॥

प्रदीप्तावस्थापन्न ग्रह की दशा में जातक राज्य, उत्साह, शौर्य, धन, यान, स्त्री-पुत्रलाभ, बन्धुओं तथा राजा के द्वारा सम्मान प्राप्त करता है। स्वस्थग्रह की दशा में—स्वास्थ्य, राजा से प्राप्त धनादि का सुख, विद्या, यश, प्रेम, स्त्री-धन, भूमि आदि, तथा धर्मलाभ होता है। मुदित ग्रह की दशा में वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, पुत्र, धन, धैर्य, पुराण, धर्म-श्रवणादि-जन्य लाभ, हाथी आदि सवारियों, तथा वस्त्र-भूषणों की प्राप्ति होती है। शान्तग्रह की दशा में सुख, धर्म, भूमि, पुत्र, स्त्री, मान, विद्याविनोद-युक्त धर्मशास्त्र, चिन्तन से आनन्द, प्रचुरधन तथा राजसम्मान प्राप्त होता है। दीन ग्रह की दशा में स्थानभ्रष्ट, बन्धुओं के विरुद्ध हीन वृत्ति से जीविकापन्न, लोगों से अनादृत, तथा रोगपीडित जातक होता है। दुःखित ग्रह की दशा में दुखी, परदेशी, बान्धवों से विहीन, चोर, अग्नि, तथा राजा से विभीत, जातक होता है। विकल ग्रह की दशा में जातक को मानसिक विकलता, इष्ट-मित्रों का मरण, स्त्री, पुत्र, यान-वस्त्र, तथा चोर से पीड़ा होती है। खलग्रह की दशा में कलह, पितृवियोग, शत्रुकृत धन तथा भूमि का विनाश, नित्य स्वजनों के द्वारा निन्दा होती है। क्रुद्धग्रह की दशा में अनेकविध पापकर्मों में प्रवृत्ति, विद्या, धन, स्त्री, पुत्र, बन्धु का विनाश, तथा नेत्र-पीड़ा होती है ॥ ११—१९ ॥

ग्रहों की लज्जिताद्यवस्था—

लज्जितो गर्वितश्चैव क्षुधितस्तृषितस्तथा ।
मुदितः क्षोभितश्चैव ग्रहभावाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २० ॥
पुत्रगेहगतः खेटो राहुकेतुयुतोऽपि वा ।
रविमन्दकुजैर्युक्तो लज्जितो ग्रह ईरितः ॥ २१ ॥
तुङ्गस्थानगतो वापि त्रिकोणेऽपि भवेत् पुनः ।
गर्वितः सोऽपि गदितो निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ॥ २२ ॥

शत्रुगेही शत्रुयुक्तो रिपुदृष्टो भवेद्यदि ।
क्षुधितः स च विज्ञेयः शनियुक्तो यथा तथा ॥ २३ ॥
जलराशौ स्थितः खेटः शत्रुणा चावलोकितः ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति तृषितः स उदाहृतः ॥ २४ ॥
मित्रगेही मित्रयुक्तो मित्रेण च विलोकितः ।
गुरुणा सहितो यश्च मुदितः स प्रकीर्त्तितः ॥ २५ ॥
रविणा सहितो यश्च पापाः पश्यन्ति सर्वथा ।
क्षोभितं तं विजानीयात् शत्रुणा यदि वीक्षितः ॥ २६ ॥
येषु येषु च भावेषु ग्रहास्तिष्ठन्ति सर्वथा ।
क्षुधितः क्षोभितो वापि भावानां फलघातकः ॥ २७ ॥

लज्जित, गर्वित, क्षुधित, तृषित, मुदित, क्षोभित, ये ६ अवस्थाएं ग्रहों की कथित हैं। पुत्रभावस्थ ग्रह राहु या केतु से युक्त हो अथवा सूर्य, शनि, मङ्गल में से किसी से युक्त हो तो वह (ग्रह) लज्जित कहलाता है। उच्चस्थ अथवा त्रिकोणस्थ ग्रह गर्वित कहलाता है। शत्रुक्षेत्रगत ग्रह शत्रुयुक्त या शत्रुदृष्ट हों तो क्षुधित और शनियुक्त रहने पर और भी क्षुधित कहलाता है। जलचरराशिस्थ ग्रह शत्रुदृष्ट हो और शुभग्रहों की दृष्टि से रहित हो तो तृषित कहलाता है। मित्रक्षेत्री, मित्रयुक्त अथवा मित्रदृष्ट तथा गुरु से युतदृष्ट ग्रह मुदित कहलाता है। रवियुक्त ग्रह पापग्रहों तथा शत्रु से दृष्ट हों तो क्षोभित कहलाता है। क्षुधित तथा क्षोभित ग्रह जिन-जिन भावों में रहते हैं उन-उन भावों का फल नष्ट हो जाता है ॥ २०–२७ ॥

एवंक्रमेण बोद्धव्यं सर्वभावेषु पण्डितैः ।
बलाबलविचारेण वक्तव्यः फलनिर्णयः ॥ २८ ॥
अन्योन्यं च मुदा युक्तं फलं मिश्रं वदेत् पुतः ।
बलहीने तदा हानिः सबले च महत् फलम् ॥ २९ ॥
कर्मस्थाने स्थितो यस्य लज्जितस्तृषितस्तथा ।
क्षुधितः क्षोभितो वापि स नरो दुःखभाजनम् ॥ ३० ॥
सुतस्थाने भवेद्यस्य लज्जितो ग्रह एव च ।
सुतनाशो भवेत्तस्य चैकस्तिष्ठति सर्वदा ॥ ३१ ॥
क्षोभितस्तृषितश्चैव सप्तमे यस्य वा भवेत् ।
म्रियते तस्य नारी च सत्यमाहुर्द्विजोत्तम ! ॥ ३२ ॥

इस प्रकार बलाबल विवेक से सभी भावों का फलादेश करना चाहिए। परस्पर

मोदयुक्त ग्रह सबल तथा निर्बल दोनों तरह के हों तो मिश्रफल, बलहीन हों तो फल में अल्पता तथा सबल हों तो फलाधिक्य कहना। दशम भाव में लज्जित, तृषित क्षुधित या क्षोभित ग्रह हों तो जातक अभागा, दुखी होता है। पञ्चम स्थान में लज्जित ग्रह रहें तो पुत्रनाश होता है, किन्तु एक पुत्र रहता है। सप्तम भवन में क्षोभित या तृषित ग्रह के रहने से स्त्री मर जाती है ॥ २८–३२ ॥

गर्विताद्यवस्थाफल—

नवालयारामसुखं नृपत्वं कलापटुत्वं विदधाति पुंसाम् ।
सदार्थलाभं व्यवहारवृद्धिं फलं विशेषादिह गर्वितस्य ॥ ३३ ॥
भवति मुदितयोगे वासशाला विशाला
विमलवसनभूषाभूमियोषासु सौख्यम् ।
स्वजनजनविलासो भूमिपागारवासो
रिपुनिवहविनाशो बुद्धिविद्याविकाशः ॥ ३४ ॥
दिशति लज्जितभाववशाद्रतिं विगतराममतिं विमतिक्षयम् ।
सुतगदागमनं गमनं वृथा कलिकथाभिरुचिं न रुचिं शुभे ॥३५॥
संक्षोभितस्यापि फलं विशेषाद् दारिद्र्यजातं कुमतिं च कष्टम् ।
करोति वित्तक्षयमंघ्रिबाधां धनाप्तिबाधामवनीशकोपात् ॥३६॥
क्षुधितखगवशाद्वै शोकमोहादिपातः
परिजनपरितापादाधिभीत्या कृशत्वम् ।
कलिरपि रिपुलोकैरर्थबाधा नराणा-
मखिलबलनिरोधो बुद्धिरोधो विषादात् ॥३७॥
तृषितखगभवे स्वेनाङ्गनासङ्गमध्ये
भवति गदविकारो दुष्टकार्याधिकारः ।
निजजनपरिवादादर्थहानिः कृशत्वं
खलकृतपरितापो मानहानिः सदैव ॥ ३८ ॥

गर्वितग्रह की दशा में नूतनगृह, आराम (पुष्पवाटिका) का सुख, राजत्व, कलाओं में पाटव, सतत अर्थलाभ तथा व्यापार में वृद्धि, होती है। मुदित ग्रह की दशा में विशाल भवन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, भूमि, एवं स्त्री का सौख्य, आत्मीयजनों के साथ विलास, राजभवन में निवास, शत्रु समुदाय का विनाश, तथा बुद्धि विद्या का विकाश हुआ करता है। लज्जित ग्रह की दशा में राम (ईश्वर) में अनिष्ठा, विशिष्ट मति का विनाश, पुत्र को रोग, व्यर्थ यात्रा, झगड़ा में अभिरुचि तथा शुभकृत्य में अरुचि होती है। क्षोभितावस्थापन्न ग्रह की दशा में दारिद्र्य, कुबुद्धि, कष्ट, धनक्षय,

पैर में कष्ट तथा राजकोप से धननाश होता है। क्षुधित ग्रह की दशा में शोक, मोह, आत्मीय जनों के सन्ताप के कारण मानसिक पीड़ा से दुर्बलता, शत्रुओं से विवाद, आर्थिक क्षति, सारी शक्तियों का ह्रास, और विवाद से बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। तृषित ग्रह की दशा में स्त्री के साथ सम्पर्क से रोगविकार और दुष्कार्य में प्रवृत्ति, स्वजनों के साथ विवाद के कारण अर्थक्षय, दुर्बलता, दुर्जनकृत सन्ताप तथा सतत मानहानि होती है ॥ ३३–३८ ॥

शयनाद्यवस्था—

शयनं चोपवेशं च नेत्रपाणिप्रकाशनम्।
गमनागमनं चाथ सभायां वसतिं तथा ॥ ३९ ॥
आगमं भोजनं चैव नृत्यं लिप्सां च कौतुकम्।
निद्रां ग्रहाणां चेष्टां च कथयामि तवाग्रतः ॥ ४० ॥
यस्मिनृक्षे भवेत् खेटस्तेन तं परिपूरयेत्।
पुनरंशेन सम्पूर्य स्वनक्षत्रं नियोजयेत् ॥ ४१ ॥
यातदण्डं तथा लग्नमेकीकृत्य सदा सुधः।
रविभिस्तु भजेद्यत्तु शेषं कार्ये नियोजयेत् ॥ ४२ ॥
पुनर्नाक्षत्रिकदशारीतितः पूर्त्तिमाचरेत्।
नामादिमस्वराङ्काढ्यं हर्त्तव्यं रविभिस्ततः ॥ ४३ ॥
रवौ पञ्च तथा देया इन्दौ दद्याद् द्वयं तथा।
कुजे द्वयं च संयुक्तं बुधे त्रीणि नियोजयेत् ॥ ४४ ॥
गुरौ बाणाः प्रदेयाश्च त्रयं दद्याच्च भार्गवे।
शनौ त्रयमथो देयं राहौ दद्याच्चतुष्टयम् ॥ ४५ ॥
हृतं रामेण शेषाङ्कैस्त्रिधावस्था पुनर्मता।
दृष्टिश्चेष्टा विचेष्टा च फलं तस्य ब्रवीम्यतः ॥ ४६ ॥

अब मैं ग्रहों की शयनादि १२ अवस्थाओं तथा उनकी चेष्टाओं को बतलाता हूँ। ग्रहों की (१) शयन, (२) उपवेश, (३) नेत्रपाणि, (४) प्रकाशन, (५) गमन, (६) आगमन, (७) सभानिवास, (८) आगम, (९) भोजन, (१०) नृत्यलिप्सा, (११) कौतुक (१२) निद्रा, ये बारह अवस्थाएँ हैं।

जिस नक्षत्र में ग्रह अवस्थित हों उसकी संख्या से ग्रहसंख्या को गुणाकर गुणकफल को ग्रहाश्रित नवांश संख्या से गुणा करें उसमें वर्तमान चान्द्र नक्षत्र की संख्या, इष्टदण्ड, तथा लग्न राशिसंख्या सभी को जोड़ें। पुनः योगफल में १२ से भाग लेने पर शेषाङ्क से शयनादि अवस्था समझें।

चेष्टा जानने के लिए शेषाङ्क को शेषाङ्क से ही गुणा कर गुणनफल में नाम के आदि अक्षर सम्बन्धी स्वराङ्क जोड़ें और योग में १२ से भाग दें, शेष में रव्यादि ग्रहों के क्षेपकाङ्क ५।२।२।३।५।३।३। जोड़कर ३ से भाग दें तो शेष पर से दृष्टि चेष्टा तथा विचेष्टा ये तीन चेष्टाएँ होती हैं, अर्थात् १ शेष में दृष्टि. २ शेष में चेष्टा, और ३ शेष में विचेष्टा होती हैं ॥ ३९–४६ ॥

उदाहरण—जैसे संवत् २०२९ ज्येष्ठ शुक्ल नवमी मंगलवार हस्तनक्षत्र सूर्योदय से ५ घटी कर्क लग्न में किसी का जन्म है। तात्कालिक स्पष्टसूर्य २।५।१०।१५ और स्पष्टचन्द्र = ५।९ २४।२७ है।

सूर्यराश्यादि २।५।१०।१५ मृगशिर नक्षत्र में है। अतः नियमानुसार मृगशिर की संख्या ५ को सूर्य की संख्या १ से गुणाकर गुणनफल १ × ५ = ५ को सूर्याधिष्ठित नवांश संख्या ८ से गुणा किया तो गुणनफल = ५ × ८ = ४०। इसमें जन्मनक्षत्रसंख्या १३, तथा जन्मलग्न संख्या ४ को मिलाने पर = ४० + १३ + ४ = ५७। इसमें १२ से तष्टित किया तो शेष = ९ होने से सूर्य की भोजनावस्था हुई। पुनः शेष ९ को ९ से गुणा करने पर = ९ × ९ = ८१ में जातक के पुकार के नाम (गणेश) के आदिम अक्षर-जनित स्वराङ्क ३ जोड़ दिया तो ८१ + ३ = ८४ हुआ। १२ से भाग लेने पर शेष ३ में सूर्य का क्षेपकांक ५ मिलाया तो = ८। इसमें ३ से भाग देने पर द्वितीय चेष्टा हुई ॥ ३९–४६ ॥

स्वराङ्क चक्र

१	२	३	४	५
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह

दृष्टौ साधारणफलं चेष्टायां विपुलं फलम् ।
विचेष्टायां फलं चाल्पमेवं दृष्टिफलं विदुः ॥ ४७ ॥
शुभाशुभं ग्रहाणां च समीक्ष्याथ बलाऽबलम् ।
तुङ्गस्थाने विशेषेण बलं ज्ञेयं विपश्चिता ॥ ४८ ॥

दृष्टि में अवस्था फल साधारण, और चेष्टा में प्रचुर, तथा विचेष्टा में अल्पफल होता है। ग्रहों का बलाबल देखकर ही शुभाशुभ फल कहना चाहिए ॥ ४७–४८ ॥

अवस्थानुसार सूर्य का फल—

मन्दाग्निरोगो बहुधा नराणां स्थूलत्वमंघ्रेरपिपित्तकोपः ।
व्रणं गुदे शूलमुरःप्रदेशे सत्युष्णभानौ शयनं प्रयाते ॥४९॥
दरिद्रताभारविहारशाली विवादविद्याभिरतो नरः स्यात् ।
कठोरचित्तः खलु [illegible] सूर्यो यदा चेद्[illegible] ॥५०॥

नरः सदानन्दधरो विवेकी परोपकारी बलवित्तयुक्तः ।
महासुखी राजकृपाभिमानी दिवाधिनाथो यदि नेत्रपाणौ ॥५१॥
उदारचित्तः परिपूर्णवित्तः सभासु वक्ता बहुपुण्यकर्त्ता ।
महाबली सुन्दररूपशाली प्रकाशने जन्मनि पद्मिनीशे ॥५२॥
प्रभावशाली किल दुःखमाली सदालसो धीधनवर्जितश्च ।
भयातुरः कोपपरो विशेषाद् दिवाधिनाथे गमने मनुष्यः ॥५३॥
परदाररतो जनतारहितो बहुधा गमनाऽगमनाऽभिरुचिः ।
कृपणः खलताकुशलो मलिनो दिवसाधिपतौ मनुजः कुमतिः ॥५४॥

सभागते हिते नरः परोपकारतत्परः
सदार्थरत्नपूरितो दिवाकरे गुणाकरः ।
वसुन्धरानवाम्बरालयान्वितो महाबली
विचित्रमित्रवत्सलः कृपाकलाधरः परः ॥ ५५ ॥

क्षोभितो रिपुगणैः सदा नरश्चञ्चलः खलमतिः कृशस्तथा ।
धर्मकर्मरहितो मदोद्धतश्चागमे दिनपतौ यदा तदा ॥ ५६ ॥

सदाङ्गसन्धिवेदना पराङ्गना-धनक्षयो
बलक्षयः पदे पदे यदा तदा हि भोजने ।
असत्यता शिरोऽन्यथा तथा वृथान्नभोजनं
खावसत्कथारतिः कुमार्गगामिनी मतिः ॥ ५७ ॥

विज्ञलोकैः सदा मण्डितः पण्डितः काव्यविद्यानवद्यप्रलापान्वितः ।
राजपूज्यो धरामंडले सर्वदा नृत्यलिप्सागते पद्मिनीनायके ॥ ५८ ॥
सर्वदानन्दधर्त्ता जनो ज्ञानवान् यज्ञकर्त्ता धराधीशसद्मस्थितः ।
पद्मबन्धावरातेर्भयं स्वाननः काव्यविद्याप्रलापी मुदा कौतुके ॥ ५९ ॥
निद्राभरारक्त निभे भवेतां निद्रागते लोचनपद्मयुग्मे ।
रवौ विदेशे वसतिर्जनस्य कलत्रहानिः कतिधार्थनाशः ॥ ६० ॥

सूर्य शयनावस्था में रहें तो मनुष्य को अग्निमान्द्य, पैर में मोटापन, पित्तप्रकोप, गुदा में व्रण तथा छाती में दर्द हुआ करता है। उपवेशावस्थापन्न सूर्य के होने पर जातक दारिद्रय का वहन करने वाला (दरिद्र), विद्याविवादी, कठोर हृदयवाला तथा धननाशक होता है। नेत्रपाणि अवस्थागत सूर्य हों तो जातक सदा सानन्द, विचारशील, परोपकारी, धनी, बली, महासुखी तथा राजकृपापूर्ण होता है। प्रकाशना-

वस्थापन्न सूर्य हों तो मनुष्य उदार, धनपूर्ण, सभा में बोलनेवाला, पुण्यवान् महाबली, तथा रूपवान् होता है।

गमनावस्थापन्न सूर्य हों तो जातक प्रवासी, दुःखयुक्त, सतत आलसी, बुद्धिधनरहित, विभीत, तथा क्रोधी होता है। आगमनावस्थापन्न सूर्य के होने से जातक परस्त्रीगामी, समाज से दूर, गमनशील, कृपण, दुष्ट, तथा दुर्बुद्धि होता है। सभावस्थागत सूर्य में जातक परोपकारी, सतत धन-रत्न परिपूर्ण, गुणनिधि, भूमि नवीनगृह, तथा नवीनवस्त्र से परिपूर्ण, प्रबल, मित्र प्रेमी, कृपालु तथा कलावित् होता है। आगमावस्थापन्न सूर्य हों तो मनुष्य दुश्मनों के कारण क्षुब्ध, चञ्चल दुर्मति, दुर्बल, धर्मकार्य से दूर तथा मदान्ध, होता है। भोजनावस्थापन्न सूर्य के होने से जातक को अङ्गसन्धिगत पीड़ा तथा परस्त्री प्रयुक्त धननाश, पग पग पर बलक्षय, असत्यता, शिरोवेदना, कदन्नभोजन, असत्कथा करने का प्रेमी, तथा कुमार्गगामी होता है। नृत्यलिप्सावस्थागत सूर्य में मनुष्य सतत विद्वानों से मण्डित, स्वयं पण्डित, और काव्यशास्त्रालाप में प्रवीण तथा राजवन्द्य, होता है। कौतुकावस्थागत सूर्य के होने पर जातक सतत सानन्द, ज्ञानी, यज्ञ करनेवाला राजभवनाश्रित, शत्रुभीत, सुन्दरमुख वाला तथा काव्यविद्यानुरागी होता है। निद्रावस्थापन्न सूर्य हों तो मनुष्य की दोनों आँखें निद्रा के कारण रक्ताभ होती हैं। उसका विदेश में निवास, स्त्री तथा धन का विनाश होता है ॥ ४९–६० ॥

जनुःकाले क्षपानाथे शयनं चेदुपागते।
मानी शीतप्रधानश्च कामी वित्तविनाशकः ॥ ६१ ॥

रोगार्दिता मन्दमतिर्विशेषाद् वित्तेन हीनो मनुजः कठोरः।
अकार्यकारी परवित्तहारी क्षपाकरे चेदुपवेशनस्थे ॥६२॥

नेत्रपाणौ क्षपानाथे महारोगी नरो भवेत्।
अनल्पजल्पको धूर्त्तः कुकर्मनिरतः सदा ॥ ६३ ॥

यदा राकानाथे गतवति विकाशं च जनने
विकाराः संसारे विकलगुणराशेरवनिपात्।
नवाशामाला स्यात् करितुरगलक्ष्म्या परिवृता
विभूषा योषाभिः सुखमनुदिनं तीर्थगमनम् ॥ ६४ ॥

सितेतरे पापरतो निशाकरे विशेषतः क्रूरतरो नरो भवेत्।
सदाक्षिरोगैः परिपीड्यमानो बलक्षपक्षे गमने भयातुरः ॥ ६५ ॥

विधावागमने मानी पादरोगी नरो भवेत्।
गुप्तपापरतो दीनो मतितोषविवर्जितः ॥ ६६ ॥

सकलजनवदान्यो राजराजेन्द्रमान्यो
रतिपतिसमकान्तिः शान्तिकृत्कामिनीनाम् ।
सपदि सदसि याते चारुबिम्बे शशाङ्के
भवति परमरीतिप्रीतिविज्ञो गुणज्ञः ॥ ६७ ॥
विधावागमके मर्त्यो वाचालो धर्मपूरितः ।
कृष्णपक्षे द्विभार्यः स्याद्रोगी दुष्टनरो हठी ॥ ६८ ॥
भोजने जनुषि पूर्णचन्द्रमा मानयानजनतासुखं नृणाम् ।
आतनोति वनितासुतासुखं सर्वमेव न सितेतरे शुभम् ॥ ६९ ॥
नृत्यलिप्सागते चन्द्रे सबले बलवान्नरः ।
गीतज्ञो हि रसज्ञश्च कृष्णो पापकरो भवेत् ॥ ७० ॥
कौतुकभवनं गतवति चन्द्रे भवति नृपत्वं वा धनपत्वम् ।
कामकलासु सदा कुशलत्वं वारवधूरतिरमणपटुत्वम् ॥ ७१ ॥
निद्रागते जन्मनि मानवानां कलाधरे जीवयुते महत्त्वम् ।
हीनेऽङ्गनासञ्चितवित्तनाशः शिवालये रौति विचित्रमुच्चैः ॥ ७२ ॥

जन्म समय में शयनावस्थागत चन्द्र हो तो जातक मानी शीतलस्वभाववाला, कामी तथा धननाश करने वाला होता है। उपवेशनावस्थापन्न चन्द्र के होने पर मनुष्य रोगपीड़ित, मन्दबुद्धि, धनहीन, कठोर हृदय वाला, अकर्त्तव्य करने वाला तथा परवित्तापहारक होता है। नेत्रपाणि अवस्थागत चन्द्र में जातक महारोगी, बहुत बकवादी, धूर्त्त, तथा सतत कुकर्म में संलग्न होता है। प्रकाशावस्थागत चन्द्र हों तो जातक के गुणों का विकाश राजाश्रय से होता है। हाथी, घोड़े, सम्पत्ति, आभूषण, स्त्रीसौख्य आदि से परिवृत चारों दिशाएं रहती हैं। वह जातक प्रतदिन तीर्थगमन कारी होता है। कृष्णपक्षीय चन्द्रमा गमनावस्थापन्न हो तो मनुष्य क्रूरतर स्वभाव वाला, नेत्ररोगपीड़ित, और शुक्लपक्षीय चन्द्र के होने पर भयभीत होता है। आगमनावस्थागत चन्द्रमा के होनेपर जातक मानी, पैर में रोगवाला, गुप्तरूप से पापपरायण, दीन, और बुद्धि तथा सन्तोष से रहित (निर्बुद्धि तथा असन्तोषी) होता है। सभावस्थापन्न चन्द्रमा के होनेपर जातक समस्तजनों में वरिष्ठ, राजवन्द्य, मदनसदृश कान्तिवाला, स्त्रियों को शान्ति देनेवाला, प्रीतिरीति का अभिज्ञ (प्रेमकला में निपुण) तथा गुणज्ञ होता है। आगमावस्थागत चन्द्र हों तो जातक वाचाल, धर्मात्मा, कृष्णपक्ष हो तो दो स्त्री वाला, रोगी, दुष्टतर स्वभाववाला तथा हठी होता है। भोजनावस्थापन्न चन्द्र हों तो जातक को सम्मान, वाहन, समाज, स्त्री, पुत्री, आदि के सर्वविध सौख्य प्राप्त होता है, किन्तु कृष्णपक्ष हो तो ये फल नहीं होते। नृत्यलिप्सावस्थागत सबल चन्द्र हों तो मनुष्य बलिष्ठ, गाननिपुण तथा रसवेत्ता होता

है, किन्तु कृष्णपक्ष रहे तो वह पापकारी होता है। कौतुकावस्थागत चन्द्र हों तो जातक राजा या पूर्णधनवान् होता है। वह कामकलाओं में प्रवीण वाराङ्गनाओं के साथ रमण करने में भी पटु होता है। निद्रावस्थागत चन्द्र गुरु से युक्त हों तो मनुष्य का महत्त्व समाज में होता है। गुरुरहित क्षीणचन्द्र हों तो स्त्री एवं सञ्चितधन का विनाश होता है। ऐसे जातक के घर में श्रृगाली जोर-जोर से विचित्र शब्द करती है॥ ६१—७२॥

अवस्थानुसार मंगल का फल—

शयने वसुधापुत्रे व्रणोपेतो जनो भवेत्।
बहुना कण्डुना युक्तो दद्रुणा वा विशेषतः॥ ७३॥
बली सदा पापरतो नरः स्यादसत्यवादी नितरां प्रगल्भः।
धनेन पूर्णो निजधर्महीनो धरासुतश्चेदुपवेशनस्थः॥७४॥
यदा भूमिसुतो लग्ने नेत्रपाणिमुपागतः।
दरिद्रता तदा पुंसामन्यभे नगरेशता॥ ७५॥
प्रकाशो गुणस्यापि वासः प्रकाशे धराधीशभर्त्तुः सदा मानवृद्धिः।
सुते भूसुते पुत्रकान्तावियोगो भवेद्राहुणा दारुणो वा निपातः॥७६॥
गमने गमनं कुरुतेऽनुदिनं व्रणजालभयं वनिताकलहः।
बहुदद्रुककण्डुभयं बहुधा वसुधातनयो वसुहानिकरः॥ ७७॥
आगमने गुणशाली मणिमाली वै करालकरवाली।
गजहन्ता रिपुहन्ता परिजनसन्तापहारको भौमे॥ ७८॥
तुङ्गे युद्धकलाकलापकुशलो धर्मध्वजो वित्तपः
कोणे भूमिसुते सभामुपगते विद्याविहीनः पुमान्।
अन्तेऽपत्यकलत्रमित्ररहितः प्रोक्तेतरस्थानगे
ऽवश्यं राजसभाबुधो बहुधनी मानी च दानी जनः॥७९॥
आगमे भवति भूमिजे जनो धर्मकर्मरहितो गदातुरः।
कर्णमूलगुरुशूलरोगवानेव कातरमतिः कुसङ्गमी॥ ८०॥
भोजने मिष्टभोजी च जनने सबले कुजे।
नीचकर्मकरो नित्यं मनुजो मानवर्जितः॥ ८१॥
नृत्यलिप्सागते भूसुते जन्मिनामिन्दिराराशिरायाति भूमीपतेः।
स्वर्णरत्नप्रवालैः सदा मण्डिता वासशाला नराणां भवेत् सर्वदा॥८२॥

कौतुकी भवति कौतुके कुजे मित्रपुत्रपरिपूरितो जनः ।
उच्चगे नृपतिगेहमण्डितः पूजितो गुणवरैर्गुणाकरैः ॥ ८३ ॥
निद्रावस्थांगते भौमे क्रोधी धीधनवर्जितः ।
धूर्त्तो धर्मपरिभ्रष्टो मनुष्यो गदपीडितः ॥ ८४ ॥

शयनावस्थागत भौम यदि हों तो जातक व्रण, खुजली विशेषतः दाद से युक्त होता है । उपवेशनावस्थापन्न वे हों तो मनुष्य बली, सतत पापरत, असत्यवादी पूर्णप्रगल्भ, धनी तथा स्वधर्मविमुख होता है । नेत्रपाणि अवस्थापन्न भौम लग्नगत हों तो मनुष्य दरिद्र होता है और अन्यभावगत हो तो वह नगराधीश होता है । प्रकाशावस्थागत भौम के होने से जातक के गुण का विकास, राजा से सर्वदा सम्मान होता है । पञ्चम भावगत भौम प्रकाशावस्था में हों तो स्त्री पुत्र का वियोग, राहु से युक्त हों तो उसका महान् अधःपात होता है । गमनावस्था में मङ्गल हों तो जातक प्रत्यह भ्रमणशील, व्रणसमूह से विभीत, शोकलहयुक्त, बहुधा खुजली तथा दद्रु से युक्त, और धनक्षय वाला होता है । आगमनावस्था में मङ्गल हों तो मनुष्य गुणवान् मणियों का हार धारण करने वाला, तेज खड्ग धारण करने वाला, हाथी तथा शत्रुओं को मारने वाला, और आत्मीयजनों का सन्ताप नष्ट करने वाला होता है । उच्चस्थ भौम सभावस्थापन्न हों तो जातक युद्धकलाकुशल, धर्मिष्ठ, धनी होता है । वही भौम नवम पञ्चमस्थ हों तो जातक निर्विद्य, द्वादशस्थ हों तो स्त्रीपुत्रमित्रविहीन, अन्यत्र हों तो राजपण्डित, महाधनी, मानी तथा दानी होता है । आगमावस्थागत भौम हों तो मनुष्य धर्मकर्मरहित, रोगी, कर्णमूल तथा प्रखर शूल रोग से पीडित, कायर एवं कुसङ्गतिशील होता है । भोजनावस्था में बली मङ्गल के होने पर जातक मिष्ट-भोजी, सतत नीचकर्मरत, तथा मानरहित होता है । नृत्यलिप्सावस्थापन्न भौम हों तो मनुष्य राजा से धन प्राप्त करता है । उसका घर स्वर्ण रत्न, प्रवाल आदियों से सतत अलंकृत रहता है । कौतुकावस्थापन्न भौम हों तो मनुष्य विनोदी, मित्र-पुत्र से परिपूर्ण होता है । उच्च का भौम यदि कौतुकावस्था में हों तो जातक राजा तथा गुणियों से पूजित होता है । निद्रावस्था में मङ्गल के रहने पर जातक क्रोधी, बुद्धिहीन निर्धन, धूर्त्त, धर्मभ्रष्ट तथा रोगपीडित होता है ॥ ७३–८४ ॥

अवस्थानुसार बुध का फल—

क्षुधातुरो भवेदङ्गे खञ्जो गुञ्जानिभेक्षणः ।
अन्यभे लम्पटो धूर्त्तो मनुजः शयने बुधे ॥ ८५ ॥
शशाङ्कपुत्रे जनुरङ्गगेहे यदोपवेशे गुणराशिपूर्णः ।
पापेक्षिते पापयुते दरिद्रो हिते शुभे वित्तसुखी मनुष्यः ॥ ८६ ॥
विद्याविवेकरहितो हिततोषहीनो
मानी जनो भवति चन्द्रसुतेऽक्षिपाणौ ।

पुत्रालये सुतकलत्रसुखेन हीनः
कन्याप्रजा नृपतिगेहबुधो वरार्थः ॥ ८७ ॥
दाता दयालुः खलु पुण्यकर्त्ता विकाशने चन्द्रसुते मनुस्यः ।
अनेकविद्यार्णवपारगन्ता विवेकपूर्णः खलनर्गहन्ता ॥ ८८ ॥
गमनागमने भवतो गमने बहुधा वसुधाधिपतेर्भवने ।
भवनं च विचित्रमलं रमया विदि तुश्च जनुः समये नितराम् ॥८९॥
सपदि विदि जनानामुच्चगे जन्मकाले
सदसि धनसमृद्धिः सर्वदा पुण्यवृद्धिः ।
धनपतिसमता वा भूपता मन्त्रिता वा
हरिहरपदभक्तिः सात्विकी मुक्तिलब्धिः ॥ ९० ॥
आगमे जनुषि जन्मिनां यदा चन्द्रजे भवति हीनसेवया ।
अर्थसिद्धिरपि पुत्रयुग्मता बालिका भवति मानदायिका ॥९१॥
भोजने चन्द्रजे जन्मकाले यदा जन्मिनामर्थहानिः सदा वादतः ।
राजभीत्या कृशत्वं चलत्वं मते रङ्गसङ्गो न जाया न जायासुखम् ॥९२॥
नृत्यलिप्सागते चन्द्रजे मानवो मानयानप्रबालव्रजैः संयुतः ।
मित्रपुत्रप्रतापैः सभापण्डितः पापभे वारवामारतो लम्पटः ॥९३॥
कौतुके चन्द्रजे जन्मकाले नृणामङ्गभे गीतविद्याऽनवद्या भवेत् ।
सप्तमे नैधने वारवध्वा रतिः पुण्ययुक्ता मतिः सद्गतिः ॥९४॥
निद्राश्रिते चन्द्रसुते न निद्रासुखं सदा व्याधिसमाधियोगः ।
सहोत्थवैकल्यमनल्पतापो निजेन वादो धनमाननाशः ॥९५॥

शयनावस्थापन्न बुध लग्नस्थ हों तो जातक खञ्ज (लंगड़ा) और गुञ्जा की तरह रक्तनेत्र वाला होता है । अन्य भावस्थ वे शयनावस्थागत होवें तो वह धूर्त्त तथा लम्पट होता है । उपवेशावस्थागत बुध लग्नस्थ हों तो मनुष्य गुणसमूह से पूर्ण होता है । पापग्रह का योग या दृष्टि उस पर रहे तो बालक दरिद्र, तथा शुभग्रह या मित्र से युतदृष्ट हो तो धन से सुखी होता है । नेत्रपाणि अवस्थागत बुध हों तो जातक विद्याविवेक रहित, मित्रताविहीन तथा अभिमानी होता है । पूर्वोक्तावस्थागत वे पञ्चम भावगत हों तो पुत्रस्त्रीसौख्यरहित, कन्यामात्र सन्तानवाला, राजपण्डित तथा अच्छी सम्पत्ति वाला होता है । विकासावस्थागत बुध हों तो जातक दानी, दयालु, पुण्यवान् अनेक विध विद्याओं में पारङ्गत, विवेकी तथा दुष्ट [ ] वघातक होता है । गमनावस्थापन्न बुध जातक को राजभवन में आने जानेवाला, श्रीसम्पन्न

विचित्रभवन वाला, बनाता है। आगमनावस्थापन्न बुध का भी यही फल होता है। सभावासावस्था में उच्चस्थ बुध हों तो जातक धनसमृद्धिशील, पुण्यवान्, कुँवरसदृश, राजा या मन्त्री, विष्णु तथा शिव में भक्ति रखनेवाला, सात्त्विकप्रवृत्तिशील तथा मोक्ष पाने वाला होता है। आगमावस्थागत बुध में जातक को नीच व्यक्ति की सेवा से धनप्राप्ति, दो पुत्र तथा सम्मान दिलाने वाली एक कन्या होती है। भोजनावस्थागत बुध हों तो विवाद से धनक्षय, राजभय से दुर्बलता, चञ्चलबुद्धि, शरीर, स्त्री तथा सांसारिक सुख से रहित जातक होता है। नृत्यलिप्सागत बुध हों तो मनुष्य सम्मान, यान, रत्न आदियों से पूर्ण, मित्र, पुत्र, तथा प्रताप से युक्त एवं सभापण्डित होता है। यदि वे पापराशिगत हों तो जातक वेश्यागमी तथा लम्पट होता है। जन्मसमय कौतुकावस्थापन्न बुध लग्न में हों तो मनुष्य विलक्षण गान विद्या में निपुण, सप्तम या अष्टम भावगत वे हों तो वेश्यागामी, नवम भावगत हों तो पुण्यवान् तथा सद्गति वाला होता है। निद्रावस्थागत बुध हों तो जातक निद्रा-सौख्य से वञ्चित आधिव्याधिपूर्ण, सोदररहित, प्रचुर सन्तापयुक्त, आत्मीयों से विवाद वाला, तथा धन मान का क्षयी होता है॥ ८५–९५॥

अवस्थानुसार गुरु का फल—

वचसामधिपे तु जनुःसमये शयने बलवानपि हीनरवः।
अतिगौरतनुः खलु दीर्घहनुः सुतरामरिभीतियुतो मनुजः॥९६॥
उपवेशं गतवति यदि जीवे वाचालो बहुगर्वपरीतः।
क्षोणीपतिरिपुजनपरितप्तः पदजंघास्यकरव्रणयुक्तः॥ ९७॥
नेत्रपाणिं गते देवराजार्चिते रोगयुक्तो वियुक्तो वरार्थश्रिया।
गीतनृत्यप्रियः कामुकः सर्वदा गौरवर्णो विवर्णोद्भवप्रीतियुक्॥

गुणानामानन्दं विमलसुखकन्दं वितनुते
सदा तेजःपुञ्जं व्रजपतिनिकुञ्जं प्रतिगमम्।
प्रकाशं चेदुच्चे द्रुतमुपगतो वासवगुरु-
र्गुरुत्वं लोकानां धनपतिसमत्वं तनुभृताम्॥ ९९॥

साहसी भवति मानवः सदा मित्रवर्गसुखपूरितो मुदा।
पण्डितो विविधवित्तमण्डितो वेदविद्यदि गुरौ गमं गते॥१००॥
आगमने जनता वरजाया यस्य जनुःसमये हरिमाया।
मुञ्चति नालमिहालयमद्धा देवगुरौ परितः परविद्धा॥१०१॥
सुरगुरुसमवक्ता शुभ्रमुक्ताफलाढ्यः।
सदसि सपदि पूर्णो वित्तमाणिक्यमानैः।

गजतुरगरथाढ्यो देवताधीशपूज्यो
जनुषि विविधविद्यागर्वितो मानवः स्यात् ॥१०२॥

नानावाहनमानयानपटलीसौख्यं गुरावागमे
भृत्यापत्यकलत्रमित्रजसुखं विद्यानवद्या भवेत् ।
क्षोणीपालसमानताऽनवरतं चातीव हृद्या मतिः
काव्यानन्दरतिः सदा हितगतिः सर्वत्र मानोन्नतिः १०३

भोजने भवति देवतागुरौ यस्य तस्य सततं सुभोजनम् ।
नैव मुञ्चति रमालयं तदा वाजिवारणरथैश्च मण्डितम् १०४

नृत्यलिप्सागते राजमानी धनी देवताधीशवन्द्यः सदा धर्मवित् ।
तन्त्रविज्ञो बुधैर्मण्डितः पण्डितः शब्दविद्यानवद्यो हि सद्यो जनः १०५

कुतूहली सकौतुके महाधनी जनः सदा
निजान्वये च भास्करः कृपाकलाधरः सुखी ।
निलिम्पराजपूजिते सुतेन भूनयेन वा
युतो महाबली धराधिपेन्द्रसद्मपण्डितः ॥१०६॥

गुरौ निद्रागते यस्य मूर्खतासर्वकर्मणि ।
दरिद्रतापरिक्रान्तभवनं पुण्यवर्जितम् ॥१०७॥

जन्मसमय में शयनावस्थापन्न गुरु हो तो बलवान् भी जातक बोलने में धीमी आवाज वाला होता है। वह अधिक गौर वर्ण लम्बी दाढ़ी वाला, और शत्रुभययुक्त होता है। उपवेशावस्था में गुरु हों तो जातक वाचाल, गर्वीला, राजा एवं रिपुजन से सन्ताप पाने वाला, पैर, जांघ, मुंह तथा हाथ में व्रण वाला होता है। नेत्रपाणि अवस्थागत गुरु हों तो मनुष्य रोगी, सम्पत्तिहीन, गान नाच से प्रेम रखने वाला, सतत कामी, गौरवर्ण तथा इतर वर्णों के लोगों से प्रेम करने वाला होता है। प्रकाशावस्थागत गुरु जातक के गुणों से आनन्द, अनेक विध सौख्य, तेज एवं व्रजेश के निकुञ्ज (वृन्दावन) के प्रति गमन, प्रदान करते हैं। गुरु यदि उच्च के हों तो मनुष्य लोगों में गौरवपूर्ण तथा कुवेरसदृश धनी होता है। गमनावस्थागत गुरु जातक को साहसी मित्रवर्गों के सौख्य से पूर्ण, पण्डित, विविधधनपूर्ण तथा वेदवेत्ता बनाते हैं। आगमनावस्था में देवगुरु हों तो, जातक को घर का जनसमूह, वराङ्गना (सुन्दरी स्त्री) तथा लक्ष्मी सर्वथा सम्बद्ध होकर कभी नहीं छोड़ती हैं अर्थात् वह जनप्रिय एवं पूर्णधनी होता है। सभावासावस्थापन्न गुरु हों तो जातक गुरु के समान बोलने वाला स्वच्छ, मुक्ता, धन, माणिक्य, सम्मान से परिपूर्ण, हाथी, घोड़ा रथ आदि वाहनों से युक्त अनेक विध विद्याओं के ज्ञान से गर्वित होता है। जन्म कालिक गुरु आगमा-

वस्थागत हों तो जातक को अनेकविध वाहन, मान, यान (मोटर आदि) भृत्य, पुत्र, स्त्री, मित्रवर्गादिजनित सौख्य प्राप्त होता है। उसे विलक्षण विद्या भी होती है। सतत राजा के साथ समता, विमलबुद्धि, काव्यानन्द का प्रेमी, मित्रों का रक्षक, तथा सर्वत्र सम्मानित होता है। भोजनावस्था में गुरु के रहने पर सुभोजन सतत प्राप्त होता है। उस जातक के घर को लक्ष्मी कभी भी नहीं छोड़ती तथा उसका द्वार घोड़ा हाथी रथ से भूषित रहता है।

जन्म समय में नृत्यलिप्सावस्थागत गुरु हों तो जातक राजमान्य, धनी, धर्मवेत्ता, गुरुसदृश पूज्य, तन्त्रज्ञ, विद्वद्गणमण्डित शब्दशास्त्र का पण्डित होता है। कौतुकावस्थागत गुरु हों तो जातक कुतूहली, महाधनी, राजमान्य अपने वंश में सूर्यसदृश, कृपालु, सुखी, पुत्र, भूमि, नीति से युक्त, महाबली तथा राजा के दरबार का पण्डित होता है। निद्रावस्थागत गुरु हों तो जातक के सभी कार्य मूर्खतापूर्ण होवे और दारिद्र्ययुक्त उसका भवन पुण्यवर्जित होता है॥ ९६–१०७॥

अवस्थानुसार शुक्र का फल—

जनो बलीयानपि दन्तरोगी भृगौ महारोषसमन्वितः स्यात्।
धनेन हीनः शयनं प्रपाते वराङ्गनासङ्गमलम्पटश्च॥१०८॥
यदि भवेदुशना उपवेशने नवमणिव्रजकाञ्चनभूषणः।
सुखमजस्रमरिक्षय आदरादवनिपादपि मानसमुन्नतिः॥१०९॥
नेत्रपाणिं गते लग्नगेहे कवौ सप्तमे मानभे यस्य तस्य ध्रुवम्।
नेत्रपाते निपातो धनानामलं चान्यभे वासशाला विशाला भवेत्॥११०॥
स्वालये तुङ्गभे मित्रभे भार्गवे तुङ्गमातङ्गलीलाकलापी जनः।
भूपतेस्तुल्य एव प्रकाशं गते काव्यविद्याकलाकौतुकी गीतवित्॥१११॥
गमने जनने शुक्रे तस्य माता न जीवति।
आधियोगो वियोगश्च जनानामरिभीतितः॥११२॥
आगमनं भृगुपुत्रे गनवति वित्तेश्वरो मनुजः।
सत्तीर्थश्रमशीलो नित्योत्साही कराङ्घ्रिरोगी च॥११३॥
अनायासेनालं सपदि महसा याति सहसा
प्रगल्भत्वं राज्ञः सदसि गुणविज्ञः किल कवौ।
सभायामायाते रिपुनिवहहन्ता धनपतेः
समत्वं वा दाता बलतुरगगन्ता नरवरः॥११४॥
आगमे भार्गवे नागमो जन्मिनामर्थराशे ररातेरतीवक्षतिः।
पुत्रपातो निपातो जनानामपि व्याधिभीतिः प्रियाभोगहानिर्भवेत्॥११५॥

क्षुधातुरो व्याधिनिपीडितः स्यादनेकधारातिभयार्दितश्च ।
कवौ यदा भोजनगे युवत्या महाधनी पण्डितमण्डितश्च ॥११६॥
काव्यविद्यानवद्या च हृद्या मतिः सर्वदा नृत्यलिप्सागते भार्गवे ।
शङ्खवीणामृदङ्गादिगानध्वनिव्रातनैपुण्यमेतस्य विद्योन्नतिः ॥११७॥
कौतुकभवनं गतवति शुक्रे शुक्रेशत्वं सदसि महत्त्वम् ।
हृद्या विद्या भवति च पुंसः पद्मा निवसति सद्मादरतः ॥११८॥
परसेवारतो नित्यं निद्रामुपगते कवौ ।
परनिन्दापरो वीरो वाचालो भ्रमते महीम् ॥ ११९ ॥

जन्मसमय में शयनावस्थापन्न शुक्र हों तो जातक बलवान् होते हुए भी दन्तरोगी, महारोषशील, निर्धन तथा वेश्यागामी होता है। उपवेशनावस्थागत शुक्र हों तो जातक को मणिगण, तथा सुवर्णभूषण का सुख प्राप्त होता है। ऐसे जातक को शत्रुक्षय, तथा सादर राजा का सम्मान मिलता है। नेत्रपाणि अवस्थागत शुक्र-लग्न, सप्तम या दशम में हों तो जातक को नेत्रहीनता के कारण प्रचुरधन का व्यय, और वही शुक्र अन्यभावस्थ हों तो वह विशाल भवन वाला होता है। प्रकाशा-वस्थागत शुक्र स्वभवन, स्वोच्च या स्वमित्रराशिस्थ हों तो जातक मदोन्मत्त हाथी की तरह लीलाशील होता है। वह राजतुल्य सुखी, और काव्यविद्या की कलाओं में उत्कण्ठाशाली होता है। गमनावस्थाप्राप्त शुक्र हों तो जातक की माता जीवित नहीं रहती है। ऐसा जातक मानसिककष्ट, बन्धुवियोग तथा शत्रुभय का शिकार होता है। आगमनावस्थागत शुक्र के होने से मनुष्य धनेश होता है। वह तीर्थभ्रमण-शील, उत्साहसम्पन्न तथा हाथ-पैर का रोगी होता है। सभावस्थागत शुक्र हों तो राजसभा में अनायास अपनी तेजस्विता से प्रगल्भता होती है। वह गुणज्ञ, शत्रुहन्ता, कुबेरसदृश दानी, तथा घोड़े की सवारी करनेवाला नरश्रेष्ठ होता है। आगमावस्था में शुक्र हों तो जातक को अर्थागम नहीं होता, और शत्रु से अत्यधिक क्षति होती है। उसे पुत्रहानि, परिजन से वियोग, व्याधिभय तथा स्त्रीसौख्य की कमी होती है। भोजनावस्थागत शुक्र हों तो मनुष्य क्षुधार्त्त, व्याधिग्रस्त, अनेक प्रकार से शत्रुद्वारा भयपीड़ित, होता है। यदि शुक्र कन्याराशिस्थ हों तो जातक महाधनी तथा पण्डितमण्डित होता है। नृत्यलिप्सागत शुक्र हों तो जातक काव्यविद्यानिपुण, सहृदय, शङ्ख-सितार, मृतङ्ग आदि गानध्वनियों में निपुण तथा धनोन्नतिशील होता है। कौतुकावस्थागत शुक्र हों तो जातक इन्द्रतुल्य ऐश्वर्यशाली, सभाचतुर, उत्कृष्ट विद्यायुक्त, तथा स्थिरलक्ष्मीवान् होता है। निद्रावस्थागत शुक्र में जातक, परसेवक, तथा परनिन्दक, वीर, वाचाल, तथा नित्य घूमनेवाला होता है ॥ १०८–११९ ॥

अवस्थानुसार शनि का फल—

क्षुत्पिपासापरिक्रान्तो विश्रान्तः शयने शनौ ।
वयसि प्रथमे रोगी ततो भाग्यवतां वरः ॥ १२० ॥

भानोः सुते चेदुपवेशनस्थे करालकारातिजनानुतप्तः ।
अपायशाली खलु दद्रुमाली नरोऽभिमानी नृपदण्डयुक्तः ॥ १२१ ॥
नयनपाणिगते रविनन्दने परमया रमया रमयायुतः ।
नृपतितो हिततो मतितोषकृद् बहुकलाकलितो विमलोक्तिकृत् १२२
नानागुणग्रामधनाधिशाली सदा नरो बुद्धिविनोदमाली ।
प्रकाशने भानुसुते सुभानुः कृपानुरक्तो हरपादभक्तः ॥ १२३ ॥
महाधनी नन्दननन्दितः स्यादपायकारी रिपुभूमिहारी ।
गमे शनौ पण्डितराजभावं धरापते रायतने प्रयाति ॥ १२४ ॥
आगमने गर्दभपदयुक्तः पुत्रकलत्रसुखेन विमुक्तः ।
भानुसुते भ्रमते भुवि नित्यं दीनमना विजनाश्रयभावम् ॥ १२५ ॥
रत्नावलीकाञ्चनमौक्तिकानां व्रातेन नित्यं व्रजति प्रमोदम् ।
समागते भानुसुते नितान्तं नयेन पूर्णो मनुजो महौजाः ॥ १२६ ॥
आगमे गदसमागमो नृणामब्जबन्धुतनये यदा तदा ।
मन्दमेव गमनं धरापतेर्याचनाविरहिता मतिः सदा ॥ १२७ ॥
सङ्गते जनुषि भानुदन्दने भोजनं भवति भोजनं रसैः ।
संयुतं नयनमन्दता तता मोहतापपरितापिता मतिः ॥१२८॥
नृत्यलिप्सागते मन्दे धर्मात्मा वित्तपूरितः ।
राज्यपूज्यो नरो धीरो महावीरो रणाङ्गणे ॥१२९॥
भवति कौतुकभावमुपागते रविसुते वसुधावसुपूरितः ।
अतिसुखी सुमुखी सुखपूरितः कवितयामलया कलया नरः ॥१३०॥
निद्रागते वासरनाथपुत्रे धनी सदा चारुगुणैरुपेतः ।
पराक्रमी चण्डविपक्षहन्ता सुवारकान्तारतिरीतिविज्ञः ॥१३१॥

जन्मसमय में शयनावस्थापन्न शनि हों तो जातक बचपन में भूख-प्यास से पीड़ित तथा रोगी, होता है और वही बाद में पूर्ण भाग्यवान् होता है। उपवेशनावस्थागत शनि के होने से जातक प्रबलकाराधिकारी से पीडित, व्ययशील, दद्रुरोग युक्त, अभिमानी तथा राजदण्डयुक्त होता है। नेत्रपणि अवस्थागत शनि हों तो परमसुन्दरी स्त्री तथा सत्सम्पत्तियुक्त, राजा एवं मित्र जनों में उपकृत, विविध कलाओं का अभिज्ञ तथा प्रियवक्ता होता है। प्रकाशावस्थागत शनि हों तो अनेक गुण, धन, तथा बुद्धि से युक्त, तेजस्वी, दयावान् तथा शिव का भक्त होता है। गमनावस्थापन्न शनि हों तो जातक महाधनी, पुत्रवान्‌, शत्रु भूमि हारक, व्ययशील, शत्रु की

जमीन लेनेवाला, राजद्वार में पण्डितराज कहलानेवाला होता है। आगमनावस्थापन्न शनि हों तो जातक गदहे की पदवी प्राप्त करनेवाला (मूर्ख) पुत्र-स्त्री सुख से वञ्चित, नित्यदीन, निराश्रित होकर पृथ्वीपर भ्रमण करनेवाला होता है। सभावस्था पन्न शनि हों तो जातक, सुवर्ण, मोती तथा अन्य रत्नसमूहों से प्रहृष्ट, नीतिपूर्ण तथा महातेजस्वी होता है। आगमावस्थागत शनि हों तो जातक रोगयुक्त होता है। वह राजा के यहाँ याचनावृत्ति में कुशल नहीं होता। भोजनावस्थापन्न शनि हों तो जातक को सरस भोजन प्राप्त होता है। उसे आँख की रोशनी की कमी, तथा मोह (अज्ञान) ताप से सन्तप्त बुद्धि रहा करती है। नृत्यलिप्सावस्थागत शनि में मनुष्य धर्मिष्ट तथा धनी होता है। वह राजपूज्य, धीर, रणक्षेत्र में महावीर हुआ करता है। कौतुकावस्था में वह हो तो जातक भूमि तथा सम्पत्ति से युक्त, अतिसुखी तथा सुन्दरीस्त्रीसौख्य से परिपूर्ण, विमलकाव्यकलायुक्त होता है। निद्रावस्था में शनि हों तो मनुष्य सदैव धनी तथा सद्गुणोपेत होता है। वह पराक्रमी, प्रबलशत्रु का हनन करनेवाला, और वेश्या के प्रेम की कला को जाननेवाला होता है ॥ १२०–१३१ ॥

अवस्थानुसार राहु का फल—

यदागमो जन्मनि यस्य राहौ क्लेशाधिकत्वं शयनं प्रयाते ।
वृषेऽथ युग्मेऽपि च कन्यकायामजे समाजो धनधान्यराशेः ॥१३२॥
उपवेशनमिह गतवति राहौ दद्रुगदेन जनः परितप्तः ।
राजसमाजयुतो बहुमानी वित्तसुखेन सदा रहितः स्यात् ॥१३३॥
नेत्रपाणावगौ नेत्रे भवतो रोगपीडिते ।
दुष्टव्यालारिचौराणां भयं तस्य धनक्षयः ॥ १३४ ॥
प्रकाशने शुभासने स्थितिः कृतिः शुभा नृणाम् ।
धनोन्नतिर्गुणोन्नतिः सदा विदामगाविह ।
धराधिपाधिकारिता यशोलता तता भवेत् ।
नवीननीरदाकृतिर्विदेशतो महोन्नतिः ॥ १३५ ॥
गमने च गते राहौ बहुसन्तानवान्नरः ।
पण्डितो धनवान् दाता राजपूज्यो नरो भवेत् ॥ १३६ ॥
राहावागमने क्रोधी सदा धनविवर्जितः ।
कुटिलः कृपणः कामी नरो भवति सर्वथा ॥ १३७ ॥
सभागतो यदा राहुः पण्डितः कृपणो नरः ।
नानागुणपरिक्रान्तो वित्तसौख्यसमन्वितः ॥ १३८ ॥

चेद्गावागमं यस्य याते तदा-व्याकुलत्वं सदाऽरातिभीत्या भयम् ।
महद् बन्धुवादो जनानां निपातो-भवेद्वित्तहानिः शठत्वं कृशत्वम् १३९

भोजने भोजनेनालं विकलो मनुजो भवेत् ।
मन्दबुद्धिः क्रियाभीरुः स्त्रीपुत्रसुखवर्जितः ॥ १४० ॥
नृत्यलिप्सागते राहौ महाव्याधिविवर्धनम् ।
नेत्ररोगी रिपोर्भीतिर्धनधर्मक्षयो नृणाम् ॥ २४१ ॥
कौतुके च यदा राहौ स्थानहीनो नरो भवेत् ।
परदाररतो नित्यं परवित्तापहारकः ॥ १४२ ॥
निद्रावस्थां गते राहौ गुणग्रामयुतो नरः ।
कान्तासन्तानवान् धीरो गर्वितो बहुवित्तवान् ॥ १४३ ॥

जन्म समय में शयनावस्थागत राहु हों तो जातक क्लेशपूर्ण होता है। वही राहु, वृष, मिथुन, कन्या या मेष में होकर शयनावस्थापन्न हो तो जातक धनधान्य परिपूर्ण होवे। उपवेशनगत राहु हों तो जातक दद्रुरोगपीडित होता है। वह राजपरिवार में मान्य होते हुए भी धनसुखहीन होता है। नेत्रपाणि अवस्थागत राहु हो तो जातक के दोनों आँखें रोगग्रस्त होती हैं। उसे दुर्जन, सर्प, शत्रु, तथा चौरों का भय और धनक्षय होता है। प्रकाशनावस्थापन्न राहु के होने पर जातक को अच्छा स्थान, अच्छी कृति, धन तथा गुणों का अभ्युदय, राजा से अधिकार, यशः प्रसार, नवीन बादल के समान आकृति, तथा विदेश में बड़ी उन्नति होती है। गमनावस्थापन्न राहु के होने पर मनुष्य अनेक सन्तान वाला, पण्डित, धनी, दानी, तथा राजपूज्य होता है। आगमनावस्थापन्न राहु के होने पर जातक क्रोधी, बुद्धि-धन से रहित, दुष्ट, कंजूस, तथा कामी होता है। सभागत राहु में मनुष्य पण्डित, कंजूस, अनेकगुणसम्पन्न तथा वित्तसौख्य-सम्पन्न होता है। आगमावस्था में राहु हों तो जातक व्याकुल, तथा सतत शत्रु से भीत रहता है। उसे बन्धुबान्धवों से विवाद परिजन का विनाश, धनक्षय, शठता तथा दुर्बलता होती है। भोजनावस्थापन्न राहु हों तो जातक भोजन के कारण विकल, मन्दबुद्धि, किसी कार्य करने में भीरु, और स्त्री-पुत्रादि सौख्य से वञ्चित होता है। नृत्यलिप्सागत राहु हों तो महारोग की वृद्धि, नेत्ररोग, शत्रुभय, तथा धन धर्म का विनाश होता है। कौतुकावस्थागत राहु हों तो स्थानहीन, परस्त्रीरत, तथा दूसरे के धन को चुरानेवाला जातक होता है। निद्रावस्थागत राहु हों तो मनुष्य गुणों का आगार, स्त्री सन्तति-सुखपूर्ण, धीर, अभिमानी तथा महाधनी होता है। १३२-१४३ ॥

अवस्थानुसार केतु का फल—

मेषे वृषेऽथवा युग्मे कन्यायां शयनं गते ।
केतौ धनसमृद्धिः स्यादन्यभे रोगवर्द्धनम् ॥ १४४ ॥

उपवेशं गते केतौ दद्रुरोगविवर्धनम् ।
अरिवातनृपव्यालचौरशङ्का समन्ततः ॥ १४५ ॥
नेत्रपाणिं गते केतौ नेत्ररोगः प्रजायते ।
दुष्टसर्पादिभीतिश्च रिपुराजकुलादपि ॥ १४६ ॥
केतौ प्रकाशने संज्ञे धनवान् धार्मिकः सदा ।
नित्यं प्रवासी चोत्साहो सात्त्विको राजसेवकः ॥ १४७ ॥
गमेच्छायां भवेत् केतुर्बहुपुत्रो महाधनः ।
पण्डितो गुणवान् दाता जायते च नरोत्तमः ॥ १४८ ॥
आगमे च यदा केतुर्नानारोगो धनक्षयः ।
दन्तघाती महारोगी पिशुनः परनिन्दकः ॥ १४९ ॥
सभावस्थां गते केतौ वाचालो बहुगर्वितः ।
कृपणो लम्पटश्चैव धूर्त्तविद्याविशारदः ॥ १५० ॥
यदागमे भवेत् केतुः केतुः स्यात् पापकर्मणाम् ।
बन्धुवादरतो दुष्टो रिपुरोगनिपीडितः ॥ १५१ ॥
भोजने तु जनो नित्यं क्षुधया परिपीडितः ।
दरिद्रो रोगसन्तप्तः केतौ भ्रमति मेदिनीम् ॥ १५२ ॥
नृत्यलिप्सागते केतौ व्याधिना विकलो भवेत् ।
बुद्बुदाक्षो दुराधर्षो धूर्त्तोऽनर्थकरो नरः ॥ १५३ ॥
कौतुकी कौतुके केतौ नटवामारतिप्रियः ।
स्थानभ्रष्टो दुराचारी दरिद्रो भ्रमते महीम् ॥ १५४ ॥
निद्रावस्थां गते केतौ धनधान्यसुखं महत् ।
नानागुणविनोदेन कालो गच्छति जन्मिनाम् ॥ १५५ ॥

मेष, वृष, मिथुन तथा कन्यागत केतु शयनावस्था में हों तो जातक धनसमृद्ध होता है, अन्यराशिगत होने पर उसे रोगग्रस्त कहना। उपवेशावस्थागत केतु में दाद रोग की वृद्धि, शत्रु, वातरोग, राजा, सर्प, तथा चौरों का भय, कहना चाहिए। नेत्रपाणिगत केतु में नेत्ररोग, दुष्ट, सर्प, आदियों से तथा राजकुल से भी भय कहें। प्रकाशनावस्थागत केतु में जातक धनी तथा धार्मिक होता है। वह सतत परदेश-निवासी, उत्साही, सत्त्वगुणप्रधान, तथा राजसेवक होता है। गमनावस्थागत केतु में जातक अनेक पुत्र वाला, महाधनी, पण्डित, गुणी, दानी तथा नरश्रेष्ठ होता है।

आगमनावस्था में केतु हों तो मनुष्य अनेक रोगों का शिकार, धनक्षययुक्त, दांत से प्रहार करनेवाला, महारोगी चुगलखोर तथा परनिन्दक होता है ।

सभावस्थागन केतु हों तो जातक वाचाल (बकवादी) महाभिमानी, कृपण, लम्पट तथा धूर्त्तता में निपुण होता है । आगमावस्था-प्राप्त केतु हों तो जातक पापकर्मियों में विख्यात, बन्धुबान्धवों से विवाद करनेवाला, दुष्ट, एवं शत्रु तथा रोग से पीडित होता है । भोजनावस्थागत केतु जातक को सतत क्षुधापीडित, दरिद्र, रोगग्रस्त तथा पृथ्वीपर भटकने वाला बनाता है । नृत्यलिप्सावस्थागत केतु हों तो मनुष्य व्याधिपीडित, बुद्बुद नेत्रवाला, दुराधर्ष (किसी के अधिकार में कठिनता से आनेवाला), धूर्त्त तथा अनर्थकारी होता है । कौतुकावस्थागत केतु में मनुष्य विनोदी, नटी आदि से प्रेम करनेवाला, स्थानभ्रष्ट, दुराचारी, दरिद्रतावश घूमनेवाला होता है । निद्रावस्थागत केतु हों तो जातक को धन-धान्य का बड़ा सुख होता है । ऐसे व्यक्ति का समय अनेकविध गुणों के विनोद से बीतता है ॥ १४४—१५५ ॥

ग्रहों के अवस्थानुसार भावों का फल—

शमने विप्र ! भावेषु यत्र तिष्ठन्ति सद्ग्रहाः ।
नित्यं तस्य शुभज्ञानं निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ॥ १५६ ॥
भोजने यदि भावेषु पापास्तिष्ठन्ति सर्वथा ।
तदा सर्वविनाशोऽपि नात्र कार्या विचारणा ॥ १५७ ॥
निद्रायां च यदा पापो जायास्थाने शुभं वदेत् ।
यदि पापग्रहैर्दृष्टो न शुभं तु कदाचन ॥ १५८ ॥
सुतस्थाने स्थितः पापो निद्रायां शयनेऽपि वा ।
तदा शुभं भवेत्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ १५९ ॥
मृत्युस्थानस्थितः पापो निद्रायां शयनेऽपि वा ।
तदा तस्यापमृत्युः स्याद्राजतः परतस्तथा ॥ १६० ॥
शुभग्रहैर्यदा युक्तः शुभैर्वा यदि वीक्षितः ।
तदा तु मरणं तस्य गङ्गादौ स्याद् विशेषतः ॥ १६१ ॥
कर्मस्थाने यदा पापः शयने भोजनेऽपि वा ।
तदा कर्मविपाकः स्यान्नानादुःखप्रदायकः ॥ १६२ ॥
दशमस्थो निशानाथः कौतुके च प्रकाशने ।
तदैव राजयोगः स्यान्निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ॥ १६३ ॥
बलाबलविचारेण ज्ञातव्यं च शुभाऽशुभम् ।

एवं क्रमेण बोद्धव्यं सर्वभावेषु धीमता ॥ १६४ ॥

जन्मकाल में शयनावस्थागत शुभग्रह जिन भावों में हों उनका फल निःशङ्क शुभ होता है। भोजनावस्थागत पापग्रह यदि भावों में हों तो सर्वथा सर्वनाश कहना चाहिए। निद्रावस्थागत पापग्रह यदि जायास्थान में हों तो शुभ, और वही यदि पापग्रहों से दृष्ट हों तो शुभफल नहीं कहें। निद्रागत या शयनगत पापग्रह पञ्चमभाव में हों तो निःसन्देह उसे शुभफल कहना चाहिए। निद्रा एवं शयन अवस्थागत पापग्रह अष्टमस्थानगत हों तो राजा या तज्जन्य के द्वारा अपमृत्यु कहनी चाहिए। वही यदि शुभग्रहों से युत या दृष्ट हों तो उसका मरण गङ्गादि-तीर्थस्थान में कहें। शयन या भोजनगत पापग्रह कर्मस्थान में हों तो अनेक दुःख-दायक कर्मविपाक (कार्यों का परिणाम) कहना। कौतुक या प्रकाशनावस्थागत चन्द्रमा दशमस्थ हों तो निःसन्देह राजयोग कहना। इस तरह ग्रहों के बलाबल से सभी भावों का शुभाशुभ फल समझना॥ १५६–१६४॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते होराशास्त्रे ग्रहावस्था-
फलाध्यायः समाप्तः॥ ४६॥

अथ दशाभेदाध्यायः॥ ४७॥

मैत्रेय उवाच—

महर्षे! त्वं समर्थोऽसि कृपया करुणानिधे!।
दशाः कतिविधाः सन्ति ह्येतन्मे ब्रूहि तत्त्वतः॥ १॥

मैत्रेय ने कहा—हे महर्षे! कृपानिधे! आप सर्वथा समर्थ हैं, अतः कृपाकर कितने प्रकार की दशाएं हैं, यह मुझे बतलावें॥ १॥

पराशर उवाच—

प्रश्नोऽयं ते मुने! साधुर्लोककल्याणकारकः।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दशाभेदाननेकशः॥ २॥
विविधास्तु दशाः प्रोक्ताः किन्तु तत्र सतां मताः।
विंशोत्तरी तथा चाष्टोत्तरी वै षोडशोत्तरी॥ ३॥
द्वादशोत्तर्यथो पञ्चोत्तरी शतसमा तथा।
दशा चतुरशीत्यब्दा द्विसप्ततिसमा तथा॥ ४॥
षष्ट्यब्दाऽपि च षट्त्रिंशद्वत्सरापि द्विजोत्तम।
इमा ऋक्षाश्रिताः ख्याताः प्राचीनैर्विबुधैः पुरा॥ ५॥

पराशर ने कहा—हे मुने! यह लोककल्याणकारी आपका प्रश्न है। अतः मैं दशाओं के भेद बतलाऊँगा। यद्यपि दशाएं अनेकविध हैं, किन्तु विद्वत्सम्मत मुख्य

दशाएं—(१) विंशोत्तरी, (२) अष्टोत्तरी, (३) षोडशोत्तरी, (४) द्वादशोत्तरी,

(५) पञ्चोत्तरी, (६) शतसमा, (७) चतुरशीत्यब्दा, (८) द्विसप्ततिसमा, (९) षष्ट्यब्दा, (१०) षट्त्रिंशद्वत्सरा, ये दस हैं। प्राचीन देवर्षियों ने इन नक्षत्राश्रित दशाओं को बतलाया है ॥ २–५ ॥

कालाभिधा दशा चक्राभिधा च परिकीर्त्तिता।
मान्याऽन्या कालचक्राख्या दशासु द्विजसत्तम ! ॥ ६ ॥
चरा परा स्थिराख्या च दशा केन्द्राभिधा तथा।
कारकादिग्रहोद्भूता ब्रह्मग्रहदशाऽपि च ॥ ७ ॥
माण्डूकी च दशा प्रोक्ता तथा शूलाभिधा बुधैः।
अपि योगार्धजा ब्रह्मन् ! दृग्दशा तदनन्तरम् ॥ ८ ॥
त्रिकोणसंज्ञका राशि-दशा पञ्चस्वराभिधा।
योगिनीसंज्ञिका पिण्डदशा चांशी परा स्मृता ॥ ९ ॥
नैसर्गिकदशा चाष्टवर्गसन्ध्ये दशे तथा।
पाचकाख्याऽपरा तारादशा सर्वा न सम्मता ॥ १० ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! उपर्युक्त दशाओं के अतिरिक्त कतिपय ऋषियों ने कालदशा, चक्रदशा तथा दशाओं में मान्य कालचक्रदशा कही है। इनके अतिरिक्त भी चरदशा, स्थिरदशा, केन्द्रदशा, कारकग्रहोत्थदशा, ब्रह्मग्रहदशा, मण्डूकदशा, शूलदशा, योगार्धदशा, दृग्दशा, त्रिकोणदशा, राशिदशा, पञ्चस्वरादशा, योगिनीदशा, पिण्डदशा, अंशजदशा, नैसर्गिकदशा, अष्टवर्गदशा, सन्ध्यादशा, पाचकदशा, तारादशा, आदिक दशाभेद हैं। परन्तु इनमें सभी सर्वमान्य नहीं हैं ॥ ६–१० ॥

विंशोत्तरीदशानयनप्रकार—

कृत्तिकादेस्त्रिरावृत्त्या रवीन्दुकुजराहवः।
जीवार्किविच्छिखिसिता दशेशाः परिकीर्तिताः ॥ ११ ॥
जन्मर्भमग्निभाद्यावद् विगणय्याङ्कतो भजेत्।
शेषाङ्कतो दशानाथस्ततो भुक्तादिमानयेत् ॥ १२ ॥
दशाब्दास्तत्र रसदिक्सप्ताष्टेन्दुनृपास्तथा।
अङ्केन्दवोऽश्वचन्द्राश्च गिरयो विंशतिः क्रमात् ॥ १३ ॥
विंशोत्तर्यां पूर्णमायुर्विंशोत्तरशतं स्मृतम्।

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ कर तीन आवृत्ति से सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र ये नवग्रह दशेश होते हैं। दशा जानने के लिए कृत्तिका से जन्मनक्षत्र तक परिगणन करके नौ से भाग दें, शेषाङ्क से दशेश का ज्ञान करना चाहिए। उपर्युक्त सूर्यादि नवग्रहों के दशावर्ष क्रमशः ६।१०।७।१८।१६।१९।१७।७।२० ये हैं। विंशोत्तरीदशानुसार पूर्णायु १२० वर्ष है ॥ ११–१४ ॥

स्पष्टार्थचक्र—

सू.	चं.	मं.	रा.	जी.	श.	बु.	के.	शु.	दशेशाः
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	दशाब्दाः
कृ.	रो.	मृ.	आ.	पु.	पु.	श्ले.	म.	पू. फा.	
उ. फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू. षा.	नक्षत्राणि
उ. षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उभा.	रे.	अ.	भ.	

भुक्तभोग्यवर्षाद्यानयन—

भयातगुणितं खेटदशामानं भभोगहृत् ।
भुक्तवर्षादिकं तस्य भोग्यं माने विशोधनात् ॥ १४ ॥

ग्रहदशावर्ष को भयात से गुणाकर भभोग से भाग दें तो लब्धि भुक्तवर्षादि आता है। भुक्तवर्षादि को दशावर्ष में घटाने से भोग्यवर्षादि समझना।

उदाहरण—जैसे रोहिणीनक्षत्र का भयात २५।३४ भभोग = ५६।४० है। रोहिणी में जन्म होने के कारण चन्द्रमा की दशा हुई। चन्द्रदशावर्ष १० है। अतः भयात को १० से गुणा कर भभोग से भाग देने पर $\frac{(२५।३४)१०}{५६।४०}$ = भयात भभोग दोनों को पलीकृत कर भाग देने पर $\frac{१५३४\times१०}{३४००} = \frac{१५३४}{३४०} = \frac{७६७}{१७०}$ =

व० मा० दि० घ० प०
४ ६ ४ १४ ७ यह चन्द्रमा का भुक्तवर्षादि हुआ। इसे चन्द्रदशावर्ष १०

व० मा० दि० घ० प०
में से घटाने पर ५ ५ २५ ४५ ५३ यह भोग्यवर्षादि हुआ।

विंशोत्तरी महादशाचक्र—

चं.	चं.	कु.	रा.	जी.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
भु. व. ४ व.	भो.व.५व.	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	६
६ मा.	५ मा.	०	०	०	०	०	०	०	०
४ दि.	२५ दि.	०	०	०	०	०	०	०	०
१४ घ.	४५ घ.	०	०	०	०	०	०	०	०
७ प.	५३ प.	०	०	०	०	०	०	०	०
जन्मसंवत्									
२०२८	२०३३	२०४०	२०५८	२०७४	२०९३	२११०	२११७	२१३७	२१४३
स्पुटसूर्य									
४	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
२५'	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१
४५'	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३१
५५"	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४८

अष्टोत्तरीदशानयन तथा दशेशादि—

विहाय लग्नं लग्नेशात् केन्द्रकोणगते त्वगौ।
आर्द्राप्रभृतिभादष्टोत्तरी नाम्नी दशोदिता ॥ १५ ॥
चतुष्कं त्रितयं तस्माच्चतुष्कं त्रितयं पुनः।
इत्थं निजजनुर्भान्तं गणयेच्च यथाक्रमम् ॥ १६ ॥
सूर्यश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः।
एते दशाधिपाः प्रोक्ता विना केतुं ग्रहा द्विज ! ॥ १७ ॥
रसाः पञ्चेन्दवो नागाः शैलचन्द्रास्तथा दिशः।
गोब्जाः सूर्याः कुनेत्राश्च तद्दशाब्दाः क्रमात् स्मृताः॥ १८ ॥

लग्नेश से लग्नातिरिक्त केन्द्र या त्रिकोण में यदि राहु हों तो अष्टोत्तरी दशा प्राप्त है, ऐसा कतिपय आचार्यों ने कहा है। अष्टोत्तरी में आर्द्रा से चार नक्षत्रों के सूर्य, बाद के तीन नक्षत्रों के चन्द्र, बाद ४ नक्षत्रों के मङ्गल, पुनः ३ नक्षत्रों के बुध, बाद के ४ नक्षत्रों के शनि, पुनः ३ नक्षत्रों के गुरु, फिर ४ नक्षत्रों के राहु, और अन्तिम तीन नक्षत्रों के शुक्र अधिप होते हैं। दशाज्ञान के लिए आर्द्रा से अपने जन्म नक्षत्र तक गिनने से जिस ग्रह की दशा प्राप्त हो वहीं से दशारम्भ करना चाहिए। रवि, चन्द्र, भौम, बुध, शनि, गुरु, राहु, तथा शुक्र के क्रमशः ६, १५, ८, १७, १०, १९, १२ २१ दशावर्ष होते हैं। इस तरह अष्टोत्तरी दशा में केतु को छोड़ अन्य आठ ही ग्रह दशेश होते हैं॥ १५–१८ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

सू.	चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.	दशाधीशग्रहाः
आ.	म.	ह.	अनु.	पू. षा.	ध.	उ. भा.	कृ.	नक्षत्राणि
पु.	पू. फा.	चि.	ज्ये.	उ. षा.	श.	रे.	रो.	
पुष्य.	उ. फा.	स्वा.	मू.	अभि.	पू. भा	अ.	मृ.	
श्ले	×	वि.	×	श्र.	×	भ.	×	
६	१५	८	१७	१०	१९	१२	२१	दशावर्षाणि
७२	१८०	९६	२०४	१२०	२२८	१४४	२५२	दशामासाः

अष्टोत्तरीदशासाधनप्रकार—

दशावत्सरतुर्यांशोऽसतां चाथ सतां पुनः।
तृतीयांशो हि प्रतिभं दशामानमुदीरितम् ॥ १९ ॥
ततो भुक्तं च भोग्यं च तद्भयातभभोगतः।
विंशोत्तरीदशावद्धै प्रसाध्य फलमादिशेत् ॥ २० ॥

पापग्रहों (सू. मं. श. रा.) में दशावर्ष के चतुर्थांश और शुभग्रहों (चं. बु. गु. शु.) में दशावर्ष के तृतीयांश एक नक्षत्र का मान होता है। भयात भभोग के द्वारा विंशोत्तरी की तरह इसमें भी भुक्त भोग्य वर्षादि का आनयन करना चाहिए। अर्थात् दशामान को भयात से गुणकर भभोग से भाग दें तो भुक्त वर्ष हो जायगा। भुक्त, भोग्य प्रसाधन के बाद दशाज्ञानानन्तर फलादेश करें ॥ १९–२० ॥

कृष्णे दले दिने जन्म सिते नक्तं भवेद्यदि ।
अष्टोत्तरी दशा तत्र फलादेशार्थमीरिता ॥ २१ ॥

कृष्णपक्ष में दिन का जन्म हो, और शुक्लपक्ष में रात में यदि जन्म हो तो दोनों स्थिति में फलादेश के लिए अष्टोत्तरी दशा ही ग्राह्य है ॥ २१ ॥

विमर्श—दशाओं में प्रमुख विंशोत्तरी या अन्यत्र भी २७ ही नक्षत्र मानकर दशानयन किया गया है। केवल अष्टोत्तरी तथा षष्टिहायनी दशा में अभिजित् की भी गणना नक्षत्रों में होती है। अतः यदि जन्म-नक्षत्र उत्तराषाढ़ हो तो आदिम चरणत्रय मात्र ही भभोग माना जाता है और उत्तराषाढ का चतुर्थ चरण और श्रवणा के पञ्चदशांश सम्मिलित कर अभिजित् का भोग मानकर दशासाधन किया जाता है। श्रवणा के भोग में आरम्भिक पञ्चदशांश घटाने के बाद की शेष घटी आदि को श्रवणा का भोग मानना चाहिए।

उदाहरण—जैसे उत्तराषाढ़ का भभोग ६०।२० है और भयात = २०।१० हो तो उत्तराषाढ़ के द्वितीय चरण में जन्म सिद्ध होगा क्योंकि एकचरण का मान १५।५ होगा और भयात १५।५ से अधिक है अतः द्वितीय चरण में जन्म सिद्ध हुआ। अतः उत्तराषाढ़ के भोगघटी में से उसका चतुर्थांश घटाने पर ६०।२०–१५।५ = ४५।१५ यही उत्तराषाढ़ का भभोग हुआ और भयात २०।१० है ही। उत्तराषाढ़ शनि का नक्षत्र है और शनि का दशावर्ष १० या १२० मास है चूंकि शनि के पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित्, श्रवणा ये चार नक्षत्र हैं अतः एक नक्षत्र में दशामास ३० होंगे। विंशोत्तरी दशानयनवत् यहां भी—

$$\frac{\text{भयात} \times ३०}{\text{भभोग}} = \frac{१२१० \times ३०}{२७१५} =$$

मा. दि. घ. प.
१३ ११ ६ १८ = उत्तराषाढ़ के भुक्त मासादि हुए। इसे ३० मास में घटाने पर १६।१८।५३।४२ यही उत्तराषाढ़ का भोग्यमासादि हुआ। इसमें अभिजित् तथा श्रवण के मास ३० + ३०=६० मिलाने पर १६।१८।५३।४२ + ६०।०।०।० = ७६।१८। ५३।४२ मासादि को १२ से भाग लेने पर ६।४।१८।५३।४२ वर्षादि। यही अष्टोत्तरी दशा में शनि का भोग्यवर्षादि हुआ।

अष्टोत्तरी दशाचक्र—

	श.	गु.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	बु.	दशेश
	६	१९	१२	२१	६	१५	८	१७	वर्ष
	४	०	०	०	०	०	०	०	मा.
	१८	०	०	०	०	०	०	०	दि.
	५३	०	०	०	०	०	०	०	घटी
	४२	०	०	०	०	०	०	०	प.
जन्मसम्वत्									
२०२८	२०३४	२०५३	२०६५	२०८६	२०९२	२१०७	२११५	२१२२	सम्वत्
४	९	९	९	९	९	९	९	९	स्पष्ट
२५	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	सूर्य
४५	३९	३९	३९	३९	३९	३९	३९	३९	
५५	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३७	

षोडशोत्तरी दशासाधन—

शशिहोरास्थिते लग्ने दले कृष्णे तथा सिते ।
रविहोरास्थिते ज्ञेया फलार्थं षोडशोत्तरी ॥ २२ ॥
पुष्यभाज्जन्मभं यावद् विगणय्याष्टतष्टितम् ।
रविर्भौमो गुरुर्मन्दः केतुश्चन्द्रो बुधो भृगुः ॥ २३ ॥
अष्टौ दशाधिपाः प्रोक्ता राहुहीना ग्रहाः समे ।
ईशात् क्रमाद् धृतिं यावदब्दा एकैकतोऽधिकाः ॥ २४ ॥

कृष्णपक्ष में लग्न यदि चन्द्रहोरागत हो तथा शुक्ल पक्ष में वह (लग्न) सूर्य होरास्थित हो तो फलादेश के लिए षोडशोत्तरी दशा का ग्रहण करना चाहिए। पुष्य नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गणना करके आठ से भाग दें एकादि शेष में क्रमशः सूर्य, मङ्गल, गुरु, शनि, केतु, चन्द्र, बुध, शुक्र ये आठ दशेश होते हैं। दशावर्ष ११, से १८ तक एकोत्तर वृद्धि से अर्थात ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, होते हैं ॥ २२–२४ ॥

स्पष्टार्थं चक्र—

सू.	मं.	गु.	श.	के.	चं.	बु.	शु.	दशेश
पु.	श्ले.	म.	पू. फा.	उ. फा.	ह.	चि.	स्वा.	
वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू. षा.	उ. षा.	श्र.	ध.	नक्षत्राणि
श.	पू. भा	उ. भा.	रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	
मृ.	आ.	पुन.	×	×	×	×	×	
११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	दशाब्द

उदाहरण—जैसे किसी का जन्म कृष्णपक्ष में है, और लग्न चन्द्रहोरागत है तो नियमानुसार षोडशोत्तरीदशा ही फलादेशार्थ उपयुक्त होगी। माना कि उसका जन्म हस्त नक्षत्र में है और भयात २५।३० भभोग ५६।४५ है तो चन्द्रमा दशाधिप हुए। चन्द्रदशावर्ष १६ को पलमय भयात से गुणाकर पलमय भभोग से भाग देने पर $\frac{१५३०\times१६}{३४०५}$ = ७।२।८।११।३७ = भुक्त वर्षादि हुए। इसे १६ में घटाने पर ८।९।२१।४८।२३ भोग्य वर्षादि हुए।

षोडशोत्तरीमहादशा चक्र—

दशेश	चं.	बु.	शु.	सू.	मं.	गु.	श.	के.
जन्म	८	१७	१८	११	१२	१३	१४	१५
संवत्	९	०	०	०	०	०	०	०
	२१	०	०	०	०	०	०	०
	४८	०	०	०	०	०	०	०
	२३	०	०	०	०	०	०	०
२०२८	२०३७	२०५४	२०७२	२०८३	२०९५	२१०८	२१२२	२१३७
स्पुट सूर्य								
४	२	२	२	२	२	२	२	२
२५°	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
४५′	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३४	३४
५५″	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८

द्वादशोत्तरी दशा—

जन्मभात् पौष्णपर्यन्तं विगणय्याष्टभिर्भजेत्।
शेषैः सितांशजातानां दशेष्टा द्वादशोत्तरी ॥ २५ ॥
सूर्यो गुरुः शिखी ज्ञोऽगुः कुजो मन्दो निशाकरः।
शुक्रहीना दशानाथा द्विचयात् सप्ततः समाः ॥ २६ ॥

शुक्र के नवांश में प्रजात बालकों के लिए (जन्मलग्न में शुक्र का नवांश हो तो) द्वादशोत्तरी दशा फलप्रद होती है। जन्मनक्षत्र से रेवतीनक्षत्र तक गिनकर आठ से भाग दें और शेष से सूर्य–आदिक आठ ग्रहों की महादशा समझें। शुक्र के अतिरिक्त क्रमशः सूर्य, गुरु, केतु, बुध, राहु, मंगल, शनि, तथा चन्द्रमा दशाधिप होते हैं। इनके दशावर्ष सात से द्व्यधिक क्रम से अर्थात् (७।९।११।१३।१५।१७।१९।२१) समझें ॥ २५–२६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

सू.	गु.	के.	बु.	श.	मं.	श.	चं.	दशेश
७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	वर्षाणि
रे.	उ. भा.	पू. भा.	श.	ध.	श्र.	उ. षा.	पू. षा.	नक्ष-
मू.	ज्ये.	अनु.	वि.	स्वा.	चि.	ह.	उ. फा	त्राणि
पू. फा.	म.	आश्ले.	पु.	पुन.	आ.	मृ.	रो.	
कृ.	श.	अश्वि.	×	×	×	×	×	

यहाँ भी भयात भभोग के द्वारा भुक्त भोग्यदशावर्ष लाकर विंशोत्तरी की तरह दशा लगानी चाहिए।

पञ्चोत्तरीदशा-साधन—

पञ्चोत्तरीदशा कर्कतनौ स्वद्वादशांशगे।
मित्रभात्तु जनुर्भान्तं विगणय्याद्रिभिर्भजेत् ॥ २७ ॥
शेषतः क्रमतो वेद्या दशेशाः सप्त विद्वरैः।
रविर्ज्ञोऽर्कसुतो भौमो भार्गवः शशभृद् गुरुः ॥ २८ ॥
सूर्यात् क्रमाद् धृतिं यावज्ज्ञेया एकैकतोऽधिकाः।
तमोग्रहौ विना सप्तभोगानां तु वत्सराः ॥ २९ ॥

कर्क लग्न और उसी के द्वादशांश में जन्म होने पर पञ्चोत्तरीदशा ही फलप्रद होती है। ऐसी स्थिति में अनुराधा से जन्मनक्षत्र तक गिनकर सात से भाग दें, एकादिशेष में सूर्य, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, चन्द्रमा, गुरु ये सातों ग्रह दशाधिप होते हैं। इनके दशावर्ष क्रमशः १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, होते हैं। अर्थात् १२ से १८ तक एकोत्तर करके दशावर्ष समझना। पञ्चोत्तरी में तमोग्रह (राहु केतु) की दशा नहीं होती ॥ २७–२९ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

सू.	बु.	श.	मं.	शु.	चं.	गु.	ग्रह
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	दशा वर्ष
अनु.	ज्ये.	मू.	पू. षा	उ. षा	श्र.	ध.	
श.	पू. भा	उ. भा	रे.	अ.	भ.	कृ.	नक्ष-
रो.	मृग	आ.	पुन.	पु.	आश्ले	म.	त्राणि
पू. फा	उ. फा	ह.	चि.	स्वा.	वि.	×	

जैसे किसी का जन्म रेवतीनक्षत्र में है अतः मंगल की दशा में जन्म हुआ। भयात भभोग द्वारा भुक्तवर्षादि, लाकर पूर्वानुसार दशा लगानी चाहिए ॥ २७–२९ ॥

शताब्दिका दशा—

वर्गोत्तमगते लग्ने दशा चिन्त्या शताब्दिका ।
पौष्णाज्जन्मर्क्षपर्यन्तं गणयेत् सप्तभिर्हरेत् ॥ ३० ॥
शेषाङ्के रवितो ज्ञेया दशा शतसमाभिधा ।
रविश्चन्द्रो भृगुश्चान्द्रिर्जीव आरः शनैश्चरः ॥ ३१ ॥
क्रमादेते दशानाथा बाणा बाणा दिशो दश ।
नखा नखाः खरामाश्च बोध्या अब्दा बुधैः सदा ॥ ३२ ॥

जन्मलग्न वर्गोत्तम नवांशगत हो तो शताब्दिका दशा मान्य होती है। रेवती से जन्मनक्षत्र तक गिनकर सात से भाग लें, एकादिशेष में सूर्य, चन्द्र, शुक्र, बुध, गुरु, मंगल, शनैश्चर, ये सप्तग्रह दशाधिप होते हैं। इन ग्रहों का दशावर्ष क्रमशः ५।५।१०।१०।२०।२०।३०। ये हैं।

स्पष्टार्थ चक्र—

सू.	चं.	शु.	बु.	गु.	मं.	श.	दशेश
५	५	१०	१०	२०	२०	३०	दशाब्द.
रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	
पुन.	पु.	आश्ले.	म.	पू. फा.	उ. फा.	ह.	नक्षत्रा.
चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू. षा.	
उ. षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	×	

रेवतीनक्षत्रोत्पन्न जातक सूर्य की महादशा में उत्पन्न हुआ। भयात भभोग द्वारा भुक्तवर्षादि लाकर विंशोत्तरी दशा की तरह दशाज्ञान करना चाहिए ॥३०–३२॥

चतुरशीतिसमा दशा—

कर्मस्थे कर्मपे बोध्या दशा चतुरशीतिका ।
पवनाज्जन्मभं यावद् विगणय्याद्रिभिर्भजेत् ॥ ३३ ॥
शेषतोऽर्कविधुक्ष्माजविज्जीवसितसौरयः ।
दशेशाः क्रमतस्तेषां द्वादशाब्दाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३४ ॥

जन्म समय में दशमेश यदि दशमस्थ हो तो यह (चतुरशीतिसमा) दशा फलप्रद होती है। दशाज्ञानार्थ स्वाती से जन्मनक्षत्र पर्यन्त गिनकर सात से भाग दें, एकादि शेष में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनैश्चर ये सातों ग्रह दशेश होते हैं। प्रत्येक का दशा वर्ष बारह-बारह वर्ष है ॥ ३३–३४ ॥

स्पष्टार्थं चक्र—

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	दशेश.
१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	दशाब्दाः
स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये	मू.	पू. षा.	उ. षा.	
श्र.	ध.	श.	पू भा	उ. भा	रे.	अ.	नक्षत्राणि
भ.	कृ.	रो.	मृ	आ.	पुन.	पु.	
आश्ले	म.	पू. फा	उ. फा	ह.	चि.	×	

रेवती नक्षत्रोत्पन्न जातक का शुक्र की महादशा में जन्म है। अतः भयात भभोग के द्वारा शुक्र का भुक्तवर्षादि लाकर आगे की दशा विंशोत्तरी की तरह जाननी चाहिए॥ ३३–३४॥

द्विसप्ततिसमादशा—

मूलाज्जन्मर्क्षपर्यन्तं गणयेदष्टभिर्हरेत्।
शेषतस्तु दशाधीशाः क्रमादष्टाविनादयः॥ ३५॥
नव वर्षाणि सर्वेषां विकेतूनां खचारिणाम्।
लग्नेशे सप्तमे, यत्र लग्ने वा सप्तमाधिपे॥ ३६॥
चिन्तनीया दशा तत्र द्व्यधिका सप्ततिः समाः।
इहापि भुक्तभोग्यादिवर्षं विंशोत्तरीसमम्॥ ३७॥

द्विसप्तति समा दशा में मूल नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर आठ से भाग दें, एकादि शेष से केतु के अतिरिक्त आठों सूर्यादि ग्रह दशाधिप होते हैं। प्रत्येक का दशावर्ष नौ, नौ, होते हैं। लग्नेश सप्तम में हों या सप्तमेश लग्न में, तो यही दशा फलद होती है। भुक्तभोग्यादिवर्ष का आनयन विंशोत्तरी की तरह यहाँ भी करना चाहिए॥ ३५–३७॥

स्पष्टज्ञानार्थं चक्र—

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	दशेश
९	९	९	९	९	९	९	९	दशावर्ष
मू.	पू. षा.	उ. षा.	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	
रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पुन.	नक्षत्राणि
पु.	आश्ले	म.	पू. फा	उ. फा	ह.	चि.	स्वा.	
वि.	अनु.	ज्ये.	×	×	×	×	×	

उदाहरण पूर्ववत्।

षष्टिहायनी दशा—

लग्नभस्थो यदार्कस्तु चिन्त्या षष्टिसमा दशा।
दास्रात्रयं चतुष्कं च रेवत्यन्तं पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
गुर्वर्कभूसुतानां च दशावर्षाणि वै दश।
ततः शशिज्ञशुक्रार्कपुत्रागूनां समास्तु षट् ॥ ३९ ॥

सूर्य यदि लग्नस्थ हों तो षष्टिसमा दशा मान्य है। अश्विनी से ३, पुनः ४, पुनः ३, पुनः ४ इसी क्रम से रेवत्यन्त नक्षत्रों के गुरु, सूर्य, मङ्गल, चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि तथा राहु ये दशाधिप होते हैं। गुरु, सूर्य तथा मङ्गल के दश दश वर्ष शेष चन्द्रादियों के छे छे वर्ष दशामान हैं ॥ ३८–३९ ॥

षष्टिहायनी दशाचक्र—

गु.	सू.	मं.	चं.	बु.	शु.	श.	रा.	दशेश
अ.	रो.	पु.	पू. फा.	स्वा.	ज्ये.	अ.	श.	
भ.	मृ.	आश्ले-	उ. फा.	वि.	मू.	श्र.	पू. भा.	नक्ष-
कृ.	आ.	म.	ह.	अनु.	पू. षा.	ध.	उ. भा.	त्राणि
÷	पुन.	×	चि.	×	उ. षा.	×	रे.	
१०	१०	१०	६	६	६	६	६	दशाव-

षष्टीहायनी दशा में भी अभिजित् की गणना अष्टोत्तरी की तरह की जाती है। रेवतीनक्षत्रोत्पन्न जातक राहु की महादशा में उत्पन्न है। राहु का दशामान ६ वर्ष = ७२ मास है। अतः एक नक्षत्र का मान १८ मास होगा। तीन नक्षत्र के मान ५४ मास में रेवती भयातोत्पन्न मास जोड़कर राहु के भुक्तवर्षादि को ६ वर्ष में घटाने से भोग्यवर्षादि समझकर दशा लगानी चाहिए ॥ ३८–३९ ॥

षट्त्रिंशत्समा दशा—

श्रवणाज्जन्मभं यावद् विगणय्याष्टभिर्भजेत्।
शेषादिन्द्वर्कदेवेज्यारज्ञार्किसितराहवः ॥ ४० ॥
दशाधीशाः क्रमादेषां ज्ञेया एकादयः समाः।
लग्ने दिवा भास्करस्य होरायां शशिनो निशि ॥ ४१ ॥

श्रवणा नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक गिनकर आठ से भाग दें एकादि शेष में चन्द्र, सूर्य, गुरु, भौम, बुध, शनि, शुक्र, राहु ये दशेश होते हैं। इनका दशावर्षमान क्रमशः १।२।३।४।५।६।७।८ होता है। दिनगत लग्न में सूर्य की होरा हो या रात्रिगत लग्न में चन्द्रमा की होरा हो तो यही षट्त्रिंशत्समा दशा ग्राह्य होनी चाहिए ॥ ४०–४१ ॥

स्पष्टार्थं षट्त्रिंशत्समादशाचक्र—

दशाधिप	चन्द्र.	सूर्य.	गुरु.	मंगल.	बुध.	शनि.	शुक्र.	राहु.
	श्र.	ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.	रे.	अ.	भ.
नक्षत्राणि	कृ.	रो.	मृ.	अ.	पु. न.	पु.	आश्ले.	म.
	पू. फा.	उ. फा.	ह.	च.	स्वा.	वि.	नु.	ज्ये.
	मू.	पू. षा.	उ. षा.	×	×	×	×	×
दशावर्ष	१	२	३	४	५	६	७	८

उदाहरण—पूर्ववत् समझना चाहिए। रेवती नक्षत्रोत्पन्न जातक का जन्म शनि की दशा में होगा तो भयात, भभोग के द्वारा भुक्त भोग्य वर्षसाधन विंशोत्तरी की तरह जानना ॥ ४०–४१ ॥

कालदशासाधन—

बिम्बार्धास्ताद्रवेः पूर्वं परस्तादुदयादपि।
पञ्चघट्यस्तूभयत्र सन्ध्यैवं दशनाडिका ॥ ४२ ॥
सन्ध्याद्वयं च विंशत्या घटिकाभिः प्रकीर्त्तितम्।
दिनस्य विंशतिर्घट्यः पूर्णसंज्ञा उदाहृताः ॥ ४३ ॥
निशाया मुग्धसंज्ञाश्च घटिका विंशतिश्च याः।
सूर्योदये तु या सन्ध्या खण्डाख्या दशनाडिका ॥ ४४ ॥
अस्तकाले तु या सन्ध्या सुधाख्या दशनाडिका।
पूर्णमुग्धाभिधा घट्यो द्विघ्नास्तष्टाः शरेन्दुभिः ॥ ४५ ॥
तद्वत्खण्डसुधानाड्यश्चतुर्घ्नास्तिथिभिर्हृताः ।
आप्तमब्दादिकं मानं रव्यादीनां नभस्सदाम् ॥ ४६ ॥
क्रमादेकादिगुणितं पृथग् मानं दशोद्भवम्।
कालसंज्ञमिनादीनां नवानां परिकीर्त्तितम् ॥ ४७ ॥

सूर्यबिम्बार्धोदय से पूर्व तथा पश्चात् पांच-पांच घटी एवं सूर्य बिम्बार्धास्त से भी पूर्व तथा पश्चात् पांच-पांच घटी इस तरह दश दश घटी प्रातः एवं सायं सन्ध्या होती है। दोनों सन्ध्याएँ २० घटीप्रमित कही गई हैं। दिन को अवशिष्ट सन्ध्याद्वय की बीच वाली २० घटिकाएँ पूर्ण संज्ञक एवं रात्रि की २० घटिकायें मुग्ध संज्ञक हैं। प्रातःकालिक सन्ध्या 'खण्डसंज्ञक एवं सायं सन्ध्या सुधासंज्ञक होती है। प्रत्येक सन्ध्या दश दश घटी तुल्य होती है। पूर्ण या मुग्ध घटी को (दिन-रात में जन्म के अनुसार) दो से गुणा कर १५ से भाग दें, इसी तरह खण्ड या सुधासंज्ञक घटी में जन्म हो तो उसकी गतघटी को ४ से गुणाकर १५ से भाग दें लब्ध वर्षादि

को सूर्यादि ग्रहसंख्या (एक-दो आदि) से गुणा करने पर सूर्यादि नवग्रहों की कालदशा होती है ॥ ४२–४७ ॥

उदाहरण—इष्टघटी = ४।१५, यह प्रातः सन्ध्या दशघटी के भीतर है अतः उसकी गतघटी ९।१५ को ४ से गुणा किया ३६।६० = ३७।० । इसमें १५ से भाग देने पर लब्ध वर्षादि २।५।१८ मान को एकादि संख्या से गुणा करने पर सूर्य से आरम्भ कर केतु पर्यन्त नवग्रहों की कालदशा निम्न चित्रस्थ हैं—

कालदशाचक्र—

	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.	
व.	२	४	७	९	१२	१४	१७	१९	२२	
मा.	५	११	४	१०	४	९	३	८	२	
दि.	१८	६	२४	१२	००	१८	६	२४	१२	
जन्म संवत्										
२०२८	२०३०	२०३५	२०४३	२०५२	२०६५	२०८०	२०९७	२११७	२१३९	सम्वत
४	१०	९	२	०	४	२	५	२	४	सू. राशि
२५	१३	१९	१३	२५	२५	१३	१९	१३	२५	अंश

चक्रदशा—

नक्तमङ्गश्रितादह्नि राशेरङ्गाधिपान्वितात् ।
अधिसन्ध्यं धनस्थानगताच्चक्रदशा स्मृता ॥ ४८ ॥
प्रत्येकस्य दशामानं दशाब्दा मुनिभिः क्रमात् ।
राशीनां तु नभश्चक्रस्थितानां समुदीरितम् ॥ ४९ ॥

रात्रि में जन्म रहे तो लग्नादि राशिक्रम से, दिन में जन्म रहे तो लग्नेश युक्त राशिक्रम से, सन्ध्यागत जन्म हो तो धनभावस्थ राशि से आरम्भ कर द्वादश राशियों की दशा होती है । प्रत्येक राशि का दशामान दशवर्ष प्रमाण है । आकाश चक्र में राशियों की सत्ता होने के कारण इसका नाम चक्रदशा है । ॥ ४८–४९ ॥

उदाहरण—यदि संवत् २०२९ श्रावण शुक्ल पूर्णिमा गुरुवार को चार बजे दिन में किसी का जन्म है । उस समय जन्म लग्न, धन और लग्नेशाश्रितराशि भी धन ही है । अतः उपर्युक्त नियमानुसार धन से आरम्भ कर द्वादश राशियों की दशा हुई । दशाक्रम निम्नाङ्कित है—

चक्रमहादशा—

राशि	धन.	मक.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु	वृ.
दशावर्ष	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
सम्वत्	२०३९	२०४९	२०५९	२०६९	२०७९	२०८९	२०९९	२१०९	२१२७	२१२९	२१३९	२१४९
सू. रा	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
अं.	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

कालचक्र-दशा का साधन—

पाराशर उवाच—

कालचक्रदशां वच्मि नराणामथ या पुरा।
पार्वत्यै कथिता विप्र ! स्वयमेव पिनाकिना ॥ ५० ॥
सारमुद्धृत्य तस्यास्तु वदामि शृणु यद्बलात्।
शुभाशुभं मनुष्याणां ज्ञातुं शक्नोति मानवः ॥ ५१ ॥

पराशर ने कहा—(अब) मैं कालचक्र दशा बतलाता हूँ, जिसे शङ्कर ने पार्वती को पहले बतलाया था। उस दशा का सारांश ही बतलाता हूँ जिसके द्वारा मनुष्यों का शुभाशुभ जाना जा सकता है ॥ ५०–५१ ॥

चक्रलेखनप्रकार—

द्वादशारं लिखेच्चक्रं तिर्यगूर्ध्वसमानकम्।
द्वादशैवं गृहाणि स्युर्द्विधा सव्यापसव्यतः ॥ ५२ ॥
द्वितीयादिषु कोष्ठेषु राशीन् मेषादिकान् न्यसेद्।
एवं द्वादशराश्याख्यं कालचक्रमुदीरितम् ॥ ५३ ॥

तिरछी एवं खड़ी रेखाओं के द्वारा १२, १२, कोष्ठों के सव्य और अपसव्य दो चक्र लिखें। उसके द्वितीयादि कोष्ठों में मेषादिक राशियों का न्यास करें। इस प्रकार सिद्ध चक्र द्वादश-राश्यात्मक कालचक्र कहलाता है ॥ ५२–५३ ॥

चक्र में नक्षत्रन्यास की विधि—

अश्विन्यादित्रयं चक्रसव्यमार्गे व्यवस्थितम्।
रोहिण्यादित्रयं चैवमपसव्ये व्यवस्थितम् ॥ ५४ ॥
एवं विधाय भानां तु विभागं चक्रमुल्लिखेत्।
अश्विन्यदिति-हस्तर्क्षमूल-प्रोष्ठपदाभिधाः ॥ ५५ ॥
विश्वाग्निपवनव्यालरेवत्यः सव्यभानि वै।
एतद्दशोडुपादानामश्विन्यादौ च वीक्षयेत् ॥ ५६ ॥

अश्विन्यादि तीन नक्षत्र सव्यचक्र में, रोहिण्यादि तीन नक्षत्र अपसव्यचक्र में, पुनः तीन-तीन नक्षत्र सव्य और अपसव्य दोनों चक्रों में न्यास करना चाहिए। इस विभागानुसार सव्यचक्र में १५, और अपसव्य चक्र में १२, नक्षत्र होते हैं। अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ, रेवती ये सव्यचक्र के नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रों के चरणों को अश्विनीचरण के समान ही देखना चाहिए ॥ ५४–५६ ॥

देह-जीव-निरीक्षणविधि—

ऋक्षाणामङ्घ्रिषु कथं देहो जीवश्च सुव्रत ।
सविस्तरं तयोर्वच्मि प्रकारमधुना शृणु ॥ ५७ ॥

देहजीवौ मेषचापौ दास्राद्यचरणस्य च ।
मेषाद्याश्चापपर्यन्तं राशिपाश्च दशाधिपाः ॥ ५८ ॥

नक्षत्रों के चरणों में किस प्रकार देह, जीव, देखना चाहिए इसका सविस्तर प्रकार बतलाता हूँ, हे मैत्रेय ! सुनो । अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण का मेष देह और धनु जीव कहलाते हैं, तथा मेष से धनु पर्यन्त राशि एवं राशीश क्रमशः दशाधीश होते हैं ॥ ५७–५८ ॥

देहजीवौ नक्रयुग्मे द्वितीयेऽङ्घ्रावुदीरितौ ।
नक्रतो मिथुनान्तं तु राशिपाश्च दशाधिपाः ॥ ५९ ॥

दास्रादिदशताराणां तृतीयचरणे मुने ! ।
गौर्देहो मिथुनं जीवो द्व्येकार्केशदशाङ्कपाः ॥ ६० ॥

इन्द्वक्षिरामभेशाश्च दशाधिपतयः क्रमात् ।
अश्विन्यादिदशोडूनां चतुर्थचरणेऽपि च ॥ ६१ ॥

कर्कमीनौ देहजीवौ कर्कादिनवभाधिपाः ।
दशाधिपा नव ज्ञेया इति मैत्रेय ! निश्चितम् ॥ ६२ ॥

अश्विनी के द्वितीय चरण में मकर देह और मिथुन जीव कहे गए हैं तथा मकर से मिथुन पर्यन्त राशियों के स्वामी दशाधिप होते हैं । अश्विनी आदि दश नक्षत्रों के तृतीय चरण में वृष, मिथुन क्रमशः देह, जीव, तथा २, १, १२, ११, १०, ९, १, २, ३, इन राशियों के स्वामी दशेश होते हैं । अश्विनी आदि दश नक्षत्रों के चतुर्थ चरण में कर्क, मीन क्रमशः देह जीव होते हैं, और कर्क से मीन पर्यन्त राशिस्वामी दशाधिप होते हैं ॥ ५९–६२ ॥

भरण्यादि पाँच नक्षत्रों में देहजीवकथन—

यमेज्यचित्रातोयर्क्षा उत्तराभाद्रनामकाः ।
एतत्पञ्चोडुपादीनां भरण्यादौ विचारयेत् ॥ ६३ ॥

याम्यप्रथमपादस्य देहजीवावलिझषः ।
नागागत्तुपयोधीषुरामाक्षीन्द्वर्कभेश्वराः ॥ ६४ ॥

याम्यद्वितीयपादस्य देहजीवौ घटाङ्गने ।
रुद्रदिङ्-नन्द-चन्द्राक्षि-रामाब्धीष्वङ्गभाधिपाः ॥ ६५ ॥

याम्यतृतीयपादस्य देहजीवौ तुलाङ्गने ।
सप्ताष्टाङ्कदिगीशार्क-गजाद्रिरसभाधिपाः ॥ ६६ ॥

देहजीवौ कर्कचापौ चतुर्थचरणे स्मृतौ ।
वेदबाणाग्निनेत्रेन्दु-सूर्येशदशनन्दपाः
दशाधिपाः सव्यमेवमपसव्यमतः परम् ॥ ६७ ॥

भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ तथा उत्तराभाद्र ये पांच भरण्यादि नक्षत्र कहलाते हैं। इनके चरणों में भरणी के समान देह-जीव समझना। भरणी के प्रथम चरण में वृश्चिक, मीन, क्रमशः देह-जीव होते हैं, और ८, ७, ६, ४, ५, ३, २, १, १२, राशियों के स्वामी क्रमशः दशाधिप होते हैं। भरणी के द्वितीय चरण में कुम्भ, कन्या, क्रमशः देह-जीव होते हैं, तथा दशाधीश ११।१०।९।१।२।३।४।५।६ इन राशियों के स्वामी हैं। भरणी के तृतीय चरण में तुला, कन्या, क्रमशः देह-जीव हैं, तथा ७।८।९।१०।११।१२।८।७।६ इन राशियों के स्वामी दशाधीश हैं। भरणी के चतुर्थ चरण में कर्क तथा धनु क्रमशः देह-जीव हैं। दशाधीश ४, ५, ३, २, १, १२, ११, १०, ९ राशियों के स्वामी होते हैं। सव्य चक्र में उपर्युक्त स्थिति जाननी चाहिए। अपसव्य चक्रस्थिति आगे कही जा रही है ॥ ६३–६७ ॥

द्वादशारं लिखेच्चक्रं यथापूर्वं द्विजोत्तम ! ।
द्वितीयादिषु कोष्ठेषु वृश्चिकाद् व्यस्तमालिखेत् ॥ ६८ ॥

प्राजापत्यमघाद्वीशश्रवणं च चतुष्टयम् ।
असव्यनक्षत्रमदः प्राचीनैः समुदीरितम् ॥ ६९ ॥

धातृवद् वीक्षयेद् देहजीवावुक्तेषु भेषु च ।
धात्राद्यचरणे देहजीवौ कर्किधनुर्धरौ ॥ ७० ॥

नवदिग्रुद्रसूर्येन्दु-नेत्राग्नीष्वब्धिराशिपाः ।
धातृद्वितीयचरणे देहजीवौ तुलाङ्गने ॥ ७१ ॥

रसाद्रयष्टरवीशाशा नवाष्टगिरिराशिपाः ।
धातुस्तृतीयचरणे देहजीवौ घटस्त्रियौ ॥ ७२ ॥

षड्बाणाब्धिगुणाक्षीन्दु-नन्ददिग्रुद्रराशिपाः ।

रोहिण्यन्तपदे देहजीवावलिझषौ स्मृतौ ।
सूर्येन्दुद्विगुणेष्वब्धि-तर्कशैलाष्टराशिपाः ॥ ७३ ॥

पूर्ववत् १२ कोष्ठ वाले चक्र लिखकर द्वितीय कोष्ठ में वृश्चिक से उलटा (वृश्चिक, तुला आदि) राशियों का विन्यास करें । उसमें रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण इन चार नक्षत्रों में देह-जीवादि रोहिणी के समान समझें । प्राचीनों ने इन्हें असव्य नक्षत्र कहा है । रोहिणी के प्रथम चरण में देह-जीव क्रमशः कर्क तथा धनु होते हैं । ९।१०।११।१२।१।२।३।५।४ राशियों के स्वामी दशाधिप होते हैं । रोहिणी के द्वितीय चरण में देह-जीव क्रमशः तुला तथा कन्या होते हैं । ६।७।८।१२।११। १०।९।८।७ राशियों के स्वामी दशेश होते हैं । रोहिणी के तृतीय चरण में कुम्भ देह तथा कन्या जीव कहे गए हैं । ६।५।४।३।२।१।९।१०।११ इनके स्वामी दशाधीश होते हैं । रोहिणी के अन्तिम चरण में वृश्चिक देह, मीन जीव होते हैं । १२।१।२।३।५। ४।६।७।८। राशियों के स्वामी दशाधिप होते हैं ॥ ६८–७३ ॥

मृगशिरादि ८ असव्यनक्षत्रों में देह-जीव कथन—

चान्द्ररौद्रभगार्यम्णमित्रेन्दुवसुवारुणम् ।
एतत्ताराष्टकं त्रिज्ञैर्विज्ञेयं चान्द्रवत् क्रमात् ॥ ७४ ॥

कर्कमीनौ देहजीवौ मृगाद्यचरणे मुने ! ।
व्यस्तं मीनादिकर्कान्त-राशिपाश्च दशाधिपाः ॥ ७५ ॥

गौर्देहो मिथुनं जीवो मृगपादे द्वितीयके ।
त्रिद्व्येकाङ्कदिशीशार्क-चन्द्राक्षिभवनाधिपाः ॥ ७६ ॥

देहजीवौ नक्रयुग्मे मृगपादे तृतीयके ।
त्रिबाणाब्धिरसागाष्ट-सूर्येशदक्षराशिपाः ॥ ७७ ॥

मेषचापौ देहजीवौ मृगपादे चतुर्थके ।
व्यस्तं चापादिमेषान्त-राशिपाश्च दशाधिपाः ॥ ७८ ॥

मृगशिरा आर्द्रा, पूर्वफाल्गुनी, उ० फाल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शततारा इन असव्य ८ नक्षत्रों के चरणों में देह-जीव आदि का न्यास मृगशिरा की तरह समझना चाहिए । मृगशिरा के आद्य चरण में कर्क मीन क्रमशः देह-जीव होते हैं, और मीन से व्यस्तक्रम से कर्क पर्यन्त राशियों के स्वामी दशाधीश होते हैं । मृगशिरा के द्वितीय चरण में वृष देह, मिथुन जीव होते हैं । और दशाधिपति ३।२।१।९। १०।११।१२।१।२ राशियों के स्वामी होते हैं । मृगशिरा के तृतीय चरण में मकर मिथुन क्रमशः देह-जीव होते हैं । तथा दशाधीश ३।५।४।६।७।८।१२।११।१० राशियों

के स्वामी होते हैं। मृगशिरा के चतुर्थ चरण में मेष-धनु क्रमशः देह-जीव होते हैं। तथा धनु से व्यस्तक्रम से मेष तक (९।८।७।६।५।४।३।२।१) राशियों के स्वामी दशेश होते हैं॥ ७४–७८॥

पराशर उवाच—

इत्थं यद् गिरिजादेव्यै महेशेन पुरोदितम्।
मयेदानीं निगदितं देहजीवदशादिकम्॥ ७९॥

पराशरने कहा—इस प्रकार नक्षत्रों के चरणों में देह-जीव दशा का न्यास, पार्वती को शङ्कर जी ने जो बतलाया था, उसे मैंने अभी आप से कहा है॥ ७९॥

मैत्रेय उवाच—

दशाधिपानां वर्षाणि दशारम्भविधिं तथा।
भुक्तभोग्यजवर्षादि कृपया वद मे प्रभो!॥ ८०॥

मैत्रेय ने कहा—हे प्रभो! दशेशों के दशावर्ष प्रमाण क्या है तथा दशा के भुक्त भोग्य वर्षादि जानने की विधि कृपया मुझे बतलावें॥ ८०॥

पराशर उवाच—

भूतैक-विंशगिरयो नवदिक्षोडशाब्धयः।
दशाब्दाः स्युरिनादीनां राशीनां स्वामिनो वशात्॥ ८१॥

पराशर ने कहा—सूर्यादि ग्रहों के दशावर्ष क्रमशः ५।२१।७।९।१०।१६।४ ये होते हैं। उपर्युक्त राशि जो दशाधिप कहे गए हैं उनके स्वामी का दशावर्ष समझना चाहिए॥ ८१॥

स्पष्टार्थ चक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	क,	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
राशीश	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	श.	गु.
दशावर्ष	७	१६	९	२१	५	९	१६	७	१०	४	४	१०

दशारम्भ-विधि—

नरस्य जन्मकाले वा प्रश्नकाले यदंशकः।
तदादिनवभानां तु वर्षाण्यायुरुदीर्यते॥ ८२॥
अंशस्यादौ पूर्णमायुर्भवेन्मध्ये ततोऽर्धकम्।
अंशान्ते मृत्युवत् कष्टमित्यन्येषां सतां मतम्॥ ८३॥

मनुष्य के जन्म या प्रश्न के समय नक्षत्र का जो चरण हो वहीं से आरम्भ कर ९ राशियों के जितने वर्ष हों उतने वर्ष उस मनुष्य की परमायु होती है। बहुत से आचार्यों का मत है कि चरण के आदि में जन्म होने पर परमायु, मध्य में आधा और चरणान्त में जन्म होने पर मरणतुल्य कष्ट होता है ॥ ८२–८३ ॥

नक्षत्रचरणनवांश-ज्ञान—

ज्ञात्वैवं स्फुटसिद्धान्तं राश्यंशं गणयेद् बुधः।
अनुपातेन वक्ष्यामि तदुपायमतः परम् ॥ ८४ ॥
गततारास्त्रिभिर्भक्ताः शेषं चापि चतुर्गुणम्।
वर्त्तमानपदेनाढ्यं राशीनामंशको भवेत् ॥ ८५ ॥

इस सिद्धान्त को जानकर विद्वान् राश्यंश को जानें। अनुपात के द्वारा उसका आनयन अब मैं बतलाता हूँ।

अश्विन्यादि गतनक्षत्र को तीन से भाग दें, लब्धि को छोड़, शेष नक्षत्र को चार से गुणा करें, उसमें वर्त्तमान नक्षत्र के वर्त्तमान चरण-संख्या जोड़ें, इस प्रकार जो संख्या हो वह मेषादि राशियों के क्रमशः नवांश होते हैं।

उदाहरण—जैसे हस्त नक्षत्र के तृतीय चरण में यदि किसी का जन्म है तो अश्विनादि गत नक्षत्र संख्या १२ में ३ से भाग लेने पर शेष शून्य हुआ। उसे चार से गुणाकर वर्त्तमान हस्त नक्षत्र के तृतीय चरण-संख्या ३ को मिलाने से ० × ४ + ३ = ३। मेषादि राशिक्रम से मिथुन का नवांश सिद्ध हुआ ॥ ८४–८५ ॥

कालचक्र-स्थित राशियों में वर्षयोग-कथन—

क्रिये वृषे युगे कर्के शतं बाणगजाः समाः।
त्रिनागाः षड्गजास्तद्वदप्युक्तास्तत्-त्रिकोणके ॥ ८६ ॥

कालचक्र में स्थापित राशियों में मेषांश, वृषांश, मिथुनांश एवं कर्कांश में क्रमशः १००।८५।८३।८६ वर्षयोग (पूर्णायुर्मान) होता है। इनसे नवम-पञ्चम में भी इतने ही वर्ष होते हैं। जैसे मेषांश, सिंहांश, धनुरंश में—१०० वर्ष, वृषांश, कन्यांश, मकरांश में—८५ वर्ष, मिथुनांश, तुलांश, कुम्भांश में—८३ वर्ष, और कर्कांश, वृश्चिकांश, मीनांश में—८६ वर्ष समझने चाहिए ॥ ८६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र—

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१००	८५	८३	८६	१००	८५	८३	८६	१००	८५	८३	८६

कालचक्रमहादशारम्भ ज्ञान—

यत्र पादे भवेज्जन्म तद्व्यतीतघटीपलैः ।
तद्दशाब्दा विनिहताः पञ्चभूमिविभाजिताः ॥ ८७ ॥
लब्धं तु भुक्तवर्षादि भोग्यं तस्मात् प्रसाधयेत् ।
विंशोत्तरीव राशीनां नवानां स्यान्महादशा ॥ ८८ ॥

नक्षत्र के जिस चरण में जन्म हो उस चरण के गत घटीपलों से दशावर्ष को गुणा करें १५ से भाग दें तो लब्ध भुक्तवर्षादि होवे । पुनः नियमानुसार भोग्य वर्षादि लाकर विंशोत्तरी की तरह अग्रिम राशियों की महादशा लगानी चाहिए ॥ ८७–८८ ॥

उदाहरण—रोहिणी नक्षत्र के द्वितीय चरण में किसी का जन्म है । भयात = २५। ३४, भभोग=५६।४० । रोहिणी असव्य नक्षत्र है । इसके देहाधिप शुक्र, जीवाधीश बुध हैं । भभोग का चतुर्थांश=१४।१० यह एक चरण का मान हुआ । भयात द्वितीय चरण में है अतः भयात २५।३४ में से घटाने पर २५।३४—१४।१० = ११।२४ = रोहिणी द्वितीय चरण के गतघट्यादि । पूर्ण दशा वर्ष ८३ है । अतः गतघट्यादि ११।२४ को ८३ से गुणा करने पर ९१३।१९९२ । सवर्णन करने पर = ९४६।१२ । इसमें १५ से भाग देने पर व. मा. दि.

६३। १। १८ यह भुक्त वर्षादि हुए ।

रोहिणी असव्य नक्षत्र है ; अतः जीव से देह पर्यन्त गणना होगी । द्वितीय चरण में जन्म होने के कारण जीव कन्या और देह तुला है । अतः भुक्त वर्षादि ६३।१।१८ में कन्या से धनु पर्यन्त सर्वयोग ६० वर्ष घटाने पर शेष ३।१।१८ यह वृश्चिक का भुक्त वर्षादि हुए । इन्हें वृश्चिक के वर्ष ७ में घटाने पर ३।१०।१२ यह शेष वर्षादि भोग्य वर्षादि हुआ । स्पष्टार्थ असव्य कालचक्र देखिए—भोग्य वर्षादि के बाद विंशोत्तरी दशा की तरह दशा लगानी चाहिए ।

कालचक्र महादशा—

दशाधीश	वृश्चि.	तु.	क.	तु.	वृश्चि.	मी.	कु.	म.	ध.
व.	३	१६	९	१६	७	१०	४	४	१०
मा.	१०	०	८	०	०	०	८	०	०
दि.	१२	०	०	०	०	०	०	७	०
जन्मसंवत् २०२८	२०६२	२०४८	२०५७	२०७३	२०८०	२०९०	२०९४	२०९८	२१०८
स्पष्ट सूर्य ४	३	३	३	३	३	३	३	३	३
२५	७	७	७	७	७	७	७	७	९

विशेष—यहां भभोग ६० मानकर उसके चतुर्थांश १५ से भाग लेकर भुक्त वर्षादि का आनयन किया गया है । ५४ या ६६ भभोग होने पर अधिक अन्तर की सम्भावना है अतः "पञ्चभूमिविभाजिताः" के स्थान पर भभोगाङ्घ्रिविभाजिताः समझना चाहिए ॥ ८७–८८ ॥

सव्य कालचक्र—

सव्य नक्षत्र १।२।३।७।८।९।१३।१४।१५।१९।२०।२१।२५।२६।२७

सव्य नक्षत्र	चरण	देहाधिप	देह	राशि एवं राशि वर्ष							जीव	जीवाधिप	अंश	दशा वर्षयो
अश्विनी पुनर्वसु हस्त मूल पूर्वभाद्र	१	मं.	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	क. २१	सिं. ५	क. ९	तु. १६	वृ. ७	ध. १०	गुरु	मेषांश	१००
	२	श.	म. ४	कुं. ४	मी. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	क. २१	सिं. ५	मि. ९	बुध	वृषांश	८५
	३	शु.	वृ. १६	मे. ७	मी. १०	कुं. ४	म. ४	ध. १०	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	बुध	मिथुनांश	८३
	४	चं.	क. २१	सिं. ५	क. ९	तु. १६	वृ. ७	ध. १०	म. ४	कुं. ४	मी. १०	गुरु	कर्कांश	८६
भरणी पुष्य चित्रा पूर्वाषाढ उत्तरभाद्र	१	मं.	वृ. ७	तु. १६	क. ९	क. २१	सिं. ५	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	मी. १०	गुरु	सिंहांश	१००
	२	श.	कुं. ४	म. ४	ध. १०	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	क. २१	सिं. ५	क. ९	बुध	कन्यांश	८५
	३	शु.	तु. १६	वृ. ७	ध. १०	म. ४	कुं. ४	मी. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	बुध	तुलांश	८३
	४	चं.	क. २१	सिं. ५	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	मी. १०	कुं. ४	म. ४	ध. १०	गुरु	वृश्चिकांश	८६
कृत्तिका आश्लेषा स्वाती उत्तराषाढ रेवती	१	मं.	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	क. २१	सिं. ५	क. ९	तु. १६	वृ. ७	ध. १०	गुरु	धनुरंश	१००
	२	श.	म. ४	कुं. ४	मी. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	क. २१	सिं. ५	मि. ९	बुध	मकरांश	८५
	३	शु.	वृ. १६	मे. ७	मी. १०	कुं. ४	म. ४	ध. १०	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	बुध	कुम्भांश	८३
	४	चं.	क. २१	सिं. ५	क. ९	तु. १६	वृ. ७	ध. १०	क. ४	कुं. ४	मी. १०	गुरु	मीनांश	८६

असव्य-कालचक्र

असव्य नक्षत्र—४।५।६।१०।११।१२।१६।१७।१८।२२।२३।२४

असव्य नक्षत्र		जीवाधिप	जीव	राशि एवं राशि वर्ष							देह	देहाधिप	अंश	दशा वर्षयो
रोहिणी मघा विशाखा श्रवण	१	गु.	ध. १०	म. ४	कुं. ४	मी. १०	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	सिं. ५	क. २१	चं.	वृश्चिकांश	८६
	२	बु.	क. ९	तु. १६	वृ. ७	मी. १०	कुं. ४	म. ५	ध. १०	वृ. ७	तु. १६	शु.	तुलांश	८३
	३	बु.	क. ९	सिं. ५	क. २१	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	ध. १०	म. ४	कुं. ४	श.	कन्यांश	८५
	४	गु.	मी. १०	मे. ७	वृ. १६	मि. ९	सिं. ५	क. २१	क. ९	तु. १६	वृ. ७	मं.	सिंहांश	१००
मृगशिरा पूर्वफाल्गुनी अनुराधा धनिष्ठा	१	गु.	मी. १०	कुं. ४	म. ४	ध. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	सिं. ५	क. २१	चं.	कर्कांश	८६
	२	बु.	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	ध. १०	म. ४	कुं. ४	मी. १०	मे. ७	वृ. १६	शु.	मिथुनांश	८३
	३	बु.	मि. ९	सिं. ५	क. २१	क. ९	तु. १६	वृ. ७	मी. १०	कुं. ४	म. ४	श.	वृषांश	८५
	४	गु.	ध. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	सिं. ५	क. २१	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	मं.	मेषांश	१००
आर्द्रा उत्तरफाल्गुनी ज्येष्ठा शतभिषा	१	गु.	मी. १०	कुं. ४	म. ४	ध. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	सिं. ५	क. २१	चं.	मीनांश	८६
	२	बु.	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	ध. १०	म. ४	कुं. ७	मी. १०	मे. ७	वृ. १६	शु.	कुम्भांश	८३
	३	बु.	मि. ९	सिं. ५	क. २१	क. ९	तु. १६	वृ. ७	मी. १०	कुं. ४	म. ४	श.	मकरांश	८५
	४	गु.	ध. १०	वृ. ७	तु. १६	क. ९	सिं. ५	क. २१	मि. ९	वृ. १६	मे. ७	मं.	धनुरांश	१००

प्रकान्तर से भुक्तभोग्य वर्षानयन—

इन्दोर्नवांशभुक्ता या लिप्ताः स्वाब्दहतोद्धृताः।
शतद्वयेन भुक्तं तद् भोग्यं ज्ञेयमतः परम् ॥ ८९ ॥

स्फुट चन्द्र की भुक्तकला को स्वाब्द से गुणा कर २०० सौ से भाग लें, लब्ध वर्षादि भुक्त और उसे वर्ष संख्या में घटाने पर भोग्य वर्षादि होते हैं ॥ ८९ ॥

उदाहरण—किसी के जन्म के समय में स्पष्ट चन्द्रमा ८।१५।४८′ राश्यादि है। कलात्मक चन्द्र = १५३४८। इसमें ८०० से भाग देने पर लब्धि=१९ शेष १४८। अर्थात् मूल नक्षत्र व्यतीत है। वर्तमान पूर्वाषाढ़ नक्षत्र की १४८ कला भुक्त है। चूँकि एक चरण की कला २००होती है अतः पूर्वाषाढ़ नक्षत्र के प्रथम चरण की ही भुक्त १४८ कला है। पूर्वाषाढ़ सव्य नक्षत्र है, इसका देह वृश्चिक, जीव मीन है। १४८ को वर्त्तमान दशावर्ष योग १०० से गुणा कर १४८०० लब्धि में २०० से भाग दिया तो ७४।०।० भुक्त वर्षादि हुए। इसमें देहांश वृश्चिक से आरम्भ कर वृश्चिक, तुला, कन्या, कर्क, सिंह, मिथुन का वर्षयोग (७ + १६ + ९ + २१ + ५ + ९ = ६७ वर्ष) को घटाया तो शेष = ७।०।० यह वर्षादि वृष का भुक्त हुआ। वृष वर्ष १६ में घटाने पर ९।०।० यह वृष के भोग्य वर्षादि हुए। सव्य कालचक्र देखने से स्पष्ट हो जायगा।

कालचक्र महादशा—

दशेश	वृ.	मे.	मी.	वृश्चि.	तु.	कन्या	कर्क.	सिं.	मि.
वर्ष	९	७	१०	७	१६	९	२१	५	९
मा.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०२८	२०३७	२०४४	२०५४	२०६१	२०७७	२०८६	२१०७	२११२	२१२१
स्प० सूर्य २	२	२	२	२	२	२	२	२	२
२१	२१	२२	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१

सव्यासव्य चक्र में देह-जीव तथा गणनाक्रम कथन—

आद्यांशो यस्तु सव्याख्ये देहः सद्भिरुदीरितः।
जीवस्तथान्तिमांशः स्यादपसव्ये विपर्ययात् ॥ ९० ॥
सव्ये देहादिकं चापसव्ये जीवादिकं मुने।
विगणय्य बुधैर्वाच्यं फलं तदनुसारतः ॥ ९१ ॥

सव्य चक्र में आदिम अंश देह और अन्तिम अंश जीव कहलाता है। अपसव्य चक्र में इससे विपरीत (अन्तिम अंश देह और आदिम अंश जीव) समझना। अतः सव्य में देहादिक गणना और अपसव्य में जीवादिक गणना करके फलादेश करना चाहिए ॥ ९०-९१ ॥

त्रिविधकालचक्रगति—

त्रिविधा कालचक्रे तु राशीनां गतिरीरिता।
मण्डूकी-मर्कटी-सिंहावलोकनसमाह्वया ॥ ९२ ॥
राशिमुल्लङ्घ्य गमनं माण्डूकी गतिरुच्यते।
ततस्तु पृष्ठगमनं मर्कटीसंज्ञिका मता ॥
बाणाच्च नवपर्यन्तं गतिः सिंहावलोकनम् ॥ ९३ ॥

कालचक्र में राशियों की त्रिविध गति कही गई है वह माडूकी, मर्कटी तथा सिंहावलोकन संज्ञक है। एक राशि को लाँघ कर अग्रिम राशि में जाना माण्डूकी गति; किसी राशि से पीछे की राशि में आना मर्कटी गति तथा पञ्चम से नवम तक जाना सिंहावलोकन गति है ॥ ९२–९३ ॥

माण्डूकी त्वङ्गनाकर्कटयोर्हरिनृयुग्मयोः।
कुलीरसिंहयोरेवं मर्कटीगतिरुच्यते ॥ ९४ ॥
सैंहीगतिर्झषाल्योस्तु धन्विक्रियभयोस्तथा।
सर्वमेतदभिज्ञाय वक्तव्यं तद् · दशाफलम् ॥ ९५ ॥

कन्या से कर्क में तथा सिंह से मिथुन में आना माण्डूकी गति है, (क्योंकि मध्यवर्ती राशि का उल्लङ्घन किया गया है)। सिंह से कर्क में आने को मर्कटी गति कहते हैं, क्योंकि बिना उल्लङ्घन किए ही पीछे की राशि में जाना है। मीन से वृश्चिक में तथा धनु से मेष में जाने को सिंहावलोकन गति कहते हैं। इन त्रिविध गतियों को जानकर ही दशाफल कहना चाहिए ॥ ९४–९५ ॥

गतिवश दशाफल—

सव्यचक्रे तु माण्डूक्यां कष्टं बन्धुगणे स्मृतम्।
मातापित्रोर्वाऽऽयुधाग्नि-ज्वरस्तेनविषाद् भयम् ॥ ९६ ॥
हर्यक्षद्वन्द्वयोस्तत्र जनन्या वात्मनो मृतिम्।
राजतः सन्निपाताद् वा भीतिं प्राज्ञो विनिर्दिशेत् ॥ ९७ ॥

सव्य चक्रस्थ मण्डूकगति की दशा में बन्धु,बान्धवों में कष्ट तथा माता-पिता को अस्त्र, अग्नि, ज्वर, चोर या विष से भय कहना चाहिए। सिंह से मिथुन वाली मण्डूक दशा में माता का या अपना मरण, अथवा राजा या सन्निपातरोग से भय का निर्देश करें ॥ ९६–९७ ॥

सस्यसम्पत्पशूनां तु नाशश्च निधनं पितुः।
तादृशां वाप्यलसता सव्यायां मर्कटीगतौ ॥ ९८ ॥

सव्य चक्र के मर्कटी गमन वाली राशि की दशा में सस्य-सम्पत्ति (धान्यादि) तथा

पशुओं का विनाश, पिता या पितृतुल्य व्यक्तियों का मरण और आलस्य कहना चाहिए ॥ ९८ ॥

सिंहावलोकने सव्ये पशुभीर्बन्धुपीडनम् ।
मित्रप्रेमादिविलयः पातः कूपादिकेऽथवा ॥ ९९ ॥
पतनं यानतो वाह्नि-गरलायुधतो भयम् ।
स्नानक्षयो ज्वररुजा-पीडनं च नृणां भवेत् ॥ १०० ॥

सव्यचक्रस्थ सिंहावलोकन दशा में पशुओं को भय, बन्धु-बान्धवों में पीड़ा, मित्रस्नेह का विनाश, कूपादि या सवारी से गिरना, अग्नि, विष, शस्त्र से भय, ज्वर-प्रकोप से स्नान में बाधा, तथा स्वसदृश व्यक्तियों की पीड़ा कहनी चाहिए ॥ ९९–१०० ॥

सव्येतरस्थमाण्डूक्यां जायापुत्रादिपीडनम् ।
हिंस्राज्जीवाद् भयं स्थानविनाशं च ज्वरं दिशेत् ॥ १०१ ॥
मार्कट्यां तु गतौ भीतिर्जलात् स्थानच्युतिस्तथा ।
राजकोपः पितृमृतिः सञ्चारः कानने भवेत् ॥ १०२ ॥
सिंहावलोकने सव्येतरे स्थानच्युतिस्तथा ।
निधनं स्वपितुः किं वा तत्समस्य प्रजायते ॥ १०३ ॥

असव्यचक्रस्थ मण्डूकगति वाली राशियों की दशा में स्त्री, पुत्र आदि को कष्ट, हिंसक जीव से भय, स्थाननाश, तथा ज्वरादिभय कहना चाहिए। मर्कटी गतिवाली राशियों की दशा में जल से भय, स्थानच्युति, राजकोप, पिता की मृत्यु तथा जङ्गल में सञ्चार (भटकाव) कहें। असव्यचक्रस्थ सिंहावलोकन वाली राशियों की दशा में स्थानच्युति, पिता या तत्सदृश गुरुजन की मृत्यु होती है ॥ १०१–१०३ ॥

विशेष फल—

मीनात् तु वृश्चिके याते ज्वरो भवति निश्चितम् ।
कन्यातः कर्कटे याते बन्धुबान्धवनाशनम् ॥ १०४ ॥
सिंहात्तु मिथुने याते स्त्रियो व्याधिर्भवेद् ध्रुवम् ।
कर्कटात्तु हरौ याते वधो भवति देहिनाम् ॥ १०५ ॥
पितृबन्धुमृतिं विद्याच्चापान्मेषे गते पुनः ।
क्रूरग्रहयुते भीतिं सौम्ययुक्ते शुभं दिशेत् ॥ १०६ ॥

मीन से वृश्चिक की दशा में जाने पर ज्वरभय, और कन्या से कर्क में जाय तो बन्धु-बान्धवों का विनाश, सिंह से मिथुन में जाने पर स्त्री को रोग, और कर्क से

सिंह में जाय तो स्वयं देही की मृत्यु, धनु से मेष में जाने पर पिता के भाई (चाचा) की मृत्यु कहनी चाहिए। पापग्रह के संयोग से भय और शुभग्रह के योग से शुभ फल का आदेश करें ॥ १०४–१०६ ॥

पुनः विशेष फल—

कालचक्रदशायास्तु फलं यच्च शुभाशुभम् ।
तद् वाच्यं राशिखगयोः पूर्वाद्याशाद्विभागतः ॥ १०७ ॥
इत्थं मुने ! समस्तानां तद्दशावत्सरे नृणाम् ।
यथानिर्दिष्टमेव स्यात् फलं भागे तु तद्दिशः ॥ १०८ ॥

हे मुने ! कालचक्रदशा का जो शुभाशुभ फल कहा गया है वह राशि और ग्रह दोनों की दिशा के अनुसार समझना चाहिए जैसा कि आगे बतलाया गया है ॥ १०७–१०८ ॥

कन्यातः कर्कटे याते पूर्वभागे महत् फलम् ।
उत्तरं देशमाश्रित्य शास्ता यात्रा भविष्यति ॥ १०९ ॥
सिंहात्तु मिथुने याते पूर्वभागं परित्यजेत् ।
कार्यान्तेऽपि च नैर्ऋत्यां सुखं यात्रा भविष्यति ॥ ११० ॥
कर्कटात्तु गते सिंहे कार्यहानिरवाग्दिशि ।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य प्रतीच्यां गमनं भवेत् ॥ १११ ॥
मीनात्तु वृश्चिके यात उदीच्यां याति सङ्कटम् ।
चापात्तु मकरे याते संकटं स्यान्न संशयः ॥ ११२ ॥
चापान्मेषे तु यात्रायां गदो बन्धोर्मृतिर्भवेत् ।
सुखं सम्पत् कलत्राप्तिरपि याते तु वृश्चिके ॥ ११३ ॥
हरेः कुलीरके याते त्याज्याशा पश्चिमा बुधैः ।
सौम्ययोगे शुभं क्रूरे त्वशुभं फलमादिशेत् ॥ ११४ ॥

कन्या से कर्क में जाने पर पूर्व भाग (देश) में शुभफल होता है। उस समय उत्तर दिशा की यात्रा प्रशस्त होती है। अर्थात् दक्षिण तथा पश्चिम की ओर यात्रा नहीं करनी चाहिए।

सिंह से मिथुन में जाने पर पूर्व की यात्रा त्याज्य है। कार्यान्त में नैर्ऋति कोण की यात्रा शुभप्रद होती है। कर्क से सिंह में जाने पर दक्षिण दिशा में कार्य-हानि होती है। दक्षिण दिशा से पश्चिम दिशा की ओर जाना पड़ता है। मीन से वृश्चिक में जाने पर उत्तर दिशा संकट पूर्ण हो जाती है। धनु से मकर में जाने पर भी संकट निःसन्दिग्ध हुआ करता है। धनु से मेष में जानेपर यात्रा करने

पर रोग तथा बन्धुओं की मृत्यु होती है। धनु से वृश्चिक में जाने पर सुख, समृद्धि, स्त्री-प्राप्ति होती है। सिंह से कर्क में जाने पर पश्चिम दिशा त्याज्य है अर्थात् पश्चिम की ओर यात्रा न करें। शुभग्रह, संयोग से शुभ फल और पापग्रह के योग से अशुभ फल कहना चाहिए ॥ १०९-११४ ॥

कालचक्रांश फल—

चौरः शूरः क्रियांशे स्याद् वृषभांशे श्रियान्वितः।
युग्मांशे ज्ञानसम्पन्नः कुलीरांशे भवेन्नृपः ॥ ११५ ॥
सिंहांशे राजपूज्यः स्यादङ्गनांशे बुधो भवेत्।
तुलांशे राजमन्त्री स्यादल्पांशे निर्धनो जनः ॥ ११६ ॥
चापांशे ज्ञानसंयुक्तो मकरांशे तु पापकृत्।
कुम्भांशे च वणिक्कर्मा मीनांशे वसुधान्यवान् ॥ ११७ ॥

कालचक्रानुसार मेषांश में जन्म होने पर चोर तथा शूर, वृषांश में लक्ष्मीवान् मिथुनांश में जन्म हो तो ज्ञानी, कर्कांश में राजा, सिंहांश में राजमान्य, वृश्चिकांश में उत्पन्न होने पर निर्धन, धनुरंश में भी ज्ञानसम्पन्न, मकरांश में पापकारी, कुम्भांश में वाणिज्य करने वाला, और मीनांश में जन्म से धन-धान्यसम्पन्न जातक होता है ॥

देह-जीवस्थित-ग्रहफल—

सूर्यागुभौमशनिभिर्देहो जीवोऽथवान्वितः।
एकैकयोगे मरणं बहुयोगे तु का कथा ॥ ११८ ॥
देहे पापैर्युते रोगो जीवे तैस्तु युतेऽतिभीः।
मनोव्यथा च रुग् द्वाभ्यामपमृत्युस्त्रिभिः स्मृतः ॥ ११९ ॥
चतुर्भिस्तु भवेन्मृत्युर्नात्र कश्चन संशयः।
देहे जीवे तूभयत्र पापग्रहयुतिर्यदा ॥ १२० ॥
स्तेनार्दितो राजतो वा स्याद् भीर्मृत्युरपि ध्रुवम्।
सूर्ये त्वनलजा भीतिः क्षीणचन्द्रे तु वारिभीः ॥ १२१ ॥
पीडाऽऽयुधाद् भूमिजे तु वातार्तिः शशिजे मता।
मन्दे गुल्मामयोऽगौ तु गरलाद् भीः शिखिन्यपि ॥ १२२ ॥
शशिजो वा गुरुः शुक्रो देहे जीवेऽथवा गतः।
सौख्यसम्पत्तिदास्तद्वद् व्याधिशोकापहाः समे ॥ १२३ ॥
शुभाशुभैस्तत्र युक्ते शुभाशुभफलं स्मृतम्।
मिश्रैर्मिश्रफलं वाच्यमिति सर्वत्र निश्चितम् ॥ १२४ ॥

सूर्य, राहु, मङ्गल, शनि इनमें से किसी के भी साथ देह या जीव पड़े तो मरण होता है। यदि बहुत से देह या जीव में स्थित हों तो निश्चयतः मरण कहना चाहिए। देहस्थान में अधिक पापग्रह हों तो रोग और जीवस्थान में वे हों तो अतिभय होता है। दो पापग्रहों से वे युक्त हों तो मनोव्यथा तथा रोग, और तीन पापों से युक्त होने पर अपमृत्यु होती है। चार पापग्रह यदि हों तो निःसन्देह मृत्यु होती है। देह-जीव दोनों में पापग्रह का संयोग हो तो चौरपीड़ा या राजा के द्वारा कष्ट तथा भय एवं मरण भी निश्चयतः होता है। देह या जीव में कहीं भी सूर्य हों तो अग्निभय, क्षीण-चन्द्र के रहने पर जलभय, मङ्गल रहें तो अस्त्रपीड़ा, बुध रहें तो वातरोगजन्य पीड़ा होती है। शनि यदि देह या जीवगत हों तो गुल्मरोग, राहु तथा केतु के रहने पर विषभय कहना चाहिए। देह-जीव स्थान में बुध, गुरु, शुक्र हों तो विविध सौख्य तथा अनेकविध सम्पत्ति होवे और ये सभी शोकनाशक होते हैं। देह जीव स्थान में शुभ या अशुभ ग्रह के संयोग से शुभ या अशुभ फल, तथा मिश्रग्रहों से मिश्रफल कहना चाहिए॥ ११८—१२४॥

पापक्षेत्रदशामध्ये देहजीवौ तु दुःखितौ।
शुभक्षेत्रदशायां तु शुभमत्र न संशयः॥ १२५॥
शुभाशुभग्रहयुताऽसत्सद्राशिगा दशा।
क्रमान्मिश्रफला ज्ञेया जातकस्य सुधीजनैः॥ १२६॥

पापग्रह राशियों की दशा में देह जीव अत्यधिक दुःखी रहते हैं। शुभग्रह की राशि की दशा में निःसन्देह शुभ होता है। शुभग्रहयुक्त पापराशि दशा एवं पापग्रह युक्त शुभराशि-दशा मिश्रफलद होती है॥ १२५—१२६॥

जननावसरे नॄणां राशियों लग्नगो भवेत्।
कालचक्रदशायां तु तस्य, सौख्यं निरामयम्॥ १२७॥
सौम्ये पूर्णं सुखं क्रूरे तनौ व्याधिसमुद्भवः।
स्वतुङ्गगग्रहैर्युक्ते लोकमान्यो नृपो भवेत्॥ १२८॥

जन्मसमय जो राशि लग्नगत हो उसकी कालचक्र-दशा में नैरुज्य तथा सौख्य होते हैं। यदि वह शुभ राशि हो तो पूर्ण सुख, और पापराशि हो तो शरीर में व्याधि का भय कहना। वही यदि अपने उच्चस्थानगत ग्रहों से युक्त हों तो जातक लोकमान्य राजा होता है॥ १२७—१२८॥

वित्तभावगराशेस्तु फलं चक्रदशोद्भवम्।
सद्भोज्यामिश्रार्थलाभः स्त्रीतनुसुखसम्भवः॥ १२९॥
वाग्वैदग्ध्यं च सद्विद्या भवेत् सद्भिश्च सङ्गतिः।
सौम्यराशौ फलं त्वेवं पापराशौ तदन्यथा॥ १३०॥

द्वितीय भावगत राशि की चक्रदशा में सुन्दरभोजन, अर्थप्राप्ति तथा स्त्री, पुत्र का सुख, वाणी-विलास, सद्विद्या की वृद्धि तथा सज्जनों के साथ सङ्गति होती है। शुभ-राशि में ही ऐसा फल समझना, पापराशि में इसके विपरीत होता है ॥ १२९-१३० ॥

भ्रातृभावगराशेस्तु फलं चक्रदशोद्भवम्।
सुखं भ्रातुः शूरता च धीरताऽपि सुखं भृशम् ॥ १३१ ॥
हेमालङ्कारसद्वासो राजसम्मानसम्भवम्।
फलमेवं सौम्यराशौ पापराशौ तदन्यथा ॥ १३२ ॥

तृतीय-भावस्थ राशि की चक्रदशा में भ्रातृसुख, शूरता, धीरता तथा अत्यधिक सुखप्राप्ति होती है। साथ ही सुवर्णालङ्कार, सुन्दरवस्त्र तथा राजा के यहां सम्मान होता है। ऐसा फल शुभग्रह की राशि में कहना, पापग्रह की राशि में इसके विपरीत (अशुभ) समझना चाहिए ॥ १३१-१३२ ॥

भावे चतुर्थे यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदा।
तदा नैरुज्यमर्थाप्तिर्बन्धुसौख्यं विशेषतः ॥ १३३ ॥
सद्वस्त्रयानजं सौख्यं राज्यभू-गेहजं तथा।
सौम्यभे तु शुभं सौख्यं पापर्क्षे तद्विपर्ययम् ॥ १३४ ॥

सुखभावस्थ राशि की चक्रदशा में नैरुज्य, अर्थप्राप्ति, विशेष रूप से बन्धु-बान्धव-सौख्य, सुन्दरवस्त्र तथा वाहनसौख्य तथा भूमि, गृह, राज्य का भी सुख प्राप्त होता है। शुभराशि में शुभफल पापराशि में अशुभ फल कहना ॥ १३३-१३४ ॥

पुत्रभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि।
तर्हि जायाराज्यसूनुमित्रदेहसुखं भवेत् ॥ १३५ ॥
सद्विद्या-कीर्त्तिधीधैर्यपराक्रमसमुन्नतिः।
सौम्यभे तु शुभं सर्वं क्रूरभे तद्विपर्ययम् ॥ १३६ ॥

पुत्र भावस्थ राशि की चक्रदशा में स्त्री, राज्य, पुत्र, मित्र, शरीर-सौख्य, सद्-विद्या, यश, बुद्धि, धैर्य, पराक्रम की उन्नति, ये सब होते हैं। शुभराशि में सब शुभ फल पापराशि में अशुभ फल समझना चाहिए ॥ १३५-१३६ ॥

रिपुभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदा।
तर्हि राजाग्निगरलायुधस्तेनभवाऽतिभीः ॥ १३७ ॥
पाण्डुगुल्मप्रमेहादिरुजामपि समुद्भवः।
क्रूरराशौ फलं चैवं सौम्यभे स्याच्छुभाशुभम् ॥ १३८ ॥

षष्ठभावस्थ राशि की चक्रदशा में राजा, अग्नि, विष, अस्त्र, चोर आदियों का

अत्यधिक भय होता है। उस समय पाण्डु, गुल्म, प्रमेह आदि रोगों का भी प्रकोप होता है। परन्तु ऐसा फल क्रूरराशि होने पर ही समझना, शुभराशि में मिश्र फल जानना चाहिए॥ १३७–१३८॥

द्यूनभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि।
उद्वाहस्तर्हि सौख्यं च स्त्रीसुताप्त्यादिजं भवेत्॥ १३९॥
अतुला कीर्त्तिरप्याप्तिर्गोसस्यार्थसुवाससाम्।
फलं पूर्णं तु सौम्यर्क्षे क्रूरभे तु तदर्धकम्॥ १४०॥

जाया भावस्थ राशि की चक्रदशा में विवाह, स्त्री-पुत्र-लाभजन्य सुख, अतुल यश, गाय, धान्य, वस्त्र, आदियों की प्राप्ति होती है। ऐसा पूर्णफल शुभराशि में समझना, पापराशि में इसका आधा समझना चाहिए॥ १३९–१४०॥

मृतिभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि।
तर्हि बन्धुधनस्थाननाशजं दुःखमादिशेत्॥ १४१॥
शत्रुतोऽपि भयं चान्नारुचिं चैवातिनिःस्वताम्।
क्रूरभे तु फलं सर्वं तदर्धं शुभभे स्मृतम्॥ १४२॥

अष्टम भावस्थ राशि की चक्रदशा में बन्धु, धन, स्थान आदियों के विनाशजन्य दुःख कहना चाहिये। ऐसी स्थिति में शत्रुभय, अन्न से अरुचि, तथा अत्यधिक दारिद्र्य कहें। किन्तु उपर्युक्त फल पापराशि में पूर्णतः, शुभराशि में आधे के रूप में होता है॥ १४१–१४२॥

भाग्यभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि।
तर्हि जायासुतागारकृषिवित्तसुखं तथा॥ १४३॥
सत्कर्मनिरतो धर्मवृद्धिः साधुसमागमः।
ज्ञेयमेतत् फलं पूर्णं शुभर्क्षेऽर्धं तु पापभे॥ १४४॥

नवम भावस्थ राशि की चक्रदशा में स्त्री, पुत्र, गृह, कृषि, वित्त आदियों का सुख कहना चाहिए। ऐसे समय में शुभकार्य में संलग्नता, धर्मबुद्धि, तथा साधु-समागम होते हैं। किन्तु यह फल पूर्णतः शुभराशि में और पापराशि में आधा ही समझना चाहिए॥ १४३–१४४॥

राज्यभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि।
तर्हि जायात्मजसुखं राजसम्मानमीशता॥ १४५॥
सत्कर्मसिद्धिरैश्वर्यवृद्धिः सत्संगतिस्तथा।
ज्ञेयमेतत् फलं पूर्णं शुभर्क्षेऽर्धं तु पापभे॥ १४६॥

राज्य (दशम) भावस्थ राशि की चक्रदशा में स्त्री-पुत्र-सौख्य, राजसम्मान,

तथा स्वयं भी ईश होने का सौभाग्य प्राप्त होता है। ऐसे समय में सत्कार्यं में सिद्धि, ऐश्वर्यं की वृद्धि, तथा सज्जनों से सङ्गति होती है। यह पूर्णफल शुभराशि में समझना, पापराशि में आधा मात्र होता है ॥ १४५–१४६ ॥

आयभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि ।
तर्हि जायासुतबन्धुधनवासोभवं सुखम् ॥ १४७ ॥
नैरुज्यं राजतो मानं सद्भिः सङ्गः सदा भवेत् ।
ज्ञेयमेतत् फलं पूर्णं शुभर्क्षेऽल्पं तु पापभे ॥ १४८ ॥

आयभावस्थ राशि की चक्रदशा में स्त्री, पुत्र, बन्धु, धन, वस्त्र, आदि का सौख्य, नैरुज्य, राजसम्मान, सज्जनों की सङ्गति, ये सभी होते हैं। शुभराशि में पूर्णफल पापराशि में अल्पफल कहना चाहिए ॥ १४७–१४८ ॥

रिष्फभावे तु यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदि ।
तर्हि व्यथा तनौ स्थानहानिर्निष्फलतोद्यमे ॥ १४९ ॥
आलस्यं निःस्वता कार्य-नैष्फल्यं च मुधाव्ययः ।
ज्ञेयमेतत् फलं पूर्णं क्रूरर्क्षे सौम्यभेऽधिकम् ॥ १५० ॥

द्वादशभावस्थ राशि की चक्रदशा में शरीर में व्यथा, स्थानभ्रंश, उद्यम में विफलता, आलस्य, दारिद्र्य, कार्यं में निष्फलता, तथा व्यर्थं व्यय होता है। पापराशि में उपर्युक्त फल पूर्णतः कहना और शुभराशि में आधा फल ही जानना चाहिए ॥ १४९–१५० ॥

चरदशाज्ञान-प्रकार—

लग्नादिव्ययपर्यन्तं राशीनां तु चराभिधाम् ।
दशां, भावात्तु भावेशावधिसंख्यां बुधा जगुः ॥ १५१ ॥
क्रमादोजे पदेऽनोजे कलना तु विपर्ययात् ।
दशाब्दसाधने ज्ञेया पदं मेषादिभिस्त्रिभिः ॥ १५२ ॥

लग्न से व्यय पर्यन्त (द्वादश) राशियों की चरदशा होती है। भाव से भावेश तक की संख्या-प्रमित दशावर्ष होते हैं। मेषादि तीन-तीन राशियों का एक-एक पद होता है। विषम (१।३) पद में क्रमगणना तथा सम (२।४) में उत्क्रम गणना (दशा वर्ष जानने के लिए) करनी चाहिए ॥ १५१–१५२ ॥

द्व्यधिप राशि—

वृश्चिकाधिपती द्वौ च कुजकेतू मतौ मुने ! ।
कुम्भस्य मन्दफणिनावधिपौ समुदीरितौ ॥ १५३ ॥

वृश्चिक राशि के मंगल और केतु तथा कुम्भ राशि के शनि, राहु ये दो दो अधिप होते हैं ॥ १५३ ॥

द्व्यधिप राशियों का दशावर्ष-ज्ञान—

द्विस्वामिकभयोरत्र दशाज्ञानविधिं ब्रुवे ।
एकत्र संगतौ द्वावप्यधिपौ चेत् स्वभे स्थितौ ॥ १५४ ॥
तदा द्वादशवर्षाणि चैकादिकमितोऽन्यथा ।
एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः ॥ १५५ ॥
तदाऽन्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत् ।
अन्यराशिगतौ तौ चेत्तयोर्यः स्याद्बलान्वितः ॥ १५६ ॥
क्रमतो व्युत्क्रमात्तस्मादेवानेया दशा बुधैः ।
निर्ग्रहात् सग्रहस्यैव बलित्वं बलनिर्णये ॥ १५७ ॥
ग्रहसत्त्वे तूभयत्र बली ज्ञेयो ग्रहाधिकः ।
साम्ये ग्रहयुते राशिबलतो बलनिर्णयः ॥ १५८ ॥
वेद्याश्चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमात्तु बलिनः सदा ।
बलसाम्ये तत्र राश्योर्बलवान् बहुवत्सरः ॥ १५९ ॥
एकः स्वोच्चगतश्चान्यः परत्र यदि संस्थितः ।
आदद्यादुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ॥ १६० ॥
उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं च निक्षिपेत् ।
तत्रैव नीचखेटस्य वर्षमेकं परित्यजेत् ॥ १६१ ॥
एवं सर्वं समालोच्य दशायां तु फलं वदेत् ।

द्व्यधिप राशियों का दशावर्ष ज्ञान प्रकार बतलाता हूँ। दोनों अधिप संयुक्त होकर स्वराशिस्थ हों तो बारहवर्ष, अन्यथा एकादि वर्ष स्वामी पर्यन्त (जैसा कि पहले कहा गया है) संख्या की गणना करके वर्षज्ञान करना। यदि उन दोनों स्वामियों में एक स्वक्षेत्री हो और दूसरा अन्य राशि में हो तो अन्यराशिस्थ स्वामी का ही ग्रहण कर गणना करनी चाहिए। दोनों स्वामी अन्यराशिस्थ ही हों तो दोनों में प्रबल ग्रह तक क्रम या उत्क्रम से गिनती करके दशावर्ष जानना। बलनिर्णय में ग्रहरहित से ग्रहयुक्त बली होता है। दोनों ग्रहयुक्त हों तो अधिकग्रहयोगवाला बली होता है। गहयोग की समता हो तो राशि के बलाबल से बलनिर्णय करें। चर से स्थिर, स्थिर से द्विस्वभाव राशि बली होते हैं। दो राशियों में बलसाम्य रहे तो जहाँ तक गिनने से अधिक वर्ष आवे वहाँ तक गिनकर दशावर्ष समझना चाहिए।

दोनों स्वामियों में एक उच्चस्थानगत हो और दूसरा अन्यत्र स्थित हो तो उच्चग्रहस्थ राशि का ही ग्रहण करना चाहिए। उच्चस्थग्रह की संख्या में एकवर्ष

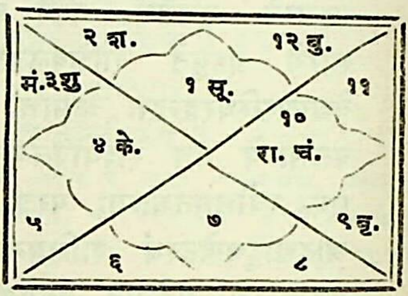
जोड़ना और नीचस्थ ग्रह की संख्या में एक वर्ष घटाना चाहिए। इस प्रकार पूर्णतः समालोचन के बाद ही दशा फल का निर्देश करें ॥ १५४–१६१ ॥

चरदशाक्रम कथन—

ओजेऽनोजे पदे लग्नाद् भाग्यराशौ क्रमोत्क्रमात् ।
दशा चराभिधा ज्ञेया विज्ञैस्तनुभतः सदा ॥ १६२ ॥

लग्न से नवम राशि विषमपद के हों तो क्रम से और समपद के हों तो उत्क्रम से लग्न से आरम्भ कर सभी राशियों की दशा चर-संज्ञक होती है ॥ १६२ ॥

इस कुण्डली में मेष लग्न है। मेष से नवम धनुराशि विषमपदीय है अतः मेष से आरम्भ कर क्रम से द्वादश राशियों की दशा होगी। मेष का स्वामी मङ्गल है। मेष विषमपदीय राशि है अतः क्रम-गणना से मङ्गल तक दो वर्ष मेष का चर-दशामान हुआ। वृष के स्वामी शुक्र हैं। वृष भी विषमपदीय है, अतः वृष से वृषस्वामी शुक्र तथा क्रमगणना से १ वर्ष चरदशा हुई। मिथुन से मिथुन-स्वामी बुध क्रम-गणनया नवमस्थ हैं अतः ९ वर्ष मिथुन की चरदशा हुई।



कर्क समपदीय है। अतः कर्क से कर्कस्वामी चन्द्र पर्यन्त उत्क्रम-गणना से ६ वर्ष कर्क की चरदशा सिद्ध हुई। सिंह भी समपदीय है। सिंहस्वामी सूर्य तक उत्क्रम गणना से ४ वर्ष सिंह की चरदशा हुई, कन्या भी समपदीय है। कन्या से कन्या-स्वामी बुध तक उत्क्रम-गणना से ६ वर्ष कन्या की चरदशा हुई। तुला विषमपदीय है। तुला से तुलाधिप शुक्र तक क्रम-गणनया ८ वर्ष तुला की चरदशा हुई। वृश्चिक के मङ्गल तथा केतु दोनों स्वामी हैं, मङ्गल सग्रह हैं, केतु निर्ग्रह। अतः केतु से मङ्गल बली हुए। अतः वृश्चिक से मङ्गल तक क्रमगणनया ७ वर्ष वृश्चिक की दशा होगी। धनु भी विषमपदीय राशि है। धनुस्वामी गुरु स्वराशि धनु में ही स्थित हैं अतः "स्वर्क्षसंस्थितखेटस्य वर्षाणि द्वादशैव हि" इस पराशरोक्त वचनानुसार धनु का दशावर्ष १२ हुए। मकर समपदीय राशि है। मकर से मकरेश शनि तक उत्क्रम-गणना से ८ वर्ष चरदशा-मान हुआ। कुम्भ समपदीय तथा द्विस्वामिक राशि है। कुम्भस्वामी शनि, राहु हैं। उपरि लिखित कुण्डली में राहु सग्रह तथा शनि निर्ग्रह हैं। अतः शनि से राहु तक उत्क्रम-गणना से १ वर्ष मात्र कुम्भ की चरदशा हुई। मीन से मीनस्वामी गुरु तक उत्क्रम-गणना से ३ वर्ष मीन का दशावर्षमान हुआ। चरदशा में 'भावात्तु भावेशावधि दशासंख्यां बुधा जगुः" के अनुसार क्रमोत्क्रम-गणना से राशि और राशिस्वामी के अन्तर में राशितुल्य वर्षमात्र ग्रहण किया गया है। वस्तुतः अंशादि के अनुपात द्वारा मासादि का भी ग्रहण करना चाहिए। तदनन्तर

चरदशाचक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	कर्क	सिं.	कन्या	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
दशावर्ष	२	१	९	६	४	६	८	७	१२	८	१	३
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
जन्म सं.												
२०२९	२०३१	२०३२	२०४१	२०४७	२०५१	२०५७	२०६५	२०६२	२०७४	२०८२	२०८३	२०८६
स्प सूर्य												
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

मात्र भावना से पूर्ण वर्षमान ही का ग्रहण किया क्योंकि पराशर ने स्वयम् लिखा है—

स्वर्क्षसंस्थितखटेस्य वर्षाणि द्वादशैव हि।
धनस्थे चैकवर्षं तु तृतीये हायनद्वयम् ॥ १ ॥
तुर्ये वर्षत्रयं ज्ञेयं पञ्चमे तुर्यहायनम्।
रिपुस्थे पञ्चवर्षाणि षड्वर्षाणि च सप्तमे ॥ २ ॥
रन्ध्रस्थे नगवर्षाणि नागवर्षाणि भाग्यगे।
नभःस्थे चाङ्कवर्षाणि दिग्वर्षाणि तु लाभगे ॥ ३ ॥
व्ययस्थे रुद्रवर्षाणि कथितानि पुरा बुधैः।

स्थिरदशा-ज्ञानविधि—

पराशर उवाच—

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि स्थिराख्यां तु दशां मुने।
चरादिषु क्रमादब्दा नगनागनवोन्मिताः ॥ १६३ ॥
दशावर्षस्थिरतया दशेयं तु स्थिराभिधा।
ब्रह्मग्रहगताद् राशेर्दशैषा तु द्विजोत्तम ॥ १६४ ॥
ओजे क्रमादनोजे तूत्क्रमतोऽग्रे प्रवर्त्तते।

पराशर ने कहा—हे मुने! अब मैं स्थिरदशा बतलाता हूँ। चरादि राशियों में क्रमशः ७।८।९ वर्ष दशाप्रमाण होता है। दशाप्रमाण की स्थिरता के कारण ही इसकी संज्ञा स्थिरदशा हुई। ब्रह्मग्रहाश्रितराशि से आरम्भ कर १२ राशियों की दशा होती है। विषमराशि में क्रम से समराशि में उत्क्रम से दशा लगानी चाहिए ॥ १६३–१६४ ॥

मैत्रेय उवाच—

ब्रह्मग्रहोऽधुना यो मे भगवन् भवतोदितः।
तल्लक्षणं तु कृपया विशदीकर्तुमर्हसि ॥ १६५ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन् ! आपने जो अभी ब्रह्मग्रह का अभिधान किया है कृपया उसका विशद लक्षण बतलावें ॥ १६५ ॥

पराशर उवाच—

> रिपुरन्ध्रव्ययेशेषु यः स्यादोजभगो बली ।
> लग्नसप्तमगो यश्च बली तत्पृष्ठतः स्थितः ॥ १६६ ॥
> ब्रह्मा, वा कारकाद् रन्ध्राधिपो रन्ध्रगतोऽपि वा ।
> ब्रह्मत्वे तमसो वार्कैर्ब्रह्मा षष्ठस्ततो ग्रहः ॥ १६७ ॥
> बहूनां ब्रह्मसत्त्वे तु वेद्यो भागाधिको ग्रहः ।
> भागसाम्येऽधिकबलो भवेद् ब्रह्मग्रहो मुने ! ॥ १६८ ॥

पराशर मुनि बोले—(हे मुने !) ६।८।१२ स्थानों के अधिपों में जो ग्रह विषमराशिगत हों वे ब्रह्मा होते हैं। लग्न सप्तम में बली से पृष्ठस्थ (६ राशि के भीतर विषम में) जो हों वह भी ब्रह्मा कहलाते हैं। कारक से अष्टमेश या अष्टम-भावगत ग्रह भी ब्रह्मा होते हैं। शनि या राहु-केतु में ब्रह्मत्व प्राप्त हों तो उनसे षष्ठ ग्रह ब्रह्मा होते हैं। ब्रह्मत्वलक्षणयुक्त अनेकग्रह हों तो अधिक अंशवाले ग्रह ही ब्रह्मा हैं। अंश में समता होने पर बली ग्रह को ब्रह्मा समझना चाहिए ॥१६६–१६८॥

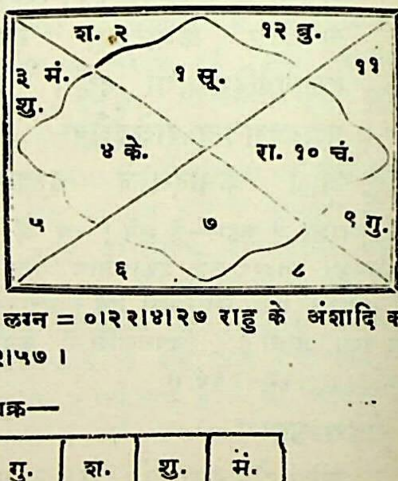
अष्टमेश अष्टमस्थ हों तो वे ही ब्रह्मा होंगे।

स्थिरदशा का उदाहरण—

कारक ज्ञान के लिए स्पष्ट ग्रह

सू—०।२२।४।२७
चं—९।१८।३२।१५
मं—२।२।११।१६
बु—११।२९।१३।९
गु—८।१६।४५।११
शु—२।२।२४।४४
श—१।१३।१६।३५
रा—९।६।२७।३

कल्पित जन्म कुण्डली



सूर्योदय काल ही जन्म-समय है अतः लग्न = ०।२२।४।२७ राहु के अंशादि को ३० में घटाने पर राहु के भुक्तांश=२५।३२।५७।

कारकचक्र—

बु.	रा.	सू.	चं.	गु.	श.	शु.	मं.
आत्मा	अमात्य	भ्राता	माता	पिता	पुत्र	ज्ञाति	स्त्री

उपरिलिखित जन्मकुण्डली में व्ययेश गुरु स्वक्षेत्री होने के कारण बली तथा

विषमराशिगत हैं अतः ब्रह्मा हैं। एवं ब्रह्मग्रहाश्रित राशि से आरम्भ कर १२ राशियों की दशा होगी।

स्थिरदशाचक्र

राशीश	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.
दशावर्ष	९	७	८	९	७	८	९	७	८	९	७	८
जन्म	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत्	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२०२९	२०३८	२०४५	२०५३	२०६२	२०६९	२०७७	२०८६	२०९३	२१०१	२११०	२११७	२१२५
स्पष्ट सूर्य												
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

योगार्धदशा—

योगार्धतुल्यमुभयोर्योगार्धे स्याद् दशामितिः।
तन्वस्तयोर्बलवतोर्दशैषाऽऽरभ्यते बुधैः॥ १६९॥

योगार्ध दशा में चरस्थिरदशावर्षों के योगार्धतुल्य दशावर्षमान होते हैं। लग्न सप्तम में बलवान् राशि से आरम्भ कर १२ राशियों की दशा होती है। विषम सम में क्रम तथा उत्क्रम से दशा समझनी चाहिए॥ १६९॥

उदाहरण:—उपरिलिखित जन्म कुण्डली में गुरुदृष्ट लग्न ही बलवान् है साथ विषम राशि भी। अतः मेषलग्न से क्रमशः आरम्भ कर द्वादश राशियों की दशा होगी।

मेष का चरदशावर्ष २, तथा स्थिरदशावर्ष ७ अतः योगार्ध ४ वर्ष ६ मा. हुआ। वृष का चरदशा वर्ष १, स्थिरदशावर्ष ८, दोनों का योगार्ध ४ वर्ष ६ मा. हुआ। मिथुन का चरदशावर्ष ९ स्थिरदशा वर्ष ९ है, योगार्ध भी ९ ही हुआ। इसी तरह सभी राशियों का योगार्ध दशा वर्ष जानना

योगार्धदशाः—

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	दशेश
४	४	९	६	६	७	७	७	१०	७	४	५	वर्ष
६	६	०	६	०	६	६	६	६	६	६	६	मा.
												ज. सं
२०३३	२०३८	२०४७	२०५३	२०५९	२०६७	२०७४	२०८२	२०९२	२१००	२१०४	२११०	२०२९
												सूर्य रा.
६	०	०	६	६	०	६	०	६	०	६	०	०
												अंश
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

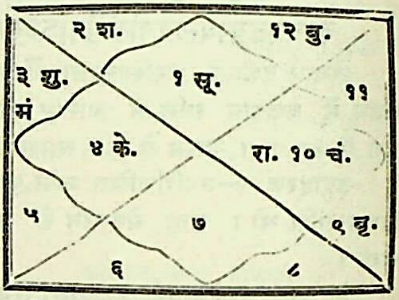
केन्द्रादिदशा—

लग्नास्तयोर्बलवतो राशेः केन्द्रादिगामिनाम्।
बलानुसारतो भानां राशीनामात्मकारकात्॥ १७०॥

दशाक्रमो ग्रहाणां वै मुनिभिः समुदीरितः।
दशावर्षाणि चरवत् स्वभं यावन्नभःसदाम् ॥ १७१ ॥

लग्न सप्तम में बलवान् राशि से आरम्भ कर केन्द्र आदि में स्थितराशियों दशा होती है। लग्न या सप्तम विषम राशि हो तो क्रम से, सम राशि हो तो उत्क्रम से केन्द्रादिस्थित राशियों की गणना तथा बलक्रम से दशा होती है। इसी तरह आत्मकारक से भी राशि एवं ग्रहों का दशाक्रम समझना चाहिए। दशावर्ष चरदशा समान, लग्न से नवमराशि विषमपदीय हो तो क्रम से, समपदीय हो तो उत्क्रम से राशिस्वामी तक गणना कर समझें। ग्रहों का दशावर्ष स्वराशि तक गिनने से, अधिक अन्तर वाले स्वराशि तक गिनना चाहिए, या जो बली राशि हो वहाँ तक संख्या गिन कर तत्संख्या-समान वर्षमान होता है ॥ १७०–१७१ ॥

जन्मकुण्डली



इस कुण्डली में लग्न तथा सप्तम में सग्रह होने के कारण लग्न बलवान् है, अतः लग्न मेष से आरम्भ कर केन्द्रस्थ में बलक्रम से दशा होगी। पहली दशा मेष की, पुनः केन्द्रस्थ-कर्क तुला, मकर में बलक्रम से मकर की फिर कर्क की, तब तुला की दशा होगी। पुनः परफणस्थ वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ राशियों में बलक्रम से पहले वृष की, स्वस्वामिदृष्ट होने के नाते कुम्भ की, तब गुरुदृष्ट होने के कारण सिंह की फिर वृश्चिक की दशा होगी। पुनः आपोक्लिमस्थ राशि मिथुन कन्या, धनु, मीन, में बलक्रम से मिथुन, धनु, मीन, तब कन्या की दशा होगी।

दशावर्ष जानने के लिए "दशावर्षाणि चरवत्" कहा गया है। लग्न से भाग्य राशि धनु विषम पद के हैं अतः क्रम से लग्न से आरम्भ कर राशियों की दशा होगी। मेष का स्वामी मङ्गल है। मेष विषम पदीय है अतः क्रम-गणना से मङ्गल तथा २ वर्ष दशामान हुआ। मकर समपदीय है अतः उत्क्रम गणना से ८ वर्ष दशा प्रमाण है। इसी तरह अन्य राशियों का भी दशावर्ष समझना चाहिए।

केन्द्रादिराशिदशाचक्र—

दशेश	मे.	म.	क.	तु.	वृ.	कु.	सिं.	वृ.	मि.	ध.	मी.	कर्क.
दशावर्ष	२	८	६	८	१	१	४	७	९	१२	३	६
जन्मसंवत्	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२०२९	२०३१	२०३९	२०४५	२०५३	२०५४	२०५५	२०५९	२०६६	२०७५	२०८७	२०९०	२०९६
स्पष्ट सूर्य												
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२

इसी तरह आत्मकारक बुध है, तत्सम कन्या राशि है। आत्मकारकाश्रित राशि—मीन तथा तत्सम कन्या में मीन प्रबल है, एवं समराशि का है अतः मीन से आरम्भ कर तत्केन्द्रस्थ मिथुन, कन्या, धनु राशियों, पुनः पणफरस्थ मेष, कर्क तुला, मकर राशियों, अन्ततः आपोक्लिमस्थ वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ राशियों की दशा तथा वर्षमान व्यत्क्रम से होगें।

द्विराशीश ग्रहों का वर्षज्ञान—

द्विभाधीशग्रहस्यैवं गणनीया द्वयावधि।
द्वयोः संख्याऽधिकतरा दशाब्दाः कारकस्य वै ॥ १७२ ॥

दो राशिवाले ग्रहों के दशावर्ष के लिए स्वाश्रितस्थान से दोनों राशियों तक गणना करें, अधिक संख्या को ही दशावर्ष समझें ॥ १७२ ॥

कारकदशा—

विज्ञेया कारकदशा क्रमतस्त्वात्मकारकात्।
लग्नात् कारकपर्यन्तं संख्या या तत्समा दशा ॥ १७३ ॥

आत्मकारक से आरम्भ कर क्रमशः आत्मादिकारक ग्रहों की दशा होती है। लग्न से कारक पर्यन्त संख्या-तुल्य दशावर्ष समझना चाहिये ॥ १७३ ॥

कारकदशा का उदाहरण—पूर्वलिखित जन्मकुण्डली तथा कारकचक्र देखिये—

आत्मकारक बुध हैं, वह द्वादशस्थ हैं, लग्न से कारक पर्यन्त अन्तर ११ हुए अतः आत्मकारक बुध का दशावर्षमान ११ वर्ष हुआ। अमात्यकारक राहु, मकर, राशिस्थ है, मेष लग्न से राहु तक का अन्तर ९ हुआ। अतः अमात्यकारक का दशावर्षमान ९ वर्ष होगा। सूर्य भ्रातृकारक है। सूर्य लग्नस्थ हैं अतः उनका दशा-वर्ष १२ वर्ष हुआ। इसी तरह सभी कारकों का दशावर्ष जानना चाहिए—

कारकदशा चक्र—

बु.	रा.	सू.	चं.	गु.	श.	शु.	मं.	ग्रह
आत्मा	अमात्य	भ्राता	माता	पिता	पुत्र	ज्ञाति	स्त्री	कारक
११	९	१२	९	८	१	२	२	वर्ष
२०४०	२०४९	२०६१	२०७०	२०७८	२०७९	२०८१	६०८३	सम्वत्
०	०	०	०	०	०	०	०	स्पष्ट
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	सूर्य

मण्डूकदशा—

मण्डूकाख्यदशैव प्राक् त्रिकूटाभिधया स्मृता।
तन्त्रस्तयोर्बलवतो राशेरोजे क्रमात् तथा ॥ १७४ ॥
विपर्ययादनोजे तु दशा ज्ञेया बुधैः सदा।
मण्डूकाख्यदशावर्षमानं स्थिरदशासमम् ॥ १७५ ॥

प्राचीनों ने मण्डूक-दशा को ही त्रिकूटदशा के नाम से कहा है। लग्न और सप्तम में जो बलवान् हो उससे आरम्भ कर विषम राशि में क्रमशः और समराशि में विपरीत क्रम से दशा समझनी चाहिये। इसमें दशावर्षमान स्थिरदशा के समान (चर में ७ वर्ष, स्थिर में ८ वर्ष, द्विस्वभाव में ९ वर्ष) होता है। इसमें दो को छोड़कर तृतीय की गणना होती है, अतः इसे मण्डूकदशा कही जाती है ॥ १७४–१७५ ॥

उदाहरण—जैसे पूर्वलिखित कुण्डली में लग्न मेष तथा सप्तम तुला में सग्रह होने के कारण लग्न बली है, चर है तथा विषम राशि का है। अतः मेष से आरम्भ कर क्रमशः चार चरराशियों की दशा होगी। पुनः स्थिरराशि वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ की, अन्ततः द्विस्वभाव राशि, मिथुन, कन्या, धनु, मीन की दशा लगायी जायगी।

मण्डूक-दशा चक्र—

मे.	क.	तु.	म.	वृ.	सिं.	दशेश
७	७	७	७	८	८	दशावर्ष
२०३६	२०४३	२०५०	२०५७	२०६५	२०७३	सम्वत्
०	०	०	०	०	०	स्पष्ट
२२	२२	२२	२२	२२	२२	सूर्य
वृ.	कु.	मि.	क.	ध.	मी.	दशेश
८	८	९	९	९	९	दशावर्ष
२०८१	२०८९	२०९८	२१०७	२११६	२१२५	सम्वत्
०	०	०	०	०	०	स्पष्ट-
२२	२२	२२	२२	२२	२२	सूर्य

शूलदशा—

केचिच्छूलदशामाहुर्निधनज्ञानहेतवे ।
तन्वस्तयोरष्टमौ यौ तयो राशिस्तु यो बली ॥ १७६ ॥
ओजे क्रमात्तदारभ्य समे स्याद् विपरीततः ।
दशासमाः स्थिर इव मृत्युर्बलिनि मारके ॥ १७७ ॥

मरण-विचारार्थ किन्हीं आचार्यों ने शूलदशा कही है। लग्न, सप्तम से अष्टम (अष्टम, द्वितीय) में जो बली हो उससे आरम्भ कर विषम राशि में क्रम से, समराशि में उत्क्रम से सभी बारहो राशियों की दशा समझनी चाहिए। इसमें वर्षमान स्थिरदशा के समान होता है। बली मारकराशि की दशा में मृत्यु की सम्भावना होती है ॥ १७६–१७७ ॥

उदाहरण—पूर्वलिखित जन्मकुण्डली में द्वितीय तथा अष्टम में द्वितीय सग्रह होने के कारण प्रबल है, समराशि भी है अतः उत्क्रम से सभी राशियों की दशा होगी। दशावर्ष स्थिरवत् होंगे।

शूलादशचक्र—

वृष.	मे.	मी.	कु.	म.	ध.	वृ.	तु.	कन्या	सिं.	क.	मि.
८	७	९	८	७	९	८	७	९	८	७	९
२०३७	२०४४	२०५३	२०६१	२०६८	२०७७	२५८५	२०९२	२१०१	२१०९	२११६	२१२५
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	००	२२	२२	२२	२२

त्रिकोणदशा—

जनुस्तनूकोणगेषु भेषु प्रबलराशितः ।
समारभ्यैव चरवद् दशा ज्ञेया त्रिकोणजा ॥ १७८ ॥

ओजे क्रमादनोजे तु वैपरीत्येन निर्दिशेत् ।
दशाब्दा अत्र विबुधैर्नाथान्ताः परिकीर्तिताः ॥ १७९ ॥

जन्मलग्न नवम, पञ्चम इन राशियों में प्रबल जो राशि हो उससे आरम्भ कर चरदशा की तरह त्रिकोण दशा होती है । विषम राशि में क्रम से समराशि में उत्क्रम से प्रथम नवम, पञ्चम राशि ग्रहण करना चाहिए । दशा वर्ष अपने-अपने स्वामी पर्यन्त संख्यातुल्य समझें । त्रिकोण (१।५।९) राशियों की दशा होने के कारण ही यह त्रिकोणदशा कहलाती है ॥ १७८–१७९ ॥

उदाहरण—जैसे पूर्वलिखित कुण्डली में लग्न, पञ्चम, नवम (मेष, सिंह, धनु) में धनुराशि बली तथा विषम है अतः धनु से आरम्भ कर (धनु-मेष, सिंह) राशियों की, फिर, मकर, वृष, कन्या की, पुनः, कुम्भ, मिथुन, तुला राशियों की, अन्त में मीन, कर्क, वृश्चिक राशियों की दशा होगी ।

त्रिकोणदशा चक्र—

दशेश	धनु	मेष	सिंह	मकर	वृष	कन्या
दशावर्ष	१२	२	४	८	१	६
संवत्	२०४१	२०४३	२०४७	२०५५	२०५६	२०६२
स्पष्ट सूर्य	०	०	०	०	०	०
	२२	२२	२२	२२	२२	२२
	कुम्भ	मिथुन	तुला	मीन	कर्क	वृश्चिक
दशावर्ष	१	९	८	३	६	७
संवत्	२०६३	२०७२	२०८०	२०८३	२०८९	२०९६
सूर्य	०	०	०	२	०	०
	२२	२२	२२	२२	२२	२२

दृग्दशा—

तनोर्भाग्यस्य, तदनु तदीक्षितगृहोद्भवा ।
आस्पदस्य च ततः तद्दृष्टभवनोद्भवा ॥ १८० ॥
ततो लाभस्य च पुनस्तद्दृष्टक्षेत्रजा समाः ।
स्थिरवद् दृष्टिवशतो जातेयमिति दृग्दशा ॥ १८१ ॥
व्युत्क्रमात् क्रमतश्चापि चरस्थिरभयोस्तु दृक् ।
ओजे द्विभे क्रमादेवं समे तूत्क्रमतो हि सा ॥ १८२ ॥

लग्न से नवम राशि की, फिर उससे दृष्ट राशियों की, बाद दशम राशि की, पुनः उससे दृष्ट राशियों की, पुनः एकादश राशि की और उससे दृष्ट राशियों की दशा होती है। दृग्वश प्रवृत्ति के कारण इसे दृग्दशा कहते हैं। उपर्युक्त नवम, दशम, एकादश राशि चर, स्थिर, द्विस्वभाव होते हैं। चर रहने पर उत्क्रम से, स्थिर रहने पर क्रम से, दृष्टियोग्य राशि समझना। द्विस्वभाव की स्थति में, द्विस्वभाव राशि विषम हो तो क्रमतः, सम हो तो उत्क्रम से दृष्टियोग्य राशि समझें। तात्पर्य यह है कि दृष्टिविचार से समीपवर्त्ती राशि से ही आरम्भ कर दृष्ट राशियों को ग्रहण करें। इस तरह चर में पृष्ठस्थ, स्थिर में अग्रस्थ राशि दृष्ट होती है। द्विस्वभाव में दोनों ओर तुल्य स्थान पर रहने के कारण, विषम राशि रहे तो क्रम से सम राशि रहे तो उत्क्रम से दृष्ट राशि होती है। दशावर्ष-मान स्थिरदशा की तरह समझना। दृष्टि-विचार की स्पष्टता के लिए ६५ पृष्ठ देखें ॥ १८०–१८२ ॥

उदाहरण—जैसे मेषलग्न से नवम धन, द्विस्वभाव तथा विषम राशि है अतः क्रमगणनया उसी (धनु) की तथा उससे दृष्ट मीन, मिथुन, कन्या की दशा होगी। दशम मकर चर है, अतः उत्क्रम से मकर तथा तद्दृष्ट वृश्चिक, सिंह, तथा वृष की दशा होगी। एकादश कुम्भ स्थिर है अतः क्रम से कुम्भ की तथा तद्दृष्ट मेष, कर्क तथा तुला की दशा होगी।

दृग्दशाचक्र—

दशेश	ध.	मी.	मि.	क.	म.	वृ.
दशावर्ष	९	९	९	९	७	८
सम्वत्	२०३८	२०४७	२०५६	२०६५	२०७२	२०८०
सूर्य	०	०	०	०	०	०
	२२	२२	२२	२२	२२	२२
दशेश	सिं.	वृ.	कु.	मे.	क.	तु.
दशावर्ष	८	८	८	७	७	७
सम्वत्	२०८८	२०३६	२१०४	२१११	२११८	२१२५
सूर्य	०	०	०	०	०	०
	२२	२२	२२	२२	२२	२२

तन्वादिराशिदशा—

तन्वादि-भानां प्रतिभं दशा राशिदशा मता ।
भयातं भानुगुणितं भभोगेन विभाजितम् ॥ १८३ ॥
भाद्यं फलं तनौ योज्यं तष्टितं रविभिस्तदा ।
ज्ञेया दशा बुधै राशेरोजोऽनोजे क्रमोत्क्रमात् ॥ १८४ ॥
दशा वर्षाणि स्थिरवद् बोध्यान्यत्रापि विद्वरैः ।

प्रतिनक्षत्र बारह राशियों की दशा होती है, जो राशिदशा कहलाती है। भयात को १२ से गुणा, तथा भभोग से भाग देने पर जो राश्यादि लब्धि आवे उसे लग्न में जोड़ें, पुनः १२ से तष्टित करने पर जो राशि हो, उसी से, विषम वह राशि हो तो क्रम से, समराशि हो तो उत्क्रम से, १२ राशियों की दशा होती है ॥ १८३–१८४ ॥

यहाँ भी दशावर्ष-प्रमाण स्थिरदशा की तरह जानना ।

उदाहरण :—पूर्वदत्त कुण्डली में संवत् २०२९ अधिक वैशाख कृष्ण अष्टमी शनिवार को सूर्योदयकालिक लग्न है। उस समय श्रवण नक्षत्र का ३८।४१ = भयात है, ६०।२५ = भभोग। पलमय भयात = २३२१ पलमय भभोग = ३६२५।

$\frac{\text{भयात} \times १२}{\text{भभोग}} = \frac{२३२१ \times १२}{३६२५} = \frac{२७८५}{३६२५}$ = रा. ७।२०।२९।५७ राश्यादि लब्धि को लग्नराश्यादि ०।२२।४।२६ में जोड़ने से = ८।१२।३४।२३ इसे १२ से तष्टित करने पर भी यही राश्यादि हुआ। अतः धनु से आरम्भ कर क्रमशः सभी १२ राशियों की दशा होगी स्थिरदशा-वर्षतुल्य यहाँ दशावर्ष-प्रमाण जानना है।

भुक्तभोग्य-वर्षाद्यानयन—

यातांशगुणितं त्रिंशदुद्धृतं तु दशाब्दकम् ।
यानमब्दादिकं वेद्यमैष्यं माने विशोधनात् ॥ १८५ ॥

दशाप्रद राशि के भुक्तांश को दशावर्ष से गुणाकर ३० से भाग दें, लब्धि भुक्तवर्षादि, पुनः इसे समस्तमान (दशावर्ष) में घटाने से भोग्यदशावर्षादि समझना चाहिए ॥ १८५ ॥

उदाहरण—प्रथम दशाप्रद राशि धनु के भुक्तांशादि = १२।४४।२०। को दशावर्ष प्रमाण ९ से गुणा कर ३० से भाग देने पर यातवर्षादि ३।१०।२७।०।० इसे दशावर्ष-प्रमाण ९ में घटाने पर ९—३।१०।२७।०।० = भोग्यवर्षादि = ५।१।३।०।० ।

राश्यादि-दशाचक्र—

	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.
	५	७	८	०	७	८
	१	०	०	०	०	०
	३	०	८	०	०	०
जन्म संवत्						
२०२९	२०३४	२०४१	२०४९	२०५८	२०६५	२०७३
स्पष्ट सूर्य						
०	१	१	१	१	१	१
२२	२५	२५	२५	२५	२५	२५
	मि.	क.	सिं.	कन्या	तु.	वृश्चिक
	९	७	८	९	७	८
	२०८२	२०८९	२०९७	२१०६	२११३	२१२१
	१	१	१	१	१	१
	२५	२५	२५	२५	२२	२५

पञ्चस्वरदशा—

प्राङ्न्यसेत्तु क्रमेणैवाकारादिस्वरपञ्चकम् ।
कादिहान्ताँल्लिखेद् वर्णान् स्वराधोङञणोज्झितान् ॥ १८६ ॥

तिर्यक् पंक्तिक्रमेणैव पञ्च पञ्च विभागतः ।
न प्रोक्ता ङञणा वर्णा नामादौ सन्ति ते नहि ॥ १८७ ॥

चेद् भवन्ति तदा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम् ।
स्वरे यस्मिन्नात्मनामादिमवर्णस्तदादितः ॥ १८८ ॥

दशेशास्तु क्रमात् पञ्च द्वादशाब्दाः समे मताः ।
अन्तर्दशादयो ज्ञेयाः स्वराणां तद्दशासु च ॥ १८९ ॥

अकारादि स्वरपञ्चक (अ. इ. उ. ए. ओ.) को क्रमशः लिखकर उसके नीचे ङ ञ ण, के अतिरिक्त क से ह तक के सभी व्यञ्जनों को तिर्यक् पंक्तिक्रम से पांच-पांच कर लिखें । ङ ञ ण वर्ण नाम के आदिम अक्षर नहीं होते, इसलिए इन्हें छोड़ दिया गया है । यदि कहीं हो तो उनके स्थान में क्रमशः गजड वर्णों को ग्रहण करें । अपने नाम के आदिम वर्ण स्वर से आरम्भ कर क्रमशः पांच-पांच स्वरों की दशा होती है । सभी दशावर्ष-प्रमाण १२ वर्षों का होता है । स्वरों की दशाओं में सभी की अन्तर्दशा आदि समझना चाहिए ॥ १८६—१८९ ॥

उदाहरण—श्रवणा नक्षत्र के तृतीय चरण में किसी का जन्म है, नामादिम वर्ण ख का इ स्वर है, अतः इ से आरम्भ कर पाँचों स्वरों की दशा होगी।

पञ्चस्वरचक्र

स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
	१२	१२	१२	१२	१२
	क	ख	ग	घ	च
	छ	ज	झ	ट	ठ
	ड	ढ	त	थ	द
	ध	न	प	फ	ब
	भ	म	य	र	ल
	व	श	ष	स	ह

स्वर दशा चक्र

इ	उ	ए	ओ	अ
१२	१२	१२	१२	१२
२०४१	२०५३	२०६५	२०७७	२०८९
०	०	०	०	०
२२	२२	२२	२२	२२

वर्णददशा—

अथ वच्मि दशां विप्र ! तवाग्रे वर्णदाभिधाम्।
यज्ज्ञानतः क्षमा वक्तुमायुर्दायफलं जनाः ॥ १९० ॥
ओजानोजलग्नजानां मेषमीनादितो बुधः।
विगणय्य जनुर्लग्नं होरालग्नान्तमेव च ॥ १९१ ॥
सव्यापसव्यक्रमतश्चैवं संख्याद्वयं भवेत्।
तत्रौजयुग्मतः साजात्यंविजातीयता तथा ॥ १९२ ॥
साजात्ये तु तयोर्योगो वैजात्येऽन्तरमिष्यते।
मेषक्रमात् तद्वैषम्ये साम्ये मीनादिकोत्क्रमात् ॥ १९३ ॥
गणयेदेवमायातो राशिः स्याद् वर्णदाभिधः।

अब मैं आयुर्दाय-फल जानने के लिए वर्णद दशा बतलाता हूँ। विषम लग्न रहने पर मेषादि क्रम से, समलग्न में मीनाद्युत्क्रम से जन्मलग्न तथा होरालग्न तक गिनें। इस प्रकार दो संख्याएँ होंगी। वे दोनों विषम रहें या दोनों सम रहें तो सजातीय, एक विषम दूसरा सम हो तो विजातीय होते हैं। दोनों में साजात्य रहने पर योग, वैजात्य रहने पर अन्तर करना चाहिए। इस तरह योगान्तर-सिद्ध संख्या विषम हो तो मेषादिक्रम से, सम हो तो मीनाद्युत्क्रम से गिनने पर आगत राशि वर्णद कहलाती है ॥ १९०–१९३ ॥

उदाहरण—जैसे जन्मलग्न सिंह होरालग्न मकर है। जन्मलग्न विषम है। अतः मेष से सिंह तक क्रम-गणना से ५ संख्या हुई। होरालग्न सम है, अतः मीन से मकर तक उत्क्रम-गणना से ३ संख्या हुई। दोनों संख्याएँ विषम होने के कारण सजातीय हुईं। अतः दोनों का योग किया गया। योग ८, सम संख्या है अतः मीन से उलटा गिनती से अष्टम सिंह वर्णदराशि हुई।

होरालग्नलग्नयोर्यत् प्रबलं तु ततो दशा ॥ १९४ ॥
क्रमव्युत्क्रमभेदेन विषमौजयोर्भवेत् ।
वर्णदो लग्नतो यावन्मितभे तन्मिताः समाः ॥ १९५ ॥
एवं द्वादशभावानां दशाब्देभ्यो दशा भवेत् ॥

होरालग्न तथा लग्न में जो प्रबल हो उसी की राशि से, विषम होने पर क्रम से, सम होने पर उत्क्रम से दशा प्रवृत्त होती है। लग्न से जितने संख्यक स्थान में वर्णद राशि रहे उतने वर्ष उसका दशावर्ष समझना। इस तरह द्वादश भावों के दशावर्ष लाकर दशा लगानी चाहिए ॥ १९४–१९५ ॥

योगिनीदशा—

पराशर उवाच—

अथोच्यतेऽधुना शम्भुभाषिता योगिनीदशा ।
मङ्गला पिङ्गला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा ॥ १९६ ॥
उल्का सिद्धा संकटा चेत्यष्टधा योगिनीदशा ।
मंगलातोऽजनि शशी पिंगलातस्तु भास्करः ॥ १९७ ॥
धान्यातो देवपूज्यो वै भ्रामरीतो महीसुतः ।
भद्रिकातः शशिसुतश्चोल्कातो रविनन्दनः ॥ १९८ ॥
सिद्धातो भृगुसुतः संकटातस्तमोग्रहः ।
जनुर्भं वह्निसंयुक्तं वसुभिश्चोद्धृतं ततः ॥ १९९ ॥
योगिन्यो मङ्गलाद्यास्तु शेषादेकादितो मताः ।
दशाब्दाः क्रमशस्त्वेषामेकादेकाधिकाः स्मृताः ॥ २०० ॥
भुक्तभोग्यादिकं साध्यं तद्भयातभभोगतः ।

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) अब मैं शिवोदित योगिनी दशा बतलाता हूँ। मङ्गला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटा ये आठ योगिनियां हैं। इन आठों योगिनियों से क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य, गुरु, मङ्गल, बुध, शनि, शुक्र तथा राहु ये आठों ग्रह उद्भूत हुए हैं। जन्मनक्षत्र संख्या में तीन जोड़कर आठ से भाग दें, एकादिशेष में मङ्गलादिक योगिनी की दशा होती है। इन योगिनियों के दशावर्ष एकाद्युत्तर: (१।२।३।४।५।६।७।८) है। इसमें भी भयात-भभोग के द्वारा भुक्त-भोग्य वर्षादि का आनयन करना चाहिए ॥ १९६–२०० ॥

उदाहरण—जैसे श्रवणा नक्षत्रोत्पन्न जातक की अश्विन्यादि जन्मर्क्ष संख्या २२ में ३ जोड़ने तथा ८ से भाग देने पर शेष १ (एक) मात्र हुआ। अतः मङ्गला की दशा में जन्म निष्पन्न हुआ। इसका भुक्त-भोग्य वर्षादि भयात-भभोग के द्वारा

विंशोत्तरी की तरह लाकर दशा लगानी चाहिए। (व्यावहारिक क्षेत्र में विंशोत्तरी तथा योगिनीदशा अत्यधिक आवश्यक समझी जाती हैं।)

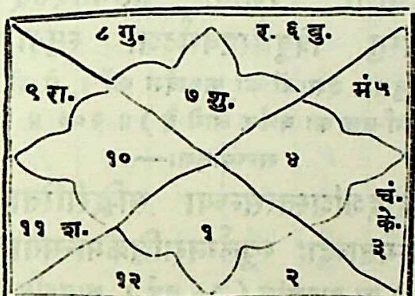
पिण्डांशनिसर्गदशा—

यत्पिण्डांशनिसर्गायुर्ग्रहाणां साधितं भवेत्।
तत्तद्दशानां वर्षाणि तेषां स्युस्तन्मितानि वै॥ २०१॥
लग्नसूर्यविधूनां तु प्रबलस्य दशादिमा।
ततः केन्द्रादिसंस्थानां बलिनां च दशा भवेत्॥ २०२॥

ग्रहों की पिण्डायु, अंशायु, निसर्गायु के समान ही पिण्डदशा, अंशदशा तथा निसर्गदशा होती है। लग्न, सूर्य, चन्द्रमा में सर्वप्रबल की प्रथम दशा, पुनः उससे केन्द्रगत ग्रहों की, फिर प०फरस्थ ग्रहों की, अन्ततः आपोक्लिमस्थ ग्रहों की, एवं लग्नसहित आठों ग्रहों की क्रमशः दशा एवं अन्तर्दशा होती है॥ २०१–२०२॥

उदाहरण—जैसे सं० १९९३ आश्विन कृष्ण सप्तमी में २।११। इष्टघटी पर किसी का जन्म है। दिनमान २९।१० मिश्रमान ४४।११ अयनांश = २१।३३।४४। प्रथमलग्न = ६।११।५९।६ भयात = २१।२०, भभोगः = ५८।३।

जन्म कुण्डली



सगतिक तात्कालिक स्पष्टग्रह—

सू—५।२०।१३।२८	॥	गति	५९।१४
चं—२।११।३४।०	॥	,,	८२६।५२
मं—४।१६।३।५८	॥	,,	३७।५६
बु—५।६।७।५६	॥	,,	१२।००
गु—७।२७।११।४६	॥	,,	८।२७
शु—८।१८।२।१०	॥	,,	७३।११
श—१०।२२।१७।५२	॥	,,	४।४०
रा—८।७।९।२६	॥	,,	३।११
के—२।७।९।२६	॥	,,	३।११

इस कुण्डली में लग्नेश स्वगृही होकर लग्नस्थ हैं। रवि नीचासन्न हैं। चन्द्रमा उच्चासन्न होकर अधिमित्र-गृहस्थ हैं। बल-विचार से सर्वाधिक बली लग्न ही हुआ।

सर्वप्रथम लग्न की दशा, फिर केन्द्रस्थ शुक्र की, फिर पणफरस्थ गुरु, शनि, मङ्गल में बली गुरु की, इसके बाद अधिमित्र के नवांश तथा अधिमित्र-गृहस्थित भौम की, ततः पर शनि की, पुनः आपोक्लिमस्थ चन्द्र, सूर्य, बुध में बलिष्ठ उच्चस्थ बुध की, उच्चस्थानस्थ चन्द्रमा की इसके बाद नीचासन्नस्थ सूर्य की दशा होगी। आयुर्दाय के समान ही दशावर्ष-प्रमाण होता है।

आयुर्दशाचक्र—

लग्न—६।६।१९ ५८।४८	संवत्	२०००	सूर्य	०।१०।१२।२६
शुक्र—१।६।२६।४३।५६	,,	२००९	,,	७।६।५६।२२
गुरु—१०।४।१४।१२।४७	,,	२०१९	,,	११।२१।९।९
मंगल—४।७।२२।११।१९	,,	२०२४	,,	७।१३।२०।२८
शनि—११।३।२५।२२।१	,,	२०३५	,,	११।८। २।२९
बुध—०।०।०।०।०	,,	२०३५	,,	११।८।४२।२९
चन्द्र—११।५।२३।११।१३	,,	२०४७	,,	५।१।५३।४२
सूर्य—०।०।०।०।०	,,	२०४७	,,	५।१।५३।४२

लग्न सहित ग्रहों की आयुःसाधनपद्धति आयुर्दायाध्याय में देखिए।

बलेनाष्टकवर्गाणां दशानां फलमादिशेत्।
दशा एतास्तु त्रिबुधैरष्टवर्गदशा स्मृता ॥ २०३ ॥

अष्टवर्गों के बलानुसार दशाओं का फलादेश करें। ये ही दशाएँ अष्टवर्ग दशाएं कहलाती हैं। (अष्टवर्ग-बल का वर्णन आगे है) ॥ २०३ ॥

सन्ध्यादशा—

परायुषो द्वादशांशस्तत्सन्ध्या सद्भिरीरिता।
दशानां तन्मिताब्दाः स्युर्लग्नराशिक्रमान्मता ॥ २०४ ॥

परमायु (१२०) का द्वादशांश (१० वर्ष) आयुर्दाय की सन्ध्या होती है। लग्नादि क्रम से प्रत्येक राशि की दशा सन्ध्यादशा कहलाती है ॥ २०४ ॥

उदाहरण—१२० वर्ष परमायुर्दाय का द्वादशांश १० वर्ष प्रत्येक राशि की दशा हुई। पूर्वोक्त कुण्डली में मेष लग्न है, अतः मेष से आरम्भ कर सभी राशियों की दशा होगी।

सान्ध्यदशाचक्र—

मे. १० २०३९ ० २२	वृ. १० २०४९ ० २२	मि. १० २०५९ ० २२	क. १० २०६९ ० २२	सिं १० २०७९ ० २२	क. १० २०८९ ० २२
तु. १० २०९९ ० २२	वृ. १० २१०९ ० २२	ध. १० २११९ ० २२	म. १० २१२९ ० २२	कु. १० २१३९ ० २२	मी. १० २१४९ ० २२

सन्ध्यादशा में पाचकदशा—

सन्ध्या रसगुणा कार्या चन्द्रवह्निहृता फलम् ।
संस्थाप्यं प्रथमे कोष्ठे त्रिकोष्ठेषु तदर्धकम् ॥ २०५ ॥
त्रिभागं वसुकोष्ठेषु लिखित्वा तत्फलं दिशेत् ।
एवं द्वादशभागेषु पाचकानि प्रकल्पयेत् ॥ २०६ ॥

सन्ध्यादशा-वर्ष को ६ से गुणा कर ३१ से भाग दें। फल प्रथम कोष्ठ में और तदर्ध अग्रिम ३ कोष्ठों में रक्खें। पुनः ८ कोष्ठों में लब्धफल के तृतीयांश को लिखकर फलादेश करें। इस प्रकार द्वादश भावों की पाचकदशा होती है ॥२०५–२०६॥

उदाहरण—जैसे पूर्वोक्त सान्ध्यवर्ष १० को ६ से गुणा कर ३१ से भाग देने पर लब्ध १।११।६ वर्षादि प्रथम कोष्ठ में, इसके आधे ०।११।१८ को अग्रिम ३ कोष्ठों में, पुनः लब्धि—तृतीयांश ०।७।२२ को अग्रिम ८ कोष्ठों में रखने से पाचक-दशाचक्र निष्पन्न होगा। यह दशाचक्र किसी भी लग्न में एक-सा बनेगा।

लग्न में पाचकदशाचक्र—

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.
१	०	०	०	०	०
११	११	११	११	७	७
६	१८	१८	१८	२२	२२
२०३०	२०३१	२०३२	२०३३	२०३४	२०३५
११	११	११	१०	६	२
२८	१९	४	२२	१४	६
तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
०	०	०	०	०	०
७	७	७	७	७	७
२२	२२	२२	२२	२२	२२
२०३५	२०३६	२०३७	२०३७	२०३८	२०३९
९	५	१	९	४	०
२८	२०	१२	४	२६	१८

इसी तरह धनादिभाव की भी पाचकदशा समझनी चाहिए।

तारादशा—

तारादशा बुधैः कैश्चिदुक्ता विंशोत्तरीव या ।
केन्द्रस्थाद् बलिनः खेटाज्ज्ञेया नामसदृक्फला ॥२०९॥
जन्म-सम्पद्-विपत्-क्षेम-प्रत्यरिः साधको वधः ।
मैत्रमेवं चातिमैत्रं नव ताराः मनीषिताः ॥ २०८ ॥

किन्हीं विद्वानों ने विंशोत्तरी के समान जो तारादशा मानी है, वह केन्द्रस्थ बली ग्रह से आरम्भ कर विंशोत्तरी में उक्त आ, चं, कु, रा, जी, श, बु, के. शु. के अनुसार ही चलती है। दशावर्ष भी विंशोत्तरी के समान समझना। जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र तथा अतिमैत्र ये नौ तारे हैं ॥ २०७–२०८ ॥

तारादशा चक्र—

सू.	चं.	कु.	रा.	जी.	श.	बु.	के.	शु.	ग्रह
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	वर्ष
जन्म	संपत्	विपत्	क्षेम	प्रत्यरि	साधक	वध	मैत्र	अतिमै.	तारा
२०३५	२०४५	२०५२	२०७०	२०८६	२१०५	२१२२	२१२९	२१४९	प्रवृत्
०	०	०	०	०	०	०	०	०	स्प.सू.
२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	

चरदशाचक्रोक्त कुण्डली में केन्द्रस्थग्रहों में उच्च के सूर्य सबसे प्रबल हैं, अतः सूर्य से ही आरम्भ कर दशाऐं लगाई गई हैं।

दशानां विविधा भेदा विस्तराद् गदिता मुने !।
आसां भुक्तिप्रभेदांश्च सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥ २०९ ॥

हे मुने ! विस्तारपूर्वक दशाओं का अनेक भेद मैंने कहा है। अब इनकी अन्तर्दशाओं का भेद भी बतलाऊँगा ॥ २०९ ॥

इति सविमर्शसुधाव्याख्योपेते बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे
दशाभेदाध्यायः समाप्तः।

अथ दशाफलाध्यायः ॥ ४८ ॥

मैत्रेय उवाच—

नानाविधा दशाभेदा भगवन् ! भवतोदिताः।
आकर्णिता मया कीदृक् तत्फलं चाथ कथ्यताम् ॥ १ ॥

मैत्रेय ने सानुनय कहा—हे भगवन् आपने जो अनेकविध दशाओं का भेद कहा है, उसे मैंने सुना। अब इन दशाओं के फल कृपया सुनावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

साधारणविशेषाभ्यां द्विधा प्रोक्तं दशाफलम्।
स्वभावस्थानवशतः खगानां मुनिसम्मतम् ॥ २ ॥

पराशर ने उत्तर दिया—(हे विप्र) सामान्य तथा विशेष के भेद से ग्रहों के जो द्विविध दशाफल कहे गये हैं, वे क्रमशः स्वभाववश एवं स्थानवश होते हैं ॥ २ ॥

बलानुसारिखेटानां बुधैर्वेद्यं दशाफलम् ।
आदिद्रेष्काणगे खेटे दशारम्भे फलं वदेत् ॥ ३ ॥
दशामध्ये फलं वाच्यं मध्यद्रेष्काणगे सति ।
अन्ते फलं तृतीयस्थे व्यस्तं खेटे च वक्रिणि ॥ ४ ॥

ग्रहों का दशाफल उनके बलानुसार ही होता है। प्रथम द्रेष्काणस्थ ग्रहों का दशारम्भ में, मध्यद्रेष्काणगत ग्रहों का दशामध्य में, अन्त्यद्रेष्काणस्थ ग्रहों का दशा के अन्त में फल होता है। वक्रीग्रह हों तो वैपरीत्य से, अर्थात् अन्तिम द्रेष्काणस्थ ग्रह का दशारम्भ में, और आदिम द्रेष्काणस्थ ग्रह का दशावसान में फल समझना ॥ ३–४ ॥

दशेशे तु दशारम्भे तनौ सौम्ययुतेक्षिते ।
स्वर्क्षतुङ्गसुहृद्भे वा शोभनं तद्दशाफलम् ॥ ५ ॥
तत्र त्रिकस्थिते सत्यस्तमिते नीचशत्रुभे ।
दशाफलमसत्प्रोक्तमथ वच्मि दशाफलम् ॥ ६ ॥

दशारम्भ में दशेश यदि लग्नगत हों, स्वोच्च, स्वराशि या स्वमित्र क्षेत्र में हों, और शुभग्रह से युत-दृष्ट हों तो उसका दशाफल शोभन, और वही (दशेश) त्रिक (६।८।१२) स्थ हों, अस्तंगत, नीचराशिस्थ या शत्रुक्षेत्रगत हों तो दशाफल अशोभन होता है। सामान्यनियम-कथनानन्तर अब दशाफल बतलाता हूँ। (सुनो) ॥ ५–६ ॥

सूर्यमहादशाफल :—

मूलत्रिकोणे स्वक्षेत्रे स्वोच्चे वा परमोच्चगे ।
केन्द्रत्रिकोणलाभस्थे भाग्यकर्माधिपैर्युते ॥ ७ ॥
सूर्ये बलेन संयुक्ते स्ववर्गेऽपि बलैर्युते ।
तस्मिन् दाये महत् सौख्यं धनलाभादिकं शुभम् ॥ ८ ॥
अत्यन्तं राजसम्मानमश्वान्दोल्यादिकं सुखम् ।
सुताधिपसमायुक्ते पुत्रलाभं च विन्दति ॥ ९ ॥
धनेशस्य च सम्बन्धे गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ।
वाहनाधिपसम्बन्धे वाहनत्रयमादिशेत् ॥ १० ॥
नृपालतुष्टिवित्ताढ्यः सेनाधीशः सुखी नरः ।
वस्त्रवाहनयुक्तश्च सबलार्क-दशाफलम् ॥ ११ ॥

जन्मकाल में सूर्य अपने मूलत्रिकोण, स्वभवन, स्वोच्चराशि या परमोच्चस्थान, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, इनमें से कहीं भी भाग्येश तथा कर्मेश के साथ रहें,

स्वयं सूर्य प्रबल हों अपने वर्ग में भी बलिष्ठ हों तो अपने दशाकाल में वे धनलाभ आदि परमसौख्य, राजसम्मान आदि को देनेवाले होते हैं। पञ्चमेश से सम्बद्ध रहने पर पुत्रद भी होते हैं। धनेश के साथ सम्बन्ध रहने पर हाथी तक ऐश्वर्य कहना चाहिए। वाहनेश के साथ सम्बन्ध से वाहनत्रय का आदेश करें। राजा की सन्तुष्टि से वह मनुष्य धनी, सेनापति, सुखी, वस्त्र-वाहन सम्पन्न होता है ॥७–११॥

अशुभ सूर्यदशाफल—

नीचे षडष्टके रिष्फे दुर्बले पापसंयुते।
राहुकेतुसमायुक्ते दुःस्थानाधिप-संयुते ॥ १२ ॥
तस्मिन् दाये महापीडा धनधान्यविनाशनम्।
राजकोपः प्रवासश्च राजदण्डो धनक्षयः ॥ १३ ॥
ज्वरपीडा यशोहानिर्बन्धुमित्रविरोधनम्।
पितृक्षयभयं चैव गृहे त्वशुभमेव च ॥ १४ ॥
पितृवर्गे मनस्तापो जनद्वेषस्तथैव च।
शुभदृष्टियुते सूर्ये मध्ये तस्मिन् क्वचित् सुखम् ॥ १५ ॥
पापग्रहेण संदृष्टे वदेत् पापफलं सुधीः।

जन्मकालिक प्रबलसूर्य के दशाफलकथनानन्तर दुर्बलसूर्य का दशाफल इन श्लोकों में कहा गया है।

नीचराशि, त्रिक में स्थित सूर्य पापयुक्त हों, राहुकेतु के साथ हों या दुःस्थान (६।८।१२) के अधिप से युक्त हों तो अपने दशाकाल में वे महाकष्ट, धन-धान्यक्षय, राजकोप, परदेश-निवास, राजदण्ड, धनक्षय, ज्वरपीड़ा, यशःक्षय, बन्धुमित्रविरोध, पितृक्षयभय, तथा अन्यविध अशुभ के दायक होते हैं। उस समय पितृवर्ग में मानसिक सन्ताप, तथा अकारण जनद्वेष होता है। किन्तु नीचादिस्थ सूर्य पर शुभग्रहों की दृष्टि या संयोग रहे तो कभी-कभी बीच में सुख-प्राप्ति भी होती है। पापग्रह मात्र की दृष्टि से सर्वथा अशुभ फल कहना चाहिए ॥ १२-१५ ॥

चन्द्रदशाफल—

इत्थं समासतस्तूक्तं रवेरिह दशाफलम्।
विंशोत्तर्यनुसारेण वक्ष्यथेन्दुदशाफलम् ॥ १६ ॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
शुभग्रहेण संयुक्ते पूर्णेन्दौ बलसंयुते ॥ १७ ॥
कर्मभाग्यसुखेशैस्तु बलिभिः संयुते सति।
आद्यन्तैश्वर्यसद्भाग्यधनधान्यादिकागमः ॥ १८ ॥

गृहे तु शुभकार्याणि वाहनं राजदर्शनम् ।
यत्नकार्यार्थसिद्धिः स्याद् गृहे सर्वसमृद्धयः ॥ १९ ॥
मित्रप्रभुवशाद् भाग्यं राज्यलाभो महत् सुखम् ।
पुत्रलाभादिसन्तोषो गृहं गोधनसंकुलम् ॥ २० ॥
अश्वान्दोल्यादिलाभश्च श्वेतवस्त्रादिकं भवेत् ।
धनस्थानगते चन्द्रे तुङ्गे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥ २१ ॥
अनेकधनलाभं च भाग्यवृद्धिं महत् सुखम् ।
विशेषं राजसम्मानं विद्यालाभं च विन्दति ॥ २२ ॥

इस प्रकार संक्षेपतः रविदशाफल मैंने कहा है । अब चन्द्रदशाफल भी विंशोत्तरी के अनुसार ही कहता हूँ । प्रबल पूर्णचन्द्र शुभग्रहयुक्त यदि अपने उच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण वा लाभस्थ हों, बली कर्मेश, भाग्येश या सुखेश के साथ भी हों तो अत्यधिक ऐश्वर्य, धनधान्यादिसमृद्धि आदि अनेक लाभ होते हैं । ऐसे जातकके घर में अनेक शुभकार्य, वाहन-सौख्य, राजदर्शन, यत्नतः किसी भी कार्य की सिद्धि तथा घर में सारी समृद्धियाँ, मित्र तथा राजा के द्वारा भाग्यवृद्धि, राज्यलाभ, महा-सौख्य, पुत्रप्राप्ति, पशुधन की बहुलता, रथयानलाभ तथा श्वेतवस्त्रप्राप्ति होती है । धनस्थानगत चन्द्र उच्च या स्वभवनगत हों तो भी अनेकविध धनलाभ, भाग्य-वृद्धि, विशेष राजसम्मान, तथा विद्यालाभ होता है ॥ १६–२२ ॥

अशुभ चन्द्रदशाफल—

नीचे वा क्षीणचन्द्रे वा धनहानिर्भविष्यति ।
दुश्चिक्ये बलसंयुक्ते क्वचित् सौख्यं क्वचिद्धनम् ॥ २३ ॥
दुर्बले पापसंयुक्ते देहजाड्यं मनोरुजा ।
भृत्यपीडावित्तहानिर्मातृवर्गजनाद् वधः ॥ २४ ॥
षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे दुर्बले पापसंयुते ।
राजद्वेषो मनोदुःखं धनधान्यादिनाशनम् ॥ २५ ॥
मातृक्लेशो मनस्तापो देहजाड्यं मनोरुजा ।
दुःस्थे चन्द्रे बलैर्युक्ते क्वचिल्लाभः क्वचित् सुखम् ।
देहजाड्यं क्वचिच्चैव शुभं स्यात्तत्र शान्तितः ॥ २६ ॥

चन्द्रमा नीचस्थ या क्षीण हों तो उनकी दशा में धनहानि होती है । तृतीय स्थानगत वे बली हों तो कभी सौख्य, और कभी धनप्राप्ति होती है । पापग्रहयुक्त वे दुर्बल हों तो शारीरिक पीड़ा, मानसिक व्यथा, भृत्य से कष्ट, धनहानि, मातृ पक्षीय व्यक्ति द्वारा मरणतुल्य कष्ट होता है । वही दुर्बल सपाप चन्द्र त्रिकस्थ हों तो

राजद्वेष, मानसिक कष्ट, धनधान्यादि का विनाश, मातृक्लेश, मनस्ताप, शरीर में जड़ता, मनोव्यथा आदि होते हैं। त्रिकस्थ चन्द्र बलयुक्त हों तो कभी लाभ कभी सुख, कभी देहपीड़ा होती है। शान्ति से सर्वत्र शुभ होता है ॥ २३–२६ ॥

भौमदशाफल—

स्वर्क्षतुङ्गादिसंस्थस्य नीचारिभगतस्य च।
वच्मि भौमस्य सदसत्फलं विप्र! दशोद्भवम् ॥ २७ ॥
परमोच्चगते भौमे स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे।
स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥ २८ ॥
सम्पूर्णबलसंयुक्ते शुभदृष्टे शुभांशके।
राज्यलाभो भूमिलाभो लाभो धान्यादिसम्पदाम् ॥ २९ ॥
अधिकं राजसम्मानं, वाहनाम्बरभूषणम्।
विदेशे स्थानलाभश्च सोदराणां सुखं भवेत् ॥ ३० ॥
केन्द्रे गते सदा भौमे दुश्चिक्ये बलसंयुते।
पराक्रमाद् वित्तलाभो युद्धे शत्रुक्षयो भवेत् ॥ ३१ ॥
कलत्रपुत्रविभवं राजसम्मानमेव च।
दशादौ सुखमाप्नोति दशान्ते कष्टमादिशेत् ॥ ३२ ॥

अब उच्चादि तथा नीचादि स्थानगत भौम का शुभाशुभ दशाफल बतलाता हूँ। परमोच्च, स्वोच्चराशि, स्वभवन, मूलत्रिकोण, केन्द्र त्रिकोण, लाभस्थान या धनस्थान में बली भौम शुभग्रह से युक्त या दृष्ट जन्म-समय में हों तो राज्यलाभ, भूलाभ, धनधान्यादिसम्पत्तिलाभ, राजसम्मान, वाहन-वस्त्र-भूषण की प्राप्ति, विदेश में स्थानलाभ तथा सोदरों का सुख कहना चाहिए। बली मंगल केन्द्रस्थ या तृतीयस्थ हों तो पराक्रम से धनलाभ, युद्ध में शत्रुजय, दशारम्भ में स्त्री-पुत्रवैभव, राजसम्मान तथा अन्यान्य सुख होते हैं। दशा के अन्त में कष्ट भी कहना चाहिए ॥ २९–३२ ॥

अशुभ कुजदशाफल—

नीचादिदुःस्थगे भूमिसुते बलविवर्जिते।
पापयुक्ते पापदृष्टे सा दशा नेष्टदायिका ॥ ३३ ॥

नीचादि असत्स्थान में निर्बल भौम पापयुक्त या पापदृष्ट हों तो भौम की दशा इष्टप्रद नहीं होती है ॥ ३३ ॥

राहु-केतु का गृहादिस्थान तथा दशाफल—

अथागोः शिखिनश्चापि वच्मि गेहादिकं मुने!
तद्दशाफलबोधाय शृणु त्वं सुसमाहितः ॥ ३४ ॥

राहोस्तु वृषभं केतोर्वृश्चिकं तुङ्गसंज्ञकम् ।
मूलत्रिकोणकं युग्मं चापं वेद्यं यथाक्रमम् ॥ ३५ ॥
घटालीअपि वा कन्या-मीनौ कैश्चिद् गृहे स्मृते ।
तद्दाये बहुसौख्यं च धनधान्यादिसम्पदाम् ॥ ३६ ॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं वाहनं पुत्रसम्भवः ।
नूतनागारनिर्माणं धर्मचिन्तामहोत्सवः ॥ ३७ ॥
विदेशे राजसम्मानं वस्त्रालङ्कारभूषणम् ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे योगकारकसंयुते ॥ ३८ ॥
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये शुभराशिगे ।
महाराजप्रसादेन सर्वसम्पत् सुखावहा ॥ ३९ ॥
यवनप्रभुसन्मानं गृहे कल्याणसम्भवः ।

अब मैं राहु-केतु का गेहादिक उसके दशाफल जानने के लिए कहता हूँ, दत्त-चित्त होकर सुनो। राहु का उच्च वृष, और केतु का वृश्चिक है। दोनों का क्रमशः मूलत्रिकोण मिथुन तथा धनु है। राहु का घर कुम्भ, केतु का वृश्चिक है या किन्हीं आचार्यों के मतानुसार दोनों का घर क्रमशः कन्या, मीन है। जन्म-समय में यदि उच्चादि स्थानस्थ राहु हों तो उसकी दशा में धन-धान्यादि का अनेकविध सुख, मित्र तथा राजा के द्वारा अभीष्टप्राप्ति, वाहन, पुत्रलाभ, नूतनगृह-निर्माण, धर्मचिन्तन, महोत्सव, विदेश में राजसम्मान, वस्त्र, अलङ्कारादि का लाभ होते हैं। वही राहु शुभग्रह-युक्त या दृष्ट हों, योगकारक ग्रह के साथ हों, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान या दुश्चिक्य में हों तो महाराज-प्रसाद से अतुल सम्पत्ति की प्राप्ति होती है! उसे यवन-प्रभु का सन्मान तथा घर में अनेकविध कल्याण होते हैं ॥ ३४–३९½ ॥

अशुभ राहुदशाफल—

रन्ध्रे वा व्ययगे राहौ तद्दाये कष्टदं फलम् ॥ ४० ॥
पापग्रहेण सम्बन्धे मारकग्रहसंयुते ।
नीचराशिगते वापि स्थानभ्रंशो मनोरुजा ॥ ४१ ॥
नाशो हि दारपुत्राणां कदन्नानां च भोजनम् ।
दशादौ देहपीडा च धनधान्यपरिच्युतिः ॥ ४२ ॥
दशामध्ये तु सौख्यं स्यात् स्वदेशे लाभवान्नरः ।
दशान्ते कष्टमाप्नोति स्थानभ्रंशं मनोव्यथाम् ॥ ४३ ॥

अष्टम या व्यय स्थान में राहु हों तो उसकी दशा कष्टप्रद होती है। वह पापग्रह से सम्बद्ध हों, या मारकग्रहयुक्त हों, नीचराशिस्थ हों तो जातक को स्थानभ्रंश,

मनोव्यथा, स्त्री-पुत्र का नाश, कुत्सितान्न का भोजन, दशारम्भ में शरीरपीडा, धन-धान्यक्षय होता है। दशामध्य में वह सुखी, और स्वदेश में धनलाभ, दशान्त में कष्ट, स्थानभ्रंश तथा मनोव्यथा ये फल होते हैं ॥ ४०–४२ ॥

जीवदशाफल—

सर्वग्रहप्रशस्तस्य देवेज्यस्य दशाफलम् ।
वक्ष्ये तच्छृणु मैत्रेय ! सम्प्रत्येकाग्रचेतसा ॥ ४४ ॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
मूलत्रिकोणस्थाने वा तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ ४५ ॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं राजसन्मानकीर्त्तनम् ।
गजवाजियुतिश्चैव देवब्राह्मणपूजनम् ॥ ४६ ॥
दारपुत्रादिसौख्यं च वाहनाम्बरजं भवेत् ।
यज्ञादिकर्मसिद्धिः स्याद्वेदान्तश्रवणादिकम् ॥ ४७ ॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ।
आन्दोलिकादिलाभश्च कल्याणं च महत् सुखम् ॥ ४८ ॥
पुत्रदारादिलाभः स्यादन्नदानं महत् प्रियम् ।

सर्वग्रह-प्रशस्त गुरु का दशाफल बतलाता हूँ, हे मैत्रेय ! एकाग्रचित्त होकर सुनो। गुरु स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, लाभस्थान, त्रिकोण या मूलत्रिकोण, उच्च के नवांश या स्वनवांश में हों तो राज्यलाभ, महासुख, राजसम्मान, हाथी, घोड़ों का सौख्य, देव-ब्राह्मण का पूजन, स्त्री, पुत्र, वाहन, वस्त्र का सुख, यज्ञकार्य में सिद्धि, वेदान्त-श्रवण, राजप्रसाद से स्वेष्टसिद्धि, पालकी (शिबिका), सुखकर कल्याण, पुत्र-स्त्री का लाभ तथा प्रिय अन्नदान ये सभी प्राप्त होते हैं ॥ ४४–४८ ॥

अशुभ गुरुदशाफल—

नीचास्तपापसंयुक्ते जीवे रिष्फाष्टसंयुते ॥ ४९ ॥
स्थानभ्रंशो मनस्तापः पुत्रपीडा महद्भयम् ।
पश्वादिधनहानिश्च तीर्थयात्रादिकं भवेत् ॥ ५० ॥
आदौ कष्टं फलं भूयो भवेल्लाभश्चतुष्पदाम् ।
मध्यान्ते सुखमाप्नोति राजसम्मानवैभवम् ॥ ५१ ॥

गुरु नीचराशिगत, अस्त, या पापयुक्त, अष्टम या द्वादशस्थानगत हों तो जातक को स्थानभ्रंश, मनस्ताप, पशुधन की हानि, तीर्थयात्रादि, दशारम्भ में कष्ट, फिर पशुधनों का लाभ, दशा के मध्य तथा अन्त में. सुखप्राप्ति तथा राजसम्मान प्राप्त होते हैं ॥ ४९–५१ ॥

शनिदशाफल—

सर्वग्रहावरस्योष्णरश्मिसूनोर्दशाफलम् ।
अतः परमहं वच्मि तव प्रीत्यै द्विजोत्तम ! ॥ ५२ ॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे मित्रक्षेत्रेऽथवा यदि ।
मूलत्रिकोणे भाग्ये वा तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ ५३ ॥
दुश्चिक्ये लाभगे चैव राजसम्मानवैभवम् ।
सत्कीर्तिर्धर्मलाभश्च विद्यावाद-विनोदनम् ॥ ५४ ॥
महाराजप्रसादेन गजवाहनभूषणम् ।
राजयोगो भवेदेवं सेनाधीशान्महत्सुखम् ॥ ५५ ॥
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि राज्यलाभोऽपि सम्भवेत् ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्लाभो दारसुतादिजः ॥ ५६ ॥

हे द्विजोत्तम ! अब मैं शनिदशाफल बतलाता हूँ । शनि, स्वोच्च, स्वभवन, मित्र-गेह, मूलत्रिकोण, भाग्यस्थान, उच्च के नवांश या स्वनवांश, तृतीय या एकादश में हों तो मनुष्य को राजसम्मान, सुयश, धर्मलाभ, विद्यावाद-विनोद से महासुख, लक्ष्मीविलास, राज्यलाभ, घर में अनेकविध कल्याण, स्त्री-पुत्र-सौख्य प्राप्त होते हैं ॥ ५२–५६ ॥

शुभाशुभ शनिदशाफल तथा अपवाद—

षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वाऽस्तंगतेऽपि वा ।
विषशस्त्रादिपीडा च स्थानभ्रंशो महद् भयम् ॥ ५७ ॥
पितृमातृवियोगश्च दारपुत्रादिपीडनम् ।
राजवैषम्यकार्याणि ह्यनिष्टं बन्धनं तथा ॥ ५८ ॥
शुभयुक्तेक्षिते मन्दे योगकारकसंयुते ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा मीनगे कार्मुके शनौ ॥ ५९ ॥
राज्यलाभो महोत्साहो गजाश्वाम्बरजं सुखम् ।

शनि ६।८।१२ में, नीचराशिस्थ या अस्तंगत हों तो जातक को विष-शस्त्रादि की पीड़ा, स्थानभ्रंश, महाभय, पितृमातृवियोग, स्त्रीपुत्रादि-पीड़ा, राजविरुद्धकार्य, तथा उससे अनिष्ट एवं बन्धन प्राप्त होते हैं ।

वही शनि शुभग्रहसंयुक्त या दृष्ट हों, या योगकारक ग्रह से संयुक्त हों, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान या मीन, धनु में स्थित हों तो राज्यलाभ, महोत्साह तथा हाथी-घोड़ा-वस्त्रादि का सुख प्राप्त होता है ॥ ५७–५९ ॥

बुधदशाफल—

निखिलद्युपदां मध्ये प्रसिद्धस्य बुधस्य वै ॥ ६० ॥
दशाफलमथो वच्मि शृणु चैकाग्रमानसः ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥ ६१ ॥
मित्रक्षेत्रसमायुक्ते सौम्ये दाये महत् सुखम् ।
धनधान्यादिलाभश्च सत्कीर्त्तिधनसम्पदः ॥ ६२ ॥
ज्ञानाधिक्यं नृपप्रीतिः सत्कर्मगुणवर्धनम् ।
पुत्रदारादिसौख्यं च देहारोग्यं महत् सुखम् ॥ ६३ ॥
क्षीरेण भोजनसुखं व्यापारात् स्याद्धनागमः ।
शुभदृष्टियुते सौम्ये भाग्ये कर्माधिपे दशाः ॥ ६४ ॥
आधिपत्ये बलवती सम्पूर्ण-फलदायिका ।

(हे मैत्रेय !) अब मैं बुध का दशाफल बतलाता हूँ । अपने उच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान, मित्रगृह में बुध हों तो उनकी दशा में महासुख, धन-धान्य-समृद्धि, सुयश, ज्ञानाधिक्य, राजप्रीति, सत्कार्य तथा सद्गुण की वृद्धि, पुत्र-स्त्री-सौख्य, नैरुज्य, पायस-भोजनजन्य सुख, व्यापार से धनलाभ होते हैं ।

वही बुध शुभग्रहदृष्ट, या भाग्यस्थानस्थ अथवा राज्येश हों तो उनकी दशा सम्पूर्णफलदात्री होती है ॥ ६०–६४ ॥

अशुभ बुधदशाफल—

पापग्रहैर्युते दृष्टे राजद्वेषं मनोरुजम् ॥ ६५ ॥
विरोधं बान्धवजनैर्विदेशगमनं तथा ।
परप्रैष्यं च कलहं मूत्रकृच्छ्रान्महद् भयम् ॥ ६६ ॥
षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये लाभभोगार्थनाशनम् ।
वातपीडामपि तथा पाण्डुरोगं वदेद् बुधः ॥ ६७ ॥
नृपचौराग्निभीतिं च कृषिगोभूमिनाशनम् ।
दशादौ धनधान्यं च विद्यालाभं महत् सुखम् ॥ ६८ ॥
पुत्रकल्याणसम्पत्ति सन्मार्गाच्च धनागमम् ।
मध्ये नरेन्द्रसन्मानमन्ते दुःखं च निर्दिशेत् ॥ ६९ ॥

बुध यदि पापग्रहयुक्त या दृष्ट हों तो राजद्वेष, मनोव्यथा, बान्धवों के साथ विरोध, विदेशयात्रा, पराधीनता तथा मूत्रकृच्छ्ररोग से महाभय होता है । वही बुध (६।८।१२) में हों तो लाभ, भोग एवं धन का नाश, वातपीड़ा तथा पाण्डुरोग राजा, चोर तथा अग्नि का भय, कृषि, गोधन, एवं भूमि का विनाश, दशारम्भ में

धनधान्यसमृद्धि, विद्यालाभ, महासुख, पुत्रकल्याणवर सम्पत्ति, सन्मार्ग से धनागम, दशामध्य में राजसम्मान और दशा के अन्त में दुःख, ये फल होते हैं ॥ ६५–६९ ॥

केतुदशाफल—

शृणु मैत्रेय ! ते श्रद्धावशंवदतयाऽधुना ।
कबन्धापरपर्यायकेतोर्वच्मि दशाफलम् ॥ ७० ॥

हे मैत्रेय ! अब मैं कबन्ध नाम वाले केतु का दशाफल बतलाता हूँ, सुनो ॥७०॥

केन्द्रे लाभे त्रिकोणे वा शुभराशौ शुभेक्षिते ।
स्वोच्चे वा शुभवर्गे वा राजप्रीतिमभीप्सिताम् ॥ ७१ ॥
देशग्रामाधिपत्यं च वाहनं पुत्रसम्भवम् ।
देशान्तरप्रयाणं च ततोऽप्यतिसुखं वदेत् ॥ ७२ ॥
पुत्रदारसुखं चैव लाभश्चापि चतुष्पदाम् ।
दुश्चिक्ये षष्ठलाभे वा केतुदाये सुखं तथा ॥ ७३ ॥
राज्यं तथैव सन्मित्रगजवाजिसमन्वितम् ।
दशादौ राजयोगाः स्युर्दशामध्ये महद् भयम् ॥ ७४ ॥
अन्ते दूराटनं चैव देहविश्रमणं तथा ।
धने रन्ध्रे व्यये केतौ पापग्रहयुतेक्षिते ॥ ७५ ॥
निगडो बन्धुनाशश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा ।
शूद्रादिसङ्गतो लाभो भवेद्रोगसमुद्भवः ॥ ७६ ॥

केतु केन्द्र, त्रिकोण, शुभग्रह की राशि में हों शुभग्रह की उनपर दृष्टि रहे, या स्वोच्च अथवा शुभवर्ग में हों तो मनुष्य को अभिलषित राजप्रीति, देशग्रामाधिपत्य, पुत्रकृतवाहन, देशान्तर-भ्रमण, तथा अत्यधिक सुख का निर्देश करें। ऐसे व्यक्ति को पुत्रस्त्रीसौख्य, पशुओं का लाभ होता है। केतु तृतीय, षष्ठ या एकादश में हों तो भी अपनी दशा में सुखद होते हैं। वे सन्मित्र, गज, अश्व आदि से सम्पन्न राज्य देते हैं। दशारम्भ में राज्यप्रद, दशामध्य में भयप्रद, एवं दशान्त में दूराटन कराने वाले होते हैं। धनस्थान, अष्टमस्थान तथा व्ययस्थानस्थ केतु पापग्रह से युक्त या दृष्ट हों तो जेल, बन्धुओं का विनाश, स्थानभ्रंश, मनोव्यथा, शूद्रादियों के सङ्ग से लाभ तथा रोगोत्पत्ति होती है ॥ ७१–७६ ॥

शुक्रदशाफल—

रेतसः कारकत्वेन विश्रुतस्य भृगोरिह ।
दशाफलन्त्वविकलं वक्ष्यामि शृणु सन्मुने ! ॥ ७७ ॥

परमोच्चगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
नृपाभिषेकसम्प्राप्तिर्वाहनाम्बरभूषणम् ॥ ७८ ॥
गजाश्वपशुलाभश्च नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
अखण्डमण्डलाधीशराजसम्मानवैभवम् ॥ ७९ ॥
मृदङ्गवाद्यघोषश्च गृहं लक्ष्मीकटाक्षयुक् ।
त्रिकोणस्थेऽथवा मीने राज्यार्थगृहसम्पदः ॥ ८० ॥
विवाहोत्सवकार्याणि पुत्रकल्याणवैभवम् ।
सेनाधिपत्यं च तथा स्वेष्टबन्धुसमागमः ॥ ८१ ॥
नष्टराज्याद्धनप्राप्तिर्गृहे गोधनसङ्ग्रहः ।

(हे मैत्रेय !) रेतःकारक प्रसिद्ध शुक्र का दशाफल बतलाता हूँ, सुनो । शुक्र परमोच्च या स्वोच्चराशि, स्वक्षेत्र, या केन्द्र में हों तो मनुष्य को राजतिलक, वाहन, वस्त्र, अलङ्कार की प्राप्ति, हाथी, घोड़ा तथा अन्य पशुओं का लाभ, नित्य मिष्टान्न-भोजन, चक्रवर्त्ती राजा के द्वारा सम्मान, मृदङ्गादि वाद्यों का निर्घोष, लक्ष्मीविलास-युक्त घर प्राप्त होते हैं । वही शुक्र त्रिकोणस्थान या मीन में हों तो राज्य, धन, घर, तथा अन्यसम्पत्ति, घर में विवाहोत्सवकार्य, पुत्रकल्याण, सेनाधिपत्व, तथा स्वमित्र-बान्धवों का शुभागम, नष्टराज्य से धनप्राप्ति, तथा गोधनसंग्रह, ये सभी होते हैं ॥ ७७–८१½ ॥

अशुभ शुक्रदशाफल—

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे नीचे पापयुतेक्षिते ॥ ८२ ॥
आत्मबन्धुजनद्वेषो दारवर्ग इपीडनम् ।
व्यवसायात् फलं नष्टं गोमहिष्यादिसंक्षयः ॥ ८३ ॥
दारपुत्रादिपीडा वा वियोगश्चात्मबन्धुभिः ।

शुक्र ६।८।१२। में या नीच में स्थित हों, पापग्रह का संयोग या दृष्टि उन पर हों तो आत्मीयजनों से द्वेष, स्त्रीवर्गादि में पीड़ा, व्यवसाय में ह्रास, पशुधन का विनाश, स्त्रीपुत्रादियों में पीड़ा अथवा आत्मीय बन्धुओं से वियोग होता है ८२–८३½

भाग्यकर्माधीश शुक्र का दशाफल—

भाग्यकर्माधिपत्येन लग्नवाहनराशिगे ॥ ८४ ॥
तद्दशायां महत् सौख्यं देशग्रामाधिपत्यजम् ।
देवालयतडागादि-पुण्यकर्मसु संग्रहः ॥ ८५ ॥
अन्नदाने महत् सौख्यं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
उत्साहः कीर्तिसम्पत्ती स्त्रीपुत्रधनसम्पदः ॥ ८६ ॥

शुक्र यदि भाग्येश या राज्येश होकर लग्न, या चतुर्थस्थानगत हों तो अपनी दशा में ये देश, ग्राम के आधिपत्य तथा सुख देनेवाले होते हैं। उस व्यक्ति को देवालय, तडागखनन आदिक पुण्यकार्यों में तथा अन्नदान में बड़ा सुख प्राप्त होता है। नित्य उसे मिष्टान्न-भोजन, उत्साह, यश, स्त्री, पुत्र, धन तथा सम्पत्तियों का लाभ होता है ॥ ८४–८६ ॥

स्वभुक्तौ फलमेवं स्यात् फलान्यन्यदशास्वपि ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति ॥ ८७ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं रुद्रं वा त्र्यम्बकं जपेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादारोग्यं स्यात्तदा नृणाम् ॥ ८८ ॥

शुक्र की अपनी दशा में उपर्युक्त फल समझना। अन्य ग्रहों की दशा में भी शुक्र की अन्तर्दशा आने पर ये फल होते हैं। शुक्र यदि द्वितीय या सप्तम के अधिप हों तो शारीरिक पीड़ा होती है। शान्त्यर्थ रुद्राभिषेक या मृत्युञ्जयजप, श्वेत गाय या महिषी का दान करें तो आरोग्य लाभ होता है ॥ ८७–८८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे दशाफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ भावेशदशाफलाध्यायः ॥ ४९ ॥

पराशर उवाच—

भावस्थित्यनुसारेण फलं सद्भिरुदीरितम् ।
भावाधिपतिसम्बन्धादथ वच्मि फलं मुने ! ॥ १ ॥

पराशर ने कहा—हे मुने ! भावस्थिति के अनुसार ही विद्वानों ने फलादेश किया है। अब मैं भावेश के सम्बन्ध से दशाफल बतलाता हूँ ॥ १ ॥

भावेशदशाफल—

लग्नाधिपदशायां स्यात्तनौ सौख्यं च सद्यशः ।
वित्तपस्य दशायां तु कष्टं चापि मृतेर्भयम् ॥ २ ॥
तृतीयेशदशायां तु जातकस्याशुभं फलम् ।
चतुर्थेशदशायां वै गेहभूसम्भवं सुखम् ॥ ३ ॥
पञ्चमेशदशायां तु विद्यात्मजसुखं महत् ।
षष्ठेशस्य दशामध्ये शत्रुभीश्च तनौ रुजा ॥ ४ ॥
जायेशस्य दशाकाले जायाकष्टं मृतेर्भयम् ।
रन्ध्रेशस्य दशामध्ये वित्तनाशो मृतेश्च भीः ॥ ५ ॥

भाग्येशस्य दशाकाले कीर्त्तिधर्मार्थसंग्रहः ।
कर्माधिपदशायां तु राजसम्मानसम्भवः ॥ ६ ॥
लाभाधिपदशाकाले लाभो विघ्नोऽथ रोगभीः ।
रिष्फेशस्य दशामध्ये कष्टं नानाविधं भवेत् ॥ ७ ॥
शुभभावस्थखेटस्य दशारम्भे शुभं फलम् ।
शुभस्याप्यशुभस्थान-स्थितस्याशुभदं फलम् ॥ ८ ॥

लग्नेश की दशा में शरीरसुख, सुयश, धनेश की दशा में कष्ट तथा मरणभय, तृतीयेश की दशा में अशुभ, चतुर्थेश की दशा में गृह तथा भूमिसुख, पञ्चमेश की दशा में विद्या तथा पुत्र का सुख, षष्ठेश की दशा में शत्रुभय, शरीर में पीड़ा, सप्तमेश की दशा में स्त्रीकष्ट तथा मरणभय, अष्टमेश की दशा में धननाश तथा मृत्युभय, भाग्येश की दशा में यश, धर्म तथा धन की समृद्धि, राज्येश की दशा में राजसम्मान, लाभेश की दशा में लाभ, विघ्न तथा रोगभय, एवं द्वादशेश की दशा में अनेकविध कष्ट होते हैं। दशारम्भ में ग्रह शुभस्थान (त्रिकोणादि) में हों तो शुभ फल और अशुभस्थान (त्रिक आदि) में हों तो अशुभ कहना। अतः जन्म एवं दशारम्भकाल दोनों की स्थिति से फलादेश करना चाहिए ॥ २–८ ॥

सुताधिपतियुक्तस्य भाग्याधिपयुतस्य वा ।
कर्मेशस्यातिशुभदा दशा विद्भिरीरिता ॥ ९ ॥
पञ्चमेशेन युक्तस्य ग्रहस्य शुभदा दशा ।
अपि धर्मपयुक्तस्य दशा परमशोभना ॥ १० ॥
सुखेशसहितस्यापि धर्मेशस्य दशा शुभा ।
पञ्चमस्थानगस्यापि मानेशस्य दशा शुभा ॥ ११ ॥
केन्द्रत्रिकोणनाथाः स्युः कोणकेन्द्रगता यदि ।
तदातिशुभदा ज्ञेया विज्ञैस्तेषां दशा सदा ॥ १२ ॥

सुतेशयुक्त कर्मेश या भाग्येशयुक्त कर्मेश की दशा शुभप्रद होती है। पञ्चमेशयुक्त किसी भी ग्रह की दशा शुभद और धर्मेशयुक्त ग्रह की दशा परमशुभद होती है। सुखेश-सहित धर्मेश की दशा, पञ्चमस्थ दशमेश की दशा शुभद होती है। केन्द्रेश कोणस्थ हों, त्रिकोणेश केन्द्रगत हों तो उन (केन्द्रेश तथा त्रिकोणेश) की दशा परम शुभद होती है ॥ ८–१२ ॥

षष्ठाष्टमव्ययाधीशाः कोणपेनान्विता यदि ।
तेषां दशा च शुभदा होराविद्भिरुदीरिता ॥ १३ ॥
केन्द्रगः कोणपः केन्द्रपतिः कोणगतो यदि ।
तदा तद्युक्तदृष्टस्य ग्रहस्य शुभदा दशा ॥ १४ ॥

तनुपो भाग्यगो वापि भाग्येशस्तनुभावगः ।
नृणां तयोर्दशामध्ये धर्मसौख्योदयो भवेत् ॥ १५ ॥
दशमेशस्तनुगतस्तनुपः कर्मसंस्थितः ।
तदा तयोर्दशामध्ये राज्याप्तिः स्यान्न संशयः ॥ १६ ॥

त्रिकेश यदि त्रिकोणेश के साथ हों तो त्रिकेश की दशा भी शुभप्रद होती है । कोणेश केन्द्रस्थ हों और केन्द्रेश कोणगत हों तो तद्युक्तदृष्ट ग्रह (केन्द्रेश-त्रिकोणेश के साथ वाले या उनसे देखे जाने वाले) की दशा शुभद होती है । लग्नेश भाग्यस्थ और भाग्येश लग्नस्थ हों तो उनके दशा-काल में मनुष्य को धन तथा सौख्य का उदय कहें । दशमेश लग्नगत एवं लग्नेश कर्मगत हों तो उनके दशाकाल में निःसन्देह राज्याप्ति होवे ॥ १३–१६ ॥

त्रिषड्लाभगतानां वा युतानां तदधीश्वरैः ।
सतामपि नभोगानां दशा त्वशुभदा मता ॥ १७ ॥
वित्तद्यूनगतानां वै मारकाधीशसंयुजाम् ।
मृत्युभावस्थितानां च दशाऽप्यशुभदा स्मृता ॥ १८ ॥

३।६।११ स्थानों में गत या त्रिषडायाधीशों से युक्त शुभग्रहों की भी दशा अशुभदा होती है । द्वितीय तथा सप्तम में मारकेश से युक्त या मृत्यु स्थान-स्थित ग्रहों की दशा अशुभप्रद होती है ॥ १७–१८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावेशदशाफलाध्यायः समाप्तः ॥ ४९ ॥

अथ कालचक्रदशाफलाध्यायः ॥ ५० ॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि ते विप्र ! कालचक्रदशाफलम् ।
राशीशानामिनादीनां फलं तत्रापि संशृणु ॥ १ ॥
रक्तपित्तादिजं व्याधिं स्वदशायां दिशेद् रविः ।
धनकीर्त्तिप्रजावृद्धिवस्त्राभरणदः शशी ॥ २ ॥
ज्वरमाशु दिशेत् पैत्तं ग्रन्थिस्फोटं तु भूमिजः ।
प्रजाद्रविणयोर्वृद्धिं बुधो दद्याद् विशेषतः ॥ ३ ॥
धनं कीर्त्तिं प्रजावृद्धिं नानाभोगं बृहस्पतिः ।
विद्यावाप्तिर्विवाहश्च गृहे धान्यं भृगोः फलम् ॥ ४ ॥

तापाधिक्यं महद् दुःखं बन्धुनाशः शनेः फलम् ।
एवमर्कादियोगेन राशीनां स्याद् दशाफलम् ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं कालचक्रदशाफल कहता हूँ, उसमें पहले सूर्यादि राशीशों का फल सुनो । स्वराशि या सूर्याधिष्ठित राशि की दशा में सूर्य रक्त-पित्तजन्य रोगकारक होते हैं । चन्द्रमा जहां हों उस राशि की दशा में धन, कीर्त्ति, प्रजावृद्धि तथा वस्त्र-आभूषण आदि के प्रदाता होते हैं । मङ्गल ज्वर, पित्तप्रकोप, गठिया तथा फोड़ा उत्पन्न करने वाले हैं । बुध प्रजा तथा धन के वृद्धिकारक हैं । गुरु धन, कीर्त्ति, पुत्रवृद्धि, तथा अनेकविध भोगप्रदायक हैं । शुक्र विद्यावृद्धि, विवाह तथा घर में धान्यवर्धक हैं । शनि अनेकविध दुःख तथा बन्धुनाशकारक हैं । इस प्रकार सूर्यादि योग से राशिफल समझना ॥ १–५ ॥

मेषगत नवांश दशाफल—

मेषे तु रक्तपीडा च वृषभे धान्यवर्धनम् ।
मिथुने ज्ञानसम्पन्नः कर्के धनपतिर्भवेत् ॥ ६ ॥
सूर्यर्क्षे शत्रुबाधा च कन्यायां स्त्रीविनाशनम् ।
तौलिके राजमन्त्रित्वं वृश्चिके मरणं भवेत् ॥ ७ ॥
अर्थलाभो भवेच्चापे मेषस्य नवमांशके ।

मेष राशि के मेषांश की कालचक्रदशा में रक्तविकार, वृषभांश की दशा में धन-धान्यवृद्धि, मिथुनांश की दशा में ज्ञानवृद्धि, कर्कांश की दशा में धनप्राप्ति, सिंहांश की दशा में राजमन्त्रित्व, वृश्चिकांश की दशा में मरण, धनुरंश की दशा में अर्थलाभ, ये मेषगत नवांश राशियों के दशाफल हैं ॥ ६–७½ ॥

वृषगत नवांश राशि-दशाफल—

मकरे पापकर्माणि कुम्भे वाणिज्यमेव च ॥ ८ ॥
मीने सर्वार्थसिद्धिः स्याद् वृश्चिके त्वग्नितो भयम् ।
तौलिके राजपूज्यत्वं कन्यायां शत्रुवर्द्धनम् ॥ ९ ॥
शशिभे दारसंबाधा सिंहे च त्वक्षिजा रुजा ।
मिथुने वृत्तिबाधा स्याद् वृषभस्य नवांशके ॥ १० ॥

वृषगत मकर की नवांशदशा में पापकर्म-प्रवृत्ति, कुम्भ की नवांशदशा में व्यापार, मीन की दशा में सर्वकार्यसिद्धि, वृश्चिक की दशा में अग्निभय, तुला की दशा में राजसम्मान, कन्या की दशा में शत्रुवृद्धि, कर्क की नवांशदशा में स्त्रीक्लेश, सिंह की दशा में नेत्ररोग, मिथुन की दशा में जीविका में बाधा ये फल वृषगत नवांश राशियों की दशा में होते हैं ॥ ८–१० ॥

मिथुनगत नवांश राशिदशाफल—

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषे तु ज्वरजा रुजा ।
झषे तु मातुलप्रीतिः कुम्भे शत्रुप्रवर्धनम् ॥ ११ ॥
मृगे चौरस्य संबाधा धनुर्भे शस्त्रवर्धनम् ।
मेषे तु शस्त्रसंघातो वृषभे कलहो मतः ॥ १२ ॥
मिथुने सुखमाप्नोति मिथुनस्य नवांशके ।

मिथुनगत वृष की नवांश दशा में अर्थप्राप्ति, मेष की नवांशदशा में ज्वररोग, मीन की दशा में मामा से प्रीति, कुम्भ की दशा में शत्रुवृद्धि, मकर की नवांशदशा में चौरबाधा, धनु की दशा में शस्त्रवृद्धि, मेष की दशा में शस्त्रसंघात, वृष की दशा में कलह तथा मिथुन की दशा में सुखप्राप्ति, ये मिथुनगत नवांश राशियों के दशाफल हैं ॥ ११–१२½ ॥

कर्कगत नवांश राशिदशाफल—

कर्कटे सङ्कटप्राप्तिः सिंहे राजप्रकोपनम् ॥ १३ ॥
कन्यायां भ्रातृपूजा च तौलिके प्रियकृन्नरः ।
वृश्चिके पितृबाधा स्याच्चापेऽर्थज्ञानवर्धनम् ॥ १४ ॥
मृगे भयं भवेदद्भ्यः समृद्धिः सस्यगा घटे ।
झषे सम्पत्-सुखं चापि कर्कटस्य नवांशके ॥ १५ ॥

कर्कगत कर्क की नवांश दशा में संकट, सिंह की दशा में राजप्रकोप, कन्या की दशा में बन्धुओं का सम्मान, तुला की दशा में प्रियकारिता, वृश्चिक की दशा में पितृ-कष्ट, धनु की दशा में धन-धान्य की वृद्धि, मकर की दशा में जलभय, कुम्भ की दशा में सस्यवृद्धि, मीन की दशा में सम्पत्तिसुख, ये कर्कगत नवांश राशियों के दशाफल हैं ॥ १३–१५ ॥

सिंहगत नवांश राशिदशाफल—

वृश्चिके कलहः पीडा तौलिके ह्यधिकं फलम् ।
कन्यायामतिलाभश्च शशिभे मृगबाधिता ॥ १६ ॥
सिंहे च पुत्रलाभश्च मिथुने शत्रुवर्धनम् ।
गवि लाभश्चतुष्पद्भ्यो भीः पशुभ्यो भवेदजे ॥ १७ ॥
मीने तु दीर्घयात्रा स्यात् सिंहस्य नवभागके ।

सिंहगत वृश्चिक की नवांश दशा में कलह तथा पीड़ा, तुला की नवांश दशा में अधिक लाभ, कन्या में भी प्रचुरलाभ, कर्क की दशा में मृगादि जङ्गली जानवरों से बाधा, सिंह की दशा में पुत्रप्राप्ति, मिथुन की नवांशदशा में शत्रुवृद्धि, वृष की

दशा में पशुकृत लाभ, मेष की दशा में पशुभय, मीन की दशा में लम्बी यात्रा, ये सिंहगत नवांश राशियों के दशाफल हैं ।। १६–१७½ ।।

कन्यागत नवांश राशियों के दशाफल—

कुम्भे तु धनलाभश्च मकरे द्रविणागमः ।। १८ ।।
धनुषि भ्रातृसंसर्गो मेषे मातृविवर्धनम् ।
वृषभे पुत्रवृद्धिः स्यान्मिथुने शत्रुवर्धनम् ।। १९ ।।
शशिभे तु स्त्रियां प्रीतिः सिंहे व्याधिविवर्धनम् ।
कन्यायां पुत्रवृद्धिः स्यात् कन्याया नवमांशके ।। २० ।।

कन्यागत कुम्भ की नवांशदशा में धनलाभ, मकर की दशा में द्रव्यप्राप्ति, धनु की दशा में बन्धुओं से सम्पर्क, मेष की दशा में माता को सौख्य, वृष की दशा में पुत्रवृद्धि, मिथुन में शत्रुवृद्धि, कर्क की दशा में स्त्रीप्रेम, सिंह की दशा में व्याधिप्रकोप, कन्या की दशा में पुत्रवृद्धि, ये कन्यागत नवांशराशि-दशाफल होते हैं ।। १८–२० ।।

तुलागत नवांश राशिदशाफल—

तुलायामर्थलाभश्च वृश्चिके भ्रातृवर्धनम् ।
चापे तु तातसौख्यं च मृगे मातृविरोधिता ।। २१ ।।
घटे सूनुधनाप्तिः स्याद् विरोधो वैरिभिर्झषे ।
अलौ जायाविरोधश्च तुले तु जलतो भयम् ।। २२ ।।
कन्यायामर्थसंवृद्धिस्तुलाया नवभागके ।

तुलागत तुला की नवांशदशा में धनलाभ, वृश्चिक की दशा में भ्रातृसौख्य, धनु की दशा में, पितृसौख्य, मकर की नवांशदशा में मातृविरोध, कुम्भ की दशा में, धन-पुत्र की प्राप्ति, मीन की दशा में शत्रुओं से विरोध, वृश्चिक की दशा में स्त्री से विरोध, तुला की दशा में जलभय, कन्या की दशा में धनवृद्धि, ये तुलागत नवांश-राशिदशाफल हैं ।। २१–२२ ।।

वृश्चिकगत नवांश राशिदशाफल—

कर्कटे ह्यर्थनाशश्च सिंहे राजविरोधिता ।। २३ ।।
मिथुने भूमिलाभश्च वृषभे चार्थसम्भवः ।
अजेऽहिप्रभृतेर्भीतिर्झषे भीर्वारितस्तथा ।। २४ ।।
व्यवसायाद् घटे लाभो रोगभीतिर्मृगे भवेत् ।
चापे तु धनलाभः स्याद् वृश्चिकस्य नवांशके ।। २५ ।।

वृश्चिकगत कर्क की नवांशदशा में धननाश, सिंह की नवांशदशा में राजविरोध, मिथुन की दशा में भूमिलाभ, वृष की दशा में धनलाभ, मेष की दशा में सर्पादि

जीवों से भय, मीन की दशा में जलभय, कुम्भ की दशा में व्यापार से लाभ, मकर की दशा में व्याधिभय, धन की नवांशदशा में धनलाभ, ये वृश्चिकगतनवांशराशियों के दशाफल हैं ॥ २३–२५ ॥

धनुर्गत नवांश राशिदशाफल—

मेषे तु धनलाभः स्याद् वृषे भूमिविवर्धनम् ।
मिथुने सर्वसिद्धिः स्यात् कर्कटे सर्वसिद्धयः ॥ २६ ॥
सिंहे तु पूर्ववृद्धिः स्यात् कन्यायां कलहो भवेत् ।
तौलिके चार्थलाभः स्याद् वृश्चिके रोगमाप्नुयात् ॥ २७ ॥
चापे तु सुतवृद्धिः स्याच्चापस्य नवमांशके ।

धनुगत मेष की नवांशदशा में धनप्राप्ति, वृष की दशा में भूम्यर्जन, मिथुन तथा कर्क की नवांशदशा में सर्वसिद्धि, सिंह की नवांशदशा में पूर्वधनसमृद्धि, कन्या की दशा में कलह, तुला की दशा में अर्थलाभ, वृश्चिक की दशा में रोगाप्ति, धन की दशा में पुत्रसौख्य, ये धनुगत नवांशराशियों के दशाफल होतें हैं ॥ २६–२७ ॥

मकरगत नवांश राशिदशाफल—

मकरे पुत्रलाभः स्यात् कुम्भे धान्यविवर्धनम् ॥ २८ ॥
मीने कल्याणमाप्नोति वृश्चिके गरलाद् भयम् ।
तौलिके त्वर्थलाभश्च कन्यायां शत्रुवर्धनम् ॥ २९ ॥
शशिभे श्रियमाप्नोति सिंहे तु मृगबाधिता ।
मिथुने वृक्षबाधा च मृगस्य नवमांशके ॥ ३० ॥

मकरगत मकर की नवांशदशा में पुत्रलाभ, कुम्भ की नवांशदशा में धान्यवृद्धि, मीन की दशा में कल्याण-प्राप्ति, वृश्चिक की दशा में विषभय, तुला की नवांशदशा में धनलाभ, कन्या की दशा में शत्रुप्रकोप, कर्क की नवांशदशा में लक्ष्मीप्राप्ति, सिंह की दशा में वन्यजन्तुकृतबाधा, मिथुन की नवांशदशा में वृक्षबाधा, ये मकरगत नवांश राशियों के दशाफल होते हैं ॥ २८–३० ॥

कुम्भगतनवांशराशियों के दशाफल—

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषे चाप्यक्षिजा रुजा ।
झषे हि दीर्घयात्रा स्यात् कुम्भे त्वर्थविवर्धनम् ॥ ३१ ॥
मकरे सर्वसिद्धिः स्याच्चापे शत्रुविवर्धनम् ।
मेषे सौख्यविनाशश्चेद् वृषभे मरणं भवेत् ॥ ३२ ॥
युग्मे कल्याणमाप्नोति कुम्भस्य नवमांशके ।

दशा में पशुकृत लाभ, मेष की दशा में पशुभय, मीन की दशा में लम्बी यात्रा, ये सिंहगत नवांश राशियों के दशाफल हैं ॥ १६–१७½ ॥

कन्यागत नवांश राशियों के दशाफल—

कुम्भे तु धनलाभश्च मकरे द्रविणागमः ॥ १८ ॥
धनुषि भ्रातृसंसर्गो मेषे मातृविवर्धनम् ।
वृषभे पुत्रवृद्धिः स्यान्मिथुने शत्रुवर्धनम् ॥ १९ ॥
शशिभे तु स्त्रियां प्रीतिः सिंहे व्याधिविवर्धनम् ।
कन्यायां पुत्रवृद्धिः स्यात् कन्याया नवमांशके ॥ २० ॥

कन्यागत कुम्भ की नवांशदशा में धनलाभ, मकर की दशा में द्रव्यप्राप्ति, धनु की दशा में बन्धुओं से सम्पर्क, मेष की दशा में माता को सौख्य, वृष की दशा में पुत्रवृद्धि, मिथुन में शत्रुवृद्धि, कर्क की दशा में स्त्रीप्रेम, सिंह की दशा में व्याधिप्रकोप, कन्या की दशा में पुत्रवृद्धि, ये कन्यागत नवांशराशि-दशाफल होते हैं ॥ १८–२० ॥

तुलागत नवांश राशिदशाफल—

तुलायामर्थलाभश्च वृश्चिके भ्रातृवर्धनम् ।
चापे तु तातसौख्यं च मृगे मातृविरोधिता ॥ २१ ॥
घटे सूनुधनाप्तिः स्याद् विरोधो वैरिभिर्झषे ।
अलौ जायाविरोधश्च तुले तु जलतो भयम् ॥ २२ ॥
कन्यायामर्थसंवृद्धिस्तुलाया नवभागके ।

तुलागत तुला की नवांशदशा में धनलाभ, वृश्चिक की दशा में भ्रातृसौख्य, धनु की दशा में, पितृसौख्य, मकर की नवांशदशा में मातृविरोध, कुम्भ की दशा में, धन-पुत्र की प्राप्ति, मीन की दशा में शत्रुओं से विरोध, वृश्चिक की दशा में स्त्री से विरोध, तुला की दशा में जलभय, कन्या की दशा में धनवृद्धि, ये तुलागत नवांश-राशिदशाफल हैं ॥ २१–२२ ॥

वृश्चिकगत नवांश राशिदशाफल—

कर्कटे ह्यर्थनाशश्च सिंहे राजविरोधिता ॥ २३ ॥
मिथुने भूमिलाभश्च वृषभे चार्थसम्भवः ।
अजेऽहिप्रभृतेर्भीतिर्झषे भीर्वारितस्तथा ॥ २४ ॥
व्यवसायाद् घटे लाभो रोगभीतिर्मृगे भवेत् ।
चापे तु धनलाभः स्याद् वृश्चिकस्य नवांशके ॥ २५ ॥

वृश्चिकगत कर्क की नवांशदशा में धननाश, सिंह की नवांशदशा में राजविरोध, मिथुन की दशा में भूमिलाभ, वृष की दशा में धनलाभ, मेष की दशा में सर्पादि

जीवों से भय, मीन की दशा में जलभय, कुम्भ की दशा में व्यापार से लाभ, मकर की दशा में व्याधिभय, धन की नवांशदशा में धनलाभ, ये वृश्चिकगतनवांशराशियों के दशाफल हैं ।। २३–२५ ।।

धनुर्गत नवांश राशिदशाफल—

मेषे तु धनलाभः स्याद् वृषे भूमिविवर्धनम् ।
मिथुने सर्वसिद्धिः स्यात् कर्कटे सर्वसिद्धयः ।। २६ ।।
सिंहे तु पूर्ववृद्धिः स्यात् कन्यायां कलहो भवेत् ।
तौलिके चार्थलाभः स्याद् वृश्चिके रोगमाप्नुयात् ।। २७ ।।
चापे तु सुतवृद्धिः स्याच्चापस्य नवमांशके ।

धनुगत मेष की नवांशदशा में धनप्राप्ति, वृष की दशा में भूम्यर्जन, मिथुन तथा कर्क की नवांशदशा में सर्वसिद्धि, सिंह की नवांशदशा में पूर्वधनसमृद्धि, कन्या की दशा में कलह, तुला की दशा में अर्थलाभ, वृश्चिक की दशा में रोगाप्ति, धन की दशा में पुत्रसौख्य, ये धनुगत नवांशराशियों के दशाफल होते हैं ।। २६–२७ ।।

मकरगत नवांश राशिदशाफल—

मकरे पुत्रलाभः स्यात् कुम्भे धान्यविवर्धनम् ।। २८ ।।
मीने कल्याणमाप्नोति वृश्चिके गरलाद् भयम् ।
तौलिके त्वर्थलाभश्च कन्यायां शत्रुवर्धनम् ।। २९ ।।
शशिभे श्रियमाप्नोति सिंहे तु मृगबाधिता ।
मिथुने वृक्षबाधा च मृगस्य नवमांशके ।। ३० ।।

मकरगत मकर की नवांशदशा में पुत्रलाभ, कुम्भ की नवांशदशा में धान्यवृद्धि, मीन की दशा में कल्याण-प्राप्ति, वृश्चिक की दशा में विषभय, तुला की नवांशदशा में धनलाभ, कन्या की दशा में शत्रुप्रकोप, कर्क की नवांशदशा में लक्ष्मीप्राप्ति, सिंह की दशा में वन्यजन्तुकृतबाधा, मिथुन की नवांशदशा में वृक्षबाधा, ये मकरगत नवांश राशियों के दशाफल होते हैं ।। २८–३० ।।

कुम्भगतनवांशराशियों के दशाफल—

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषे चाप्यक्षिजा रुजा ।
झषे हि दीर्घयात्रा स्यात् कुम्भे त्वर्थविवर्धनम् ।। ३१ ।।
मकरे सर्वसिद्धिः स्याच्चापे शत्रुविवर्धनम् ।
मेषे सौख्यविनाशश्चेद् वृषभे मरणं भवेत् ।। ३२ ।।
तुले कल्याणमाप्नोति कुम्भस्य नवमांशके ।

कुम्भगत वृष की नवांशदशा में धनप्राप्ति; मेष की दशा में नेत्रपीड़ा, मीन की नवांशदशा में दीर्घयात्रा, कुम्भ की दशा में धनवृद्धि, मकर की दशा में सर्वसिद्धि-धनु की दशा में शत्रुवृद्धि, मेष की दशा में सुखक्षय, वृष की दशा में मरण, मिथुन की नवांशदशा में कल्याण, ये फल कुम्भगत—नवांशराशियों के दशाफल हैं ॥

मीनगतनवांशराशियों के दशाफल—

कर्कटे धनवृद्धिः स्यात् सिंहे तु राजपूजनम् ॥ ३३ ॥
कन्यायामर्थलाभश्च तुलायां लाभमाप्नुयात् ।
वृश्चिके ज्वरमाप्नोति चापे शत्रुविवर्धनम् ॥ ३४ ॥
मृगे जायाविरोधश्च कुम्भे जलविरोधिता ।
मीने तु सर्वसौभाग्यं मीनस्य नवमांशके ॥ ३५ ॥

मीनगत—कर्क की नवांशदशा में धनवृद्धि, सिंह की दशा में राजसम्मान, कन्या की दशा में धनलाभ, तुला की दशा में भी लाभ, वृश्चिक की नवांशदशा में ज्वराप्ति, धनु की दशा में शत्रुवृद्धि, मकर की दशा से स्त्रीविरोध, कुम्भ की दशा में जलभय, मीन की दशा में सर्वसौभाग्य, ये मीनगतनवांशराशिदशाफल हैं ॥

दशाभागक्रमेणैवं ज्ञात्वा सर्वफलं वदेत् ।
क्रूरग्रहदशाकाले शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ॥ ३६ ॥
इत्थं समासतश्चक्रदशाफलमुदीरितम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार दशाभाग-क्रम से नक्षत्रों के चरणवश कालचक्र द्वारा नवांशराशि-दशा तथा उसके समय ज्ञात कर फलादेश करना चाहिए। पापदशाकाल में शान्ति कराना आवश्यक है ॥ ३६–३७ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे कालचक्रदशाफलाध्यायः ॥ ५० ॥

अथ चरादिराशिदशाफलाध्यायः ॥ ५१ ॥

पराशर उवाच—

चरस्थिरप्रभृतयो दशा याः प्रागुदीरिताः ।
शुभं वाप्यशुभं तासां फलं सम्प्रति वच्मि ते ॥ १ ॥
लग्नादारभ्य रिष्फान्तभावानां फलवर्णने ।
तत्तद्भेशबलेनैव यथोचितमुदीरयेत् ॥ २ ॥
सबले भाधिपे तस्य पूर्णमेव फलं स्मृतम् ।
तथा मध्ये बले मध्यमल्पे त्वल्पं फलं दिशेत् ॥ ३ ॥

यः स्याद् दशाप्रदो राशिस्तस्य रन्ध्रद्वितीयके ।
पापखेटयुते विप्र ! तद्दशा दुःखदायिका ॥ ४ ॥
तृतीयषष्ठगे पापे जयादिः परिकीर्त्तितः ।
शुभखेटयुते तत्र जायते हि पराजयः ॥ ५ ॥
लग्नस्थे शुभपापे तु लाभो भवति निश्चितम् ।
यदा दशाप्रदो राशिः शुभखेटयुतो द्विज ॥ ६ ॥
शुभक्षेत्रे हि तद्राशेः शुभमेव दशाफलम् ।
पापयुक्ते शुभक्षेत्रे पूर्वं सत् स्यात्ततोऽप्यसत् ॥ ७ ॥
पापर्क्षे शुभसंयुक्ते पूर्वं सौख्यं ततोऽसुखम् ।
पापक्षेत्रे पापयुक्ते सा दशा सर्वदुःखदा ॥ ८ ॥
शुभक्षेत्रदशाराशौ युक्ते पापशुभैर्द्विज ।
पूर्वं कष्टं सुखं पश्चान्निर्विशङ्कं प्रजायते ॥ ९ ॥
शुभक्षेत्रे शुभं वाच्यं पापर्क्षे त्वशुभं फलम् ।

पराशर ने कहा—प्रागुक्त चरादिदशाओं का शुभाशुभ फल अब मैं बतलाता हूँ, (सुनो)। लग्नादि द्वादश भावों का दशाफल भावेश के बलानुसार समझना। प्रबल यदि भावेश रहें तो पूर्णफल, मध्यबली हों तो मध्यफल और अल्पबली हों तो अल्पफल कहना चाहिए। दशाप्रद राशि के दूसरा और आठवाँ पापग्रह युक्त या दृष्ट हो तो वह दशा दुःखप्रद होती है। तृतीय तथा षष्ठ में पापग्रह हों तो विजय और शुभग्रह रहें तो पराजय कहें। लग्न में शुभ या पाप कोई भी रहे तो निश्चित लाभ होता है। दशाप्रद राशि शुभग्रह युक्त हों, या शुभग्रह क्षेत्र हो तो उस राशि का दशाफल शुभप्रद होगा। शुभग्रहक्षेत्र पापयुक्त हो, या पापग्रहक्षेत्र शुभयुक्त हो दोनों स्थिति में पहले शुभ बाद में अशुभ होता है। पापक्षेत्र यदि पापग्रहयुक्त हो तो उसका दशाफल सदा अशुभ होता है। शुभक्षेत्र में पाप शुभ दोनों रहें तो पहले कष्ट बाद में सुख होता है। शुभक्षेत्र का दशाफल शुभ और पापर्क्ष का अशुभ कहना चाहिए ॥ १–९ ॥

द्वितीये पञ्चमे सौम्ये राजप्रीतिर्जयो ध्रुवम् ॥ १० ॥
पापे तत्र स्थिते खेटे तद्दशायाः फलं त्वसत् ।
चतुर्थे तु शुभं सौख्यमारोग्यं त्वष्टमे शुभे ॥ ११ ॥
धर्मवृद्धिर्गुरुजनात् सौख्यं च नवमे शुभे ।
विपरीते विपर्यासो मिश्रं मिश्रे प्रकीर्त्तितम् ॥ १२ ॥

पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोऽन्यथा ।
सप्तमे पापभोगाभ्यां पापे दारार्त्तिरीरिता ॥ १३ ॥
चतुर्थे स्थानहानिः स्यात् पञ्चमे पुत्रपीडनम् ।
दशमे कीर्त्तिहानिः स्यान्नवमे पितृपीडनम् ॥ १४ ॥
पाकाद्रुद्रगते पापे पीडा सर्वाप्यबाधिता ।
उक्तस्थानगते सौम्ये ततः सौख्यं विनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥
केन्द्रस्थानगते सौम्ये लाभः शत्रुजयप्रदः ।
जन्मकालग्रहस्थित्या गोचरग्रहतोऽपि च ॥ १६ ॥
विचार्य खलु वक्तव्यं तत्तद्राशिदशाफलम् ।

दूसरे तथा पांचवें में शुभग्रह हों तो राजा की प्रसन्नता तथा निश्चय विजय प्राप्त होती है। उसमें पापग्रह हों तो उसका दशाफल अशुभ समझें। चतुर्थ तथा अष्टम में शुभग्रह हों तो सौख्य, तथा नैरुज्य कहना। नवम में शुभग्रह के रहने पर उस दशाकाल में गुरुजन से धर्मवृद्धि तथा सौख्य प्राप्त होता है। अशुभ के रहने से विपरीत, एवं शुभाशुभ दोनों के रहने पर मिश्रफल कहना चाहिए। भोगस्थान पापयुक्त हो तो दशाकाल में शारीरिकपीड़ा, मानसिकव्यथा, सप्तम में पापग्रह हों तो उसकी दशा में स्त्रीपीड़ा, चतुर्थ में पापग्रह हों तो स्थानच्युति, पञ्चम में पाप के रहने से पुत्रकष्ट, दशम में पापग्रह हों तो उस दशा में यशोहानि, सपाप नवम हों तो पितृकष्ट, दशाप्रद राशि से ११ में पापग्रह हों तो निर्बाधरूपतः पीडा, उक्तस्थान में शुभग्रह हों तो उन राशियों की दशा सौख्यकारक होती है। केन्द्र में भी शुभग्रह हों तो लाभ तथा शत्रु पर विजय प्राप्त होती है। जन्मकालिक ग्रहस्थिति एवं वर्त्तमान गोचरस्थिति देखकर ही तारतम्य से फलादेश करना चाहिए ॥ १०–१६½ ॥

यश्च राशिः शुभाक्रान्तो यस्य पश्चाच्छुभग्रहाः ॥ १७ ॥
तद्दशा शुभदा प्रोक्ता विपरीते विपर्ययः ।
त्रिकोणरन्ध्ररिष्फस्थैः शुभपापैः शुभाशुभम् ॥ १८ ॥
तद्दशायां तु वक्तव्यं फलं विज्ञैर्यथोदितम् ।

जो राशि शुभग्रहयुक्त हों, या जिसके पीछे शुभग्रह रहें उसकी दशा शुभफलप्रद, विपरीत में (जो राशि पापयुक्त हो या पापग्रह जिसके पीछे रहें) विपरीत फल (अशुभ) समझना। त्रिकोण, अष्टम तथा द्वादश में शुभग्रह हो तो उसकी दशा शुभद, पापग्रह हो तो वह अशुभकारक होती है। ॥ १७–१८ ॥

मेषकर्कतुलानक्रराशीनां च यथाक्रमम् ॥ १९ ॥
बाधास्थानानि कमशः कुम्भगोसिंहवृश्चिकाः ।

पाकेशान्वितराशौ वा बाधास्थाने शुभेतरे ॥ २० ॥
स्थिते सति महाशोको व्यसनं बन्धनं गदाः ।
उच्चस्वर्क्षगृहे तस्मिन् शुभं सौख्यं धनागमः ॥ २१ ॥
तच्छून्यं चेदसौख्यं स्यात्तद्दशा न फलप्रदा ॥ २२ ॥

मेष, कर्क, तुला, मकर इन चारो चर राशियों के क्रमशः कुम्भ, वृष, सिंह, वृश्चिक (अपने से ११ वें राशि) बाधास्थान हैं। दशाप्रद राशिस्वामी से युक्त राशि या बाधा स्थान में पापग्रह हों तो महाशोक, जेल, कष्ट तथा अनेक रोग होते हैं। उक्त राशि में स्वोच्च या स्वक्षेत्री ग्रह हों तो उस राशि की दशा शुभप्रद, सौख्य-कारक एवं धनदायक होती है। वह यदि ग्रहरहित हों तो असौख्यकारक तथा निष्फला होती है ॥ १९–२२ ॥

बाधकव्ययषड्रन्ध्रे राहुयुक्ते महद्भयम् ।
प्रस्थाने बन्धनप्राप्ती राजपीडा रिपोर्भयम् ॥ २३ ॥
रव्याराहुशनयो भुक्तिराशौ स्थिता यदि ।
तद्राशिभुक्तौ पतनं राजकोपान्महद्भयम् ॥ २४ ॥
भुक्तिराशित्रिकोणे तु नीचखेटः स्थितो यदि ।
तद्राशौ वा युते नीचे पापे मृत्युभयं भवेत् ॥ २५ ॥

जिस राशि से बाधक स्थान, या ६।८।१२ में राहु हों तो उसकी दशान्तर्दशा महाभयकारिणी होती है। उस समय यात्रा में बन्धन, राजा द्वारा पीडा, शत्रुभय होता है। रवि, मंगल, राहु, शनि जिस राशि में स्थित हों उस राशि की अन्तर्दशा अवनतिकारिणी होती है, उस समय राजकोप से महान् भय कहना चाहिए। अन्तर्दशा-राशि से नवम, पञ्चम में नीचस्थग्रह या पापग्रह हो तो मरणभय कहना ॥ २३-२५ ॥

भुक्तिराशौ स्वतुङ्गस्थे त्रिकोणे वा ग्रहे सति ।
यदा भुक्तिदशा प्राप्ता सुखं हि लभते नरः ॥ २६ ॥
नगरग्रामनाथत्वं पुत्रलाभं धनागमम् ।
कल्याणं भूरिभाग्यं च सैनापत्यं महोन्नतिम् ॥ २७ ॥
पाकेश्वरो जीवदृष्टः शुभराशिस्थितो यदि ।
तद्दशायां धनप्राप्तिर्मङ्गलं पुत्रजं भवेत् ॥ २८ ॥

अन्तर्दशाराशि या उससे त्रिकोण में स्वोच्चस्थ ग्रह हो तो उसकी दशा प्राप्त होने पर मनुष्य सुखी होता है। उसे नगर, गाँव का आधिपत्य, पुत्रप्राप्ति, धनागम, सौभाग्य कल्याण, सेनापतित्व, तथा महोन्नति ये सब उसे प्राप्त होते हैं। दशेश शुभराशि में गुरुदृष्ट हों तो उसकी दशा में धनप्राप्ति, तथा पुत्रजसुख होता है ॥ २६–२८ ॥

सितासितभयुग्माश्च सूर्यस्य रिपुराशयः।
कौर्पितौलिघटाश्चेन्दोर्भौमस्य रिपुराशयः ॥ २९ ॥
घटमीननृयुक्कौलिकन्या ज्ञस्य ततः परम्।
कर्कमीनालिकुम्भाश्च राशयो रिपवः स्मृताः ॥ ३० ॥
वृषतौलिनृयुक्कन्याराशयो जीवशत्रवः।
सिंहालिकर्कचापाश्च शुक्रस्य रिपुराशयः ॥ ३१ ॥
मेषसिंहधनुःकौर्पिकर्कटाः शनिशत्रवः।
एवं ग्रहान्तरदशां चिन्तयेत् कोविदो द्विजः ! ॥ ३२ ॥

वृष, तुला, मकर, कुम्भ, मिथुन ये सूर्य की शत्रुराशियाँ हैं। वृश्चिक, तुला, कुम्भ, चन्द्रमा की, कुम्भ, मीन, मिथुन, तुला, कन्या, मंगलकी, कर्क, मीन, वृश्चिक, कुम्भ, बुध की, वृष, तुला, मिथुन, कन्या गुरु की, सिंह, वृश्चिक, कर्क, धनु, शुक्र की, मेष, सिंह, धनु, वृश्चिक, कर्क शनि की शत्रुराशियाँ हैं। शत्रुराशिस्थग्रहदशा अशुभ होती है। अतः दशाफल कहने के पूर्व इसका विचार कर लेना चाहिए ॥२९–२॥

ये राजयोगदा ये च शुभमध्यगता ग्रहाः।
यस्माद् द्वित्रिचतुर्थस्थाः सत्खेटाः सत्फलप्रदाः ॥ ३३ ॥
तद्दशायां शुभं ब्रूयाद् राजयोगादिसम्भवम्।
शुभद्वयान्तरगतः पापोऽपि शुभदो मतः ॥ ३४ ॥

जो ग्रह राजयोगकारक हों, जो शुभग्रहद्वय के मध्यवर्त्ती हों या जिससे दूसरे-तीसरे या चौथे में शुभग्रह हों तो उसकी दशा शुभप्रद होती है। उसकी दशा में राजयोगादि शुभ कहना चाहिए। दो शुभग्रहों के बीच का पाप भी शुभफलद हो जाते हैं ॥ ३३–३४ ॥

गता शुभदशामध्यं दशा सौम्यस्य शोभना।
शुभो यस्य त्रिकोणस्थस्तद्दशापि शुभप्रदा ॥ ३५ ॥
आरम्भान्तौ मित्रशुभराश्योर्यदि फलं शुभम्।
प्रतिराश्यैवमब्दादि-विविच्य फलमीरयेत् ॥ ३६ ॥

शुभ (ग्रह या राशि) की दशा में शुभ (ग्रह या राशि) का अन्तर शुभप्रद होता है। जिसके त्रिकोण (९।५) में शुभग्रह हो उसकी भी दशा शुभप्रद होती है।

जिस दशा के आरम्भ तथा अवसान में अपने मित्र या शुभराशि का सम्बन्ध हो तो उसकी पूरी दशा शुभप्रद होती है। प्रत्येक राशि में वर्षादि का विभाग कर उसका फलादेश करना चाहिए ॥ ३५–३६ ॥

आरम्भात्तत्त्रिकोणे तु सौम्ये तु शुभमावहेत् ।
शुभराशौ शुभारम्भे दशा स्यादतिशोभना ॥ ३७ ॥
शुभादिराशौ पापश्चेद् दशारम्भे शुभा भवेत् ।
शुभारम्भे कथा केति प्रारम्भस्य फलं दिशेत् ॥ ३८ ॥
आरम्भे पापभे वा यन्नाथः स्यादवलो मुने ।
नीचादौ तद्दशाद्यन्ते दिशेद् भाग्यविपर्ययम् ॥ ३९ ॥

दशारम्भ समय में जिसके नवम-पञ्चम में शुभग्रह हो तो उसकी दशा शोभन होती है । शुभराशि में शुभराशि का अन्तर्दशा आनेपर अतिशोभन । शुभराशि में पाप की दशा आरम्भ हो तो आरम्भ में शुभ होती है । शुभराशि के दशारम्भ में आरम्भ समय देखकर ही फलादेश करें । आरम्भ में पापराशि हो या जिसका स्वामी दुर्बल या नीचगत हो तो उसकी दशादि या दशान्त में भाग्यविपर्यय कहें ॥ ३७–३९ ॥

यत्र स्थितो नीचखेटस्त्रिकोणे नीचगोऽथवा ।
तथा राशीश्वरे नीचे सम्बन्धो नीचखेटकैः ॥ ४० ॥
भाग्यस्य विपरीतत्वं करोत्येव द्विजोत्तम ! ।
अर्थसस्यादिनाशः स्याद् रोगभीतिस्तनावपि ॥ ४१ ॥

जिस राशि में नीचस्थ ग्रह हो या उस राशि से नवम, पञ्चम में नीच का ग्रह हो या उसका स्वामी नीच में हो या नीचस्थ ग्रह से किसी तरह का सम्बन्ध हो तो उसकी दशा भाग्यक्षयकारक होती है । उस समय धनधान्यविनाश, शरीर में रोगभय आदि अनेक अशुभ होते हैं ॥ ४०–४१ ॥

राहोः केतोश्च कुम्भादि-वृश्चिकादि चतुष्टयम् ।
स्वर्क्षं तत्र समारम्भस्तद्दशायां शुभं भवेत् ॥ ४२ ॥

कुम्भ और वृश्चिक से चार-चार राशि राहु, केतु का अर्थात् कुम्भ से चार राशि राहु का वृश्चिक से चारराशि केतु का, स्वक्षेत्र है । वे दोनों यदि स्वक्षेत्री हों तो उनकी दशा में शुभ कहना चाहिए ॥ ४२ ॥

यद्दशायां शुभं ब्रूयात् स चेन्मारकसंस्थितः ।
यस्मिन् राशौ दशान्तः स्यात्तस्मिन् दृष्टे युतेऽपि वा ॥ ४३ ॥
शुक्रेण विधुना वा स्याद् राजकोपाद् धनक्षयः ।
दशान्तश्चेदरिक्षेत्रे राहुदृष्टयुतेऽपि वा ॥ ४४ ॥
इदं फलं शनेः पाके न विचिन्त्यं द्विजोत्तम ! ।
दशाप्रदे नक्रराशौ न विचिन्त्यमिदं फलम् ॥ ४५ ॥

जिसकी दशा में शुभ कहना है वह यदि मारक स्थान में हो या जिस राशि में दशान्त हो उस पर शुक्र या चन्द्र की दृष्टि या संयोग हो तो उस दशा में राजकोप से धनक्षय कहना चाहिए। दशा का अन्त शत्रु की राशि में हो अथवा दशान्त वाला राशि राहु से युत या दृष्ट हो तो भी उपर्युक्त फल (राजकोप से धननाश) कहना। यह फल शनि, तथा मकर राशि की दशा में नहीं होता है ॥ ४३–४५ ॥

राहोर्दशान्ते सर्वस्वनाशो मरणबन्धने।
देशान्निर्वासनं वा स्यात् कष्टं वा महदश्नुते ॥ ४६ ॥
तत्त्रिकोणगते पापे निश्चयाद् दुःखमादिशेत्।
एवं शुभाशुभं सर्वं निश्चयेन वदेद् बुधः ॥ ४७ ॥

राहु के दशान्त में सर्वस्वक्षय, मरण, जेल, देश से निर्वासन या अन्यविध महत्कष्ट होता है। यदि राहु से नवम, पञ्चम में पापग्रह हो तो उपर्युक्त फल निश्चयतः होता है। इस तरह समस्त शुभाशुभफल निश्चयपूर्वक कहना ॥ ४६–४७ ॥

राह्वादिश्रितराशिः स्याच्चेन्मैत्रेय ! दशाप्रदः।
तत्र कालेऽपि पूर्वोक्तं चिन्तनीयं प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥
दशारम्भो दशान्तो वा मारके चेन्न शोभनम्।
तस्मिन्नेव च राहुश्चेन्निरोधो द्रव्यनाशनम् ॥ ४९ ॥

राह्वादि (पापग्रह) जिस राशि में हो उसके दशाकाल में भी उक्त फल कहना। मारकग्रह राशि का दशारम्भ या दशान्त शुभप्रद नहीं होता। उसमें राहु के रहने पर बन्धन तथा द्रव्यनाश होता है ॥ ४८–४९ ॥

यत्र क्वापि च भे राहौ दशारम्भे विनाशनम्।
गृहभ्रंशः समुद्दिष्टो धने राहुर्धनार्त्तिदः ॥ ५० ॥
चन्द्रशुक्रौ द्वादशे चेद्राजकोपो भवेद् ध्रुवम्।
भौमकेतू तत्र यदि वधोऽग्नेर्महती व्यथा ॥ ५१ ॥
चन्द्रशुक्रौ धने विप्र ! स्थितौ चेद्राज्यदायकौ।
दशारम्भे दशान्ते च द्वितीयस्थमिदं फलम् ॥ ५२ ॥

जिस किसी भी राशि के दशारम्भ में राहु हो तो उस जातक की क्षति तथा गृहभ्रंश होता है। धनभाव में राहु के रहने पर धनक्षय, द्वादश भाव में चन्द्रमा और शुक्र दोनों हों तो निश्चयतः राजकोप, वहीं यदि मङ्गल तथा केतु हों तो वध या अग्निकृत बड़ी क्षति होती है। चन्द्रमा तथा शुक्र धन भाव में रहें तो राज्यदायक होते हैं। यह फल दशारम्भ तथा दशान्त में समझना ॥ ५०–५२ ॥

इत्थं सार्गलभावोत्थं फलं सद्भिरुदीरितम्।
यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले ॥ ५३ ॥

तेन द्रष्ट्रेक्षितं लग्नं प्राबल्यायोपकल्पते ।
यदि पश्येद् ग्रहस्तत्र विपरीतागलस्थितः ॥ ५४ ॥
दशायां तस्य भावस्य विपरीतं फलं भवेत् ।
शुभदृष्टे शुभं ब्रूयान्निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ॥ ५५ ॥

सार्गल भावों का भी फलादेश ऐसा ही विद्वानों ने किया है। शुभ या पाप ग्रह जिसका शुभार्गलाकारक हो और उससे दृष्ट लग्न या अन्य भाव भी हो तो वह प्रबल होता है। निराबाध अर्गलाकारक ग्रह से दृष्ट कोई भी राशि प्रबल समझनी चाहिए और उसकी दशा शुभद होगी। विपरीतार्गल राशि तथा शुभार्गल ग्रह की दृष्टि से रहित राशि की दशा अशुभप्रद होती है। शुभग्रह-दृष्ट राशि की दशा शुभकारक होती है। अर्गला का विचार अर्गलाध्याय में देखिए ॥ ५३–५५ ॥

भावे यत्र शुभेशोच्चग्रहसम्बन्ध ईक्ष्यते ।
दशायां तस्य भावस्य धनाप्तिरतुला भवेत् ॥ ५६ ॥
यद्भावाधिपतिः स्वार्थभमध्यास्तेऽथवेक्षते ।
तद्भावस्य दशायां स्याद् नित्यमर्थागमो महान् ॥ ५७ ॥
यस्माद् रिष्फस्थितो यः स्यात्तद्दशाऽर्थक्षतिप्रदा ।
पापा यतस्त्रिकोणस्थास्तत्राप्यशुभसञ्चयः ॥ ५८ ॥
पितुः कष्टं सूनुनाशो महानाधिश्च सम्भवेत् ।
त्रिकोणस्था यतस्त्वन्त्यमृतीशेनकुजार्कजाः ॥ ५९ ॥

जिस भाव में शुभ स्वामी या उच्चग्रहसम्बन्ध हो उसकी दशा में अतुल धन-प्राप्ति होती है। भावेश स्वराशि में रहे या उसे देखें तो उस राशि की दशा में नित्य धनागम होता है। भावेश यदि व्यय स्थित हों तो उस राशि की दशा धनक्षय-कारिणी होती है। जिस भाव के नवम-पञ्चम में पापग्रह हो उसकी दशा में अशुभों की ढेर, पुत्रहानि, पिता को कष्ट, मानसिक सन्ताप आदि होते हैं। जिस भाव के त्रिकोण (९।५) में द्वादशेश, अष्टमेश या सूर्य, भौम, शनि हो उसकी दशा भी अशुभ-कारक होती है ॥ ५६–५९ ॥

राहौ केतौ त्रिकोणस्थे सुतार्त्तिर्द्रविणक्षयः ।
परदेशाटनं कष्टं भीतिः सर्वत्र जायते ॥ ६० ॥
यतोऽरिमृतिभे पापा नीचा वास्तंगता ग्रहाः ।
भूपारिरोगतो भीतिरसह्याऽनिशमीरिता ॥ ६१ ॥
यतस्तुर्यगतः पापस्तत्र भूक्षेत्रवेश्मनाम् ।
पशूनाञ्च क्षयस्तत्र कुजे दग्धं गृहं भवेत् ॥ ६२ ॥

हृच्छूलमर्कजे भानौ राजकोपः प्रजायते ।
राहौ सर्वस्वनाशः स्याद् भीश्चौरगरलादिजा ॥ ६३ ॥

जिस राशि के नवम-पञ्चम में राहु-केतु रहे उसकी दशा में पुत्रपीड़ा, धनक्षय, परदेशगमन, कष्ट तथा सर्वत्र भय होते हैं। जिससे षष्ठाष्टम में पापग्रह हों, या नीच के या अस्तङ्गत ग्रह हो उसकी दशा राजा, शत्रु, रोग से असह्यभयकारिणी होती है। जिस राशि से चतुर्थस्थ पापग्रह हो उसकी दशा में भूमि, घर, पशु आदि का विनाश होता है। मङ्गल यदि रहें तो गृहदाह कहना चाहिए। शनि रहें तो हृदयशूल, सूर्य रहें तो राजकोप, राहु रहें तो सर्वस्वनाश तथा चोर और विष का भय कहना चाहिए ॥ ६०—६३ ॥

यतः कर्मगतो राहुस्तद्दशा पुण्यतीर्थदा ।
शुभग्रहाः कर्मलाभतपोभावगता यतः ॥ ६४ ॥
सद्विद्या-धनसत्कृत्यकीर्त्तिधर्मपुमर्थदाः ।
यस्मात् स्त्न्वस्तशत्रुस्थाः स्वोच्चगाः स्युः शुभग्रहाः ॥ ६५ ॥
जायात्मजादिसत्सौख्यं राजसम्मानमुत्तमम् ।
यत्र तन्वम्बुकोणायराज्यनाथास्तु संगताः ॥ ६६ ॥
तत्तद्भावाभिवृद्धिस्तु भवेद्योगबलाश्रयात् ।

जिस राशि से दशमगत राहु हो उसकी दशा पुण्य तीर्थयात्रा आदि सत्कार्य कराने वाली होती है। जिस राशि से १०।११।९। भावों में शुभग्रह हों उसकी दशा सद्विद्या, धन, सत्कार्य, यश, धर्म तथा अन्य पुरुषार्थ देने वाली होती है। जिस राशि से ५।७।६ स्थानों में उच्च के शुभग्रह हों उसकी दशा में स्त्री-पुत्रसौख्य, उत्तम राजसम्मान प्राप्त होते हैं। जिस राशि में लग्नेश, सुखेश, त्रिकोणेश, आयेश तथा दशमेश स्थित हो उसकी दशा में तत्तद्भावों की वृद्धि योगबल के आश्रय से कहनी चाहिए ॥ ६४—६६½ ॥

यत्रेज्यो भार्गवो वापि त्रिकोणाधिपतिः स्थितः ॥ ६७ ॥
भव्यं, नानार्थसम्पत्तिः सुरभूसुरपूजनम् ।
यस्मात्तुर्ये निजोच्चस्था ग्रहाः किंवा त्रिकोणपः ॥ ६८ ॥
ग्रामवाहनसम्प्राप्तिः पशुसम्पत्तिरेव च ।
तस्मिन्निन्दौ भवेल्लाभो भूरिसस्यरसोद्भवः ॥ ६९ ॥
निधेर्लाभः पूर्णचन्द्रे मणिरत्नादिकस्य च ।
आतोद्यवाद्यसंगीतसुखं स्यात्तत्र भार्गवे ॥ ७० ॥

जिस राशि में गुरु, शुक्र या त्रिकोणेश स्थित हो उसकी दशा में अनेक कल्याण

अनेकविध सम्पत्ति तथा देवपूजन करने का अवसर मिलता है। जिसके चौथे में उच्च का ग्रह या त्रिकोणेश हों उसकी दशा में ग्राम, वाहन, पशुसम्पत्ति की प्राप्ति होती है। चन्द्रमा यदि उसमें हो तो प्रचुरधान्य की प्राप्ति होती है। पूर्णचन्द्र के उसमें रहने से खजाना, मणि-रत्नादि का लाभ, मृदङ्ग आदिक वाद्य तथा संगीतसुख भी मिलते हैं॥ ६७–७०॥

सौवर्ण-शिबिकाद्याप्तिर्यच्चतुर्थे गुरुर्भवेत्।
यत्र लग्नतपोराज्याधिपतुङ्गगसद्ग्रहाः॥ ७१॥
तत्र सर्वङ्कृतौ सिद्धी राज्यभावसमृद्धयः।
इत्थं वदेद् विविच्यैव तत्तद्-भावदशाफलम्॥ ७२॥

जिस राशि से चतुर्थ में गुरु हो उसकी दशा में सोना, शिबिका (पालकी) आदि की प्राप्ति होती है। जिस स्थान में लग्नाधिप, भाग्याधिप, राज्येश या अन्य उच्चस्थ सद्ग्रह हों उसकी दशा में सर्वार्थसिद्धि राज्यादि का लाभ होता है॥ ७१–७२॥

एकैकर्क्षग्रहदशा गुणैस्तु धृतिभिर्निजैः।
नानाविधं फलं यच्छेदिति द्विज! सतां मतम्॥ ७३॥
तुङ्गे परमतुङ्गे च तत्पूर्वं वा ततः परम्।
मूलत्रिकोणराशौ वा स्वराशौ स्वाधिमित्रभे॥ ७४॥
तात्कालिकसुहृद्राशावुदासीनारिभे तथा।
अधिशत्रुगृहे नीचे नीचादूर्ध्वप्रदेशभे॥ ७५॥
नीचादधोऽपि नीचस्य परमांशे स्ववर्गके।
नीचवर्गेऽरिवर्गे च सक्रूरे कोणकेन्द्रभे॥ ७६॥
संस्थितस्य तथा युद्धजितस्यास्तंगतस्य च।
द्युपदस्तु दशापाकफलं नैजगुणानुगम्॥ ७७॥

प्रत्येक ग्रह या राशि की दशा अपने (१८) गुणों के वश विभिन्न फल देते हैं। उच्च, परमोच्च, उससे पूर्व तथा पर, मूलत्रिकोण, स्वभवन, अधिमित्रगृह, तात्कालिक-मित्रगृह, उदासीन तथा शत्रुराशि, अधिशत्रुगृह, नीच, नीच से पूर्व तथा पर, पर-मनीचांश, स्ववर्ग, शत्रुवर्ग, केन्द्रगत, त्रिकोणगत युद्ध में विजित तथा अस्तंगत, ग्रहों की दशा स्थानानुसार फलप्रद होती है॥ ७३–७७॥

अतितुङ्गगतो यः स्याद्योवाऽतिबलसंयुतः।
दशा तदीया सम्पूर्णा राज्यभोगसुखप्रदा॥ ७८॥

तत्र लक्ष्मीविलासश्च सर्वैश्वर्यसमुन्नतिः ।
उच्चगस्याऽथ बलिनो दशा पूर्णाभिधा मता ॥ ७९ ॥
परमैश्वर्यदा किन्तु महारोगप्रदाऽपि च ।
अत्यन्तनीचभस्थस्य निर्बलस्य खचारिणः ॥ ८० ॥
दशा रिक्ता त्वशुभदा रोगार्थक्षतिमृत्युदा ।
अत्युच्चनीचमध्यस्थग्रहस्य त्ववरोहिणी ॥ ८१ ॥
सुहृत्तुङ्गभसंस्थस्य मध्यमा धनदा दशा ।
नीचोच्चयोरन्तराले स्थितस्यारोहिणी दशा ॥ ८२ ॥
नीचशत्रुनवांशस्थ-ग्रहस्य त्वधमा दशा ।
नानाभयार्त्तिसंकष्ट-बहुभीतिप्रदायिनी ॥ ८३ ॥
उक्ता दशाः स्वपाके तु नामतुल्यफलप्रदाः ।

अत्युच्चस्थानगत तथा बलिष्ठ ग्रह की दशा सम्पूर्ण कहलाती है वह राज्यसुख, भोगकारक होती है। उसकी दशा में लक्ष्मी का विलास सर्वविध ऐश्वर्य की समृद्धि होती है। बली तथा उच्चस्थ ग्रह की भी दशा पूर्णसंज्ञक है जो ऐश्वर्यदात्री होती हुई भी महारोगकारिणी होती है। अतिनीचस्थ निर्बल ग्रह की दशा रिक्त होती है जो रोग, धननाश, मृत्यु आदि अशुभ फल देनेवाली है। अत्युच्च अतिनीच के मध्यवर्त्ती ग्रह की दशा अवरोहिणी, मित्र तथा उच्चराशि स्थित ग्रह की दशा मध्यमासंज्ञक है जो धनप्रद होती है। नीच, उच्च के मध्यस्थित ग्रह की दशा आरोहिणी, नीच और शत्रुनवांशगत ग्रह की दशा अधम होती है जो अनेक रोगजन्य पीड़ा संकट तथा भयदात्री होती है। उपर्युक्त दशा अपने नामानुसार फल देने वाली हैं ॥७८-८३॥

जीवधर्मेशसम्बन्धो युतिदृक्केन्द्रगेहजः ॥ ८४ ॥
दशायामपरस्यापि भवेत् सौभाग्यवर्द्धकः ।
भाग्यवृद्धिकरो यस्तु नभोगो जन्मनि स्थितः ॥ ८५ ॥
वक्रत्यागात् परं पूर्णफलदश्चैवमक्षमान् ।
खगान् सम्बन्धयोगाभ्यां फलदान् विबुधा जगुः ॥ ८६ ॥
केन्द्रादिगानामेषां तु दशापि फलदा स्मृता ।
पूर्णतो दलतश्चैवं पादतश्च क्रमाद् बुधैः ॥ ८७ ॥

भाग्येश तथा गुरु का योग, दृष्टि, केन्द्र या गेह-सम्बन्धों में से कोई भी सम्बन्ध हो तो दूसरे ग्रह की दशा में भी सौभाग्यवर्धक होते हैं। जन्मसमय जो ग्रह भाग्यवृद्धिकर हों वे मार्गी होने पर ही पूर्ण फलप्रद होते हैं। इस तरह फलदान में असमर्थ ग्रह भी सम्बन्ध तथा योग से फलद होते हैं ऐसा विद्वानों ने कहा है। केन्द्र.

पणफर आपोक्लिम राशि के संयोग से क्रमशः पूर्ण, मध्य, अल्प के रूप में दशाफल समझना चाहिए ॥ ८४–८७ ॥

ग्रहाः शीर्षोदयर्क्षस्थाः स्वदायादौ फलप्रदाः ।
दशामध्ये तु फलदा उभयोदयराशिगाः ॥ ८८ ॥
दशावसाने सफलाः पृष्ठोदयभगाश्च ते ।
भुक्तौ निसर्गतत्कालसुहृदां सत्फलं दिशेत् ॥ ८९ ॥
तदन्यथा संस्थितानामसत्फलमुदीरितम् ।

शीर्षोदयराशिस्थ ग्रहदशारम्भ में, उभयोदयराशिगत दशामध्य में, पृष्ठोदयराशिगत वे दशावसान में फलप्रद होते हैं । नैसर्गिक या तात्कालिक मित्रों की अन्तर्दशा में सभी शुभ फल देते हैं । इसके विपरीत (नैसर्गिक या तात्कालिक शत्रु की अन्तर्दशा में) अशुभ फल देते हैं ॥ ८८–८९½ ॥

दशाधिपयुताद् राशेर्यावद् द्वादशराशिकम् ॥ ९० ॥
राशीनां क्रमतो वेद्या दशाभुक्तिस्तु कोविदैः ।
तत्र या स्वसुहृत्स्वर्क्षगता तस्यां शुभं फलम् ॥ ९१ ॥
त्रिकस्था पापनीचारि-राशिस्थग्रहसंयुता ।
तत्रार्थहानिः कलहो मृतिरुग्भीतयः स्मृताः ॥ ९२ ॥
स्वाष्टवर्गे वृद्धिहानी तद्राशिभवनस्य तु ।
क्रमेण बिन्दुबाहुल्यशून्यत्ववशतः स्मृते ॥ ९३ ॥
तत्तद्भावस्थिताद् राशेस्तन्वादीनां प्रकल्पनात् ।
जातकस्य सुतादानां शुभाशुभफलं दिशेत् ॥ ९४ ॥
राशिखेचरयोर्ये च धात्वादय उदीरिताः ।
तच्चयापचयौ ज्ञेयौ शुभपापदशावशात् ॥ ९५ ॥
शुभाशुभद्विषद्योगात् सदसद्ग्रहयोगतः ।
एवं समस्तखेटानां स्वस्वभुक्तिफलं दिशेत् ॥ ९६ ॥

दशाधीश जिस राशि में हों वहीं से बारहो राशियों की अन्तर्दशा होती है । जो राशि स्वस्वामियुक्त या स्वमित्र के साथ हो उसकी अन्तर्दशा में शुभफल कहना । त्रिकस्थ राशियों की अन्तर्दशा या जो राशि पाप, नीचस्थ या शत्रुगृहस्थ ग्रह से युक्त हो उसकी अन्तर्दशा हानिकारक होती है । उसमें धनक्षय, कलह, मरण, रोगभय होते हैं । जिस राशि में अष्टवर्ग-सम्बन्धी शुभ चिह्न अधिक हो उसमें शुभ, जिसमें अशुभ चिह्न की अधिकता हो उसमें अशुभ फल होता है । अष्टवर्ग में राशि के बिन्दुबाहुल्य से वृद्धि, बिन्दु के अभाव में उस भाव की हानि समझनी चाहिए ।

तत्तद् भावगत राशि से तन्वादि द्वादश भावों की कल्पना कर जातक के पुत्रादियों के भी शुभाशुभ का आदेश करें। जैसे सप्तमभाव को लग्न मानकर उससे अग्रिम अष्टम से स्त्री के धन का विचार, नवम से स्त्री के सहज का विचार, सप्तम से सप्तम लग्न से पति का विचार करना चाहिए। ग्रह तथा राशियों के जो धात्वादि पूर्व में कथित हैं, शुभ की अन्तर्दशा में उन उन धातुओं की वृद्धि, पाप की अन्तर्दशा में उनकी हानि होती है। शुभ और पाप ग्रह के योग तथा शुभ, पाप गृहों (स्थानों) के भेद से सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का शुभाशुभ फल कहना ॥ ९०–९६ ॥

एवं स्वराशौ राशीनां प्रकल्प्यान्तर्दशादिकम् ।
फलं वाच्यं विशेषेण जातकस्य तु कोविदैः ॥ ९७ ॥

इस तरह राशि में सभी राशियों की अन्तर्दशा-प्रत्यन्तर्दशा आदि की कल्पना कर फलादेश करना चाहिए ॥ ९७ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे चारादिराशिदशाफलाध्यायः समाप्तः ॥

अथ अन्तर्दशासाधनाध्यायः ॥ ५२ ॥

विंशोत्तरी प्रभृति दशाओं में अन्तर्दशानयन—

दशा दशाब्दगुणिता विहृता परमायुषा ।
लब्धमब्दादिकं विज्ञैर्वेद्यमन्तर्दशोद्भवम् ॥ १ ॥

किसी ग्रह की महादशा में तत्तद्ग्रहों की अन्तर्दशा का ज्ञान अपेक्षित हो तो दोनों के महादशावर्ष का गुणनफल लावें। उसमें परमायु वर्ष से भाग दें, लब्ध-वर्षादि अपेक्षित अन्तर्दशा हो जायगी। प्रत्यन्तर बनाने के लिए अन्तर्दशा मान को ग्रहों की दशावर्षों से पृथक् पृथक् गुणाकर सब की दशा के योग से भाग दें तो अलग-अलग प्रत्यन्तर्दशा होगी ॥ १ ॥

उदाहरण—सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा लानी है तो उपर्युक्त नियमानुसार सूर्य महादशा वर्ष ६ को चन्द्रमहादशा वर्ष १० से गुणा किया। पुनः परमायुवर्ष १२० से भाग दिया $\frac{१० \times ६}{१२०} = \frac{६०}{१२०} = \frac{१}{२}$ वर्ष = ० वर्ष, ६ मास। यही सूर्य की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हुई। इसी तरह सूर्य की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा जाननी हो तो पुनः उसी नियम से $\frac{६ \times १६}{१२०} = \frac{१ \times ४}{५} = \frac{४}{५} =$ व. ० मा. ९ दि. १८ = यही गुरु की अन्तर्दशा हुई। इसी तरह अन्य ग्रहों का भी अन्तर्दशावर्षमान जानना चाहिए।

आद्या दशापतेरन्तर्दशाऽन्येषां ततः क्रमात् ।
प्रत्यन्तरदशामध्येऽप्येवमेव क्रमो मतः ॥ २ ॥

किसी की महादशा में प्रथमतः उसी की अन्तर्दशा होती है। 'पुनः 'आ. चं. कु. रा. जी. श. बु. के. शु. के क्रमानुसार सभी ग्रहों की अन्तर्दशा होती है। इसी प्रकार

प्रत्यन्तर में भी क्रम है किसी की अन्तर्दशा में सर्वप्रथम उसी का प्रत्यन्तर, पुनः उपर्युक्त क्रम से सभी ग्रहों का समझना चाहिए ॥ २ ॥

चरादि दशाओं में ग्रहों की अन्तर्दशा—

दशा विभक्ता नवभिर्भुक्तिः स्याद् द्युपदां समा ।
प्राग् दशेशान्तरदशा ततः केन्द्रादिगामिनाम् ॥ ३ ॥
प्रत्यन्तरदशाद्यं च वेद्यमेवं क्रमाद् बुधैः ।
बलाबलविवेकेन फलं वाच्यं विपश्चिता ॥ ४ ॥

ग्रहों की चरादिदशा में दशामान में नौ से भाग देने पर जो लब्धि आवे वही सभी ग्रहों का बराबर अन्तर्दशामान होता है । प्रथमतः दशापति की अन्तर्दशा पुनः केन्द्रस्थित ग्रहों की, फिर पणफरस्थित, बाद में आपोक्लिमस्थ ग्रहों की अन्तर्दशा समझनी चाहिए ॥ ३–४ ॥

राशियों का अन्तर्दशानयन—

राशिदायमितेर्भागाः समा द्वादशभुक्तयः ।
भानामन्तर्दशाभ्यस्तु ज्ञेयं प्रत्यन्तरादिकम् ॥ ५ ॥

राशि के दशावर्ष मान को १२ से भाग लेने पर लब्धि तुल्य (दशावर्ष संख्या-तुल्य मास) प्रत्येक राशि की अन्तर्दशा होती है । इसी प्रकार राशियों की अन्तर्दशा पर से प्रत्यन्तर आदि का ज्ञान करना चाहिए ॥ ५ ॥

राशियों की अन्तर्दशा में गणनाक्रम—

दशाश्रयर्क्षतत्सप्त-मयोस्तु बलिनः क्रमाद् ।
विषमे गणयेदेवमुत्क्रमात्तु समे बुधः ॥ ६ ॥

दशाश्रय राशि तथा उससे सप्तम में जो बली हो उसीसे आरम्भ कर दशाश्रय राशि विषम हो तो क्रम से, सम हो तो विपरीत क्रम से अन्तर्दशा के लिए राशियों की गणना करें । जैसे दशाश्रय राशि मेष तत्सप्तम तुला में यदि मेष ही बली है, तो उसी से आरम्भ कर—मेष के विषम होने के कारण क्रम से द्वादश राशियों की अन्तर्दशा होगी ॥

चरादि अन्तर्दशा में विशेष—

अथ वक्ष्म्यपरं किञ्चिद् विशेषं शृणु तद द्विज ।
चरे प्राग्वद् विधिः षष्ठषष्ठाद्यास्तु स्थिरे स्मृतः ॥ ७ ॥
लग्नपञ्चमधर्माणां केन्द्रतो द्विस्वभावभे ।
चरस्थिरद्विस्वभेषु विषमेषु क्रमान्मुने ! ॥ ८ ॥
वेदयं समेषु तेष्वेव व्युत्क्रमादिति सम्मतम् ।
एवं दशाश्रयो राशिः पाकराशिर्निगद्यते ॥ ९ ॥
तमेवाये नु पर्याये भोगराशिं बुधा जगुः ।

पर्याये प्रथमाद्यत्र पाको यावन्मितो भवेत् ॥ १० ॥
ततस्तावन्मितं भोगं तत्र विज्ञः प्रकल्पयेत् ।
चरस्थिरत्रिकोणाह्वदशासु द्विजसत्तम ! ॥ ११ ॥
एवं बुधैः कल्पनीयौ पाकभोगौ विशेषतः ।
पापान्वितौ पाकभोगावाधिव्याधिप्रदायकौ ॥ १२ ॥

हे मुने ! अब मैं चरादि राशियों की अन्तर्दशाक्रम में विशेषता बतलाता हूँ। दशाश्रय चर राशि में रहे तो प्रागुवत् क्रमोत्क्रम से द्वादश राशियों की अन्तर्दशा होती है। स्थिर रहे तो उससे आरम्भ कर षष्ठ-षष्ठ राशिक्रम से अन्तर्दशा जाननी चाहिए। द्विस्वभाव यदि दशाश्रय राशि रहे तो पहले उस राशि की, पुनः उससे केन्द्र राशियों की, फिर उससे पञ्चम के केन्द्र राशियों की अन्ततः उससे नवम के केन्द्र राशियों की अन्तर्दशा होती है। चर, स्थिर, द्विस्वभाव, तीनों में विषम दशाश्रय रहे तो क्रमतः, सम रहे तो उत्क्रमतः राशियों का ग्रहण किया जाता है। दशाश्रय राशि को पाक राशि कहते हैं। आदिम पर्याय में उसे भोग राशि भी कहते हैं। दशाप्रद राशि सम हो तो उससे दशाश्रय राशि जितने आगे हो उतने ही आगे की राशि भोगसंज्ञक होती है। पाक एवं भोग की कल्पना चर, स्थिर तथा त्रिकोण दशाओं में की जाती है। पाक, भोग, राशि सपाप हो तो आधि-व्याधि दोनों होती हैं। शुभग्रह युक्त होने पर शुभफल का होना स्वाभाविक है ॥ ७–१२ ॥

उदाहरण—जैसे पूर्व कल्पित कुण्डली में मेष लग्न है और उसी की चरदशा में अन्तर्दशा लगानी हो तो, मेष चर एवं विषम राशि है, अतः उपरिलिखित नियमानुसार मेष से आरम्भ कर क्रमशः सभी द्वादश राशियों की अन्तर्दशा होगी। मेष का दशावर्ष मान २ वर्ष है अतः अन्तर्दशा मान दो महीने होंगे।

मेषराशि की चरदशा में अन्तर्दशाचक्र—

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	दशेश
०	०	०	०	०	०	व.
२	२	२	२	२	२	मा.
२०२९	२०२९	२०२९	२०२९	२०२९	२०३०	संवत्
२	४	६	८	१०	०	सूर्य राश्यादि
२२	२२	२२	२२	२२	२२	
तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	दशेश
०	०	०	०	०	०	व.
२	२	२	२	२	२	मा.
२०३०	२०३०	२०३०	२०३०	२०३०	२०३१	संवत्
२	४	६	८	१०	०	सूर्य राश्यादि
२२	२२	२२	२२	२२	२२	

यहां प्रथम दशाश्रय राशि मेष ही पाकराशि तथा भोगराशि नियमानुसार हुई। मेष में सूर्य पापग्रह हैं अतः अन्तर्दशा काल में शारीरिक पीड़ा तथा मनोव्यथा होगी।

द्वितीय पर्याय में प्रथम वृष की, पुनः षष्ठ-षष्ठ क्रम से तुला, मीन, सिंह, मकर, मिथुन, वृश्चिक, मेष, कन्या, कुम्भ, कर्क, धनु इन राशियों की अन्तर्दशा होगी। दशाश्रय वृष ही पाक, प्रथम दशाश्रय मेष से वृष द्वितीय है अतः वृष से द्वितीय मिथुन भोगराशि सिद्ध हुई। इन दोनों स्थानों की ग्रहस्थितिवश (चरदशाक्रम में जन्माङ्गचक्र देखिए) अशुभ ही फल होगा। दोनों में क्रमशः शनि, मङ्गल, विद्यमान हैं। तृतीय पर्याय में पहले मिथुन की, फिर उत्क्रम से उसकी केन्द्रराशि (मीन, धनु, कन्या) पुनः उत्क्रम-गणना से मिथुन मे पञ्चम कुम्भ से केन्द्र राशि (कुम्भ, वृश्चिक, सिं० वृ,) की, पुनः मिथुन से उत्क्रम गणनया नवम तुला के केन्द्र राशि (तुला. कर्क. मे. मकर) की अन्तर्दशा होगी—

पिण्डादि दशा में अन्तर्दशासाधन—

निसर्गपिण्डांशदशामध्ये भुक्तिविधिं ब्रुवे।
पूर्णं दशेशस्तद्युक्तस्तदलं यच्छति ग्रहः॥ १३॥
त्रिभागं कोणगस्तुर्यभागं वाहनरन्ध्रगः।
मदगस्तु सप्तमांशमनेकेषु बलान्वितः॥ १४॥
ग्रहाश्चैवं लग्नयुताः पाचकास्तत्र संस्थिताः।
अंशाः सवर्णिताश्छेदवर्जितास्तु तदंशतः॥ १५॥
दशाब्दा गुणिता भागयुतिभिर्विहृतास्तदा।
जायते त्वन्तरदशा ततः प्रत्यन्तरादिकम्॥ १६॥

अब निसर्ग, पिण्ड, अंश, दशाओं में अन्तर्दशा साधन बतलाता हूँ। दशेश पूर्ण भाग (१) उसका सहवासी ग्रह आधा ($\frac{१}{२}$) उससे त्रिकोणस्थ त्रिभाग ($\frac{१}{३}$) उससे वाहन तथा रन्ध्र (४।८). में स्थित ग्रह चतुर्थांश ($\frac{१}{४}$) और सप्तम स्थित ग्रह सप्तमांश ($\frac{१}{७}$) दशा का पाचक होते हैं। इस प्रकार लग्नसहित आठोग्रह उपर्युक्त स्थानों में पाचक होते हैं। उन स्थानों में अनेक ग्रह रहें तो बली पाचक होता है। ग्रह की दशा में प्राप्त पाचकों के अंशों का सवर्णन कर छेद को हटा दें। पुनः प्राप्त अंशों से पृथक्-पृथक् दशावर्षों को गुणें और अंशयोग से भाग लें तो लब्ध वर्षादि अन्तर्दशामान होता है। अन्तर्दशामान से प्रत्यन्तर्दशा का भी साधन करें॥१३–१६॥

	लग्न	शु.	श.
अन्तर्दशा पाचक भाग =	$\frac{१}{१}$	$\frac{१}{२}$	$\frac{१}{३}$
सवर्णन से—	$\frac{६}{६}$	$\frac{३}{६}$	$\frac{२}{६}$

अपना-अपना अंश गुणक और सबों का योग = ६ + ३ + २ = ११। छेदत्याग से अंश = ६।३।२। भाजक = ११

	लग्न	शुक्र	श.
गुणक—	६	३	२

लग्न की दशावर्षादि (६।६।१९।५८।४८) को अपने गुणक ६ से गुणा कर ११ से भाग देने पर ६ (६।६।१९।५८।४) = ३६।३६।११४।३४८।२८८ = ३६।३८।२९।५२।४८। इसमें ११ से भाग देने पर लब्धवर्षादि ३।६।२४।३२।० लग्न की अन्तर्दशा हुई। इसी तरह अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा लानी होती है। पिण्डांश निसर्ग दशा साधन तथा लग्नादि आठोग्रहों की दशावर्ष जानने के लिए बृहज्जानक की विमला टीका देखिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रेऽन्तर्दशासाधनाध्यायः समाप्तः ॥

अथ रविदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ५३ ॥

विंशोत्तरीरीत्या : सूर्य की महादशा में—

—सूर्यान्तर्दशा-फल—

पराशर उवाच—

स्वर्क्षे स्वोच्चे गतः सूर्यः केन्द्रलाभत्रिकोणयोः ।
स्वदाये चात्मभुक्तौ च धनधान्यादिलाभकृत् ॥ १ ॥
नीचादावशुभे भे तु विपरीतफलप्रदः ।
द्वितीयद्यूनपे तस्मिन्नपमृत्युभयं दिशेत् ॥ २ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
सूर्यप्रीतिकरीं शान्तिं कुर्यादारोग्यसिद्धये ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !) सूर्य अपने उच्चराशि, केन्द्र, लाभस्थान अथवा त्रिकोण में हों अपनी दशा तथा अपनी अन्तर्दशा में धनधान्यादि लाभकारी होते हैं। नीचादि अशुभ राशिस्थित होनेपर विपरीत फल (अशुभ) देते हैं। सूर्य द्वितीयेश, सप्तमेश (मारकेश) हों तो अपमृत्यु का भय कहना चाहिए। आरोग्य के लिए मृत्युञ्जयजप तथा सूर्याराधन करना चाहिए ॥ १–३ ॥

—चन्द्रान्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते चन्द्रे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
विवाहः शुभकार्यं च समृद्धिर्धनधान्ययोः ॥ ४ ॥
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च पशुवाहनसम्पदः ।
तुङ्गे वा स्वक्षगे वापि दारसौख्यं धनागमः ॥ ५ ॥
पुत्रलाभसुखं चैव सौख्यं राजसमागमः ।
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ॥ ६ ॥

क्षीणे वा पापसंयुक्ते दारपुत्रादिपीडनम् ।
वैषम्यं जनसंवादं भृत्यवर्गविनाशनम् ॥ ७ ॥
विरोधं राजकलहं धनधान्यपशुक्षयम् ।
षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे जलभीतिं मनोरुजम् ॥ ८ ॥
बन्धनं रोगपीडां च स्थानविच्युतिकारकम् ।
दुःस्थानं चापि चित्तेन दायादजनविग्रहम् ॥ ९ ॥
वदेदपि कुत्सितान्नं चौरादिनृपपीडनम् ।
मूत्रकृच्छ्रादिरोगं च देहपीडां च निर्दिशेत् ॥१०॥

चन्द्रमा यदि लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हों तो सूर्य की दशा में चन्द्रमा का अन्तर विवाहादि शुभकार्यकारक, धन-धान्य की समृद्धि, घर, भूमि, पशु, वाहन तथा अन्यान्य सम्पदाओं की वृद्धिकारक होता है। यदि चन्द्र उच्च या स्वभवन में हों तो स्त्रीसुख, धनप्राप्ति, पुत्रसुख, राजसम्मान, तथा राजप्रसाद से सुखद अभीष्ट सिद्धि होती है। चन्द्रमा क्षीण पापयुक्त हों तो स्त्री-पुत्र को पीड़ा अनुचित विसंवाद, नौकरों का विनाश, जनविरोध, राजा से कलह, धन-धान्य पशुओं का विनाश, ये सब होते हैं। त्रिकस्थ चन्द्रमा रहें तो जलभय, मनोव्यथा, बन्धन, रोगपीड़ा, स्थानभ्रंश, दायादों से कलह, कदन्न-भोजन, चौरादि, राजगण के द्वारा पीडन, मूत्रकृच्छ्रादिक रोग-प्रकोप तथा देह-व्यथा का निर्देश करें ॥ ४–१० ॥

दायेशाल्लाभभाग्ये च केन्द्रे वा शुभसंयुते ।
भोगभाग्यादिसन्तोष-दारपुत्रादिवर्धनम् ॥ ११ ॥
राज्यप्राप्तिं महत्सौख्यं स्थानप्राप्तिं च शाश्वतीम् ।
विवाहं यज्ञदीक्षां च सुन्दराम्बरभूषणम् ॥ १२ ॥
वाहनं पुत्रपौत्रादि लभते सुखवर्धनम् ।

दशेश से ९।११ तथा १।४।७।१० स्थान शुभग्रह युक्त हो तो चन्द्रमा की अन्तर्दशा में ऐश्वर्य, भाग्यादि वृद्धि, स्त्री-पुत्रादिसुख, राज्यप्राप्ति, महासुख, सुस्थान-लाभ, विवाह, उपनयन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, वाहन, पुत्र-पौत्रादि सुख की अभिवृद्धि, ये सब होते हैं ॥ ११–१२½ ॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा तलवर्जिते ॥ १३ ॥
अकाले भोजनं चैव देशाद्देशं गमिष्यति ।
द्वितीयद्यूननाथे चाप्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ १४ ॥
श्वेतां गां महिषीं दद्याच्छान्तिं कुर्यात् सुखाप्तिदाम् ।

दशापति से ६।८।१२ में चन्द्रमा हो या बलरहित हों तो उसकी अन्तर्दशा में

अकाल का भोजन (कदन्न) देशान्तरगमन होता है। द्वितीयेश, सप्तमेश त्रिकस्थ हों तो इनकी अन्तर्दशा अपमृत्युकारक होती है। शान्ति के लिए काली गाय-भैंस का दान करें ॥ १३–१४½ ॥

—भौमान्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते भौमे स्वोच्चे स्वक्षेत्रलाभगे ॥ १५ ॥
लग्नात् केन्द्रत्रिकोणे वा शुभकार्यं वदेद् बुधः ।
भूलाभं कृषिलाभं च धनधान्यादिवर्धनम् ॥ १६ ॥
गृहक्षेत्रादिलाभं च रक्तवस्त्रादिकागमम् ।
लग्नाधिपेन संयुक्ते सौख्यं राजप्रियं तथा ॥ १७ ॥
भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते लाभश्चैव भविष्यति ।
बहुसेनाधिपत्यं च शत्रुनाशो मनो दृढम् ॥ १८ ॥
आत्मबन्धुसुखं चैव भ्रातृवर्धनकं तथा ।

मंगल यदि अपने उच्च, स्वभवन, लाभ स्थान, केन्द्र या त्रिकोण में हों तो सूर्य की दशा में मंगल की अन्तर्दशा आनेपर शुभकार्य, भूकृषिलाभ, धनधान्यादिवृद्धि, घर, क्षेत्रादि का लाभ, रक्तवस्त्रप्राप्ति, ये सब सत्फल होते हैं। वही भौम लग्नेश के साथ हों तो सौख्य, राजप्रियता, भाग्येश या लाभेश के साथ रहने पर लाभ, सेनाधिपत्य, शत्रुनाश, मनःस्थिरता, आत्मसुख, बन्धुसुख तथा भ्रातृवृद्धि, ये सब होते हैं ॥ १५–१८ ॥

दायेशाद्रिष्फरन्ध्रस्थे पापैर्युक्ते च वीक्षिते ॥ १९ ॥
आधिपत्यबलैर्हीने क्रूरबुद्धिं मनोरुजम् ।
कारागृहे प्रवेशं च निर्दिशेद् बन्धुनाशनम् ॥ २० ॥
भ्रातृवर्गविरोधं च कर्मनाशमथापि वा ।
नीचे वा विबले भौमे राजमूलाद्धनक्षयः ॥ २१ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहे जाड्यं मनोरुजा ।
सुब्रह्मजपदानं च वृषभोत्सर्जनं तथा ।
शान्तिं कुर्वीत विधिवदायुरारोग्यसिद्धिदाम् ॥ २२ ॥

दशापति से ६।८ में स्थित भौम पापयुक्त या पापदृष्ट हो, अनधिकार तथा निर्बल हो तो उसकी अन्तर्दशा-काल में दुर्बुद्धि, मनोव्यथा, जेल तथा बन्धुनाश कहना चाहिये। वही मंगल नीचस्थ या निर्बल हो तो भाइयों के साथ विरोध, कार्यनाश, राजमूलक धनक्षय, ये सभी होते हैं। २।७ के अधिप यदि नीच स्थान में या दुर्बल हों तो शारीरिक पीडा, मनोव्यथा आदि दुष्फल होते हैं। शान्ति के लिए वेदपाठ, जप, दान, वृषोत्सर्ग करें ॥ १९–२२ ॥

—राहु का अन्तर्दशाफल—

सूर्यस्यान्तर्गते राहौ लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
आदौ द्विमासपर्यन्तं धननाशो महद् भयम् ॥ २३ ॥
चौराहिव्रणभीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् ।
तत्परं सुखमाप्नोति शुभयुक्ते शुभांशके ॥ २४ ॥
देहारोग्यं मनस्तुष्टी राजप्रीतिकरं सुखम् ।
लग्नादुपचये राहौ योगकारकसंयुते ॥ २५ ॥
दायेशाच्छुभराशिस्थे सम्मानं राजतो वदेत् ।
भाग्यवृद्धिं यशोलाभं दारपुत्रादिसौख्यदम् ॥ २६ ॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषं गृहे कल्याणशोभनम् ।

राहु यदि लग्न से केन्द्र या त्रिकोणगत हो तो, सूर्य की दशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर आदिम दो मास धननाशकर तथा भयप्रद होते हैं। उस समय चोर, सर्प, व्रण का भय, स्त्री तथा पुत्र को कष्ट होता है। दो महीने के बाद सुख-प्राप्ति होती है। यदि राहु शुभग्रहयुक्त या शुभनवांश में हों तो नैरुज्य, मानसिक संतुष्टि, राजप्रीतिकर सुख होते हैं। लग्न से उपचयस्थान (३।६।११।१०) में वे योगकारकग्रह से युक्त हों या दशापति से शुभराशि में हों तो राज्य से सम्मान, भाग्यवृद्धि, यशोलाभ, स्त्री, पुत्र को सुख तथा घर में पुत्रोत्सवजनित कल्याण होता है ॥ २३–२६ ॥

दायेशात् संस्थिते रिष्फे रन्ध्रे वा बलवर्जिते ॥ २७ ॥
बन्धनं स्थाननाशश्च कारागृहनिवेशनम् ।
चौराहिव्रणभीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् ॥ २८ ॥
चतुष्पाज्जीवनाशश्च गृहक्षेत्रादिनाशनम् ।
गुल्मक्षयादिरोगः स्यादतीसारादिपीडनम् ॥ २९ ॥
द्वि-सप्तस्थे तथा राहौ तत्स्थानाधिपसंयुते ।
अपमृत्युभयं चैव सर्पभीतिश्च सम्भवेत् ॥ ३० ॥
दुर्गाजपं च कुर्वीत छागदानं समाचरेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्याच्छान्तिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ३१ ॥

दशापति से ८।१२ स्थानों में से कहीं निर्बल राहु रहें तो बन्धन; स्थानभ्रंश, कारावास (जेल गमन), चोर, सर्प, व्रण का भय, स्त्री-पुत्र को कष्ट, पशु, घर, भूमि का भी विनाश, गुल्म, क्षयरोग तथा अतिसार का भी प्रकोप होता है। द्वितीय

तथा सप्तम में इनके अधीशों के साथ राहु रहें तो अपमृत्यु तथा सर्प का भय कहना। शान्त्यर्थ दुर्गापाठ, छागदान, काली गाय तथा भैंस का दान करें ॥ २७–३१ ॥

—गुरु के अन्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते जीवे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणभे ।
स्वोच्चे मित्रस्य वर्गस्थे विवाहो राजदर्शनम् ॥ ३२ ॥
धनधान्यादिलाभश्च पुत्रलाभो महत्सुखम् ।
महाराजप्रसादेनाभीष्टकार्यार्थसाधनम् ॥ ३३ ॥
ब्राह्मणप्रियसम्मानं प्रियवस्त्रादिजं सुखम् ।
भाग्यकर्माधिपवशाद् राज्यलाभश्च सम्भवेत् ॥ ३४ ॥
नरवाहनयोगश्च स्थानाधिक्यं महत् सुखम् ।
दायेशाच्छुभराशिस्थे भाग्यवृद्धिः सुखावहा ॥ ३५ ॥
दानधर्मक्रियायुक्तो देवताराधनप्रियः ।
गुरुभक्तिर्मनःसिद्धिः पुण्यकर्मादिसंग्रहः ॥ ३६ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च या मित्रवर्गस्थ गुरु हों तो सूर्य की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर विवाहोत्सवजन्य सुख, राजदर्शन, धनधान्यादिलाभ, पुत्रप्राप्ति, महाराजप्रसाद से अभीष्टकार्यों की संसिद्धि, ब्राह्मणप्रियसम्मान, तथा प्रियवस्त्रादि का लाभ, ये सभी होते हैं। वही गुरु भाग्येश या राज्येश हों तो राज्यलाभ, नरवाहन (पालकी, खड़खड़िया आदि) की प्राप्ति, स्थानलाभ, सुखाधिक्य होते हैं। दशेश से शुभस्थान में गुरु रहें तो भाग्यवृद्धि, दानधर्म-क्रिया में आसक्ति, देवाराधन, गुरुभक्ति, मानसिक तुष्टि तथा पुण्य कार्य की संसिद्धि होती है ॥ ३२–३६ ॥

दायेशाद् रिपुरन्ध्रस्थे नीचे वा पापसंयुते ।
दारपुत्रादिपीडा स्याद् देहपीडा महद् भयम् ॥ ३७ ॥
राजकोपं प्रकुरुतेऽभीष्टवस्तुविनाशनम् ।
पापमूलाद् द्रव्यनाशं देहकष्टं मनोरुजम् ॥ ३८ ॥
स्वर्णदानं प्रकुर्वीताभीष्टजाप्यं च कारयेत् ।
गवां कपिलवर्णानां दानेनारोग्यमादिशेत् ॥ ३९ ॥

दशेश से ६।८ या नीचस्थान में पापयुक्त गुरु हों तो (सूर्य की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर) स्त्री-पुत्र को कष्ट, स्वयं भी शारीरिक पीड़ा, महाभीति, राजकोप, अभीष्ट वस्तु तथा पापमूलक द्रव्य का विनाश, मनोव्यथा ये सभी होते हैं। शान्त्यर्थ स्वर्णदान, इष्टमन्त्रजप, कपिला गायों का दान करना चाहिए ॥ ३७–३९ ॥

—शन्यन्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते मन्दे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
शत्रुनाशो महत् सौख्यं स्वल्पधान्यार्थसम्भवम् ॥ ४० ॥
विवाहादिकसत्कार्यं तद् गेहे स्याच्छुभावहम् ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे सुहृद्ग्रहसमन्विते ॥ ४१ ॥
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्विवाहादिषु सत्क्रिया ।
राजसम्मानकीर्त्तिश्च नानावस्त्रधनागमः ॥ ४२ ॥

लग्न से केन्द्र या त्रिकोणस्थ शनि हो तो सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आने पर शत्रुक्षय, स्वल्पधान्यजसुख, घर में शुभप्रद विवाहादि शुभ कार्य होते हैं। वही शनि अपने उच्च, स्वभवन या मित्रगृह में हों तो घर में कल्याण, सम्पत्ति, राजसम्मान, अनेकविध वस्त्र तथा अर्थ का शुभागम होता है ॥ ४०–४२ ॥

दायेशादपि रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
वातशूलमहाव्याधिज्वरातीसारपीडनम् ॥ ४३ ॥
बन्धनं कार्यहानिश्च वित्तनाशो महद् भयम् ।
अकस्मात् कलहश्चैव दायादजनविग्रहः ॥ ४४ ॥

दशापति से ८।१२ में या पापयुक्त शनि हो तो उनकी अन्तर्दशा में वात, शूल, महाव्याधि (कुष्ठ आदि) ज्वरातिसार आदि रोगों से पीड़ा, बन्धन, कार्यहानि, धननाश, महाभय, एकाएक कलह तथा दामादों के साथ विरोध होता है ॥४३–४४॥

भुक्त्यादौ मित्रहानिः स्यान्मध्ये किञ्चित् सुखं स्मृतम् ।
अन्ते क्लेशोदयश्चैव नीचे तेषां तथैव च ॥ ४५ ॥
पितृमातृवियोगश्च गमनागमनं तथा ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥ ४६ ॥
कृष्णां गां महिषीं दद्यान्मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
छागदानं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ ४७ ॥

सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आने पर आरम्भ में मित्रहानि, अन्तर्दशा के मध्य में स्वल्पसुख, अन्त में क्लेश, नीचस्थ रहने पर भी ये फल तथा मातृ-पितृवियोग, भ्रमण आदि होते हैं। शनि यदि द्वितीयेश या सप्तमेश रहें तो उसकी अन्तर्दशा में अपमृत्यु का भय होता है। शान्त्यर्थ काली गाय, भैंस, छाग का दान तथा मृत्युञ्जय का जप करना चाहिए ॥ ४५–४७ ॥

—बुधान्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते सौम्ये स्वोच्चे वा स्वर्क्षगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणलाभस्थे बुधे वर्गबलैर्युते ॥ ४८ ॥

राज्यलाभो महोत्साहो दारपुत्रादिजं सुखम् ।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥ ४९ ॥
पूण्यतीर्थफलावाप्तिर्गृहं गोकुलसंकुलम् ।
भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते लाभवृद्धिश्च सम्भवेत् ॥ ५० ॥
भाग्यपञ्चमवर्गस्थे सम्मानं भवति ध्रुवम् ।
सुकर्मधर्मवृद्धिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ॥ ५१ ॥
धनधान्यादिसंयोगो विवाहः पुत्रसम्भवः ।

सूर्य की महादशा में स्वोच्चस्थ या स्वगृहस्थ वा १।४।७।१०।९।५।११ इन स्थानों में स्थित, वलयुक्त बुध की अन्तर्दशा आवे तो राज्यलाभ, महान् उत्साह, स्त्रीपुत्रादिसौख्य, राजा की कृपा से वाहन-वस्त्र-भूषणों की प्राप्ति, पुण्यतीर्थफल की प्राप्ति, पशुओं से परिपूर्ण घर, ये सभी सत्फल होते हैं। वही बुध भाग्येश या लाभेश के साथ हों तो लाभवृद्धि, नवम, पञ्चम या दशम में स्थित हों तो समादर, सत्कार्य, धर्म की वृद्धि, गुरु-देव-द्विजार्चन, धनधान्यादिवृद्धि, विवाह तथा पुत्रजन्म, ये सभी होते हैं ॥ ४८–५१½ ॥

दायेशाच्छुभराशिस्थे सौम्ययुक्ते महत् सुखम् ॥ ५२ ॥
वैवाहिकं यज्ञकर्मदानधर्मजपादिकम् ।
स्वनामाङ्कितपद्यानि नामद्वयमथापि वा ॥ ५३ ॥
भोजनाम्बरभूषाप्तिरमरेशो भवेन्नरः ।

दशापति से त्रिकोणादि शुभस्थान में शुभग्रहयुक्त बुध हों तो वैवाहिक महासौख्य, यज्ञ, दान, धर्म, जप आदि का साम्राज्य, प्रशस्तिपत्रप्राप्ति, विमल यश से दूसरा भी नाम, सुभोजन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति इन शुभफलों से देवेन्द्र तुल्य मनुष्य हो जाता है ॥ ५२–५३ ॥

दायेशाद् रिपुरन्ध्रस्थे रिष्फगे नीचगेऽपि वा ॥ ५४ ॥
देहपीडामनस्तापो दारपुत्रादिपीडनम् ।
भुक्त्यादौ दुःखमाप्नोति मध्ये किञ्चित् सुखं भवेत् ॥ ५५ ॥
अन्ते तु राजभीतिश्च गमनागमनं तथा ।
द्वितीयद्यूतनाथे तु देहजाड्यं ज्वरादिकम् ॥ ५६ ॥
विष्णुनामसहस्रं च ह्यन्नदानं च कारयेत् ।
राजतप्रतिमादानं कुर्यादारोग्यवृद्धये ॥ ५७ ॥

दशेश से (६।८।१२) स्थानों में या नीच में बुध हों तो शारीरिक पीड़ा

मनस्ताप, स्त्रीपुत्र को भी कष्ट, अन्तर्दशा की आदि में क्लेश, मध्य में कुछ सुख और अन्त में राजभय, भ्रमण और वे ही २।७ में हों तो देहपीड़ा, ज्वरादि असत्फल होते हैं। शान्त्यर्थ विष्णुसहस्रनामजप, अन्नदान, चान्दी की प्रतिमा का दान करें जिससे आरोग्य प्राप्त होता है ॥ ५४–५७ ॥

—केत्वन्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते केतौ देहे पीडां मनोव्यथाम् ।
अर्थव्ययं राजकोपं स्वजनादेरुपद्रवम् ॥ ५८ ॥
लग्नाधिपेन संयुक्त आदौ सौख्यं धनागमम् ।
मध्ये तत्क्लेशमाप्नोति मृत्युवार्त्तागमं वदेत् ॥ ५९ ॥

सूर्य की दशा में केतु की अन्तर्दशा आने पर देहपीड़ा, मनोव्यथा, धनव्यय, राजकोप, स्वजनों से उपद्रव और लग्नेश के साथ केतु के रहने पर अन्तर्दशारम्भ में सौख्य, मध्य में क्लेश और अन्त में मृत्यु-समाचार का आगमन कहना चाहिए ॥ ५८–५९ ॥

अष्टमेऽपि व्यये चैवं दायेशात् पापसंयुते ।
कपोलदन्तरोगश्च मूत्रकृच्छ्रस्य सम्भवः ॥ ६० ॥
स्थानविच्युतिरर्थादिमित्रहानिः पितुर्मृतिः ।
विदेशगमनं चैव शत्रुपीडा महद् भयम् ॥ ६१ ॥

दशेश से अष्टम या द्वादश स्थान में पापयुक्त केतु हों तो गाल, दाँत में रोग, मूत्रकृच्छ्र, स्थानभ्रंश, अर्थहानि, मित्रहानि, पितृमरण, विदेशयात्रा, शत्रुपीड़ा तथा महान भय, ये सभी होते हैं ॥ ६०–६१ ॥

लग्नादुपचये केतौ योगकारकसंयुते ।
शुभांशे शुभवर्गे च शुभकर्मफलोद्गमः ॥ ६२ ॥
पुत्रदारादिसौख्यं च सन्तोषः प्रियवर्धनम् ।
विचित्रवस्त्रलाभः स्याद् यशोवृद्धिः सुखावहा ॥ ६३ ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युभयं वदेत् ।
दुर्गाजपं च कुर्वीत छागदानं शुभावहम् ॥ ६४ ॥

लग्न से उपचय स्थान में योगकारक ग्रह से युक्त, शुभनवांश या शुभवर्ग में केतु हों तो शुभकर्म-फलोदय (सौभाग्यवृद्धि), स्त्री-पुत्रसुख, सन्तोष, प्रियों की वृद्धि, विलक्षण वस्त्रों का लाभ, यशोवृद्धि और द्वितीय, सप्तम के नाथ होने पर अपमृत्युभय कहना चाहिये। शान्ति के लिए दुर्गामन्त्र-जप तथा कल्याणकर छागदान करना चाहिए ॥ ६२–६४ ॥

—शुक्रान्तर्दशा-फल—

सूर्यस्यान्तर्गते शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा ।
स्वोच्चे मित्रस्ववर्गस्थेऽभीष्टस्त्रीभोग्यसम्पदः ॥ ६५ ॥
ग्रामान्तरप्रयाणं च ब्राह्मणप्रभुदर्शनम् ।
राज्यलाभो महोत्साहश्छत्रचामरवैभवम् ॥ ६६ ॥
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
विद्रुमादिरत्नलाभो मुक्तावस्त्रादिकागमः ॥ ६७ ॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् बहुधान्यधनादिकम् ।
उत्साहः कीर्त्तिसम्पत्तिर्नरवाहनसम्पदः ॥ ६८ ॥

स्वोच्च, केन्द्र, त्रिकोण, मित्र या स्ववर्ग में स्थित शुक्र हों तो सूर्य की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर अभीष्टस्त्री तथा भोग्यवस्तु का लाभ, ग्रामान्तर में गमन, ब्राह्मण तथा राजा का दर्शन, राज्यलाभ, महान् उत्साह, छत्र, चामर आदि राजचिह्न की प्राप्ति, घर में कल्याणसमृद्धि, नित्य मिष्टान्न का भोजन, विद्रुम आदिक रत्न तथा मोती, वस्त्र आदि का लाभ, पशुओं से लाभ, धनधान्याभिवृद्धि, उत्साह, यशोवृद्धि तथा शिबिका पर यात्रा ये सभी सत्फल होते हैं ॥ ६५–६८ ॥

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे दायेशाद् बलवर्जिते ।
राजकोपो मनःक्लेशः पुत्रस्त्रीधननाशनम् ॥ ६९ ॥
भुक्त्यादौ तु समो मध्ये लाभः शुभकरो भवेत् ।
अन्ते यशोनाशनं च स्थानभ्रंशमथापि वा ॥ ७० ॥
बन्धुद्वेषं तु निगदेत् स्वकुलाद् भोगनाशनम् ।
भार्गवे द्यूननाथे तु देहे जाड्यं मनोरुजा ॥ ७१ ॥
रन्ध्र-रिष्फसमायुक्ते त्वपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्याद् रुद्रजाप्यं च कारयेत् ॥ ७२ ॥

दशेश से ६।८।१२ में निर्बल शुक्र हों तो राजकोप, मानसिक क्लेश, पुत्र, स्त्री, धन का विनाश, अन्तर्दशा के आरम्भ में मध्यम, मध्य में शुभकर लाभ, अन्त में यशोनाश, स्थानभ्रंश, बन्धुद्वेष, भोगक्षय, शुक्र सप्तमेश हों तो शरीर में पीड़ा, मनोव्यथा, सप्तमेश शुक्र अष्टम या व्यय स्थानस्थ हों तो अपमृत्यु, ये सभी असत्फल होते हैं ॥ ६९–७२ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे विंशोत्तरीरीत्या रविदशान्त-
र्दशाध्यायः समाप्तः ॥ ५३ ॥

अथ चन्द्रदशान्तर्दशाफलाध्यायः ॥ ५४ ॥

चन्द्रमा की महादशा में—

—चन्द्रान्तर्दशा-फल—

पराशर उवाच—

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चन्द्रे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।
भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते गजाश्वाम्बरसंकुलम् ॥ १ ॥
देवतागुरुभक्तिश्च पुण्यश्लोकादिकीर्त्तनम् ।
राज्यलाभो महत् सौख्यं यशोवृद्धिः सुखावहा ॥ २ ॥
पूर्णं फलं पूर्णचन्द्रे सेनेशत्वं महत् सुखम् ।

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) स्वोच्च, स्वभवन, त्रिकोण, लाभस्थान में गत चन्द्र, भाग्येश या कर्मेश से युक्त हों तो अपनी दशा तथा अपनी ही अन्तर्दशा-काल में हाथी, घोड़ा, वस्त्रादि की प्राप्ति, देव-गुरुभक्ति, पुण्यप्रद स्तोत्रों का पाठ, राज्यलाभ, महासौख्य, सुखद यशोवृद्धि, ये सभी सत्फल होते हैं । पूर्ण चन्द्र हो तो सम्पूर्ण फल, तथा सेनाधिपतित्व एवं महासुख की प्राप्ति होती है ॥ १–२½ ॥

पापयुक्तेऽथवा चन्द्रे नीचे वा रिष्फषष्ठगे ॥ ३ ॥
तत्काले धननाशः स्यात् स्थानच्युतिरथापि वा ।
देहालस्यं मनस्तापो विरोधो राजमन्त्रिणा ॥ ४ ॥
मातृक्लेशो मनोदुःखं निगडं बन्धुनाशनम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु रन्ध्ररिष्फाधिपान्विते ॥ ५ ॥
देहजाड्यं महाभङ्गमपभृत्योर्भयं दिशेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यात् ततो नैरुज्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥

सपाप चन्द्र नीच या ६।८। में स्थित हो तो अपनी दशा में अपनी ही अन्तर्दशा आने पर धननाश, स्थानभ्रंश, देह में आलस्य, मनोदुःख, राजमन्त्री से विरोध, मातृकष्ट, मनस्ताप, जेल, बन्धुनाश, वही चन्द्र मारकेश होकर अष्टमेश या द्वादशेश से युक्त हो तो शरीर में जड़ता, तथा पीड़ा, और अपमृत्यु का भय कहें । नैरुज्यप्राप्ति के लिए श्वेत गाय, भैंस, का दान करें ॥ ३–६ ॥

—कुजान्तर्दशा-फल—

चन्द्रस्यान्तर्गते भौमे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
सौभाग्यं राजसम्मानं वस्त्राभरणभूषणम् ॥ ७ ॥

यत्नात् कार्यार्थसिद्धिस्तु भविष्यति न संशयः ।
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च व्यवहारे जयो भवेत् ॥ ८ ॥

लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में स्वोच्च या स्वक्षेत्र में स्थित मंगल हों तो चन्द्रमा की दशा में मंगल की अन्तर्दशा आने पर सौभाग्यवृद्धि, राजसम्मान, वस्त्र, आभूषण, की प्राप्ति, यत्न से कार्यसिद्धि, घर, खेत आदि की वृद्धि, व्यापार में विजय ये सभी सत्फल होते हैं ॥ ७–८ ॥

कार्यलाभो महत् सौख्यं स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे फलम् ।
अष्टमव्ययगे भौमे पापयुक्तेऽथवा यदि ॥ ९ ॥
दायेशादशुभस्थाने देहार्त्तिः शत्रुवीक्षिते ।
गृहक्षेत्रादिहानिश्च व्यवहारे तथैव च ॥ १० ॥
भृत्यवर्गेषु कलहो भूपालस्य विरोधनम् ।
आत्मबन्धुवियोगश्च नित्यं निष्ठुरभाषणम् ॥ ११ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु रन्ध्रे रन्ध्राधिपो यदा ।
तद्दोषपरिहारार्थं ब्राह्मणस्यार्चनं चरेत् ॥ १२ ॥

अष्टम या द्वादश में पापयुक्त भौम हो, या दशापति से अशुभस्थान त्रिकादि में शत्रुदृष्ट हो तो चन्द्रमा की दशा में भौम की अन्तर्दशा आने पर देहपीड़ा, घर, खेत आदि तथा व्यापार में हानि, भृत्यवर्ग में कलह, राजविरोध, आत्मबन्धु से वियोग, नित्य कटुभाषण, वही भौम २।७ के अधिप हों या अष्टमेश अष्टम में हो तो भी अशुभ फल होते हैं । दोषशान्त्यर्थं ब्राह्मणपूजन करना चाहिए ॥ ९–१२ ॥

—राहु के अन्तर्दशाफल—

चन्द्रस्यान्तर्गते राहौ लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
आदौ स्वल्पफलं ज्ञेयं शत्रुपीडा महद् भयम् ॥ १३ ॥
चौराहिराजभीतिश्च चतुष्पाज्जीवपीडनम् ।
बन्धुनाशो मित्रहानिर्मानहानिर्मनोव्यथा ॥ १४ ॥

केन्द्र या त्रिकोण में स्थित राहु हों तो चन्द्रमा की दशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर आरम्भ में अल्प शुभ, बाद में शत्रुपीडा, महाभय, चोर, सर्प, राजा से भय, पशुनाश, बन्धुनाश, मित्रहानि, माननाश तथा मानसिक व्यथा कहनी चाहिए ॥ १३-१४ ॥

शुभदृष्टे शुभैर्युक्ते लग्नादुपचयेऽपि वा ।
योगकारकसम्बन्धे सिद्धिः कार्यार्थसम्भवा ॥ १५ ॥
नैर्ऋत्ये पश्चिमे भागे क्वचित् प्रभुसमागमः ।
वाहनाम्बरलाभश्चाभीष्टकार्यार्थसाधनम् ॥ १६ ॥

वही राहु लग्न से उपचय स्थान में शुभग्रहों से युत दृष्ट हों और योगकारक ग्रह से सम्बद्ध हों तो अन्तर्दशाकाल में सर्वकार्यार्थं की सिद्धि, नैर्ऋत्य या पश्चिम दिशा में कहीं राजा से सम्मेलन और वाहन, वस्त्र की प्राप्ति तथा अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥ १५–१६ ॥

दायेशादपि रन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ।
स्थानभ्रंशो मनोदुःखं पुत्रक्लेशो महद् भयम् ॥ १७ ॥
कुत्रचिद्दारपीडा स्यात् क्वचिद्रोगान्महद् भयम् ।
वृश्चिकादिविषाद् भीतिश्चौराऽहिनृपपीडनम् ॥ १८ ॥

बलहीन राहु दशेश से अष्टम या द्वादश में स्थित हों तो चन्द्रमा की दशा में राह्वन्तर आने पर स्थानभ्रंश, मानसिककष्ट, पुत्र-क्लेश, महाभय, कहीं स्त्रीकष्ट, कहीं रोग से बड़ा भय, बिच्छू आदि जीवों के विष से भय, चोर, सर्प तथा राजा से पीड़ा होती है ॥ १७–१८ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्देवतादर्शनं महत् ॥ १९ ॥
परोपकारधर्मादि-पुण्यकृत्यादि-संग्रहः ।
द्वितीयद्यूनराशिस्थे देहबाधा भविष्यति ॥ २० ॥
छागदानं प्रकुर्वीत देहारोग्यं प्रजायते ॥ २१ ॥

दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, तृतीय या एकादश स्थान में स्थित राहु हो तो चन्द्र-दशा में राह्वन्तर आने पर पुण्यतीर्थफल की प्राप्ति, देवदर्शन, परोपकार, धर्मकार्य में प्रवृत्ति, यदि वही राहु २।७। स्थानों में हो तो शारीरिक पीड़ा होती है । शान्त्यर्थं छागदान करना चाहिए ॥ १९–२१ ॥

—गुर्वन्तर्दशाफल—

चन्द्रस्यान्तर्गते जीवे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वर्क्षस्वतुङ्गलाभस्थे राज्यलाभो महोत्सवः ॥ २२ ॥
वस्त्रालङ्कारभूषाप्ती, राजप्रीतिर्धनागमः ।
इष्टदेवप्रसादेन गर्भाधानादिकं फलम् ॥ २३ ॥
अपि शोभनकार्याणि गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ।
राजाश्रयाद्धनं भूमिगजवाजिसमन्वितम् ॥ २४ ॥
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ।

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वभवन, स्वोच्च या लाभस्थान में स्थित गुरु हों तो चन्द्रमा की दशा में गुर्वन्तर आने पर राज्यलाभ, महोत्सव, वस्त्र, अलंकार, की

प्राप्ति, राजा की प्रसन्नता, धनागम, इष्टदेव-प्रसाद से गर्भाधान, शुभकार्य, घर में लक्ष्मी का विलास, राजाश्रय से भूमि, हाथी, घोड़ा से युक्त धन की प्राप्ति तथा राजकृपा से सुखप्रद अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है ॥ २२–२४ ॥

षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वास्तंगते यदि ॥ २५ ॥
पापयुक्तेऽशुभं कर्म गुरुपुत्रादिनाशनम् ।
स्थानभ्रंशो मनो दुःखमकस्मात् कलहो ध्रुवम् ॥ २६ ॥
गृहक्षेत्रादिनाशश्च वाहनाम्बरनाशनम् ।
दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥ २७ ॥
भोजनाम्बरपश्वादिलाभं कुर्यान्महोत्सवम् ।
भ्रात्रादिसुखसम्पत्ति धैर्यवीर्यपराक्रमम् ॥ २८ ॥
यज्ञव्रतविवाहादि–राज्यश्रीधनसम्पदः ।

त्रिकस्थान, नीचराशि में या अस्तंगत गुरु हों तो चन्द्रमा की दशा में गुर्वन्तर आने पर अशुभकार्य, गुरु, पुत्र आदि का विनाश, स्थानभ्रंश, मनोव्यथा तथा एकाएक झगड़ा, गृह, क्षेत्र आदि का तथा वस्त्र, वाहन का विनाश होता है। दशेश से केन्द्र या त्रिकोण या तृतीय, एकादश में गुरु हों तो अपनी अन्तर्दशा काल में भोजन, वस्त्र, पशु आदि का लाभ, भ्रातृसुख, सम्पत्ति, धैर्य, पराक्रम, यज्ञ-व्रत, विवाहादि कार्य, राजश्री तथा अनेक विध सम्पत्तियों का लाभ होता है ॥ २५–२८ ॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥ २९ ॥
तत्फलं कुत्सितान्नं च विदेशगमनं तथा ।
भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तमन्ते क्लेशश्च जायते ॥ ३० ॥
द्वितीयद्यूननाथे च ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं तथा ॥
स्वर्णदानमिति प्रोक्तं सर्वक्लेशापहारकम् ॥ ३१ ॥

दशापति से निर्बल गुरु त्रिक (६।८।१२) में हों तो चन्द्र-दशा में गुरु की अन्तर्दशा आनेपर कदन्न का भोजन, विदेशगमन, अन्तर्दशा के आरम्भ में शुभ किन्तु अन्त में क्लेश, वही गुरु २।७ के अधिप हों तो अपमृत्युभय, ये सभी फल होते हैं। दोषपरिहार के लिए शिवसहस्रनामजप, तथा स्वर्ण-दान करना चाहिए ॥ २९–३१ ॥

—शन्यन्तर्दशा-फल—

चन्द्रस्यान्तर्गते मन्दे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वक्षेत्रे स्वांशगे चैव मन्दे लग्नांशसंयुते ॥ ३२ ॥

शुभदृष्टियुते वापि लाभे वा बलसंयुते ।
पुत्रमित्रार्थसम्पत्तिः शूद्रप्रभुसमाश्रयात् ॥ ३३ ॥
व्यवसायात् फलाधिक्यं गृहं क्षेत्रादिवृद्धिमत् ।
पुत्रलाभश्च कल्याणं राजानुग्रहवैभवम् ॥ ३४ ॥

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वभवन, स्वनवांश, स्वोच्च में स्थित शनि शुभग्रह-दृष्ट हों या बलयुक्त वे लाभस्थान में हों तो पुत्र, मित्र, धनसम्पत्ति की प्राप्ति, शूद्र राजा के आश्रय से व्यवसाय में साफल्य, क्षेत्र (खेत) की वृद्धि, पुत्रलाभ, कल्याण तथा राजानुग्रह से सर्व विध वैभव होता है ॥ ३२–३४ ॥

षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वा धनगेऽपि वा ।
तद्भुक्त्यादौ पुण्यतीर्थे स्नानं चैव तु दर्शनम् ॥ ३५ ॥
अनेकजनसंत्रासः शत्रुपीडा भविष्यति ।

शनि यदि ६।८।१२ में, नीच या द्वितीय स्थान में हों तो चन्द्रदशा में शन्यन्तर्दशा आनेपर अन्तर्दशारम्भ में पुण्यतीर्थ में स्नान तथा दर्शन, अनेक जनों से भय तथा शत्रु-पीड़ा होती है ॥ ३५–३५ ॥

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे बलगेऽपि वा ॥ ३६ ॥
क्वचित् सौख्यं धनाप्तिश्च दारपुत्रविरोधनम् ।
द्वितीयद्यूनरन्ध्रस्थे देहबाधा भविष्यति ॥ ३७ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्याद्दानेनारोग्यमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥

दशेश से केन्द्र या त्रिकोण में बली शनि हों तो अपनी अन्तर्दशा में कभी सौख्य, धनप्राप्ति, स्त्री-पुत्र से विरोध, वही यदि २।७।८। स्थानों में रहें तो शरीर पीड़ा, ये फल होते हैं। दोषपरिहार के लिए काली गाय तथा भैंस का दान तथा मृत्युञ्जय जप करें ॥ ३६–३८ ॥

—बुधान्तर्दशा-फल—

चन्द्रस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वर्क्षे निजांशके सौम्ये तुङ्गे वा बलसंयुते ॥ ३९ ॥
धनागमो राजमानं प्रियवस्त्रादिजं सुखम् ।
विद्याविनोदसद्गोष्ठी ज्ञानवृद्धिः सुखावहा ॥ ४० ॥
पुत्रप्राप्तिश्च सन्तोषो वाणिज्यं धनलाभकृत् ।
वाहनं छत्रसंयुक्तं नानालङ्कारभूषितम् ॥ ४१ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वभवन, स्वनवांश या स्वोच्च में स्थित बली बुध यदि हों तो चन्द्रदशा में बुध की अन्तर्दशा आनेपर धनागम, राजसम्मान, प्रिय, वस्त्रादि-सुख, शास्त्रविचार, ज्ञानवृद्धि, पुत्रप्राप्ति, सन्तोष, लाभकारी व्यापार, छत्रयुक्त तथा अनेक अलंकारों से भूषित वाहन ये सभी फल होते हैं ॥ ३९–४१ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ।
विवाहो यज्ञदीक्षा च दानधर्मशुभादिकम् ॥ ४२ ॥
राजप्रीतिकरश्चैव विद्वज्जनसमागमः ।
मुक्तामणिप्रवालानि वाहनाम्बरभूषणम् ॥ ४३ ॥
आरोग्यप्रीतिसौख्यं च सोमपानादिजं सुखम् ।

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान या द्वितीय स्थान में बुध हों तो चन्द्रदशा में बुध की अन्तर्दशा होने पर विवाह, यज्ञ, दान-धर्म आदिक शुभकार्य तथा राजा को प्रसन्न कराने वाली विद्वानों की सङ्गति, मोती, मणि, प्रवाल आदि रत्न तथा वाहन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, नैरुज्य, प्रेम, सुख तथा सोमपान का सुख ये फल होते हैं ॥ ४२–४३ ॥

दायेशाद् रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा नीचगेऽपि वा ॥ ४४ ॥
तद्भुक्तौ देहबाधा च कृषिगोभूमिनाशनम् ।
कारागृहप्रवेशश्च दारपुत्रादिपीडनम् ॥ ४५ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु ज्वरपीडा महद्भयम् ।
छागदानं प्रकुर्वीत विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥ ४६ ॥

दशापति से ६।८।१२ में वा नीच में बुध हों तो चन्द्रदशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर शारीरिक पीड़ा, कृषि, गो, भूमि का विनाश, जेल, स्त्री-पुत्र को कष्ट, एवं २।७ के अधिप होने पर ज्वरपीड़ा महाभय, ये फल होते है । शान्तिके लिए छागदान तथा विष्णुसहस्रनामजप करना चाहिए ॥ ४४–४६ ॥

—केत्वन्तर्दशा-फल—

चन्द्रस्यान्तर्गते केतौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
दुश्चिक्ये बलसंयुक्ते धनलाभो महत् सुखम् ॥ ४७ ॥
पुत्रदारादिसौख्यं च विधिकर्म तथैव च ।
भुक्त्यादौ धनहानिः स्यान्मध्ये तु सुखमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान या तृतीय स्थान में सबल केतु रहें तो चन्द्रदशा में केतु की अन्तर्दशा आने पर धन-लाल, महासौख्य, पुत्र-स्त्री के सुख, धर्मकार्य, आरम्भ में धनहानि, मध्य में उत्तम सुख, ये फल होते हैं ॥ ४७–४८ ॥

दायेशात् केन्द्रलाभे वा त्रिकोणे बलसंयुते ।
क्वचित् फलं दशादौ तु दिशेत् सौख्यं धनागमम् ॥ ४९ ॥
गोमहिष्यादिलाभं च भुक्त्यन्ते चार्थनाशनम् ।

दशेश से केन्द्र, त्रिकोण या लाभ-स्थान में बलसंयुक्त केतु हों तो चन्द्रदशा में केतु की अन्तर्दशा आरम्भ होने पर धनागम, गो, महिषी, आदि पशुओं का लाभ, होता है, अन्तर्दशान्त में धननाश कहना चाहिए ॥ ४९-४९ ॥

पापयुक्तेऽथवा दृष्टे दायेशाद् रन्ध्ररिष्फगे ॥ ५० ॥
हीनैः शत्रुत्वकार्याणि ह्यकस्मात् कलहो ध्रुवम् ।
द्वितीयद्यूनराशिस्थे त्वनारोग्यं महद् भयम् ॥ ५१ ॥
मृत्युञ्जयमुपासीत सर्वसम्पत्प्रदायकम् ।
ततः क्लेशनिवृत्तिः स्यात् शिवानुग्रहतो द्विज ॥ ५२ ॥

दशाधिपति से अष्टम या द्वादश में स्थित केतु पपयुक्त यां पापदृष्ट हों तो चन्द्रदशा में केत्वन्तर आने पर, नीचों से शत्रुता तथा अकस्मात् कलह होता है। वही केतु २।७ स्थानों में हों तो अनारोग्य, महाभय कहना चाहिए। ऐसी स्थिति में सर्वसम्पत्प्रदायक मृत्युञ्जय की उपासना करें, जिससे क्लेश की निवृत्ति होती है ॥ ५०-५२ ॥

—शुक्रान्तर्दशाफल—

चन्द्रस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि राज्यलाभं करोति च ॥ ५३ ॥
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्दारपुत्रादिवर्धनम् ॥ ५४ ॥
नूतनागारनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
सुगन्धपुष्पमालादिरम्यस्त्र्यारोग्यसम्पदः ॥ ५५ ॥
दशाधिपेन संयुक्ते देहसौख्यं महत् सुखम् ।
सत्कीर्त्तिसुखसम्पत्ति-गृहक्षेत्रादिवर्धनम् ॥ ५६ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वोच्च, स्वभवन में शुक्र यदि जन्म-समय में हों तो चन्द्रदशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर राज्यलाभ, महाराज की कृपा से वाहन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, पशुलाभ, स्त्री-पुत्र की अभिवृद्धि, नूतनभवननिर्माण, नित्य मिष्टान्न-भोजन, सुगन्ध-पुष्प की माला, रम्य स्त्री, आरोग्य तथा अनेकविध सम्पदायें प्राप्त होती हैं। शुक्र दशेश (चन्द्र) से युक्त हों तो देहसुख, महत्सौख्य, सुयश, सुत-सम्पत्ति, गृह, क्षेत्र (खेत) आदि की वृद्धि होती है ॥ ५३-५६ ॥

नीचे वाऽस्तंगते शुक्रे पापग्रहयुतेक्षिते ।
भूनाशः पुत्रमित्रादिपत्नीनाशोऽपि सम्भवेत् ॥ ५७ ॥
चतुष्पाज्जीवहानिः स्याद्राजद्वारे विरोधनम् ।

शुक्र यदि नीचस्थ, या अस्तङ्गत होकर पापग्रह से युत या दृष्ट हों तो अन्तर्दशा-काल में भूमि, पुत्र, मित्रादि एवं स्त्री का विनाश, पशुहानि तथा राजद्वार में विरोध कहना चाहिए ॥ ५७–५७ ॥

धनस्थानगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते ॥ ५८ ॥
निधिलाभो महत् सौख्यं भूलाभः पुत्रसम्भवः ।
भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते भाग्यवृद्धिर्भवेदपि ॥ ५९ ॥
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ।
देवब्राह्मणभक्तिश्च मुक्ताविद्रुमलब्धयः ॥ ६० ॥

शुक्र यदि धनस्थान, स्वोच्च या स्वक्षेत्र में स्थित हों तो अन्तर्दशा-काल में निधि (खजाना) लाभ, महासौख्य, भूमिलाभ, पुत्रोत्पत्ति ये सभी होते हैं। वे (शुक्र) भाग्येश या लाभेश से युक्त हों तो भाग्यवृद्धि, महाराज की कृपा से अभीष्ट-सिद्धि, देवब्राह्मण की भक्ति तथा मोती, विद्रुम आदि रत्नों की प्राप्ति होती है ॥

दायेशाद् लाभगे शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा ।
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च वित्तलाभो महत् सुखम् ॥ ६१ ॥
दायेशाद् रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
विदेशवासदुःखार्त्तिमृत्युचौरादिपीडनम् ॥ ६२ ॥

दशापति से लाभस्थान, त्रिकोण या केन्द्र में गत शुक्र हों तो अपनी अन्तर्दशा में गृह-क्षेत्र की वृद्धि, धनलाभ, तथा महासुख की प्राप्ति होती है। वही शुक्र दशेश से ६।८।१२ में पापग्रह-संयुक्त हों तो विशेश निवास, दुःख से पीड़ा, मृत्यु-चौर आदि से पीड़ा होती है ॥ ६१–६२ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ।
तद्दोषविनिवृत्त्यर्थं रुद्रजाप्यं च कारयेत् ॥ ६३ ॥

शुक्र यदि २।७ के अधिप हों तो अन्तर्दशा-काल में अपमृत्यु का भय होता है। दोष-निवारण के लिए रुद्रीयजप, श्वेत गाय, तथा चान्दी का दान करना चाहिए ॥ ६३ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

चन्द्रस्यान्तर्गते भानौ स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते ।
केन्द्रे त्रिकोणे लाभे वा धने बलिनि सोदरे ॥ ६४ ॥

नष्टराज्यधनप्राप्तिर्गृहे कल्याणशोभनम् ।
मित्रराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिकागमः ॥ ६५ ॥
गर्भाधानफलप्राप्तिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ।
भुक्त्यन्ते देह आलस्यं ज्वरपीडा भविष्यति ॥ ६६ ॥

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, धन तथा सोदर (तृतीय) स्थान स्थित बली सूर्य यदि हों तो चन्द्रमा की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा आने पर विनष्ट राज्य तथा धन की प्राप्ति, घर में कल्याणोदय, मित्र तथा राजा के प्रसाद से गाँव भूमि आदि का लाभ, पुत्र-प्राप्ति, घर में लक्ष्मी का विलास, अन्तर्दशान्त में शरीर में आलस्य तथा ज्वर-पीड़ा, ये फल होते हैं ॥ ६४—६६ ॥

दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
नृपचौराहिभीतिश्च ज्वररोगादिसम्भवः ॥ ६७ ॥
विदेशगमने चार्त्तिर्भवत्येव न संशयः ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ज्वरपीडा भविष्यति ॥ ६८ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवपूजां च कारयेत् ।

दशापति से पापयुक्त सूर्य अष्टम या द्वादशस्थान में हों तो राजा, चोर, सर्प की भीति, ज्वरादि रोग, विदेश-गमन में पीड़ा और वही सूर्य २।७ के अधिप हों तो ज्वरपीडा होती है । दोष-निवारण के लिए शिवपूजन कराना चाहिये ॥ ६७—६८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे चन्द्रदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः

अथ भौमदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ५५ ॥

कुजमहादशा में—

—कुजान्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

कुजस्यान्तर्गते भौमे द्विज ! केन्द्रत्रिकोणगे ।
लाभे वा सौम्यसंयुक्ते दुश्चिक्ये धनसंयुते ॥ १ ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते राजानुग्रहवैभवम् ।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि नष्टराज्यार्थलब्धयः ॥ २ ॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहं गोकुलसङ्कुलम् ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे भौमे स्वांशे वा बलसंयुते ॥ ३ ॥

गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च गोमहिष्यादिजं सुखम् ।
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, तृतीय या धनस्थान में शुभग्रह तथा लग्नेश के साथ भौम हों तो भौम की दशा में अपनी ही अन्तर्दशा में राजकृपा से ऐश्वर्यप्राप्ति, लक्ष्मी का विलास, विनष्ट राज्य तथा अर्थ का लाभ; पुत्रोत्सव तथा गवादि पशुओं से परिपूर्ण घर होता है। वही मंगल अपने उच्च, स्वभवन में स्वनवांश में सबल रहें तो गृह, क्षेत्र, आदि की वृद्धि, गो, महिषी आदि पशुओं का सुख, और महाराज की कृपा से अभीष्ट-सिद्धि भी होती है ॥ १–४ ॥

अष्टमे वा व्यये भौमे पापदृग्योगसंयुते ।
मूत्रकृच्छ्रादिरोगश्च क्लेशाधिक्यं व्रणाद् भयम् ॥ ५ ॥
चौराहिराजपीडा च धनधान्यपशुक्षयः ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजा ॥ ६ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं रुद्रजाप्यं च कारयेत् ।
अनड्वाहं प्रदद्याच्च कुजदोषनिवृत्तये ॥ ७ ॥

अष्टम या द्वादश में पापग्रह-दृष्ट या पापयुक्त मंगल हों तो अपनी दशा के अपनी ही अन्तर्दशा में मूत्रकृच्छ्र आदि रोग, क्लेशाधिक्य, व्रणभय, चोर, सर्प, राजा से पीड़ा धन-धान्य-पशु का विनाश होता है। वही मंगल २।७ के अधिप हों तो देहपीड़ा, मनोदुःख, होता है। दोषपरिहार के लिए रुद्रजाप्य वृषदान कराना चाहिए ॥ ५–७ ॥

—राह्वन्तर्दशा-फल—

कुजस्यान्तर्गते राहौ स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥ ८ ॥
तत्काले राजसम्मानं गृहभूम्यादिकागमः ।
कलत्रपुत्रयोर्लाभः व्यवसायात् फलाधिकम् ॥ ९ ॥
गङ्गास्नानफलावाप्तिर्विदेशगमनं तथा ।

स्वोच्च, मूलत्रिकोण, केन्द्र लाभस्थान, या त्रिकोण में गत राहु शुभयुक्त या शुभदृष्ट हों तो मंगल की दशा में राह्वन्तर्दशा आने पर राजसम्मान, गृह, भूमि का लाभ, स्त्रीपुत्र की प्राप्ति, व्यापार में अधिक सफलता, गङ्गास्नान-फलप्राप्ति तथा विदेशगमन होता है ॥ ८–९ ॥

अष्टमे वा व्यये राहौ पापयुक्तेऽथ वीक्षिते ॥ १० ॥
चौराहिव्रणभीतिश्च चतुष्पाज्जीवनाशनम् ।
वातपित्तामयाद् भीतिः कारागृहनिवेशनम् ॥ ११ ॥

धनस्थानगते राहौ धननाशो महद् भयम् ।
द्यूनगे चापि भवति ह्यपमृत्युभयं महत् ॥ १२ ॥
नागार्चनं प्रकुर्वीत देवब्राह्मणपूजनम् ।
मृत्युञ्जयजपं कुर्यादायुरारोग्यसिद्धये ॥ १३ ॥

अष्टम या द्वादश में स्थित राहु पापग्रहयुक्त या पापदृष्ट हों तो राहु की अन्तर्दशा में चौर, सर्प-व्रण का भय, पशुनाश, वात-पित्तरोग का भय, जेल, ये सब होते हैं। धनस्थ रहने पर धननाश तथा महाभय सप्तमस्थ होनेपर अपमृत्युभय होता है। आरोग्य-लाभ के लिए नागार्चन, देवब्राह्मणपूजन, तथा मृत्युञ्जयजप कराना चाहिए ॥१०-१३॥

कुजस्यान्तर्गते जीवे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा ।
लाभे वा धनसंयुक्ते तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ १४ ॥
सत्कीर्त्ती राजसम्मानं धनधान्यस्य वर्धनम् ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिकागमः ॥ १५ ॥

त्रिकोण, केन्द्र, लाभस्थान, धनस्थान, उच्चनवांश या स्वनवांश में गुरु हों तो मंगल की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर शुभ्रयश, राजसम्मान, धनधान्यवृद्धि, घर में कल्याण, सम्पत्ति, तथा स्त्री-पुत्रादि-प्राप्ति होती है ॥ १४–१५ ॥

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।
भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते वाहनाधिपसंयुते ॥ १६ ॥
लग्नाधिपसमायुक्ते शुभांशे शुभवर्गगे ।
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च गृहे कल्याणसम्पदः ॥ १७ ॥
देहारोग्यं बृहत्कीर्त्तिर्गृहे गोकुलसंग्रहः ।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् व्यवसायात् फलाधिकम् ॥ १८ ॥

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में स्थित गुरु, भाग्येश, कर्मेश, वाहनेश या लग्नेश से युक्त शुभनवांश या शुभवर्ग में हों तो मंगल की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर गृह, क्षेत्र, की अभिवृद्धि, घर में कल्याण तथा सम्पत्ति, शरीर में नैरुज्य, सुयश, गोवंश की वृद्धि, पशुओं से लाभ, व्यापार से फलाधिक, स्त्री-पुत्र-सौख्य तथा राजसम्मान ये फल होते हैं ॥ १६–१८ ॥

कलत्रपुत्रजं सौख्यं राजसम्मानवैभवम् ।
षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वाऽस्तंगतेऽपि च ॥ १९ ॥
पापग्रहेण संयुक्ते दृष्टे वा दुर्बले भवेत् ।
चौराहिनृपभीतिश्च पित्तरोगादिसम्भवः ॥ २० ॥

प्रेतवाधाभृत्यनाशः सोदराणां विनाशनम् ।
द्वितीयद्यूननाथे स्यादपमृत्युज्वरादिकम् ॥ २१ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।

गुरु दशेश से ६।८।१२ में नीचराशिस्थ या अस्तंगत होकर पापग्रह से युक्त या दृष्ट हों या दुर्बल हों तो मंगल की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर चोर, सर्प तथा राजा से भय, पित्तरोगोत्पत्ति, प्रेतबाधा, भृत्य तथा सोदरों का विनाश होता है। वही गुरु २।७ के स्वामी हों तो अपमृत्यु, ज्वर आदि होते हैं। दोष-निवारण के लिए शिवसहस्रनाम का जप करना चाहिए ॥ १९-२१ ॥

—शन्यन्तर्दशाफल—

कुजस्यान्तर्गते मन्दे स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणगे ॥ २२ ॥
मूलत्रिकोणकेन्द्रे वा तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि च ।
लग्नाधिपतिना वापि शुभदृष्टियुते सति ॥ २३ ॥
राजसौख्यं यशोवृद्धिः समृद्धिर्धनधान्ययोः ।
पुत्रपौत्रादिसौख्यं च गृहे गोधनसंग्रहः ॥ २४ ॥
स्ववारे राजसम्मानं स्वमासे पुत्रवर्द्धनम् ।

स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, मूलत्रिकोण, उच्च के नवांश या स्वनवांश में स्थित शनि लग्नेश या शुभग्रह से युत-दृष्ट हो तो कुज की दशा में शन्यन्तर्दशा आने पर राजसौख्य, यशोवृद्धि, धन-धान्य की समृद्धि, पुत्र-पौत्रादि-सौख्य, घर में गोधन की वृद्धि, शनिवार में राजसम्मान, शनि के मास में पुत्र की वृद्धि होती है ॥ २२-२४ ॥

नीचादिक्षेत्रगे मन्देऽपि वाऽष्टव्ययराशिगे ॥ २५ ॥
म्लेच्छवर्गप्रभुभयं धनधान्यादिनाशनम् ।
निगडैर्बन्धनं रोगोऽवसाने क्षेत्रनाशनम् ॥ २६ ॥

शनि स्वनीच या शत्रुक्षेत्र में या ८।१२ में स्थित हों तो अपनी अन्तर्दशा में म्लेच्छवर्गीय राजा से भय, धन-धान्य का विनाश, निगडों (जञ्जीर, लोहे की कड़ी) से बन्धन, रोग, और दशान्त में क्षेत्र का विनाश होता है ॥ २५-२६ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु पापयुक्ते महद् भयम् ।
धननाशश्च सञ्चारे राजद्वेषो मनोरुजा ॥ २७ ॥
चौराग्निनृपपीडा च सहोदरविनाशनम् ।
बन्धुभिः सह विद्वेषो जीवहानिश्च जायते ॥ २८ ॥
अकस्माच्च मृतेर्भीतिः पुत्रदारादिपीडनम् ।
कारागृहादिभीतिश्च राजदण्डो महद् भयम् ॥ २९ ॥

पापग्रह युक्त शनि २।७ के स्वामी हों तो अन्तर्दशा-काल में महाभय, यात्रादि में धनव्यय, राजद्वेष, मनोव्यथा, चोर, अग्नि, राजा से पीड़ा, सोदरों का विनाश, बन्धुओं के साथ विद्वेष, जीवहानि, अकस्मात् मृत्युभय, स्त्रीपुत्रों को पीड़ा, जेल का भय, राजदण्ड, महाभय, ये फल होते हैं ॥ २७–२९ ॥

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे लाभस्थे वा त्रिकोणगे ।
विदेशयानं लभते दुष्कीर्त्तिर्विविधा तथा ॥ ३० ॥
पापकर्मरतिर्नित्यं बहुजीवादिहिंसनम् ।
विक्रयः क्षेत्रहानिश्च स्थानभ्रंशो मनोव्यथा ॥ ३१ ॥
पराजयोऽपि युद्धे स्यान्मूत्रकृच्छ्रान्महद् भयम् ।

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, या लाभस्थान में शनि हों तो अपनी अन्तर्दशा-काल में विदेशयात्रा, विविध दुर्यश, पापकर्म में प्रेम, नित्यजीवादि की हिंसा, खेत का विक्रय, स्थानभ्रंश, मनोव्यथा, युद्ध में पराजय, मूत्रकृच्छ्र रोग से महाभय, ये फल होते हैं ॥ ३०–३१ ॥

दायेशात् संस्थिते रन्ध्रे व्यये वा पापसंयुते ॥ ३२ ॥
तद्भुक्तौ मरणं ज्ञेयं नृपचौरादिपीडनम् ।
वातपीडा च शूलादिर्ज्ञातिशत्रुभयं भवेत् ॥ ३३ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।

दशापति से पापयुक्त शनि अष्टम या द्वादशस्थ हों तो उसकी अन्तर्दशाकाल में मरण, राजा, चोर आदि से पीड़ा, वातव्याधि से कष्ट, शूलादि रोग, कुटुम्ब तथा शत्रु से भय, कहना चाहिए। दोषपरिहार के लिए मृत्युञ्जय-जप करना श्रेयस्कर होता है ॥ ३२–३३ ॥

—बुधान्तर्दशाफल—

कुजस्यान्तर्गते सौम्ये लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ॥ ३४ ॥
सत्कथाश्चाजपादानं धर्मवृद्धिर्महायशः ।
नीतिमार्गप्रसङ्गश्च नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥ ३५ ॥
वाहनाम्बरपश्वादिराजकर्मसुखानि च ।
कृषिकर्मफलं साधु वारणाम्बरभूषणम् ॥ ३६ ॥

लग्न से केन्द्र या त्रिकोणगत बुध हों तो मंगल की दशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर सत्सङ्गति, अजपाजप तथा तदर्थदान, धार्मिक बुद्धि, सुयश, नीतिमार्गानुसरण, नित्य मिष्टान्न-भोजन, वाहन, वस्त्र, पशु आदि तथा राजाधिकार से सुख, कृषिकार्य में साफल्य, हाथी, वस्त्र, भूषण आदि की प्राप्ति होती है ॥ ३४–३६ ॥

नीचे वास्तंगते वापि षष्ठाष्टव्ययगेऽपि वा ।
हृद्रोगो मानहानिश्च निगडं बन्धुनाशनम् ॥ ३७ ॥
दारपुत्रार्थनाशः स्याच्चतुष्पाज्जीवनाशनम् ।
दशाधिपेन संयुक्ते शत्रुवृद्धिर्महद् भयम् ॥ ३८ ॥
विदेशगमनं चैव नानारोगस्तथैव च ।
राजद्वारे विरोधश्च कलहो बन्धुभिः सह ॥ ३९ ॥

बुध नीचराशि, षष्ठ, अष्टम, या द्वादश में स्थित हों या अस्तंगत हों तो भौम की दशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर हृद्रोग, मानहानि, बन्धन, बन्धुनाश, स्त्री-पुत्रविनाश, तथा पशुनाश होता है। वही बुध दशेश से युक्त हों तो शत्रुवृद्धि, महाभय, विदेशगमन, अनेक रोग, राज-दरबार में विरोध तथा बन्धुओं के साथ कलह होता है ॥ ३७–३९ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा स्वोच्चे युक्तार्थसम्पदः ।
अनेकधननाथत्वं राजसम्मानमेव च ॥ ४० ॥
भूपालयोगं कुरुते धनाम्बरविभूषणम् ।
भूरिवाद्यमृदङ्गादि-सेनापत्यं महत् सुखम् ॥ ४१ ॥
विद्याविनोदविमला वस्त्रवाहनभूषणम् ।
दारपुत्रादिविभवो गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ॥ ४२ ॥

बुध, दशापति (मंगल) से केन्द्र, त्रिकोण या स्वोच्च में हों तो अन्तर्दशाकाल में धन-सम्पत्तिलाभ अनेकविध-धन की स्वामिता, राजसम्मान, राजयोग, धन-वस्त्र भूषण-प्राप्ति, मृदङ्गादि वाद्यों (बाजों) की बहुलता, सेनापत्य, महासुख, विनोदपूर्ण विद्या की प्रतिष्ठा तथा वस्त्र, वाहन, भूषण की प्राप्ति, स्त्री, पुत्र आदि का सुख, घर में लक्ष्मी-विलास, ये फल होते हैं ॥ ४०–४२ ॥

दायेशात् षष्ठरिष्फस्थे रन्ध्रे वा पापसंयुते ।
तद्दाये मानहानिः स्यात् क्रूरबुद्धिस्तु क्रूरवाक् ॥ ४३ ॥
चौराग्निनृपपीडा च मार्गे चौरादिजं भयम् ।
अकस्मात् कलहश्चैव कुजभुक्तौ न संशयः ॥ ४४ ॥

दशेश से षष्ठाष्टरिष्फ (६।८।१२) में पापयुक्त बुध हों तो उसकी अन्तर्दशा में मानहानि, क्रूरबुद्धि तथा क्रूरवचन, चोर, अग्नि तथा राजा से पीड़ा, मार्ग में चोर-डाकुओं का भय, अकस्मात् कलह, ये सभी होते हैं ॥ ४३–४४ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु महाव्याधिर्भयङ्करः ।
अश्वदानं प्रकुर्वीत विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥ ४५ ॥

सर्वसम्पत्सुखकरं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।

वही बुध २।७ के अधिप हों तो अपनी अन्तर्दशा में भयङ्कर व्याधिकर होते हैं। शान्ति के लिए अश्वदान तथा विष्णुसहस्रनाम का पाठ करना सम्पत्ति तथा सुखकर हैं ।

—केत्वन्तर्दशाफल—

कुजस्यान्तर्गते केतौ त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा ॥ ४६ ॥
दुश्चिक्ये लाभगे वापि शुभयुक्ते शुभेक्षिते ।
राजानुग्रहशान्तिश्च बहुसौख्यं धनागमः ॥ ४७ ॥
किञ्चित् फलं दशादौ स्याल्लाभो भूसुतयोरपि ।
राजसंलाभकार्याणि लाभोऽश्वादिचतुष्पदाम् ॥ ४८ ॥

त्रिकोण, केन्द्र, तृतीय, एकादश स्थान में शुभयुक्त या शुभदृष्ट केतु हों तो मंगल की दशा में केत्वन्तर आने पर राजकृपा से शान्ति, प्रचुर सुख, धनागम, दशारम्भ में कुछ सुख, भूमि-पुत्रलाभ, राजकार्याधिकार, तथा अश्वादि पशुओं का लाभ, ये फल होते हैं ॥ ४६–४८ ॥

योगकारकसंस्थाने बलवीर्यसमन्विते ।
पुत्रलाभो यशोवृद्धिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ॥ ४९ ॥
भृत्यवर्गाद्धनप्राप्तिः सेनापत्यं महत् सुखम् ।
भूपालमित्रमपि तु यागाम्बरविभूषणम् ॥ ५० ॥

प्रबल केतु योगकारक भी हों तो अन्तर्दशाकाल में पुत्रलाभ, यशोवृद्धि, घर में लक्ष्मीविलास, भृत्यवर्ग से धनप्राप्ति, सेनापतित्व, महासुख, राजमित्र तथा यज्ञकार्य, वस्त्र, भूषण का लाभ ये सब होते हैं ॥ ४९–५० ॥

दायेशात् षष्ठरिष्फस्थे रन्ध्रे वा पापसंयुते ।
कलहो दन्तरोगश्च चौरव्याघ्रादिपीडनम् ॥ ५१ ॥
ज्वरातीसारकुष्ठादि–दारपुत्रादिपीडनम् ।
द्वितीयसप्तमस्थाने देहे व्याधिर्भविष्यति ॥ ५२ ॥
सन्तापो मानहानिःस्याद्धनधान्यादिकच्युतिः ।

दशापति से ६।८।१२ में सपाप केतु हों तो मंगल की दशा में केत्वन्तर आने पर कलह, दन्तरोग, चोर-व्याघ्र आदि से पीड़ा, ज्वर, अतिसार, कुष्ठ आदिक रोगों से स्त्री-पुत्रों को पीड़ा होती है। वही केतु दशेश से द्वितीय या सप्तम स्थान में रहें तो अन्तर्दशा-काल में शारीरिक क्लेश, सन्ताप, मानहानि, धन-धान्यक्षय, ये फल होते हैं ॥ ५१–५२ ॥

—शुक्रान्तर्दशाफल—

कुजस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥ ५३ ॥
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि शुभस्थानाधिपेऽथवा ।
राज्यलाभो महत् सौख्यं गजाश्वाम्बरभूषणम् ॥ ५४ ॥
लग्नाधिपेन सम्बन्धे पुत्रदारादिवर्धनम् ।
आयुषो वृद्धिरैश्वर्यं भाग्यवृद्धिः सुखं भवेत् ॥ ५५ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वोच्च या स्वभवनगत शुक्र हों या शुभस्थानाधीश वे हों तो मंगल की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर राज्यलाभ, महासौख्य, हाथी घोड़ा, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, लग्नेश से सम्बन्ध रहने पर स्त्री-पुत्र को अभिवृद्धि, आयुर्वृद्धि, ऐश्वर्य तथा भाग्यवृद्धि-सुख, ये सभी होते हैं ॥ ५३–५५ ॥

दायेशात् केन्द्रलाभस्थे कोणे वा धनगेऽपि वा ।
तत्काले श्रियमाप्नोति पुत्रलाभं महत् सुखम् ॥ ५६ ॥
स्वप्रभोश्च महत् सौख्यं लाभः स्याद्धनवस्त्रयोः ।
महाराजप्रसादेन लाभो ग्रामादिकस्य च ॥ ५७ ॥
भुक्त्यन्ते फलमाप्नोति गीतनृत्यादिजं सुखम् ।
पुण्यतीर्थस्नानलाभं, कर्माधिपसमन्विते ॥ ५८ ॥
पूतधर्मदयापुण्यतडागं कारयिष्यति ।

दायेश से केन्द्र, लाभस्थान, त्रिकोण या धन स्थान-स्थित शुक्र हों तो अपनी अन्तर्दशा में लक्ष्मीप्रद होते हैं। उस समय, पुत्रलाभ, महासुख, अपने प्रभु से भी सुख, धन-वस्त्र-प्राप्ति, राजा की कृपा से ग्रामादि का लाभ, अन्तर्दशान्त में गीत-नृत्य-सुख, पुण्यतीर्थ में स्नान का लाभ, ये सभी फल होते हैं। वही शुक्र राज्येश के साथ हों तो पुण्य, धर्म-कार्य तथा तड़ाग का निर्माण ,आदि शुभकार्यकारक होते हैं ॥ ५६–५८ ॥

दायेशाद्रन्ध्ररिष्फस्थे षष्ठे वा पापसंयुते ॥ ५९ ॥
करोति दुःखबाहुल्यं देहपीडां धनक्षयम् ।
राजचौरादिभीतिं च गृहे कलहमेव च ॥ ६० ॥
दारपुत्रादिपीडां च गोमहिष्यादिनाशनम् ।
द्वितीयद्यूतनाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥ ६१ ॥
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धिदाम् ।
ततः शान्तिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ६२ ॥

दशापति (भौम) से ६।८।१२ में सपाप शुक्र हों तो अन्तर्दशा काल में दुःखाधिक्य देहपीड़ा, धनक्षय, राजा तथा चोर से भय, गृहकलह, स्त्री-पुत्रों को कष्ट गवादि पशुक्षय होते हैं। वही शुक्र दशेश से २।७ के ईश हों तो शारीरिक कष्ट होता है। शान्ति के लिए श्वेत गाय, भैंस का दान करना चाहिए ॥ ५९–६२ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

कुजस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
मूलत्रिकोणलाभे वा भाग्यकर्मेशसंयुते ॥ ६३ ॥
तद्भुक्तौ वाहनं कीर्त्तिं पुत्रलाभं च विन्दति ।
धनधान्यसमृद्धिः स्याद् गृहे कल्याणसम्पदः ॥ ६४ ॥
क्षेमारोग्यं महद्धैर्यं राजपूजा महत् सुखम् ।
व्यवसायात् फलाधिक्यं विदेशे राजदर्शनम् ॥ ६५ ॥

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र त्रिकोण, [लाभस्थान स्थित सूर्य भाग्येश या राज्येश के साथ हों तो मंगल की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा आने पर मनुष्य वाहन, सुयश तथा पुत्र की प्राप्ति करता है। उस समय धनधान्यवृद्धि, घर में कल्याण तथा सम्पत्ति, आरोग्य, धैर्य, राजसम्मान, महासुख, व्यवसाय में अधिक साफल्य, विदेश में राजदर्शन ये फल होते हैं ॥ ६३–६५ ॥

दायेशात् षष्ठरिष्फे वा व्यये वा पापसंयुते ।
देहपीडा मनस्तापः कार्यहानिर्महद् भयम् ॥ ६६ ॥
शिरोरोगो ज्वरादिः स्यादतीसारमथापि वा ।
द्वितीयद्यूननाथे तु सर्पज्वरविषाद् भयम् ॥ ६७ ॥
सुतपीडाभवा भीतिः शान्तिं कुर्याद् यथाविधि ।
देहारोग्यं प्रकुरुते समृद्धिं धनधान्ययोः ॥ ६८ ॥

दशेश से ६।८।१२ में पापयुक्त सूर्य हों तो अन्तर्दशा काल में शारीरिक पीड़ा, मनस्ताप, कार्यहानि, महाभय, शिरोरोग, ज्वर, तथा अतीसार होते हैं। वही सूर्य दायेश से २।७ के स्वामी हों तो सर्पविष तथा ज्वर से भय, पुत्रकष्टजन्य भय होता है। यथाविधि शान्ति करने से आरोग्य तथा धनधान्य की समृद्धि होती है ॥ ६६–६८ ॥

—चन्द्रान्तर्दशा-फल—

कुजस्यान्तर्गते चन्द्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
भाग्यवाहनकर्मेश-लग्नाधिपसमन्विते ॥ ६९ ॥
करोति विपुलं राज्यं गन्धमाल्याम्बरादिकम् ।
तडागं गोपुरादीनां पुण्यधर्मादिसंग्रहः ॥ ७० ॥

विवाहोत्सवकर्माणि दारपुत्रादिजं सुखम् ।
पितृमातृसुखावाप्तिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ॥ ७१ ॥
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिसुखादिकम् ।
पूर्णे चन्द्रे फलं पूर्णं क्षीणे स्वल्पफलं भवेत् ॥ ७२ ॥

स्वोच्च, स्वक्षेत्र तथा केन्द्र में गत चन्द्र भाग्येश, सुखेश, राज्येश या लग्नेश के साथ हों तो अपनी अन्तर्दशा में गन्ध, माल्य, वस्त्रादि, विपुलराज्य, तालाब, गोशाला आदि पुण्य कार्यों का संग्रह, विवाहोत्सवकार्य, स्त्रीपुत्रादिजन्य सुख, मातृपितृसुख, घर में लक्ष्मी-विलास, महाराज प्रसाद से अभीष्टसिद्धि, पूर्ण चन्द्र हो तो पूर्णफल, क्षीण में अल्प फल, होते हैं ॥ ६९–७२ ॥

नीचारिस्थेऽष्टमे षष्ठे दायेशाद्रिपुरन्ध्रके ।
मरणं दारपुत्राणां कष्टं मह्या विनाशनम् ॥ ७३ ॥
पशुधान्यक्षयश्चैव चौरादिरणतो भयम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ ७४ ॥
देहजाड्यं मनोदुःखं दुर्गालक्ष्मीजपं चरेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादनेनारोग्यमादिशेत् ॥ ७५ ॥

स्वनीच, शत्रुराशि लग्न या दशापति से षष्ठ या अष्टम राशिस्थ चन्द्रमा हो तो अपनी अन्तर्दशा में मरण, स्त्री पुत्र को क्लेश, भूमिनाश, पशुधान्य नाश, चौरादि या युद्ध से भय, वही चन्द्र दशेश से २।७ के अधिप हों तो अपमृत्यु, देह में जड़ता, मानसिक व्यथा, ये फल होते है । दोष परिहार के लिए दुर्गा, लक्ष्मी का जप, श्वेत गाय तथा महिषी का दान करें जिससे आरोग्यप्राप्ति होती है ॥ ७३–७५ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भौमदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः

अथ राहुदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ५६ ॥

राहु महादशा में—

—राह्वन्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

कुलीरे वृश्चिकेऽगौ तु कन्यायां चापगेऽपि वा ।
तद्भुक्तौ राजसम्मानं वस्त्रवाहनभूषणम् ॥ १ ॥
व्यवसायात् फलाधिक्यं भवेल्लाभश्चतुष्पदाम् ।
प्रयाणं पश्चिमे भागे लाभो वाहनवस्त्रयोः ॥ २ ॥

लग्नादुपचये राहौ शुभखेटयुतेक्षिते ।
मित्रांशे तुङ्गभागे वा योगकारकसंयुते ॥ ३ ॥
राज्यलाभो महोत्साहो राजप्रीतिः शुभावहा ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिवर्धनम् ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !)—कर्क, वृश्चिक कन्या, धनु के राहु हों तो राहु की दशा में उसी की अन्तर्दशा आने पर राजसम्मान, वस्त्र-वाहन भूषण का लाभ व्यापार में फलाधिक्य, पशुलाभ, पश्चिमदिशा में यात्रा, तथा वाहन-वस्त्र की प्राप्ति ये फल होते हैं ।

लग्न से ३।६।१०।११ स्थानों में शुभग्रहों से युत या दृष्ट, मित्रग्रह के नवांश या उच्चांश में योगकारक ग्रह से युक्त राहु हों तो अन्तर्दशा काल में राज्यलाभ, महोत्साह सुखप्रद राजप्रीति, घर में कल्याण तथा सम्पत्ति, तथा स्त्री पुत्रों की अभिवृद्धि, ये सभी फल होते हैं ॥ १–४ ॥

अष्टमव्ययगे राहौ पापयुक्तेऽथ वीक्षिते ।
चौरादिव्रणपीडा च सर्वत्रैव प्रजायते ॥ ५ ॥
राजद्वारजनद्वेष इष्टबन्धुविनाशनम् ।
दारपुत्रादिजा पीडा जायते नात्र संशयः ॥ ६ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु सप्तमस्थानमाश्रिते ।
सदा रोगो महाकष्टं शान्ति कुर्याद्यथाविधि ॥ ७ ॥
आरोग्यं सम्पदश्चैव भविष्यन्ति न संशयः ।

अष्टम या द्वादशस्थ राहु पापयुक्त या पापदृष्ट हों तो अपनी दशा के अपनी ही अन्तर्दशाकाल में चोर, व्रण आदि से पीड़ा, राजदरबार में, अधिकारी से विद्वेष, इष्टबन्धुनाश, स्त्री पुत्र को क्लेश, ये फल देते हैं । राहु २।७ के स्वामी होकर सप्तम स्थान में रहें तो सतत रोग महान् कष्ट आदि फल होते हैं । यथाविधि शान्ति करने पर नैरुज्य और लक्ष्मी की प्राप्ति निःसन्देह होती है ॥ ५–७ ॥

—जीवान्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते जीवे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ॥ ८ ॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि स्वांशस्वोच्चांशगेऽपि वा ।
स्थानलाभं मनोधैर्यं शत्रुनाशं महासुखम् ॥ ९ ॥
राजप्रीतिकरं सौख्यं जातोऽतीव समश्नुते ।
दिने दिने वृद्धिरपि सितपक्षे शशी यथा ॥ १० ॥
वाहनादिधनं भूरि, गृहं गोधनसङ्कुलम् ।
नैर्ऋत्ये पश्चिमे भागे प्रयाणं राजदर्शनम् ॥ ११ ॥

युक्तकार्यार्थसिद्धिः स्यात् स्वदेशे पुनरेष्यति ।
उपकारो ब्राह्मणानां तीर्थयात्रादिकर्मणाम् ॥ १२ ॥
वाहनग्रामलाभश्च देवब्राह्मणपूजनम् ।
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥ १३ ॥

लग्न से केन्द्रत्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन, स्वनवांश या उच्चनवांश में गत जीव हों तो राहु की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर स्थानलाभ, मन में धैर्य, शत्रुनाश, महासुख, राजप्रसादक सौख्य, शुक्लपक्षीय चन्द्र की तरह प्रतिदिन वृद्धि, घर में वाहन, धन, तथा पशुधन की प्रचुरता, नैऋत तथा पश्चिम दिशा में यात्रा तथा राजदर्शन, अभीष्ट कार्य की सिद्धि, पुनः स्वदेश में आगमन, तीर्थयात्रा करने वाले ब्राह्मणों का उपकार, वाहन, ग्राम का लाभ, देवब्राह्मण पूजन, पुत्रजन्मादि संतोष तथा नित्य मिष्टान्न (मिठाई) का भोजन, ये सभी फल होते हैं ॥ ८–१३ ॥

नीचे वास्तंगते वापि षष्ठाष्टव्ययराशिगे ।
शत्रुक्षेत्रे पापयुक्ते धनहानिर्भविष्यति ॥ १४ ॥
कर्मविघ्नो मनोहानिर्भवतीति न संशयः ।
कलत्रपुत्रपीडा च राजकार्यं हृदो गदः ॥ १५ ॥

गुरु, नीचस्थ, अस्तंगत, या ६।८।१२ में, या शत्रुक्षेत्र में पाप युक्त हों तो अन्तर्दशा में धनहानि, कार्य में विघ्न, मनोवैकल्य, स्त्रीपुत्र को क्लेश, राजकार्याधिकार, तथा हृद्रोग, ये सभी फल होते हैं ॥ १४–१५ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ।
दुश्चिक्ये बलसम्पूर्णे समृद्धिः क्षेत्रगेहयोः ॥ १६ ॥
भोजनाम्बरपश्वादि-दानधर्मजपादिकम् ।
भुक्त्यन्ते राजकोपाच्च द्विमासं देहपीडनम् ॥ १७ ॥
ज्येष्ठभ्रातुर्विनाशश्च मातृपित्रादिपीडनम् ।

दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, लग्न, धन, या, तृतीय स्थान में पूर्णबली गुरु हों तो राहु-दशा में गुरु की अन्तर्दशा आने पर भूमि तथा गृह की वृद्धि, भोजन, वस्त्र, पश्वादि का लाभ, दान, धर्म, जप में प्रवृत्ति, अन्तर्दशान्त में राजकोप से दो महीनों तक शरीरकष्ट, बड़े भाई का नाश, माता पिता को कष्ट ये सभी फल होते हैं ॥१६–१७॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा रिष्फे वा पापसंयुते ॥ १८ ॥
तद्भुक्तौ धनहानिः स्याद्देहपीडा भविष्यति ।
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ १९ ॥
स्वर्णस्य प्रतिमादानं शिवपूजां च कारयेत् ।

दशापति से ६।८।१२। में पापयुक्त गुरु हो तो राहु की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आनेपर धनहानि, शरीर में, पीड़ा, होती है। दशेश से २।७ के अधिप हों तो अपमृत्युभय होता है, जिसकी शान्ति के लिए सुवर्णप्रतिमा का दान तथा शिवपूजन करना चाहिए ॥ १८—१९ ॥

—शन्यन्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते मन्दे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ॥ २० ॥
स्वोच्चे मूलत्रिकोणे वा दुश्चिक्ये लाभराशिगे ।
तद्भुक्तौ राजसेवा स्यात् राजप्रीतिकरी शुभा ॥ २१ ॥
विवाहोत्सवकार्याणि कृत्वा पुण्यानि भूरिशः ।
आरामकरणे युक्तस्तडागमपि कारयेत् ॥ २२ ॥
शूद्रप्रभुवशादिष्टलाभो गोधनसंग्रहः ।
प्रयाणं पश्चिमे भागे प्रभुमूलाद्धनक्षयः ॥ २३ ॥
देहालस्यं फलाल्पत्वं स्वदेशे पुनरेष्यति ।

लग्न से केन्द्र त्रिकोण स्वोच्च, मूलत्रिकोण तृतीयैकादशस्थान में शनि हों तो राहु की दशा में शन्यन्तर्दशा आने पर राजा को प्रसन्न करनेवाली राजसेवा, विवाहोत्सवादि पुण्यकार्य, बगीचा, तालाब का निर्माण, शूद्रराजा द्वारा अभीष्टलाभ, गोधनवृद्धि, पश्चिम दिशा में यात्रा, राजमूलक धननाश, देह में आलस्य, अल्पलाभ, पुनः स्वदेश में आगमन ये सभी फल होते हैं ॥ २०—२३ ॥

नीचारिक्षेत्रगे मन्दे रन्ध्रे वा व्ययगेऽपि वा ॥ २४ ॥
नीचारिराजभीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् ।
आत्मबन्धुमनस्तापं दायादजनविग्रहम् ॥ २५ ॥
व्यवहारे च कलहमकस्माद् भूषणं लभेत् ।

नीचस्थान, शत्रुक्षेत्र, ८।१२ स्थान में शनि हों तो अन्तर्दशाकाल में नीचजन, शत्रुवर्ग, तथा राजा से भय, स्त्री पुत्र को क्लेश, अपने बन्धुजनों को सन्ताप, दायादों से विरोध, व्यवहार में कलह, और एकाएक भूषण की प्राप्ति होती है ॥ २४—२५ ॥

दायेशात् षष्ठरिष्फे वाऽष्टमे वा पापसंयुते ॥ २६ ॥
हृद्रोगो मानहानिश्च विवाहः शत्रुपीडनम् ।
अन्यदेशादिसञ्चारो गुल्मवद्व्याधिभाग्भवेत् ॥ २७ ॥
कुभोजनं कोद्रवादि जातिदुःखाद् भयं भवेत् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ २८ ॥
कृष्णां गां महिषीं दद्याद्दानेनारोग्यमाप्नुयात् ।

दशापति से ६।८।१२ में पापयुक्त शनि हों तो राहु की दशा में शनि का अन्तर आनेपर हृद्रोग, मानहानि, विवाह, शत्रुपीडा, अन्यदेशों में भ्रमण, गुल्मरोग, कोदो आदि कदन्न भोजन, स्वजाति दुःख से भय होता है। वही शनि, दशेश से २।७ के अधिप रहें तो अपमृत्यु होती है। काली गाय भैंस के दान से शान्ति या आरोग्य प्राप्त होता है ॥ २६–२८ ॥

—बुधान्तर्दशा फल—

राहोरन्तर्गते सौम्ये भाग्ये वा स्वर्क्षगेऽपि वा ॥ २९ ॥
तुङ्गे वा केन्द्रराशिस्थे पुत्रे वा बलगेऽपि वा ।
राजयोगं प्रकुरुते गृहे कल्याणवर्द्धनम् ॥ ३० ॥
व्यापारेण धनप्राप्तिर्विद्यावाहनमुत्तमम् ।
विवाहोत्सवकार्याणि भवेल्लाभश्चतुष्पदाम् ॥ ३१ ॥
सौम्यमासे महत् सौख्यं स्ववारे राजदर्शनम् ।
सुगन्धपुष्पशय्यादि-स्त्रीसौख्यं चातिशोभनम् ॥ ३२ ॥
महाराजप्रसादेन धनलाभो महायशः ।

केन्द्र त्रिकोण ९।५ स्वभवन, उच्चराशि में सबल बुध हों तो राहु की दशा में बुधान्तर्दशा आने पर राजयोग, घर में कल्याणवृद्धि, व्यापार से धनप्राप्ति, उत्तम विद्या, तथा उत्तम वाहन, विवाहोत्सवकार्य, पशुलाभ, बुध के मास में पूर्णसुख, बुध दिन में राजदर्शन, सुगन्धित पुष्प की शय्या, स्त्रीसौख्य, महाराज-प्रसाद से धनलाभ एवं महान् यश, ये सभी होते हैं ॥ २९–३२ ॥

दायेशात् केन्द्रलाभे वा दुश्चिक्ये भाग्यकर्मगे ॥ ३३ ॥
देहारोग्यं हृदुत्साह इष्टसिद्धिः सुखावहा ।
पुण्यश्लोकादिकीर्त्तिश्च पुराणश्रवणादिकम् ॥ ३४ ॥
विवाहो यज्ञदीक्षा च दानधर्मदयादिकम् ।

दशापति से केन्द्र, लाभस्थान या ३।९।१० में बुध हों तो अपनी अन्तर्दशा में शारीरिक आरोग्य, हृदयोत्साह, अभीष्टसिद्धि, स्तोत्रादि का कीर्त्तन, पुराणश्रवण, विवाह, यज्ञदीक्षा, दान, धर्म, दया का उदय होता है ॥ ३३–३४ ॥

षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये मन्देन च युतेक्षिते ॥ ३५ ॥
दायेशात् षष्ठरिष्फे वा रन्ध्रे वा पापसंयुते ।
देवब्राह्मणनिन्दा च भोगभाग्योज्झितो भवेत् ॥ ३६ ॥
सत्यहीनश्च दुर्बुद्धिश्चौरादिनृपपीडनम् ।
अकस्मात् कलहश्चैव गुरुपुत्रादिनाशनम् ॥ ३७ ॥

अर्थव्ययो राजकोपो दारपुत्रादिपीडनम् ।

लग्न ६।८।१२ में बुध शनि से दृष्ट या युत हों तो अन्तर्दशाकाल में देवब्राह्मण की निन्दा, भोग, भाग्य, का क्षय, मिथ्याभाषिता, दुर्बुद्धि, चोर राजा आदि से पीड़ा अकस्मात् कलह, गुरु, पुत्र का विनाश, अर्थव्यय, राजकोप, स्त्री पुत्र को कष्ट ये सभी असत्फल होते हैं ॥ ३५–३७ ॥

द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युभयं भवेत् ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥ ३८ ॥

बुध यदि दशेश से २।७ के स्वामी हों तो राहु की दशा में बुध की अन्तर्दशा होने पर अपमृत्युभय होता है। शान्त्यर्थं विष्णुसहस्रनाम का जप कराना श्रेयस्कर है ॥ ३८ ॥

—केत्वन्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते केतौ भ्रमणं भीश्च भूपतेः ।
वातज्वरादिरोगश्च भवेद्धानिश्चतुष्पदाम् ॥ ३९ ॥
अष्टमाधिपसंयुक्ते देहजाड्यं मनोरुजा ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे देहसौख्यं धनागमः ॥ ४० ॥
राजसम्मानभूषाप्तिर्गृहे शुभफलं भवेत् ।

राहु-दशा में केतु की अन्तर्दशा होने पर, भ्रमण, राजभय, वातज्वरादिरोग, पशुक्षय, वही केतु अष्टमेश के साथ हों तो शरीर में जड़ता, मनोव्यथा होती है। शुभग्रहयुक्त या शुभदृष्ट होने पर शारीरिक सौख्य, धनागम, राजसम्मान, स्वर्णादिभूषणप्राप्ति, तथा घर में शुभफल होते हैं ॥ ३९–४० ॥

लग्नाधिपेन सम्बन्धे स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥ ४१ ॥
लग्नाधिपसमायुक्ते लाभो वा भवति ध्रुवम् ।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्यात् केन्द्रे वाथ त्रिकोणगे ॥ ४२ ॥

वही केतु लग्नेश से सम्बद्ध हों तो अभीष्ट सिद्धि, तथा निश्चयतः लाभ होता है। केन्द्र या त्रिकोण में केतु रहें तो पशुओं से लाभ कहना चाहिए ॥ ४१–४२ ॥

रन्ध्रस्थानगते केतौ व्यये वा बलवर्जिते ।
तद्भुक्तौ बहुरोगः स्याच्चौराहिव्रणपीडनम् ॥ ४३ ॥
पितृमातृवियोगश्च भ्रातृद्वेषो मनोरुजा ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥ ४४ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं छागदानं च कारयेत् ।

निर्बल केतु ८।१२। में हो तो राहुदशा में केत्वन्तर आने पर रोगादिभय, ५०८

सर्प, व्रण से पीड़न, पिता, माता से वियोग, भाई से द्वेष, मानसिक कष्ट, वही २।७ के अधिप हों तो शारीरिक बाधा, ये सभी फल होते हैं। शान्त्यर्थं छागदान कराना चाहिए ॥ ४३–४४ ॥

—शुक्रान्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते शुक्रे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ॥ ४५ ॥
लाभे वा बलसंयुक्ते योगप्राबल्यमादिशेत् ।
विप्रमूलाद्धनप्राप्तिः संलाभः स्याच्चतुष्पदाम् ॥ ४६ ॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे कल्याणसम्भवः ।
सम्मानं राजसम्मानं राज्यलाभो महत् सुखम् ॥ ४७ ॥
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ।
नवीनगृहनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥ ४८ ॥
कलत्रपुत्रविभवो मित्रैः सह सुभोजनम् ।
अन्नदानं प्रियं नित्यं दानधर्मादिसंग्रहः ॥ ४९ ॥
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ।
व्यवसायात् फलाधिक्यं विवाहो मौञ्जिबन्धनम् ॥ ५० ॥

केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान में सबल शुक्र हो तो राहु की दशा में शुक्रान्तर्दशा आने पर ब्राह्मण द्वारा धनप्राप्ति, पशुलाभ, पुत्रोत्सव, घर में कल्याण, लोगों से आदर, राजसम्मान राज्यलाभ, महासुख, होता है। वही शुक्र स्वोच्च, स्वभवन, स्वनवांश या स्वोच्चांश में हों तो उसके अन्तर्दशाकाल में नवीन घर का निर्माण, नित्य मिष्टान्नभोजन, स्त्रीपुत्रसौख्य, मित्रों के साथ सुभोजन, नित्य अन्नदान, दानधर्म आदि का विस्तार, राजकृपा से वाहन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, व्यवसाय में अधिक लाभ, विवाह, उपनयन, ये सभी फल होते है ॥ ४५–५७ ॥

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे नीचे शत्रुगृहे स्थिते ।
मन्दारफणिसंयुक्ते तद्भुक्तौ रोगमादिशेत् ॥ ५१ ॥
अकस्मात् कलहश्चैव पितृपुत्रवियोजनम् ।
स्वबन्धुजनहानिश्च सर्वत्र जनपीडनम् ॥ ५२ ॥
दायादकलहश्चैव मृत्युः स्यात् स्वस्य च प्रभोः ।
कलत्रपुत्रपीडा च शूलरोगादिसम्भवः ॥ ५३ ॥

शुक्र त्रिकस्थ या नीच या शत्रुगृह में शनि, मंगल, राहु से युक्त हो तो राहु की दशा में शुक्रान्तर आने पर रोग, अकस्मात् कलह, पितृमातृ-वियोग, स्वबन्धुजन

नाश, सर्वत्र जनकष्ट, दायादों के साथ कलह, अपना तथा अपने मालिक की मृत्यु स्त्री-पुत्र को कष्ट तथा शूलरोग का सम्भव होता है ॥ ५१–५३ ॥

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे वा समन्विते ।
लाभे वा शुभराशिस्थे क्षेत्रपालान्महत् सुखम् ॥ ५४ ॥
सुगन्धवस्त्रशय्यादि-गानवाद्यभवं सुखम् ।
छत्रचामरभूषादि-स्वेष्टवस्त्वाप्तिरुत्तमा ॥ ५५ ॥

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, आदि शुभराशि में शुक्र हों तो अपनी अन्तर्दशा में क्षेत्रपाल से सौख्य, सुगन्धपूर्णवस्त्र शय्या, गानवाद्यजसुख, छत्र, चामर, भूषण तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है ॥ ५४–५५ ॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
विषाहिनृपचौरादि-मूत्रकृच्छ्रान्महद् भयम् ॥ ५६ ॥
प्रमेहो रक्तविकृतिः कुत्सितान्नं शिरोव्यथा ।
कारागृहप्रवेशश्च राजदण्डाद्धनक्षयः ॥ ५७ ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा दारपुत्रादि-नाशनम् ।
आत्मपीडा भयं च स्यादपमृत्युस्तथा भवेत् ॥ ५८ ॥
दुर्गालक्ष्मीजपं कुर्यात् कल्याणाप्तिस्ततो भवेत् ॥ ५९ ॥

दशेश से ६।८।१२ में पापयुक्त शुक्र हों तो अन्तर्दशाकाल में विष, सर्प, राजा, चोर आदि, मूत्रकृच्छ्ररोग, से महाभय, प्रमेह तथा रक्तविकार, कुत्सितान्नभोजन, शिरःपीड़ा, जेल एवं राजदण्ड से धननाश होता है। वही शुक्र दशेश से २।७ के अधिप रहें तो अपनी अन्तर्दशा में स्त्री-पुत्र का विनाश, आत्मपीड़ा, भय तथा अपमृत्यु कारक होते हैं। शान्त्यर्थ दुर्गा, लक्ष्मी का पाठ-जप करना चाहिये, उससे कल्याण की प्राप्ति होती है ॥ ५६–५९ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
त्रिकोणे लाभगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ ६० ॥
शुभग्रहेण संदृष्टे राजप्रीतिकरं शुभम् ।
धनधान्यसमृद्धिश्च सम्मानमपि सौख्यदम् ॥ ६१ ॥
अल्पग्रामाधिपत्यं च स्वल्पलाभो भविष्यति ।
भाग्यलग्नेशसंयुक्ते कर्मेशेन निरीक्षिते ॥ ६२ ॥
राजाश्रयो महाकीर्तिर्विदेशगमनं तथा ।

देशाधिपत्वयोगश्च गजाश्वाम्बरभूषणम् ॥ ६३ ॥
मनोऽभीष्टप्रदानं च पुत्रकल्याणसम्भवम् ।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वोच्चांश या स्वनवांश का सूर्य शुभग्रह दृष्ट हों तो राहु की दशा में सूर्यान्तर आने पर शुभकर राजप्रेम, धनधान्य समृद्धि, सौख्यप्रद सम्मान, छोटे-छोटे ग्रामों का आधिपत्य, स्वल्पलाभ और वही सूर्य भाग्येश तथा लग्नेश के साथ हों और कर्मेश की उनपर दृष्टि रहे तो राजाश्रय, महाकीर्त्ति, विदेशगमन, देश पर प्रभुता, हाथी, घोड़ा, वस्त्र-भूषण की प्राप्ति, अभीष्ट-सिद्धि तथा पुत्र का कल्याण होता है ॥ ६०–६३ ॥

दायेशाद्रिष्फरन्ध्रस्थे षष्ठे वा नीचगेऽपि वा ॥ ६४ ॥
ज्वरातिसाररोगश्च कलहो राजभिः सह ।
प्रयाणं शत्रुवृद्धिश्च नृपचौराग्निपीडनम् ॥ ६५ ॥
दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
विदेशे राजसम्मानं कल्याणं च शुभावहम् ॥ ६६ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु महारोगो भविष्यति ।
सूर्यप्रणामतः शान्ति कुर्यादारोग्यदायिनीम् ॥ ६७ ॥

दशापति से ६।८।१२ में या नीच में सूर्य हों तो अन्तर्दशाकाल में ज्वर, अतिसार रोग, राजा से विरोध, देशाटन, शत्रुवृद्धि, राजा, चोर, अग्नि से पीड़ा ये सब फल होते हैं। दशापति से केन्द्र या त्रिकोण, तृतीय तथा एकादश में सूर्य रहें तो राहु की दशा में सूर्यान्तर आने पर विदेश में राजसम्मान और शुभप्रद कल्याण होता है। वही सूर्य दशेश से २।७ के अधिप हों तो महारोगकारक होते हैं। शान्ति के लिए सूर्यप्रणाम, अर्घदान, पूजन आदि करना चाहिए ॥ ६४-६७ ॥

—चन्द्रान्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते चन्द्रे स्वक्षेत्रे स्वोच्चगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा मित्रर्क्षे सद्ग्रहान्विते ॥ ६८ ॥
राजत्वं राजपूज्यत्वं धनलाभश्च जायते ।
आरोग्यं भूषणं चैव मित्रस्त्रीपुत्रसम्पदः ॥ ६९ ॥
पूर्णे चन्द्रे फलं पूर्णं राजप्रीत्या शुभावहम् ।
अश्ववाहनलाभः स्यात् समृद्धिः क्षेत्रगेहयोः ॥ ७० ॥

स्वभवन, स्वोच्च, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, मित्रगृह में शुभग्रहयुक्त चन्द्र हों तो राहु की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा आने पर स्वयम् राजत्व तथा राजा के द्वारा सम्मान, धनलाभ, आरोग्य, भूषण, मित्र, स्त्री-पुत्रों से सौख्य, अश्व, वाहन,

का लाभ, गृह तथा क्षेत्र का विस्तार, पूर्णचन्द्र रहने पर पूर्वोक्त फल पूर्ण रूप से होते हैं। अर्थात् क्षीणचन्द्र में कुछ न्यून रूप से फल कहना चाहिये ॥ ६८–७० ॥

दायेशात् सुखभाग्यस्थे केन्द्रे वा लाभगेऽपि वा ।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि गृहे कल्याणसम्भवः ॥ ७१ ॥
समस्तकार्यसिद्धिः स्यात् धनधान्यसुखावहा ।
सत्कीर्त्तिलाभसम्मानं देव्याराधनमाचरेत् ॥ ७२ ॥

दशापति से ४।९।१।४।७।१० या ११ स्थानों में चन्द्रमा रहें तो राहुदशा में चन्द्रान्तर आने पर लक्ष्मीकृपा के चिह्न, घर में कल्याण, सर्वकार्यसिद्धि, धनधान्यागम, शुभ्रयशोलाभ, सम्मान, तथा देव्याराधन, ये सभी फल होते हैं ॥ ७१–७२ ॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ।
पिशाचक्षुद्रव्याघ्राद्यैर्गृहक्षेत्रार्थनाशनम् ॥ ७३ ॥
मार्गे चौरभय चैव व्रणाधिक्यं महोदरः ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युस्तदा भवेत् ॥ ७४ ॥
श्वेता गा महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम् ।

दशापति से ६।८।१२ में निर्बल चन्द्र हों तो अन्तर्दशा काल में पिशाच, व्याघ्र आदि जन्तुओं से भय, घर, क्षेत्र में अर्थक्षय, मार्गमें चोर का भय, व्रणाधिक्य, उदर रोग, होते हैं। यदि चन्द्र दशेश से २।७ के अधिप रहें तो अपमृत्यु होती है। आयु तथा आरोग्य के लिए श्वेत गाय तथा भैंस का दान श्रेयस्कर है ॥ ७३–७४ ॥

—भौमान्तर्दशाफल—

राहोरन्तर्गते भौमे लग्नलाभत्रिकोणगे ।
केन्द्रे वा शुभसंयुक्ते स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥ ७५ ॥
नष्टराज्यधनप्राप्तिः समृद्धिः क्षेत्रगेहयोः ।
इष्टदेवप्रसादेन सन्तानं सुखभाजनम् ॥ ७६ ॥
क्षिप्रं भोज्यान्महत् सौख्यं प्राप्तिर्भूषाश्ववाससाम् ।

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान, स्वोच्च या स्वभवन में गत भौम शुभयुक्त हों तो राहु की दशा में मंगल की अन्तर्दशा आने पर नष्टराज्य एवं नष्टधन की प्राप्ति, क्षेत्र (खेत) तथा गेह की समृद्धि, इष्टदेव की कृपा से सुखवर्द्धक सम्मान, भोज्य से सौख्य, भूषण, घोड़ा तथा वस्त्र की प्राप्ति ये सभी फल होते हैं ॥ ७५–७६ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
रक्तवस्त्रादिलाभः स्यात् प्रयाणं राजदर्शनम् ॥ ७७ ॥

पुत्रवर्गेषु कल्याणं स्वप्रभोश्च महत्सुखम् ।
सेनापत्यं महोत्साहो भ्रातृवर्गाद्धनागमः ॥ ७८ ॥

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, तृतीय, एकादश में मंगल हों तो अन्तर्दशाकाल में रक्तवस्त्र का लाभ, यात्रा, राजदर्शन, पुत्रों में कल्याण, अपने प्रभु से सुख, सेनाधिपत्य, महोत्साह तथा भ्रातृवर्ग से धनागम ये फल होते हैं ॥ ७७–७८ ॥

दायेशादन्ध्ररिष्फे वा षष्ठे पापसमन्विते ।
पुत्रदारादिहानिश्च सोदराणां च पीडनम् ॥ ७९ ॥
स्थानभ्रंशो बन्धुवर्गदारपुत्रविरोधनम् ।
चौराहिव्रणभीतिश्च स्वतनोरपि पीडनम् ॥ ८० ॥
आदौ क्लेशस्ततो मध्ये तथान्तेऽपि सुखं भवेत् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहालस्यं महद् भयम् ॥ ८१ ॥
अनड्वाहं च गां दद्यादारोग्यं च ततो भवेत् ।

दायेश से पापयुक्त भौम ६।८।१२ में हों तो अन्तर्दशाकाल में पुत्र, स्त्री, आदि तथा सोदरों को क्लेश, स्थानभ्रंश, बन्धुबान्धव तथा स्त्री-पुत्र से विरोध, चोर, सर्प, व्रण का भय, अपने शरीर में भी पीड़ा, अन्तर्दशा के आरम्भ में क्लेश, मध्य तथा अन्त में सुख होते हैं। वही भौम दशेश से २।७ के अधिप हों तो शरीर में आलस्य तथा महाभय, होता है। शान्ति के लिए वृषदान करना चाहिए, जिससे आरोग्य-प्राप्ति हो ॥ ७९–८१ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे राहुदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः ।

अथ गुरुदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ५७ ॥

गुरुमहादशा में—

गुर्वन्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
अनेकराजराजो वा सम्पन्नो राजपूजितः ॥ १ ॥
गोमहिष्यादिलाभश्च वस्त्रवाहनभूषणम् ।
नूतनस्थाननिर्माणं हर्म्यप्राकारसंयुतम् ॥ २ ॥
गजान्तैश्वर्यसम्पत्तिर्भाग्यसत्कर्मसंयुता ।
ब्राह्मणप्रभुसम्मानं समानं प्रभुदर्शनम् ॥ ३ ॥

स्वप्रभोः स्वफलाधिक्यं लाभः स्याद्दारपुत्रयोः ।

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !)—त्रिकोण स्वोच्च, स्वभवन में स्थित गुरु हों तो गुरु की महादशा में गुर्वन्तर आनेपर जातक अनेक राजाओं का राजा तथा राजपूजित होता है । उस समय गवादिपशुलाभ, वस्त्र, वाहन, भूषण की प्राप्ति, हर्म्यंप्राकारयुक्त नवीन—स्थान का निर्माण, हाथी पर्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति, सौभाग्य तथा सत्कार्य का साम्राज्य, ब्राह्मण तथा राजा से सम्मान, राजदर्शन, और अपने प्रभु से विशेषलाभ, स्त्री पुत्र को भी लाभ, ये फल होते हैं ॥ १–३ ॥

नीचांशे नीचराशिस्थे षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥ ४ ॥
नीचसङ्गो महद्दुःखं दायादैः कलहः समम् ।
अविचारेण कलहोऽपमृत्युः स्वप्रभोरपि ॥ ५ ॥
पुत्रदारवियोगश्च धनधान्यार्थनाशनम् ।
सप्तमाधिपदोषेण देहबाधा भविष्यति ॥ ६ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।
रुद्रजाप्यं च गोदानं कुर्यादिष्टप्रदायकम् ॥ ७ ॥

यदि गुरु नीचराशि या नीच के नवांश में या ६।८।१२ में, हों तो अन्तर्दशाकाल में नीचों का सङ्ग, महादुःख, दायादों से झगड़ा, अविवेकपूर्ण कलह, अपने मालिक की अपमृत्यु, पुत्र स्त्री का वियोग, धन-धान्यक्षय, वही गुरु सप्तमेश हों तो शरीर की बाधा कहनी चाहिए। दोषशान्ति के लिए शिवनामसहस्र का पाठ, रुद्रजप, तथा गोदान करना चाहिए ॥ ४–७ ॥

—शन्यन्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रमित्रभे ।
लग्नात् केन्द्रत्रिकोणस्थे लाभे वा बलसंयुते ॥ ८ ॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं वस्त्राभरणसंयुतम् ।
धनधान्यादिलाभश्च स्त्रीलाभो बहुलं सुखम् ॥ ९ ॥
वाहनाम्बरपश्वादेर्लाभो भूस्थानयोरपि ।
पुत्रमित्रादिसौख्यं च नरवाहनजं तथा ॥ १० ॥
नीलवस्त्रादिलाभश्च नीलाश्वं लभते च सः ।
पश्चिमां दिशमाश्रित्य प्रयाणं राजदर्शनम् ॥ ११ ॥
अनेकयानलाभं च मन्दशुक्तिषु निर्दिशेत् ।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान में स्थित शनि हों तो गुरु की दशा में शन्यन्तर्दशा आनेपर राज्यलाभ, वस्त्र, आभूषण का महासौख्य, धनधान्यादि-

लाभ, स्त्रीलाभ, प्रचुरसुख, वाहन, वस्त्र, पशु, आदि का लाभ, भूमि तथा स्थान का लाभ, पुत्र मित्र का सुख, नरवाहन (पालकी) का सुख, नीलवस्त्र तथा नील घोड़े का लाभ होता है। पश्चिम दिशा की ओर यात्रा, राजदर्शन, अनेक सवारियों का लाभ भी कहना चाहिए ॥ ८–११ ॥

लग्नात् षष्ठाष्टमे मन्दे व्यये नीचेऽस्तगेऽप्यरौ ॥ १२ ॥
धनधान्यादिनाशश्च ज्वरपीडा मनोरुजा ।
स्त्रीपुत्रादिषु पीडा च व्रणार्त्यादिकमुद्भवेत् ॥ १३ ॥
गृहे त्वशुभकार्याणि भृत्यवर्गादिपीडनम् ।
गोमहिष्यादिहानिश्च बन्धुद्वेषो भविष्यति ॥ १४ ॥

६।८।१२ में, नीचराशि शत्रुक्षेत्र में या अस्तङ्गत, शनि हो तो गुरु की दशा में शनि की अन्तर्दशा आनेपर धनधान्य का नाश, ज्वर से क्लेश, मानसिक कष्ट, स्त्री पुत्र को भी कष्ट, व्रणजन्य पीड़ा का उद्भव, घर में अशुभ कार्योदय, भृत्यवर्ग को कष्ट, गो, महिषी, आदि पशुओं की हानि, बन्धुद्वेष, ये सभी फल होते हैं ॥ १२–१४॥

दायेशात् केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा ।
भूलाभश्चार्थलाभश्च पुत्रलाभसुखं भवेत् ॥ १५ ॥
गोमहिष्यादिलाभश्च शूद्रमूलाद्धनागमः ।

दशापति से केन्द्र कोण लाभस्थान, धनस्थान, इनमें शनि हों तो भूमि, अर्थ, पुत्र, गाय, भैंस आदि पशुओं का लाभ, शूद्रमूलक धनागम, ये फल होते हैं ॥ १५ ॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥ १६ ॥
धनधान्यादिनाशश्च बन्धुमित्रविरोधनम् ।
उद्योगभङ्गो देहार्त्तिः स्वजनानां महद् भयम् ॥ १७ ॥
द्विसप्तमाधिपे मन्दे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥ १८ ॥
कृष्णां गां महिषीं दद्यादनेनारोग्यमादिशेत् ।

दशापति से ६।८।१२ से सपाप शनि रहें तो अन्तर्दशा में धनधान्य का विनाश, बन्धु मित्रों से विरोध, उद्योग में बाधा, शरीर में पीड़ा, स्वजनों से भय, वही शनि २।७ के अधिप हों तो अपमृत्यु, ये सभी फल होते हैं। दोष शान्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ काली गाय, तथा भैंस का दान करें जिससे आरोग्य प्राप्त होता है ॥ १६–१८ ॥

—बुधान्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥ १९ ॥

स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि दशाधिपसमन्विते ।
अर्थनाशो देहसौख्यं राज्यलाभो महासुखम् ॥ २० ॥
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ।
वाहनाम्बरपश्वादिगोधनैः सङ्कुलं गृहम् ॥ २१ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वोच्च, तथा स्वभवन में स्थित बुध हो तो गुरु की दशा में बुधान्तर आनेपर अर्थनाश, देहसुख, राज्यलाभ, महासुख, राजो की कृपा से अभीष्टसिद्धि, वाहन, वस्त्र, तथा गवादि पशुओं से पूर्ण घर होता है ॥ १९–२१ ॥

महीसुतेन संदृष्टे शत्रुवृद्धिः सुखक्षयः ।
व्यवसायात् फलं नेष्टं ज्वरातीसारपीडनम् ॥ २२ ॥

बुध भौमदृष्ट हों तो अन्तर्दशाकाल में शत्रुवृद्धि, सुखनाश, व्यापार में घाटा, ज्वर, अतीसार से पीड़न होता है ॥ २२ ॥

दायेशात् केन्द्रगे कोणे गते वा तुङ्गसंस्थिते ।
स्वदेशे धनलाभश्च पितृमातृसुखावहः ॥ २३ ॥
गजवाजिसमायुक्तो राजमित्रप्रसादतः ।

दशापति से केन्द्र त्रिकोण या उच्चराशि में बुध हों तो अन्तर्दशाकाल में स्वदेश में ही धनागम, पितृमातृसुख, तथा राजा और मित्र की कृपा से हाथी घोड़ा से पूर्णता होती है ॥ २३ ॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥ २४ ॥
शुभदृष्टिविहीने च धनधान्यपरिच्युतिः ।
विदेशगमनं चैव मार्गे चौरभयं तथा ॥ २५ ॥
व्रणदाहाक्षिरोगश्च नानादेशाटनं भवेत् ।
लग्नात् षष्ठेऽष्टमे विप्र ! व्यये वा पापसंयुते ॥ २६ ॥
अकस्मात् कलहश्चैव गृहे निष्ठुरभाषणम् ।
चतुष्पाज्जीवजा हानिर्व्यवहारे तथैव च ॥ २७ ॥
अपमृत्युभयं चैव शत्रुभिः कलहो भवेत् ।

दशापति से ६।८।१२ में पापयुक्त बुध शुभग्रहों की दृष्टि से वञ्चित हों तो अन्तर्दशाकाल में धनधान्यक्षय, विदेशगमन, मार्ग में चोर का भय, व्रण, दाह तथा नेत्ररोग, अनेक देशों का भ्रमण, होता है। वही पापयुक्त बुध लग्न से ६।८।१२ में हों तो गुरुदशा में बुधान्तर आनेपर घर में अकस्मात् कलह, निष्ठुरभाषण, पशुओं की हानि, व्यापार में भी घाटा, अपमृत्युभय तथा शत्रुओं से झगड़ा होता है ॥२४-२७॥

शुभदृष्टे शुभैर्युक्ते दानसौख्यं धनागमः ॥ २८ ॥
आदौ शुभं देहसौख्यं लाभो वाहनवाससोः ।
अन्ते तु धनहानिश्चेत् स्वात्मसौख्यं न जायते ॥ २९ ॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥ ३० ॥

वही त्रिकस्थ बुध शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो अन्तर्दशाकाल में स्त्रीसौख्य, धनागम, अन्तर्दशा के आरम्भ में देहसुख, वाहन-वस्त्र का लाभ, अन्तर्दशा के अन्त में धनहानि तथा आत्मक्लेश होता है। वही बुध २।७ के अधिप हों तो अपमृत्यु होती है। दोष निवारण के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ करना चाहिये ॥२८-३०॥

—केत्वन्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते केतौ शुभग्रहसमन्विते ।
स्वल्पसौख्यं धनावाप्तिः कुत्सितान्नस्य भोजनम् ॥ ३१ ॥
श्राद्धान्नं वा परान्नं वा पापमूलाद्धनानि च ।

केतु यदि शुभग्रहयुक्त हों तो गुरु की दशा में केत्वन्तर्दशा आने पर स्वल्पसुख, धनप्राप्ति, कदन्न, श्राद्धान्न या परान्न का भोजन तथा पापमूलक धन की प्राप्ति होती है ॥ ३१ ॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥ ३२ ॥
राजकोपाद्धनच्छेदो बन्धनं रोगपीडनम् ।
बलहानिः पितृद्वेषो भ्रातृद्वेषो मनोरुजा ॥ ३३ ॥
दायेशात् सुतभाग्यस्थे वाहने कर्मगेऽपि वा ।
नरवाहनयोगश्च गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥ ३४ ॥
महाराजप्रसादेनाभीष्टकार्यार्थसिद्धयः ।
व्यवसायात् फलाधिक्यं गोमहिष्याद्यवाप्तयः ॥ ३५ ॥
यवनप्रभुमूलाद् वा संलाभो वित्तवाससाम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥ ३६ ॥
छागदानं प्रकुर्वीत मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
सर्वदोषप्रशमनीं शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥ ३७ ॥

सपाप केतु दशापति से ६।८।१२ में रहें तो गुरु की दशा में केत्वन्तर आने पर राजा के कोप से धनक्षय, बन्धन, रोग से कष्ट, बलक्षय, पिता, तथा भाई से द्वेष, मानसिक कष्ट ये सब होते हैं। वही केतु दशाधिपति से ९।५।४।१०

में रहे तो नरवाहनयोग (शिविकारूढ होकर चलना) हाथी घोड़े की भरमार, राजा की कृपा से अभीष्टसिद्धि, व्यवसाय में फलाधिक्य, गवादिपशुओं की प्राप्ति, यवनप्रभु से धन वस्त्र का लाभ होता है। वही दशेश से २।७। के अधिप हों तो शारीरिक बाधा होती है। शान्त्यर्थं छागदान, मृत्युञ्जय जप करना चाहिए ॥३२-३७॥

—शुक्रान्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा।
लाभे वा स्वोच्चराशिस्थे स्वक्षेत्रे शुभसंयुते ॥ ३८ ॥
नरवाहनयोगश्च गजाश्वाम्बरसंयुतिः।
महाराजप्रसादेन धनाधिक्यं महत् सुखम् ॥ ३९ ॥
पूर्वामाशां समाश्रित्य प्रयाणं धनलाभकृत्।
कल्याणं च महाप्रीतिः पितृमातृसुखावहा ॥ ४० ॥
देवतागुरुभक्तिश्चाप्यन्नदानं महत् तथा।
तडागगोपुरादीनि कुर्यात् पुण्यानि भूरिशः ॥ ४१ ॥

त्रिकोण, केन्द्र, लाभस्थान, स्वोच्च या स्वभवन में स्थित शुक्र शुभग्रह युक्त हो तो गुरु की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर नरवाहन योग (खड़खरिया पालकी पर चलना) हाथी घोड़े तथा वस्त्रों की भरमार, राजा की कृपा से धनाधिक्य, महासुख, पूर्वदिशा की यात्रा से धनलाभ, कल्याण, पिता माता को सुख देनेवाला प्रेम, देवता गुरु में भक्ति, अन्नदान, तालाब, गोशाला का निर्माण, तथा अनेक पुण्यकार्य होते हैं ॥ ३८–४१ ॥

षष्ठाष्टमव्यये नीचे दायेशाद्वा तथैव च।
कलहो बन्धुवैषम्यं दारपुत्रादिपीडनम् ॥ ४२ ॥
मन्दराहुसमायुक्ते कलहो राजतोऽतिभीः।
स्त्रीमूलात् कलहश्चैव श्वशुरात् कलहस्तथा ॥ ४३ ॥
सोदरेण विवादः स्याद् धनधान्यपरिच्युतिः।

लग्न या दशापति से ६।८।१२, या नीच में शुक्र हो तो शुक्रान्तर्दशा में झगड़ा, बन्धुओं में विरोध, स्त्री पुत्र आदि को कष्ट, वही शुक्र शनि, राहु से युक्त हों तो कलह, तथा राजा का अतिभय, स्त्रीमूलक कलह तथा श्वशुर से कलह सोदर से विवाद, तथा धनधान्यक्षय होता है ॥ ४२–४३ ॥

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे धने वा भाग्यगेऽपि वा ॥ ४४ ॥
धनधान्यादिलाभश्च स्त्रीलाभो राजदर्शनम्।
वाहनं पुत्रलाभश्च पशुवृद्धिर्महत् सुखम् ॥ ४५ ॥

गीतवाद्यप्रसङ्गादि विद्वज्जनसमागमः ।
दिव्यान्नभोजनं सौख्यं स्वबन्धुजनपोषणम् ॥ ४६ ॥

दशापति से केन्द्रराशि, धनस्थान या भाग्यस्थान में शुक्र हो तो गुरु की दशा में शुक्रान्तर आने पर धन-धान्यादि का लाभ, स्त्रीलाभ, राजदर्शन, वाहन, पुत्र का लाभ, पशुवृद्धि, महासुख, गान बाजे का सुख, विद्वज्जन से सङ्गति, दिव्यान्नभोजन, बन्धु-बान्धव का पोषण ये सभी फल होते हैं ॥ ४४–४६ ॥

द्विसप्तमाधिपे शुक्रे तद्दशायां वसुक्षयः ।
अपमृत्युभयं तस्य स्त्रीमूलादौषधादिभिः ॥ ४७ ॥
तस्य रोगस्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्म समाचरेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम् ॥ ४८ ॥

दशेश से २।७ के अधीश शुक्र हों तो अन्तर्दशा काल में धनक्षय, स्त्रीमूलक औषधादियों के द्वारा अपमृत्यु का भय, कहना चाहिए। शान्त्यर्थ शान्तिकर्म, श्वेत गाय, तथा भैंस का दान करें जिससे आयुरारोग्य की प्राप्ति होती है ॥ ४७–४८ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।
केन्द्रे वाथ त्रिकोणे च दुश्चिक्ये लाभगेऽपि च ॥ ४९ ॥
वित्ते वा बलसंयुक्ते दायेशाद् वा तथैव च ।
तत्काले धनलाभः स्याद् राजसम्मानवैभवम् ॥ ५० ॥
वाहनाम्बरपश्वादि भूषणं पुत्रसम्भवः ।
मित्रप्रभुवशादिष्टं सर्वकार्यं शुभावहम् ॥ ५१ ॥

स्वोच्च, स्वक्षेत्र लग्न या दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, तृतीयैकादश या वित्त स्थान में स्थित सबल सूर्य हों तो अन्तर्दशाकाल में धनलाभ, राजसम्मान-प्रयुक्त-ऐश्वर्य, वाहन, वस्त्र, पशु, भूषण की प्राप्ति, पुत्रसुख, मित्र तथा प्रभु के द्वारा सर्वकार्य-सिद्धि होती है ॥ ४९–५१ ॥

षष्ठाष्टमव्यये सूर्ये दायेशाद्वा तथैव च ।
शिरोरोगादिपीडा च ज्वरपीडा तथैव च ॥ ५२ ॥
सत्कर्मतो विहीनत्वं पापकर्मरतिस्तथा ।
सर्वत्र जनविद्वेषो वियोगश्चात्मबन्धुभिः ॥ ५३ ॥
अकस्मात् कलहश्चैव जीवस्यान्तर्गते रवौ ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति ॥ ५४ ॥

तद्दोषपरिहारार्थमादित्यहृदयं जपेत् ।
सर्वपीडोपशमनं सूर्यपूजनमाचरेत् ॥ ५५ ॥

लग्न या दशेश से ६।८।१२ में सूर्य रहें तो गुरु की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा आनेपर शिरोवेदना, ज्वरपीड़ा, सत्कर्म से दूरता, पापकर्म में रति, सर्वत्र लोगों से विद्वेष, आत्मबन्धुओं से वियोग, एकाएक झगड़ा, वही सूर्य यदि २।७ के अधिप हों तो शारीरिक बाधा, ये सभी फल होते हैं। दोषशान्ति के लिए आदित्य हृदयपाठ तथा जप और सूर्यपूजन करना चाहिए॥ ५२–५५ ॥

—चन्द्रान्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते चन्द्रे केन्द्रे लग्नत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षराशिस्थे पूर्णे चन्द्रे बलैर्युते ॥ ५६ ॥
दायेशात् शुभराशिस्थे राजसम्मानवैभवम् ।
दारपुत्रादिसौख्यं च क्षीराणां भोजनं तथा ॥ ५७ ॥
सत्कर्म च तथा कीर्त्तिः पुत्रपौत्रादिवर्धनम् ।
महाराजप्रसादेन सर्वसौख्यं धनागमः ॥ ५८ ॥
अनेकजनसौख्यं च दानधर्मादिसंग्रहः ।

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च या स्वभवन में प्रबल पूर्णचन्द्र हों तथा दशापति से शुभराशि में हों तो राजसम्मान, ऐश्वर्य, स्त्रीपुत्रसुख, दुग्धपूर्ण भोजन, सत्कर्म, यश, पुत्रपौत्रादि की वृद्धि, राजा की कृपा से सर्वविधसौख्य, धनागम, अनेक लोगों से सुख, दानधर्म में प्रवृत्ति ये सभी फल होते हैं ॥ ५६–५८ ॥

षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे गते वा पापसंयुते ।
दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ॥ ५९ ॥
मानार्थबन्धुहानिश्च विदेशपरिविच्युतिः ।
नृपचौरादिपीडा च दायादैः कलहः समम् ॥ ६० ॥
मातुलादिवियोगश्च मातृपीडा तथैव च ।

लग्न या दशापति से निर्बल तथा पापयुक्त चन्द्र ६।८।१२ में हों तो गुरु की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा आने पर मान, धन, तथा बन्धुओं की हानि, विदेशाटन, राजा, चोर, आदियों से कष्ट, दायादों से कलह, मामा का वियोग तथा माता को कष्ट, ये सभी फल होते हैं ॥ ५९–६० ॥

द्वितीयद्यूनषष्ठेशे देहपीडा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गापाठं च कारयेत् ॥ ६१ ॥

द्वितीयेश सप्तमेश या षष्ठेश चन्द्र हों तो अपनी अन्तर्दशा में शरीर में कष्ट कारक होते हैं। दोषपरिहार के लिए दुर्गापाठ करना चाहिए ॥ ६१ ॥

—कुजान्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते भौमे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ ६२ ॥
विद्याविवाहकार्याणि ग्रामभूम्यादिकागमः ।
जनसामर्थ्यमाप्नोति सर्वकार्यार्थसिद्धिदम् ॥ ६३ ॥

लग्न से केन्द्र त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन, उच्चांश, या स्वनवांश में भौम हों तो गुरु की दशा में भौमान्तर्दशा आने पर विद्या, विवाहकार्य, ग्राम तथा भूमि का लाभ, होता है। ऐसे समय में जातक सर्वकार्यसिद्धिप्रद लोकबल प्राप्त करता है ॥६२–६३॥

दायेशात् केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे धनधान्यादिसम्पदः ॥ ६४ ॥
मिष्टान्नदानविभवो राजप्रीतिः शुभावहा ।
स्त्रीसौख्यं च सुतावाप्तिः पुण्यतीर्थफलं भवेत् ॥ ६५ ॥

दशापति से केन्द्र, कोण, लाभस्थान तथा धनस्थान में शुभग्रहों से युक्त या दृष्ट भौम हों तो अन्तर्दशाकाल में धनधान्य तथान्य सम्पत्तियों की प्राप्ति, मिष्टान्नदान का ऐश्वर्य, शुभप्रद-राजप्रेम, स्त्रीसुख, पुत्रप्राप्ति, तथा पुण्यतीर्थफलोदय, ये सभी फल होते हैं ॥ ६४–६५ ॥

दायेशादष्टमे वापि व्यये वा नीचगेऽपि वा ।
पापयुक्तेक्षिते वापि धान्यार्थगृहनाशनम् ॥ ६६ ॥
नानारोगमयं दुःखं नेत्ररोगादिसम्भवम् ।
पूर्वार्धे त्वधिकः क्लेशोऽपरार्धे च महत् सुखम् ॥ ६७ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजा ।
अनड्वाहं प्रदद्याच्च सर्वशान्तिप्रदायकम् ॥ ६८ ॥

दशापति से ८।१२ में या नीच में स्थित मंगल पापग्रह युक्त या दृष्ट हों तो अपनी अन्तर्दशा में धन, धान्य, तथा घर का नाश, अनेक रोगमय क्लेश नेत्ररोग, पूर्वार्ध में अधिक कष्ट उत्तरार्ध में सुख, वही मंगल २।७। के अधिप हों तो शरीर में पीड़ा तथा मानसिक व्यथा होती है। दोषशान्ति के लिए वृषदान करना चाहिए ॥ ६६–६८ ॥

—राह्वन्तर्दशाफल—

जीवस्यान्तर्गते राहौ स्वोच्चे वा केन्द्रगेऽपि वा ।
मूलत्रिकोणे कोणे च केन्द्राधिपसमन्विते ॥ ६९ ॥

शुभयुक्तेक्षिते वापि योगप्रीतिं समादिशेत् ।
भुक्त्यादौ शरमासांश्च लाभःस्याद्धनधान्ययोः ॥ ७० ॥
देशग्रामाधिकारश्च यवनप्रभुदर्शनम् ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिः सेनापत्यं विशेषतः ॥ ७१ ॥
दूरयात्राधिगमनं पुण्यधर्मादिसङ्ग्रहः ।
सेतुस्नानफलावाप्तिरिष्टसिद्धिः सुखप्रदा ॥ ७२ ॥

स्वोच्च, स्वभवन, मूलत्रिकोण लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में स्थित राहु केन्द्रेश-युक्त, शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो गुरु की दशा में राहु की अन्तर्दशा आने पर योग से प्रेम कहना चाहिए। अन्तर्दशा के आरम्भ में पाँच महीनों तक धनधान्य का लाभ, देश या ग्राम का अधिकार, यवन राजा का दर्शन, घर में कल्याण तथा सम्पत्ति, सेनापतित्व, दूर की यात्रा, पुण्यप्रद धर्मकर्मादि, सेतुस्नान, तथा सुखद अभीष्टसिद्धि होती है ॥ ६९–७२ ॥

दायेशाद्रन्ध्रगेहे वा व्ययगे पापसंयुते ।
चौराहिव्रणभीतिश्च राजवैषम्यमेव च ॥ ७३ ॥
गृहे कर्मकलापेन व्याकुलो भवति ध्रुवम् ।
सोदरेण विरोधः स्याद् दायादाद्यैः कलिस्तथा ॥ ७४ ॥
गृहे त्वशुभकार्याणि दुःस्वप्नादिभयं ध्रुवम् ।
अकस्मात् कलहश्चैव क्षुद्रशून्यादिकामयः ॥ ७५ ॥
द्विसप्तमस्थिते राहौ देहबाधां विनिर्दिशेत् ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥ ७६ ॥
छागदानं प्रकुर्वीत सर्वसौख्यं तथा भवेत् ।
जपपूजनतो राहुसंतुष्टिः स्यान्न संशयः ॥ ७७ ॥

दशापति से ८।१२ में पापयुक्त राहु रहें तो अन्तर्दशाकाल में चोर, सर्प, तथा व्रण का भय, राजा से विरोध, घर में कार्याधिक्य से व्याकुलता, सोदर से विरोध, दायादों के साथ भी झगड़ा, घर में अशुभकार्य, दुःस्वप्न का भय, एकाएक कलह, क्षुद्रशून्यादिक रोग, ये सभी फल होते हैं। वही राहु दशेश से २।७ में रहें हों तो शरीर में बाधा कहनी चाहिए। दोषशान्ति के लिए मृत्युञ्जयजप, छागदान करना चाहिए ॥ ७३–७७ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे गुरुदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः ।

अथ शनिदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ५८ ॥

शनि की महादशा में—

—शन्यन्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

मूलत्रिकोणे स्वर्क्षे वा तुलायामुच्चगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा राजयोगादिसंयुते ॥ १ ॥
राज्यलाभो महत् सौख्यं दारपुत्रादिवर्धनम् ।
वाहनत्रयसंयुक्तं गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥ २ ॥
महाराजप्रसादेन बलाधीशत्वमाप्नुयात् ।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याल्लाभो ग्रामादिकस्य च ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !)—मूलत्रिकोण, स्वभवन, तुला या उच्च, केन्द्र या त्रिकोण में राजयोगयुक्त शनि हों तो शनि की दशा में शन्यन्तर आने पर राज्यलाभ, महासौख्य, स्त्रीपुत्र को अभिवृद्धि, वाहनत्रय का सौख्य, हाथी घोड़ा वस्त्रादि की अधिकता, राजा की कृपा से सेनापतित्व, पशुलाभ, ग्रामादिक का लाभ, ये सभी फल होते हैं ॥ १–३ ॥

अप्यष्टमे व्यये मन्दे नीचे वा पापसंयुते ।
तद्भुक्त्यादौ राजतोभीर्विषशस्त्रादिपीडनम् ॥ ४ ॥
रक्तस्रावो गुल्मरोगश्चातिसारादिपीडनम् ।
मध्ये चौरादिभीतिश्च देशत्यागो मनोरुजा ॥ ५ ॥
अन्ते तु शुभदा भुक्तिर्ग्रामभूम्यादिलाभदा ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ ६ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
प्रसन्नः शङ्करः सद्यः सर्वक्लेशहरो भवेत् ॥ ७ ॥

अष्टम, द्वादश, या नीचराशि में सपाप शनि हों तो अपनी दशान्तर्दशा के आरम्भ में राजा से भय, विषशस्त्रादि की पीड़ा, रक्तस्राव, गुल्मरोग, अतीसार का कष्ट, अन्तर्दशा के मध्य में चौरादि का भय, देशत्याग, मानसिक कष्ट, दशान्त में ग्राम, भूमि आदि का लाभ, वही शनि २।७ के स्वामी हों तो अपमृत्यु होती है। दोषपरिहार के लिए मृत्युञ्जय जप करना चाहिए, शंकर प्रसन्न सभी कष्टों का हारक होते हैं ॥ ४–७ ॥

—बुधान्तर्दशाफल—

मन्दस्यान्तर्गते सौम्ये त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा ।
सम्मानं चाधितयशो विद्यालाभं धनागमम् ॥ ८ ॥

स्वदेशे सुखमाप्नोति वाहनादिफलैर्युतम् ।
यज्ञादिकर्मसिद्धिश्च राजयोगादिसम्भवः ॥ ९ ॥
देहसौख्यं हृदुत्साहो गृहे कल्याणसम्भवः ।
सेतुस्नानफलावाप्तिस्तीर्थयात्रादिकर्मणा ॥ १० ॥
वाणिज्याद् धनलाभश्च पुराणश्रवणादिकम् ।
अन्नदानफलं चैव नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥ ११ ॥

बुध त्रिकोण या केन्द्रस्थ हों तो शनि की महादशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर, सम्मान, अपार यश, विद्यालाभ, धनागम, वाहनादिसुख, यज्ञादि कार्यों की सिद्धि, राजयोगादि, शरीरसुख, मानसिक उत्साह, घर में कल्याण, तीर्थयात्रा द्वारा समुद्रस्नान, वाणिज्य से धनलाभ, पुराणश्रवण, अन्नदान, नित्य मिष्टान्न (मिठाई) का भोजन, ये सभी फल होते हैं ॥ ८–११ ॥

षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये नीचे वाऽस्तंगते सति ।
रव्यारफणिसंयुक्ते दायेशाद्वा तथैव च ॥ १२ ॥
नृपाभिषेकमर्थाप्तिर्देशग्रामाधिकारिता ।
फलमीदृशमादौ तु मध्यान्ते रोगपीडनम् ॥ १३ ॥
नष्टानि सर्वकार्याणि व्याकुलत्वं महद् भयम् ।
द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥ १४ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ।
अन्नदानं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ १५ ॥

लग्न या दशेश से ६।८।१२ में, नीचराशि में स्थित या अस्तंगत बुध, सूर्य, मंगल, राहु से युक्त हों तो शनिदशा में बुध की अन्तर्दशा आने पर राजतिलक, धनप्राप्ति, देश या गांव का स्वामित्व, ऐसा फल अन्तर्दशा के आरम्भ में कहें । मध्य तथा अन्त में रोग से कष्ट, सभी कार्यों की सिद्धि में बाधा, व्याकुलता, महाभय, ये सब होते हैं । वही बुध २।७। के अधिप हों तो शारीरिक बाधा होती है । दोष-परिहार के लिए विष्णुसहस्रनामजप, अन्नदान करें ॥ १२–१५ ॥

—केत्वन्तर्दशा-फल—

मन्दस्यान्तर्गते केतौ शुभदृष्टियुतेक्षिते ।
स्वोच्चे वा शुभराशिस्थे योगकारकसंयुते ॥ १६ ॥
केन्द्रगे कोणसंस्थे वा स्थानभ्रंशो महद् भयम् ।
दारिद्र्यबन्धनं भीतिः पुत्रदारादिनाशनम् ॥ १७ ॥
स्वप्नभोश्च महान् क्लेशो विदेशगमनं तथा ।

लग्नाधिपेन संयुक्ते त्वादौ सौख्यं धनागमः ॥ १८ ॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नानं दैवतदर्शनम् ।

केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, या शुभराशि, में स्थित केतु योगकारकग्रहों तथा शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हों तो शनि की दशा में केत्वन्तर्दशा आने पर स्थानभ्रंश, महाभय, दारिद्र्य तथा बन्धन (जेल) भय, स्त्रीपुत्र का नाश, अपने मालिक से महान् क्लेश, विदेशयात्रा, ये फल होते हैं। लग्नेशयुक्त केतु हों तो अन्तर्दशा के आरम्भ में सुख धनागम, गङ्गादि सब तीर्थों में स्नान तथा देवताओं का दर्शन होता है ॥ १६–१८ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा तृतीयायगते ध्वजे ॥ १९ ॥
सामर्थ्यं, धर्मबुद्धिश्च सौख्यं नृपसमागमः ।

दशेश से केन्द्र या त्रिकोण, तथा ३।११ में केतु हों तो अन्तर्दशा में सामर्थ्य, धार्मिकबुद्धि, सुख, तथा राजा का समागम होता है ॥ १९ ॥

रन्ध्रेऽथवा व्यये केतौ दायेशाद् वा तथैव च ॥ २० ॥
अपमृत्युभयं चैव कुत्सितान्नस्य भोजनम् ।
शीतज्वरोऽतिसारश्च व्रणचौरादिपीडनम् ॥ २१ ॥
दारपुत्रवियोगश्च संसारे भवति ध्रुवम् ।
द्वितीयद्यूनराशिस्थे देहपीडा भविष्यति ॥ २२ ॥
छागदानं प्रकुर्वीत ह्यपमृत्युभयापहम् ।

लग्न या दशेश से केतु ८।१२ में हों तो अपमृत्युभय, कदन्नभोजन, शीतज्वर, अतीसार व्रण, चोर आदियों से कष्ट, स्त्रीपुत्र से वियोग होता है। वही केतु २।७ में हों तो शरीरबाधा होती है। अपमृत्यु को हटाने के लिए छागदान करना चाहिए ॥ २०–२२ ॥

—शुक्रान्तर्दशा-फल—

मन्दस्यान्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥ २३ ॥
केन्द्रे वा शुभसंयुक्ते त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।
दारपुत्रधनप्राप्तिर्देहारोग्यं महोत्सवः ॥ २४ ॥
गृहे कल्याणसम्पत्ती राज्यलाभो महत् सुखम् ।
महाराजप्रसादेनाभीष्टसिद्धिः सुखावहा ॥ २५ ॥
सम्मानं प्रभुसम्मानं लाभः स्यात् प्रियवाससाम् ।
द्वीपान्तराद् वस्त्रलाभः श्वेताश्वो महिषी तथा ॥ २६ ॥

गुरुचारवशाद् भाग्यं सौख्यं च धनसम्पदः ।
शनिचारान्मनुष्योऽसौ योगमाप्नोत्यसंशयम् ॥ २७ ॥

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, या लाभस्थान में स्थित शुक्र शुभग्रह युक्त या दृष्ट हों तो शनि की महादशा में शुक्रान्तर आनेपर स्त्री, पुत्र, धन की प्राप्ति, शारीरिक आरोग्य, महोत्सव, घर में कल्याण तथा सम्पत्ति, राज्यलाभ, महासुख, राजा की कृपा से सुखप्रद अभीष्टसिद्धि, जनादर, तथा राजा से सम्मान, प्रिय वस्त्रों का लाभ, द्वीपान्तर से वस्त्र, श्वेताश्व, महिषी का लाभ, सञ्चार वश गुरु की अनुकूलता से सुख, धनसम्पत्ति, शनि की अनुकूलता से योगकर्म की प्राप्ति होती है ॥ २४–२७॥

शत्रुनीचास्तगे शुक्रे षष्ठाष्टव्ययराशिगे ।
दारनाशो मनःक्लेशः स्थाननाशो मनोरुजा ॥ २८ ॥
दाराणां स्वजनक्लेशः संतापः कलहो जनैः ।
दायेशाद् भाग्यगे चैव केन्द्रे वा लाभसंयुते ॥ २९ ॥
राजप्रीतिकरं चैव मनोऽभीष्टप्रदायकम् ।
दानधर्मदयायुक्तं तीर्थयात्रादिकं फलम् ॥ ३० ॥
शास्त्रार्थकाव्यरचना वेदान्तश्रवणादिकम् ।
दारपुत्रादिसौख्यं च संलाभश्छत्रयानयोः ॥ ३१ ॥

शत्रुगृह, नीचराशि, अस्तंगत या त्रिक में स्थित शुक्र हों तो अन्तर्दशा में स्त्रीनाश, मनोव्यथा, स्थाननाश, स्त्री तथा बन्धुजनों में क्लेश, सन्ताप, लोगों से झगड़ा होता है ।

दशापति से केन्द्र भाग्यस्थान या लाभस्थान में प्राप्त शुक्र हो तो शनि की दशा में अपनी अन्तर्दशा आने पर राजा की कृपा, मनोभीष्ट सिद्धि, दान, धर्म, दया से युक्त—तीर्थयात्रादिफल, शास्त्रार्थ, काव्यरचना, वेदान्तश्रवण, स्त्री, पुत्र का सौख्य, छत्र तथा वाहन की प्राप्ति (होती है) ॥ २८–३१ ॥

दायेशाद् व्ययगे शुक्रे षष्ठे वा ह्यष्टमेऽपि वा ।
नेत्रपीडा ज्वरभयः स्वकुलाचारवर्जनम् ॥ ३२ ॥
कपोले दन्तशूलादि हृदि गुह्ये च पीडनम् ।
जलभीतिर्मनस्तापो वृक्षात् पतनसम्भवः ॥ ३३ ॥
राजद्वारे जनद्वेषः सोदरेण विरोधनम् ।
द्वितीयसप्तमाधीशे चात्मक्लेशो भविष्यति ॥ ३४ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम् ॥ ३५ ॥

शुक्र दशेश से ६।८।१२। में रहें तो अन्तर्दशाकाल में नेत्रपीड़ा, ज्वर का भय, कुलाचार से राहित्य, कपोल तथा दांत में शूल, हृदय, तथा गुदा में पीड़ा, जलभय, मनस्ताप, पेड़ से गिरने की सम्भावना, राजदरबार में जनद्वेष, तथा सोदर से विरोध होता है। वही शुक्र २।७ के अधिप हों तो आत्मक्लेश होता है। दोषशान्ति के लिए दुर्गादेवी का जप, श्वेत गाय, भैंस का दान आयु तथा आरोग्यवर्धक होता है॥ ३२–३५॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

मन्दस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा।
भाग्याधिपेन संयुक्ते केन्द्रलाभत्रिकोणगे॥ ३६॥
शुभदृष्टियुते वापि स्वप्रभोश्च महत् सुखम्।
गृहे कल्याणसम्पत्तिः पुत्रादिसुखवर्धनम्॥ ३७॥
वाहनाम्बरपश्वादि-गोक्षीरैः संकुलं गृहम्।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्रत्रिकोण, लाभस्थानगत सूर्य भाग्येश के साथ हों शुभ ग्रहों की दृष्टि या योग उन पर हों तो शनि की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा आने पर अपने स्वामी से महासुख, घर में कल्याण, तथा सम्पत्ति, पुत्रादिसुखवृद्धि, सवारी, पशु, वस्त्र, गोदुग्ध से परिपूर्ण घर होता है॥ ३६–३७॥

लग्नाद्रन्ध्रे व्यये भानौ दायेशाद्वा तथैव च॥ ३८॥
हृद्रोगो मानहानिश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा।
इष्टबन्धुवियोगश्चाप्युद्योगस्य विनाशनम्॥ ३९॥
तापज्वरादिपीडा च व्याकुलत्वं भयं तथा।
आत्मसम्बन्धिमरणं वियोगश्चेष्टवस्तुनः॥ ४०॥

सूर्य लग्न या दशापति से ८।१२ स्थानों में रहें तो सूर्यान्तर्दशा में हृदयरोग, मानहानि, स्थाननाश, मनोव्यथा, इष्टमित्रों से वियोग, उद्योग का विनाश, तापज्वर आदि की पीड़ा, व्याकुलता, भय, अपने सम्बन्धियों का मरण, इष्टवस्तु (से) वियोग ये फल होते हैं॥ ३८–४०॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति।
तद्दोषपरिहारार्थं सूर्यपूजां च कारयेत्॥ ४१॥

२।७ के सूर्य अधीश रहें तो अन्तर्दशा काल में शारीरिककष्टदायक होते हैं। दोषपरिहार के लिए सूर्यपूजन करें॥ ४१॥

—चन्द्रान्तर्दशा-फल—

मन्दस्यान्तर्गते चन्द्रे जीवदृष्टिसमन्विते।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा॥ ४२॥

पूर्णे तु सद्ग्रहैर्युक्ते राजप्रीतिसमागमः ।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥ ४३ ॥
सौभाग्यं सुखवृद्धिश्च परिचारकपालनम् ।
पितृमातृकुले सौख्यं पशुवृद्धिः सुखावहा ॥ ४४ ॥

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान में स्थित पूर्णचन्द्र गुरुदृष्ट या गुरुयुक्त हों अन्यशुभग्रहों का भी योग रहे तो शनि की दशा में चन्द्रान्तर्दशा आने पर राजप्रीति, राजकृपा से वाहन, वस्त्र, भूषणकी प्राप्ति, सौभाग्योदय, सुखवृद्धि, सेवकों का पालन, पितृमातृकुल में सुख, सुखप्रद पशुवृद्धि, ये फल होते हैं ॥ ४२–४४ ॥

क्षीणे वा पापसंयुक्ते पापदृष्टे च नीचगे ।
क्रूरांशकगते वापि क्रूरक्षेत्रगतेऽपि वा ॥ ४५ ॥
जातकस्य महत् कष्टं राजकोपो धनक्षयः ।
पितृमातृवियोगश्च पुत्रीपुत्रादिकामयः ॥ ४६ ॥
व्यवसायात् फलं नेष्टं नानामार्गे धनव्ययः ।
अकाले भोजनं चैवमौषधस्य च भक्षणम् ॥ ४७ ॥
ज्ञेयमेतत् फलं प्रोक्तमादौ सौख्यं धनागमः ।

नीचराशिस्थ, पापयुक्त या पापदृष्ट–क्षीणचन्द्र पापक्षेत्र या पापग्रह के नवांशगत हों तो अन्तर्दशाकाल में जातक को महान् कष्ट, राजकोप, धननाश, पितृमातृवियोग, पुत्र-पुत्री को रोग, उद्योग में हानि, अनेक रूप में धनक्षय; असमय में भोजन, औषध का सेवन, अन्तर्दशारम्भ में सुख तथा धनागम, ये सभी फल होते हैं ४५–४७

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।
वाहनाम्बरपश्वादिभ्रातृवृद्धिः सुखावहा ॥ ४८ ॥
पितृमातृसुखावाप्तिः स्त्रीसौख्यं च धनागमः ।
मित्रप्रभुवशादिष्टं सर्वसौख्यं शुभावहम् ॥ ४९ ॥
दायेशादष्टमे किं वा द्वादशे बलवर्जिते ।
शयनं रोग आलस्यं स्थानभ्रंशः सुखापहः ॥ ५० ॥
शत्रुवृद्धिर्विरोधश्च विग्रहश्चेष्टबन्धुभिः ।

चन्द्रमा दशेश से केन्द्र त्रिकोण या लाभ स्थान में रहें तो अपनी अन्तर्दशा में वाहन, वस्त्र, पशु तथा बन्धुओं का सुख, मातृ, पितृ, स्त्री का सुख, धनागम, मित्र तथा प्रभु के द्वारा सर्वसौख्यप्राप्ति, होती है । निर्बल चन्द्र दशापति से ८।१२ में रहें तो

अन्तर्दशा में अधिक शयन रोग, आलस्य, सुखनाशक स्थानभ्रंश, शत्रुओं की वृद्धि तथा विरोध, तथा इष्ट बन्धुओं के साथ विग्रह होता है ॥ ४८–५० ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहालस्यं भविष्यति ।
तद्दोषशमनार्थं च तिलहोमादिकं चरेत् ॥ ५१ ॥
गुडं घृतं च दध्नाक्तं तण्डुलं च यथाविधि ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यलब्धये ॥ ५२ ॥

वही चन्द्र दशेश से २।७। के अधिप हों तो शनिदशा के अपनी अन्तर्दशा-काल में शरीरबाधा, आलस्य आदि के कारक होते हैं। दोषशान्ति के लिए तिल से होम, गुड़, घृत, दधियुक्त तण्डुल, श्वेत गाय, भैंस ये सब दान करें जिससे आयु तथा आरोग्य की लब्धि होती है ॥ ५१–५२ ॥

—भौमान्तर्दशाफल—

मन्दस्यान्तर्गते भौमे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
तुङ्गे स्वक्षेत्रगे वापि दशाधिपसमन्विते ॥ ५३ ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते त्वादौ सौख्यं धनागमः ।
राजप्रीतिकरं सौख्यं वाहनाम्बरभूषणम् ॥ ५४ ॥
सेनापत्यं नृपप्रीतिः कृषिगोधान्यसम्पदः ।
नूतनस्थाननिर्माणं भ्रातृवर्गेष्टजं सुखम् ॥ ५५ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, उच्च, स्वभवन में स्थित भौम दशेश तथा लग्नेश के साथ हों तो शनि की दशा में मंगल की अन्तर्दशा आने पर सौख्य, धनागम, राजप्रेम, वाहन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, सेनाधिपत्य, राजा का आदर, खेती, पशु तथा धान्यसम्पत्तियों की वृद्धि, नवीन स्थान का निर्माण, भ्रातृवर्ग से इष्टसिद्धि ये सभी फल होते हैं ॥ ५३–५५ ॥

नीचे चास्तंगते भौमे चाष्टमव्ययराशिगे ।
पापदृष्टियुते वापि धनहानिर्भविष्यति ॥ ५६ ॥
चौराहिव्रणशस्त्रादि-ग्रन्थिरोगादिपीडनम् ।
भ्रातृपित्रादिपीडा च दायादैः कलहस्तथा ॥ ५७ ॥
चतुष्पाज्जीवहानिश्च कुत्सितान्नस्य भोजनम् ।
विदेशगमनं चैव नानामार्गे धनव्ययः ॥ ५८ ॥
अष्टमद्यूननाथे तु द्वितीयस्थेऽथवा यदि ।
अपमृत्युभयं चैव नानाकष्टं पराभवः ॥ ५९ ॥

तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिहोमं च कारयेत् ।
कुर्याद् वृषभदानं च सर्वारिष्टनिवारणम् ॥ ६० ॥

भौम नीचराशि या लग्न से ८।१२ में या अस्तंगत होकर पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो अन्तर्दशा में धनहानि होती है। चोर, सर्प, व्रण, शस्त्र, गँठिया रोगादियों की पीड़ा, भाई पिता को कष्ट, दायादों के साथ झगड़ा, पशुहानि, कदन्नभोजन, विदेशयात्रा, अनेक तरह से धनक्षय, ये सभी फल होते हैं।

वही मंगल अष्टम या सप्तम के अधीश हों या धनराशिगत हों तो अपमृत्युभय, अनेक कष्ट तथा पराजय, होती है। दोषपरिहार के लिए शान्तिहोम तथा वृषभदान करना चाहिए ॥ ५६—६० ॥

—राह्वन्तर्दशाफल—

मन्दस्यान्तर्गते राहौ कलहश्च मनोव्यथा ।
देहपीडामनस्तापः पुत्रद्वेषो गदाद् भयम् ॥ ६१ ॥
अर्थव्ययो राजभयं विरोधः स्वजनादिभिः ।
विदेशगमनं चैव गृहक्षेत्रादिनाशनम् ॥ ६२ ॥

शनि की दशा में राहु की अन्तर्दशा कलह, मानसिक कष्ट, शरीरपीड़ा, मनस्ताप, पुत्रों से द्वेष, रोगभय, धनक्षय, स्वजनों से विरोध, विदेश-गमन, गृह, क्षेत्रादि का विनाशकारक होती है ॥ ६१—६२ ॥

लग्नाधिपेन संयुक्ते योगकारकसंयुते ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे केन्द्रे दायेशाल्लाभराशिगे ॥ ६३ ॥
आदौ सौख्यं धनावाप्तिं गृहक्षेत्रादिसम्पदम् ।
देवब्राह्मणभक्तिं च तीर्थयात्रादिकं वदेत् ॥ ६४ ॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् गृहे कल्याणवर्धनम् ।
मध्ये तु राजभीतिश्च पुत्रमित्रविरोधनम् ॥ ६५ ॥

वही राहु स्वोच्च, स्वभवन दशापति से केन्द्र या लाभराशि में स्थित होकर लग्नेश तथा योगकारक ग्रह से युक्त हों तो अन्तर्दशा आने पर आरम्भ में सौख्य, धनागम, गृह, क्षेत्र तथान्य सम्पदाएँ, देवब्राह्मणभक्ति, तीर्थयात्रा, पशुओं (से लाभ) घर में कल्याणवृद्धि, ये फल होते हैं। अन्तर्दशा के मध्य में राजभय, पुत्र तथा मित्रों से विरोध होता है ॥ ६३—६५ ॥

मेषे गतेऽथ कन्यायां कुलीरे वृषभे तथा ।
मीनकोदण्डसिंहेषु गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ॥ ६६ ॥
राजसम्मानभूषाप्तिर्मृदलाम्बरजं सुखम् ।

द्विसप्तमाधिपैर्युक्ते देहबाधा भविष्यति ॥ ६७ ॥
मृत्युञ्जयं छागदानं वृषदानं तथैव च ।
कारयेद् वै भक्तिपूर्वं सर्वसम्पत्सुखावहम् ॥ ६८ ॥

राहु मेष, कन्या, कर्क, वृष, मीन, धन, सिंह इन राशियों में हों तो अपनी अन्तर्दशा में हाथी पर्यन्त ऐश्वर्य, राजसम्मान, भूषण, कोमलवस्त्रजसुख, प्रदान करते हैं। वही राहु द्वितीयेश या सप्तमेश से युक्त हों तो शारीरिक बाधा होती है। दोषपरिहारार्थ मृत्युञ्जयजप, वृषभदान, छागदान करावें जिससे सर्वथा सुखसम्पत्ति होवे ॥ ६६–६८ ॥

—गुर्वन्तर्दशाफल—

मन्दस्यान्तर्गते जीवे केन्द्रे लाभत्रिकोणगे ।
लग्नाधिपेन संयुक्ते स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥ ६९ ॥
सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्याच्छोभनं भवति ध्रुवम् ।
महाराजप्रसादेन धनवाहनभूषणम् ॥
सम्मानं प्रभुसम्मानं लाभः स्यात् प्रियवाससाम् ॥ ७० ॥
देवतागुरुभक्तिश्च विद्वज्जनसमागमः ॥ ७१ ॥
दारपुत्रादिलाभश्च पुत्रकल्याणवैभवम् ।

स्वोच्च, स्वक्षेत्र, केन्द्र, त्रिकोण, या लाभस्थान में स्थित गुरु लग्नेशयुक्त हों तो शनि की महादशा में गुर्वन्तर्दशा आने पर समस्त कार्यों की सिद्धि, सर्वथा शुभ, राजा की कृपा से धन, वाहन, भूषण की प्राप्ति, जनता तथा राजा के द्वारा सम्मान, प्रियवस्त्रप्राप्ति, देवता गुरु में भक्ति, विद्वानों से सङ्गति, स्त्री-पुत्रादि को लाभ, पुत्र-कल्याण, ये सभी फल होते हैं ॥ ६९–७१ ॥

षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वा पापसंयुते ॥ ७२ ॥
आत्मसम्बन्धिमरणं धनधान्यविनाशनम् ।
राजस्थाने जनद्वेषः कार्यहानिर्भविष्यति ॥ ७३ ॥
विदेशगमनं चैव कुष्ठरोगादिसम्भवः ।
दायेशात् केन्द्रकोणे वा धने वा लाभगेऽपि वा ॥ ७४ ॥
विभवो दारसौभाग्यं राजश्रीधनसम्पदः ।
भोजनाम्बरसौख्यं च दानधर्मादिकं भवेत् ॥ ७५ ॥
ब्रह्मप्रतिष्ठासिद्धिश्च क्रतुकर्मभवं फलम् ।
अन्नदानं महाकीर्त्तिर्वेदान्तश्रवणादिकम् ॥ ७६ ॥

सपाप गुरु नीच या ६।८।१२ में हों तो शनि की दशा में गुरु की अन्तर्दशा आनेपर सम्बन्धिजन की मृत्यु, धनधान्यक्षय, राजदरबार में लोगों से विरोध, कार्यक्षति, विदेशयात्रा, कुष्ठादि रोगोत्पत्ति, ये सब फल होते हैं। वहीं गुरु दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, धनस्थान, या लाभस्थान में हों तो अन्तर्दशाकाल में ऐश्वर्य, स्त्रीसौभाग्य, राजलक्ष्मी, धन-सम्पत्ति की प्राप्ति, भोजन-वस्त्र का सुख, दानधर्माचरण, वेदान्तज्ञान, यज्ञकर्मफल, अन्नदान, महायश तथा वेदान्तश्रवण ये फल होते हैं ॥ ७२-७६ ॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
बन्धुद्वेषो मनोदुःखं विग्रहः पदविच्युतिः ॥ ७७ ॥
कुभोजनं कर्महानी राजदण्डाद्धनक्षयः ।
काराग्रहप्रवेशश्च पुत्रदारादिपीडनम् ॥ ७८ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा मनोरुजा ।
आत्मसम्बन्धिमरणं भविष्यति न संशयः ॥ ७९ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।
स्वर्णदानं प्रकुर्वीत ह्यारोग्यं भवति ध्रुवम् ॥ ८० ॥

निर्बल गुरु यदि दशापति से ६।८।१२ में स्थित हों तो अन्तर्दशा में बन्धुद्वेष, मनोदुःख, कलह, स्थानच्युति, कदन्नभोजन, कार्यहानि, राजदण्डमूलक धनक्षय, जेल में प्रवेश, पुत्र-स्त्री को कष्ट, ये सब फल होते हैं। वही गुरु २।७ के अधिप हों तो शारीरिक बाधा, मानसिक कष्ट तथा सम्बन्धी का मरणकारक होते हैं।

दोषपरिहार के लिए शिवसहस्रनामजप, सुवर्णदान करना चाहिए जिससे निश्चयतः आरोग्यप्राप्ति होती है ॥ ७७-८० ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे शनिदशान्तर्दशाफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ बुधदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ५९ ॥

बुध की महादशा में—

—बुधान्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

मुक्ताविद्रुमलाभश्च ज्ञानकर्मसुखादिकम् ।
विद्यामहत्त्वं कीर्तिश्च नूतनप्रभुदर्शनम् ॥ १ ॥
विभवो दारपुत्रादि-पितृमातृभवं सुखम् ।
तुङ्गेऽस्तेऽथ नीचस्थे षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥ २ ॥

पापयुक्तेऽथवा दृष्टे धनधान्यपशुक्षयः ।
आत्मबन्धुविरोधश्च शूलरोगादिसम्भवः ॥ ३ ॥
राजकार्यकलापेन व्याकुलत्वं प्रजायते ।
द्वितीयद्यूननाथे तु दारक्लेशो भविष्यति ॥ ४ ॥
आत्मसम्बन्धिमरणं भवेदेव न संशयः ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !) उच्चादि शुभस्थान में बुध के रहने पर बुध की दशा में बुध की ही अन्तर्दशा आवे तो मोती, मूँगा का लाभ, ज्ञान, कर्म, सुख की प्राप्ति, विद्या की महत्ता, यश, नवीन राजा का दर्शन, ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र, पिता, माता का सुख, होते हैं । वही बुध नीचस्थ या अस्तंगत या ६।८।१२ में पापग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हों तो धनधान्य, पशु का विनाश, आत्मीय जनों से विरोध, शूलादिरोग, राजकार्य से व्याकुलता होती है । बुध यदि द्वितीयेश या सप्तमेश रहें तो स्त्री को कष्ट अपने सम्बन्धियों का मरण होता है । दोषपरिहार के लिए विष्णुसहस्रनाम-पाठ कराना श्रेयस्कर है ॥ १–५ ॥

—केत्वन्तर्दशा-फल—

बुधस्यान्तर्गते केतौ लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे लग्नाधिपसमन्विते ॥ ६ ॥
योगकारकसम्बन्धे दायेशात् केन्द्रलाभगे ।
देहसौख्यं धनाढ्यत्वं बन्धुस्नेहादिकं भवेत् ॥ ७ ॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्यात् संचारेण धनागमः ।
विद्याकीर्त्तिप्रसङ्गश्च समानं प्रभुदर्शनम् ॥ ८ ॥
भोजनाम्बरसौख्यं स्यादादौ मध्ये सुखावहम् ।

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण आदिक शुभस्थान में स्थित केतु शुभग्रहों से युत या दृष्ट तथा लग्नेश के साथ हों या दशापति से केन्द्र, लाभस्थानगत वे योगकारक ग्रह से सम्बद्ध रहें तो बुध की दशा में केतु की अन्तर्दशा आनेपर शरीरसुख, धनाढ्यता, बन्धुस्नेह, पशुलाभ, भ्रमण से धनलाभ, विद्यालाभ, कीर्ति का विस्तार, मानसहित राजा का दर्शन, भोजन-वस्त्र का सुख, ये सभी फल अन्तर्दशा के आरम्भ तथा मध्य में होते हैं ॥ ६–९ ॥

दायेशादष्टमे किंवा व्यये वा पापसंयुते ॥ ९ ॥
वाहनात् पतनं चैव पुत्रक्लेशादि सम्भवेत् ।
चौरादिराजभीतिश्च पापकर्मरतिः सदा ॥ १० ॥

वृश्चिकादिविषाद् भीतिर्नीचैः सह कलिस्तथा।
शोकरोगादिदुःखं च भवेन्नीचादिसङ्गतिः ॥ ११ ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं भविष्यति।
तद्दोषपरिहारार्थं छागदानं तु कारयेत् ॥ १२ ॥

दशापति से ६।८।१२ में सपाप केतु हों तो वाहन से पतन, पुत्रक्लेश, चोर आदि, तथा राजा से भय, पापकर्म से प्रेम, बिच्छू आदि जन्तुओं के विष का भय, नीचों के साथ कलह, शोक, रोग, दुःख, नीचों का सङ्ग, होता है। वही केतु दशेश से २।७ के अधिप हों तो शरीर में जड़ता होती है। दोषशान्त्यर्थ छागदान करावें ॥ ९–१२ ॥

—शुक्रान्तर्दशाफल—

सौम्यस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रे लाभे त्रिकोणगे।
सत्कथापुण्यधर्मादि-संग्रहः पुण्यकर्म च ॥ १३ ॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं क्षेत्रलाभः सुखं भवेत्।
दशाधिपात् केन्द्रगते त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥ १४ ॥
तत्काले तु श्रियः प्राप्ती राजश्रीधनसम्पदः।
वापीकूपतडागादि-दानधर्मादिसंग्रहः ॥ १५ ॥
व्यवसायात् फलाधिक्यं धनधान्यसमृद्धयः।

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान आदि शुभस्थानगत शुक्र (शुभग्रहों से युत दृष्ट हों तो) बुध की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा होने पर सत्कथा, पुण्य, धर्म, आदि में प्रवृत्ति, मित्र तथा मालिक के द्वारा इष्टसिद्धि, क्षेत्रलाभ, तथा सुख होता है। वही शुक्र दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान आदि शुभस्थान में हों तो अन्तर्दशा आने पर तत्काल लक्ष्मीप्राप्ति, राजा से धन सम्पत्तिलाभ, वापी, कूप, तालाब आदि का खनन, दान-धर्म का आचरण, व्यापार में अधिक लाभ ये सभी फल होते हैं ॥ १३–१५ ॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥ १६ ॥
हृद्रोगो मानहानिश्च ज्वरातीसारपीडनम्।
आत्मबन्धुवियोगश्च संसारे स्यान्न संशयः ॥ १७ ॥
आत्मकष्टं मनस्ताप आपद्दायादतो भवेत्।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ १८ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत्।

दशापति से ६।८।१२ में निर्बल शुक्र हों तो अन्तर्दशा में हृदयरोग, मानहानि, ज्वर, अतीसार से पीड़ा, आत्मीय बन्धुओं से वियोग, आत्मकष्ट, मानसिक संताप,

दायाद से आपत्ति, वही शुक्र दशेश से २।७। के अधिप हों तो अपमृत्यु ये सभी फल होते हैं। दोषपरिहार के लिए दुर्गापाठ-मन्त्रजप करें ॥ १६–१९ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

सौम्यस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ॥ १९ ॥
त्रिकोणे धनलाभे तु तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ।
राजप्रसादसौभाग्यं मित्रप्रभुवशात् सुखम् ॥ २० ॥
भूम्यात्मजेन संदृष्टे चादौ भूलाभसम्भवः ।
लग्नाधिपेन संदृष्टे बहुसौख्यं धनागमः ॥ २१ ॥
ग्रामभूम्यादिलाभश्च भोजनाम्बरयोः सुखम् ।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, धन तथा लाभस्थान, उच्चांश या स्वनवांशगत सूर्य हों तो बुध की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा आनेपर राजा की कृपा से सौभाग्योदय, मित्र तथा मालिक के द्वारा सुख, मंगल की दृष्टि सूर्य पर रहने से भूमिलाभ, लग्नेश की दृष्टि रहने से बहुत सुख, धनागम, ग्राम-भूमि आदि का लाभ, भोजन वस्त्र का सुख ये सभी फल होते हैं ॥ १९–२१ ॥

तनौ रन्ध्रे व्यये वापि शन्यारफणिसंयुते ॥ २२ ॥
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ।
चौराग्निशस्त्रपीडा च पित्ताधिक्यं भविष्यति ॥ २३ ॥
शिरोरुङ्मनसस्ताप इष्टबन्धुवियोजनम् ।
द्वितीयसप्तमाधीशे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ २४ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ।
सूर्यप्रीतिकरीं धेनुं दद्याच्चैव हिरण्यकम् ॥ २५ ॥

लग्न से ८।१२ में शनि, मङ्गल, राहु युक्त सूर्य हों तथा दशापति से ६।८।१२ में निर्बल सूर्य रहें तो अन्तर्दशा में चोर, अग्नि, शस्त्र की पीड़ा, पित्त की अधिकता, शिरोरोग, मनस्ताप, तथा इष्टमित्र का वियोग होता है। वही सूर्य २।७ के अधिप हो तो अपमृत्यु होती है। दोषशान्ति के लिए सूर्य प्रीतिदायक गाय, सुवर्ण का दान करें ॥ २२–२५ ॥

—चन्द्रान्तर्दशाफल—

सौम्यस्यान्तर्गते चन्द्रे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि गुरुदृष्टिसमन्विते ॥ २६ ॥
योगस्थानाधिपत्येन योगप्राबल्यमादिशेत् ।
स्त्रीलाभं पुत्रलाभश्च वाहनाम्बरभूषणम् ॥ २७ ॥

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन में स्थित चन्द्र गुरु-दृष्टियुक्त हो या स्वयं योगकारक हो तो योग का प्राबल्य कहना चाहिए। बुध की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा आनेपर स्त्री पुत्र वस्त्र-भूषण का सुख होता है ॥ २६–२७ ॥

नूतनालयलाभं च नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
गीतवाद्यप्रसङ्गं च शास्त्रविद्यापरिश्रमम् ॥ २८ ॥
दक्षिणां दिशमाश्रित्य प्रयाणं च भविष्यति ।
द्वीपान्तरादिवस्त्राणां लाभश्चैव भविष्यति ॥ २९ ॥
मुक्ताविद्रुमरत्नानि धौतवस्त्रादिमाप्नुयात् ।

पूर्वोक्त शुभ स्थानों में चन्द्रमा के रहने पर बुध की दशा में चन्द्रान्तर आनेपर नवीन गृह लाभ, नित्यमिष्टान्नभोजन, गाना-बाजा आदि का श्रवण, विद्या-शास्त्र में परिश्रम, दक्षिण दिशा में गमन, द्वीपान्तर से वस्त्रों का लाभ, मोती-विद्रुमादि रत्नों, तथा धोती आदि की प्राप्ति होती है ॥ २८–२९ ॥

नीचादिक्षेत्रसंयुक्ते देहबाधा भविष्यति ॥ ३० ॥
दायेशात् केन्द्रकोणस्थे दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
तद्भुक्त्यादौ पुण्यतीर्थस्नानदैवतदर्शनम् ॥ ३१ ॥
मनोधैर्यं हृदुत्साहो धनलाभो विदेशतः ।
दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा पापसंयुते ॥ ३२ ॥
चौराग्निनृपभीतिश्च स्त्रीसङ्गतिवशाद् भवेत् ।
दुष्कीर्त्तिर्धनहानिश्च कृषिपश्वादिनाशनम् ॥ ३३ ॥

चन्द्रमा नीच आदि अशुभ क्षेत्र, में हो तो शारीरिक कष्ट होता है। दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, तृतीय, एकादश में हों तो अन्तर्दशा के आरम्भ में पुण्यतीर्थस्नान, देवदर्शन, मन में धीरता, हृदय में उत्साह, तथा विदेश से धनलाभ, तथा दशापति से ६।८।१२ में पापयुक्त चन्द्रमा रहें तो चोर, अग्नि, राजा का भय, स्त्रीसङ्ग से दुर्यश, धनहानि, खेती-पशु आदि का विनाश, ये फल होते हैं ॥ ३०–३३ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥ ३४ ॥
वस्त्रदानं प्रकुर्वीत, ह्यायुर्वृद्धिसुखावहम् ।

वही चन्द्रमा २।७ के अधिप हों तो शारीरिक बाधा होती है। दोष-परिहार के लिए दुर्गापाठ, जप, वस्त्र-दान करना चाहिए जिससे आयुर्वृद्धि तथा सुख होते हैं ॥ ३४ ॥

—भौमान्तर्दशाफल—

सौम्यस्यान्तर्गते भौमे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ॥ ३५ ॥
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे चापि लग्नाधिपसमन्विते ।
राजानुग्रहशान्तिः स्याद् गृहे कल्याणसम्भवः ॥ ३६ ॥
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि नष्टराज्यार्थलब्धयः ।
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहं गोधनसङ्कुलम् ॥ ३७ ॥
गृहक्षेत्रादिलाभश्च गजवाजिसमन्वयः ।
राजप्रीतिस्तथा सौख्यं स्त्रियश्चातीव शोभनम् ॥ ३८ ॥

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन, में लग्नेशयुक्त भौम हो तो बुध की दशा में भौमान्तर आने पर राजा की कृपा से सुखशान्ति, घर में कल्याण, लक्ष्मी के आगमन का चिह्न, नष्ट राज्य या नष्ट धन का लाभ, पुत्रोत्सव, पशु-धनपूर्ण घर, घर-क्षेत्र आदि का लाभ, हाथी-घोड़े की भरमार, राजप्रीति, तथा स्त्रीसौख्य कहना चाहिए ॥ ३५–३८ ॥

नीचक्षेत्रसमायुक्ते ह्यष्टमे वा व्ययेऽपि वा ।
पापैर्दृष्टे युते वापि देहपीडा मनोव्यथा ॥ ३९ ॥
उद्योगभंगो देशादौ स्वग्रामे धान्यनाशनम् ।
ग्रन्थिशस्त्रव्रणादीनां भयं तापज्वरादिकम् ॥ ४० ॥
दायेशात् केन्द्रगे भौमे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।
शुभदृष्टे धनप्राप्तिर्देहसौख्यं प्रजायते ॥ ४१ ॥
पुत्रलाभो यशोवृद्धिर्भ्रातृवर्गे महाप्रियः ।

नीच स्थान तथा ८।१२ में पापग्रहों से युत-दृष्ट भौम हों तो बुध की दशा में भौमान्तर आनेपर देहपीड़ा, मनोव्यथा, उद्योग का गिरना, देश-ग्राम में धान्यक्षय, गठिया, शस्त्र, व्रण आदियों का भय, ताप, ज्वर, की सम्भावना, होती है। दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में शुभग्रह-दृष्ट भौम हों तो अन्तर्दशा में धनलाभ, शारीरिक सौख्य, पुत्रलाभ, यशोवृद्धि, भ्रातृवर्ग में महाप्रिय होता है ॥ ३९–४१ ॥

दायेशाद्रन्ध्रभावस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥ ४२ ॥
तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशो भ्रातृवर्गे महद् भयम् ।
नृपाग्निचौरभीतिश्च पुत्रमित्रविरोधनम् ॥ ४३ ॥
आरम्भे स्थानविभ्रंशो मध्ये सौख्यं धनागमः ।
अन्तेऽन्तु राजभीतिः स्यात् स्थानभ्रंशो ह्यथापि वा ॥ ४४ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ।
वृषदानं प्रकुर्वीत मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥ ४५ ॥

दशापति से ८।१२ में पापयुक्त भौम हों तो अन्तर्दशाकाल के आरम्भ में महान् कष्ट, बन्धुवर्ग में भय, राजा, अग्नि, चोर का भय, पुत्र-मित्र से विरोध, अन्तर्दशा के आरम्भ में स्थानभ्रंश मध्य में सुख तथा धनागम और अन्त में राजा से भय, स्थानच्युति, वही मङ्गल २।७ के अधिप हों तो अपमृत्युभय, होता है। (दोष परिहार के लिए) वृषभदान तथा मृत्युञ्जय का जप करें ॥ ४२–४५ ॥

—राह्वन्तर्दशाफल—

बुधस्यान्तर्गते राहौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
कुलीरे घटगे वापि कन्यायां वृषभेऽपि वा ॥ ४६ ॥
राजसम्मानकीर्त्तीं च प्रचुरं द्रविणं तथा ।
पुण्यतीर्थस्नानलाभो देवतादर्शनं तथा ॥ ४७ ॥
इष्टापूर्त्तं च महतो मानो लाभः सुवाससः ।
भुक्त्यादौ देहपीडा चाप्यन्ते सौख्यं विनिर्दिशेत् ॥ ४८ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, कर्क, कुम्भ, कन्या, वृष, इनमें स्थित राहु हों तो बुध की दशा में राह्वन्तर आनेपर राजा से आदर, सुयश, प्रचुरद्रव्यलाभ, पुण्यतीर्थ में स्नान, देवदर्शन, तड़ागादि निर्माण, बड़ों से यज्ञ में सम्मान, वस्त्रलाभ, अन्तर्दशारम्भ में शारीरिक कष्ट किन्तु अन्त में सौख्य कहना चाहिए ॥ ४६–४८ ॥

अष्टमव्ययराशिस्थे तद्भुक्तौ धननाशनम् ।
भुक्त्यादौ देहबाधा चाजीर्णवातज्वरामयाः ॥ ४९ ॥
लग्नादुपचये राहौ शुभग्रहसमन्विते ।
राजसंलापसन्तोषो नूतनप्रभुदर्शनम् ॥ ५० ॥
दायेशादष्टमे किं वा व्ययगे पापसंयुते ।
निष्ठुरं राजकार्याणि स्थानभ्रंशो महद् भयम् ॥ ५१ ॥
बन्धनं रोगपीडा च स्वीयबन्धुमनोव्यथा ।
हृद्रोगो मानहानिश्च धनहानिर्भविष्यति ॥ ५२ ॥
द्वितीयसप्तमस्थे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गालक्ष्मीजपं चरेत् ॥ ५३ ॥
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम् ।

लग्न से अष्टम या द्वादश में राहु हों तो अन्तर्दशाकाल में धननाश, आरम्भ में

शरीरबाधा, अजीर्णता, वातरोग तथा ज्वर, होते हैं। लग्न से उपचय स्थान ३।६। १०।११ में शुभग्रह युक्त राहु के रहनेपर राजा के साथ संलाप से सन्तोष तथा नवीन प्रभु का दर्शन होता है। दशापति से ८।१२। में सपाप राहु रहें तो अन्तर्दशाकाल में निष्ठुरतापूर्वक राजकार्य का सञ्चालन, स्थानभ्रंश, महाभय, बन्धन, रोग से कष्ट, आत्मीय बन्धुओं को मानसिक कष्ट, हृदयरोग, मानहानि, धनक्षय, होते हैं। वही २।७ में स्थित हों तो अपमृत्यु होती है। दोषपरिहार के लिए दुर्गालक्ष्मीजप, श्वेत गाय तथा महिषी का दान करना चाहिए ॥ ४९–५३ ॥

—गुर्वन्तर्दशाफल—

बुधस्यान्तर्गते जीवे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ॥ ५४ ॥
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि लाभे वा धनराशिगे।
देहसौख्यं धनप्राप्ती राजप्रीतिस्तथैव च ॥ ५५ ॥
विवाहोत्सवकार्याणि नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
गोमहिष्यादिलाभश्च पुराणश्रवणादिकम् ॥ ५६ ॥
देवतागुरुभक्तिश्च दानधर्मसुखादिकम्।
यज्ञकर्मप्रवृद्धिश्च शिवपूजाफलं तथा ॥ ५७ ॥

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन, लाभ या धनराशि में गुरु हों तो बुध की दशा में गुर्वन्तर आनेपर शरीर में सुख, धनप्राप्ति, राजा से प्रेम, विवाह, उत्सव आदि शुभकार्य, नित्य मिष्टान्नभोजन, गवादिपशुलाभ, पुराणादिश्रवण, देवता तथा गुरु में भक्ति, दान, धर्म, सुख की प्राप्ति, यज्ञकर्म में प्रवृत्ति, तथा शिवपूजन का फल होता है ॥ ५४–५७ ॥

नीचे वाऽस्तङ्गते वारिरन्ध्रव्ययगतेऽपि वा।
शन्यारवीक्षितयुते कलहो राजभिः सह ॥ ५८ ॥
चौरादितो देहपीडा पितृमातृविनाशनम्।
मानहानी राजदण्डो धनहानिस्तथैव च ॥ ५९ ॥
विषाहिज्वरपीडा च कृषिगोभूमिनाशनम्।

वही गुरु नीचराशि या ६।८।१२ में या अस्तङ्गत होकर शनि मङ्गल से युत या दृष्ट हों तो अन्तर्दशा में राजा से कलह, चोर आदि से शारीरिक कष्ट, पितृमातृक्षय, मानहानि, राजदण्ड, धननाश, विष, सर्प, ज्वर, से पीड़ा, कृषि, गो तथा भूमि का विनाश होता है ॥ ५८–५९ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा लाभे वा बलसंयुते ॥ ६० ॥
बन्धुपुत्रस्त्रहृदुत्साहः शुभं चार्थसमन्वितम्।

पशुवृद्धिर्यशोलाभश्चान्नदानादिकं फलम् ॥ ६१ ॥
दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
अङ्गतापश्च वैकल्यं देहबाधा भविष्यति ॥ ६२ ॥
कलत्रबन्धुवैषम्यं राजकोपो धनक्षयः ।
अकस्मात् कलहाद् भीतिः प्रमादो राजविग्रहः ॥ ६३ ॥

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, या लाभस्थान में सबल गुरु हों तो अन्तर्दशा में बन्धु, पुत्रों से हृदय में उत्साह, धनप्रद कल्याण, पशुवृद्धि, यशोलाभ, अन्नदान, आदि शुभ फल होते हैं ।

दशापति से निर्बल गुरु ६।८।१२ में रहें तो शरीर में ज्वर, विकलता, शारीरिक कष्ट, स्त्री-पुत्र से विषमता, राजा का कोप, धननाश, एकाएक झगड़ासे भय, असावधानता तथा राजविग्रह ये दुष्फल होते हैं ॥ ६०–६३ ॥

द्वितीयसप्तमस्थे वा देहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ॥ ६४ ॥
गोहिरण्यादिदानेन सर्वारिष्टं व्यपोहति ।

२।७ में गुरु हों तो अपनी अन्तर्दशा में शारीरिकबाधादायक होते हैं । दोष परिहार के लिए शिवसहस्रनाम का जप, गाय, सुवर्ण का दान अरिष्टनाशक होता है ॥ ६४ ॥

—शन्यन्तर्दशाफल—

सौम्यस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ॥ ६५ ॥
त्रिकोणलाभगे वापि गृहे कल्याणवर्धनम् ।
राज्यलाभं महोत्साहं गृहं गोकुलसंकुलम् ॥ ६६ ॥
भव्यस्थानफलावाप्तिं तीर्थस्नानादिकं वदेत् ।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, या लाभस्थान में स्थित शनि हों तो बुध की दशा में शन्यन्तर आनेपर राज्यलाभ, महोत्साह, कल्याणवृद्धि, गोधनपूर्ण घर, सुन्दर स्थान की प्राप्ति, तथा तीर्थस्नानादिक फल होते हैं ॥ ६६–६६ ॥

रन्ध्रेऽथवा व्यये मन्दे दायेशाद्वा तथैव च ॥ ६७ ॥
अरातिदुःख-बाहुल्यं दारपुत्रादि-पीडनम् ।
बुद्धिभ्रंशो बन्धुनाशः कर्मनाशो मनोव्यथा ॥ ६८ ॥
विदेशगमनं चैव दुष्टस्वप्नावलोकनम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ ६९ ॥

तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम् ॥ ७० ॥

दशेश से ८।१२ में शनि हों तो अन्तर्दशाकाल में शत्रुओं से अतिशय कष्ट, स्त्री पुत्र को कष्ट, बुद्धिभ्रंश, बन्धुक्षय, कर्मनाश, मानसिक व्यथा, विदेशयात्रा दुःस्वप्न का दर्शन, २।७ के स्वामी शनि हों तो अपमृत्युभय कहें । दोषपरिहार के लिए मृत्युञ्जयजप, काली गाय, भैंस का दान करें जिससे आयु, आरोग्य की वृद्धि होती है ॥ ६७–७० ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे बुधदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः ॥

अथ केतुदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ६० ॥

केतु की महादशा में—

केत्वन्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

केन्द्रे त्रिकोणलाभे वा ध्वजे लग्नाधिपान्विते ।
भाग्यकर्मसुसम्बन्धे वाहनेशसमन्विते ॥ १ ॥
तद्भुक्तौ धनधान्यादेः संलाभश्च चतुष्पदाम् ।
पुत्रदारादिसौख्यं च राजप्रीतिर्मनोरुजा ॥ २ ॥
ग्रामभूम्यादिलाभश्च गृहं गोकुलसंकुलम् ।

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !)—लग्नेशयुक्त केतु केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में स्थित होकर वाहनेश के साथ हो और धर्मेश कर्मेश से सम्बद्ध हो तो केतुकी दशा में केत्वन्तर आने पर धन, धान्य, पशु का लाभ, पुत्र स्त्रीसुख, राजकृपा, किन्तु मानसिक कष्ट, ग्राम, भूमि, आदि का लाभ गोधनपूर्ण घर, ये फल होते हैं ॥ १–२ ॥

नीचास्तखेटसंयुक्ते ह्यष्टमे व्ययगेऽपि वा ॥ ३ ॥
हृद्रोगो मानहानिश्च धनधान्यपशुक्षयः ।
दारपुत्रादिपीडा च मनश्चाञ्चल्यमेव च ॥ ४ ॥

वही केतु नीचग या अस्तंगत ग्रह से युक्त होकर ८।१२ में हों तो अन्तर्दशाकाल में हृदयरोग, मानहानि, धन, धान्य, पशु का नाश, स्त्रीपुत्र को कष्ट, तथा मानसिक चंचलता ये सभी फल होते हैं ॥ ३–४ ॥

द्वितीयद्यूननाथेन सम्बन्धे तत्र संस्थिते ।
अनारोग्यं महत्कष्टं वियोगश्चात्मबन्धुभिः ॥ ५ ॥

तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं तथा ।
मृत्युञ्जयजपं कुर्यादायुरारोग्यवर्द्धकम् ॥ ६ ॥

२।७ में स्वामी से केतु को सम्बन्ध हो या २।७ में केतु रहें तो अस्वास्थ्य, महान् कष्ट अपने बन्धुओं से वियोग, होता है । दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजप, मृत्युञ्जयजप कराना चाहिए ॥ ५–६ ॥

—शुक्रान्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा राज्यनाथेन संयुते ॥ ७ ॥
राजप्रीतिं च सौभाग्यं राजतोऽम्बरसंकुलम् ।
तत्काले श्रियमाप्नोति भाग्यकर्मेशसंयुते ॥ ८ ॥
नष्टराज्यधनप्राप्तिं सुखवाहनमुत्तमम् ।
सेतुस्नानादिकं चैव देवतादर्शनं महत् ॥ ९ ॥
महाराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिकागमः ।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में स्थित शुक्र राज्येश के साथ हों तो केतु की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आनेपर राजा की प्रसन्नता, सौभाग्योदय, राजा से वस्त्रप्राप्ति, भाग्येश तथा कर्मेश के साथ रहनेपर तत्काल लक्ष्मीप्राप्ति, नष्टराज्य या नष्टधन की प्राप्ति, उत्तम वाहनसुख, समुद्रस्नान, देवदर्शन, राजा की कृपा से ग्राम भूमि आदि का लाभ, ये सभी होते हैं ॥ ८–९ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥ १० ॥
देहारोग्यं शुभं चैव गृहे कल्याणशोभनम् ।
भोजनाम्बरभूषाप्तिरवाप्ती रथदोलयोः ॥ ११ ॥

दशापति से केन्द्र त्रिकोण या ३।११ में शुक्र हों तो भी शरीर में आरोग्य, घर में सर्वविध कल्याण, भोजन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, तथा रथ और दोला की भी प्राप्ति होती है ॥ १०–११ ॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
अकस्मात् कलहश्चैव पशुधान्यादिपीडनम् ॥ १२ ॥
नीचस्थखेटसंयुक्ते लग्नात् षष्ठाष्टराशिगे ।
स्वबन्धुजनवैषम्यं शिरोऽक्षिव्रणपीडनम् ॥ १३ ॥
हृद्रोगं मानहानिं च धनधान्यपशुक्षयम् ।
कलत्रपुत्रपीडायाः सञ्चारं च वदेद् बुधः ॥ १४ ॥

दशापति से ६।८।१२ में सपाप शुक्र हों तो अन्तर्दशाकाल में अकस्मात् कलह, पशु, धान्य आदि का क्षय होता है। वही शुक्र नीचगत ग्रह के साथ अथवा लग्न से ६।८ में रहें तो अन्तर्दशा में आत्मीय बन्धुओं के साथ वैमत्य, शिर, नेत्र, में व्रणप्रयुक्त पीड़ा, हृदयरोग, मानहानि, धनधान्य, पशु, का विनाश, स्त्री पुत्र को पीड़ा ये सब फल होते हैं ॥ १२–१४ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजा।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥ १५ ॥
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम्।

शुक्र यदि २।७। के अधिप हों तो शारीरिक कष्ट, मानसिक व्यथा होती है। दोष-परिहार के लिए दुर्गापाठ, श्वेत गाय तथा महिषी का दान करना चाहिए ॥ १५ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥ १६ ॥
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा शुभैर्युतनिरीक्षिते।
धनधान्यादिलाभश्च राजानुग्रहवैभवम् ॥ १७ ॥
अनेकशुभकार्याणि चेष्टसिद्धिः सुखावहा।

उच्च, स्वभवन, केन्द्र त्रिकोण, लाभस्थान में गत सूर्य शुभग्रहों से युत दृष्ट हों तो केतु की दशा में सूर्यान्तर आनेपर धनधान्यादि का लाभ, राजा की कृपा से ऐश्वर्य, अनेक शुभकार्य, तथा सुखप्रद अभीष्टसिद्धि होती है ॥ १६–१७ ॥

लग्नाद्रन्ध्रव्ययगते पापग्रहसमन्विते ॥ १८ ॥
तद्भुक्तौ राजभीतिश्च पितृमातृवियोजनम्।
विदेशगमनं चैव चौराहिव्रणपीडनम् ॥ १९ ॥
राजमित्रविरोधश्च राजदण्डाद्धनक्षयः।
शोकरोगभयं चैव तापाधिक्यं ज्वरस्तथा ॥ २० ॥
दायेशात् केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनसंस्थिते।
देहसौख्यं चार्थलाभः पुत्रलाभो मनो दृढम् ॥ २१ ॥
यातुः कार्यार्थसिद्धिः स्यात् स्वल्पग्रामाधिपत्यकम्।

लग्न से ८।१२ में पापग्रहयुक्त सूर्य हों तो अन्तर्दशाकाल में राजभय, पितृमातृ-वियोग, विदेशयात्रा, चोर सर्प, व्रण से पीड़ा, राजा, मित्र से विरोध, राजदण्डप्रयुक्त धनक्षय, शोक रोगभय, तापाधिक्य, तथा ज्वर ये फल होते हैं। वही सूर्य दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान या धनस्थान में स्थित हों तो देहसुख, धनलाभ, पुत्रलाभ, मन की दृढ़ता, कार्यों की सिद्धि छोटे गांवों का स्वामित्व होता है ॥१८–२१॥

दायेशादष्टरिष्फे वा संस्थिते पापसंयुते ॥ २२ ॥
अन्नविघ्नं मनोभीतिं धनधान्यपशुक्षयम् ।
आदौ मध्ये महाक्लेशानन्ते सौख्यं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥
द्वितीयसप्तमाधीशे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
शान्तिं तत्र प्रकुर्वीत स्वर्णं धेनुं प्रदापयेत् ॥ २४ ॥

दशापति से ८।१२ में पापयुक्त सूर्य हों तो अन्तर्दशाकाल में अन्नविघ्न, मन में भय, धनधान्य, पशु का नाश, अन्तर्दशा के आरम्भ तथा मध्य में महाक्लेश, अन्त में सुख होता है। वही सूर्य २।७ के अधीश हों तो अपमृत्यु होती है। शान्ति के लिए सुवर्ण तथा गाय का दान कराना चाहिए ॥ २२–२४ ॥

—चन्द्रान्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते चन्द्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंस्थिते ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा धने सद्ग्रहसंयुते ॥ २५ ॥
राजप्रीतिर्महोत्साहः कल्याणं च महासुखम् ।
महाराजप्रसादेन गृहभूम्यादिकागमः ॥ २६ ॥
भोजनाम्बरपश्वादिव्यवसायेऽधिकं फलम् ।
अश्ववाहनलाभश्च वस्त्राभरणभूषणम् ॥ २७ ॥
देवालयतडागादि-पुण्यधर्मादिसङ्ग्रहः ।
पुत्रदारादिसौख्यं च पूर्णे चन्द्रे विशेषतः ॥ २८ ॥

उच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, लाभ तथा धनस्थान में चन्द्रमा शुभयुक्त हों तो केतु की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा आने पर राजा का प्रेम, महोत्साह, कल्याण, महासुख, राजा की कृपा से घर, भूमि का लाभ, भोजन, वस्त्र, पशु आदि के व्यवसाय में अधिक लाभ, घोड़ा तथा अन्यान्य वाहन का लाभ, वस्त्र भूषण की प्राप्ति, देवालय, तालाब, पुण्यकार्य, धर्म, आदि में प्रवृत्ति, पुत्रस्त्रीसुख, पूर्ण चन्द्र हों तो ये फल विशेष रूप से होते हैं ॥ २५–२८ ॥

नीचगे क्षीणचन्द्रे वा षष्ठाष्टव्ययराशिगे ।
आत्मासौख्यं मनस्तापः कार्यविघ्नं महद्भयम् ॥ २९ ॥
पितृमातृवियोगश्च देहजाड्यं मनोरुजा ।
व्यवसायात् फलं नेष्टं गोमहिष्यादिनाशनम् ॥ ३० ॥

नीच राशि में या ६।८।१२ में क्षीण चन्द्र हो तो अन्तर्दशाकाल में आत्मा में कष्ट, मानसिक सन्ताप, कार्य में विघ्न, महाभय माता, पिता का वियोग, शरीर में

जड़ता मानसिककष्ट, व्यवसाय में असफलता तथा गो, महिषी, आदि पशुओं का विनाश होता है ॥ २९–३० ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा लाभे वा बलसंयुते ।
कृषिगोभूमिलाभश्चाऽभीष्टबन्धुसमागमः ॥ ३१ ॥
ततः स्वकार्यसिद्धिश्च गृहे गोक्षीरमेव च ।
आरम्भे शुभमारोग्यं मध्ये राजप्रसन्नता ॥ ३२ ॥
अन्ते तु राजभीतिश्च विदेशगमनं तथा ।
दूरे यात्रादिसञ्चारः सम्बन्धिजनपूजनम् ॥ ३३ ॥

दशापति से प्रबल चन्द्र केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में स्थित हों तो अन्तर्दशा के समय कृषि, गो, भूमि का लाभ, इष्टमित्र का शुभागमन, उससे कार्यसिद्धि, गोदुग्धपूर्ण घर, आरम्भ में आरोग्य, मध्य में राजा की कृपा, अन्त में राजभय, विदेश-यात्रा, दूर में यात्रा, सम्बन्धियों के द्वारा सम्मान ये सब होते हैं ॥ ३१–३३ ॥

दायेशात् षष्ठरिष्फे वा रन्ध्रे वा बलवर्जिते ।
धनधान्यादिहानिश्च मनोव्याकुलमेव च ॥ ३४ ॥
स्वबन्धुजनविद्वेषो भ्रातृपीडा तथैव च ।
निधनाधिपदोषेण द्विसप्तस्वामिसंयुते ॥ ३५ ॥
अपमृत्युभयं तस्य शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ।
चन्द्रप्रीतिकरीं चैव ह्यायुरारोग्यवृद्धये ॥ ३६ ॥

दशापति से निर्बल चन्द्र ६।८।१२ में रहें तो अन्तर्दशा के समय धन-धान्य का क्षय, मन में व्याकुलता, बन्धुओं से द्वेष, भाई को कष्ट, ये फल होते हैं । चन्द्रमा में अष्टमेश होने का दोष हो या २।७ के आधिप के साथ हों तो अपमृत्यु का भय कहना चाहिए । आरोग्य के लिए चन्द्रमा को प्रसन्न करने वाली शान्ति करनी चाहिए ॥३४ ॥

—भौमान्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते भौमे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव शुभखेटयुतेक्षिते ॥ ३७ ॥
आदौ शुभफलं चैव ग्रामभूम्यादिकागमः ।
धनधान्यचतुष्पाद-जीवलाभो भवेदपि ॥ ३८ ॥
गृहारामक्षेत्रलाभो राजानुग्रहवैभवम् ।
भाग्ये कर्मेशसम्बद्धे भूलाभः सौख्यमेव च ॥ ३९ ॥

लग्न से केन्द्र त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवनगत मङ्गल शुभग्रह युक्त से या दृष्ट हों तो केतु की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा आनेपर गांव, भूमि, धन, धान्य, पशु आदि

का लाभ, गृह, वगीचा, खेत का लाभ, राजा की कृपा से ऐश्वर्य, भाग्येश या भाग्य स्थान को कर्मेश से सम्बन्ध होनेपर भूमिलाभ तथा पूर्ण सौख्य ये सभी फल होते हैं ॥ ३७–३९ ॥

दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
राजप्रीतिर्यशोलाभः पुत्रमित्रादिजं सुखम् ॥ ४० ॥
रन्ध्रगे व्ययगे भौमे दायेशाद्धनगेऽपि च ।
द्रुतं करोति मरणं विदेशे चापदं श्रमम् ॥ ४१ ॥
प्रमेहमूत्रकृच्छ्रादि-चौरादिनृपपीडनम् ।
कलहादिर्व्यथायुक्तं किञ्चित् सुखविवर्धनम् ॥ ४२ ॥

दशापति से केन्द्र, कोण तृतीयैकादश स्थान में मङ्गल रहें तो अन्तर्दशाकाल में राजप्रसाद, यशोलाभ, पुत्र मित्र का सुख होता है । वही मङ्गल ८।१२ में या द्वितीय में रहें तो मरणभय, विदेश में आपत्ति, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्ररोग, चोर, राजा के द्वारा पीड़ा, व्यथायुक्त कलह, तथा कुछ सुखवृद्धि भी होती है ॥ ४०–४२ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु तापज्वरविषाद् भयम् ।
दारपीडामनःक्लेशो ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥ ४३ ॥
अनड्वाहं प्रदद्यात्तु सर्वसम्पत् सुखावहम् ।

२।७ के अधिप मङ्गल हों तो अन्तर्दशा के समय ताप-ज्वर, विष से भय, स्त्री कष्ट, मनःक्लेश तथा अपमृत्युभय, होता है । शान्त्यर्थं सर्वसम्पत्ति तथा सुखदायक वृष का दान करें ॥ ४३ ॥

—राह्वन्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते राहौ स्वोच्चे मित्रस्वराशिगे ॥ ४४ ॥
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये धनराशिगे ।
तत्काले धनलाभः स्यात् सञ्चारो भवति ध्रुवम् ॥ ४५ ॥
म्लेच्छप्रभुवशात् सौख्यं धनधान्यफलादिकम् ।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् ग्रामभूम्यादिकागमः ॥ ४६ ॥
भुक्त्यादौ क्लेशमप्नोति मध्यान्ते सौख्यमाप्नुयात् ।

स्वोच्च स्वभवन, मित्रगृह, केन्द्र, त्रिकोण लाभस्थान, तृतीय तथा धनस्थान में राहु हों तो केतुकी दशा में राहु की अन्तर्दशा आनेपर तत्काल धनलाभ, म्लेच्छ प्रभु (यवनादि) से सौख्य प्राप्ति, धन, धान्य, पशु, ग्राम, भूमि का लाभ, अन्तर्दशा के आरम्भ में क्लेश, मध्य तथा अन्त में सुख ये सभी फल होते हैं ॥ ४५–४७ ॥

रन्ध्रे वा व्ययगे राहौ पापैर्दृष्टेऽथ संयुते ।
बहुमूत्रं कृशो देहः शीतज्वरविषाद् भयम् ॥ ४८ ॥
चातुर्थिकज्वरश्चैव क्षुद्रोपद्रवपीडनम् ।
अकस्मात् कलहश्चैव प्रमेहः शूलमेवच ॥ ४९ ॥
द्वितीयसप्तमस्थे वा तदा क्लेशो महद् भयम् ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥ ५० ॥

राहु यदि ८।१२ में पापग्रहों से युक्त या दृष्ट होकर रहें तो अन्तर्दशाकाल में बहुमूत्रता, शारीरिक दौर्बल्य, शीतज्वर, तथा विष से भय, चार दिन पर आनेवाला ज्वर का प्रकोप, क्षुद्ररोग से पीड़ा, एकाएक झगड़ा, प्रमेह तथा शूल, ये फल देते हैं। द्वितीय सप्तम में रहें तो महान् क्लेश, भय, आदि होते हैं। दोषपरिहार के लिए दुर्गापाठ या मन्त्रजाप, करना चाहिए ॥ ४८–५० ॥

—जीवान्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते जीवे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि लग्नाधिपसमन्विते ॥ ५१ ॥
कर्मभाग्याधिपैर्युक्ते धनधान्यार्थसम्पदः ।
राजप्रीतिस्तथोत्साहो हयदोलादिकागमः ॥ ५२ ॥
गृहे कल्याणसम्पत्तिः पुत्रलाभो महोत्सवः ।
पुण्यतीर्थे महोत्साहः सत्कर्म च सुखावहम् ॥ ५३ ॥
इष्टदेवप्रसादेन कार्यलाभो जयस्तथा ।
राजसंलापकार्याणि नूतनप्रभुदर्शनम् ॥ ५४ ॥

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्रत्रिकोण या लाभस्थानगत गुरु लग्नेश, भाग्येश या राज्येश से युक्त हों तो केतु की महादशा में गुर्वन्तर्दशा आने पर धनधान्यवृद्धि, राजप्रेम, तथा उत्साह, घोड़ा, दोला की प्राप्ति, घर में कल्याण, सम्पत्ति, पुत्रलाभ, महोत्सव, पुण्यप्रद तीर्थ में महान् उत्साह, सुखप्रद सत्कर्म में प्रवृत्ति, इष्टदेव की कृपा से कार्यलाभ, तथा जय, राजा से संलाप, नवीन राजा का दर्शन ये सब फल होते हैं ॥ ५१–५४ ॥

षष्ठाष्टमव्यये जीवे दायेशान्नीचगेऽपि वा ।
चौराहिव्रणभीतिश्च धनधान्यादिनाशनम् ॥ ५५ ॥
पुत्रदारावियोगश्चाप्यतीव क्लेशसम्भवः ।
आदौ शुभफलं चैवमन्ते क्लेशः प्रजायते ॥ ५६ ॥

दशापति से ६।८।१२ में या नीच में गुरु हों तो अन्तर्दशा के समय चोर, सर्प,

व्रण से भय, धनधान्यक्षय, स्त्री-पुत्र से वियोग, तथा अत्यधिक क्लेश, अन्तर्दशा के आदि में शुभफल, अन्त में पुनः क्लेश होते हैं ।। ५५–५६ ।।

दायेशात् केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
शुभयुक्ते नृपप्रीतिर्विचित्राम्बरभूषणम् ।। ५७ ।।
दूरदेशप्रयाणं च स्वबन्धुजनपोषणम् ।
भोजनाम्बरपश्वादि-भुक्त्यादौ देहपीडनम् ।। ५८ ।।
अन्ते तु स्थानचलनमकस्मात् कलहो भवेत् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।। ५९ ।।
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।
महामृत्युञ्जयं जाप्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ।। ६० ।।

गुरु दशेश से केन्द्र, कोण या तृतीयैकादश में शुभग्रह युक्त होकर स्थित हों तो अन्तर्दशाकाल में राजा का प्रेम, विलक्षण वस्त्र भूषणों की प्राप्ति, दूरदेश की यात्रा, स्वबन्धुजनों का पालन, भोजन वस्त्र पशु आदि की प्राप्ति, अन्तर्दशारम्भ में शरीर में पीड़ा, अन्त में स्थानभ्रंश तथा अकस्मात् कलह, ये फल देते हैं । वही गुरु २।७ के अधीश हों तो अपमृत्यु का भय होता है । दोष परिहार के लिए शिवसहस्र नाम का पाठ तथा मृत्युंजयजप करना चाहिए ।। ५७–६० ।।

—शन्यन्तर्दशाफल—

केतोरन्तर्गते मन्दे स्वदशायां तु पीडनम् ।
बन्धोः क्लेशो मनस्तापो नाशः स्यात्तु चतुष्पदाम् ।। ६१ ।।
राजकार्यकलापेन धननाशो महद् भयम् ।
स्थानच्च्युतिः प्रवासश्च मार्गे चौरभयं भवेत् ।। ६२ ।।
आलस्यं मनसो हानिश्चाष्टमे व्ययराशिगे ।

शनि यदि ८।१२ में रहें तो केतु की दशा में शनि की अन्तर्दशा आनेपर पीड़ा बान्धवों में कष्ट, मानसिक संताप, पशुहानि, राजकार्य से धनक्षय, महाभय, स्थानभ्रंश, प्रवास, मार्ग में चोर का भय, आलस्य मनोबल की हानि, ये फल होते हैं ।। ६१–६२ ।।

मीनत्रिकोणगे मन्दे तुलायां स्वर्क्षगेऽपि वा ।। ६३ ।।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये वा शुभांशके ।
शुभेक्षितयुते चैव सर्वकार्यार्थसाधनम् ।। ६४ ।।
स्वप्रभोश्च महत् सौख्यं भ्रमणं विजयो रणे ।
स्वग्रामे सुखसम्पत्तिः स्ववर्गे राजदर्शनम् ।। ६५ ।।

मीन से त्रिकोण, तुला, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण या तृतीयैकादशस्थान, शुभनवांश में स्थित शनि शुभग्रहों से युत या दृष्ट हों तो अन्तर्दशा में सर्व कार्यसिद्धि, अपने मालिक से महासुख, भ्रमण, युद्ध में विजय, अपने गांव में सुखसम्पत्ति, राजदर्शन, ये फल होते हैं ।। ६३–६५ ।।

दायेशात् षष्ठरिष्फे वा चाष्टमे पापसंयुते ।
दहेतापो मनस्तापः कार्यविघ्नो महद् भयम् ।। ६६ ।।
आलस्यं मानहानिश्च मातापित्रोर्विनाशनम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ।। ६७ ।।
तद्दोषपरिहारार्थं तिलहोमं च कारयेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धिदाम् ।। ६८ ।।

दशापति से ६।८।१२ में सपाप शनि हो तो अन्तर्दशा में शारीरिक तथा मानसिक संताप, कार्य में विघ्न, महाभय, आलस्य, मानहानि, माता पिता का विनाश, वही शनि यदि २।७ के अधिप हों तो अपमृत्युभय, ये फल होते हैं । दोष परिहार के लिए तिलहोम, काली गाय, भैंस का दान करें जिससे आयु तथा आरोग्य की वृद्धि होती है ।। ६६–६८ ।।

—बुधान्तर्दशा-फल—

केनोरन्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते राज्यलाभो महत्सुखम् ।। ६९ ।।
सत्कथाश्रवणं दानं धर्मसिद्धिः सुखावहा ।
भूलाभः पुत्रलाभश्च शुभगोष्ठी धनागमः ।। ७० ।।
अयत्नाद्धर्मलब्धिश्च विवाहश्च भविष्यति ।
गृहे शुभकरं कृत्यं वस्त्राभरणभूषणम् ।। ७१ ।।

स्वोच्च, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, या लाभस्थानगत बुध यदि हों तो केतु की दशा में बुधान्तर्दशा आनेपर राज्यलाभ, महासुख, सत्कथाश्रवण, दान, सुखप्रद धर्मसिद्धि, भूमि, पुत्र, का लाभ, सत्संग, धनागम, विना प्रयत्न ही धर्मलाभ, विवाह तथा घर में अन्य भी शुभकृत्य तथा वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, होते हैं ।। ६९–७१ ।।

भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते भाग्यवृद्धिः सुखावहा ।
विद्वद्गोष्ठीप्रसङ्गेन संलापो भूषणागमः ।। ७२ ।।

बुध यदि भाग्येश या कर्मेश के साथ हों तो अन्तर्दशाकाल में भाग्यवृद्धि, विद्वानों की गोष्ठी में संलाप, तथा भूषणागम होता है ।। ७२ ।।

षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये मन्दाराहियुतेक्षिते ।
विरोधो राजपुरुषैः परगेहनिवासनम् ।। ७३ ।।

वाहनाम्बरपश्वादिधनधान्यादिनाशनम् ।
भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तं मध्ये सौख्यं धनागमः ॥ ७४ ॥
अन्ते क्लेशो भवेच्चैव दारपुत्रादिपीडनम् ।

बुध यदि ६।८।१२ में स्थित शनि, मङ्गल, या राहु से युत या दृष्ट हो तो अन्तर्दशा के समय राजाधिकारियों से विरोध, दूसरे के घर में निवास, वाहन, वस्त्र, पश्वादि, धन, धान्य, का विनाश, अन्तर्दशा के आरम्भ तथा मध्य में सौख्य, धनागम किन्तु अन्त में क्लेश तथा स्त्री-पुत्र को कष्ट, ये फल होते हैं ॥ ७३–७४ ॥

दायेशात् केन्द्रगे सौम्ये त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥ ७५ ॥
देहारोग्यं महांल्लाभः पुत्रकल्याणवैभवम् ।
भोजनाम्बरपश्वादि-व्यवसायेऽधिकं फलम् ॥ ७६ ॥

दशापति से केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान में बुध रहें तो अन्तर्दशा में शारीरिक आरोग्य, महान् लाभ, पुत्र को कल्याण, भोजन, वस्त्र, पश्वादि के व्यापार में अधिक लाभ होता है ॥ ७५–७६ ॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशो दारपुत्रादिपीडनम् ॥ ७७ ॥
राजभीतिस्तथा मध्ये तीर्थयात्रा शुभप्रदा ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥ ७८ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ।

दशापति से ६।८।१२ में निर्बल बुध रहें तो अपनी अन्तर्दशा के आरम्भ में महाकष्ट, स्त्री-पुत्र को पीड़ा, राजभय, होता है। दशा मध्य में शुभप्रद तीर्थयात्रा होती है। वही बुध २।७ के अधीश हो तो अपमृत्यु होती है। दोषशान्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ श्रेयस्कर है ॥ ७७–७८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे केतुदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः ॥

अथ शुक्रदशान्तर्दशाध्यायः ॥ ६१ ॥

शुक्र की महादशा में—

शुक्रान्तर्दशाफल—

पराशर उवाच—

शुक्रे शुक्रान्तरगते लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
लाभे वा बलसंयुक्ते योगप्राबल्यमादिशेत् ॥ १ ॥

विप्रमूलाद्धनस्याप्ति-र्गोमहिष्यादिकस्य च ।
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे कल्याणसम्भवः ॥ २ ॥
सम्मानं राजसम्मानं राज्य-लाभो महासुखम् ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ ३ ॥
नूतनालयनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
कलत्रपुत्रविभवो मित्रसंयुक्तभोजनम् ॥ ४ ॥
अन्नदानं प्रियं नित्यं दानधर्मादिसंग्रहः ।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥ ५ ॥
व्यवसायात् फलाधिक्यं संलाभः स्याच्चतुष्पदाम् ।
प्रयाणं पश्चिमे भागे लाभो वाहनवाससोः ॥ ६ ॥
लग्नाद्युपचये शुक्रे शुभखेटसमन्विते ।
मित्रांशे तुङ्गलाभेशयोगकारकसंयुते ॥ ७ ॥
राज्यलाभो महोत्साहो राजप्रीतिः शुभावहा ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारापुत्रादिवर्धनम् ॥ ८ ॥

पाराशर ने कहा (हे मैत्रेय !) लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, में सबल शुक्र हों तो शुक्र की महादशा में शुक्रान्तर आनेपर प्रबल योग होता है । उस समय में ब्राह्मण द्वारा धनप्राप्ति, गो, महिषी आदि का लाभ, पुत्रोत्सव, घर में कल्याण, आदर राजसम्मान, राज्यलाभ, महासुख, ये फल होते हैं । वही शुक्र स्वोच्च, स्वभवन, उच्चांश या स्वनवांश में हों तो अन्तर्दशाकाल में नवीनगृहनिर्माण, नित्यमिष्टान्न भोजन, स्त्री-पुत्र को ऐश्वर्य, मित्र के साथ भोजन, अन्नदान, दान, धर्म, राजा की कृपा से वाहन, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, व्यवसाय में फलाधिक्य, पशुलाभ, पश्चिम दिशा में यात्रा, ये फल होते हैं ।

वही शुक्र लग्न उपचयस्थान ३।६।१०।११ में शुभग्रहयुक्त, या दृष्ट हों या मित्र के नवांश या उच्च में लाभेश या योगकारक ग्रह के साथ हों तो अन्तर्दशा में राज्यलाभ, महोत्साह, सुखद राजप्रेम, घर में कल्याणाभिवृद्धि तथा स्त्री-पुत्रादि की वृद्धि होती है ॥ १–८ ॥

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे पापयुक्तेऽथ वीक्षिते ।
चौरादिव्रणभीतिश्च सर्वत्र जनपीडनम् ॥ ९ ॥
राजद्वारे जनद्वेष-इष्टबन्धुविनाशनम् ।
दारपुत्रादिपीडा च सर्वत्र जनपीडनम् ॥ १० ॥

शुक्र ६।८।१२ में पापग्रह से युत या दृष्ट हों तो चोर आदि तथा व्रण से भय, राजद्वार में लोगों से द्वेष, इष्टों का विनाश, स्त्री पुत्रादि को कष्ट, जनपीडन, ये सब फल होते हैं ॥ ९–१० ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु स्थिते चेन्मरणं भवेत् ।
दुर्गाजपं प्रकुर्वीत धेनुदानं च कारयेत् ॥ ११ ॥

वही शुक्र २।७ के अधिप होकर रहें तो अन्तर्दशा में मरणकारक होते हैं। शान्त्यर्थं दुर्गापाठ जप तथा गोदान कराना चाहिए ॥ ११ ॥

—सूर्यान्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते सूर्ये सन्तापो राजभिः कलिः ।
दायादात् कलहश्चैव शुभक्षेत्रान्यराशिगे ॥ १२ ॥

शुभराशि से अन्यत्र सूर्य रहें तो शुक्र की महादशा में सूर्यान्तर आनेपर सन्ताप, राजा तथा दायादों से विरोध होता है ॥ १२ ॥

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे सूर्ये मित्रर्क्षे केन्द्रकोणगे ।
दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥ १३ ॥
तद्भुक्तौ धनलाभः स्याद्राज्यस्त्रीधनसम्पदः ।
स्वप्रभोश्च महत्सौख्यमिष्टबन्धोः समागमः ॥ १४ ॥
मातापित्रोः सुखावाप्तिं भ्रातृलाभं सुखावहम् ।
सत्कीर्तिं सुखसौभाग्यं पुत्रलाभं च विन्दति ॥ १५ ॥

लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन, या मित्रगृह में, दशेश से केन्द्र, कोण, लाभस्थान या धनस्थान में स्थित सूर्य हों तो अन्तर्दशा में धनलाभ, राज्य, स्त्री, धन, सम्पत्ति, का सुख, अपने प्रभु से महासुख, इष्ट मित्र का शुभागम, माता-पिता को सुखप्राप्ति, भ्रातृसुख, सुयश, सुख सौभाग्योदय, तथा पुत्र का लाभ होता है ॥ १३–१५ ॥

अष्टमे च व्यये सूर्ये षष्ठस्थानस्थितेऽपि वा ।
नीचे वा पापवर्गस्थे देहतापो मनोरुजा ॥ १६ ॥
स्वजनात् परिसंक्लेशो नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
पितृपीडा बन्धुहानी राजद्वारे विरोधनम् ॥ १७ ॥
व्रणपीडाहिबाधा च स्वगेहे तु भयं तथा ।
नानारोगभयं चैव गृहक्षेत्रादिनाशनम् ॥ १८ ॥

वही सूर्य ६।८।१२ नीचस्थान या पापवर्ग में स्थित हों तो अन्तर्दशा में शरीर में ज्वर, मानसिक कष्ट, स्वजन से क्लेश, नित्य मिष्टान्नभोजन, पिता को कष्ट, बन्धु

की हानि, राजद्वार में विरोध, व्रण तथा सर्प से बाधा, घर में अनेक रोगों का भय, घर तथा खेत आदि का विनाश ये फल होते हैं ॥ १६–१८ ॥

सप्तमाधिपतौ तत्र ग्रहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं सूर्यप्रीतिं च कारयेत् ॥ १९ ॥

सप्तमेश सूर्य हों तो ग्रहबाधा कहें। शान्ति के लिये सूर्य की उपासना करनी चाहिए ॥ १९ ॥

—चन्द्रान्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते चन्द्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव भाग्येशेन च संयुते ॥ २० ॥
शुभयुक्ते पूर्णचन्द्रे राज्यनाथेन संयुते ।
तद्भुक्तौ वाहनसुखं गृहे लाभः शुभावहः ॥ २१ ॥
महाराजप्रसादेन गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ।
महानदीस्नानपुण्यं देवब्राह्मणपूजनम् ॥ २२ ॥
गीतवाद्यप्रसङ्गादि-विद्वज्जनविभूषणम् ।
गोमहिष्यादिवृद्धिश्च व्यवसायेऽधिकं फलम् ॥ २३ ॥
भोजनाम्बरसौख्यं च बन्धुसंयुक्तभोजनम् ।

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वोच्च, स्वभवन में स्थित चन्द्र भाग्येश, राज्येश या अन्य शुभग्रह के साथ हों तो शुक्र की दशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा आनेपर वाहनसुख, घर में शुभलाभ, राजा की कृपा से गजान्त ऐश्वर्य की प्राप्ति, महानदी (गङ्गादि) में स्नान, देव ब्राह्मण की पूजा, गाना बाजा के प्रसङ्ग से विद्वज्जनों से सङ्गति, गो, महिषी, आदि पशुओं की वृद्धि, व्यापार में अधिक लाभ, भोजन वस्त्र का सौख्य, तथा बन्धुओं के साथ भोजन ये सभी फल होते हैं ॥ २०–२३ ॥

नीचे वाऽस्तंगते वापि षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥ २४ ॥
दायेशात् षष्ठगे वापि रन्ध्रे वा व्ययराशिगे ।
तत्काले धननाशः स्यादपि कष्टं महद् भयम् ॥ २५ ॥
देहायासो मनस्तापो राजद्वारे विरोधनम् ।
विदेशगमनं चैव तीर्थयात्रादिकं फलम् ॥ २६ ॥
दारपुत्रादिपीडा च निजबन्धुवियोजनम् ।

वही चन्द्र लग्न से ६।८।१२ में नीचस्थ या अस्तंगत हों, या दशापति से ६।८।१२ में हो तो धननाश, कष्ट, महाभय, शारीरिक क्लेश, मनस्ताप, राजदरबार में

विरोध, विदेशयात्रा, तीर्थयात्रा, स्त्री-पुत्रादि को कष्ट, बन्धुओं से वियोग ये फल होते हैं ॥ २४–२६ ॥

दायेशात् केन्द्रलाभस्थे त्रिकोणे त्रिक्रमेऽपि वा ॥ २७ ॥
राजप्रीत्या भवेत् सद्यो देशग्रामाधिपत्यकम् ।
धैर्यं चैव सुखं कीर्तिर्वाहनाम्बरभूषणम् ॥ २८ ॥
कूपारामतडागादि-निर्माणं धनसंग्रहः ।
भुक्त्यादौ देहसौख्यं स्यादन्ते क्लेशो महान् भवेत् ॥ २९ ॥

चन्द्रमा दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, तृतीयस्थान में स्थित हों तो अन्तर्दशा में राजा की कृपा से देश या गांव का स्वामित्व, धैर्य, यश, सुख, वाहन, वस्त्र, भूषण, कूप, बगीचा-तालाब आदि का निर्माण, धनसंग्रह, दशारम्भमें शरीर-सुख और अन्त में महाक्लेश होता है ॥ २७–२९ ॥

—कुजान्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते भौमे लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे भौमे लाभे वा बलसंयुते ॥ ३० ॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते कर्मभाग्येशसंयुते ।
तद्भुक्तौ राजयोगादि-सम्पदः शोभना मताः ॥ ३१ ॥
वस्त्राभरणभूम्यादेरिष्टसिद्धिः सुखावहा ।

लग्न से केन्द्र त्रिकोण, स्वोच्च, स्वभवन तथा लाभस्थान में स्थित प्रबल मङ्गल लग्नेश, कर्मेश, या भाग्येश के साथ हों तो शुक्र की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा आनेपर राजयोगप्रयुक्त विशिष्ट सम्पत्ति, वाहन, भूषण, तथा भूमि का लाभ, और सुखप्रद अभीष्टसिद्धि होती हैं ॥ ३०–३१ ॥

तथाऽष्टमे व्यये वापि दायेशाद्वा तथैव च ॥ ३२ ॥
शीतज्वरादिपीडा च पितृमातृभयावहा ।
ज्वराद्यधिकरोगाश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा ॥ ३३ ॥
स्वबन्धुजनहानिश्च कलहो राजभिः सह ।
राजद्वारजनैर्द्वेषो धनधान्यव्ययोऽधिकः ॥ ३४ ॥
व्यवसायात् फलं नेष्टं हानिर्भूम्यादिकस्य च ।

लग्न या दशापति से ८।१२ में मङ्गल हो तो अन्तर्दशाकाल में पिता माता को भय देनेवाले शीतज्वर से कष्ट, अन्य भी ज्वराधिकरोग, स्थानभ्रंश, मनःक्लेश, बन्धुओं की हानि, राजा से विरोध, राजदरबार में अधिकारियों से द्वेष; धन धान्य का व्यय होता है। व्यापार में हानि, तथा भूमि आदि का हानि होती है ॥ ३२–३४ ॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥ ३५ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ।

वही मङ्गल २।७ के अधिप हों तो शारीरिक बाधा होती है । दोष परिहार के लिए शान्ति करनी चाहिए ॥ ३५ ॥

—राह्वन्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते राहौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा शुभसंदृष्टे योगकारकसंयुते ॥ ३६ ॥
तद्भुक्तौ बहुसौख्यं च संलाभो धनधान्ययोः ।
इष्टबन्धुसमाकीर्णं भोजनं भवने भवेत् ॥ ३७ ॥
यातुः कार्यार्थसिद्धिः स्यात् पशुक्षेत्रादिसम्भवः ।
लग्नाद्युपचये राहौ तद्भुक्तिः सुखदा भवेत् ॥ ३८ ॥
शत्रुनाशो महोत्साहो राजप्रीतिः शुभावहा ।
भुक्त्यादौ शरमासांश्चाप्यन्तेऽजीर्णं तथा ज्वरः ॥ ३९ ॥

केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, लाभस्थान में स्थित राहु शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हों, योगकारक ग्रह भी साथ में हों तो शुक्र की दशा में राहु की अन्तर्दशा आनेपर परमसुख, धनधान्य का लाभ, इष्ट बन्धुओं के साथ भोजन यात्रा में कार्यसिद्धि, पशु तथा क्षेत्र का लाभ होता है । लग्न से उपचय स्थान ३।६।११।१० में राहु रहे तो अन्तर्दशाकाल शुभप्रद होता है । उस समय शत्रुनाश, महोत्साह, राजा की प्रसन्नता, आदि शुभफल दशारम्भ में पांच महीनों तक होता है । अन्तर्दशान्त में अजीर्ण रोग तथा ज्वरप्रकोप कहना चाहिए ॥ ३६–३९ ॥

कार्ये विघ्नमवाप्नोति सञ्चारे च मनोव्यथा ।
परं सुखं च सौभाग्यं नृपतुल्यं प्रजायते ॥ ४० ॥
नैर्ऋतिं दिशमाश्रित्य प्रयाणं प्रभुदर्शनम् ।
यातुःकार्यार्थसिद्धिः स्यात् स्वदेशे पुनरेष्यति ॥ ४१ ॥
उपकारो ब्राह्मणानां तीर्थयात्राफलं भवेत् ।

कार्य में विघ्न, यात्रा में मनोव्यथा, किन्तु राजा की तरह सौभाग्यपूर्ण सुख, नैर्ऋत्य कोण में यात्रा तथा राजदर्शन, यात्रा में कार्यसिद्धि, स्वदेश परावर्त्तन, ब्राह्मणों को उपकार तथा तीर्थयात्रा ये फल होते हैं ॥ ४०–४१ ॥

दायेशाद्रन्ध्रराशिस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥ ४२ ॥
अशुभं लभते कर्म पितृमातृजनावधि ।
सर्वत्र जनविद्वेषो नानारूपेण जायते ॥ ४३ ॥

द्वितीये सप्तमे वापि देहालस्यं विनिर्दिशेत् ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥ ४४ ॥

दशापति से ८।१२ में पापयुक्त राहु हो तो माता पिता तक अशुभ फल तथा सर्वत्र जनद्वेष होता है । २।७ में राहु रहें शरीर में आलस्य कहना चाहिए । दोष परिहार के लिए मृत्युञ्जयजप करना कल्याणकारक होता है ॥ ४२–४४ ॥

—गुर्वन्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते जीवे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
दायेशाच्छुभराशिस्थे भाग्ये वा पञ्चमेऽथवा ॥ ४५ ॥
नष्टराज्याद्धनप्राप्तिरिष्टार्थाम्बरसम्पदः ।
मित्रप्रभोश्च सम्मानं धनधान्यं तथैव च ॥ ४६ ॥
राजसम्मानकीर्त्ती चाप्यश्वान्दोलादिजं सुखम् ।
विद्वत्प्रभुसमायातं शास्त्रपाठपरिश्रमम् ॥ ४७ ॥
पुत्रोत्सवादि-सन्तोषमिष्टबन्धु-समागमम् ।
पितृमातृसुतभ्रातृ-प्रभृतेः सुखमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥

लग्न या दशेश से केन्द्र, त्रिकोण उच्च, स्वभवन या शुभराशि में स्थित गुरु हों तो शुक्रदशा में जीवान्तर आनेपर नष्ट राज्य से धनप्राप्ति, अभीष्ट धन वस्त्र तथान्य सम्पत्तियों की प्राप्ति, मित्र तथा राजा से सम्मान, धनधान्यागम, राजा का सम्मान सुयश, घोड़ा पालकी आदि का सुख, विद्वान् प्रभु का शुभागम, शास्त्र-पाठ में श्रम, पुत्रोत्सवप्रयुक्त सन्तोष, इष्ट बन्धु का समागम, माता, पिता, पुत्र, भाई प्रभृति का सुख प्राप्त होते हैं ॥ ४५–४८ ॥

दायेशात् षष्ठराशिस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
राजचौरादिपीडा च देहपीडा तथैव च ॥ ४९ ॥
आत्मरुग्बन्धुकष्टं च कलहेन मनोव्यथा ।
स्थानच्युतिः प्रवासश्च नानारोगा भवन्ति हि ॥ ५० ॥
द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥ ५१ ॥

दशापति से ६।१२ में पापयुक्त गुरु हों तो अन्तर्दशा में राजा चोर आदि से कष्ट, शारीरिक पीड़ा, अपने को रोग, बन्धुओं को कष्ट, कलह से मनोव्यथा, स्थानभ्रंश प्रवास, तथा अनेक रोग होते हैं । वही २।७ के अधिप रहें तो देहबाधा होगी । दोषपरिहार के लिए मृत्युञ्जयजप करना चाहिए ॥ ४९–५१ ॥

—शन्यन्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे तु परमोच्चगे ।
स्वर्क्षकेन्द्रत्रिकोणस्थे तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥ ५२ ॥
तद्भुक्तौ बहुसौख्यं स्यादिष्टबन्धुसमन्वयः ।
सम्मानं राजभवने पुत्रिकाजननं शुभम् ॥ ५३ ॥
पुण्यतीर्थफलावाप्तिः पुण्यं स्याद्दानधर्मयोः ।
पदोन्नतिः प्रभुवरात् नीचगे क्लेशमादिशेत् ॥ ५४ ॥

स्वोच्चराशि, परमोच्चस्थान, स्वभवन, केन्द्र, त्रिकोण, उच्चनवांश या स्वनवांश में स्थित शनि हों तो शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आनेपर बहुत सुख, इष्टमित्र-बन्धुओं का सम्मेलन, राजभवन में सम्मान, शुभप्रद कन्याजन्म, पुण्यतीर्थ फलप्राप्ति, दान धर्म के द्वारा पुण्यलाभ, अपने स्वामी के यहां पदोन्नति, ये सब फल होते हैं । । वही शनि नीचस्थ हों तो अन्तर्दशा के समय क्लेशकारक होते हैं ॥

देहालस्यमवाप्नोति चायादप्यधिकं व्ययम् ।
अष्टगे वाव्येय मन्दे दायाधीशात् तथैव च ॥ ५५ ॥
भुक्त्यादौ देहपीडा स्यात् पितृमातृजनावधि ।
दारपुत्रादिपीडा च भ्रमणं बहुशो भवेत् ॥ ५६ ॥
व्यवसायात् फलं नेष्टं गोमहिष्यादिनाशनम् ।
द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥ ५७ ॥
तद्दोषपरिहारार्थं तिलहोमादिकं चरेत् ।

दशेश से अष्टम या द्वादश में शनि स्थित हों तो देहालस्य, आय से अधिक खर्च, अन्तर्दशा के आरम्भ में शरीरपीड़ा, पिता माता को भी शरीरकष्ट, स्त्री-पुत्र को भी कष्ट, भ्रमण, व्यावसायिक फल का अभाव, गाय, भैंस आदि पशुओं का विनाश, ये सब फल होते हैं । वही शनि २।७ के अधीश रहें तो देह-बाधा होती है । दोषपरिहार के लिए तिलहोमादि करना चाहिए ॥ ५५—५७ ॥

—बुधान्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रे लाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि राजप्रीतिः शुभावहा ॥ ५८ ॥
सौभाग्यं पुत्रलाभश्च धनलाभः सदध्वना ।
पुराणधर्मश्रवणं शृङ्गारिजनसंगमः ॥ ५९ ॥
इष्टबन्धुजनाकीर्णे गेहे नृपसमागमः ।

स्वप्रभोश्च महत्सौख्यं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥ ६० ॥

केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान, स्वोच्च, स्वभवन, में यदि बुध स्थित हों तो शुक्र की दशा में बुध की अन्तर्दशा आनेपर शुभद राजप्रसाद, सौभाग्योदय, पुत्रलाभ या पुत्र-सुख, सन्मार्ग से धनप्राप्ति, पुराणधर्मोपदेश का श्रवण, शृङ्गाररस प्रेमियों के साथ सङ्गति, इष्टबन्धुजनों से पूर्ण घर में राजा का समागम, अपने स्वामी से महासुख, तथा नित्य मिष्टान्नभोजन, ये सभी फल होते हैं ॥ ५८–६० ॥

दायेशात् षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
पापैर्दृष्टेऽथवा युक्ते चतुष्पाज्जीवनाशनम् ॥ ६१ ॥
अन्यालयनिवासश्च मनोवैकल्यसम्भवः ।
व्यवहारे तु सर्वत्र धननाशो भवेद् ध्रुवम् ॥ ६२ ॥
शुक्रत्यादौ शोभनं प्रोक्तं मध्ये तु मध्यमं सुखम् ।
अन्ते क्लेशस्तथा विप्र ! शीतवातज्वरादिकम् ॥ ६३ ॥
सप्तमाधीशदोषेण देहपीडा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥ ६४ ॥

दशापति से ६।८।१२ में निर्बल, पापयुक्त या पापदृष्ट बुध हों तो अन्तर्दशाकाल में पशुनाश, परगृहनिवास, मानसिक विकलता, सर्वत्र व्यवसाय में क्षति, अन्तर्दशारम्भ में शुभ, मध्य में मध्यम और अन्त में क्लेश, शीतज्वर ये सब होते हैं ।

यदि बुध सप्तमेश रहें तो शारीरिक कष्ट होता है । दोषपरिहार के लिए विष्णुसहस्र नाम का पाठ करना चाहिए ॥ ६१–६४ ॥

—केत्वन्तर्दशाफल

शुक्रस्यान्तर्गते केतौ स्वोच्चे वा स्वर्क्षगेऽपि वा ।
योगकारकसम्बन्धे स्थानवीर्यसमन्विते ॥ ६५ ॥
शुक्रत्यादौ तु शुभं प्रोक्तं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
व्यवसायात् फलाधिक्यं गोमहिष्यादिवर्धनम् ॥ ६६ ॥
धनधान्यसमृद्धिश्च संग्रामे विजयो भवेत् ।
शुक्रत्यन्ते हि सुखं चैव मध्ये मध्यफलं स्मृतम् ॥ ६७ ॥
मध्ये मध्ये महत्कष्टं पश्चादारोग्यमादिशेत् ।

उच्च, स्वभवन में स्थित केतु योगकारकग्रह से युक्त तथा स्थानबलपूर्ण हों तो शुक्र की दशा में केत्वन्तर्दशा आनेपर आरम्भ में नित्य मिष्टान्नभोजन, व्यापार में प्रचुरलाभ, गाय-भैंस की वृद्धि, धन-धान्य की समृद्धि, संग्राम में विजय ये शुभफल

होते हैं। अन्तर्दशान्त में भी सुख होता है, मध्य में मध्यम फल, किन्तु बीच-बीच में महान् कष्ट होता है और बाद आरोग्यप्राप्ति होती है ॥ ६५–६७ ॥

दायेशाद्रन्ध्रगृहगे व्यये वा पापसंयुते ॥ ६८ ॥
चौराहिव्रणपीडा च बुद्धिनाशो महाभयम् ।
शिरोरुजा मनस्तापः कलहः कारणं विना ॥ ६९ ॥
प्रमेहादिकरोगश्च नानामार्गे धनव्ययः ।
भार्यापुत्रविरोधश्च गमनं कार्यनाशनम् ॥ ७० ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ।
तन्निवृत्त्यै छागदान-मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥ ७१ ॥

दशापति से ८।१२ में सपाप केतु रहें तो अन्तर्दशा के समय चोर, सर्प, व्रण से कष्ट, बुद्धिक्षय, महाभय, शिरोवेदना, मानसिक सन्ताप, अकारण कलह, प्रमेह आदिक रोग, अनेक रूप में धननाश, स्त्री-पुत्र से विरोध, यात्रा तथा कार्यक्षति होती है। दशेश से २।७ के अधीश केतु रहें तो शारीरिक बाधा होती है। दोषपरिहार के लिए मृत्युञ्जयजप तथा छागदान करना चाहिए।

दशान्तर्दशाध्यायों में यही सारांश है कि किसी ग्रह की महादशा में जिसकी अन्तर्दशा आवे वह लग्न वा दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वगृह, स्वनवांश, उच्चनवांश, लाभस्थान या अन्य शुभ स्थानों में हों तो सर्वविध सौख्य-सम्पत्ति तथा शुभफल देते हैं। वही ग्रह ६।८।१२, शत्रुगृह, नीच, नीचांश आदि अशुभ स्थान में रहनेपर असत्फलकारक होते हैं। दशेश से २।७ के अधिप होनेपर अपमृत्यु, शारीरिक बाधा होती है। दोषपरिहार के लिए शान्ति करानी चाहिए ॥ ६८–७१ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे शुक्रदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः ॥

अथ प्रत्यन्तर्दशाफलाध्यायः ॥ ६२ ॥

पराशर उवाच—

अन्तर्दशादिनाद्यं यत् स्वस्वाब्दैर्निहतं हृतम् ।
विंशोत्तरशतेनाप्तं प्रत्यन्तर-दिनादिकम् ॥ १ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय!) दिनादिक अन्तर्दशा को अपने-अपने दशावर्ष से गुणा कर १२० से भाग देनेपर आगत लब्धि (विंशोत्तरी में) दिनादिक प्रत्यन्तर्दशा होती है ॥ १ ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की महादशा में सूर्यान्तर्दशा में सूर्यादि नवग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा जानी है। उपरिकथित नियमानुसार सूर्य की वर्षादिक अन्तर्दशा ०।३।१८ को दिनात्मक बनाने पर ३० × ३ + १८ = १०८ दिन। $\frac{१०८ \times ६}{१२०} = \frac{९ \times ६}{१०}$ = ५ दि. २४

घटी, यह सूर्य की महादशा में, सूर्यान्तर्दशा में सूर्य का दिनादिक प्रत्यन्तर हुआ। अतः मासादिक प्रत्यन्तर = ०।५।२४।

इसी तरह १०८ को चन्द्रदशावर्ष १० से गुणा कर १२० से भाग लेने पर $\frac{१०८ \times १०}{१२०}$ = ९ दिन। यह सूर्य की दशा में सूर्यान्तर में चन्द्रमा का दिनादिक प्रत्यन्तर हुआ। अतः चन्द्रमा का मासादिक प्रत्यन्तर = ०।९।०। उसी १०८ को मङ्गल के दशावर्ष से गुणाकर १२० से भाग देनेपर $\frac{१०८ \times ७}{१२०} = \frac{९ \times ७}{१०} = \frac{६३}{१०}$ = ६ दिन १८ घटी, यह सूर्य की दशा में सूर्यान्तर में मङ्गल का दिनादिक प्रत्यन्तर हुआ। अतः मासादिक प्रत्यन्तर = ०।६।१८।

इसी तरह सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चन्द्रादिनवग्रहों का प्रत्यन्तर लाना हो तो दिनादिक चन्द्रान्तर्दशामान ६ × ३० = १८० को चन्द्रदशा वर्ष १० से गुणाकर १२० से भाग लेनेपर $\frac{१८० \times १०}{१२०} = \frac{३ \times १०}{२}$ = १५ दिन = मा० दि. १५ घ० यह सूर्य की महादशा में चन्द्रान्तर में चन्द्रमाका मासादिक प्रत्यन्तर हुआ। ऐसे ही सभी ग्रहों का प्रत्यन्तर होता है ॥ १ ॥

सूर्य की महादशा में—

—सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८
घटी	२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०

—चन्द्र की अन्तर्दशा में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	०	०	०	०	०	०	०	१	०
दिन	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

—मङ्गल की अन्तर्दशा में मङ्गलादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	१६	१०
घटी	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०

—राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	१	१	१	१	०	१	०	०	०
दिन	१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८
घटी	३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४

—गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३
घटी	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

—शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	१	१	०	१	०	०	०	१	१
दिन	२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५
घटी	९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६

—बुध की अन्तर्दशा में बुधादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१
दिन	१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८
घटी	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	५७

—केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	०	०	१	०	०	०	०	०
दिन	७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७
घटी	२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१

—शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	२	०	१	०	१	१	१	१	०
दिन	०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—सूर्यान्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

उद्वेगो वित्तनाशश्च दारार्त्तिः शिरसि व्यथा ।
ब्राह्मणेन विवादश्च सूर्ये स्वविदशां गते ॥ २ ॥

सूर्यान्तर्दशा में सूर्य प्रत्यन्तर के समय उद्वेग, धनक्षय, स्त्रीपीडा, शिरोवेदना, ब्राह्मण के साथ विवाद ये असत्फल होते हैं। किन्तु प्रत्यन्तर वाला ग्रह उच्चादि शुभस्थान में रहें तो अशुभफल नहीं होता, प्रत्युत अन्तर्दशाफल की तरह अच्छा ही फल कहना चाहिए ॥ २ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

उद्वेगः कलहश्चापि धननाशो मनोरुजा ।
मणिमुक्तादिनाशश्च शशिप्रत्यन्तरे रवौ ॥ ३ ॥

सूर्य की अन्तर्दशा में चन्द्र प्रत्यन्तर आनेपर मानसिक उद्वेग, झगड़ा, धनक्षय, मनोव्यथा, मणि-मुक्तादि रत्नों का विनाश, ये फल होते हैं ॥ ३ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में मङ्गल का प्रत्यन्तरफल

राजभीतिः शस्त्रभीतिर्बन्धनं बहुसङ्कटम् ।
शत्रुवह्निकृता पीडा कुजस्य विदशाफलम् ॥ ४ ॥

सूर्यान्तर्दशा में भौम-प्रत्यन्तर आनेपर राजा तथा शत्रु से भय, बन्धन, महासङ्कट, शत्रु तथा अग्नि से पीड़ा, ये फल होते हैं ॥ ४ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तरफल

श्लेष्मव्याधिः शत्रुभीतिर्धनहानिर्महद् भयम् ।
राजभंगस्तथा त्रासस्तमसो विदशाफलम् ॥ ५ ॥

सूर्य की अन्तर्दशा में राहु-प्रत्यन्तर आनेपर श्लेष्मप्रयुक्त रोग, शत्रुभय, धनक्षय, महाभय, राजभंग तथा मानसिक त्रास ये फल होते हैं ॥ ५ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तरफल

शत्रुनाशो जयो वृद्धिर्वस्त्रहेमादिभूषणम् ।
अश्वयानादिकावाप्तिर्जीवस्य विदशाफलम् ॥ ६ ॥

सूर्य की अन्तर्दशा में गुरु-प्रत्यन्तर आनेपर शत्रुक्षय, विजय, अभिवृद्धि, वस्त्र-सुवर्ण आदिक भूषण, तथा रथादि वाहनों की प्राप्ति, ये फल होते हैं ॥ ६ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तरफल

धनहानिः पशोः पीडा महोद्वेगो महारुजा ।
अशुभं सर्वमभितो विदशायां शनेः फलम् ॥ ७ ॥

सूर्य की अन्तर्दशा में शनि-प्रत्यन्तर आनेपर धनक्षय, पशुओं को कष्ट, मानसिक उद्वेग, महारोग, सभी क्षेत्रों में अशुभ, ये फल होते हैं ॥ ७ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तरफल

विद्यालाभो बन्धुसङ्गो भोज्यप्राप्तिर्धनागमः ।
धर्मलाभो नृपात् पूजा विदशायां विदः फलम् ॥ ८ ॥

सूर्य की अन्तर्दशा में बुध-प्रत्यन्तर आनेपर विद्याप्राप्ति, बन्धु बान्धवों से मिलन, भोज्यलाभ, धनागम, धर्मलाभ तथा राजसम्मान, ये फल होते हैं ॥ ८ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तरफल

प्राणभीतिर्महाहानी राजभीतिश्च विग्रहः ।
शत्रुणा च महावादो केतोस्तु विदशाफलम् ॥ ९ ॥

सूर्य की अन्तर्दशा में केतु-प्रत्यन्तर आने पर प्राणभय, महाक्षति, राजभय, कलह तथा शत्रु से महाविवाद ये फल होते हैं ॥ ९ ॥

—सूर्यान्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

दिनानि समरूपाणि लाभोऽप्यल्पो भवेदिह ।
स्वल्पा च सुखसम्पत्तिर्विदशायां भवेद् भृगोः ॥ १० ॥

सूर्यान्तर्दशा में शुक्र-प्रत्यन्तर आनेपर मध्यम रूप का समय, थोड़ा लाभ, अल्प सुखसम्पत्ति, ये फल होते हैं ॥ १० ॥

चन्द्र की महादशा में—

—चन्द्र की अन्तर्दशा में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	०	०	१	१	१	१	०	१	०
दिन	२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

—मङ्गल की अन्तर्दशा में मङ्गलादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	०	१	०	०	१	०	०
दिन	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७
घटी	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०

—राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	२	२	२	२	१	३	०	१	१
दिन	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१
घटी	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०

—गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	२	२	२	०	२	०	१	०	२
दिन	४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	श.	बु.	के	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	३	२	१	३	०	१	१	२	२
दिन	०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६
घटी	१५	४५	१५	०	२०	३०	१५	३०	०

—बुध की अन्तर्दशा में बुधादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	२	०	२	०	१	०	२	२	२
दिन	१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	८	२०
घटी	१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५

—केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	८	१	०	०	०	१	०	१	०
दिन	१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९
घटी	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५

—शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	३	१	१	१	३	२	३	२	१
दिन	१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	१
दिन	९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०
घटी	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल—

भूभोज्य-धनसम्प्राप्ती राजपूजामहत् सुखम् ।
लाभो महान् स्त्रियो भोगश्चन्द्रे तद्विदशाफलम् ॥ ११ ॥

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चन्द्र-प्रत्यन्तर आनेपर भूमि, सुभोजन तथा धन की प्राप्ति, राजसम्मान से महासुख, अन्य भी महालाभ, स्त्री-सम्भोग, ये फल होते हैं ॥ ११ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में मङ्गल का प्रत्यन्तरफल—

मतिवृद्धिर्महापूजा सुखं बन्धुजनैः सह ।
धनागमोऽरिभीरिन्दौ कुजस्य विदशाफलम् ॥ १२ ॥

चन्द्रान्तर्दशा में कुज-प्रत्यन्तर आनेपर बुद्धिवृद्धि, महासम्मान, बन्धुओं के साथ सुख, धनागम, शत्रुभय, ये फल होते हैं ॥ १२ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तरफल—

भवेत् कल्याणसम्पत्ती राजवित्तसमागमः ।
अशुभैरपमृत्युश्च तमसो विदशाफलम् ॥ १३ ॥

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में राहु-प्रत्यन्तर आनेपर कल्याण तथा सम्पत्ति, राजा से धनप्राप्ति, यदि राहु अशुभ ग्रहों से युत-दृष्ट हों तो अपमृत्यु, ये फल होते हैं ॥ १३ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तरफल—

वस्त्रलाभो महातेजो ब्रह्मज्ञानं च सद्गुरोः ।
राज्यालङ्करणावाप्तिर्जीवस्य विदशाफलम् ॥ १४ ॥

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में जीवप्रत्यन्तर आनेपर वस्त्रलाभ, तेजोवृद्धि, सद्‌गुरु से ब्रह्मज्ञान, राज्य तथा भूषण की प्राप्ति, ये फल होते हैं ॥ १४ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तरफल—

दुर्दिने त्वधिका पीडा वातपित्ताद् विशेपतः ।
धनधान्ययशोहानिर्विदशायां शनेः फलम् ॥ १५ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में शनि-प्रत्यन्तर आनेपर दुर्दिन (मेघाच्छन्नदिन) में वात-पित्त प्रयुक्त विशेष कष्ट, धन, धान्य, तथा यश की हानि, ये फल होते हैं ॥१५॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तरफल—

पुत्रजन्म हयप्राप्तिर्विद्यालाभो महोन्नतिः ।
शुक्लवस्त्रान्नलाभश्च बुधस्य विदशाफलम् ॥ १६ ॥

चन्द्रमा की अन्पर्दशा में बुध-प्रत्यन्तर आनेपर पुत्रोत्पत्ति, अश्वलाभ, विद्याप्राप्ति, महोदय, शुक्ल वस्त्र तथा अन्न का लाभ, ये फल होते हैं ॥ १६ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तरफल—

ब्राह्मणेन समं युद्धमपमृत्युः सुखक्षयः ।
सर्वत्र जायते क्लेशः शिखिनो विदशाफलम् ॥ १७ ॥

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में केतु-प्रत्यन्तर आनेपर ब्राह्मण से संघर्ष, अपमृत्यु, सुखनाश तथा सभी क्षेत्रों में कष्ट, ये फल होते हैं ॥ १७ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तरफल—

धनलाभो महत् सौख्यं कन्याजन्म सुभोजनम् ।
प्रीतिश्च सर्वलोकेभ्यो विदशायां भृगोः फलम् ॥ १८ ॥

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में शुक्र-प्रत्यन्तर आनेपर धनागम, महासुख, कन्योत्पत्ति, सुभोजन, सभी से प्रेम, ये सभी फल होते हैं ॥ १८ ॥

चन्द्र की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तरफल—

अन्नागमो वस्त्रलाभः शत्रुहानिः सुखागमः ।
सर्वत्र विजयप्राप्तिर्विदशायां रवेः फलम् ॥ १९ ॥

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में सूर्य-प्रत्यन्तर आनेपर अन्नलाभ, वस्त्रप्राप्ति, शत्रुक्षय, सुखप्राप्ति, तथा सर्वत्र विजय, ये फल होते हैं ॥ १९ ॥

मंगल की दशा में—

—मङ्गल की अन्तर्दशा में मङ्गलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.
दिन	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२
घटी	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

—राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३

—जीव (गुरु) की अन्तर्दशा में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

—शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	२	१	०	२	०	१	८	१	१
दिन	३	२६	२३	६	१९	६	२३	२९	२३
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

—बुध की अन्तर्दशा में बुधादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

—केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श	बु.
दिन	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२५	२०
घटी	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

—शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	२	०	१	०	२	१	२	१	०
दिन	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

—सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१
घटी	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०

—चन्द्र की अन्तर्दशा में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.
मास	०	०	१	०	१	०	०	१	०
दिन	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०
घटी	३०	१५	३०	०	०	१५	४५	१५	३०

मंगल के अन्तर में मंगल का प्रत्यन्तरफल—

शत्रुभीतिः कलिर्घोरो रक्तस्रावो भयं तथा।
मृत्योरपि महीजस्य विदशायां कुजान्तरे ॥ २० ॥

मङ्गल की अन्तर्दशा में मङ्गल का प्रत्यन्तर आनेपर शत्रुभय, भयंकर विरोध, रक्तस्राव तथा मृत्युभय होता है ॥ २० ॥

मङ्गल के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तरफल—

बन्धनं राजभङ्गश्च धनहानिः कुभोजनम्।
कलहः शत्रुभीर्नित्यं तमसो विदशाफलम् ॥ २१ ॥

कुजान्तर में राहु-प्रत्यन्तर आनेपर बन्धन, राजा तथा धन का विनाश, कदन्न-भोजन, झगड़ा, शत्रुभय, ये फल होते हैं ॥ २१ ॥

मङ्गल के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल—

मतिनाशस्तथा दुःखं सन्तापः कलहो भवेत्।
निष्फलं चिन्तितं सर्वमितीज्यविदशाफलम् ॥ २२ ॥

मङ्गल की अन्तर्दशा में गुरु-प्रत्यन्तर आनेपर बुद्धिनाश, दुःख, सन्ताप, कलह तथा सभी विचारित कार्यों में विफलता, ये फल होते हैं ॥ २२ ॥

मंगल के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल—

स्वामिनाशस्तथा पीडा धनहानिर्महाभयम्।
वैकल्यं कलहस्त्रासो विदशायां शनेः फलम् ॥ २३ ॥

मंगल की अन्तर्दशा में शनि-प्रत्यन्तर आनेपर मालिक का नाश, कष्ट, धनक्षय, महाभय, विकलता, झगड़ा तथा त्रास ये फल होते है ॥ २३ ॥

मंगल के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल—

सर्वथा बुद्धिनाशश्च धनहानिर्ज्वरस्तनौ।
वस्त्रान्नसुहृदां नाशो विदशायां विदो भवेत् ॥ २४

मंगल की अन्तर्दशा में बुध-प्रत्यन्तर आनेपर सर्वथा बुद्धिनाश, और हानि, शरीर में ज्वर, वस्त्र, अन्न, मित्र का विनाश, ये फल होते हैं ॥ २४ ॥

मंगल के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल—

आलस्यं च शिरःपीडा पापरोगोऽपमृत्युभीः।
राजभीतिः शत्रुघातः शिखिनो विदशाफलम् ॥ २५ ॥

मंगल की अन्तर्दशा में केतु के प्रत्युन्तर होने पर आलस्य, शिरोवेदना, पापजन्य, रोग, अपमृत्युभय, राजभय तथा शस्त्रघात ये फल होते हैं ॥ २५ ॥

—मंगल के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

चाण्डालात् संकटस्त्रासो राजशस्त्रभयं भवेत् ।
अतिसारोऽथ वमनं विदशायां भृगोः फलम् ॥ २६ ॥

मंगल की अन्तर्दशा में शुक्र प्रत्यन्तर आनेपर चाण्डाल से संकट, त्रास, राजा तथा शस्त्र का भय, अतिसार रोग, तथा वमन (कय) ये फल होते हैं ॥ २६ ॥

—मंगल के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

भूमिलाभोऽर्थसम्पत्तिः सन्तोषो मित्रसंगतिः ।
भवेत् सर्वत्र च सुखं विदशायां रवेः सदा ॥ २७ ॥

मंगल की अन्तर्दशा में सूर्य-प्रत्यन्तर आनेपर भूमिलाभ, धन, सम्पत्ति क आगमन, मनस्तोष, मित्रों का सङ्ग तथा सभी क्षेत्रों में सुख होता है ॥ २७ ॥

—मंगल के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

याम्यां दिशि भवेल्लाभः सितवस्त्राविभूषणम् ।
संसिद्धिः सर्वकार्याणां विदशायां विधोर्भवेत् ॥ २८ ॥

मंगल की अन्तर्दशा में चन्द्रप्रत्यन्तर आनेपर दक्षिण दिशा में लाभ, सफेद वस्त्र अलङ्करण की प्राप्ति तथा सभी कार्यों में सिद्धि ये फल होते हैं ॥ २८ ॥

राहु की दशा में—

—राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	४	४	५	४	१	५	१	२	१
दिन	२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६
घटी	४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२

—गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.
मास	३	४	४	१	४	१	२	१	४
दिन	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९
घटी	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६

—शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	५	४	१	५	१	२	१	५	४
दिन	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६
घटी	२७	२१	५१	०	१८	३०	५४	५७	४८

—बुध के अन्तर में बुधादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	४
दिन	१०	२२	३	१५	१६	२२	१७	२	२५
घटी	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१

—केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	२	०	१	०	१	१	१	१
दिन	२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३
घटी	३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३

—शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	६	१	३	२	५	४	५	५	२
दिन	०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—सूर्य के अन्तर में सूर्य आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४
घटी	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०

—चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.
मास	१	१	२	२	२	२	१	३	०
दिन	१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

—मङ्गल के अन्त में मङ्गलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.
मास	०	१	१	१	१	०	२	०	१
दिन	२२	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१
घटी	३	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०

—राहु के अन्तर में राहु के प्रत्यन्तर

बन्धनं बहुधा रोगो बहुघातः सुहृद्भयम् ।
तमसोऽन्तर्दशायां तु तमः प्रत्यन्तरे फलम् ॥ २९ ॥

राहु की अन्तर्दशा में राहु प्रत्यन्तर आनेपर, बन्धन, रोगभय, बहुविध प्रहार तथा मित्रभय होता है ॥ २९ ॥

—राहु के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल

सर्वत्र लभते मानं गजाश्वं च धनागमम् ।
तत्रैव तु सुरेज्यस्य प्राप्ते प्रत्यन्तरे नरः ॥ ३० ॥

राहु की अन्तर्दशा में गुरु-प्रत्यन्तर आनेपर मनुष्य सर्वत्र आदर, हाथी, घोड़ा, तथा धन की प्राप्ति करता है ॥ ३० ॥

—राहु के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल

बन्धनं जायते घोरं सुखहानिर्महद् भयम् ।
प्रत्यहं वातपीडा च विदशायां शनेः फलम् ॥ ३१ ॥

राहु की अन्तर्दशा में शनिप्रत्यन्तर आनेपर भयङ्कर बन्धन, सुखक्षय, महाभय, तथा प्रत्यह वातपीड़ा होती है ॥ ३१ ॥

—राहु के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल

सर्वत्र बहुधा लाभः स्त्रीसङ्गत्या विशेषतः ।
परदेशगता सिद्धिर्विदशायां विदः फलम् ॥ ३२ ॥

राहु की अन्तर्दशा में बुधप्रत्यन्तर आनेपर सब जगह अनेकविध लाभ, स्त्री के द्वारा विशेष रूप से लाभ, परदेश गमन से सिद्धि, ये फल होते हैं ॥ ३२ ॥

—राहु के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल

बुद्धिनाशो भयं विघ्नो धनहानिर्महद् भयम् ।
सर्वत्र कलहोद्वेगौ शिखिनो विदशाफलम् ॥ ३३ ॥

राहु की अन्तर्दशा में केतुप्रत्यन्तर आनेपर बुद्धिनाश, भय, बाधायें, धनक्षय, सर्वत्र कलह तथा उद्वेग ये फल होते हैं ॥ ३३ ॥

—राहु के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

योगिनीभ्यो भयं चैवमश्वहानिः कुभोजनम् ।
स्त्रीनाशः कुलजः शोकः सितस्य विदशाफलम् ॥ ३४ ॥

राहु की अन्तर्दशा में शुक्रप्रत्यन्तर आनेपर योगिनियों से भय, अश्वक्षय, कदन्न-भोजन, स्त्रीविनाश, वंश में शोक ये फल होते हैं ॥ ३४ ॥

—राहु के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

ज्वररोगो महाभीतिः पुत्रपौत्रादिपीडनम् ।
अपमृत्युः प्रमादश्च सूर्यस्य विदशाफलम् ॥ ३५ ॥

राहु की अन्तर्दशा में सूर्य प्रत्यन्तर आनेपर ज्वररोग, महाभय, पुत्रपौत्र आदि को क्लेश, अपमृत्यु तथा असावधानता ये फल होते हैं ॥ ३५ ॥

—राहु के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

उद्वेगकलहौ चिन्ता मानहानिर्महद् भयम् ।
पितुर्विकलता देहे शशिनो विदशाफलम् ॥ ३६ ॥

राहु की अन्तर्दशा में चन्द्रप्रत्यन्तर आनेपर उद्वेग, कलह, चिन्ता, मानहानि, महाभय, पिता के शरीर में कष्ट, ये फल होते हैं ॥ ३६ ॥

—राहु के अन्तर में मंगल का प्रत्यन्तरफल

भगन्दरकृता पीडा रक्तपित्तप्रपीडनम् ।
अर्थहानिर्महोद्वेगो भौमस्य विदशाफलम् ॥ ३७ ॥

राहु की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर आवे तो भगन्दर रोग से कष्ट, रक्तपित्तज रोगों से कष्ट, धनक्षय, महान् मानसिक उद्वेग, ये फल होते हैं ॥ ३७ ॥

गुरु की दशा में—

—गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	२	४	२	१	४	१	२	१	२
दिन	१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५
घटी	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२

—शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	४	४	१	५	१	२	१	४	४
दिन	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१
घटी	२४	२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६

—बुध के अन्तर में बुधादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	३	१	४	१	२	१	४	३	४
दिन	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९
घटी	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२

—केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	१	०	०	०	१	१	१	१
दिन	१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७
घटी	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६

—शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	५	१	२	१	४	४	५	४	१
दिन	१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८
घटी	२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०

—चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.
मास	१	०	२	२	२	२	०	२	०
दिन	१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—मङ्गल के अन्तर में मङ्गलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	१	१	०	१	०	०
दिन	१९	२०	१४	२३	१७	१९	१६	१६	२८
घटी	३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०

—राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	४	३	४	४	१	४	१	२	१
दिन	९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०
घटी	३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४

—गुरु की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तरफल

हेमलाभो धान्यवृद्धिः कल्याणं सत्फलोदयः ।
अन्तर्दाये सुरेज्यस्य तस्य प्रत्यन्तरे भवेत् ॥ ३८ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में गुरु का ही प्रत्यन्तर आवे तो सुवर्ण लाभ, धान्यवृद्धि, कल्याण तथा शुभफल का उदय होता है ॥ ३८ ॥

—गुरु के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल

गोभूमिहेमलाभः स्यात् सर्वत्र सुखसाधनम् ।
संग्रहोह्यन्नपानादेः त्रिदशायां शनेः फलम् ॥ ३९ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में शनिप्रत्यन्तर आनेपर गाय, भूमि, तथा सुवर्ण का लाभ, सर्वत्र सुखसाधन की सामग्री, अन्न, पान, आदि का भी संग्रह ये फल होते हैं ॥३९॥

—गुरु के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल

विद्यालाभो वस्त्रलाभो ज्ञानलाभः समौक्तिकः ।
सुहृदां संगमात् स्नेहो विदशायां त्रिदः फलम् ॥ ४० ॥

गुरु की अन्तर्दशा में बुधप्रत्यन्तर आनेपर विद्या, वस्त्र, ज्ञान तथा मोती का लाभ, मित्रों के आगमन से स्नेह, ये फल होते हैं ॥ ४० ॥

—गुरु के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल

जलभीतिस्तथा चौर्यं बन्धनं कलहो भवेत् ।
अपमृत्युभयं घोरं ध्वजस्य विदशाफलम् ॥ ४१ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में केतु प्रत्यन्तर आनेपर जलभय, चोरी, बन्धन, झगड़ा, अपमृत्युभय, ये फल होते हैं ॥ ४१ ॥

—गुरु के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल

नानाविद्यार्थसम्प्राप्तिर्हेमवस्त्रविभूषणम् ।
लभते क्षेमसन्तोषं विदशायां भृगोर्नरः ॥ ४२ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में शुक्रप्रत्यन्तर आवे तो अनेक विद्याओं, तथा कर्मों की प्राप्ति, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण का लाभ, कल्याणप्रयुक्त सन्तोष ये फल होते हैं ॥ ४२ ॥

—गुरु के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

नृपाल्लाभस्तथा मित्रात् पितृतोमातृतोऽपित्रा ।
सर्वत्र लभते पूजां विदशायां रवेर्नरः ॥ ४३ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में सूर्य प्रत्यन्तर आनेपर राजा, मित्र, पिता, माता से लाभ तथा सर्वत्र आदर मनुष्य पाता है ॥ ४३ ॥

—गुरु के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

सर्वदुःखविमोक्षश्च मुक्तालाभो हयस्य च ।
सिद्धन्ति सर्वकार्याणि चन्द्रप्रत्यन्तरे ध्रुवम् ॥ ४४ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर आवे तो सभी क्लेशों का विनाश, मोती तथा घोड़े का लाभ, और सभी कार्यों की सिद्धि होती है ॥ ४४ ॥

—गुरु के अन्तर में मंगल का प्रत्यन्तरफल

शस्त्रभीतिर्गुदे पीडा वह्निमान्द्यमजीर्णता ।
पीडा शत्रुकृता भूरिर्भौमस्य विदशाफलम् ॥ ४५ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में कुज प्रत्यन्तर आनेपर शस्त्रभय, गुदा में पीड़ा, अग्निमान्द्य, अजीर्णरोग, तथा शत्रुकृत पीड़ा होती है ॥ ४५ ॥

—गुरु के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तरफल

चाण्डालेन विरोधः स्याद् भयं तेभ्योऽर्थ-संक्षयः ।
कष्टं भीर्व्याधिशत्रुभ्यस्तमसो विदशाफलम् ॥ ४६ ॥

गुरु की अन्तर्दशा में राहु प्रत्यन्तर आनेपर चाण्डाल से विरोध, उनके द्वारा धननाश, कष्ट, व्याधि, शत्रु, से भय ये सब होते है ॥ ४६ ॥

शनि की महादशा में—

—शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	५	५	२	६	१	३	२	५	४
दिन	२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४
घटी	२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

—बुध के अन्तर में बुधादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	५
दिन	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३
घटी	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

—केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	२	०	१	०	१	१	२	१
दिन	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६
घटी	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

—शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	६	१	३	२	५	५	६	५	२
दिन	१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६
घटी	०.	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

—सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के	शु.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७
घटी	६	३०	५७	१८	३६	९	२७	५७	०

—चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
मास	१	१	२	२	३	२	१	३	०
दिन	१७	३	२५	१५	०	२०	३	५	२८
घटी	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०

—मङ्गल के अन्तर में मङ्गलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	२	१	०	२	०	१
दिन	२३	२९	२३	३	२६	२३	६	१९	३
घटी	१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

—राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	५	४	५	४	१	५	१	२	१
दिन	३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९
घटी	५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१

—गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	४	४	४	१	५	१	२	१	४
दिन	११	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६
घटी	३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८

—शनि के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल

देहपीडा कलेर्भीतिर्भयमन्त्यजलोकतः ।
नानादुःखं भवेन्मदान्तरे प्रत्यन्तरे शनेः ॥ ४७ ॥

शनि की अन्तर्दशा में शनिप्रत्यन्तर आनेपर शारीरिक वेदना झगड़े का भय, तथा अनेक विध दुःख, ये फल होते हैं ॥ ४७ ॥

—शनि के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल

बुद्धिनाशः कलेर्भीतिरन्नपानादिनाशनम् ।
धनहानिर्भयं शत्रोर्विदशायां शनेर्बुधे ॥ ४८ ॥

शनि की अन्तर्दशा में बुधप्रयन्तर आनेपर बुद्धिनाश, झगड़े का भय, अन्न, पान का विनाश, धनक्षय, शत्रुभय, ये सब होते हैं ॥ ४८ ॥

—शनि के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल

बन्धनं शत्रुगेहे स्याद् वर्णहानिर्बहुक्षुधा ।
चित्ते चिन्ता भयं त्रासः विदशायां ध्वजस्य वै ॥ ४९ ॥

शनि की अन्तर्दशा में केतु प्रत्यन्तर आनेपर शत्रुद्वारा बन्धन, वैवर्ण्य (म्लानता) क्षुधाधिक्य, मानसिक चिन्ता, भय तथा त्रास होता है ॥ ४९ ॥

—शनि के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

चिन्तितं फलितं वस्तु कल्याणं स्वजने भवेत् ।
मनुष्यकृतितो लाभो विदशायां भृगोः फलम् ॥ ५० ॥

शनि की अन्तर्दशा में शुक्रप्रत्यन्तर आनेपर विचारित वस्तु (मनोरथ) की सिद्धि, स्वजन में कल्याण, मानत्रोत्रिनकृत्य में लाभ, ये फल होते हैं ॥ ५० ॥

—शनि के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

राजतेजोऽधिकारित्वं स्वगृहे जायते कलिः ।
ज्वरादिव्याधिपीडा च सूर्यस्य विदशाफलम् ॥ ५१ ॥

शनि की अन्तर्दशा में सूर्यप्रत्यन्तर आनेपर राजसतेज, तथा अधिकार, अपने घर में झगड़ा, ज्वर, व्याधिजन्य पीड़ा ये फल होते हैं ॥ ५१ ॥

—शनि के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

स्फीतबुद्धिर्महारम्भो मन्दतेजा बहुव्ययः ।
बहुस्त्रीभिः समं भोगः शशिनो विदशाफलम् ॥ ५२ ॥

शनि की अन्तर्दशा में चन्द्रप्रत्यन्तर आनेपर बुद्धिविकाश, महान् कार्यों का आरम्भ, तेजोमान्द्य, बहुत खर्च, अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग, ये फल होते हैं ॥५२॥

—शनि के अन्तर में मंगल का प्रत्यन्तरफल

तेजोहानिः पुत्रघातो वह्निभीती रिपोर्भयम् ।
वातपित्तकृता पीडा विदशायां कुजस्य वै ॥ ५३ ॥

शनि की अन्तर्दशा में कुजप्रत्यन्तर आनेपर तेज की कमी, पुत्र को आघात, अग्नि तथा शत्रु से भय, वात तथा पित्त जन्य कष्ट, ये फल होते हैं ॥ ५३ ॥

—शनि के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तरफल

धननाशो वस्त्रहानिर्भूमिनाशो भयं तथा ।
विदेशगमनं मृत्युः तमसो विदशाफलम् ॥ ५४ ॥

शनि की अन्तर्दशा में राहु प्रत्यन्तर आनेपर धनक्षय, वस्त्रहानि, भूमिनाश, भय, विदेशयात्रा तथा मरण ये फल होते हैं ॥ ५४ ॥

—शनि के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल

गृहेषु स्त्रीकृतं छिद्रमसामर्थ्यं निरीक्षणे ।
अथवा कलिरुद्वेगो विदशायां गुरोः फलम् ॥ ५५ ॥

शनि की अन्तर्दशा में गुरुप्रत्येन्तर आनेपर स्त्री द्वाराकृत गृहच्छिद्र, उनकी देख भाल करने में अक्षमता, झगड़ा, तथा मानसिक उद्वेग ये फल होते हैं ॥५५॥

बुध की दशा में—

—बुध के अन्तर में बुधादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	४	१	२	१	४	३	४
दिन	२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७
घटी	४९	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

—केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	१	०	०	०	१	१	१	१
दिन	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२०
घटी	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	३४
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

—शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	५	१	२	१	५	४	५	४	१
दिन	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

—सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	श.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१
दिन	१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१
घटी	२८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०

—चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.
मास	१	०	२	२	२	२	०	२	०
दिन	१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	२५	२५
घटी	३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	६	३०

—मङ्गल के अन्तर में मङ्गलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	१	१	१	१	०	१	०	०
दिन	२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९
घटी	४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

—राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	४	४	४	४	१	५	१	२	१
दिन	१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३
घटी	४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३

—गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	३	४	३	१	४	१	२	१	४
दिन	१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

—शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	५	४	१	५	१	२	१	४	४
दिन	३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९
घटी	२५	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

—बुध के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल

बुद्धिर्विद्यार्थलाभो वा वस्त्रलाभो महत्सुखम् ।
स्वर्णादिधनलाभश्च विदशायां विदः फलम् ॥ ५६ ॥

बुधकी अन्तर्दशा में बुध प्रत्यन्तर आने पर बुद्धि, विद्या, धन, वस्त्र का लाभ, महासुख, सुवर्णादि रत्नलाभ, ये फल होते हैं ॥ ५६ ॥

—बुध के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल

कठिनान्नस्य सम्प्राप्तिरुदरे रोगसम्भवः ।
कामलं रक्तपित्तं च शिखिनो विदशाफलम् ॥ ५७ ॥

बुध की अन्तर्दशा में केतु प्रत्यन्तर प्राप्त हो तो कुत्सितान्न की प्राप्ति (कुभोजन) पेट में रोग, नेत्रो में कामला रोग तथा रक्तपित्तजरोग ये सब फल होते हैं ॥ ५७ ॥

—बुध के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

उत्तरस्यां भवेल्लाभो हानिः स्यात्तु चतुष्पदाम् ।
अधिकारो राजगेहे विदशायां भृगोर्भवेत् ॥ ५८ ॥

बुध की अन्तर्दशा में शुक्र प्रत्यन्तर आनेपर उत्तर दिशा में लाभ, पशुओं से क्षति, राजदरबार में अधिकार ये फल होते हैं ॥ ५८ ॥

—बुध के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

तेजोहानिर्भवेद् रोगस्तनुपीडा तथैव च ।
जायते चित्तवैकल्यं विदशायां रवे बुधे ॥ ५९ ॥

बुध की अन्तर्दशा में सूर्यप्रत्यन्तर आनेपर तेज में कमी, रोग तथा शारीरिक कष्ट, चित्त में विकलता, ये सब होते हैं ॥ ५९ ॥

—बुध के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

स्त्रीलाभश्चार्थसम्पत्तिः कन्यालाभो महद्धनम् ।
सर्वतः सौख्यलाभश्च विदीन्दुविदशाफलम् ॥ ६० ॥

बुध की अन्तर्दशा में चन्द्रप्रत्यन्तर आनेपर स्त्री, धन एवं सम्पत्ति का लाभ, कन्योत्पत्ति, महाधनलाभ, सर्वविध सौख्य की प्राप्ति, ये फल होते हैं ॥ ६० ॥

—बुध के अन्तर में मङ्गल का प्रत्यन्तरफल

धर्मधीधनसम्प्राप्तिश्चौराग्न्यादिप्रपीडनम् ।
रक्तवस्त्रं शस्त्रघातः कुजस्य विदशाफलम् ॥ ६१ ॥

बुध की अन्तर्दशा में मङ्गल के प्रत्यन्तर आनेपर धर्म, बुद्धि, धन की प्राप्ति, चोर अग्नि आदियों से पीड़ा, रक्तवस्त्रप्राप्ति, शस्त्र से आघात, ये फल होते हैं ॥ ६१ ॥

—बुध के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तरफल

कलहो जायते स्त्रीभिरकस्माद् भयसम्भवः ।
राजशस्त्रकृताभीतिस्तमसो विदशाफलम् ॥ ६२ ॥

बुध की अन्तर्दशा में राहु प्रत्यन्तर आनेपर स्त्रियों के साथ झगड़ा, एकाएक भयागम, राजा तथा शस्त्रकृत भय, ये फल होते हैं ॥ ६२ ॥

—बुध के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल

राज्यं राज्याधिकारो वा पूजा राजसमुद्भवा ।
विद्यावृद्धिश्च सद्बुद्धिः विदशायां गुरोः फलम् ॥ ६३ ॥

बुध की अन्तर्दशा में गुरु प्रत्यन्तर आनेपर राज्य या राज्याधिकार की प्राप्ति, राजा के द्वारा सम्मान, सद्बुद्धि तथा विद्या की वृद्धि, ये फल होते हैं ॥ ६३ ॥

—बुध के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल

वातपित्तमहापीडा देहघातसमुद्भवा ।
बहुधा धननाशश्च मन्दप्रत्यन्तरे भवेत् ॥ ६४ ॥

बुध की अन्तर्दशा में शनि प्रत्यन्तर आनेपर शारीरिक आघात के कारण वात पित्त जनित पीड़ा, तथा अनेक रूप में धन का नाश होता है ॥ ६४ ॥

केतु की महादशा में—

—केतु के अन्तर में केतु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०
घटी	३४	३०	२१	१५	३८	३	३६	१६	४९
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

—शुक्र के अन्तर में शुक्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	२	०	१	०	२	१	२	१	०
दिन	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

—सूर्य के अन्तर में सूर्यादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	०	२१
घटी	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०

—चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.
मास	०	०	१	०	१	०	०	१	०
दिन	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०
घटी	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०

—मङ्गल के अन्तर में मङ्गलादि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.
मास	०	०	१	०	०	०	०	०	०
दिन	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२
घटी	३४	३	२६	१६	४९	३४	३०	२१	१५
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

—राहु के अन्तर में राहु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३

—गुरु के अन्तर में गुरु आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४

—शनि के अन्तर में शनि आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	२	१	०	२	०	१	०	१	१
दिन	३	२६	२३	६	१९	३	३३	२९	२३
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

—बुध के अन्तर में बुध आदि ग्रहों का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

—केतु के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल

आपत्सुमुद्भवोऽकस्माद् देशान्तरसमागमः ।
ध्वजान्तरे द्रव्यनाशो ध्वजप्रत्यन्तरे फलम् ॥ ६५ ॥

केतु की अन्तर्दशा में केतु प्रत्यन्तर आनेपर एकाएक आपत्ति, देशान्तर गमन, द्रव्यनाश, ये फल होते हैं ॥ ६५ ॥

—केतु अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

म्लेच्छभीत्यर्थनाशो वा नेत्ररोगः शिरोव्यथा ।
केत्वन्तरे पशोर्हानिः सितप्रत्यन्तरे फलम् ॥ ६६ ॥

केतु की अन्तर्दशा में शुक्रप्रत्यन्तर आनेपर, म्लेच्छों का भय, या उससे धनक्षय, नेत्ररोग, शिरोवेदना, पशुओं की हानि, ये फल होते हैं ॥ ६६ ॥

—केतु के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

मित्रैः सह विरोधश्चापमृत्युरपि निर्जयः ।
मतिभ्रंशो विवादश्च सूर्यप्रत्यन्तरे फलम् ॥ ६७ ॥

केतु की अन्तर्दशा में सूर्यप्रत्यन्तर आनेपर मित्रों के साथ विरोध, अपमृत्यु, पराजय, बुद्धिभ्रंश तथा विवाद होते हैं ॥ ६७ ॥

—केतु के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

अन्ननाशो यशोहानिर्देहपीडा मतिभ्रमः ।
आमवातादिवृद्धिश्च शशिनो विदशाफलम् ॥ ६८ ॥

केतु की अन्तर्दशा में चन्द्रप्रत्यन्तर आनेपर अन्ननाश, यशः क्षय, शारीरिक पीड़ा, बुद्धिभ्रम आमवात की वृद्धि, ये फल होते हैं ॥ ६८ ॥

—केतु की अन्तर में मङ्गल का प्रत्यन्तरफल

शस्त्रघातेन पानेन वह्निना च प्रपीडनम् ।
नीचाद् भीतीरिपोः शङ्का भौमस्य विदशाफलम् ॥ ६९ ॥

केतु की अन्तर्दशा में भौमप्रत्यन्तर आनेपर शस्त्राघात से, गिरने से तथा अग्नि से पीड़ा, नीच से भय और शत्रु से आशङ्का, ये फल होने हैं ॥ ६९ ॥

—केतु के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तरफल

कामिनीभ्योभवेद् भीतिस्तथा वैरिसमुद्भवः ।
क्षुद्रादपि भवेद् भीतिस्तमसो विदशाफलम् ॥ ७० ॥

केतु की अन्तर्दशा में राहुप्रत्यन्तर आनेपर स्त्रियों से भय, शत्रुओं का प्रादुर्भाव, तथा क्षुद्रजनों से भी भय होता है ॥ ७० ॥

—केतु के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल

धनहानिर्महोत्पातो वस्त्रमित्रविनाशकम् ।
सर्वत्र क्लेशसम्प्राप्तिर्जीवप्रत्यन्तरे भवेत् ॥ ७१ ॥

केतु की अन्तर्दशा में गुरुप्रत्यन्तर आनेपर धनक्षय, महोत्पात, वस्त्र तथा मित्रों का विनाश, सर्वत्र क्लेश, ये फल होते हैं ॥ ७१ ॥

—केतु के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल

गोमहिष्यादि मरणं देहपीडा सुहृद्वधः।
स्वल्पाल्पलाभकरणं मन्दस्य विदशाफलम् ॥ ७२ ॥

केतु की अन्तर्दशा में शनिप्रत्यन्तर आनेपर शारीरिक पीड़ा, मित्रों का वध, तथा अत्यल्पलाभ, ये फल होते है ॥ ७२ ॥

—केतु के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल

बुद्धिनाशो महोद्वेगो विद्याहानिर्महद् भयम्।
कार्यासिद्धिः सदा केतौ विदस्तु विदशाफलम् ॥ ७३ ॥

केतु की अन्तर्दशा में बुध प्रत्यन्तर आनेपर बुद्धिनाश, महान् उद्वेग, विद्याक्षय, महाभय तथा सतत कार्यसिद्धि में विकलता, ये फल होते हैं ॥ ७३ ॥

शुक्र की दशा में—

—शुक्र के अन्तर में शुक्रादि का प्रत्यन्तर

ग्रह	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.
मास	६	२	३	२	६	५	६	५	२
दिन	२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—सूर्य के अन्तर में सूर्यादि का प्रत्यन्तर

ग्रह	र.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.
मास	०	१	०	१	१	१	१	०	२
दिन	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—चन्द्र के अन्तर में चन्द्रादि का प्रत्यन्तर

ग्रह	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.
मास	१	१	३	२	३	२	१	३	१
दिन	२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—मङ्गल के अन्तर में मङ्गलादि का प्रत्यन्तर

ग्रह	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.
मास	०	२	१	२	१	०	२	०	१
दिन	२४	३	२६	६	२९	२४	१०	२१	५
घटी	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

—राहु के अन्तर में राहु आदि का प्रत्यन्तर

ग्रह	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
मास	५	४	५	५	२	६	१	३	२
दिन	१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—गुरु के अन्तर में गुरु आदि का प्रत्यन्तर

ग्रह	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.
मास	४	५	४	१	५	१	२	१	४
दिन	८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०

—शनि के अन्तर में शनि आदि का प्रत्यन्तर

ग्रह	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.
मास	६	५	२	६	१	३	२	५	५
दिन	०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२
घटी	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०

—बुध के अन्तर में बुधादि का प्रत्यन्तर

ग्रह	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.
मास	४	१	५	१	२	१	५	४	५
दिन	२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११
घटी	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

—केतु के अन्तर में केतु आदि का प्रत्यन्तर

ग्रह	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.
मास	०	२	०	१	०	२	१	२	१
दिन	२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२९
घटी	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

—शुक्र के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तरफल

श्वेताश्ववस्त्रमुक्तादि स्वर्णमाणिक्यजं सुखम् ।
लभते सुन्दरीं नारीं सितप्रत्यन्तरे नरः ॥ ७४ ॥

शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्रप्रत्यन्तर आनेपर श्वेत घोड़ा, श्वेत वस्त्र, मोती, सुवर्ण, माणिक इन सबों का सौख्य तथा सुन्दरी स्त्री प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

—शुक्र के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तरफल

वातज्वरः शिरःपीडा राज्ञः पीडा रिपोरपि ।
जायते स्वल्पलाभोऽपि सूर्यप्रत्यन्तरे ध्रुवम् ॥ ७५ ॥

शुक्र की अन्तर्दशा में सूर्यप्रत्यन्तर आनेपर मनुष्य को वातज्वर, शिरोवेदना, राजा तथा शत्रु के द्वारा क्लेश, और थोड़ा सा लाभ भी होता है ॥ ७५ ॥

—शुक्र के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तरफल

कन्याजन्म नृपाल्लाभो वस्त्राभरणसंयुतिः ।
राज्याधिकारसम्प्राप्तिरिन्दुप्रत्यन्तरे फलम् ॥ ७६ ॥

शुक्र की अन्तर्दशा में चन्द्र प्रत्यन्तर आनेपर कन्या की उत्पत्ति, राजा से लाभ, वस्त्र आभूषणों की प्राप्ति, राज्याधिकार, ये फल होते हैं ॥ ७६ ॥

—शुक्र के अन्तर में मङ्गल का प्रत्यन्तरफल

रक्तपित्तादिरोगश्च कलहस्ताडनं भवेत् ।
सितान्तरे महान् क्लेशो भौमप्रत्यन्तरे फलम् ॥ ७७ ॥

शुक्र की अन्तर्दशा में कुजाप्रत्यन्तर आनेपर रक्तपित्त सम्बन्धी रोग, झगड़ा, मारपीट तथा महाक्लेश होता है ॥ ७७ ॥

—शुक्र के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तरफल

कलहो जायते स्त्रीभिरकस्माद् भयसम्भवः ।
राजतः शत्रुतः पीडा तमसो विदशाफलम् ॥ ७८ ॥

शुक्रान्तर में राहु प्रत्यन्तर आनेपर स्त्रियों के साथ झगड़ा, अकस्माद् भयागम, राजा तथा शत्रु से कष्ट ये फल होते हैं ॥ ७८ ॥

—शुक्र के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तरफल

महाद्रव्यं महद्राज्यं वस्त्रमुक्तादिभूषणम् ।
गजाश्वादि-पदप्राप्तिरिज्यप्रत्यन्तरे फलम् ॥ ७९ ॥

शुक्रान्तर में गुरु प्रत्यन्तर आनेपर प्रचुरद्रव्य राज्य, वस्त्र, मोती, भूषण, हाथी, घोड़ा तथा स्थान की प्राप्ति होती है ॥ ७९ ॥

—शुक्र के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तरफल

खरोष्ट्रच्छागसम्प्राप्तिर्लोहमाषतिलादिकम् ।
स्वल्पपीडागमश्चापि मन्दप्रत्यन्तरे ध्रुवम् ॥ ८० ॥

शुक्रान्तर में शनि प्रत्यन्तर आनेपर गदहा, ऊँट, बकरा, की प्राप्ति, लोह, उड़द, तिल का लाभ, तथा शरीर में थोड़ा कष्ट भी होता है ॥ ८० ॥

—शुक्र के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तरफल

धनज्ञानमहालाभो राजराज्याधिकारिता ।
निक्षेपाद्धनलाभश्च विदः प्रत्यन्तरे फलम् ॥ ८१ ॥

शुक्रान्तर में बुध प्रत्यन्तर आनेपर धन ज्ञान का लाभ, राजा के यहाँ अधिकार-प्राप्ति, निक्षेप से भी धनलाभ, ये फल होते हैं ॥ ८१ ॥

—शुक्र के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तरफल

अपमृत्युर्महाघोरो देशाद्देशान्तरागमः ।
लाभोऽपि जायते मध्ये शिखिनो विदशाफलम् ॥ ८२ ॥

शुक्रान्तर में केतु प्रत्यन्तर आनेपर भयङ्कर अपमृत्यु एक देश से दूसरे देश का भ्रमण, बीच-बीच में कभी कुछ लाभ भी होता है ॥ ८२ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे प्रत्यन्तर्दशाफलाध्यायः समाप्तः ॥

अथ सूक्ष्मदशाफलाध्यायः ॥ ६३ ॥

सूक्ष्मान्तर्दशासाधन—

पराशर उवाच—

प्रत्यन्तरदशाघट्यो हताः स्वस्वदशाब्दतः ।
विंशोत्तरशतेनाप्ता लब्धिः सूक्ष्मदशामितिः ॥ १ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय !) प्रत्यन्तर्दशा (घट्यादिक) को अपने-अपने दशावर्षों से गुणा कर १२० से भाग ले तो लब्धि प्रत्यन्तर्दशा में तत्तद् ग्रहों की सूक्ष्मदशा होगी ॥ १ ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की महादशा में सूर्यान्तर्दशा में सूर्य प्रत्यन्तर दिनादि ५।२४ को घट्यादिक बनाने पर ३२४। इसे सूर्यदशावर्ष ६ से गुणा करने पर १९४४ हुए, इसमें १२० से भाग देनेपर लब्धि १६।१२ घट्यादि ही सूर्य की दशा, सूर्यान्तर्दशा, सूर्यप्रत्यन्तर्दशा में सूर्य की सूक्ष्मदशामिति हुई। इसी तरह चन्द्रादि ग्रहों की सूक्ष्म दशा के लिए पूर्वोक्त ३२४ घटी को चन्द्रदशावर्ष १० से गुणाकर १२० से भाग देनेपर $\frac{३२४०}{१२०}$ = २७ घ० पल सूर्य की दशा, सूर्यान्तर्दशा, सूर्यप्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा हुई। भौमादि ग्रहों की भी सूक्ष्मदशा सूर्यप्रत्यन्तर में इसी तरह लाकर सारिणीबद्ध की जा सकती है।

सूर्य की दशा, सूर्यान्तर्दशा, सूर्यप्रत्यन्तर्दशा, में सूर्यादि की सूक्ष्मदशा—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	जी.	श.	बु.	के.	शु.	योगः
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३ दिन
घ.	१६	२७	१८	४८	४३	५१	४५	१८	५४	१८ घटी
प.	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	० पल

सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में—

—सूर्य के सूक्ष्म दशा-फल

स्वीयभूमिपरित्यागः प्राणनाशो भवेन्नृणाम् ।
स्थानभ्रंशो मानहानिः सूर्यसूक्ष्मदशाफलम् ॥ २ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा का काल आवे तो अपनी भूमि का परित्याग, प्राणनाश, स्थान भ्रंश, मानहानि, ये फल होते हैं ॥ २ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशाफल

देवब्राह्मणभक्तिश्च नित्यकर्मरतिस्तथा ।
सुप्रीतिः सर्वमित्रैश्च रवेः सूक्ष्मगते विधौ ॥ ३ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आवे तो देवता तथा ब्राह्मणों में भक्ति, नित्यकृत्य में आसक्ति, मित्रों से स्नेह, ये फल होते हैं ॥ ३ ॥

—मङ्गल के सूक्ष्म दशाफल

क्रूरकर्मरतिस्तिग्मशत्रुभिः परिपीडनम् ।
रक्तस्रावादिरोगश्च रवेः सूक्ष्मगते कुजे ॥ ४ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में मङ्गल की सूक्ष्मदशा आवे तो निष्ठुरकार्य में प्रवृत्ति, प्रबलशत्रुकृत पीड़ा, रक्तस्रावादिक रोग, ये फल होते हैं ॥ ४ ॥

—राहु के सूक्ष्म दशाफल

चौराग्निविषभीतिश्च रणे भङ्गः पराजयः ।
दानधर्मादिविरती रवेः सूक्ष्मगते ह्यगौ ॥ ५ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा आवे तो चोर, अग्नि, विष का भय, युद्ध में छत्रभंग, पराजय, दानधर्मादिक कार्यों में विराग, ये फल होते हैं ॥ ५ ॥

—गुरु के सूक्ष्म दशाफल

नृपसत्काररराजार्हः सेवकैः परिपूजितः ।
राजचक्षुर्गतः शान्तः सूर्यसूक्ष्मगते गुरौ ॥ ६ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा आये तो जातक को राजा का सत्कार, सेवकों से पूजा (सम्मान) राजा की कृपादृष्टि, तथा शान्ति प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

—शनि के सूक्ष्म दशा-फल

चौर्यसाहसकर्मभ्यां देवब्राह्मणपीडनम् ।
स्थानच्युतिर्मनोदुःखं रवेः सूक्ष्मगते शनौ ॥ ७ ॥

सूर्य के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा आवे तो चौर्य तथा साहसपूर्ण कार्यों से देवता और ब्राह्मणों को कष्ट, स्थानभ्रंश मनोदुःख, ये फल होते हैं ॥ ७ ॥

—बुध के सूक्ष्म दशा-फल

दिव्याम्बरादिलब्धिश्च दिव्यस्त्रीपरिभोगिता ।
अचिन्तितार्थसिद्धिश्च रवेः सूक्ष्मगते बुधे ॥ ८ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा में दिव्य वस्त्र की प्राप्ति, परमसुन्दरी स्त्री के साथ संभोग, अचिन्तित कार्य की सिद्धि होती है ॥ ८ ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

गौरवार्थविनाशश्च भृत्यदारभवस्तथा ।
क्वचित् सेवकसम्बन्धो रवेः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ९ ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आनेपर नौकर तथा स्त्री के द्वारा प्रतिष्ठा तथा धन का नाश, कहीं नौकर से अच्छा सम्बन्ध, भी होता है ॥ ९ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

पुत्रमित्रकलत्रादिसौख्यसम्पन्न एव च ।
नानाविधा च सम्पत्ती रवेः सूक्ष्मगते भृगौ ॥ १० ॥

सूर्य प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा आनेपर पुत्र, मित्र, स्त्री आदियों का सौख्य तथा अनेक विध सम्पदाएं प्राप्त होती हैं ॥ १० ॥

चन्द्र की प्रत्यन्तर्दशा में—

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

भूषणं भूमिलाभश्च सम्मानं नृपपूजनम् ।
तामसत्वं गुरुत्वं च चन्द्रसूक्ष्मदशाफलम् ॥ ११ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आनेपर भूषण, तथा भूमि की प्राप्ति, राजा द्वारा पूजन तथा सम्मान, तामस प्रवृत्ति (कोपादि), तथा गौरव (प्रतिष्ठा) ये फल होते हैं ॥ ११ ॥

—कुज के सूक्ष्म दशा-फल

दुःखं शत्रुविरोधश्च कुक्षिरोगः पितुर्मृतिः ।
वातपित्तकफोद्रेकः शशिसूक्ष्मगते कुजे ॥ १२ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में मङ्गल की सूक्ष्मदशा आनेपर दुःख, शत्रुओं से विरोध, पेट में रोग, पितृमरण, वातपित्त कफ की अधिकता, ये सब होते हैं ॥ १२ ॥

—राहु के सूक्ष्म दशा-फल

क्रोधनं मित्रबन्धूनां देशत्यागो धनक्षयः ।
विदेशे निगडप्राप्तिरिन्दोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥ १३ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा आनेपर मित्र तथा बन्धुओं का अपने ऊपर क्रोध, देशत्याग, धननाश, तथा विदेश में जेल, ये फल होते हैं ॥ १३ ॥

—गुरु के सूक्ष्म दशा-फल

छत्रचामरसंयुक्तं वैभवं पुत्रसम्पदः ।
सर्वत्र सुखसम्पतिश्चन्द्रे सूक्ष्मगते गुरौ ॥ १४ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा आनेपर छत्र-चामर युक्त ऐश्वर्य, पुत्र तथा सम्पत्ति, सर्वत्र सुखप्राप्ति ये फल होते है ॥ १४ ॥

—शनि के सूक्ष्म दशा-फल

राजोपद्रवतो भीतिर्व्यवहारे धनक्षयः ।
चौरत्वं विप्रभीतिश्च चन्द्रे सूक्ष्मगते शनौ ॥ १५ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा आनेपर राजोपद्रव से भय, व्यापार में धननाश, चोरी, ब्राह्मणों का भय, ये फल होते हैं ॥ १५ ॥

—बुध के सूक्ष्म दशा-फल

राजमानं वस्तुलाभो विदेशाद्वाहनादिकम् ।
पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च चन्द्रे सूक्ष्मगते बुधे ॥ १६ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा आनेपर राजा द्वारा सम्मान, वस्तुओं की प्राप्ति, विदेश से वाहनप्राप्ति, पुत्र पौत्रादि की समृद्धि ये सब फल होते हैं ॥ १६ ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

आत्मनो वृत्तिहननं सस्यशृङ्गवृषादिभिः ।
अग्निसूर्यादिभीतिश्च चन्द्रे सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ १७ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आनेपर अन्न, शृङ्ग, बैल आदि से अपनी जीविका का नाश, अग्नि, तथा सूर्य से भय होता ॥ १७ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

विवाहो भूमिलाभश्च वस्त्राभरणवैभवम् ।
राज्यलाभश्च कीर्तिश्च चन्द्रे सूक्ष्मगते भृगौ ॥ १८ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा आनेपर विवाह (अपना या पारिवारिक सदस्य का) भूमिलाभ, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, राज्यलाभ तथा यश, ये फल होते हैं ॥

—सूर्य के सूक्ष्म दशा-फल

क्लेशात्क्लेशः कार्यनाशः पशुधान्यधनक्षयः ।
गात्रवैषम्यभूमिश्च चन्द्रे सूक्ष्मगते रवौ ॥ १९ ॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा आनेपर परमक्लेश, कार्यनाश, पशु, धन, धान्य का विनाश, शरीर में विषमता, ये सब होते हैं ॥ १९ ॥

मङ्गल की प्रत्यन्तरदशा में—

—मङ्गल के सूक्ष्म दशा-फल

भूमिहानिर्बन्धुकष्टं ह्यपस्मारश्च बन्धयुक् ।
पुरक्षोभो मनस्तापो भौमसूक्ष्मदशाफलम् ॥ २० ॥

भौम प्रत्यन्तर में भौम की सूक्ष्मदशा आनेपर भूमि की हानि, बन्धु-कष्ट, बन्धन तथा अपस्मार (मिर्गी) रोग, नगर के प्रति क्षोभ, मानसिक सन्ताप, ये सब होते हैं ॥ २० ॥

—राहु के सूक्ष्म दशा-फल

अङ्गदोषो जनाद् भीतिः प्रमदावंशनाशनम् ।
वह्निसर्पभयं घोरं भौमे सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥ २१ ॥

कुजप्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा आनेपर अङ्गदोष, (शरीर के अङ्ग विशेष में विकार) लोगों से भय, स्त्री, तथा वंशज (सन्तति) का विनाश, अग्नि, सर्प, तथा चोर का भय, ये फल होते हैं ॥ २१ ॥

—गुरु के सूक्ष्म दशा-फल

देवपूजारतिश्चात्र मन्त्राभ्युत्थानशक्तता ।
लोके पूजा प्रमोदश्च भौमे सूक्ष्मगते गुरौ ॥ २२ ॥

मंगल के प्रत्यन्तर में गुरुकी सूक्ष्मदशा आनेपर देवताओं की पूजा में भक्ति, मन्त्र-सिद्धि करने की शक्ति, जनता में सम्मान, तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

—शनि के सूक्ष्म दशा-फल

बन्धनान्मुच्यते बद्धो धनधान्यपरिच्छदः ।
भृत्यार्थबहुलः श्रीमान् भौमे सूक्ष्मगते शनौ ॥ २३ ॥

मंगल के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा आनेपर बन्धन से मुक्ति, धनधान्य का विस्तार, नौकरों के द्वारा अर्थप्राप्ति, तथा लक्ष्मीप्राप्ति, ये फल होते हैं ॥ २३ ॥

—बुध के सूक्ष्म दशा-फल

वाहनं छत्रसंयुक्तं राज्यभोगपरं सुखम् ।
कासश्वासादिका पीडा भौमे सूक्ष्मगते बुधे ॥ २४ ॥

भौमप्रत्यन्त में बुध की सूक्ष्मदशा आनेपर छत्रयुक्तवाहन, राज्यभोग युक्त बहुविध सुख, कास-श्वास जन्य पीड़ा, ये फल होते हैं ॥ २४ ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

परप्रेरितबुद्धिश्च सर्वत्रापि च गर्हिता ।
अशुचिः सर्वकालेषु भौमे सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ २५ ॥

मंगल के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आनेपर दूसरे के निर्देश पर चलनेवाली, सब जगह निन्दित बुद्धि, तथा सर्वदा अपवित्रता रहती है ॥ २५ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

इष्टस्त्रीभोगसम्पत्तिरिष्टभोजन-संग्रहः ।
इष्टार्थस्थायिलाभश्च भौमे सूक्ष्मगते भृगौ ॥ २६ ॥

मंगल के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा आनेपर अभीष्ट स्त्री के साथ सम्भोग, अभिलषित सम्पत्ति, अभीष्ट भोजन, अभीष्टार्थ की सिद्धि, ये सब फल होते हैं ॥ २६ ॥

—सूर्य के सूक्ष्मदशा-फल

राजद्वेषो द्विजात्क्लेशः कार्याभिप्रायवञ्चकः ।
लोकेऽपि निन्द्यतामेति भौमे सूक्ष्मगते रवौ ॥ २७ ॥

भौम प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा आनेपर राजा से द्वेष, ब्राह्मणों से कष्ट, कार्यों में वञ्चकता, लोक में निन्दा ये सब फल होते हैं ॥ २७ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

शुद्धत्वं धनसम्प्राप्तिर्देवब्राह्मणवत्सलः ।
व्याधिना परिभूयते भौमे सूक्ष्मगते विधौ ॥ २८ ॥

भौमप्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आनेपर पवित्रता, धनप्राप्ति, देवब्राह्मण में भक्ति, रोगपराभव, ये सब होते हैं ॥ २८ ॥

राहु की प्रत्यन्तरदशा मे—

—राहु के सूक्ष्म दशा-फल

लोकोपद्रवबुद्धिश्च स्वकार्ये मतिविभ्रमः ।
शून्यता चित्तदोषः स्याद्राहोः सूक्ष्मदशाफलम् ॥ २९ ॥

राहु प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा आनेपर लोगों के अपकार करने की बुद्धि, अपने कार्यों में उलटी बुद्धि, चित्त में शून्यता ये फल होते हैं ॥ २९ ॥

—गुरु के सूक्ष्म दशा-फल

दीर्घरोगी दरिद्रश्च सर्वेषां प्रियदर्शनः ।
दानधर्मरतः शस्तो राहोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥ ३० ॥

राहु प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा आनेपर लम्बी अवधि का रोग तथा दारिद्र्य, होते हैं । साथ ही वह मनुष्य लोकप्रिय, दानधर्म में रत तथा विख्यात होता है ॥ ३० ॥

—शनि के सूक्ष्म दशा-फल

कुमार्गात् कुत्सितोऽर्थश्च दुष्टश्च परसेवकः ।
असत्संगमतिर्मूढो राहोः सूक्ष्मगते शनौ ॥ ३१ ॥

राहु प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा होनेपर कुमार्ग से धन, दुष्टता, सेवावृत्ति, दुष्टों के साथ से दुष्टबुद्धि, ये सब फल होते हैं ॥ ३१ ॥

—बुध के सूक्ष्म दशा-फल

स्त्रीसम्भोगमतिर्वाग्मी लोकसम्भावनावृतः ।
अन्नमिच्छंस्तनुग्लानी राहोः सूक्ष्मगते बुधे ॥ ३२ ॥

राहु प्रत्यन्तर में बुधकी सूक्ष्मदशा आनेपर स्त्रियोंके साथ सम्भोग की अभिलाषा, गम्भीर, लोगों को अपने अनुकूल करने की शक्ति, अन्न की इच्छा में शारीरिक क्लेश, ये सब फल होते हैं ॥ ३२ ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

माधुर्यं मानहानिश्च बन्धनं चाप्रमारकम् ।
पारुष्यं जीवहानिश्च राहोः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ३३ ॥

राहु प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा होने पर मिष्टभाषिता, मानहानि, अमृत्युकर बन्धन, कठोरता, जनहानि के सब फल होते हैं ॥ ३३ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

बन्धनान्मुच्यते बद्धः स्थानमानार्थसञ्चयः ।
कारणाद् द्रव्यलाभश्च राहोः सूक्ष्मगते भृगौ ॥ ३४ ॥

राहु-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा आनेपर बन्धन से मुक्ति, स्थान, मान, धन का संचय, तथा द्रव्यलाभ, ये फल होते हैं ॥ ३४ ॥

—सूर्य के सूक्ष्म दशा-फल

व्यक्तार्शो गुल्मरोगश्च क्रोधहानिस्तथैव च ।
वाहनादिसुखं सर्वं राहोः सूक्ष्मगते रवौ ॥ ३५ ॥

राहु प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा आनेपर अर्श रोग का प्रकोप, गुल्मरोग, क्रोध में कमी, वाहन आदि का सुख ये सब फल होते हैं ॥ ३५ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

मणिरत्नधनावाप्तिर्विद्योपासनशीलवान् ।
देवार्चनपरो भक्त्या राहोः सूक्ष्मगते विधौ ॥ ३६ ॥

राहुप्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आने पर मणि रत्न, तथा इतर धनों की प्राप्ति, विद्या, तथा देवोपासना में रति, सुशीलता, देवपूजन, में निष्ठा, ये सब होते हैं ॥ ३६ ॥

—मंगल के सूक्ष्म दशा-फल

निर्जयो जनविद्रावो जने क्रोधश्च बन्धनम् ।
चौर्यशीलरतिर्नित्यं राहोः सूक्ष्मगते कुजे ॥ ३७ ॥

राहु प्रत्यन्तर में कुज की सूक्ष्मदशा आने पर पराजय, लोगों का चीत्कार, क्रोध, बन्धन चोरी की प्रवृत्ति, ये सब फल होते हैं ॥ ३७ ॥

गुरु की प्रत्यन्तरदशा में—

—गुरु के सूक्ष्म दशा-फल

शोकनाशो धनाधिक्यमग्निहोत्रं शिवार्चनम् ।
वाहनं छत्रसंयुक्तं जीवसूक्ष्मदशाफलम् ॥ ३८ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा आनेपर शोकनाश, धन की अधिकता, अग्निहोत्र, शिवपूजन, छत्रयुक्त वाहन, ये सब फल होते हैं ॥ ३८ ॥

—शनि के सूक्ष्म दशा-फल

व्रतहानिश्च हृत्तापो विदेशे वसुनाशनम् ।
विरोधो बान्धवैर्नित्यं गुरोः सूक्ष्मगते शनौ ॥ ३९ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा आनेपर व्रतभङ्ग, मानसिक सन्ताप, विदेश में धनक्षय, बान्धवों से सन्तत विरोध ये फल होते हैं ॥ ३९ ॥

—बुध से सूक्ष्म दशा-फल

विद्याबुद्धिविवृद्धिश्च ससम्मानं धनागमः ।
गृहे सर्वविधं सौख्यं गुरोः सूक्ष्मगते बुधे ॥ ४० ॥

गुरु प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा आनेपर विद्या बुद्धि की वृद्धि, सम्मान के साथ धनागम, घर में सर्वविध सुख, ये सब फल होते हैं ॥ ४० ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

ज्ञानं विभवपाण्डित्ये शास्त्रश्रुति-शिवार्चने ।
अग्निहोत्रं गुरोर्भक्तिर्गुरोः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ४१ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आनेपर ज्ञान, ऐश्वर्य, पाण्डित्य. शास्त्र-श्रवण, शिवपूजन, अग्निहोत्र, तथा गुरुभक्ति ये सब फल होते हैं ॥ ४१ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

रोगान्मुक्तिः सुखं भोगो धनधान्यसमागमः ।
पुत्रदारादिजं सौख्यं गुरोः सूक्ष्मगते भृगौ ॥ ४२ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा होनेपर रोगमुक्ति, सुख, भोग, धनधान्य समृद्धि, पुत्र-स्त्री सुख ये सब फल होते हैं ॥ ४२ ॥

—सूर्य के सूक्ष्म दशा-फल

वातपित्तप्रकोपश्च श्लेष्मोद्रेकस्तु दारुणः ।
रसव्याधिकृतं शूलं गुरोः सूक्ष्मगते रवौ ॥ ४३ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा आनेपर वातपित्त का प्रकोप भयङ्कर श्लेष्मा (कफ) की अधिकता, रसव्याधि जन्य शूल (रोग) ये सब फल होते हैं ॥ ४३ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

छत्रचामरसंयुक्तं वैभवं पुत्रसम्भवः ।
नेत्रकुक्षिगता पीडा गुरोः सूक्ष्मगते विधौ ॥ ४४ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आनेपर छत्र चामर युक्त ऐश्वर्य, पुत्रोत्पत्ति, नेत्र तथा पेट में पीड़ा ये सब फल होते हैं ॥ ४४ ॥

—मङ्गल के सूक्ष्म दशा-फल

स्त्रीजनाच्च विषोत्पत्तिर्बन्धनं चातिविग्रहः ।
देशान्तरगमो भ्रान्तिर्गुरोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥ ४५ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में मङ्गल की सूक्ष्मदशा आनेपर स्त्रियों के द्वारा विषप्रयोग, बन्धन, विग्रह, देशान्तरगमन, भ्रम, ये सब फल होते हैं ॥ ४५ ॥

—राहु के सूचम दशा-फल

व्याधिभिः परिभूतः स्याच्चौरैरपहृतं वसु ।
सर्पवृश्चिकयोर्दंशो गुरोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥ ४६ ॥

गुरु प्रत्यन्तर में राहु की सूचमदशा आनेपर रोग पराभव, चोरों के द्वारा धनापहरण, सर्प या बिच्छुओं के दंश ये सब फल होते हैं ॥ ४६ ॥

शनि के प्रत्यन्तरदशा में—

—शनि के सूचम दशा-फल

धनहानिर्महाव्याधिर्मरुत्पीडा कुलक्षयः ।
मिताहारी महादुःखी शनिसूक्ष्मदशाफलम् ॥ ४७ ॥

शनि प्रत्यन्तर में शनि का ही सूचमदशा आनेपर धनक्षय, महारोग, वातपीड़ा, वंशक्षय, अलग भोजन तथा विषम दुःख, ये सब फल होते हैं ॥ ४७ ॥

—बुध के सूचम दशा-फल

वाणिज्यवृत्तेर्लाभश्च विद्या विभव एव च ।
स्त्रीलाभश्च महीप्राप्तिः शनेः सूक्ष्मगते बुधे ॥ ४८ ॥

शनि प्रत्यन्तर में बुध की सूचमदशा आनेपर व्यवसाय (बनियौटी) से लाभ, विद्या, ऐश्वर्य, स्त्री, भूमि, की प्राप्ति होती है ॥ ४८ ॥

—केतु के सूचम दशा-फल

चौरोपद्रवकुष्ठादि वृत्तिक्षय-विगुम्फनम् ।
सर्वाङ्गपीडनं व्याधिः शनेः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ४९ ॥

शनि प्रत्यन्तर में केतु की सूचमदशा आनेपर चोरी, कुष्ठ आदि रोग, जीविकाक्षय सर्वाङ्ग में पीड़ा देनेवाला रोग, ये सब फल होते हैं ॥ ४९ ॥

—शुक्र के सूचम दशा-फल

ऐश्वर्यमायुधाभ्यासः पुत्रलाभोऽभिषेचनम् ।
आरोग्यं धनकामौ च शनिसूक्ष्मगते भृगौ ॥ ५० ॥

शनि प्रत्यन्तर में शुक्र की सूचमदशा आनेपर ऐश्वर्य, शस्त्राभ्यास, पुत्रजन्म, अभिषेक, नैरुज्य, धन तथा अभीष्टसिद्धि, ये सब होते हैं ॥ ५० ॥

—सूर्य के सूचम दशा फल

राजतेजोऽधिकारित्वं स्वगृहे जायते कलिः ।
किञ्चित्पीडा स्वदेहोत्था शनिसूक्ष्मगते रवौ ॥ ५१ ॥

शनि प्रत्यन्तर में सूर्य की सूचमदशा आनेपर राजा के समान तेज, अधिकार, स्वगृह में कलह, शरीर में साधारण क्लेश ये सब होते हैं ॥ ५१ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

स्फीतबुद्धिर्महारम्भो महातेजो बहुव्ययः ।
स्त्रीपुत्रैश्च समं सौख्यं शनिसूक्ष्मगते विधौ ॥ ५२ ॥

शनि प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आनेपर, निर्मल बुद्धि, बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ, बड़ा तेज, व्ययाधिक्य, स्त्री पुत्र सुख, ये फल होते हैं ॥ ५२ ॥

—मङ्गल के सूक्ष्म दशा-फल

तेजोहानिर्महोद्वेगोऽप्यग्निमान्द्यं भ्रमः कलिः ।
वातपित्तकृता पीडा शनेः सूक्ष्मगते कुजे ॥ ५३ ॥

शनि प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा आनेपर कान्तिहीनता, महोद्वेग, अग्निमान्द्य, भ्रम, कलह, वातपित्तज कष्ट, ये फल होते हैं ॥ ५३ ॥

—राहु के सूक्ष्म दशा-फल

पितृमातृविनाशश्च मनोदुःखं गुरुव्ययः ।
सर्वत्र विफलं कार्यं शनेः सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥ ५४ ॥

शनि प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा आनेपर माता पिता का नाश, मानसिक दुःख, व्ययाधिक्य, सभी कार्यों में विफलता, ये फल होते हैं ॥ ५४ ॥

—गुरु के सूक्ष्म दशा-फल

सन्मुद्राभोगसम्मानं धनधान्यविवर्धनम् ।
छत्रचामरसम्प्राप्तिः शनेः सूक्ष्मगते गुरौ ॥ ५५ ॥

शनि प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा आनेपर सन्मुद्रा (सुवर्ण) का उपभोग सम्मान, धन धान्य की वृद्धि, छत्र चामर की प्राप्ति, ये फल होते है ॥ ५५ ॥

बुध की प्रत्यन्तरदशा में—

—बुध के सूक्ष्म दशा-फल

सौभाग्यं राजसम्मानं धनधान्यादिसम्पदः ।
सर्वेषां प्रियदर्शी च बुधसूक्ष्मदशाफलम् ॥ ५६ ॥

बुध प्रत्यन्तर में बुध की ही सूक्ष्मदशा आवे तो सौभाग्य, राजा से सम्मान, धनधन्यादि विविध सम्पदाएँ सर्वप्रियता ये सब होते हैं ॥ ५६ ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

बालग्रहोऽग्निभीस्तापः स्त्रीगदोद्भवदोषभाक् ।
कुमार्गी कुत्सिताशी च विदि सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ५७ ॥

बुध प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आनेपर बालग्रह का प्रकोप, अग्निभय, संताप स्त्रीरोगज दोष, कुमार्गगामिता, कुत्सितभोजन, ये सब फल होते हैं ॥ ५७ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

वाहनं धनसम्पत्तिर्जलजान्नार्थसम्भवः ।
शुभकीर्त्तिर्महाभोगो विदि सूक्ष्मगते भृगौ ॥ ५८ ॥

बुध में प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा आनेपर वाहन, धनसम्पत्ति, जलज (मखाना आदि) से अन्न तथा अर्थ की प्राप्ति, शुभयश, महाभोग, ये फल होते हैं ॥

—सूर्य के सूक्ष्म दशा-फल

ताडनं नृपवैषम्यं बुद्धिस्खलनरोगभाक् ।
हानिर्जनापवादश्च विदि सूक्ष्मगते रवौ ॥ ५९ ॥

बुध प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा आनेपर ताड़न, राजा की विषम दृष्टि (क्रोध) बुद्धिभ्रम, रोग, हानि, लोकापवाद, ये फल होते हैं ॥ ५९ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

सुभगः स्थिरबुद्धिश्च राजसम्मानसम्पदः ।
सुहृद्देशिकसञ्चारो विदि सूक्ष्मगते विधौ ॥ ६० ॥

बुध प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आनेपर मनुष्य सुन्दर, स्थिर बुद्धिवाला, राजा से सम्मान तथा सम्पत्ति, मित्र तथा गुरुजनों के आगमनज सुख प्राप्त करता है ॥ ६० ॥

—मंगल के सूक्ष्म दशा-फल

अग्निदाहो विषोत्पत्तिर्जडत्वं च दरिद्रता ।
विभ्रमश्च महोद्वेगो विदि सूक्ष्मगते कुजे ॥ ६१ ॥

बुध प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा आनेपर अग्निदाह, विषप्रकोप, जड़ता, दरिद्रता, भ्रान्ति, तथा महान् उद्वेग ये सब फल होते हैं ॥ ६१ ॥

—राहु के सूक्ष्म दशा-फल

अग्निसर्पनृपाद् भीतिः कृच्छ्रादरिपराभवः ।
भूतावेशभ्रमाद् भ्रान्तिर्विदि सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥ ६२ ॥

बुध प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा आनेपर अग्नि, सर्प, तथा राजा से भय, कठिनाई से शत्रुपर विजय, भूतोपद्रव का भ्रम, ये फल होते हैं ॥ ६२ ॥

—गुरु के सूक्ष्म दशा-फल

गृहोपकरणं भव्यं त्यागो भोगादिवस्तुनाम् ।
राजप्रसादसम्पत्तिर्विदि सूक्ष्मगते गुरौ ॥ ६३ ॥

बुध प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा आनेपर गृह-निर्माण के भव्य साधन की प्राप्ति, भोग्य वस्तुओं का परित्याग, राजा की कृपा से सम्पत्ति, ये फल होते हैं ॥ ६३ ॥

—शनि के सूक्ष्म दशा-फल

वाणिज्यवृत्तिलाभश्च विद्याविभवमेव च ।
स्त्रीलाभश्च महाव्याप्तिर्विदि सूक्ष्मगते शनौ ॥ ६४ ॥

बुध प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा आनेपर वाणिज्यवृत्ति से लाभ, विद्या एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति, स्त्रीलाभ तथा व्यापकता, ये फल होते हैं ॥ ६४ ॥

केतु की प्रत्यन्तरदशा में—

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

पुत्रदारादिजं दुःखं गात्रवैषम्यमेव च ।
दारिद्र्याद् भिक्षुवृत्तिश्च स्वीये सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ६५ ॥

केतु प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आनेपर स्त्री, पुत्रादिक सुख, शरीर में विषमता दरिद्रता के कारण भिक्षावृत्ति, ये फल होते हैं ॥ ६५ ॥

—शुक्र के सूक्ष्म दशा-फल

रोगनाशोऽर्थलाभश्च गुरुविप्रानुवत्सलः ।
सङ्गमः स्वजनैः सार्धं केतोः सूक्ष्मगते भृगौ ॥ ६६ ॥

केतु प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा आनेपर रोगमुक्ति, धनलाभ, गुरुजन तथा ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा, स्वजनों के साथ सम्पर्क, ये फल होते हैं ॥ ६६ ॥

—सूर्य के सूक्ष्म दशा-फल

युद्धं भूमिविनाशश्च विप्रवासः स्वदेशतः ।
सुहृद्विपत्तिरार्तिश्च केतोः सूक्ष्मगते रवौ ॥ ६७ ॥

केतु प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा आनेपर युद्ध, भूमिनाश, स्वदेश से अन्यत्र परदेश में निवास, मित्रों में भी विपत्ति तथा स्वयं पीड़ा होती है ॥ ६७ ॥

—चन्द्र के सूक्ष्म दशा-फल

दासीदाससमृद्धिश्च युद्धे लब्धिर्जयस्तथा ।
ललिता कीर्त्तिरुत्पन्ना केतोः सूक्ष्मगते विधौ ॥ ६८ ॥

केतु प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा आनेपर नोकर तथा नोकरानी की वृद्धि, युद्ध में लाभ तथा विजय, शुभ्र यश ये फल होते हैं ॥ ६८ ॥

—मंगल के सूक्ष्म दशा-फल

आसने भयमश्वादेश्चौरदुष्टादिपीडनम् ।
गुल्मपीडा शिरो रोगः केतोः सूक्ष्मगते कुजे ॥ ६९ ॥

केतु के प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा आने पर घोड़े पर सवारी करने पर गिरने का भय, चोर तथा दुर्जनों से कष्ट, गुल्मरोग तथा शिरोवेदना, ये फल होते हैं ॥६९॥

—राहु के सूचम दशा-फल

विनाशः स्त्रीगुरूणां च दुष्टस्त्रीसंगमाल्लघुः ।
वमनं रुधिरं पित्तं केतोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥ ७० ॥

केतु प्रत्यन्तर में राहु की सूचमदशा आनेपर स्त्री तथा गुरुओं का विनाश, दुष्ट स्त्री के सम्पर्क से लघुता, वमन तथा रक्त, पित्त का विकार होता है ॥ ७० ॥

—गुरु के सूचम दशा-फल

शत्रोर्विरोधः सम्पत्तिः सहसा राजवैभवम् ।
पशुक्षेत्रविनाशार्त्तिः केतोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥ ७१ ॥

केतु प्रत्यन्तर में गुरु की सूचमदशा आनेपर शत्रु के साथ विरोध, सम्पत्ति, एकाएक राजतुल्य ऐश्वर्य, पशु तथा खेतों के विनाश से कष्ट ये फल होते हैं ॥७१॥

—शनि के सूचम दशा-फल

मृषा पीडा भवेत् क्षुद्रसुखोत्पत्तिश्च लंघनम् ।
स्त्रीविरोधः सत्यहानिः केतोः सूक्ष्मगते शनौ ॥ ७२ ॥

केतु प्रत्यन्तर में शनि की सूचमदशा आनेपर मिथ्याकष्ट, अत्यल्प सुख, लंघन (उपवास), स्त्री के साथ विरोध, सत्य की हानि, ये फल होते हैं ॥ ७२ ॥

—बुध के सूचम दशा-फल

नानाविधजनाप्तिश्च विप्रयोगोऽरिपीडनम् ।
अर्थसम्पत्समृद्धिश्च केतोः सूक्ष्मगते बुधे ॥ ७३ ॥

केतु प्रत्यन्तर में बुध की सूचमदशा आनेपर अनेकविध व्यक्तियों से लाभ तथा उनसे वियोग, अतिकष्ट, धनसम्पत्ति की समृद्धि ये फल होते हैं ॥ ७२ ॥

शुक्र की प्रत्यन्तरदशा में—

—शुक्र के सूचम दशा-फल

शत्रुहानिर्महत् सौख्यं शङ्करालयपूर्वकम् ।
तडागकूपनिर्माणं शुक्रसूक्ष्मदशाफलम् ॥ ७४ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में शुक्र की ही सूचमदशा आनेपर शत्रुक्षय, महासुख, शिवमन्दिर, तालाब तथा कूप का निर्माण ये सब होते हैं ॥ ७४ ॥

—सूर्य के सूचम दशा-फल

उरस्तापो भ्रमश्चैव गतागतविचेष्टितम् ।
क्वचिल्लाभः क्वचिद्धानिर्भृगोः सूक्ष्मगते रवौ ॥ ७५ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में रवि की सूचमदशा आनेपर हृत्ताप, बुद्धिभ्रान्ति, यत्र तत्र भटकना, कहीं लाभ, कहीं हानि, ये फल होते हैं ॥ ७५ ॥

—चन्द्र के सूचम दशा-फल

आरोग्यं धनसम्पत्तिः कार्यलाभो गतागतैः ।
प्रज्ञाज्ञानसमृद्धिः स्याद् भृगोः सूक्ष्मगते विधौ ॥ ७६ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूचमदशा आनेपर नैरुज्य, धनसम्पत्ति, गतागत (विक्रय क्रय) से कार्य में लाभ, बुद्धि तथा ज्ञान की वृद्धि, ये फल होते हैं ॥७६ ॥

—मंगल के सूचम दशा-फल

जडत्वं रिपुवैषम्यं देशभ्रंशो महद् भयम् ।
व्याधिदुःखसमुत्पत्तिर्भृगोः सूक्ष्मगते कुजे ॥ ७७ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में मंगल की सूचमदशा आनेपर जड़ता, शत्रु से वैमत्य, देशत्याग, महाभय तथा रोग-दुःख की उत्पत्ति होती है ॥ ७७ ॥

—राहु के सूचम दशा-फल

राज्याग्निसर्पजा भीतिर्बन्धुनाशो गुरुव्यथा ।
स्थानच्युतिर्महाभीतिर्भृगोः सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥ ७८ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में राहु की सूचमदशा आनेपर राजा, अग्नि तथा सर्प से भय, बन्धुओं का नाश, महान् क्लेश, स्थानभ्रंश, तथा महाभय, ये फल होते हैं ॥ ७८ ॥

—गुरु के सूचम दशा-फल

सर्वत्र कार्यलाभश्च क्षेत्रार्थविभवोन्नतिः ।
वणिग्वृत्तेर्महालब्धिर्भृगोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥ ७९ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में गुरु की सूचमदशा आनेपर सभी क्षेत्रों में कार्यसिद्धि खेत, धन तथा अन्य ऐश्वर्य की उन्नति, वाणिज्य से महालाभ, ये फल होते है ॥ ७९ ॥

—शनि के सूचम दशा-फल

शत्रुपीडा महद्दुःखं चतुष्पादविनाशनम् ।
स्वगोत्रगुरुहानिः स्याद् भृगोः सूक्ष्मगते शनौ ॥ ८० ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में शनि की सूचमदशा आनेपर शत्रु के द्वारा कष्ट, महान् दुःख, पशुओं का विनाश, अपने वंश में विशिष्ट व्यक्ति के दिवंगत होने आदि कारणों से बड़ी क्षति, ये फल होते हैं ॥ ८० ॥

—बुध के सूचम दशा-फल

बान्धवादिषु सम्पत्तिर्व्यवहारे धनोन्नतिः ।
पुत्रदारादितः सौख्यं भृगोः सूक्ष्मगते बुधे ॥ ८१ ॥

शुक्रप्रत्यन्तर में बुध की सूचम दशा आने पर बन्धु बान्धवों में सम्पत्ति की अभिवृद्धि, व्यापार में लाभ, स्त्री-पुत्र से सुख, ये फल होते हैं ॥ ८१ ॥

—केतु के सूक्ष्म दशा-फल

अग्निरोगो महत्पीडा मुखनेत्रशिरोऽव्यथा ।
सञ्चितार्थात्मनः पीडा भृगोः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥ ८२ ॥

शुक्र प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा आने पर अग्निमान्द्य, महान् कष्ट, मुह, नेत्र, शिर में वेदना, सञ्चित अर्थ की क्षति, ये फल होते हैं ॥ ८२ ॥

तात्पर्य यह है कि शुभग्रहों के भी प्रत्यन्तर में पापग्रह की सूक्ष्म दशा आनेपर अशुभ और पापग्रहों के भी प्रत्यन्तर में शुभग्रह की सूक्ष्मदशा होने पर शुभ फल होत है। दोनों के शुभ, पाप में सर्वथा शुभ, या अशुभ कहना स्वाभाविक ही है ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे सूक्ष्मदशाफलाध्यायः समाप्तः ॥

अथ प्राणदशाफलाध्यायः ॥ ६४ ॥

प्राणदशा-साधन—

स्वदशाब्दहता सूक्ष्मदशापलमितिस्तथा ।
विंशोत्तरशतेनाप्ता लब्धिः प्राणदशा भवेत् ॥ १ ॥

पलात्मक सूक्ष्मदशा को अपने अपने दशावर्षों से गुणा कर १२० से भाग दें लब्धि प्राणदशा होती है।

जैसे सूर्य की सूक्ष्मदशा प्रमाण १६ घ० १२ पल को पलीकृत करने तथा सूर्य दशावर्ष ६ से गुणा करने पर ९७२ × ६ में १२० से भाग देने से लब्धि = $\frac{५८३२}{१२०}$ = ४८ प० ३६ वि० यह सूर्य की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा तथा सूक्ष्मदशा में उनकी प्राणदशा का मान हुआ। इसी तरह चन्द्रादिग्रहों की भी दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा तथा सूक्ष्मदशा के आधार पर सूक्ष्मदशा-घटीपल को चन्द्रादि ग्रहों के दशावर्ष से गुणाकर १२० से भाग देने से चन्द्रादि प्राणदशा होगी।

सूर्य की सूक्ष्मदशा में सूर्यादि की प्राणदशा—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	यो.
घटी	०	१	०	२	२	२	२	०	२	१६
पल	४८	२१	५६	२५	९	३३	१७	५६	४२	१२
विपल	३६	०	४२	४८	३६	५४	४२	४२	०	०

सूर्य की सूक्ष्मदशा में सूर्यादि की प्राणदशा के फल—

(सू. सू.) पौंश्चल्यं विषजा बाधा तस्करानलजा तथा ।
सूर्यप्राणदशायां तु मरणं कृच्छ्रमादिशेत् ॥ २ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में सूर्य की ही प्राणदशा हो तो पुम्मैथुन, विष, चोर तथा अग्नि से भय, और कष्ट के साथ मरण कहना चाहिए ॥ २ ॥

(सू. चं.) सुखं भोजनसम्पत्तिः संस्कारो नृपवैभवम् ।
उदाराद्यनुकम्पाभी रवेः प्राणगते विधौ ॥ ३ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में चन्द्रमा की प्राणदशा आनेपर सुख, सुभोजन तथा सम्पत्ति, संस्कार, उदार आदि व्यक्तियों की अनुकम्पा से राजा के समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

(सू. मं.) भूपोपद्रुतिरन्यार्थे द्रव्यनाशो महद् भयम् ।
महत्यपचयप्राप्ती रवेः प्राणगते कुजे ॥ ४ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में भौम-प्राणदशा आनेपर दूसरे के कारण राजकृत उपद्रव, द्रव्यक्षय, महाभय, तथा महत्तम क्षति होती है ॥ ४ ॥

(सू. रा.) अन्नोद्भवा महापीडा विषोत्पत्तिर्विशेषतः ।
अर्थाग्निराजभिः क्लेशो रवेः प्राणगतेऽप्यहौ ॥ ५ ॥

सूर्य-सूक्ष्म दशा में राहु-प्राणदशा आने पर अन्नजन्य महाक्लेश, विशेष रूप से विषभय, धन अग्नि तथा राजा के द्वारा कष्ट ये सभी फल होते हैं ॥ ५ ॥

(सू. बृ.) नानाविद्यार्थसम्पत्तिः कार्यलाभो गतागतैः ।
राजद्विजाश्रमे स्याद्धि रवेः प्राणगते गुरौ ॥ ६ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में गुरु की प्राणदशा आनेपर अनेक विद्याओं तथा सम्पत्तियों का प्रसार, राजा एवं ब्राह्मणों के यहां गमनागमन से कार्यसिद्धि होती है ॥ ६ ॥

(सू. श.) बन्धनं प्राणनाशश्च चित्तोद्वेगस्तथैव च ।
बहुबाधा महाहानी रवेः प्राणगते शनौ ॥ ७ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर जेल, मरण, चित्त में उद्विग्नता, अनेकविध बाधाएँ तथा अपार क्षति होती है ॥ ७ ॥

(सू. बु.) राजान्नभोगः सततं राजलाञ्छनतत्पदम् ।
आत्मानं तर्पयेदेवं रवेः प्राणगते बुधे ॥ ८ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आने पर सतत राजा के अन्न का ही भोग, राजचिह्न तथा राजपद से आत्मतोष होता है ॥ ८ ॥

(सू. के.) अन्योन्यं कलहश्चैव वसुहानिः पराजयः ।
गुरुस्त्रीबन्धुभिः सार्धं रवेः प्राणगते ध्वजे ॥ ९ ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आनेपर गुरु, स्त्री, तथा बन्धुओं के साथ पारस्परिक कलह, धनक्षय तथा पराजय, ये सभी फल होते हैं ॥ ९ ॥

(सू. शु.) राजपूजा धनाधिक्यं स्त्रीपुत्रादिभवं सुखम् ।
अन्नपानादिभोगाप्तिः सूर्यप्राणगते सिते ॥ १० ॥

सूर्य की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राण दशा आने पर राजसम्मान, धन की अधिकता, स्त्री-पुत्रजन्य सुख, अन्न-पान आदि भोग्य पदार्थों की प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में चन्द्रादि ग्रहों के प्राणदशा-फल

(चं. चं.) योगसिद्धिः समाधिश्च जायासून्वादिजं सुखम् ।
स्याद् वासो वसुलाभश्च चन्द्रप्राणगते विधौ ॥११॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में चन्द्रप्राणदशा आने पर योगसिद्धि, समाधि, स्त्री-पुत्र-जन्य सुख, वस्त्र, धनलाभ, ये सब फल होते हैं ॥ ११ ॥

(चं. मं.) क्षयः कुष्ठं बन्धुनाशो रक्तस्रावान्महद् भयम् ।
भूतावेशादि जायेत चन्द्रप्राणगते कुजे ॥ १२ ॥

चन्द्रसूक्ष्मदशा में मंगल की प्राणदशा आनेपर राजयक्ष्मा, कुष्ठ, बन्धुनाश, रक्तस्राव से महाभय, प्रेतोपद्रव ये फल होते हैं ॥ १२ ॥

(चं. रा.) सर्पभीतिर्विशेषेण भूतानामत्युपद्रवः ।
दृष्टिक्षोभो मतिभ्रंशश्चन्द्रप्राणगतेऽप्यहौ ॥ १३ ॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में राहुप्राणदशा आने पर सर्पभय, भूतादिकों का उपद्रव, दृष्टि में कमजोरी तथा बुद्धिभ्रंश होता है ॥ १३ ॥

(चं. गु.) धर्मवृद्धिः भूम्यवाप्तिर्देवब्राह्मणपूजनम् ।
सौभाग्यं प्रियदृष्टिश्च चन्द्रप्राणगते गुरौ ॥ १४ ॥

चन्द्र की सूक्ष्मदशा में गुरु-प्राणदशा आनेपर धर्मवृद्धि, भूलाभ, देवता तथा ब्राह्मणों का पूजन, सौभाग्योदय, प्रिय व्यक्तियों का दर्शन, ये सब होते हैं ॥ १४ ॥

(चं. श.) सहसा देहपतनं शत्रूपद्रववेदना ।
अन्धता च धनप्राप्तिश्चन्द्रप्राणगते शनौ ॥ १५ ॥

चन्द्रसूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर एकाएक शरीरपात, शत्रु के उपद्रव से कष्ट, अन्धता तथा धनप्राप्ति होती है ॥ १५ ॥

(चं. बु.) चामरच्छत्रसम्प्राप्ती राज्यलाभो नृपालतः ।
समत्वं सर्वभूतेषु चन्द्रप्राणगते बुधे ॥ १६ ॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर छत्र-चामर (राजचिह्न) की प्राप्ति, राजा से राज्यप्राप्ति, सभी प्राणियों में समत्वकी भावना, ये सभी फल होते हैं ॥ १६ ॥

(चं. के.) शस्त्राग्निरिपुजा पीडा विषभीः कुक्षिरोगिता ।
पुत्रस्त्रीविरहः केतौ चन्द्रप्राणगते सति ॥ १७ ॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में केतु-प्राणदशा आने पर शस्त्र, अग्नि तथा शत्रु से पीड़ा, विषभय, उदररोग तथा पुत्र-स्त्री वियोग, ये सब फल होते हैं ॥ १७ ॥

(चं. शु.) पुत्रमित्रकलत्राप्तिर्विदेशाच्च धनागमः।
सुखसम्पत्तिरर्थश्च चन्द्रप्राणगते भृगौ ॥ १८ ॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आनेपर स्त्री, पुत्र, मित्र-जन्य सुख, विदेश से धनप्राप्ति, तथा सर्वविध सौख्य एवं धनागम होते हैं ॥ १८ ॥

(चं. सू.) नैष्ठुर्यं क्रोधसंवृद्धिः प्राणहानिर्मनोरुजा।
देशत्यागो महाभीतिश्चन्द्रप्राणगते रवौ ॥ १९ ॥

चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा आनेपर निष्ठुरता, क्रोध की वृद्धि, प्राणभय, मनोव्यथा, देशनिष्कासन तथा महाभय होता है ॥ १९ ॥

मङ्गल की सूक्ष्मदशा में मङ्गलादि ग्रहों के प्राणदशा-फल—

(मं. मं.) भवेत् परजनाद् बन्धः परकीयास्त्रतोऽथवा।
निश्चितं मरणं याति भौमप्राणगते कुजे ॥ २० ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में मंगल की प्राणदशा आनेपर शत्रुद्वारा बन्धन या शत्रुशस्त्रकृत मरण होता है ॥ २० ॥

(मं. रा.) विच्युतिः सुतदारेभ्यो बन्धूपद्रवपीडनम्।
प्राणत्यागो विषेणैव भौमप्राणगतेऽप्यहौ ॥ २१ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में राहु-प्राणदशा आनेपर पुत्र-स्त्री से वियोग, बन्धुओं के उपद्रव से कष्ट, विष द्वारा प्राणत्याग ये फल होते हैं ॥ २१ ॥

(मं. गु.) देवार्चनरतिः सम्पद् मन्त्रानुष्ठानलीनता।
पुत्रपौत्रसुखावाप्तिर्भौमप्राणगते गुरौ ॥ २२ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में गुरु की प्राणदशा आनेपर देवपूजन में रति, धनलाभ, मन्त्र के अनुष्ठान में लीनता, पुत्र-पौत्रसुख की प्राप्ति ये सब होते हैं ॥ २२ ॥

(मं. श.) अग्निदाहाद् भवेन्मृत्युरर्थनाशः पदच्युतिः।
बन्धुभिर्बान्धवत्वाप्तिर्भौमप्राणगते शनौ ॥ २३ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर अग्निदाह से मरण, धनक्षय, स्थानभ्रंश तथा बन्धुओं से बन्धुत्व की प्राप्ति (परस्पर प्रेम) होता है ॥ २३ ॥

(मं. बु.) दिव्याम्बरसमुत्पत्तिर्दिव्याभरणभूषिता।
दिव्याङ्गनायाः सम्प्राप्तिर्भौमप्राणगते बुधे ॥ २४ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर दिव्य वस्त्र, दिव्य भूषण, दिव्य स्त्री का लाभ होता है ॥ २४ ॥

(मं. के.) पतनोत्पातपीडा च नेत्रक्षोभो महद् भयम्।
भुजङ्गाद् द्रव्यहानिश्च भौमप्राणगते ध्वजे ॥ २५ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आनेपर कूदने तथा गिरने से कष्ट, नेत्ररोग, सर्प से महाभय तथा द्रव्यहानि ये फल होते हैं ॥ २५ ॥

(मं. शु.) धनधान्यादिसम्पत्तिर्लोकपूजासुखागमः ।
नानाभोगैर्भवेद् रोगो भौमप्राणगते भृगौ ॥ २६ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आनेपर धन, धान्य तथा अन्यविध सम्पदाएँ, लोगों में पूजा के कारण सुखप्राप्ति, विविध भोगप्राप्ति से रोग होता है ॥२६॥

(मं. सू.) ज्वरोन्मादः क्षयोऽर्थस्य राजनिस्नेहसम्भवः ।
दीर्घरोगश्च दारिद्र्यं भौमप्राणगते रवौ ॥ २७ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में सूर्यप्राणदशा आनेपर ज्वरप्रयुक्त उन्माद, धनक्षय, राजविरोध, दीर्घकाल तक रोग तथा दरिद्रता ये फल होते हैं ॥ २७ ॥

(मं. चं) भोजनादिसुखावाप्तिर्वस्त्राभरणतः सुखम् ।
शीतोष्णव्याधिपीडा च भौमप्राणगते विधौ ॥ २८ ॥

मंगल की सूक्ष्मदशा में चन्द्रमा की प्राणदशा आनेपर भोजन आदिक सुख की प्राप्ति, वस्त्र तथा आभूषणों का सुख, शीत, उष्ण प्रयुक्त रोग से कष्ट ये फल होते हैं ॥ २८ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में राहु आदि ग्रहों के प्राणदशा-फल—

(रा. रा.) अन्नाशने विरक्तिश्च विषभीतिस्तथैव च ।
सहसा धननाशश्च राहोः प्राणगतेऽप्यहौ ॥ २९ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में राहु की ही प्राणदशा आनेपर भोजन में अरुचि, विषभय तथा एकाएक धननाश होता है ॥ २९ ॥

(रा. जी.) अङ्गसौख्यं विनिर्भीतिर्वाहनादेश्च सङ्गतिः ।
नीचैः कलहसम्प्राप्ती राहोः प्राणगते गुरौ ॥ ३० ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में गुरु की प्राणदशा आनेपर शरीरसुख, निर्भयता, वाहनों की प्राप्ति, तथा नीचों के साथ झगड़ा होता है ॥ ३० ॥

(रा. श.) गृहदाहः शरीरे च रोगबन्धनजा विपत् ।
नीचैरपहृता सम्पद् राहोः प्राणगते शनौ ॥ ३१ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर गृहदाह, शरीर में रोग तथा बन्धन-जनित क्लेश तथा नीचों के द्वारा सम्पत्ति का अपहरण ये फल होते हैं ॥ ३१ ॥

(रा. बु.) गुरूपदेशविभवो गुरुसत्कारवर्धनम् ।
गुणशीलयुतिश्चापि राहोः प्राणगते बुधे ॥ ३२ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर गुरूपदेशजन्य ऐश्वर्य, गुरुजनों का सत्कार, गुण तथा शील का संयोग होता है ॥ ३२ ॥

(रा. के.) स्त्रीपुत्रादिविरोधश्च गृहान्निष्क्रमणं तथा ।
साहसात् कार्यहानिश्च राहोः प्राणगते ध्वजे ॥ ३३ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा होनेपर स्त्री-पुत्र से विरोध, घर से निष्क्रमण (गृहत्याग), साहस से कार्यहानि ये फल होते हैं ॥ ३३ ॥

(रा. शु.) छत्रवाहनसम्पत्तिः सर्वार्थफलसंचयः ।
शिवार्चनगृहारम्भो राहोः प्राणगते भृगौ ॥ ३४ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में शुक्रप्राणदशा आनेपर छत्र-वाहनयुक्त सम्पत्ति, सभी कार्यों में सफलता, शिवपूजन तथा गृहनिर्माण होता है ॥ ३४ ॥

(रा. सू.) अर्शःप्रभृतितो भीतिः राज्योपद्रवसम्भवः ।
चतुष्पादादिहानिश्च राहोः प्राणगते रवौ ॥ ३५ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा आनेपर अर्श (बवासीर) आदिक रोगों का भय, राजा द्वारा कष्ट, पशुहानि, ये फल होते हैं ॥ ३५ ॥

(रा. चं.) सौमनस्यं च सद्बुद्धिः सत्कारो गुरुदर्शनम् ।
पापभीतिर्मनःसौख्यं राहोः प्राणगते विधौ ॥ ३६ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में चन्द्रमाकी प्राणदशा होनेपर सौमनस्य, सुबुद्धि, सम्मान, गुरुदर्शन, पाप से भय, मानसिक सुख, ये फल होते हैं ॥ ३६ ॥

(रा. मं.) चाण्डालाग्निवशाद् भीतिः स्वपदच्युतिरापदः ।
मालिन्यं श्वादिवृत्तिश्च राहोः प्राणगते कुजे ॥ ३७ ॥

राहु की सूक्ष्मदशा में मंगल की प्राणदशा आनेपर चाण्डाल तथा अग्नि से भय, अवनति, आपत्ति, मलिनता, तथा कुत्ते की तरह नीचवृत्ति होती है ॥ ३७ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में गुरु हादि ग्रहों के प्राणदशाफल—

(गु. गु.) मोदवृद्धिर्धनाधिक्यमग्निहोत्रं शिवार्चनम् ।
वाहनं छत्रसंयुक्तं जीवप्राणगते गुरौ ॥ ३८ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में गुरु की ही प्राणदशा आनेपर हर्षवृद्धि, धनाधिकता, अग्निहोत्र, शिवपूजन, छत्रयुक्त वाहन, की प्राप्ति होती है ॥ ३८ ॥

(गु. श.) व्रतभंगो मनःक्लेशो विदेशे वसुनाशनम् ।
विरोधो बान्धवैः सार्धं गुरोः प्राणगते शनौ ॥ ३९ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर व्रतभङ्ग, मानसिक कष्ट, विदेश में धनक्षय, बन्धुवर्गों के साथ विरोध, ये फल होते हैं ॥ ३९ ॥

(गु. बु.) सद्विद्यामतिवृद्धिश्च सम्मानमति लोकतः ।
धनस्त्रीसुतसौख्याप्तिर्जीवप्राणगते विदि ॥ ४० ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर सद्विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि, समाज से सम्मान, धन, स्त्री, पुत्र से सुखप्राप्ति ये सब होते हैं ॥ ४० ॥

(गु. के.) ज्ञानं विभवपाण्डित्यं शास्त्रबोधः शिवार्चनम् ।
अग्निहोत्रं गुरोर्भक्तिर्गुरोः प्राणगते ध्वजे ॥ ४१ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आनेपर ज्ञान, ऐश्वर्य, पाण्डित्य, शास्त्रबोध, शिवार्चना, अग्निहोत्र, तथा गुरुभक्ति होती है ॥ ४१ ॥

(गु. शु.) रोगान्मुक्तिः सुखं भोगो धनधान्यसमागमः ।
पुत्रदारादिजं सौख्यं गुरोः प्राणगते भृगौ ॥ ४२ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आनेपर रोग से मुक्ति, सुखभोग, धन-धान्यवृद्धि तथा पुत्र-स्त्री-सौख्य प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

(गु. सू.) वातपित्तप्रकोपश्च श्लेष्मोद्रेकस्तु दारुणः ।
रसव्याधिकृतं शूलं गुरोः प्राणगते रवौ ॥ ४३ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा आनेपर वात-पित्त का प्रकोप भयंकर श्लेष्मा की अधिकता, तथा रसव्याधिजन्य शूल रोग होता है ॥ ४३ ॥

(गु. चं.) छत्रचामरसंयुक्तं वैभवं पुत्रसम्पदः ।
नेत्रकुक्षिगता पीडा गुरोः प्राणगते विधौ ॥ ४४ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में चन्द्र की प्राणदशा आने पर राजचिह्न (छत्र-चामर) युक्त ऐश्वर्य, पुत्र तथा सम्पत्ति, और नेत्र तथा उदर में कष्ट होता है ॥ ४४ ॥

(गु. मं.) स्त्रीजनाच्च विषवाप्तिर्बन्धनं चातिनिग्रहः ।
देशान्तरगमो भ्रान्तिर्गुरोः प्राणगते कुजे ॥ ४५ ॥

गुरु की सुक्ष्मदशा में मंगल की प्राणदशा आनेपर स्त्रीवर्ग से विष का भय, बन्धन (जेल), कठोरदण्ड, देशान्तर गमन, तथा मतिभ्रान्ति ये फल होते हैं ॥४५॥

(गु. रा.) व्याधिभिः परिभूतिः स्याच्चौरैरपहृतं वसु ।
सर्पवृश्चिकदंशश्च गुरोः प्राणगतेऽप्यहौ ॥ ४६ ॥

गुरु की सूक्ष्मदशा में राहु की प्राणदशा आनेपर व्याधि से पराभव, चोरों के द्वारा धनापहरण, सांप विच्छू आदि के दंश ये फल होते हैं ॥ ४६ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में शन्यादि ग्रहों की प्राणदशाफल—

(श. श.) ज्वरेण ज्वलिता कान्तिः कुष्ठरोगोदरादिरुक् ।
जलाग्निचौरभूतेस्तुः स्याच्छनिप्राणगते शनौ ॥ ४७ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में शनि की ही प्राणदशा आनेपर ज्वर से विवर्णता (कान्ति हीनता) कुष्ठ तथा उदर-रोग के प्रकोप, जल, अग्नि कृत मरण ये सब फल होते हैं ॥

(श. बु.) धनं धान्यं च माङ्गल्यं व्यवहाराभिपूजनम् ।
देवब्राह्मणशक्तिश्च शनेः प्राणगते बुधे ॥ ४८ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर धन-धान्य की वृद्धि-कल्याण, व्यापार में लाभ, देव-ब्राह्मणों में भक्ति, ये फल होते हैं ॥ ४८ ॥

(श .के.) मृत्युवेदनवद् दुःखं भूतोपद्रवसम्भवः ।
परदाराभिभूतत्वं शनेः प्राणगते ध्वजे ॥ ४९ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आनेपर मरण सदृश वेदना वाला दुःख प्रेतोपद्रव, परस्त्री कृत अभिभव होता है ॥ ४९ ॥

(श. शु.) पुत्रार्थविभवैः सौख्यं क्षितिपान्मानजं सुखम् ।
अग्निहोत्रं विवाहश्च शनेः प्राणगते भृगौ ॥ ५० ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आनेपर पुत्र, धन, तथा अन्य ऐश्वर्यों से सुख राजसम्मानजन्य सुख, अग्निहोत्र, विवाह ये फल होते हैं ॥ ५० ॥

(श. सू.) अक्षिपीडा शिरोव्याधिः सर्पशत्रुभयं भवेत् ।
अर्थहानिर्महाक्लेशः शनेः प्राणगते रवौ ॥ ५१ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में सूर्य प्राणदशा आनेपर नेत्र तथा शिर में क्लेश, सर्प तथा शत्रु से भय, धनक्षय एवं महान् कष्ट होता है ॥ ५१ ॥

(श. चं.) आरोग्यं पुत्रलाभश्च शान्तिपौष्टिकवर्धनम् ।
देवब्राह्मणभक्तिश्च शनेः प्राणगते विधौ ॥ ५२ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में चन्द्रमा की प्राणदशा आनेपर नैरुज्य, पुत्रसुख, शान्ति तथा पुष्टि की वृद्धि, और देवता तथा ब्राह्मणों में भक्ति होती है ॥ ५२ ॥

(श. मं.) गुल्मरोगः शत्रुभीतिर्मृगया प्राणनाशनम् ।
भुजगानलतो भीतिः शनेः प्राणगते कुजे ॥ ५३ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में मङ्गल की प्राणदशा आनेपर गुल्मरोग, शत्रुभय, शिकार में मृत्यु, सर्प, अग्नि से भय ये फल होते हैं ॥ ५३ ॥

(श. रा.) देशत्यागो नृपाद् भीतिर्मोहनं विषभक्षणम् ।
वातपित्तकृता पीडा शनेः प्राणगतेऽप्यहौ ॥ ५४ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में राहु की प्राणदशा आनेपर देशत्याग, राजभय, मोहन, विषभक्षण, वातपित्तजन्य कष्ट ये फल होते हैं ॥ ५४ ॥

(श. गु.) सेनापत्यं भूमिलाभः सङ्गमः स्वजनैः सह ।
गौरवं नृपसम्मानं शनेः प्राणगते गुरौ ॥ ५५ ॥

शनि की सूक्ष्मदशा में गुरु की प्राणदशा आनेपर सेनाधिपत्य, भूम्यर्जन, स्वजनों के साथ मेल, गौरव, राजसम्मान, ये सब फल होते हैं ॥ ५५ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में बुधादि ग्रहों की प्राणदशा के फल—

(बु. बु.) आरोग्यं सुखसम्पत्तिर्धर्मकर्मादिसाधनम् ।
समत्वं सर्वभूतेषु विदः प्राणगते बुधे ॥ ५६ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में बुध की ही प्राणदशा आवे तो, शरीर में आरोग्य, सुख सम्पत्ति, धर्म-कार्य में प्रवृत्ति, सभी जीवों में समत्व की भावना ये फल होते हैं ॥५६॥

(बु. के.) दहनं चौरविद्धाङ्गं परमाधिर्विषाशनम् ।
देहान्तकरणं दुःखं बुधप्राणगते ध्वजे ॥ ५७ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आनेपर अग्निभय, चोरों के द्वारा विक्षत अङ्ग, मनोव्यथा, विषभक्षण, मृत्यु सदृश दुःख, ये सब होते हैं ॥ ५७ ॥

(बु. शु.) प्रभुत्वं धनसम्पत्तिः कीर्त्तिर्धर्मः शिवार्चनम् ।
पुत्रदारादिजं सौख्यं बुधप्राणगते भृगौ ॥ ५८ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आनेपर प्रभुता, धनसम्पत्ति, यश, धर्म, शिवपूजन, पुत्र-स्त्रीजन्य सुख ये फल होते हैं ॥ ५८ ॥

(बु. सू.) अन्तर्दाहो ज्वरोन्मादौ बान्धवानां रतिः स्त्रियाः ।
लभ्यते स्तेयसम्पत्तिर्बुधप्राणगते रवौ ॥ ५९ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा आनेपर अन्तःसन्ताप, ज्वर तथा उन्माद, बन्धुओं तथा स्त्री से स्नेह, और चौर्य से आगत धन की प्राप्ति होती है ॥५९॥

(बु. चं.) स्त्रीलाभश्चार्थसम्पत्तिः कन्यालाभो धनागमः ।
जायते सर्वतः सौख्यं बुधप्राणगते विधौ ॥ ६० ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में चन्द्र की प्राणदशा आनेपर स्त्री, धन, सम्पत्ति का लाभ, कन्याजन्म, धनागम तथा सर्वविध सौख्य की प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥

(बु. मं.) पातित्यं कुक्षिरोगश्च दन्तनेत्रादिजा व्यथा ।
अर्शांसि प्राणसन्देहो बुधप्राणगते कुजे ॥ ६१ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में मङ्गल की प्राणदशा आनेपर नीच, कुत्सितकर्म में प्रवृत्ति, उदररोग, दांत, आंखों में वेदना, अर्श (बवासीर) का प्रकोप, तथा मृत्युभय होता है ॥ ६१ ॥

(बु. रा.) वस्त्राभरणसम्पत्तिर्वियोगो विप्रवैरिता ।
सन्निपातोद्भवं दुःखं बुधप्राणगतेऽप्यहौ ॥ ६२ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में राहु की प्राणदशा आनेपर वस्त्र, भूषण, तथा सम्पत्ति का लाभ, स्वजन से वियोग, ब्राह्मण से शत्रुता, सन्निपातज कष्ट, ये फल होते हैं ॥६२॥

(बु. गु.) गुरुत्वं धनसम्पत्तिर्विद्या-सद्गुणसंग्रहः ।
व्यवसायेन सल्लाभो बुधप्राणगते गुरौ ॥ ६३ ॥

प्रतिष्ठा, धन-सम्पत्ति का लाभ, विद्या तथा सद्गुण की वृद्धि, व्यापार से अच्छा लाभ, ये सब फल होते हैं ॥ ६३ ॥

(बु. श.) चौर्येण निधनप्राप्तिस्तथैव च दरिद्रता ।
याचकत्वं विशेषेण बुधप्राणगते शनौ ॥ ६४ ॥

बुध की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर चोरी से मरण, दारिद्र्य, विशेष रूप से भिक्षावृत्ति ये फल होते हैं ॥ ६४ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में केत्वादि ग्रहों की प्राणदशा के फल—

(के. के.) अश्वपातेन घातश्च कलिः स्याद्रिपुभिः सह।
निर्विचारवधोत्पत्तिः स्वीयप्राणगते ध्वजे ॥ ६५ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आने पर घोड़े से गिरने से आघात (चोट) शत्रुओं के साथ झगड़ा, अविचारित वध की सम्भावना ये सब होते हैं ॥ ६५ ॥

(के. शु.) क्षेत्रलाभो वैरिनाशो हयलाभो मनः सुखम् ।
पशुक्षेत्रधनप्राप्तिः केतोः प्राणगते भृगौ ॥ ६६ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आनेपर क्षेत्रलाभ, शत्रुक्षय, अश्वलाभ, मानसिक सुख, पशु, क्षेत्र, धन की प्राप्ति ये फल होते हैं ॥ ६६ ॥

(के. सू.) स्तेनाग्निरिपुभीत्यादि घातश्चैवावरोधयुक् ।
प्राणान्तकरणः क्लेशः केतोः प्राणगते रवौ ॥ ६७ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा आनेपर चोर, अग्नि, शत्रुओं का भय, अवरोधयुक्त आघात, मृत्युसम कष्ट, ये फल होते हैं ॥ ६७ ॥

(के. चं.) देवद्विजगुरोः पूजा दीर्घयात्रा धनं सुखम् ।
कण्ठे वा नयने रोगः केतोः प्राणगते विधौ ॥ ६८ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में चन्द्र की प्राणदशा आनेपर देवता, ब्राह्मण गुरु की पूजा, लम्बी यात्रा, धन, सुख, कण्ठ या नेत्र में रोग ये फल होते हैं ॥ ६८ ॥

(के. मं.) तीव्ररोगो नसो वृद्धिर्विभ्रमः सन्निपातजः ।
स्वबन्धुजनविद्वेषः केतोः प्राणगते कुजे ॥ ६९ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में मङ्गल की प्राणदशा आनेपर तीव्र (भयङ्कर) रोग, नासिका की वृद्धि, सन्निपात प्रयुक्त भ्रान्ति, बन्धु-बान्धवों के साथ विद्वेष, ये फल होते हैं ॥

(के. रा.) विरोधः स्त्रीसुताद्यैश्च गृहान्निष्क्रमणं भवेत् ।
स्वसाहसात् कार्यसिद्धिः केतोः प्राणगतेऽप्यहौ ॥ ७० ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में राहु की प्राणदशा आनेपर स्त्री-पुत्रादिकों से विरोध, घर से निर्गमन, अपने साहस के कारण कार्यसिद्धि, ये फल होते हैं ॥ ७० ॥

(के. गु.) शस्त्रव्रणो महारोगो हृत्पीडादिसमुद्भवः ।
सुतदारवियोगश्च केतोः प्राणगते गुरौ ॥ ७१ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में गुरु की प्राणदशा आनेपर शस्त्रजन्य व्रण, हृदय का महारोग, पुत्र-स्त्रीवियोग ये फल होते हैं ॥ ७१ ॥

(के. श.) मतिविभ्रमतीव्रत्वं क्रूरकर्मरतिः सदा ।
व्यसनाद् बन्धनं दुःखं केतोः प्राणगते शनौ ॥ ७२ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर तीव्र मतिविभ्रम, कुत्सितकर्म में सतत आसक्ति, व्यसन (बुरी आदत) प्रयुक्त बन्धन तथा दुःख, ये फल होते हैं ॥ ७२ ॥

(के. बु.) कौसुमं शयनं भूषा लेपनं भोजनादिकम् ।
सौख्यं सर्वाङ्गभोग्यं च केतोः प्राणगते बुधे ॥ ७३ ॥

केतु की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर पुष्पशय्या, भूषण, चन्दन, सुभोजन, सर्वाङ्गसुखद भोग्य ये फल प्राप्त होते हैं ॥ ७३ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में शुक्रादि ग्रहों के प्राणदशा-फल—

(शु. शु.) ज्ञानमीश्वरभक्तिश्च तोषकर्मरसायनम् ।
पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च स्वीयप्राणगते भृगौ ॥ ७४ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में शुक्र की प्राणदशा आवे तो ज्ञान ईश्वर में भक्ति, सन्तोष रूपी रसायन की प्राप्ति, तथा पुत्रपौत्रादि की समृद्धि होती है ॥ ७४ ॥

(शु. सू.) लोकप्रकाशकीर्त्तिश्च सुतसौख्यप्रवञ्चनम् ।
उष्णादिरोगजं दुःखं शुक्रप्राणगते रवौ ॥ ७५ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में सूर्य की प्राणदशा आनेपर लोगों के प्रकाश में आनेवाली सत्कीर्ति, पुत्रसौख्य से वञ्चन, तथा उष्णरोगादि प्रयुक्त कष्ट ये फल होते हैं ॥७५॥

(शु. च.) देवार्चने कर्मरतिर्मन्त्रतोषणतत्परः ।
धनसौभाग्यसम्पत्तिः शुक्रप्राणगते विधौ ॥ ७६ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में चन्द्रमा की प्राणदशा आनेपर देवपूजन तथा कार्य में तत्परता मन्त्र से सन्तोष, धन सौभाग्य, तथा अन्यान्य सम्पदाएं होती हैं ॥७६॥

(शु. मं.) ज्वरो मसूरिका स्फोट-कण्डू-चिपिटकादिकाः ।
देवब्राह्मणपूजा च शुक्रप्राणगते कुजे ॥ ७७ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में मङ्गल की प्राणदशा आने पर ज्वर, मसूरिका रोग फोड़ा, खुजली, आदि रोगों का प्रकोप, देव-ब्राह्मण की पूजा का योग, ये फल होते हैं ॥

(शु. रा.) नित्यं शत्रुकृता पीडा नेत्रकुक्षिरुजादयः ।
विरोधः सुहृदां पीडा शुक्रप्राणगतेऽप्यहौ ॥ ७८ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में राहु की प्राणदशा आनेपर प्रतिदिन शत्रुकृत कष्ट, नेत्र तथा उदररोग, विरोध, तथा मित्रों को पीड़ा होती है ॥ ७८ ॥

(शु. गु.) आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रस्त्रीधनवैभवम् ।
छत्रवाहनसम्पत्तिः शुक्रप्राणते गुरौ ॥ ७९ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में गुरु की प्राणदशा आनेपर आयुष्य, नैरुज्य, ऐश्वर्य, पुत्र, स्त्री धन का सौख्य, छत्र वाहन, की प्राप्ति, ये फल होते हैं ॥ ७९ ॥

(शु. श.) राजोपद्रवजा भीतिः सुखहानिर्महारुजा ।
नीचैः सह विवादश्च शुक्रप्राणगते शनौ ॥ ८० ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में शनि की प्राणदशा आनेपर राजा के द्वारा भय, सुखक्षय, महारोग, नीचों के साथ विवाद, ये फल होते हैं ॥ ८० ॥

(शु. बु.) सन्तोषो राजसम्मानं नानादिग्भूमिसम्पदः ।
नित्यमुत्साहवृद्धिः स्याच्छुक्रप्राणगते बुधे ॥ ८१ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में बुध की प्राणदशा आनेपर सन्तोष, राजसम्मान, अनेक दिशाओं से भूमि तथा सम्पत्तियां, नित्य उत्साह की वृद्धि, ये फल होते हैं ॥ ८१ ॥

(शु. क.) जीवितात्मयशोहानिर्धनधान्यपरिक्षयः ।
त्यागभोगधनानि स्युः शुक्रप्राणगते ध्वजे ॥ ८२ ॥

शुक्र की सूक्ष्मदशा में केतु की प्राणदशा आनेपर जीवन, यश, धन, धान्य की हानि, त्याग तथा भोग का ही धन, (शेष नष्ट) ये फल होते हैं ॥ ८१ ॥

एवं संक्षेपतो विप्र ! दशान्तरदशाफलम् ।
नक्षत्राणां निगदितं ज्ञेयमन्यद् विवेकतः ॥ ८३ ॥

इस तरह हे मैत्रेय, नक्षत्रों के दशान्तर्दशा फल मैंने कहा है । तदनुसार दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्मदशा, प्राणदशा इनके अधिप के शुभाशुभत्व से अपने विवेक से फल का निर्देश करना चाहिए ॥ ८३ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे प्राणदशाफलाध्यायः समाप्तः ॥

अथ कालचक्रदशान्तर्दशाफलाध्यायः ॥ ६५ ॥

पराशर उवाच—

> अथ मैत्रेय ! ते वच्मि चक्रान्तरदशाफलम् ।
> यदुक्तमखिलं देव्यै स्वयमेव पिनाकिना ॥ १ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं कालचक्रान्तर्दशाफल बतलाता हूँ जिसे शङ्कर ने स्वयं पार्वतीजी से कहा था ॥ १ ॥

कालचक्रदशा में अन्तर्दशा साधन का उदाहरण तथा मेष में दशामान आदि पहले सव्य चक्र में द्रष्टव्य है । तदनुसार—

मेषांश में दशामान चक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	
स्वामी	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	योग
वर्ष	७	१६	९	२१	५	९	१६	७	१०	१००

मेषांश के मेष राशि में अन्तर्दशा साधन के लिए मेष दशावर्ष ७ को मेष ही के दशावर्ष ७ से गुणाकर परमायु (वर्षयोग = १००) से भाग लेने पर लब्ध वर्षादि $\frac{७\times७}{१००}$ = ०।५।२६।२४ यह मेष में मङ्गल की अन्तर्दशा हुई । उसी तरह मेष दशा मान ७ को वृष दशावर्ष १६ से गुणाकर और १०० से भाग देने पर $\frac{७\times१६}{१००}$ = $\frac{११२}{१००}$ = १।१।१३।१२ यह लब्ध वर्षादि मेष में शुक्र की अन्तर्दशा हुई । इसी तरह तत्तद्राशियों के दशावर्ष से गुणा करने तथा दशावर्ष योग से भाग देने पर लब्ध वर्षादि तत्तद्राशिस्वामियों की अन्तर्दशा होगी । इसी तरह वृषादि के वर्ष से वृषादि में अन्तर्दशा साधन होता है ।

मेषांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	
दशेश	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
मास	५	१	७	५	४	७	१	५	८	०
दिन	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	२६	१२	०
घटी	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	२४	०	०

मेषांशीय वृषदशा १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मेष	
दशेश	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	२	१	३	०	१	२	१	१	१	१६
मास	६	५	४	९	५	६	१	६	१	०
दिन	२१	८	९	१८	८	२१	१३	०	१३	०
घटी	३६	२४	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	०

मेषांशीय मिथुनदशा ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मेष	वृष	
दशेश	बु.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	१	०	०	१	०	०	०	१	९
मास	९	१०	५	९	५	७	१०	७	५	०
दिन	२१	२०	१२	२१	८	१६	२४	१६	८	१
घटी	३६	२४	०	३६	२४	४८	०	४८	२४	०

मेषांशीय कर्कदशा २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मेष	वृष	मिथुन	
दशेश	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	बु.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	४	१	१	१	१	२	१	३	१	२१
मास	४	०	१०	४	५	१	५	४	१०	०
दिन	२७	१८	२०	९	१९	६	१९	९	२०	०
घटी	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	३६	२४	०

मेषांशीय सिंहदशा ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	
दशेश	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	५	९	४	६	४	९	५	०	०
दिन	०	१२	१८	६	०	६	१८	१२	१८	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मेषांशीय कन्यादशा ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुळा	वृश्चिक	धन	मेप	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बृ.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०	९
मास	९	५	७	१०	७	५	९	१०	५	०
दिन	२१	८	१६	२४	१६	८	२१	२०	१२	०
घटी	३६	२४	४८	०	४८	२४	३६	२४	०	०

मेषांशीय तुलादशा १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	
दशेश	शु.	म.	बृ.	मं.	श.	बु.	चं.	र.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	१	१	२	१	३	०	१	१६
मास	६	१	७	१	६	५	४	९	५	०
दिन	२१	१३	६	१३	२१	८	९	१८	८	०
घटी	३६	१२	०	१२	३६	२४	३६	०	२४	०

मेषांशीय वृश्चिकदशा ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
दशेश	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	०	२	७
मास	५	८	५	१	७	५	४	७	१	०
दिन	२६	१२	२६	१३	१६	१९	६	१५	१३	०
घटी	२४	०	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	०

मेषांशीय धनुदशा १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	१	०	२	०	०	०	१	१०
मास	०	८	७	१०	१	६	१०	७	८	०
दिन	०	१२	६	२४	६	०	२४	६	१२	०

वृषांशीय मकरदशा ४ शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	
दशेश	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	३	९	५	११	२	५	०
दिन	७	७	१९	२८	१	२	२५	२४	२	०
घटी	४५	४५	१४	३५	३	२८	४५	४२	४८	०
पल	५३	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	०

वृषांशीय कुम्भदशा ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	
दशेश	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	३	९	५	११	२	५	२	०
दिन	७	१९	२८	१	२	२५	२४	२	७	०
घटी	४५	५४	३५	३	१८	४५	४२	२८	४५	०
पल	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	५३	०

वृषांशीय मीनदशा १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	०	१	१	२	०	१	०	०	१०
मास	२	९	१०	०	५	८	०	५	५	०
दिन	३	२६	१७	२१	१९	१	२१	१९	१९	०
घटी	३१	२८	३८	१०	२४	४५	१०	२४	२४	०
पल	४६	१४	४९	३५	४२	५३	३५	४३	४३	०

वृषांशीय वृश्चिक वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	
दशेश	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	६	३	८	८	४	८	३	३	९	०
दिन	२७	२४	२६	२२	२८	२६	२८	२८	२६	०
घटी	३१	३१	४९	३५	१४	४९	३५	३५	२८	०
पल	४६	१०	२५	१७	७	२५	१८	१८	१४	०

वृषांशीय तुला वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	
दशेश	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	३	१	३	०	१	०	०	१	१	१६
मास	०	८	११	११	८	९	९	१०	३	०
दिन	४	९	१३	८	९	१	१	१७	२४	०
घटी	१४	५२	३	४९	५२	३	३	३८	२१	०
पल	७	५६	३२	२५	५६	३२	३२	४९	११	०

वृषांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	
दशेश	बु.	चं.	स.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	२	०	०	०	०	१	०	१	९
मास	११	२	६	११	५	५	०	८	८	०
दिन	१३	२०	१०	१३	२	२	२१	२६	९	०
घटी	३	२८	३५	३	२८	२८	१०	४९	५२	०
पल	३२	१४	१८	३२	१४	१४	३५	२५	५६	०

वृषांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
दशेश	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	५	१	२	०	०	२	१	३	२	२१
मास	२	२	२	११	११	५	८	११	२	०
दिन	७	२४	२०	२५	२५	१९	२२	१३	२०	०
घटी	४५	४२	२८	४५	४५	२४	३५	३	२८	०
पल	५३	२१	१४	५३	५३	४३	१७	३२	१४	०

वृषांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	
दशेश	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	२	२	७	४	११	६	२	०
दिन	१५	१०	२४	२४	१	२८	८	१०	२४	०
घटी	५२	३५	४२	४२	४५	१४	४९	३५	४२	०
पल	५६	१८	२१	२१	५३	७	२५	१८	१४	०

वृषांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	२	६	९
मास	११	५	५	०	८	८	११	२	०	०
दिन	१३	२	२	२१	२६	९	१३	२०	१०	०
घटी	३	२८	२८	१०	४९	५२	३	२८	३५	०
पल	३२	१४	१४	३५	२५	५६	३२	१४	१८	०

मिथुनांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	३	१	१	०	०	१	१	३	१	१६
मास	१	४	११	९	९	११	४	१	८	०
दिन	०	५	३	७	७	३३	५	०	२४	०
घटी	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	२१	३४	०
पल	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	४१	४२	०

मिथुनांशीय मेष के दशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	कुंभ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	
दशेश	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बृ.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	१	०	१	७
मास	७	१०	४	४	१०	७	४	९	४	०
दिन	२	३	१	१	३	२	५	३	५	०
घटी	३१	३६	२६	२६	३६	३१	४७	१५	४७	०
पल	४८	५२	४५	४५	५२	४८	०	१०	०	०

मिथुनांशीय मीन के दशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	
दशेश	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	०	१	०	१	१	१	०	१०
मास	२	५	५	२	१०	११	१	११	१०	०
दिन	१३	२३	२३	१३	३	३	०	३	३	०
घटी	४४	२९	२९	४४	३६	५८	२१	५८	३६	०
पल	६	३८	३८	६	५२	३३	४२	३३	५२	०

मिथुनांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	
दशेश	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बृ.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	४	९	५	९	४	५	०
दिन	९	९	२३	१	७	६	७	१	२३	०
घटी	२३	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	०
पल	५२	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	०

मिथुनांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	
दशेश	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	४	९	५	९	४	५	२	०
दिन	९	२३	१	७	६	७	१	२३	९	०
घटी	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	२३	०
पल	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	५२	०

मिथुनांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	०	१	१	१	०	१	०	०	१०
मास	२	१०	११	१	११	१०	२	५	५	०
दिन	१२	३	३	०	३	३	१२	२३	२३	०
घटी	४४	२६	५८	२१	५८	२६	४४	२९	२९	०
पल	६	५२	३३	४२	३३	५२	६	३८	३८	०

मिथुनांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	
दशेश	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	७	४	९	४	७	१०	४	४	१०	०
दिन	२	५	३	५	२	३	१	१	३	०
घटी	३१	४७	१५	४७	३१	३६	२६	२६	३६	०
पल	४८	०	१०	०	४०	५२	४५	४५	५२	०

मिथुनांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	
दशेश	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	३	१	३	१	१	०	०	१	१	१६
मास	१	८	१	४	११	९	९	११	४	०
दिन	०	२४	०	५	३	७	७	३	५	०
घटी	२१	३४	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	०
पल	४१	४२	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	०

मिथुनांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	१	९
मास	११	८	९	१	५	५	१	९	८	०
दिन	९१	२४	३	०	६	६	०	३	२४	०
घटी	१९	३४	१५	२१	८	८	२१	१५	३४	०
पल	३२	४२	१०	४२	४०	४०	४२	१०	४२	०

कर्कांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
दशेश	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बु.	यो.
वर्ष	५	१	२	३	१	२	०	०	२	९
मास	१	२	२	१०	८	५	११	११	५	०
दिन	१६	१९	११	२६	१५	९	२१	२१	७	०
घटी	२	३२	९	३	२०	४	३७	३७	४	०
पल	४७	५	४६	४२	५६	११	४१	४१	११	०

कर्कांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	
दशेश	र.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	११	४	६	२	२	६	३	४
दिन	१४	८	४	२६	२९	२३	२३	२९	१९	०
घटी	३९	२२	५३	३०	१८	४३	४३	१८	३२	०
पल	४	२०	१	४२	९	१५	१५	९	५	०

कर्कांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बु.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	२	०	९
मास	११	८	८	०	५	५	०	२	६	०
दिन	९	२	२३	१६	०	०	१६	११	८	०
घटी	०	४७	४३	४४	४१	४१	४४	९	२२	०
पल	११	२४	१५	४०	५१	५१	४०	४६	३०	०

कर्कांशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	१	०	१	१	३	०	१	१६
दिन	११	३	१०	८	८	१०	१०	११	८	०
मास	२१	१८	९	२७	२७	२६	४	४	२	०
घटी	३७	५०	४६	५४	५४	४६	३०	५३	४७	०
पल	४१	१५	२	२६	२६	२	४२	१	२६	०

कर्कांशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
दशेश	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	१	०	०	१	७
मास	६	९	३	३	९	८	४	८	२	०
दिन	२	२३	२७	२७	२३	१५	२६	२३	१८	०
घटी	६	५	१२	१२	१	२०	३०	४३	५०	०
पल	५९	२४	३३	३३	२४	५६	४२	१५	१४	०

कर्कांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
दशेश	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	०	१	२	०	१	१	०	१०
मास	१	५	५	१	५	६	०	१०	९	०
दिन	२८	१७	१७	२८	९	२९	१६	९	२३	०
घटी	३६	३६	३६	३६	४	१८	४४	४६	१	०
पल	१६	३०	३०	१६	१३	९	४०	२	२४	०

कर्कांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
दशेश	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	११	२	५	८	३	५	०
दिन	६	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	०
घटी	५८	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	०
पल	३७	३७	३०	३१	१५	५१	२६	३३	३०	०

कर्कांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	
दशेश	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	यो.
वर्ष	१	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	११	२	५	८	३	५	२	०
दिन	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	६	०
घटी	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	५८	०
पल	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	३७	०

कर्कांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	
दशेश	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	२	०	१	१	०	१	०	०	०
मास	१	५	६	०	१०	९	१	५	५	०
दिन	२८	९	२९	१६	९	२३	२८	१७	१७	०
घटी	३६	४	१८	३४	४६	१	३६	२६	२६	०
पल	१६	१२	९	४०	२	२४	१६	३०	३०	०

सिंहांशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	कन्या	वृष	मेष	मीन	
दशेश	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
मास	५	१	७	५	४	७	१	७	८	०
दिन	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	२	१२	०
घटी	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	४	०	०

सिंहांशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	
दशेश	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	म.	यो.
वर्ष	२	१	३	०	१	२	१	१	१	१६
मास	६	५	६	९	५	६	१	७	१	०
दिन	२१	८	९	१८	८	२१	१३	६	१३	०
घटी	३६	२४	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	०

सिंहांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	
दशेश	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	१	०	०	१	०	०	०	१	९
मास	९	१०	५	९	५	७	१०	७	५	०
दिन	२१	२०	१२	२१	८	१६	२४	१६	८	०
घटी	३६	२४	०	३६	२४	४८	०	४८	२४	०

सिंहांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	मकर	तुला	कन्या	
दशेश	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	४	१	१	३	१	२	१	३	१	२१
मास	४	०	१०	४	५	१	५	४	१०	०
दिन	२७	१८	२०	९	१९	६	१९	९	२१	०
घटी	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	३६	२४	०

सिंहांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	
दशेश	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	५	९	४	६	४	९	५	०	०
दिन	०	१२	१७	६	०	६	१८	१२	१८	०

सिंहांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०	९
मास	९	५	७	१०	७	५	९	१०	५	०
दिन	२१	८	१६	२४	१७	८	२१	२०	१२	०
घटी	३६	२४	४८	०	४८	२४	३६	२५	०	०

सिंहांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	
दशेश	शु.	मं.	बु.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	१	१	२	१	३	०	१	०
मास	६	१	७	१	६	५	४	९	५	०
दिन	२१	१३	६	१३	२१	८	९	१८	८	०
घटी	३६	१२	०	१२	३६	२४	३६	०	२४	०

सिंहांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	
दशेश	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बृ.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	०	१	७
मास	५	८	५	१	७	५	४	७	१	०
दिन	२६	१२	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	०
घटी	२४	०	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	०

सिंहांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	१	०	२	०	०	१	०	१०
मास	०	८	७	१०	१	६	१०	७	८	०
दिन	०	१२	६	२४	६	०	२४	६	१२	०

कन्यांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	
दशेश	शु.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	३	९	५	११	२	५	०
दिन	७	७	१९	२८	१	२	२५	२४	२	०
घटी	४५	४५	१४	३५	३	२८	४५	४२	२८	०
पल	५३	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	०

कन्यांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	
दशेश	श.	गु.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	३	९	५	११	२	५	२	०
दिन	७	१९	२८	१	२	२५	४४	२	७	०
घटी	४५	५४	३५	३	२८	४५	४२	२८	५५	०
पल	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	५३	०

कन्यांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	यो.
वर्ष	०	०	१	१	२	०	१	०	०	१०
मास	२	९	१०	०	५	७	०	५	५	०
दिन	३	२६	१७	२१	१९	१	२१	१९	१९	०
घटी	३१	२८	३८	१०	२४	४५	१०	२४	२४	०
पल	४६	१४	४९	३५	४२	४३	३५	४३	४३	

कन्यांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	
दशेश	म.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	६	६	८	८	४	८	३	३	९	०
दिन	२७	२४	२६	२२	२८	२६	२८	२८	२६	०
घटी	३१	२१	४९	३५	१४	४९	३५	३५	१८	०
पल	४६	१०	२५	१७	७	२५	१८	१८	१४	०

कन्यांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	
दशेश	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	३	१	३	०	१	०	०	१	१	१६
मास	०	८	११	११	८	९	९	१०	२	०
दिन	४	९	१३	८	९	१	१	१७	२४	०
घटी	१४	५२	३	४९	५२	३	३	३८	२१	०
पल	७	५६	३२	२५	५६	३२	३२	४९	११	०

कन्यांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	
दशेश	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	२	०	०	०	०	१	०	१	१
मास	११	२	६	११	५	५	०	८	८	०
दिन	१३	२०	१०	१३	२	२	२१	२६	९	०
घटी	३	२८	३५	३	२८	२८	१०	४९	५२	०
पल	३२	१४	१८	२२	१४	१४	३५	२५	५६	०

कन्यांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
दशेश	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	५	१	२	०	०	२	१	३	२	२१
मास	२	२	२	११	११	५	८	११	२	०
दिन	७	२४	२०	२५	२५	११	२२	१३	२०	०
घटी	४५	४२	२८	४५	४५	२४	३५	३	२८	०
पल	५३	२१	१४	४३	४३	४३	१७	३२	१४	०

कन्यांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	
दशेश	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	२	२	७	४	११	६	२	०
दिन	१५	१०	२४	२४	१	२८	८	१०	२४	०
घटी	५२	३५	४२	४२	४५	१४	४९	३५	४२	०
पल	५६	१७	२१	२१	५३	७	२५	१८	२१	०

कन्यांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	२	०	९
मास	११	५	५	०	८	८	११	२	६	०
दिन	१३	२	२	२१	२६	९	१३	२०	१०	०
घटी	३	२८	२८	१०	४९	५२	३	२८	३५	०
पल	३२	१४	१४	३५	२५	५६	३२	१४	१८	०

तुलांशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	३	१	१	०	०	१	१	३	१	१६
मास	१	४	११	९	९	११	४	१	८	०
दिन	०	५	३	७	७	३	५	०	२४	०
घटी	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	२१	३४	०
पल	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	४१	४२	०

तुलांशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	
दशेश	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	१	०	१	७
मास	७	१०	४	४	१०	७	४	९	४	०
दिन	२	३	१	१	३	२	५	३	५	०
घटी	३१	३६	२६	२६	३६	३१	४७	१५	४७	०
पल	४८	५२	४५	४५	५२	४८	०	१०	०	०

तुलांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	
दशेश	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	०	१	०	१	१	१	०	१०
मास	२	५	५	२	१०	११	१	११	१०	०
दिन	१३	२३	२३	१३	३	३	०	३	३	०
घटी	४४	२९	२९	४४	३६	५८	२१	५८	३६	०
पल	६	३८	३८	६	५२	३३	४२	३३	५२	०

तुलांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
दशेश	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	४	९	५	९	४	४	०
दिन	९	९	२३	१	७	६	७	१	१	०
घटी	२२	२२	२९	२६	३५	८	३५	२६	२६	०
पल	५२	५२	४८	४५	२५	४०	२५	४५	४५	०

तुलांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	
दशेश	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	४	९	५	८	४	५	२	०
दिन	९	२३	१	७	६	७	१	२३	९	०
घटी	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	२३	०
पल	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	१२	०

तुलांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	०	१	१	१	०	१	०	०	१०
मास	२	१०	११	१	११	१०	२	५	५	०
दिन	१३	३	३	०	३	३	१३	२३	२३	०
घटी	४४	३६	५८	२१	५८	३६	४४	२९	२९	०
पल	६	५२	३३	४२	३३	५२	६	३८	३८	०

तुलांशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
दशेश	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	७	४	९	४	७	१०	४	४	१०	०
दिन	२	५	३	५	२	३	१	१	३	०
घटी	३१	४७	१५	४७	३१	३६	२६	२६	३६	०
पल	४८	०	१०	०	४८	५२	४५	४१	५२	०

तुलांशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	
दशेश	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	३	१	३	१	१	०	०	१	१	१६
मास	१	८	१	४	११	९	९	११	४	०
दिन	०	२४	०	५	३	७	७	३	५	०
घटी	२१	३४	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	०
पल	४१	४२	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	०

तुलांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	९
मास	११	८	९	१	५	५	१	९	८	०
दिन	२१	२४	३	०	६	६	०	३	२४	०
घटी	१९	३४	१५	२१	८	८	२१	१५	३४	०
पल	३२	४२	१०	४२	४०	४०	४२	१०	४२	०

वृश्चिकांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	
दशेश	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	५	१	२	३	१	२	०	०	२	२१
मास	१	२	२	१०	८	५	११	११	५	०
दिन	१६	१९	११	२६	१५	९	२१	२१	९	०
घटी	२	३२	९	३०	२०	४	३७	३७	४	०
पल	४७	५	४६	४२	५६	११	४१	४१	११	०

वृश्चिकांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	
दशेश	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	२	१	५
मास	३	६	११	४	६	२	२	६	२	०
दिन	१४	८	४	२६	२९	२३	२३	२९	१९	०
घटी	३९	२२	५३	३०	१८	४३	४३	१८	३२	०
पल	४	२०	१	४२	९	५५	१५	९	५	०

वृश्चिकांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	२	०	९
मास	११	८	८	०	५	५	०	२	६	०
दिन	९	२	२३	१६	०	०	१६	११	८	०
घटी	४	४७	४३	४४	४१	४१	४४	९	२२	०
पल	११	२६	१५	४०	५१	५१	४०	४६	२०	०

वृश्चिकांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	१	०	०	१	३	०	१	१६
मास	११	३	१०	८	८	१०	१०	११	८	०
दिन	२१	१८	९	२७	२७	९	२६	४	२	०
घटी	३७	५०	४६	५४	५४	३६	३०	५३	४७	०
पल	४१	१४	२	२६	२६	२	४२	१	२६	०

वृश्चिकांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	
दशेश	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	१	०	०	१	७
मास	६	९	३	३	९	८	४	८	३	०
दिन	२५	२३	२७	२७	२३	१५	२६	२३	१८	०
घटी	६	१	१२	१२	१	२०	३०	४२	५०	०
पल	५९	२४	३३	३३	२४	५६	४२	१५	१२	०

वृश्चिकांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	
दशेश	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	०	१	२	०	१	१	०	१०
मास	१	५	५	१	५	६	०	१०	९	०
दिन	२८	१७	१७	२८	९	२९	१६	९	२३	०
घटी	३६	२६	२६	३६	४	१८	४४	४६	१	०
पल	१६	३०	३०	१६	१२	९	४०	२	२४	०

वृश्चिकांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	
दशेश	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	११	२	५	८	३	५	०
दिन	६	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	०
घटी	५८	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	०
पल	३७	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	०

वृश्चिकांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	
दशेश	श.	गु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	११	२	५	८	३	५	२	०
दिन	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	६	०
घटी	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	५८	०
पल	३७	३०	४१	१५	५१	२६	२३	३०	३७	०

वृश्चिकांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	
दशेश	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु	मं.	बृ.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	२	०	१	१	०	१	०	०	१०
मास	१	५	६	०	१०	९	१	५	५	०
दिन	२८	५	२९	१६	९	२३	२८	१७	१७	०
घटी	३६	४	२८	४४	४६	१	३६	२६	२६	०
पल	१६	१२	९	४०	२	२४	१६	३०	३०	०

धनुरंशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
दशेश	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
मास	५	१	७	५	४	७	१	५	८	०
दिन	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	२६	१२	०
घटी	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	२४	०	०

धनुरंशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	
दशेश	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	गु.	मं.	यो.
वर्ष	२	१	३	०	१	२	१	१	१	१६
मास	६	५	६	९	५	६	१	६	१	०
दिन	२१	८	९	१८	८	२१	१३	२६	१३	०
घटी	३६	२४	३६	२	२४	३६	१२	०	१२	०

धनुरंशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	
दशेश	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	१	०	०	०	०	०	०	१	९
मास	९	१०	५	९	५	७	१०	७	५	०
दिन	२१	२०	१२	२१	८	१६	२४	१६	८	०
घटी	३६	२४	०	३६	२४	४८	०	४८	२४	०

धनुरंशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
दशेश	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	४	१	१	३	१	२	१	३	१	२१
मास	४	०	१०	४	५	१	५	४	१०	०
दिन	२७	१८	२०	९	१९	६	१९	९	२०	०
घटी	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	३६	२४	०

धनुरंशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	
दशेश	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	५	९	४	३	४	९	५	०	०
दिन	०	१२	१८	६	०	६	१८	१२	१८	०

धनुरंशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०	९
मास	९	५	७	१०	७	५	९	१०	५	०
दिन	२१	८	१६	२४	१६	८	२१	२०	१२	०
घटी	३६	२४	४८	०	४८	२४	३६	२४	०	०

धनुरंशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	१	१	२	१	३	०	०	१६
मास	६	१	७	१	३	५	४	९	५	०
दिन	२१	१३	६	१३	२१	८	९	१८	८	०
घटी	३६	१२	०	१२	३६	२४	३६	०	२४	०

धनुरंशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
दशेश	मं.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	०	१	७
मास	५	८	५	१	७	५	४	७	१	०
दिन	२६	१२	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	०
घटी	२४	०	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	०

धनुरंशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
दशेश	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	१	०	२	०	०	१	०	१०
मास	०	८	७	१०	१	६	१०	७	८	०
दिन	०	१२	६	२४	६	०	२४	६	१२	०

मकरांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	
दशेश	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	३	९	५	११	२	५	०
दिन	७	७	१९	२८	१	२	२९	२४	२	०
घटी	४५	४५	२४	३५	३	२८	४५	४२	२८	०
पल	५३	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	२४	०

मकरांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	
दशेश	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	७	१९	२८	१	२	२५	२३	२	७	०
दिन	२	५	३	९	५	११	२	५	२	०
घटी	४५	२४	३५	३	२८	४५	४२	२८	४५	०
पल	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	५३	०

मकरांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृष	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	
दशेश	बृ.	शु.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	०	१	१	२	०	१	०	०	१०
मास	२	९	१०	०	५	७	०	५	५	०
दिन	३	२६	१७	२१	१९	१	२१	१९	१९	०
घटी	३१	२८	३८	१०	२४	४५	१०	२४	२४	०
पल	४६	१४	४९	३५	४२	५३	३५	४३	४३	०

मकरांशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	
दशेश	मं.	शु.	बु.	चं.	र.	बु.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	१०
मास	६	३	८	८	४	८	३	३	९	०
दिन	२७	२४	२६	२२	२८	२६	२८	२८	२६	०
घटी	३१	२१	४९	३५	१४	४९	३५	३५	२८	०
पल	४६	१०	२५	१७	७	२५	१८	१८	१४	०

मकरांशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कंन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	
दशेश	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	६	१	३	०	१	०	०	१	१	१६
मास	०	८	११	११	८	९	९	१०	३	०
दिन	४	९	१३	८	९	१	१	१७	२४	०
घटी	१४	५२	३	४९	५२	३	३	३८	२१	०
पल	७	५६	३२	३५	५६	३२	३२	४९	११	०

मकरांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	
दशेश	बु.	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	२	०	०	०	०	१	०	१	९
मास	११	२	६	११	५	५	०	८	८	०
दिन	१३	२०	१०	१३	२	२	२१	२६	९	०
घटी	३	२८	३५	३	२८	२८	१०	४९	५२	०
पल	३२	१४	१८	३२	१४	१४	३५	२५	५६	०

मकरांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
दशेश	चं.	सू.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	५	१	२	०	०	२	१	३	२	२१
मास	२	२	२	११	११	५	८	११	२	०
दिन	७	२४	२०	२५	२५	१९	२२	१३	२०	०
घटी	४५	४२	२८	४५	४५	२४	३५	३	२८	०
पल	५३	३१	१४	५३	५३	४३	१७	३२	१४	०

मकरांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	
दशेश	र.	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	२	२	७	४	११	६	२	०
दिन	१५	१०	२४	२४	१	२८	८	१०	२४	०
घटी	५२	३५	४२	४२	४५	१४	४९	३५	४२	०
पल	५६	१८	२१	२१	५३	७	२५	१८	२१	०

मकरांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	यो.
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	२	०	९
मास	११	५	५	०	८	८	११	२	६	०
दिन	१३	२	४	२१	२६	९	१३	२०	१०	०
घटी	३	२८	२८	१०	४९	५२	३	२८	३५	०
पल	३२	१४	१४	३५	२५	५६	३२	१४	१८	०

कुम्भांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	१	०	०	१	१	३	११	६
मास	१	४	११	९	९	११	४	१	८	०
दिन	०	५	३	७	७	३	५	०	२४	०
घटी	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	२१	३४	०
पल	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	४१	४२	०

कुम्भांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	
दशेश	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	१	०	१	७
मास	७	१०	४	४	१०	७	४	९	४	०
दिन	२	३	१	१	३	२	५	३	५	०
घटी	३१	३६	२६	२६	३६	३१	४७	१५	४७	०
पल	४८	५२	४५	४५	५२	४८	०	१०	०	०

कुम्भांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	
दशेश	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु	मं.	यो.
वर्ष	१	०	०	१	०	१	१	१	०	१०
मास	२	५	५	२	१०	११	१	११	१०	०
दिन	१३	२३	२३	१३	३	३	०	३	३	०
घटी	४४	२९	२९	४४	३६	५	१	५८	३६	०
पल	६	३८	३८	६	५२	३३	४२	३३	५२	०

कुम्भांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	
दशेश	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	४	९	५	९	४	५	०
दिन	९	९	२३	१	७	६	७	१	२३	०
घटी	२३	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	०
पल	५२	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	०

वृषांशीय कुम्भदशा ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	
दशेश	श.	बृ.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	४	९	५	९	४	५	२	०
दिन	९	२३	१	३७	६	३७	१	२३	९	०
घटी	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	२३	०
पल	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	२८	५२	०

कुम्भांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	
दशेश	गु.	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	०	१	१	१	०	१	०	०	१०
मास	२	१०	११	१	११	१०	२	५	५	०
दिन	१३	३	३	०	३	३	१३	२३	२३	०
घटी	४४	३६	५८	२१	५८	३६	४४	२९	२९	०
पल	६	५२	३३	४२	३३	५२	६	३८	३८	०

कुम्भांशीय मेषदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	
दशेश	मं.	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	७	४	९	४	७	१०	४	४	१०	०
दिन	२	५	३	५	२	३	१	१	३	०
घटी	३१	४७	१६	४७	३१	३६	२६	२६	३६	०
पल	४८	०	१०	०	४८	५२	४५	४५	५२	०

कुम्भांशीय वृषदशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	
दशेश	शु.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	यो.
वर्ष	३	१	३	१	१	०	०	१	१	१६
मास	१	८	१	४	११	९	९	११	४	०
दिन	०	२४	०	७	३	७	७	३	५	०
घटी	२१	३४	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	०
पल	४१	४२	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	०

कुम्भांशीय मिथुनदशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	
दशेश	बु.	श.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	मं.	शु.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	१	९
मास	११	८	९	१	५	५	१	९	८	०
दिन	२१	२४	३	०	६	६	०	३	२४	०
घटी	१९	३४	१५	२१	८	८	२१	१५	३४	०
पल	३२	४२	१०	४२	४०	४०	४२	१०	४२	०

मीनांशीय कर्कदशा वर्ष २१ में चन्द्रादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
दशेश	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बु.	यो.
वर्ष	५	१	२	३	१	२	०	०	०	२१
मास	१	२	२	१०	८	५	११	११	५	०
दिन	१६	१९	११	२६	१५	९	२१	२१	९	०
घटी	२	३२	९	३०	२०	४	३७	३७	४	०
पल	४७	५	४७	४२	५६	११	४१	४१	११	०

मीनांशीय सिंहदशा वर्ष ५ में सूर्यादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	
दशेश	सू.	बृ.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	११	४	६	२	२	६	२	०
दिन	१४	८	४	२६	२९	२३	२३	२९	१९	०
घटी	१९	२२	५३	३०	१८	४३	४४	८	३२	०
पल	४	२०	१	४२	९	१५	१५	९	५	०

मीनांशीय कन्यादशा वर्ष ९ में बुधादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	
दशेश	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	र.	यो.
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	२	०	९
मास	११	८	८	०	५	५	०	२	६	०
दिन	९	२	२३	१६	०	०	१४	११	८	०
घटी	४	४७	४३	४४	४१	४१	४४	९	२२	०
पल	११	२६	१५	२०	५१	५१	२०	२६	२०	०

मीनांशीय तुलादशा वर्ष १६ में शुक्रादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मलर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	
दशेश	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	यो.
वर्ष	२	१	०	०	०	१	३	०	१	१६
मास	११	३	१७	८	८	१०	१०	११	८	०
दिन	२१	१८	९	२७	२७	९	२६	४	२	०
घटी	३७	५०	४६	५४	५४	४६	३०	५३	४७	०
पल	४१	१४	२	२६	२६	२	४२	१	२६	०

मीनांशीय वृश्चिकदशा वर्ष ७ में भौमादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
दशेश	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	१	०	०	१	७
मास	६	९	३	३	९	८	४	८	३	०
दिन	२५	२३	२७	२७	२३	१५	२६	२३	१८	०
घटी	६	१	१२	१२	१	२०	३०	४३	५०	०
पल	५९	२४	३३	३३	२४	५६	४२	१५	१४	०

मीनांशीय धनुदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
दशेश	बृ.	श.	श.	बृ.	चं.	र.	बु.	शु.	मं.	यो.
वर्ष	१	०	०	१	२	०	१	१	०	१०
मास	१	५	५	१	५	६	०	१०	९	०
दिन	२८	१७	१७	२८	९	२९	१६	९	२३	०
घटी	३६	२६	२३	३६	४	१८	४४	४३	१	०
पल	१६	३०	३०	१६	१३	९	४०	९	२४	०

मीनांशीय मकरदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
दशेश	श.	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	१	२	५	८	३	५	०
दिन	६	६	१७	२१	१३	०	२७	२७	१७	०
घटी	५८	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	०
पल	३७	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	०

मीनांशीय कुम्भदशा वर्ष ४ में शन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	
दशेश	श.	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	यो.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	११	२	५	८	३	५	२	०
दिन	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	६	०
घटी	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	५८	०
पल	३७	३०	४१	१५	५१	२६	२३	३०	३७	०

मीनांशीय मीनदशा वर्ष १० में जीवादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	
दशेश	बृ.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	यो.
वर्ष	१	२	०	१	१	०	१	०	०	१०
मास	१	५	६	०	१०	९	१	५	५	०
दिन	२८	९	२९	१६	९	२३	२८	१७	१७	०
घटी	३६	४	१८	४४	४६	१	३६	२६	२६	०
पल	१६	१३	९	४०	२	२४	१६	३०	३०	०

अन्तर्दशाफल—

अजांशेऽजान्तरे भौमे ज्वरश्च व्रणसम्भवः ।
बुधशुक्रेन्दुजीवेषु वस्त्राभरणमादिशेत् ॥ २ ॥

मेष की दशा में मङ्गल (मेष, वृश्चिक) की अन्तर्दशा आनेपर व्रणजन्य ज्वर, तथा बुध, शुक्र, चन्द्र, गुरु की अन्तर्दशा में वस्त्र, अलङ्कार (शुभ फल) का आदेश करें । शनि की अन्तर्दशा में शत्रुकृत क्षोभ, सूर्य की अन्तर्दशा में महान् भय कहना ॥

शनौ शत्रुभवः क्षोभ आदित्ये तु महद् भयम् ।
वृषांशकेऽन्तरे स्वीये शनौ रोगस्तथा कलिः ॥ ३ ॥
शारीरिकं सुखं विद्यालाभस्तत्र गते गुरौ ।
देशत्यागश्च मरणं ज्वरः शस्त्रक्षतिस्तथा ॥ ४ ॥
वृषभस्वांशके ब्रह्मन् कुजे तत्र गते फलम् ।
वस्त्राभरणलाभश्च स्त्रियो योगः सुखं भवेत् ॥ ५ ॥
शुक्रेन्दुसुतचन्द्रेषु वृषभस्यांशके फलम् ।
नृपाद् भयं पितृमृतिर्मृगादिभ्यो रवौ भयम् ॥ ६ ॥

वृष की दशा में शनि के अन्तर में रोग, कलह, गुरु के अन्तर में शारीरिक सौख्य, विद्यालाभ, भौम की अन्तर्दशा में देशत्याग या मरण, ज्वर, शस्त्र द्वारा प्रहार, शुक्र

बुध, चन्द्र की अन्तर्दशा में वस्त्र, आभूषण की प्राप्ति, स्त्रीलाभ, रवि की अन्तर्दशा में राजभय, पितृमातृनिधन, तथा हिंसक जन्तुओं से भय कहना चाहिए ॥ ३–६ ॥

मुक्तावस्त्रादिसंलाभो मिथुनस्वांशके भृगौ ।
मातापित्रोर्मृत्युभीतिर्ज्वरश्च व्रणसम्भवः ॥ ७ ॥
देशान्तरे प्रयाणं च मिथुनस्वांशके कुजे ।
विद्याद्रव्यादिसंलाभो महाविभवसंभवः ॥ ८ ॥
जनप्रीतिश्च सम्मानं मिथुनस्वांशके गुरौ ।
प्रयाणं च महाव्याधिर्मरणं चार्थनाशनम् ॥ ९ ॥
बन्धुनाशो भवेदेव मिथुनस्वांशके शनौ ।
विद्याम्बरादिलाभः स्यात् सूनुदारसुखं तथा ॥ १० ॥
जनताप्रियतामेति मिथुनस्वांशके बुधे ।

मिथुन की दशा में शुक्र (वृष, तुला) के अन्तर आनेपर मुक्तावस्त्रादिका लाभ, कुज के अन्तर में माता पिता के मरण का भय, व्रणज ज्वर, देशान्तर में यात्रा, गुरु के अन्तर में विद्या द्रव्य आदि का लाभ, महान् ऐश्वर्य जनप्रियता, सम्मान, शनि (मकर कुम्भ) के अन्तर में यात्रा, महारोग, मरण, धननाश, बन्धुनाश, बुध (मिथुन कन्या) के अन्तर में विद्या-वस्त्र का लाभ, पुत्र-स्त्री सुख, तथा जनप्रियता होती है ॥ ७–१० ॥

ऐश्वर्यं धनलाभश्च पुत्रपत्नीसमागमः ॥ ११ ॥
मनःप्रीतिस्तथा मानं कुलीरस्वांशके विधौ ।
नृपाद् भयं शत्रुभयं मृगेभ्यश्च महद् भयम् ॥ १२ ॥
ज्वरव्याधेरपि भयं कुलीरस्वांशके रवौ ।
विद्यापुत्ररत्नबन्धुसौख्यं मानं तथा यशः ॥ १३ ॥
कुलीरस्वांशके शुक्रबुधयोः संस्थितौ भवेत् ।

कर्क की दशा में चन्द्र (कर्क) का अन्तर आवे तो ऐश्वर्य, धनलाभ, पुत्र स्त्री सुख, मानसिक प्रसन्नता तथा सम्मान होता है। उसमें सूर्यान्तर आनेपर राजभय, शत्रुभय, पशुभय, ज्वर, व्याधि का भय, कहना चाहिए। कर्क की दशा में बुध शुक्र (राशि) की भी अन्तर्दशा आनेपर विद्या पुत्र, रत्न, बन्धु का सुख, सम्मान, यश, ये फल होते हैं ॥ ११–१३ ॥

विषशस्त्रमृतिर्घोरा ज्वरदाहसमुद्भवा ।
अपि नानाविधं दुःखं कुलीरस्वांशके कुजे ॥ १४ ॥

विभवस्यातिलाभश्च तथैव च सुखं तनौ ।
महाराजप्रसादश्च कुलीरस्वांशके गुरौ ॥ १५ ॥
वातव्याधिभवं दुःखमहिवृश्चिकदंशजम् ।
नानाक्लेशमवाप्नोति कुलीरस्वांशगे शनौ ॥ १६ ॥

कर्क की दशा में मङ्गल की (कुज राशियों की) अन्तर्दशा आनेपर विष, शस्त्र, ज्वर, दाह, आदियों से भयावह मरण, तथा अनेकविध कष्ट होता है। उसी कर्क की दशा मे गुरु राशियों की अन्तर्दशा आनेपर ऐश्वर्य का लाभ, शारीरिक सौख्य तथा महाराज की कृपा होती है। शनि की (मकर कुम्भ) की अन्तर्दशा आनेपर वातव्याधिजन्य कष्ट, सर्प बिच्छु का दंश, तथा अन्यान्य अनेकविध क्लेश होता है ॥

ज्वरपित्तभवो रोगः शस्त्रक्षतिविसूचिकाः ।
मुखरोगस्य वा वाप्तिर्मृगेन्द्रस्वांशगे कुजे ॥ १७ ॥
लाभो दारसुतादेश्च विद्याभरणवाससाम् ।
मृगेन्द्रस्वांशके शुक्रबुधयोः संस्थितौ द्विज ! ॥ १८ ॥
वृक्षादेः पतनं द्रव्यनाशो भीतिस्तथैव च ।
भवेद्देशपरित्यागो मृगेन्द्रे स्वांशगे विधौ ॥ १९ ॥
महाशत्रुभयं चैव ज्वरश्च व्याधिरेव च ।
अज्ञानं मृत्युभीर्भानौ मृगेन्द्रस्वांशगे सति ॥ २० ॥
धनधान्यमहालाभः प्रसादो द्विजदेवयोः ।
विद्याविवृद्धिर्विपुला, मृगेन्द्रस्वांशगे गुरौ ॥ २१ ॥

सिंहांश की दशा में मङ्गल (मेष वृश्चिक) की अन्तर्दशा आनेपर ज्वर पित्तजन्य रोग, शस्त्र से आघात, विसूचिका (हैजा) या मुखरोग की उत्पत्ति होती है। उसी में शुक्र बुध की अन्तर्दशा आनेपर स्त्री-पुत्र-सौख्य का लाभ, तथा विद्या, वस्त्र, भूषण की प्राप्ति होती है। चन्द्र (कर्क) के अन्तर आनेपर उच्चस्थान या वृक्षादि से पतन, द्रव्यक्षय, भय, तथा देशत्याग होता है। सूर्य के अन्तर में अज्ञान, मरणभय, शत्रुभय, ज्वर व्याधि आदि होते हैं। उसी सिंह की दशा में गुरु (धन मीन) के अन्तर आनेपर धनधान्य समृद्धि, देव द्विज का प्रसाद, विद्या की विपुल वृद्धि, होती है ॥ १७–२१ ॥

प्रयाणं च ज्वरं चैव क्षुद्भयं वैक्लवं तथा ।
व्याधिदुःखमवाप्नोति कन्यायां स्वांशगे शनौ ॥ २२ ॥
नृपप्रसादतो लाभ ऐश्वर्यं बन्धुसम्भवम् ।
सद्विद्याया विवृद्धिश्च कन्यास्वांशगते गुरौ ॥ २३ ॥

कन्या की दशा में मकर कुम्भ (शनि) की अन्तर्दशा आनेपर यात्रा, ज्वर, क्षुद्भय, विकलता, व्याधि, तथा कष्ट होता है। गुरु के अन्तर आनेपर राजप्रसाद से लाभ, बन्धुद्वारा ऐश्वर्य प्राप्ति, तथा सद्विद्या की विवृद्धि होती है ॥ २२–२३ ॥

प्रयाणं च ज्वरश्चैव मसूरी वह्नितो भयम्।
शस्त्राघाताद् भवेन्मृत्युः कन्यास्वांशगते कुजे ॥ २४ ॥
भृत्यपुत्रार्थलाभश्च वस्त्राभरणमेव च।
बुधभार्गवचन्द्राणां कन्यास्वांशगतौ फलम् ॥ २५ ॥
प्रयाणं च ज्वरश्चैव पुत्रहानिश्च विग्रहः।
शस्त्रघाताद् भवेन्मृत्युः कन्यास्वांशगते रवौ ॥ २६ ॥
दारपुत्रार्थसंलाभो लाभो भूषणवाससोः।
सुबुद्धिः सुखवृद्धिश्च तुलास्वांशगते भृगौ ॥ २७ ॥
पितुः क्लेशः कलिर्मित्रैः शिरोरोगो ज्वरस्तथा।
शस्त्रानलभवो घातस्तुलास्वांशगते कुजे ॥ २८ ॥

कन्या की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा आनेपर यात्रा, ज्वर, मसूरी (रोग) तथा अग्नि से भय, तथा शस्त्राघात से मरण कहना चाहिए। कन्या की ही दशा में बुध शुक्र चन्द्र के अन्तर होनेपर भृत्य, पुत्र, अर्थ की प्राप्ति तथा वस्त्र आभूषण का लाभ होता है। रवि के अन्तर में यात्रा, ज्वर, पुत्रहानि, कलह, तथा शस्त्राघात से मृत्यु कहनी चाहिए।

तुला की दशा में भृगु का अन्तर आवे तो स्त्री पुत्र धन का सौख्य, भूषण, वस्त्र का लाभ, सद्बुद्धि, सुखवृद्धि, ये फल होते हैं। मङ्गल के अन्तर आनेपर पितृकष्ट, मित्रों से वैर, शिरोरोग, ज्वर, तथा शस्त्र अग्नि से आघात होता है ॥ २४–२८ ॥

धनरत्नमहालाभो धर्मचेष्टासुखं नृपात्।
सर्वसम्पत्समृद्धिश्च तुलास्वांशगते गुरौ ॥ २९ ॥
प्रयाणं च महाव्याधिः क्षेत्रहानिस्तथैव च।
शत्रुबाधा महद्दुःखं तुलास्वांशगते शनौ ॥ ३० ॥
पुत्रदारार्थसंलाभो बन्धुलाभस्तथैव च।
सौभाग्यं मनसः प्रीतिस्तुलास्वांशगते बुधे ॥ ३१ ॥

तुला राशि की दशा में गुर्वन्तर (गुरु राशियों का अन्तर) आनेपर धन या विविधरत्नों का लाभ, धार्मिक प्रवृत्ति, राजाद्वारा सौख्य, सर्वविध सम्पत्ति की समृद्धि, ये फल होते हैं। उसी में शनि (मकर कुम्भ) के अन्तर आनेपर यात्रा, महाव्याधि, खेत,का नाश, शत्रुकृत बाधा, महाकष्ट, ये फल होते है। तुलाराशि की दशा

में बुधान्तर (मिथुन कन्या का अन्तर) आनेपर पुत्र, स्त्री, धन का लाभ, बन्धु बान्धवों का सुख, सौभाग्योदय तथा मानसिक प्रसन्नता होती है ॥ २९–३१ ॥

व्याधिनाशो महत् सौख्यं नानार्थसुखसम्पदा ।
भृगुसौम्यशशाङ्कानामलिस्वांशगतौ फलम् ॥ ३२ ॥
शत्रुक्षोभो भयं व्याधेरर्थनाशः पितुर्भयम् ।
हिंस्रजीवादपि भयं वृश्चिकस्वांशगे रवौ ॥ ३३ ॥
वातपित्तभयं चैव मसूरीव्याधिरेव च ।
अग्निशस्त्रादितो भीतिर्वृश्चिकस्वांशगे कुजे ॥ ३४ ॥
धनं रत्नं च धान्यं च देवब्राह्मणपूजनम् ।
राजप्रसादतो लाभो वृश्चिकस्वांशगे गुरौ ॥ ३५ ॥
धनबन्धुविनाशश्च व्याकुलत्वं मनोव्यथा ।
शत्रुबाधा महाव्याधिर्वृश्चिकस्वांशगे शनौ ॥ ३६ ॥

वृश्चिक की दशा में शुक्र बुध चन्द्र के अन्तर आनेपर रोगनाश, महासौख्य, अनेक विध सुख सम्पत्तियाँ, आदि सत्फल होते हैं। उसी में रव्यन्तर आनेपर शत्रुक्षोभ, रोगभय, धननाश, पिता को भय तथा हिंसक जन्तुओं का भय होता है। वृश्चिक की दशा में मङ्गल का अन्तर आवे तो वातपित्त भय, मसूरी रोग, अग्नि तथा शस्त्र से भय होता है। गुरु के अन्तर में धन धान्य रत्न की समृद्धि, देव ब्राह्मण की पूजा, तथा राजकृपा से लाभ होता है। शनि (मकर कुम्भ) का अन्तर आनेपर धन, बन्धु का नाश, मानसिक पीड़ा, तथा आकुलता, शत्रुकृत बाधा तथा महारोग होता है ॥ ३२–३६ ॥

अतिदाहो ज्वरः छर्दिर्मुखरोगोऽतिकष्टदः ।
क्लेशः शरीरेऽप्यधिकश्चापस्वांशगते कुजे ॥ ३७ ॥
श्रीविद्ययोस्तु सौभाग्यं शत्रुनाशः सुखं नृणाम् ।
भार्गवेन्दुजचन्द्राणां चापस्वांशगतौ फलम् ॥ ३८ ॥

धन राशि की दशा में भौमान्तर आनेपर अतिदाहप्रद ज्वर, सर्दी, अतिकष्टकर मुखरोग, तथा शारीरिक अनेक कष्ट होते हैं। उसी दशा में शुक्र बुध चन्द्र के अन्तर आनेपर लक्ष्मी तथा विद्या जन्य सौभाग्य, शत्रुक्षय, तथा राजा से सुख प्राप्त होता है ॥ ३७–३८ ॥

जायावित्तविनाशश्च कलहश्च नृपाद् भयम् ।
देशान्तरे च गमनं चापस्वांशगते रवौ ॥ ३९ ॥

दानधर्मतपोलाभो राजपूजनमेव च।
जायार्थयोश्च संलाभः चापस्वांशगते गुरौ ॥ ४० ॥

धन की दशा में रव्यन्तर आनेपर स्त्री वित्त का विनाश, झगड़ा, राजा से भय, तथा देशान्तर की यात्रा होती है। उसी दशा में गुरु के अन्तर आनेपर दान, धर्म, तपस्या की वृद्धि, राजा द्वारा पूजा (सम्मान) स्त्री तथा धन का सौख्य ये सब होते हैं ॥ ३९–४० ॥

द्विजदेवनृपक्रोधो बन्धूनां च विनाशनम्।
स्वदेशस्य परित्यागो मृगस्वांशगते शनौ ॥ ४१ ॥

देवार्चनं तपो ध्यानं राजसम्मानमेव च।
भार्गवज्ञेन्दुजीवानां मृगस्वांशगतौ फलम् ॥ ४२ ॥

शिरोरोगो ज्वरश्चैव करपादगतं क्षतम्।
रक्तपित्तातिसाराश्च, मृगस्वांशगते कुजे ॥ ४३ ॥

बन्धुपुत्रपितॄणां च नाशो ज्वरसमाश्रयः।
नृपशत्रुभयं चैव मृगस्वांशगते शनौ ॥ ४४ ॥

मकर की दशा में शन्यन्तर (मकर, कुम्भ, का अन्तर) आनेपर देवता, ब्राह्मण, राजा, का क्रोध, बन्धुनाश, स्वदेश का परित्याग ये सब होते हैं। उसी दशा में बुध शुक्र गुरु चन्द्र के अन्तर आनेपर देव पूजन, तपस्या, ध्यान, तथा राजा का सम्मान ये सब होते हैं। उसी दशा में भौमान्तर आनेपर शिरावेदना, ज्वर, हाथ पैर में शस्त्राघात, रक्तपित्त, अतिसार रोग, होते हैं। उसी में शन्यन्तर आनेपर पिता बन्धु, पुत्र का विनाश, ज्वरप्रकोप, शत्रु तथा राजा से भय होता है ॥ ४१–४४ ॥

नानाविद्यार्थलाभश्च पुत्रस्त्रीमित्रसम्भवम्।
ऐश्वर्यं धनलाभश्च घटस्वांशगते भृगौ ॥ ४५ ॥

ज्वराग्निचौरशत्रुभ्यो भीतिः स्यादतिदुःखदा।
मनोदुःखसमुद्भूतिर्घटस्वांशगते कुजे ॥ ४६ ॥

दुःखव्याधिहरं चैव देवब्राह्मणपूजनम्।
मनःप्रीतिर्नृपतितो घटस्वांशगते गुरौ ॥ ४७ ॥

त्रिदोषकोपः कलहस्तथा देशपरिभ्रमः।
क्षयव्याधिसमुत्पत्तिर्घटस्वांशगते शनौ ॥ ४८ ॥

पुत्रमित्रधनस्त्रीणां लाभश्चेतःप्रसन्नता ।
सौभाग्यं वस्त्रलाभश्च घटस्वांशगते बुधे ॥ ४९ ॥

कुम्भ की दशा में भृग्वन्तर (वृष, तुला राशि का अन्तर) आनेपर अनेक विद्याओं तथा अर्थ की प्राप्ति, पुत्र, स्त्री, मित्र के द्वारा ऐश्वर्य प्राप्ति तथा धनलाभ, होता है। उसी की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा आनेपर ज्वर अग्नि, शत्रु, तथा चोर से अतिदुःखप्रद भय तथा मानसिक क्लेश होता है। उसी दशा में गुर्वन्तर आनेपर दुःख तथा रोग के नाशक देव-ब्राह्मणों का पूजन, राजा के द्वारा मानसिक प्रसन्नता ये सब होते हैं। उसी दशा में शन्यन्तर आनेपर त्रिदोष-प्रकोप, झगड़ा, देशाटन, तथा क्षयरोगोत्पत्ति होती है। बुधान्तर में पुत्र, मित्र, धन, स्त्री-जन्य सौख्य, मानसिक प्रसन्नता, सौभाग्योदय, तथा वस्त्रलाभ, ये फल होते हैं ॥ ४५–४९ ॥

जायासुखं तथा विद्यालाभो व्याधिविनाशनम् ।
मनःप्रसादो मित्राप्तिरिन्दौ मीनांशगे सति ॥ ५० ॥
बान्धवैः कलहश्चौराद् भीतिश्चेतोऽव्यथा तथा ।
स्थानभ्रंशो विभीतिश्च मीनस्वांशगते रवौ ॥ ५१ ॥
शत्रुनाशश्च विजयो धेनुभूमिसुतागमः ।
रत्नलाभो झषे स्वांशगतयोर्बुधशुक्रयोः ॥ ५२ ॥

मीन की दशा में चन्द्रान्तर आनेपर स्त्रीसुख, विद्यालाभ, रोगक्षय, मानसिक प्रसन्नता तथा मित्रप्राप्ति होती है। उसी में सूर्यान्तर आनेपर बान्धवों के साथ झगड़ा, चौरभय, मनोव्यथा, स्थानभ्रंश तथा भय ये सब होते हैं। उसी दशा में बुध शुक्र के अन्तर के समय शत्रुनाश, विजय, गो, भूमि, पुत्र तथा रत्न का लाभ, ये फल होते हैं ॥ ५०–५२ ॥

पित्तरोगो विवादश्च बन्धुभिः सह सर्वदा ।
शत्रुभ्यश्च भयप्राप्तिर्मीनस्वांशगते कुजे ॥ ५३ ॥
धनधान्यकलत्राणां लाभो राजप्रसन्नता ।
वस्त्राभरणलाभश्च मीनस्वांशगते गुरौ ॥ ५४ ॥
ऐश्वर्यस्य विनाशश्च वैश्यादीनां प्रसङ्गतः ।
देशत्यागोऽपि दारिद्र्यं मीनस्वांशगते शनौ ॥ ५५ ॥

मीन राशि की दशा में मङ्गल की अन्तर्दशा आनेपर पित्तरोग, बन्धुओं के साथ विवाद तथा शत्रुओं से भय होता है। उसी दशा में गुर्वन्तर आनेपर धन, धान्य,

स्त्री का लाभ, राजा की अनुकम्पा, वस्त्र आभूषण का लाभ, ये सब होते हैं। मीन की ही दशा में शन्यन्तर आनेपर वेश्याओं के संसर्ग से ऐश्वर्य का विनाश, देशत्याग तथा दारिद्रय ये सब होते हैं ॥ ५३–५५ ॥

पराशर उवाच—

एवं यथाक्रमेणैव विज्ञेयं स्वांशगे फलम् ।
वामर्क्षेऽप्येवमेव स्यादन्तर्भुक्तिफलं बुधैः ॥ ५६ ॥

दशाफलं निगदितं पुण्यपापकृतं पुरा ।
तत्सर्वं प्राणिभिर्नित्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥ ५७ ॥

सुहृदन्तर्दशा भव्या विरुद्धा शत्रुसम्भवा ।
मध्यमा मध्यखेटस्य दशादीनामयं क्रमः ॥ ५८ ॥

विरुद्धफलदानां तु खेटानां शान्तिमाचरेत् ।

पराशर ने कहा—इस प्रकार कालचक्र दशा के सव्यचक्र में भी अन्तर्दशाफल समझना चाहिए। राशियों की दशा या अन्तर्दशा राशि स्वाम्यनुसार शुभाशुभफल देती है। ये शुभाऽशुभ फल पूर्वजन्म कृत कर्मजन्य होते हैं, जो प्राणी को भोगना पड़ता है। जिन पापग्रहों का फल अशुभ होते हैं वे यदि दशाधीश के मित्र हों तो उसकी अन्तर्दशा शुभद, और शुभग्रह भी दशाधीश के शत्रु हों तो उसकी अन्तर्दशा अशुभप्रद होती है। सम ग्रह की अन्तर्दशा मध्यम फल देनेवाली होती है। विरुद्ध फल देनेवाले ग्रहों की शान्ति करनी चाहिए।

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे कालचक्रदशान्तर्दशाध्यायः समाप्तः ॥

बृहत्पाराशरे शास्त्रे पूर्वार्धोऽयं विशेषतः ।
सविमर्शसुधाव्याख्या-युक्तः पूर्त्तिमगादिति ॥

इति दरभङ्गामण्डलान्तर्गत'नगवास'ग्रामवस्तव्य-मुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाजापरनामधेय-
राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयज्योतिषप्राध्यापकेन श्रीदेवचन्द्रझामैथिलेन
सुसंस्कृत्य परिवर्ध्य च सुसम्पादितमिदं बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् ।
तदिदं तत्कृतसविमर्शसुधाख्यया हिन्दीव्याख्ययाऽपेक्षितो-
दाहृत्या च समलङ्कृतम् ।

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्

(उत्तरभागः)

अथ अष्टकवर्गाध्यायः ॥ ६६ ॥

मैत्रेय उवाच—

भगवन् ! सर्वमाख्यातमनेकाचार्यसम्मतम् ।
खेटभावादिजनितं फलं, तद्गतिसंकरात् ॥ १ ॥
ग्रहाणां तत्फलानां च, निश्चयोऽप्यतिदुस्तरः ।
कलौ विशेषतोऽल्पज्ञजनानां पापिनां कृते ॥ २ ॥
यदल्पमतिविज्ञेयं शास्त्रं तद् ब्रूहि मे त्वतः ।
लोकयात्रापरिज्ञानमायुषो निर्णयं यतः ॥ ३ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन् आपने अनेक आचार्यों के सम्मत ग्रहों तथा भावों के फल कहे । किन्तु ग्रहों के गतिवैविध्य से फलों की संकरता स्वाभाविक है । इसलिए फलों का निश्चय (यही फलादेश सही है, यह कहना) अत्यधिक कठिन है । तत्रापि कलियुग में, अल्पबुद्धि पापियों के लिए यह और भी दुस्तर है । इसलिए अल्पबुद्धि-गम्य जो शास्त्र हो, जिससे लोकयात्रा (सुख-दुःख) का परिज्ञान तथा आयुष्य का निर्णय हो सके, उसे मुझे बतलावें ॥ १-३ ॥

पराशर उवाच—

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन् ! निखिलं तद् ब्रवीमि ते ।
लोकानामुपकाराय शृणु त्वं सुसमाहितः ॥ ४ ॥
लग्नादिव्ययभावान्ता भावाः संज्ञानुरूपतः ।
फलदाः शुभसंदृष्टाः सद्युक्ता वाऽतिशोभनाः ॥ ५ ॥
स्वोच्चादिस्थानगैः खेटैरपि नीचारिभस्थितैः ।
पापैर्दृष्टयुता भावाः कल्याणेतरदायकाः ॥ ६ ॥
एवं सामान्यतः प्रोक्तं होराविद्भिस्तु सूरिभिः ।
मयैतत्सकलं प्रोक्तं पूर्वाचार्यानुवर्त्तिना ॥ ७ ॥
आयुश्च लोकयात्रां च प्रयोजनमपि द्विज !
शास्त्रस्यास्य विनिश्चेतुं वशिष्ठो वा बृहस्पतिः ॥ ८ ॥
न शक्नोति पुनः किं वा मनुजा मन्दबुद्धयः ।
विशेषतः कलियुगे सरलोऽयं न निश्चयः ॥ ९ ॥

पराशर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने अच्छा प्रश्न किया है । लोकोपकार के लिए सब कुछ मैं आपको बतलाता हूँ । आप सावधानतापूर्वक सुनें ।

लग्न से आरम्भ कर व्ययान्त बारहो भाव संज्ञानुरूप (शरीर, धन, साहस मातृ, पुत्र आदि के विचार में) शुभग्रहों से युत दृष्ट होने पर, तत्रापि वे उच्च, स्वभवन आदि स्थानगत हों, तो शुभफलद होते हैं। यदि वे भाव नीच, शत्रुभवन आदि में स्थित पापग्रहों से युत-दृष्ट हों तो अशुभ फलदायक होते हैं। यह सामान्य नियम जातक ग्रन्थों में अभिज्ञ ज्योतिषियों के द्वारा कथित है। मैंने भी पूर्वाचार्य का अनुसरण कर सब कुछ कहा है। आयुष्य, सुख, दुःख का विचार, शास्त्र का प्रयोजन आदि को निश्चित करने में वशिष्ठ या बृहस्पति भी असमर्थ हैं, फिर मन्दबुद्धि वाले मनुष्य की बात ही क्या ? तत्रापि कलियुग में यह निर्णय सरल नहीं है ॥४-९॥

होराशास्त्रं द्विधा प्रोक्तं सामान्यं निश्चयात्मकम् ।
सामान्यांशस्तु सम्प्रोक्तो निश्चयांशोऽथ कथ्यते ॥ १० ॥

सामान्य तथा निश्चयात्मक (विशेष) भेद से होराशास्त्र द्विविध है। सामान्यांश कहा जा चुका है, अब विशेषांश (निश्चयांश) बतलाता हूँ ॥ १० ॥

ज्ञात्वादौ करणं स्थानं, विन्दुरेखात्मकं क्रमात् ।
एवमष्टकवर्गस्य फलं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ११ ॥
तनोश्चन्द्रमसो वापि यथा द्वादशभावजम् ।
शुभाशुभफलं प्रोक्तं तथान्येभ्योऽपि चिन्तयेत् ॥ १२ ॥
सूर्यादीनां सलग्नानामष्टानां सर्वभावजम् ।
अशुभं वा शुभं विज्ञैर्वेद्यमेवमनुक्रमात् ॥ १३ ॥

जिस तरह लग्न या चन्द्रमा से ग्रहों के द्वादश भाव जन्म शुभाशुभ फल कहा गया है वैसे ही अन्य ग्रहों से भी भावों के शुभाशुभ फल होते हैं। लग्न सहित सूर्यादि आठों ग्रहों के सभी भावोत्थ विन्दुरेखात्मक अशुभ, शुभ चिह्न, जिसका क्रमशः करण, स्थान भी संज्ञान्तर है, जानकर अष्टवर्ग का फलादेश करना चाहिए। आशय यह है कि लग्न सहित सूर्यादि आगे के सभी भावोत्थ अशुभ सूचक चिह्न करण को विन्दु से, और शुभसूचक चिन्ह स्थान को रेखा से प्रकट कर वक्ष्यमाण फलादेश करें ॥ ११–१३ ॥

करण तथा रेखा का परिचय—

करणं विन्दुवत्प्रोक्तं स्थानं रेखा तथोच्यते ।
सदसत्फलदं ज्ञेयं स्थानं च करणं बुधैः ॥ १४ ॥

करण की दूसरी संज्ञा बिन्दु और स्थान की रेखा है। स्थान (रेखा) शुभफलद है और करण (विन्दु) अशुभ सूचक है ॥ १४ ॥

अष्टकवर्गीय चक्रन्यास विधि—

रेखा याम्योत्तराः शक्रमिताः पूर्वापरा दश ।
विलिख्य रचयेच्चक्रमगेशामितकोष्ठकम् ॥ १५ ॥

पूर्वापरेषु कोष्ठेषु भावानाद्येषु विन्यसेत् ।
सलग्नखेटान् विलिखेत् तिर्यगष्टसु तेषु वै ॥ १६ ॥
शुभाशुभप्रदं तत्र स्थानं करणमेव वा ।
यथोदितमभिज्ञाय फलं विज्ञस्ततो दिशेत् ॥ १७ ॥

अष्टवर्ग में शुभाशुभ जानने के लिए १४ याम्योत्तर रेखाएँ, तथा १० पूर्वापर रेखाएँ लिखकर ११७ कोष्ठ के एक चक्र की रचना करें। आदिम पूर्वापर कोष्ठों में १२ भावों, तथा उपरितन याम्योत्तर आठ कोष्ठों में लग्न सहित ग्रहों का न्यास करें। उस चक्र में यथोक्त प्रकार से करणों (विन्दुओं), तथा स्थानों (रेखाओं) का न्यास करके जातक का स्थानों (रेखाओं) से शुभफल, करणों (विन्दुओं) से अशुभ फल समझना।

इस प्रकार जिस ग्रह के नीचे जिन जिन भावों में विन्दु पड़े उन-उन भावों में अष्टवर्ग का ग्रह जब जब आवें तब तब अशुभ, शेषभावों में शुभ। जैसे सूर्याष्टकवर्ग में सूर्य के सामने नीचे ३।५।६।१२ भावों में विन्दु पड़ते हैं, अतः जन्मकालिक सूर्य स्थान से गिनकर उपर्युक्त भावों में गतिवश सूर्य जब जब आवें, तब तब अशुभ कारक, अन्य भावों १।२।४।७।८।९।१०।११ में आने पर शुभप्रद होगें ॥ १५–१७ ॥

सूर्य की बिन्दुसंख्या—

तनुस्वायुस्त्रिरिष्फेषु पञ्च कामे सुखेऽर्णवाः ।
अरौ भाग्ये त्रयः पुत्रे षट् करौ खे भवे च भूः ॥ १८ ॥

सूर्य से १।२।८।३।१२ स्थानों में पाँच ग्रह, चतुर्थ तथा सप्तम भाव में ४ ग्रह, षष्ठ तथा नवम भाव में ३ ग्रह, पञ्चम में ६ ग्रह, दशम भाव में दो ग्रह, एकादश में एकग्रह करण (विन्दु) प्रद होते हैं ॥ १८ ॥

सूर्य के बिन्दुप्रद ग्रह—

लग्नेन्दुजीवशुक्रज्ञास्तनौ स्वे मरणेऽपि च ।
रविभौमार्किचन्द्रार्या व्यये, ज्ञेन्दुसितार्यकाः ॥ १९ ॥
सुखे, होरेन्दुशुक्राश्च धर्मेऽर्कार्किकुजा अरौ ।
होराज्ञार्येन्दवः कामे भवे दैत्येन्द्रपूजितः ॥ २० ॥
सहजेऽर्कार्किशुक्रार्यभौमाः खे गुरुभार्गवौ ।
सुतेऽर्कार्कीन्दुलग्नारशुक्राः स्युः करणं रवेः ॥ २१ ॥

सूर्याष्टक वर्ग के प्रथम, द्वितीय, अष्टम भावों में लग्न, चन्द्र, गुरु, शुक्र, बुध, ये पाँच ग्रह, व्ययभाव में सूर्य, भौम, शनि, चन्द्रमा, तथा गुरु ये पाँच ग्रह, चतुर्थ भाव में बुध, चन्द्र, शुक्र तथा गुरु ये चार ग्रह, नवम भाव में लग्न, चन्द्र तथा शुक्र ये तीन ग्रह, षष्ठ भाव में सूर्य, भौम, शनि ये तीन ग्रह, सप्तम भाव में लग्न, बुध,

गुरु, तथा चन्द्र ये चार ग्रह, एकादश भाव में शुक्र मात्र, सहजभाव में सूर्य, शनि, शुक्र, गुरु तथा मंगल ये पाँच ग्रह, दशम भाव में गुरु तथा शुक्र ये दो ग्रह, पञ्चम भाव में सूर्य, शनि, चन्द्र, लग्न, मंगल तथा शुक्र ये छै ग्रह करण (विन्दु) प्रद होते हैं ॥ १९–२१ ॥

सूर्याष्टकवर्गीय विन्दुबोधक चक्र—

	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१		०		०	०	०		०	५
२		०		०	०	०		०	५
३	०		०		०	०	०		५
४		०		०	०	०			४
५	०	०	०			०	०	०	६
६	०		०				०		३
७		०		०	०			०	४
८		०		०	०	०		०	५
९		०				०		०	३
१०					०	०			२
११						०			१
१२	०	०	०		०		०		५

विमर्श—प्रत्येक ग्रह एवं लग्न जन्मकालिक स्थिति से राशि पर शुभाशुभ प्रभाव डालता है। अर्थात् जन्मसमय में सातों ग्रहस्थान तथा लग्नस्थान इन आठों में विशेषता है। इन आठ स्थानों से यदि गोचर फल का विचार किया जाय तो यह फल सूक्ष्म तथा विश्वस्त होगा। इसी दृष्टि से इन अष्टवर्गों का विचार किया जाता है। अष्टवर्ग में प्रत्येक ग्रह अपने-अपने स्थान से जिन-जिन स्थानों में बल प्रदान करता है, इस शुभ-फलदातृत्व को रेखा या विन्दु द्वारा व्यक्त करने का संकेत ग्रन्थों में मिलता है। पराशर ने अपने ग्रन्थ में रेखा द्वारा शुभसूचक स्थानों को व्यक्त किया है। वस्तुतः विन्दु और रेखा में कोई विशेषता नहीं है। किसी ग्रन्थ में शुभफल-सूचक चिह्न विन्दु, किसी में रेखा। जैसे सूर्याष्टवर्ग में जन्मकाल में सूर्य जिस स्थान में बैठा है उस स्थान में तथा उससे द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम तथा एकादश स्थानों में शुभसूचक रेखा ही इस ग्रन्थ में दी गई है। यह रेखाप्रद चक्रों से आगे स्पष्ट हो जायगा।

चन्द्र की विन्दुसंख्या तथा विन्दुप्रद ग्रह—

भाग्यस्वयोश्च षड् वेश्ममृतिहोरासु पञ्च च।
मानदुश्चिक्ययोरेकः सुते वेदा अरिस्त्रियोः ॥ २२ ॥
त्रयो व्ययेऽष्टावाये च शून्यं शीतकरस्य तु।
होरार्कारार्किभृगवोऽङ्गज्ञार्केन्द्वार्किभार्गवाः ॥ २३ ॥

जीवोऽर्कार्कीन्दुलग्नारा होरेन्दुगुरुभास्कराः ।
सितज्ञार्याः कुजतनुमन्दास्ते सितशीतगू ॥ २४ ॥
होरार्कारार्किविज्ञीवाः शनिः खंसकलाः क्रमात् ।

चन्द्राष्टक वर्ग के ९।२ भावों में ६ ग्रह, ४।८।१ भावों में ५ ग्रह, १०।३ भावों में १ ग्रह, पञ्चम भाव में ४ ग्रह, ६।७ भावों में ३ ग्रह, १२ भाव में ८ (सभी) एकादश भाव में कोई भी नहीं, विन्दुप्रद होते हैं ।

प्रथम भाव में लग्न, सूर्य, मङ्गल, शनि, तथा शुक्र ये ५ ग्रह, द्वितीय में लग्न बुध, सू. चं. शनि तथा शुक्र ये ६ ग्रह, तृतीय में गुरु एकमात्र, चतुर्थ में सू. श. चं. लग्न तथा मं. ये ५ ग्रह, पञ्चम में लग्न, चन्द्र, गुरु तथा रवि ये ४ ग्रह, षष्ठभाव में शु. बु. तथा गुरु ये ३ ग्रह, सप्तम में मं. लग्न तथा शनि ये ३ ग्रह, अष्टम में मं. ल. श. शु तथा चन्द्र ये ५ ग्रह, नवम में लग्न, रवि, मङ्गल, शनि, बु. तथा गुरु ये ६ ग्रह, दशम में शनि मात्र, एकादश में कोई भी नहीं, द्वादश में सभी आठो, विन्दुप्रद होते हैं ।

चन्द्राष्टकवर्गीय विन्दुबोधक चक्र—

	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	०		०			०	०	०	५
२	०	०		०		०	०	०	६
३					०				१
४	०	०	०				०	०	५
५	०	०			०			०	४
६				०	०	०			३
७			०				०	०	३
८		०	०			०	०	०	५
९	०		०	०	०		०	०	६
१०							०		१
११									शू.
१२	०	०	०	०	०	०	०	०	८

इस प्रकार चक्र से यह स्पष्ट है कि जन्मसमय सूर्य जहां हैं, वहां से १।२।४।५। ९।१२। इन भावों में चन्द्रमा जब-जब आयेंगे तब तब अशुभफल, शेष भावों में शुभफल देंगे। इसी तरह सभी ग्रह एवं लग्न से भी शुभाशुभ गोचरफल समझना चाहिए ॥ २२–२४ ॥

मङ्गल की विन्दुसंख्या तथा विन्दुप्रद ग्रह—

व्ययवेश्मसुतस्त्रीषु षट् सप्त धनधर्मयोः ॥ २५ ॥
होरामृत्य्वोः शरा वेदा विक्रमे खे त्रयः क्षते ।
द्वौ, भवे शून्यमेवं स्यात् करणं भूमिजस्य तु ॥ २६ ॥

कुजस्यार्केन्दुविज्जीवसिता लग्नशनी च तु ।
सितारगुरुमन्दाः स्युर्धर्मोक्तेषु कुजं विना ॥ २७ ॥
चन्द्रारगुरुशुक्रार्किलग्नानि कुजभास्करी ।
ज्ञेन्द्वर्कसितलग्नार्या एषु शुक्रं विना ततः ॥ २८ ॥
विना शनिं सप्त धर्मे, सितेन्दुज्ञा वियत्ततः ।
अर्कार्किज्ञेन्दुलग्नाराः करणं प्रोच्यते क्रमात् ॥ २९ ॥

भौमाष्टक वर्ग के १।२।४।५।७ भावों में ६ ग्रह, २।९ भावों में ७ ग्रह, १।८ भावों में ५ ग्रह, तृतीय भाव में ४ ग्रह, दशम में ३ ग्रह, षष्ठ में २ ग्रह, तथा एकादश में कोई ग्रह नहीं, विन्दुप्रद होते हैं।

प्रथम भाव में रवि, चन्द्र. बु. गु. शु. ये ५ ग्रह, द्वितीयभाव में लग्न तथा शनि युक्त पूर्वोक्त सूर्यादि पञ्चग्रह अर्थात् सू. च. बु. गु. शु. ल. श. ये ७ ग्रह, तृतीय भाव में शु. मं. गु. श. ये ४ ग्रह चतुर्थ भाव में भौमातिरिक्त नवम भावोक्त सभी अर्थात् सू. चं. बु. गु. शु. तथा लग्न ये ६, पञ्चम में चन्द्र. मं. गु. शु. श. ल. ये ६, षष्ठ भाव में मं. श. ये २, सप्तम भाव में बु. चं. सू. शु. ल. तथा गु. ये ६, अष्टम भाव में बुध, च. सू. ल. गु. ये ५, नवम भाव में शन्यतिरिक्त सभी सू. च. मं. बु. गु. शु. तथा लग्न ये ७, दशम भाव में शु. च. बु. ये ३, एकादश में कोई नहीं, द्वादश में रवि शनि, बुध, चन्द्र, लग्न तथा मङ्गल ये सभी ६ विन्दुप्रद होते हैं। अर्थात् जन्मकुण्डलीस्थ सूर्य स्थान से १।२।४।७।८।९।१२ इन भावों पर जब मङ्गल गतिवश आयेंगे तब अशुभ, शेष स्थानों में शुभप्रद होंगे ॥ २५–२९॥

भौमाष्टकवर्गीय बिन्दुबोधक चक्र—

	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	०	०		०	०	०			५
२	०	०		०	०	०	०	०	७
३			०		०	०	०		४
४	०	०		०	०	०		०	६
५		०	०		०	०	०	०	६
६			०				०		२
७	०	०		०	०	०		०	६
८	०	०		०	०			०	५
९	०	०	०	०	०	०		०	७
१०		०		०		०			३
११									शू.
१२	०	०	०	०			०	०	६

बुध की विन्दु संख्या तथा बिन्दुप्रद ग्रह—

तनुस्वगृहकर्मारिधर्मेष्वग्निर्मृतौ करौ ।
भ्रातृस्त्रियो रसा लाभे शून्यं पुत्रे व्यये शराः ॥ ३० ॥
बुधस्यार्केन्दुगुरवो गुरुसूर्यबुधाः क्रमात् ।
लग्नार्काशार्किचन्द्रार्या ज्ञार्कार्या हि बुधस्य तु ॥ ३१ ॥
जीवारेन्द्वार्किलग्नानि शुक्रमन्दधरासुताः ।
ज्ञेन्दुलग्नार्कशुक्रार्या ज्ञार्कौ जीवेन्दुलग्नकाः ॥ ३२ ॥
अर्कार्यशुक्राः शून्यं च होरेन्द्वारार्किभार्गवाः ।

बुधाष्टकवर्ग के १।२।४।१०।६।९ इन भावों में ३ ग्रह, अष्टम में २, तृतीय, तथा सप्तम में ६, एकादश में शून्य, पञ्चम तथा व्यय भावों में ५ ग्रह बिन्दुप्रद होते हैं। बुध के प्रथम भाव में सू. च. गु. ये ३, द्वितीय भाव में गु. र. बु. ये ३, तृतीय भाव में लग्न सू. मं. श. च. तथा गुरु ये ६, चतुर्थ भाव में बुध, सूर्य, गु. ये ३, पञ्चम भाव में गु. मं. चं. श. तथा ल. ये ५, षष्ठ में शुक्र शनि. भौम. ये ३, सप्तम में बुध, चन्द्र, लग्न, सूर्य, शुक्र, गुरु ये ६, अष्टम में बुध, सूर्य, ये २, नवम में गुरु. चन्द्र. लग्न. ये ३, दशम में सू. गु. शु. ये ३, एकादश में कोई भी नहीं, द्वादश में ल. चं. मं. श. शु. ये ५, विन्दुप्रद होते हैं। अर्थात् जन्मकुण्डलीस्थ सूर्य स्थान से १।२।३।४।७।८।१० में जब २ चारवश बुध आयेंगे तब तब अशुभ शेष स्थानों में शुभकारक होंगे ॥ ३०–३२ ॥

बुधाष्टकवर्गीय बिन्दुबोधक चक्र

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	०	०			०				३
२	०			०	०				३
३	०	०	०		०		०	०	६
४	०			०	०				३
५		०	०		०		०	०	५
६			०			०	०		३
७	०	०		०	०	०		०	६
८	०			०					२
९		०			०			०	३
१०	०				०	०			३
११									शू.
१२		०	०			०	०	०	५

गुरु की बिन्दुसंख्या तथा बिन्दुप्रद ग्रह—

रूपं धनायययोः खे द्वौ, व्यये सप्त, क्षतेऽर्णवाः ॥ ३३ ॥

मृतिविक्रमयोः पञ्च गुरोः शेषेषु वह्नयः ।
लग्ने शुक्रेन्दुमन्दाः स्वे आये मन्दश्च, विक्रमे ॥ ३४ ॥
लग्नारेन्दुज्ञभृगवः सुतेऽर्कार्यकुजा, गृहे ।
शुक्रमन्देन्दवो, द्यूने बुधशुक्रशनैश्चराः ॥ ३५ ॥
जीवारार्केन्दवः शत्रौ सर्वे मन्दं विना व्यये ।
कर्मणीन्दुशनी, धर्मे मन्दारगुरवो, मृतौ ॥ ३६ ॥
लग्नार्किसितचन्द्रज्ञाः करणं च गुरोरिदम् ।

गुरु के अष्टवर्ग में धन, तथा आय भाव में १ ग्रह, दशम में २ ग्रह, द्वादश में ७ ग्रह, षष्ठ में ४ ग्रह, अष्टम तथा तृतीय में ५ ग्रह शेष ५ भावों (१।४।५।७।९) में ३ ग्रह बिन्दुप्रद होते हैं ।

प्रथम भाव में शु. च. श. ये ३ ग्रह, द्वितीय तथा एकादश में शनि मात्र, तृतीय में लग्न, भौम, च. बु. शु. ये ५ ग्रह, पञ्चम में सू. गु, मं. ये ३ ग्रह, चतुर्थ में शु. श. च. ये ३ ग्रह, सप्तम में बु. शु. श. ये ३ ग्रह, षष्ठ में गु. मं. सू. च. ये ४, ग्रह, द्वादश में शन्यतिरिक्त सभी (सू. च. मं. बु. गु. शु. ल) ये ७, ग्रह, नवम भाव में श. मं. गुरु ये ३ ग्रह, दशम में च. श. ये २ ग्रह, अष्टम में ल. श. शु. च. तथा बु. ये ५ ग्रह, बिन्दुप्रद होते हैं ॥ ३३–३६ ॥

जीवाष्टकवर्गीय बिन्दुबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१		०				०	०		३
२							०		१
३		०	०	०		०		०	५
४		०				०	०		३
५	०		०		०				३
६	०	०	०		०				४
७				०		०	०		३
८		०		०		०	०	०	५
९			०		०		०		३
१०		०					०		२
११							०		१
१२	०	०	०	०	०	०		०	७

शुक्र की विन्दुसंख्या तथा विन्दुप्रदग्रह—

सुतायुर्विक्रमेष्वक्षि तनुस्वव्ययखेष्विषुः ॥ ३७ ॥
अष्टौ स्त्रियामरौ षड् भूर्धर्मे मित्रेऽक्षि खं भवे ।
लग्ने स्वेऽर्कारविज्जीवमन्दाः सर्वे च कामभे ॥ ३८ ॥

अर्कार्यौ विक्रमस्थाने सुतेऽर्कारौ शुभे रविः ।
सुखेऽर्कबुधजीवाः स्युर्भौमज्ञौ मृतिभे द्विज ! ॥ ३९ ॥
शुक्रार्केन्द्वार्किलग्नार्याः शत्रौ शून्यं भवे व्यये ।
होरार्किबुधशुक्रार्यास्तन्वारज्ञेन्द्विनाश्च खे ॥ ४० ॥

शुक्राष्टकवर्ग में पुत्र, आयु, तथा तृतीय भावों में २ ग्रह, लग्न, धन, व्यय तथा दशम भावों में ५ ग्रह, सप्तम में ८ ग्रह, षष्ठ में ६, नवम में १, चतुर्थ में ३ ग्रह तथा एकादश में कोई भी नहीं, विन्दुप्रद होते हैं।

शुक्र के प्रथम तथा द्वितीय भावों में सू. मं. बु. गु. शनि ये ५ ग्रह, सप्तम में सभी ग्रह, तृतीय में सू. गु. ये २ ग्रह, पञ्चम में सू. मं. ये २ ग्रह, नवम में सूर्यमात्र, चतुर्थ में सू. बु. गु. ये ३ ग्रह, अष्टम में भौम तथा बुध ये २ ग्रह, षष्ठ में शु. सू. चं. श. ल. गु. ये ६ ग्रह, एकादश में कोई नहीं, द्वादश में लग्न, शनि, बु. शु. गु. ये ५ ग्रह, और दशम भाव में लग्न, मं. बु. च. सू. ये ५ विन्दु प्रद होते हैं ॥ ३७–४० ॥

शुक्राष्टकवर्गीय बिन्दुबोधक चक्र—

गृ.	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	०		०	०	०		०		५
२	०		०	०	०		०		५
३	०				०				२
४	०			०	०				३
५	०		०						२
६	०	०			०	०	०	०	६
७	०	०	०	०	०	०	०	०	८
८			०	०					२
९	०								१
१०	०	०	०	०				०	५
११									०
१२				०	०	०	०	०	५

शनि की विन्दुसंख्या तथा बिन्दुप्रद ग्रह—

स्वस्त्रीधर्मेषु सप्ताङ्कं मृतिहोरागृहेषु च ।
आज्ञाभ्रातृव्यये वेदा रूपं शत्रौ सुते शराः ॥ ४१ ॥
आये शून्यं शनेरेवं करणं प्रोच्यते बुधैः ।
गृहे तनौ च लग्नार्कौ स्वस्त्रियोश्च रविं विना ॥ ४२ ॥
हित्वा धर्मे बुधं माने लग्नाररविचन्द्रजान् ।
ततो भ्रातरि जीवार्कबुधशुक्राः क्षते रविः ॥ ४३ ॥

व्यये लग्नेन्दुमन्दार्काः सितार्केन्दुज्ञलग्नकाः ।
सुते, मृतौ बुधार्कौ च हित्वाऽऽये खं शनेर्बिंदः ॥ ४४ ॥

शन्यष्टकवर्ग के द्वितीय सप्तम नवम में ७ ग्रह, अष्टम लग्न तथा चतुर्थ में ६ ग्रह, दशम, तृतीय तथा व्यय भावों में ४ ग्रह, षष्ठ भाव में १ मात्र, पञ्चम में ५ ग्रह, एकादश में कोई भी नहीं, बिन्दुप्रद ग्रह होते हैं ।

शन्यष्टक वर्ग के ४।१ भावों में लग्न सूर्य के अतिरिक्त सभी ६ ग्रह, २।७ में सूर्यातिरिक्त सभी ७, नवम में बुधातिरिक्त सभी ग्रह, दशम में लग्न, मं. सू. बु. को छोड़ अन्य सभी, अर्थात् (चन्द्र गुरु शु. शनि) बिन्दुप्रद होते हैं । तृतीय भाव में गु. सू. बु. शु. ये ४ ग्रह, षष्ठ में केवल सूर्यमात्र, द्वादश में लग्न, चन्द्र, श. रवि ये ४ ग्रह, पञ्चम में शु. सू. चं. बु. लग्न ये ५, अष्टम में बुध सूर्य के अतिरिक्त सभी ६, बिन्दुप्रद होते हैं । एकादश में कोई भी बिन्दुप्रद नहीं होते, प्रत्युत सभी रेखा प्रद ही हैं ॥ ४१–४४ ॥

शन्यष्टकवर्गीय बिन्दुबोधकचक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१		०	०	०	०	०	०		६
२		०	०	०	०	०	०	०	७
३	०			०	०	०			४
४		०	०	०	०	०	०		६
५	०	०		०		०		०	५
६	०								१
७		०	०	०	०	०	०	०	७
८		०	०		०	०	०	०	६
९	०	०	०		०	०	०	०	७
१०		०			०	०	०		४
११									०
१२	०	०					०	०	४

वराह मिहिर ने अपने बृहज्जातक में ८ श्लोकों में अष्टवर्गाङ्क कहा है । पराशर ने भी बिन्दुप्रद ग्रहों को सभी अष्टवर्गों में कहने के बाद प्रत्येक चक्र के बिन्दु रहित स्थान रेखाप्रद होंगे, ऐसा 'उक्तान्ये स्थानदातारः' कहकर कह ही दिया है । फिर भी सुखबोधार्थ रेखाप्रद ग्रहों को भी उन्होंने आगे कहा है ।

सूर्याष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

उक्ताऽन्ये स्थानदातार इति स्थानं विदुर्बुधाः ।
अथ स्थानग्रहान् वक्ष्ये सुखबोधाय सूरिणाम् ॥ ४५ ॥

स्वायुस्तनुषु मन्दारसूर्या जीवबुधौ सुते ।
विक्रमे ज्ञेन्दुलग्नानि लग्नार्कार्किकुजा गृहे ॥ ४६ ॥
ते च ज्ञेन्दू खभे चान्ये सर्वे शुक्रं विना, व्यये ।
लग्नशुक्रबुधाः, शत्रौ ते च जीवसुधाकरौ ॥ ४७ ॥
द्यूनेऽर्कारार्किशुक्राश्च धर्मेऽर्कारार्किज्ञेज्यकाः ।

सभी ग्रहों के अष्टकवर्गीयचक्रों में ग्रहगण बिन्दुप्रद भावों के अतिरिक्त भावों में रेखा (शुभ) प्रद होते हैं । रेखा का ही पर्याय स्थान कहा गया है । अतः स्थानग्रहों (रेखाप्रद ग्रहों) को विद्वानों के सुखबोध के लिए बतलाता हूँ ।

सूर्याष्टकवर्ग के द्वितीय, अष्टम, प्रथम भावों में शनि, मंगल, सूर्य, रेखा (शुभ) प्रद होते हैं । पञ्चम भाव में गुरु, बुध, तृतीय में बुध, चन्द्र, लग्न, चतुर्थ में लग्न, सूर्य, शनि, मंगल, दशम में लग्न, सूर्य, शनि, मंगल तथा बुध, चन्द्र, एकादश में शुक्रातिरिक्त सभी, द्वादश में लग्न, शुक्र, बुध, षष्ठ में लग्न, शुक्र, बुध तथा गुरु चन्द्र, सप्तम में सूर्य, भौम, शनि, तथा शुक्र, एवं धर्मभाव में सूर्य, मंगल, शनि, बुध गुरु, ये रेखा (शुभ) प्रद होते हैं ॥ ४५–४७ ॥

सूर्याष्टवर्गीय रेखाबोधकचक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	।		।				।		३
२	।		।				।		३
३		।		।				।	३
४	।		।				।	।	४
५				।	।				२
६		।		।	।	।		।	५
७	।		।			।	।		४
८	।		।				।		३
९	।		।	।	।		।		५
१०	।	।	।	।			।	।	६
११	।	।	।	।	।		।	।	७
१२				।		।		।	३

चन्द्राष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

ज्ञेन्दुजीवाः, कुजार्यौ ज्ञार्केन्द्वारार्कितनूशनाः ॥ ४८ ॥
जीवशुक्रबुधा भौमबुधशुक्रशनैश्चराः ।
रवीन्द्वारार्किलग्नानि, रवीन्द्वार्यज्ञभार्गवाः ॥ ४९ ॥

अर्कज्ञजीवाः शुक्रेन्दू, ते च तौ लग्नभूसुतौ ।
सर्वे, शून्यं, क्रमात् प्रोक्तं स्थानं शीतकरस्य च ॥ ५० ॥

प्रथम भाव में बुध, चन्द्र, गुरु, द्वितीय में मंगल तथा गुरु, तृतीय में बुध, सूर्य, चन्द्र, मंगल, शनि, लग्न तथा शुक्र, चतुर्थ भाव में गुरु शुक्र तथा बुध, पञ्चम में मंगल, बुध, शुक्र तथा शनि, षष्ठ भाव में सूर्य, चन्द्र, मंगल, शनि, तथा लग्न, सप्तम में सूर्य, चन्द्र, गुरु, बुध, शुक्र, अष्टम में सूर्य, बुध, गुरु, नवम में शुक्र, चन्द्र, दशम भाव में सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, तथा लग्न और मंगल, एकादश में सभी, तथा द्वादशभाव में कोई भी नहीं, रेखाप्रद होते हैं ॥ ४८–५० ॥

चन्द्राष्टकवर्गीय रेखाबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१		।		।	।				३
२			।		।				२
३	।	।	।	।		।	।	।	७
४				।	।	।			३
५			।	।		।	।		४
६	।	।	।				।	।	५
७	।	।		।	।	।			५
८	।			।	।				३
९		।				।			२
१०	।	।	।	।	।	।		।	७
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२									०

भौमाष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

लग्नमन्दकुजा भौमो होराज्ञेन्दुदिनाधिपाः ।
मन्दारौ ज्ञरवी ज्ञेन्दु-जीवार्कतनुभार्गवाः ॥ ५१ ॥
मन्दारौ तौ सितश्चार्किः कुजार्कार्यार्किलग्नकाः ।
सर्वे, गुरुसितौ स्थानं भौमस्यैवं त्रिदुर्बुधाः ॥ ५२ ॥

भौमाष्टक वर्ग के प्रथम भाव में लग्न, शनि, मंगल, द्वितीय में मंगल मात्र, तृतीय में लग्न, बुध, चन्द्र, सूर्य, चतुर्थ में शनि, मंगल, पञ्चम में बुध, सूर्य, षष्ठ में बुध, चन्द्र, गुरु, सूर्य, लग्न तथा शुक्र, सप्तम में शनि मंगल, अष्टम में शनि, मंगल तथा शुक्र नवम में शनिमात्र, दशम में मंगल, सूर्य, गुरु, शनि तथा लग्न, एकादश में सभी, द्वादश में गुरु शुक्र, ये सब रेखाप्रद होते हैं ॥ ५१-५२ ॥

भौमाष्टकवर्गीय रेखाबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१			।				।		३
२			।						१
३	।	।		।				।	४
४			।				।		२
५	।			।					२
६	।	।		।	।	।		।	६
७			।				।		२
८			।			।	।		३
९							।		१
१०	।		।		।		।	।	५
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२					।	।			२

बुधाष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

लग्नमन्दारशुक्रज्ञा लग्नारेन्दुसितार्कजाः ।
शुक्रज्ञौ लग्नचन्द्रार्किसितारा ज्ञार्कभार्गवाः ॥ ५३ ॥

जीवज्ञार्केन्दुलग्नानि, भूमिपुत्रशनैश्चरौ ।
तौ च लग्नेन्दुशुक्रार्या मन्दारार्कज्ञभार्गवाः ॥ ५४ ॥

लग्नमन्दारविच्चन्द्राः सर्वे, जीवज्ञभास्कराः ।

बुधाष्टक वर्ग के—प्रथम भाव में लग्न, शनि, मङ्गल, शुक्र, बुध, द्वितीय में लग्न, भौम, चन्द्र, शुक्र तथा शनि, तृतीय भाव में शुक्र बुध, चतुर्थ भाव में लग्न, चन्द्र, शनि, शुक्र तथा भौम, पञ्चम में बुध, सूर्य, शुक्र, षष्ठ भाव में गुरु, बुध, सूर्य, चन्द्र तथा लग्न, सप्तम में मङ्गल, शनि, अष्टम में मङ्गल, शनि, लग्न, चन्द्र, शुक्र, गुरु, नवम में शनि, मङ्गल, सूर्य, बुध, शुक्र, दशम भाव में लग्न, शनि, मङ्गल, बुध तथा चं. एकादश में सभी ग्रह, द्वादश में गुरु बुध सूर्य रेखा (शुभ) प्रद होते हैं ॥

बुधाष्टकवर्गीय रेखाबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१			।	।		।	।	।	५
२		।	।			।	।	।	५
३				।		।			२
४		।	।			।	।	।	५
५	।			।		।			३
६	।	।		।	।			।	५
७			।				।		२
८		।	।		।	।	।	।	६
९	।		।	।		।	।		५
१०		।	।	।			।	।	५
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२	।			।	।				३

जीवाष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

गुरोर्लग्ने सुखे जीवलग्नारार्कबुधा धने ॥ ५५ ॥
चन्द्रशुक्रौ च दुश्चिक्ये मन्दार्यार्काः शनिर्व्यये ।
सुते शुक्रेन्दुलग्नज्ञमन्दाश्चन्द्रं विना त्वरौ ॥ ५६ ॥
लग्नारार्याऽर्केन्दवोऽस्ते मृतौ जीवार्कभूसुताः ।
धर्मे शुक्रार्कलग्नेन्दुबुधा मन्दं विनाऽऽयभे ॥ ५७ ॥
माने गुरुबुधारार्कशुक्रहोरास्तथा विदुः ।

गुर्वष्टकवर्ग के प्रथम तथा चतुर्थ भावों में गुरु, लग्न, मङ्गल, सूर्य तथा बुध, द्वितीय भाव में गुरु, लग्न, मङ्गल, सूर्य, बुध तथा चन्द्र, शुक्र, तृतीय भाव में शनि, गुरु, सूर्य, द्वादश में शनिमात्र, पञ्चम में शुक्र, चन्द्र, लग्न, बुध, तथा शनि, षष्ठ भाव में चन्द्रातिरिक्त पञ्चमोक्त (शुक्र, लग्न, बुध, शनि), सप्तम भाव में लग्न, मङ्गल, गुरु, सूर्य, तथा चन्द्र, अष्टम में गुरु, सूर्य, मङ्गल, नवम में शुक्र सूर्य, लग्न, चन्द्र, बुध, एकादश में शन्यतिरिक्त सभी, दशम में गुरु, बुध, मङ्गल, सूर्य, शुक्र, तथा लग्न, रेखा (शुभ) प्रद होते हैं ॥ ५५–५७ ॥

गुर्वष्टकवर्गीय रेखाप्रद चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	।		।	।	।			।	५
२	।	।	।	।	।	।		।	७
३	।				।		।		३
४	।		।	।	।			।	५
५		।		।		।	।	।	५
६				।		।	।	।	४
७	।	।	।		।			।	५
८	।		।		।				३
९	।	।		।		।		।	५
१०	।		।	।	।	।		।	६
११	।	।	।	।	।	।		।	७
१२							।		१

शुक्राष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

लग्नशुक्रेन्दवस्ते ते ज्ञार्क्यारास्ते ज्ञवर्जिताः ॥ ५८ ॥
सुतऽे लग्नशशिजशशाङ्कार्यार्किभार्गवाः ।
ज्ञारौ शून्यं सितार्केन्दुगुरुलग्नशनैश्चराः ॥ ५९ ॥
सर्वे रविं विना, शुक्रगुरुमन्दाश्च मानभे ।
सर्वे कुजेन्दुरवयः क्रमाद् भृगुसुतस्य च ॥ ६० ॥

शुक्राष्टक वर्ग के—प्रथम भाव में लग्न, शुक्र चन्द्रमा, द्वितीय भाव में वे (लग्न, शुक्र, चन्द्र,) ही, तृतीय भाव में लग्न, शुक्र, चन्द्र, तथा बुध, शनि, मङ्गल, चतुर्थ में बुधातिरिक्त पूर्वोक्त सभी (लग्न. शु. च, श. मं.), पञ्चम भाव में लग्न, बुध, चन्द्र, गुरु, शनि, शुक्र, षष्ठ भाव में बुध, मङ्गल, २ मात्र, सप्तम में शून्य (कोई नहीं) अष्टम भाव में शुक्र, सूर्य, चन्द्र, गुरु, लग्न, शनि, नवम भाव में सूर्यातिरिक्त सभी, दशम में शुक्र, गुरु, शनि, एकादश में सभी, द्वादश में मङ्गल, चन्द्र, सूर्य ये सब रेखाप्रद होते हैं ॥ ५८–६० ॥

शुक्राष्टकवर्गीय रेखाबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१		।				।		।	३
२		।				।		।	३
३		।	।	।		।	।	।	६
४			।			।	।	।	५
५		।		।	।	।	।	।	६
६			।	।					२
७									०
८	।	।			।	।	।	।	६
९		।	।	।	।	।	।	।	७
१०					।	।	।		३
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२	।	।	।						३

शन्यष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

शने रवितनू सूर्यो लग्नेन्दुकुजसूर्यजाः ।
लग्नार्कौ जीवमन्दाराः सर्वे सूर्यं विना क्षते ॥ ६१ ॥
अर्कोऽर्कज्ञौ बुधोऽर्कारतनुज्ञाः सकलास्ततः ।
कुजज्ञगुरुशुक्राश्च क्रमात् स्थानमिदं विदुः ॥ ६२ ॥

शन्यष्टक वर्ग के—प्रथम भाव में सूर्य, लग्न, द्वितीय भाव में सूर्यमात्र, तृतीय में लग्न, चन्द्र, मङ्गल, तथा शनि, चतुर्थ में लग्न, सूर्य, पञ्चम में—गुरु, शनि, तथा मङ्गल, षष्ठ में—सूर्यातिरिक्त सभी, सप्तम में—सूर्यमात्र, अष्टम में—सूर्य, बुध, नवम में—बुधमात्र, दशम भाव में—सूर्य, मङ्गल, लग्न, बुध, एकादश में—सभी, द्वादश भाव में—मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, ये सब रेखाप्रद होते हैं ॥ ६१–६२ ॥

शन्यष्टकवर्गीय-रेखाबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	।							।	२
२	।								१
३		।	।				।	।	४
४	।							।	२
५			।		।		।		३
६		।	।	।	।	।	।	।	७
७	।								१
८	।			।					२
९				।					२
१०	।		।	।				।	४
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२			।	।	।	।			४

लग्न की विन्दुसंख्या तथा विन्दुप्रद ग्रह—

तनौ तुर्ये च वह्निः स्याद् दुश्चिक्ये द्वौ धने शराः ।
बुद्धिमृत्यंकरिष्फेषु षट् खेशक्षतराशिषु ॥ ६३ ॥
रूपं स्त्रियां गुरुं त्यक्त्वा लग्नस्य करणं त्विदम् ।
होरासूर्येन्दवो लग्ने लग्नारेन्द्विनसूर्यजाः ॥ ६४ ॥
गुरुज्ञौ लग्नचन्द्रारा ल. सू. चं. मं. बु. सौरयः ।
क्षते शुक्रस्तथा चैकः कामे सर्वे गुरुं विना ॥ ६५ ॥
मृतौ भृगुबुधौ त्यक्त्वा धर्मे गुरुसितौ विना ।
कर्मण्याये तथा शुक्रो व्यये सूर्येन्दुवर्जिताः ॥ ६६ ॥

लग्न से प्रथम तथा चतुर्थ भाव में ३ ग्रह, तृतीय भाव में २ ग्रह, धनभाव में ५ ग्रह, पञ्चम, अष्टम, नवम तथा द्वादश भावों में ६ ग्रह, दशम, एकादश, तथा षष्ठ भावों में एक मात्र, सप्तम में गुरु के अतिरिक्त सभी ग्रह विन्दुप्रद होते हैं ।

यथा प्रथमभाव में लग्न, सूर्य तथा चन्द्र, द्वितीय भाव में लग्न, भौम, चन्द्र, सूर्य, तथा शनि, तृतीय भाव में गुरु, तथा बुध, चतुर्थ में—लग्न, चन्द्र तथा मङ्गल, पञ्चम में लग्न, सू. चं. मं. बु. तथा शनि, षष्ठ भाव में शुक्रमात्र, सप्तम में गुरु के अतिरिक्त सभी, अष्टम में बुध-शुक्र के अतिरिक्त सभी, नवम भाव में—गुरु, शुक्र के अतिरिक्त सभी, दशम तथा एकादश में शुक्रमात्र, द्वादश सूर्य चन्द्र के अतिरिक्त सभी विन्दुप्रद होते हैं ॥ ६३–६६ ॥

लग्नाष्टकवर्गीय विन्दुबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१	०	०						०	३
२	०	०	०				०	०	५
३				०	०				२
४		०	०					०	३
५	०	०	०	०			०	०	६
६						०			१
७	०	०	०	०		०	०	०	७
८	०	०	०		०		०	०	६
९	०	०	०	०			०	०	६
१०						०			१
११						०			१
१२			०	०	०	०	०	०	६

लग्नाष्टकवर्गीय रेखाप्रद ग्रह—

लग्नस्येदं तु सम्प्रोक्तं करणं द्विजपुङ्गव !
अथ स्थानं प्रवक्ष्यामि लग्नस्य द्विजपुङ्गव ! ॥ ६७ ॥
आर्किज्ञशुक्रगुर्वारा: सौम्यदेवेज्यभार्गवाः ।
हित्वा सौम्यगुरू शेषाः सूज्ञेज्यभृगुसूर्यजाः ॥ ६८ ॥
तथा जीवभृगू बुद्धौ, सर्वे शुक्रं विना क्षते ।
जीव एकस्तथा द्यूने, मृतौ सौम्यभृगू तथा ॥ ६९ ॥
धर्मे गुरुसितावेव खे भवे शुक्रमन्तरा ।
सूर्यचन्द्रौ तथा रिष्फे स्थानं लग्नस्य कीर्त्तितम् ॥ ७० ॥

हे विप्रेन्द्र ! अभी लग्नाष्टक वर्ग के करों (विन्दुओं) को बतलाया है, अब मैं रेखाओं को बतलाता हूँ। लग्नाष्टक वर्ग के प्रथम भाव में—शनि, बुध, शुक्र, गुरु, तथा मङ्गल, द्वितीय भाव में बुध, गुरु, शुक्र, तृतीय में बुध, गुरु के अतिरिक्त सभी, चतुर्थ भाव में—सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि, पञ्चम भाव में गुरु, शुक्र, षष्ठ में—शुक्रातिरिक्त सभी, सप्तम में गुरु मात्र, अष्टम में बुध, शुक्र, नवम भाव में गुरु, शुक्र, दशम तथा एकदश में शुक्रातिरिक्त सभी, द्वादश भाव में सूर्य-चन्द्र रेखा (शुभ) प्रद होते हैं ॥ ६७–७० ॥

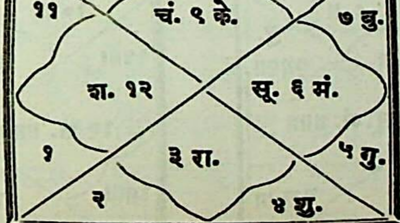
लग्नाष्टकवर्गीय रेखाबोधक चक्र—

भा	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ल.	सं.
१			।	।	।	।	।		५
२				।	।	।			३
३	।	।	।			।	।	।	६
४	।			।	।	।	।		५
५					।	।			२
६	।	।	।	।	।		।	।	७
७					।				१
८				।		।			२
९					।	।			२
१०	।	।	।	।	।		।	।	७
११	।	।	।	।	।		।	।	७
१२	।	।							२

अष्टवर्गों से ग्रहों के शुभाशुभ स्थान का ज्ञान करना हो तो जन्म-कुण्डलीस्थ ग्रहों के स्थान से अष्टकवर्गों में जितने शुभप्रद स्थान हैं उनमें रेखा (।) और अशुभस्थान में बिन्दु (०) रखने से शुभाशुभ-बोधक रेखा-बिन्दु-पूर्ण ग्रहों का अष्टक वर्ग चक्र सिद्ध होगा। ऐसे चक्रों को देखते ही ग्रहों के शुभाशुभत्व का ज्ञान हो जायगा।

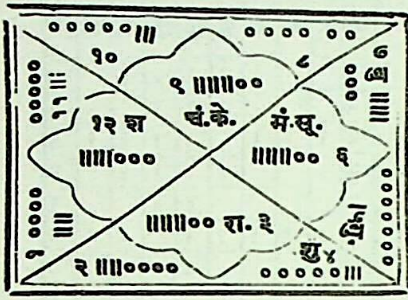
उदाहरण—जैसे सूर्याष्टक वर्ग में सूर्य से रेखाप्रद स्थान १।२।४।७।८।९।१०।११। हैं अतः कुण्डलीस्थ सूर्य से इन स्थानों में रेखा शेष—३।५।६।१२ में बिन्दु, चन्द्रमा से ३।६।१०।११ में रेखा, शेष में बिन्दु, मङ्गल से १।२।४।७।८।९।१०।११। में रेखा, शेष में बिन्दु, बुध से ३।५।६।९।१०।११।१२ में रेखा, शेष में बिन्दु, गुरु से ५।६। ९।११ में रेखा, शेष में बिन्दु, शुक्र से ६।७।१२ में रेखा, शेष में बिन्दु, शनि से १।२।४।७।८।९।१०।११ में रेखा, शेष में बिन्दु, लग्न से ३।४।६।१०।११।१२ में रेखा, शेष में बिन्दु रखने से सूर्याष्टकवर्ग शुभाशुभ चिह्न पूर्ण सिद्ध हो जायगा।

जन्माङ्ग—



इस कल्पित जन्माङ्ग चक्र में उपरि लिखित रीति से

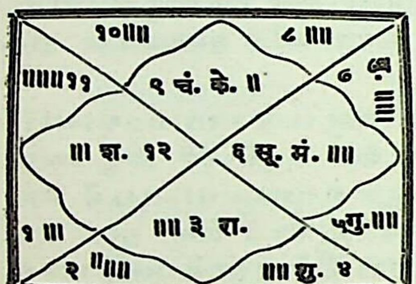
सूर्याष्टकवर्ग—



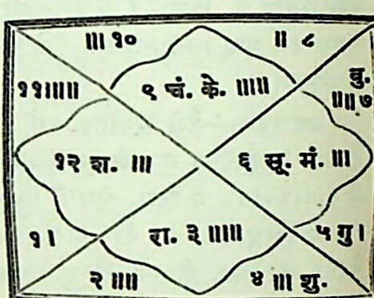
इस प्रकार सिद्ध होगा।

इसी तरह चन्द्रादि अन्य सातों के भी शुभ-चिह्न युक्त अष्टकवर्ग, रेखाप्रद चक्रों की सहायता से बनाकर यहां दे रहा हूँ।

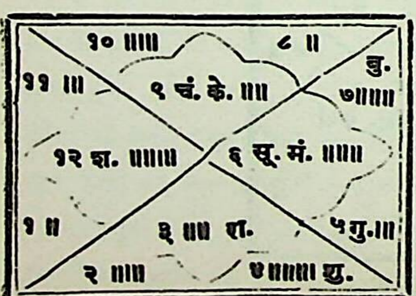
चन्द्राष्टकवर्ग—



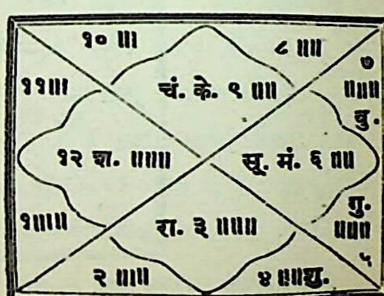
भौमाष्टकवर्ग—



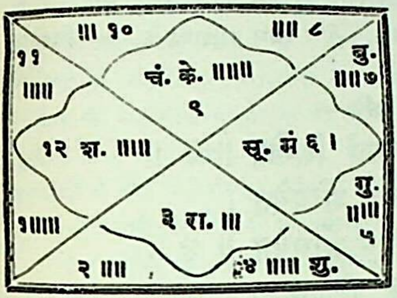
बुधाष्टकवर्ग—



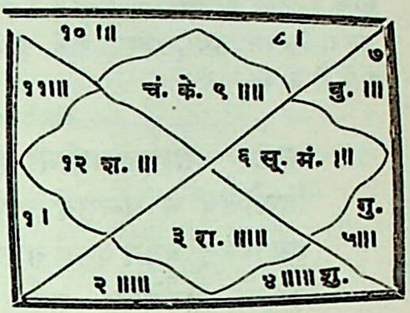
जीवाष्टकवर्ग—



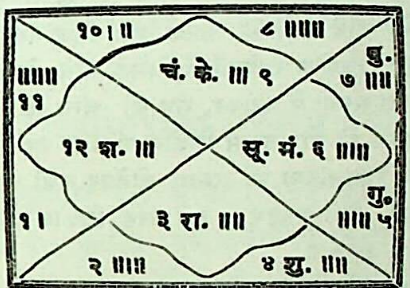
शुक्राष्टकवर्ग—



शन्यष्टकवर्ग—



लग्नाष्टकवर्ग—



इन कुण्डलियों में शुभद्योतक रेखाएं दे दी गई हैं। रेखा-संख्या को सभी कोष्ठों में ८ में घटाने से शेषतुल्य अशुभबोधक बिन्दु-संख्याएं हो जायगीं। जैसे लग्नाष्टवर्ग कुण्डली में लग्न में रेखाएं ३ हैं तो ५ बिन्दुचिह्न होगें। इसी तरह सभी कोष्ठों में समझना है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रेऽष्टकवर्गाध्यायः समाप्तः ॥

अथ त्रिकोणशोधनाध्यायः ॥ ६७ ॥

पराशर उवाच—

इत्थं लग्नग्रहाणां तु विरचय्याष्टवर्गकम्।
त्रिकोणशोधनं कुर्यादादौ सर्वेषु राशिषु ॥ १ ॥
त्रिकोणमुच्यते चापसिंहमेषास्तथा द्विज!
वृषकन्यामृगास्याश्च कुम्भयुग्मतुला अपि ॥ २ ॥
कर्कवृश्चिकमीनाश्च त्रिकोणाः स्युः परस्परम्।

पराशर ने कहा—इस तरह लग्न तथा सातों ग्रहों का अष्टक वर्ग का विधान

कर प्रत्येक राशि का त्रिकोण शोधन करना चाहिए। समानान्तर से स्थित तीन तीन राशियों का त्रिकोण होता है। जैसे त्रिकोणराशियाँ मेष, सिंह, धनु, वृष, कन्या, मकर, मिथुन, तुला, कुम्भ, कर्क, वृश्चिक, मीन, तीन तीन राशियों के चार त्रिकोण होते हैं ॥ १–२ ॥

त्रिकोणशोधन विधि—

अधः समस्तराशीनां फलमष्टकजं लिखेत् ॥ ३ ॥
त्रिकोणेषु च यन्न्यूनं तत्तुल्यं त्रिषु शोधयेत् ।
एकस्मिन् भवने शून्यं तत्त्रिकोणं न शोधयेत् ॥ ४ ॥
समत्वे सर्वगेहेषु सर्वं शोध्यं विजानता ।
तत एकाधिपत्यस्य विधेयं शोधनं बुधैः ॥ ५ ॥

मेषादि राशियों के नीचे ग्रहों का अष्टक वर्गः सिद्ध रेखाङ्क लिखें, पुनः त्रिकोण-शोधन करना चाहिए। त्रिकोण राशियों में जिसके नीचे रेखा संख्या अल्प हो उसे तीनों राशियों की रेखा संख्या में घटाकर, शेष को नीचे लिखें। त्रिकोण राशियों में यदि किसी एक में शून्य हो तो उसमें त्रिकोण शोधन नहीं करना चाहिए। सभी (तीनों) राशियों में रेखा-संख्या की समता होनेपर सबों का शोधन करना अर्थात् नीचे शून्य अङ्कित कर देना चाहिए। इस तरह त्रिकोण-शोधनानन्तर एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए ॥ ३–५ ॥

जैसे जिसके अष्टकवर्ग में त्रिकोण-शोधन अभीष्ट हो, 'वह ग्रह जिस राशि में हो उसी राशि से आरम्भ कर सभी १२ राशियों को लिखें। ग्रहों को भी स्व-स्व राशि में लिखकर राशियों की रेखा-संख्या भी अपने-अपने सामने नीचे लिखें। पुनः उसके नीचे त्रिकोणशोधन पद्धति से सिद्ध शोधिताङ्क भी रक्खें।

सूर्याष्टकवर्गीय त्रिकोणशोधन चक्र—

ग्रह	सू. मं.	बु.		चं. के.			श			रा.	शु.	गु.
राशि	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
रेखायोग	६	५	२	६	३	३	५	४	४	६	३	१
शोधिताङ्क	३	२	०	५	०	०	३	३	१	३	१	०

लिखित चक्र अष्टकवर्गाध्याय के अन्त में दी गई जन्मकुण्डली के आधार पर सिद्ध है। यहाँ यदि सूर्याष्टक वर्गीय त्रिकोण शोधन साध्य है तो सूर्याधिष्ठित राशि कन्या से आरम्भ कर कन्यादि द्वादश राशियों तथा तत्तद् ग्रहों को अपने-अपने राशियों में लिखा। पुनः रेखा-योगों को भी उन राशियों के नीचे रक्खा। कन्या, मकर, वृष इन त्रिकोण-राशियों में रेखाओं का योग इस प्रकार है। कन्या में ६, मकर में ३, वृष में ४, इन तीनों रेखायोगों में सर्वाल्प मकर में ३ है। इसे तीनों की रेखासंख्या में घटाने पर कन्या में शेष ३, मकर में (०) शून्य, वृष में १ हुआ। पुनः तुला, मिथुन, कुम्भ इन त्रिकोणात्मक राशियों में तुला का रेखायोग ५, मिथुन

का ६, तथा कुम्भ का ३, है। कुम्भ की ही रेखा योगसंख्या अल्प है। अतः इसे तुला के रेखायोग में घटाने से शेषाङ्क २, मिथुन के रेखायोग में घटाने से शेष ३, कुम्भ के रेखायोग संख्या में घटाने से शून्य शेष। कर्क, वृश्चिक, मीन, त्रिकोणात्मक इन राशियों में कर्क में ३, वृश्चिक में २, मीन में ५ रेखायोग संख्या है। अतः सर्वाल्प वृश्चिक की रेखायोग संख्या २ को तीनो रेखायोगों में घटाने पर शोधिताङ्क कर्क में १, वृश्चिक में (०) शून्य, मीन में ३ हुए। पुनः त्रिकोणात्मक मेष, सिंह, धन, इन राशियों में मेष में रेखायोग संख्या ४, सिंह में १, धन में ६ है। सर्वाल्प संख्या १ को तीनों में घटाने पर मेष में शोधिताङ्क ३, सिंह में (०) शून्य, तथा धन में ५ हुए।

इन शोधिताङ्कों को उपरिलिखित चक्र में पूर्वलिखित निर्देशानुसार लिख दिया गया है। इस प्रकार सभी ग्रहों का त्रिकोण शोधन कर शोधिताङ्क का ज्ञान करना चाहिए। पुनः एकाधिपत्यशोधन किया जाता है जो आगे वर्णित है।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे त्रिकोणशोधनाध्यायः समाप्तः।

अथ एकाधिपत्यशोधनाध्यायः ॥ ६८ ॥

त्रिकोणमेवं संशोध्य फलं भानां लिखेद् बुधः।
शोधनं द्विज! कुर्वीत पश्चादेवाधिपत्यजम् ॥ १ ॥
क्षेत्रद्वये फलानि स्युस्तदैवं शोधयेत् सुधीः।
क्षीणेन सह चान्यस्मिन् शोधयेद् ग्रहवर्जिते ॥ २ ॥
उभयोर्ग्रहसंयुक्तौ न संशोध्यः कदाचन।
ग्रहयुक्ते फलैर्हीने ग्रहाभावे फलाधिके ॥ ३ ॥
ऊनेन सह चान्यस्मिन् शोधयेद् ग्रहवर्जिते।
फलाधिके ग्रहैर्युक्ते चान्यस्मिन् सर्वमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥
उभयोर्ग्रहहीनत्वे समत्वे च फले त्यजेत्।
सग्रहाग्रहयोस्तुल्ये सर्वं संशोध्यमग्रहे ॥ ५ ॥
कुलीरसिंहयो राश्योः पृथक् क्षेत्रं पृथक् फलम्।

इस प्रकार त्रिकोणशोधन करके राशियों का फल लिखें, फिर एकाधिपत्य-शोधन निम्न लिखित रूप से करें। दोनों राशियों में यदि फल हो तभी शोधन करें। अर्थात् एकस्वामिक दोनों राशियों में त्रिकोण-शोधिताङ्क भिन्न-भिन्न हो, तत्रापि एक में शोधिताङ्क (फल) और दूसरे में शून्य नहीं हो, तभी एकाधिपत्य-शोधन होता है। यदि दोनों राशि ग्रहरहित हों और दोनों के शोधिताङ्क (फल) न्यूनाधिक हो तो न्यूनतुल्य दोनों में शोधनकर एक में शेषाङ्क दूसरे (न्यूनफल वाले) में

शून्य रखना चाहिए। दोनों राशियाँ यदि सग्रह हों तो एकाधिपत्य नहीं किया जाता। यदि सग्रह राशि का फल (त्रिकोण-शोधिताङ्क) निर्ग्रह-राशि के फल से अल्प हो, तो सग्रह के फल को निर्ग्रह राशि के फल में घटाना और सग्रह राशि के न्यूनफल को यथावत् रखना। (इसके विपरीत) सग्रह राशि में त्रिकोण-शोधिताङ्क (फल) अधिक हो और निर्ग्रह राशि में फलाल्पता हो तो निर्ग्रहराशि के समस्त फल का शोधन करना और सग्रह के फल को यथावत् रखना। दोनों राशियाँ निर्ग्रह हों तथा दोनों के फल तुल्य हों तो दोनों फलों का शोधन, (अर्थात् दोनों को शून्य) कर देना चाहिए। यदि एक राशि सग्रह दूसरा निर्ग्रह हो तथा फल की तुल्यता हो तो निर्ग्रह के फल को शोधन (शून्य) कर देना चाहिए। कर्क सिंह, (जिनके अधिप एक राशि-स्वामी है) राशियों के फल को यथावत् रखना चाहिए।

यहां यह ज्ञातव्य है कि सग्रह राशि सबल होती है। अतः उसका त्रिकोण-शोधिताङ्क का शोधन (ह्रास) नहीं होता यही कारण है कि दोनों राशियाँ यदि सग्रह हों तो इनके फलों का शोधन (ह्रास) नहीं होता है। इसीलिए 'उभयोर्ग्रह-संयुक्तौ न संशोध्यः कदाचन' यह कहा गया है। दोनों राशियों में एक सग्रह दूसरा अग्रह हों तो सग्रह के फलतुल्य अग्रह के फल में संशोधन किया जाता है। यह तभी सम्भव है कि सग्रह के फल से अग्रह का फल अधिक या तुल्य हो। तुल्य स्थिति में अग्रह का सम्पूर्ण फल का शोधन और सग्रह का फल राशिप्राबल्य के कारण यथावत् रहता है। दोनों राशियाँ यदि अग्रह हों तो अल्पफल तुल्य दोनों में शोधन कर एक में शेषाङ्क दूसरे में शून्य शोधिताङ्क होता है। यदि दोनों राशियों का तुल्य फल हो तो दोनों के फल तुल्यशोधन के कारण शून्य हो जाता है।

उदाहरण—सूर्याष्टवर्गीय त्रिकोण शोधन चक्र देखिये। कल्पित जन्मकुण्डली के आधार पर सूर्यादि का अष्टकवर्ग बनाया गया है।

उसी के आधार पर नियमानुसार एकाधिपत्य-शोधिताङ्क दिया गया है।

यहां कन्या सग्रह मिथुन निर्ग्रह दोनों के फल (शोधिताङ्क) तुल्य हैं, किन्तु सग्रह होने के कारण कन्या का यथावत् तथा मिथुन का शून्य कर दिया गया है।

सूर्याष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधन चक्र—

सू. मं.	बु.		चं.			श.				शु.	गु.	ग्रह
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	राशि
६	५	२	६	३	३	५	४	४	६	३	१	रेखायोग
३	२	०	५	०	०	३	३	१	३	१	०	त्रि. शो.
३	२	०	५	०	०	३	३	०	०	१	०	ए. शो.

तुला, वृष में तुला सग्रह, वृष निर्ग्रह। साथ ही सग्रह का फल अधिक, निर्ग्रह का अल्प। अतः सग्रह का फल यथावत् रहा, निर्ग्रह का शोधन कर शून्य कर दिया गया है। शेष वृश्चिक में एक में फल शून्य है अतः शोधन नहीं होकर यथावत् फल रक्खे गए हैं, क्योंकि दोनों में फल रहने पर ही शोधन होता है। धन मीन

सग्रह हैं, अतः 'उभयोर्ग्रहसंयुक्तौ' के अनुसार यथावत फल रख दिए गये हैं। मकर कुम्भ में फल में तुल्यता या दोनों में शून्य फल है साथ ही दोनों राशियाँ निर्ग्रह हैं, अतः 'उभयोर्ग्रहहीनत्वे समत्वे च फले त्यजेत्' के अनुसार दोनों में शून्य रक्खे गए हैं। कर्क सिंह में शोधन प्राप्त ही नहीं है, क्योंकि एकस्वामिक दो राशियों में शोधन किया जाता है। यहाँ दोनों के भिन्न-भिन्न स्वामी है। अतः उनके भी फल एकाधिपत्य शोधिताङ्क में यथावत् रख दिए गए हैं। उपरिलिखित चक्र देखने से सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे एकाधिपत्यशोधनाध्यायः समाप्तः॥

अथ पिण्डानयनाध्यायः ॥ ६९ ॥

पराशर उवाच—

इत्थं शोधितमङ्कं तु राशिमानेन वर्धयेत्।
ग्रहयुक्तेऽपि तद्राशौ ग्रहमानेन वर्धयेत् ॥ १ ॥
वर्द्धिताङ्कयुतिर्विज्ञैः पिण्डनाम्नाऽभिधीयते।
गोसिंहौ खेन्दुभिर्गुण्यौ युग्माली वसुभिस्तथा ॥ २ ॥
वणिग्मेषौ तु मुनिभिः शरैश्च मकराङ्गने।
स्वस्वसंख्याभिरितरे गुणका अथ खेटजाः ॥ ३ ॥
जीवारशुक्रसौम्यानां दिग्गजाद्रिशराः क्रमात्।
बाणास्तथान्यखेटानां विबुधैः समुदीरिताः ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा—इस तरह अष्टवर्ग में। शोधिताङ्क (त्रिकोण तथा एकाधिपत्य-शोधनसिद्ध अङ्क) को राशिमान (राशिगुणकांक) से, यदि उस राशि में ग्रह हो तो ग्रहमान (ग्रह गुणकाङ्क) से भी गुणाकरें। सभी गुणन फलों का योग अष्टवर्गफल साधनार्थ पिण्डसंज्ञक होता है। वृष, सिंह के १०, मिथुन, वृश्चिक के ८, तुला, मेष के ७, मकर, कन्या के ५, शेषराशियों के राशिसंख्यातुल्य गुणकाङ्क हैं।

इसी तरह ग्रहों के भी गुणकाङ्क हैं। गुरु के १०, भौम के ८, शुक्र के ७, तथा बुध के ५, शेष ग्रह सूर्य चन्द्र तथा शनि के ५ गुणकाङ्क हैं।

राशि गुणक चक्र—

राशि—	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
गुणक—	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२

ग्रह गुणक चक्र—

ग्रह—	सू.	चं.	भौ.	बु.	गु.	शु.	श.
	५	५	८	५	१०	७	५

उदाहरण—सूर्याष्टक वर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधन चक्र देखिए।

पिण्डानयन—कन्या के, एकाधिपत्य शोधितांक ३ को कन्या के गुणकांक ५ से गुणनेपर १५, तुला के शोधिताङ्क २ को उसके गुणकांक ७ से गुणने से १४, धन के शोधिताङ्क ५ को उसके गुणकांक ९ से गुणनेपर ४५, मीन के शोधितांक ३ को उसके गुणकांक १२ से गुणने पर ३६, मेष के शोधितांक २ को उसके गुणकांक ७ से गुणने पर २१, कर्क के शोधितांक १ को उसके गुणकांक ४ से गुणने पर ४। शेष राशियों में शोधितांक शून्य है, अतः गुणनफल शून्य ही होगा। राशिपिण्ड = १५ १४ + ४५ + ३६ + २१ + ४ = १३५।

इसी तरह ग्रहों के गुणकांक से ग्रहाधिष्ठित राशियों के शोधिताङ्क (फल) को गुणने तथा उनके योग से ग्रह पिण्ड सिद्ध होगा। जैसे यहां सूर्य मङ्गल कन्या में हैं। अतः कन्या के शोधितांक ३ को मंगल के गुणकांक ८ से गुणने पर २४। उसी ३ को सूर्य के गुणकांक ५ से गुणने पर १५। तुला के शोधितांक (फल) २ को तुला स्थित बुध के गुणकांक ५ से गुणने पर १०। धन स्थित चन्द्र गुणकांक ५ से धन के शोधितांक ५ को गुणने पर २५। मीनस्थ शनि के गुणकांक ५ से मीन के (फल) शोधितांक ३ को गुणने पर १५। कर्काधिष्ठित शुक्र के गुणकांक ७ से कर्क के शोधितांक १ को गुणने पर ७।

सर्वों का योग = २४ + १५ + १० + २५ + १५ + ७ = ९६ = ग्रहपिण्ड।

जीवाधिष्ठित सिंह का फल (शोधितांक) शून्य है अतः गुणनफल शून्य ही होगा।

राशिपिण्ड + ग्रहपिण्ड = १३५ + ९६ = २३१ = स्फुट पिण्ड हुआ। यह अष्टवर्ग फल के लिए उपयोगी है। इसी पर से वक्ष्यमाण रीति से सूर्याष्टकवर्गफल कहना चाहिए ॥ १–४ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पिण्डानयनाध्यायः समाप्तः ॥

अथ अष्टकवर्गफलाध्यायः ॥ ७० ॥

अष्टवर्ग से विचारणीय विषय—

पराशर उवाच—

अष्टवर्गफलं विप्र ! समाहितमनाः शृणु।
आत्मस्वभावशक्तिश्च पितृचिन्ता रवेः फलम् ॥ १ ॥
मनोबुद्धिप्रसादश्च मातृचिन्ता मृगाङ्कतः।
भ्रातृसत्त्वं गुणं भूमिं भौमेन तु विचिन्तयेत् ॥ २ ॥
वाणिज्यकर्मवृत्तिश्च मित्रं चापि बुधेन तु।
गुरुणा देहपुष्टिं च बुद्धिपुत्रार्थसम्पदः ॥ ३ ॥

भृगोर्विवाहकर्माणि भोगस्थानं च वाहनम् ।
वेश्यास्त्रीजनसंसर्गं शुक्रेण च निरीक्षयेत् ॥ ४ ॥
आयुश्च जीवनोपायं दुःखशोकौ महद् भयम् ।
सर्वक्षयं च मरणं मन्देनैव निरीक्षयेत् ॥ ५ ॥
तद्भावफलरेखाभिर्योगपिण्डं विवर्धयेत् ।
उद्धरेत् सप्तविंशत्या शेषर्क्षं रविजे गते ॥ ६ ॥
ध्रुवं तद्भावजनिते फले ह्रासं समादिशेत् ।

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अष्टवर्गफल सावधान होकर सुनो । रवि के फल आत्मा, स्वभाव, शक्ति, पितृक्लेशसुखादि, ये हैं । अतः इनका विचार सूर्य से करना चाहिये । चन्द्रमा से मन, बुद्धिप्रसाद तथा माता के सुखदुःखादि का विचार करें । भौम से भ्रातृपराक्रम गुण तथा भूमि का विचार करें । व्यापार, जीविका तथा मित्र का विचार बुध से करें । गुरु से शारीरिक पुष्टि बुद्धि, पुत्र तथा धनसम्पत्ति का चिन्तन करें ।

शुक्र से विवाहकार्य, भोग, वाहन, वेश्या तथा अन्य स्त्री जनों से संसर्ग का विचार करें । शनि से आयु, जीवनोपाय, दुःख-शोकादि, महाभय, सभी वस्तुओं का नाश, तथा मरण का विचार करना चाहिए । किन्तु विचारणीय भाव की रेखा संख्या से योगपिण्ड को गुणाकर, २७ से भाग दें, शेषतुल्य अश्विन्यादि नक्षत्र में चारवश शनि के आने पर तद्भाव जनित फल में निश्चयतः ह्रास कहना चाहिए ॥ १–७ ॥

सूर्याष्टकवर्गफलानयन—

सूर्यर्क्षादङ्कमितभं पितुर्गेहमुदीरितम् ॥ ७ ॥
तद्गेहरेखासंख्याभिर्गुणितं पिण्डकं हृतम् ।
नक्षत्रसंख्यया शेषमितभं रविजे गते ॥ ८ ॥
असंशयं तु विप्रेन्द्र ! पितुः क्लेशं समादिशेत् ।
तत्त्रिकोणगते वाऽपि पिता पितृसमोऽपि वा ॥ ९ ॥
मरणं तस्य जानीयात् क्लेशाधिक्यमथापि वा ।

जन्मकालिक सूर्याधिष्ठित राशि से नवम पिता का घर है । सूर्याष्टकवर्गीय—उस स्थान की रेखा संख्या से सूर्याष्टकवर्गीय योगपिण्ड को गुणा कर नक्षत्र संख्या (२७) से भाग लें । शेषाङ्क तुल्य अश्विन्यादि नक्षत्र में शनि के आने पर असंशय पितृकष्ट कहना चाहिए । उस नक्षत्र के त्रिकोण नक्षत्र (१०।१९) में भी शनि के जाने पर पिता या अन्य पितृतुल्य गुरुजनों का मरण अथवा महाक्लेश जानना ।

उदाहरण—यथा सूर्याष्टक वर्ग साधनार्थ पूर्वदत्त कुण्डली में सूर्य कन्या के हैं । कन्या से नवम वृष पिता का गृह हुआ । सूर्याष्टकवर्गीय वृष की रेखासंख्या ४ से

सूर्य के स्फुटपिण्ड २३१ (पिण्डानयनाध्यायान्त में आनीत हैं) को गुणाकर २७ से भाग देने पर शेष = ६ अतः शेष तुल्य अश्विन्यादि नक्षत्र आर्द्रा में तथा उसके त्रिकोण नक्षत्र (दशम, तथा उन्नीसवाँ) स्वाती, शतभिषा में शनि के आने पर पितृमरण या पितृकष्ट, अथवा पितृतुल्य व्यक्ति का मरण या कष्ट कहना चाहिए ॥ ७९½ ॥

प्रकारान्तर—

पितुर्गेहाष्टवर्गीयरेखाभिः पिण्डके हते ॥ १० ॥
द्वादशापहृते शेषभं गते रविजेऽथवा ।
तत्कोणभवनं याते पितुः क्लेशं समादिशेत् ॥ ११ ॥
अरिष्टददशाकाले मृत्युरेव न संशयः ।

अथवा पूर्वानीत स्फुटपिण्ड को पितृगृहोत्थ अष्टवर्गीय रेखा से गुणकर १२ से भाग लें, शेषतुल्य मेषादि राशि में या शेषराशि के ५।९ में शनि के आने पर पितृकष्ट कहना चाहिए। अरिष्टप्रद दशा काल में मृत्यु कहना।

उदाहरण—प्रस्तुत कुण्डली में सूर्य कन्या के हैं। कन्या से नवम वृष की सूर्याष्टकवर्गीय रेखा संख्या ४ है। अतः प्रस्तुत नियमानुसार स्फुटपिण्ड को ४ से गुणने तथा १२ से भाग देने पर शेष = ० हुआ। अतः मेष, तथा उसके त्रिकोण राशि सिंह, धनु में शनि के आने पर पितृमरण या पितृकष्ट होगा ॥ १०–१२ ॥

पुनः पित्ररिष्टकाल कथन—

अर्कात्तु तुर्यगे राहौ मन्दे वा भूमिनन्दने ॥ १२ ॥
गुरुशुक्रेक्षणमृते पितृहा जायते नरः ।
लग्नाचन्द्राद् गुरुस्थानं याते सूर्यसुते तथा ॥ १३ ॥
पापग्रहेक्षितयुते पितुर्मरणमादिशेत् ।
लग्नात् सुखाधिपारिष्टदाये पितृमृतिर्भवेत् ॥ १४ ॥

(उपर्युक्त त्रिकोण राशि में शनि के आने पर) सूर्य से चतुर्थ में राहु, शनि या मंगल हो और गुरु, शुक्र की दृष्टि से वञ्चित हो तो मनुष्य पितृहीन होता है। लग्न या चन्द्र से शनि यदि गुरु (नवम) स्थान को प्राप्त हो, साथ ही पापग्रह की दृष्टि अथवा संयोग रहे तो, सुखाधिप के अनिष्टप्रद दशाकाल में पिता का मरण कहना चाहिए ॥ १२–१४ ॥

पितृनिधन योग—

पितृजन्माष्टमे जातस्तदीशे लग्नगेऽपि वा ।
स एव कुरुते तातकृत्यानि द्विजसत्तम ! ॥ १५ ॥

पिता के जन्मलग्न से अष्टमराशि यदि किसी जातक का जन्मलग्न हो, अथवा अष्टमेश (पिता के जन्मलग्न से अष्टमाधिपति) जातक के जन्मलग्नगत हो, दोनों

स्थिति में पितृमरण हो जाता है जिससे जातक स्वयं अपने पिता के कर्त्तव्य को करता है ॥ १५ ॥

पितृसुख योग—

सुखेशे लाभलग्नस्थे चन्द्रादपि विशेषतः ।
पितृसद्मगते वाऽपि जातः पितृवशानुगः ॥ १६ ॥
पितृजन्मतृतीयर्क्षे जातः पितृधनाश्रितः ।
पितृकर्मगृहे जातः पितृतुल्यगुणान्वितः ॥ १७ ॥
तदीशे लग्नसंस्थेऽपि पितृश्रेष्ठो भवेज्जनः ।
साधारणफलं सर्वमत्रापि विमृशेद् बुधः ॥ १८ ॥

सुखेश जन्मलग्न, विशेषतः चन्द्रलग्न से लग्न या एकादश स्थान में हो या वही सुखेश पितृसद्म (दशम) स्थानगत हो तो जातक पिता का आज्ञाकारी पुत्र होता है । पिता के जन्मलग्न या जन्मराशि से तृतीयलग्न या तृतीय राशि में जन्म हो तो जातक पितृधनोपभोक्ता होता है ।

पिता के जन्मलग्न या जन्मराशि से दशम में जन्म हो तो जातक पिता के समान गुणी होता है । जातक का दशमेश उसके जन्मलग्नस्थ हो तो जातक पिता से भी अधिक गुणवान् (श्रेष्ठ) होता है ॥ १६–१८ ॥

विशेष फल—

सूर्याष्टवर्गे यच्छून्यं तन्मासे वत्सरेऽथवा ।
विवाहव्रतबन्धादि सत्कार्यं गर्हितं बुधैः ॥ १९ ॥
तथा रेखाधिके मासे वत्सरे वा द्विजोत्तम ! ।
असत्फलप्रदे सूर्ये गुरौ वा विहितं हि तत् ॥ २० ॥

सूर्याष्टक वर्ग के जिस राशि में अधिक शून्य हो, उस मास (उस राशि में सूर्य के आने पर) या उस वर्ष (उस राशि में मध्यम गुरु के आने पर) में विवाहादि शुभकार्य गर्हित है । तथा जिस राशि में अधिक रेखा है उस मास या वर्ष (मध्यम गुरु वश) में अशुभ भी सूर्य या गुरु रहें तो भी शुभकृत्य प्रशस्त है ॥ १९–२० ॥

चन्द्राष्टकवर्ग फल—

इत्थमिन्द्वष्टके यस्मिन् राशौ शून्यं विशेषतः ।
तद्राशिगे विधौ नैव शुभकार्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥
चन्द्राच्चतुर्थतो मातृ-प्रासादग्रामचिन्तनम् ।
चन्द्रात् सुखफलात् पिण्डं वर्द्धयेत् विहरेच्च भैः ॥ २२ ॥
शेषर्क्षं तत् त्रिकोणर्क्षं वा गतेऽर्कसुते दिशेत् ।
मृतिं जनन्याः कष्टं वाऽर्कहृच्छेषर्क्षगेऽपि च ॥ २३ ॥

इसी तरह चन्द्राष्टक वर्ग में जिस राशि में शून्याधिक्य हो। उस राशि में चन्द्रमा के जाने पर विवाहादि शुभकार्य नहीं करना चाहिए। चन्द्र के चतुर्थ से माता, भवन तथा ग्राम का चिन्तन किया जाता है। अतः चन्द्रमा से चतुर्थ भाव की रेखा संख्या से चन्द्राष्टक वर्ग पिण्ड को गुणा कर नक्षत्र संख्या २७ से भाग लें। शेष नक्षत्र, या उसके त्रिकोण नक्षत्र (१०।१९) में शनि चारवश जब आवें तब मातृ-मरण या मातृ क्लेश कहना चाहिए। रेखासंख्या तथा पिण्ड के गुणन फल में १२ से भाग देने पर जो शेष बचे तत्तुल्य मेषादिराशि या उसके नवम पञ्चम राशि में शनि के आने पर मातृमरण या मातृकष्ट कहना चाहिए॥ २१–३३॥

मातृकष्ट बिचार के लिए चन्द्राष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्य शोधन करके स्फुटपिण्ड का आनयन आवश्यक होता है। फिर 'चन्द्रात्सुखफलात् पिण्डं वर्धयेद् विहरेच्च भैः' के अनुसार किस नक्षत्र या राशि में शनि के जाने पर मातृक्लेश होगा, यह कहा जा सकता है। अतः चन्द्राष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्य-शोधन पद्धति, चक्र, उदाहरण आदि सभी पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

चन्द्राष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधन चक्र सूर्याष्टकवर्ग की तरह बनाकर उसमें चन्द्राधिष्ठित राशि से आरम्भ कर सभी ग्रहों तथा तत्तद्राशियों को चक्र के ऊर्ध्वस्थ कोष्ठों में, उसके नीचे की पंक्ति में चन्द्राष्टकवर्गस्थ रेखाओं का योगाङ्क सभी भावों के नीचे रखना। अष्टवर्गाध्यायान्त में सभी ग्रहों के अष्टकवर्ग कुण्डलियों में रेखाएँ प्रदत्त हैं। चन्द्राष्टकवर्ग कुण्डली में रेखायोगसंख्या धन में २, मकर में ४, कुम्भ में ६, मीन में ३, मेष में ३, वृष में ६, मिथुन में ४, कर्क में ४, सिंह में ३, कन्या में ६, तुला में ६, वृश्चिक में २, है। पुनः त्रिकोण-शोधन पद्धति से त्रिकोण-शोधिताङ्क लाकर रेखायोगांक पंक्ति के नीचे की पंक्ति में रक्खें। फिर एकाधिपत्य शोधन विधि से आनीत एकाधिपत्य शोधिताङ्क भी सबसे नीचे की पंक्ति में रखना चाहिए।

चन्द्राष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्य शोधनचक्र—

चं.			श.				शु.	गु.	सू.मं.	बु.		ग्रह
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	राशि
२	४	६	३	३	६	४	४	३	६	६	२	रेखायोग
०	०	२	१	१	२	०	२	१	२	२	०	त्रि. शो.
०	०	२	१	१	०	०	२	१	२	२	०	ए. शो.

उदाहरण—

कुम्भ के एकाधिपत्य शोधिताङ्क २ को कुम्भ के गुणकांक ११ से गुणा करने पर ११ × २ = २२। मीन के शोधिताङ्क १ को उसके गुणकाङ्क १२ गुणने से गुणन फल = १२ × १ = १२। मेष के शोधितांक १ को मेष के गुणकांक ७ से गुणने से ७ × १ = ७। कर्क के शोधितांक २ को कर्क के गुणकांक ४ से गुणने पर २ × ४ = ८। सिंह के शोधितांक १ को उसके गुणकांक १० से गुणने पर १ × १० = १०। कन्या के शोधितांक २ को उसके गुणकांक ५ से गुणने पर २ × ५ = १०। तुला के

शोधितांक २ को उसके गुणकांक ७ से गुणने पर ७ × २ = १४। शेषराशियों के शोधितांक शून्य हैं। अतः शून्य से गुणने पर सब जगह शून्य ही होंगे। अतः अतः राशिपिण्ड = २२ + १२ + ७ + ८ + १० + १० + १४=८३। इसी तरह उपर्युक्त एकाधिपत्य शोधितांकों को तत्तद्राशिस्थ ग्रहों के गुणकांकों से गुणने तथा सबों के योग करने पर ग्रहपिण्ड होगा।

जैसे—शनि के गुणकांक ५ से मीन के शोधितांक १ के गुणने से ५। कर्क के शोधितांक २ को कर्कस्थ शुक्र के गुणकांक ७ से गुणा करने पर १४। सिंह के शोधितांक १ को सिंहस्थ गुरु के गुणकाङ्क १० से गुणा करने पर १०। कन्या के शोधितांक २ को कन्यास्थ भौम के गुणकांक ८ से गुणने पर १६ तथा सूर्य के गुणकांक से गुणने पर १०। तुला के शोधितांक २ को तुलास्थ बुध के गुणकांक से गुणने पर १०। चन्द्रमा का गुणन फल शून्य है।

अतः इन गुणन फलों का योग ५ + १४ + १० + १६ + १० + १०
= ६५ = ग्रहपिण्ड।

अतः ८३ + ६५ = १४८ = स्फुटपिण्ड
= योगपिण्ड।

मातृकष्ट विचारार्थ चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान मीन के फल (रेखा योग) ३ से स्फुटपिण्ड १४८ को गुणने से = ४४४। इसमें २७ से भाग देनें पर शेष १२ हुए। अतः उत्तरफा० नक्षत्र तथा उसके त्रिकोण नक्षत्र उत्तराषाढ तथा कृत्तिका में शनि के आने पर मातृकष्ट होगा। अथवा गुणन फल ४४४ में १२ से भाग देने पर शेष ०। अतः मीन या उसके त्रिकोणराशि कर्क, वृश्चिक में शनि के आने पर भी मातृकष्ट या मरण कहना चाहिए॥ २१–२३॥

भौमाष्टक वर्गफल—

भौमाष्टवर्गे संचिन्त्यं भ्रातृविक्रमधैर्यकम्।
भौमाश्रितस्थसहजो राशिर्भ्रातृगृहं स्मृतम्॥ २४॥
त्रिकोणे शोधिते यत्र राशौ भूरिफलं भवेत्।
तत्र याते कुजे भूमिस्त्रीभ्रातृसुखमद्भुतम्॥ २५॥
भौमो बलविहीनश्चेद्दीर्घायुः सहजो भवेत्।
फलानि यत्र क्षीयन्ते तत्रारे कष्टमादिशेत्॥ २६॥
पिण्डं कुजतृतीयर्क्षरेखाभिर्गुणयेद् भजेत्।
भैस्तथार्कैस्तु शेषर्क्षमागते रविजेऽथवा॥ २७॥
तत्त्रिकोणगते भ्रातुः कष्टं स्पष्टं वदेद् बुधः॥ २८॥

भौमाष्टक वर्ग से भाई, उसके पराक्रम तथा धैर्य का विचार करना। भौमाश्रित राशि से तृतीय भ्रातृगृह होता है। त्रिकोण शोधन करने पर जिस राशि में अधिक

फल (त्रि० शोधिताङ्क) हो उस राशि में मंगल के जाने पर भूमि, स्त्री, तथा भाई का सौख्य कहना। मंगल निर्बल हों तो सहज दीर्घायु होता है। जिस राशि में फल (शोधिताङ्क) शून्य हो उसमें मंगल के जाने पर भ्रातृकष्ट कहना चाहिए।

पिण्ड को मंगल से तृतीय राशि की रेखासंख्या से गुणाकर गुणन फल में २७ से भाग दें। शेषाङ्क तुल्य अश्विन्यादि या उसके त्रिकोण नक्षत्र में तथा गुणन फल में १२ से भाग देने पर शेष तुल्य मेषादि राशि, तथा उसके त्रिकोण राशि में शनि के आने पर भ्रातृकष्ट होता है ॥ २४–२८ ॥

भौमाष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधनचक्र—

सू. मं.	बु.		चं.			श.				शु.	गु.	ग्रह
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	राशि
३	४	२	५	३	५	३	१	४	५	३	१	रे. सं.
०	०	०	४	०	१	१	०	१	१	१	०	त्रि. शो.
०	०	०	४	०	१	१	०	१	१	१	०	ए. शो.

उदाहरणार्थ—

राशिपिण्ड = ८१ ग्रहपिण्ड = ३२, स्फुटपिण्ड = ११३।

यहाँ त्रिकोण शोधितांक तथा एकाधिपत्य शोधितांक तुल्य हो गए। कारण यह है कन्या, मिथुन दोनों में फल नहीं है, अतः यथावत्, अर्थात् त्रिकोण शोधितांक तुल्य ही एकाधिपत्य शोधितांक हुए। वृष तुला में भी वही स्थिति। मेष वृश्चिक में दोनों में त्रि० शोधिताङ्क ही शून्य है। धनु मीन दोनों सग्रह हैं, अतः शोधन का प्रश्न ही नहीं है। मकर कुम्भ में भी दोनों फल युक्त नहीं हैं। कर्क सिंह तो द्विराशिनाथ है ही नहीं। अतः त्रि० शोधिताङ्क तथा एकाधिपत्य शोधितांक तुल्य ही होंगे। एकाधिपत्यशोधितांकों से राशि गुणकों को गुणाकर सब के योगतुल्य राशि पिण्ड = ८१ इसी प्रकार उन शोधितांको को ग्रहों के गुणाकाङ्क से गुणने तथा उनके योग करने पर ग्रहपिण्ड = ३२। ग्रहों में सूर्य मंगल बुध गुरु के फल (शोधितांक) शून्य हैं। अतः गुणनफल शून्य होगा।

दोनों पिण्डों का योग ८१ × ३२ = ११३ = योगपिण्ड। इसको भौमाधिष्ठित राशि से तीसरे वृश्चिक की रेखासंख्या २ से गुणने तथा २७ से भाग देने पर शेष = १०। अतः अश्विनी से दशम नक्षत्र मघा तथा उसके त्रिकोण नक्षत्र मूल अश्विनी में, एवं गुणन फल २२६ में १२ से भाग देने पर शेषाङ्क १० तुल्य मेषादि दशम राशि मकर तथा त्रिकोण राशि वृष, कन्या में, शनि के आने पर भ्रातृकष्ट कहना चाहिए।

बुधाष्टक वर्गफल—

बुधात् तुर्ये कुटुम्बे च चिन्तयेन्मित्रमातुलौ।
गृहे रेखाधिके याते ज्ञे तेषामुत्तमं सुखम् ॥ २९ ॥

बुधाष्टवर्गं संशोध्य शेषमृक्षं गते शनौ ।
क्लेशं मातुलसन्मित्रकुटुम्बानां तदा वदेत् ॥ ३० ॥

बुधाधिष्ठित राशि से चतुर्थ से कुटुम्ब, मित्र, तथा मामा का शुभाशुभ विचार करना चाहिए। जिस राशि में बुधाष्टकवर्ग में अधिक रेखाएँ हो उसमें बुध के आने पर कुटुम्बादि तीनों को शुभफल कहना। बुधाष्टक वर्ग में एकाधिपत्यशोधन कर पिण्ड लाकर उसे चतुर्थ राशि की रेखासंख्या से गुणा करें। गुणन फल में २७ से भागदेने पर जो शेष आवे अश्विन्यादि उस नक्षत्र में तथा तत्त्रिकोण नक्षत्र में शनि के आने पर कुटुम्बादि को कष्ट समझना इसी तरह गुणन फल में १२ से भाग देने पर आगत शेषतुल्य राशि तथा तत्त्रिकोण राशि में शनि के आने से कुटुम्बादि को कष्ट कहना चाहिए ॥ २९-३० ॥

बुधाष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधनचक्र—

बु.		चं			श.				शु.	गु.	मं. सू.	ग्रह
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	राशि
६	२	४	५	३	७	२	५	४	७	३	६	रेखायोग
३	०	२	०	०	५	०	०	१	५	१	१	त्रि. शो.
३	०	२	०	०	५	०	०	०	५	१	१	ए. शो.

उदाहरण—तत्तद्राशि के एकाधिपत्यशोधितांकों को राशियों के पठित गुणकांकों से गुणने तथा उनके योग करने से राशिपिण्ड, तथा एकाधिपत्य शोधिताङ्कों को ग्रहों के पठित गुणकाङ्कों से गुणकर योग करने से ग्रहपिण्ड, फिर, दोनों के योग से स्फुट-पिण्ड या योगपिण्ड होगें। अतः यहाँ राशिपिण्ड = १३४, ग्रहपिण्ड = १०८, स्फुट पिण्ड = २४२।

बुध तुला में है। तुला से चतुर्थ मकर की रेखा संख्या ५ से स्फुटपिण्ड को गुणने तथा गुणनफल में २७ से भाग देने से शेष = २२, अतः अश्विन्यादि २२ वाँ श्रवणा नक्षत्र तथा त्रिकोण नक्षत्र रोहिणी तथा हस्त में, एवं गुणनफल में १२ से भाग देने पर शेष १० तुल्य मेषादि राशि मकर में शनि के जाने पर मामा, मित्र, कुटुम्बवर्ग में कष्ट कहना चाहिए ॥ २९-३० ॥

गुर्वष्टकवर्गफल—

जीवात् पञ्चमतो ज्ञानपुत्रधर्मादिचिन्तनम् ।
फलाधिके मृगे तत्र ज्ञेयं पुत्रादिजं सुखम् ॥ ३१ ॥
गुरोः पञ्चमगेहे तु रेखा भवति यन्मिता ।
सन्ततिस्तन्मिता शत्रुनीचगेहे गुरुर्न चेत् ॥ ३२ ॥
पञ्चमेशनवांशैश्च समाना वापि सा स्मृता ।
पञ्चमस्थानरेखाभिः पिण्डं संवर्द्धय भैस्तथा ॥ ३३ ॥

रविभिर्विभजेत् शेषभगः पुत्रार्त्तिदः शनिः ।
इत्थं तदृक्षगो विद्याधर्मयोरपि हानिकृत् ॥ ३४ ॥

गुरु से पञ्चम स्थान से ज्ञान, पुत्र धर्म आदि का विचार किया जाता है। उस राशि में गुर्वष्टक वर्गज रेखा अधिक हो तो विद्या, पुत्र, धर्म का सौख्य समझना। गुरु से पञ्चमभाव में जितनी रेखाओं की संख्या हो उतनी सन्तान होती है, यदि गुरु नीचस्थान या शत्रुक्षेत्र में नहीं हो। पञ्चमेश की नवांश संख्या (पञ्चमेश जैवों नवांश में हो) के समान भी सन्तान की संख्या होती है। जीवाष्टकवर्गीय पञ्चम स्थान की रेखायोग से गुरु के स्फुटपिण्ड को गुणा करें। गुणनफल में २७ से भागलेने पर जो शेष बचे तत्संख्यक अश्विन्यादि नक्षत्र तथा उसके त्रिकोण नक्षत्र (१०।१९) में एवं गुणन फल में १२ से भाग लेने पर आगत शेषांकतुल्य मेषादि राशि में शनि के आने पर पुत्रकष्ट, विद्या तथा धर्म की हानि होती है ॥ ३१—३४ ॥

जीवाष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधन चक्र—

गु.	सू. मं.	बु.		चं.			श.				शु.	ग्रह
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	राशि
६	४	६	४	४	३	३	६	५	५	६	४	रेखायोग
२	१	३	०	०	०	०	२	१	२	३	०	त्रि. शो.
२	१	३	०	०	०	०	२	१	०	२	०	ए. शो.

उदाहरण—यहाँ भी राशियों तथा ग्रहों के गुणकांकों से एकाधिपत्य शोधितांकों को गुणकर पृथक्-पृथक् योग करने से राशिपिण्ड तथा ग्रहपिण्ड होगें। दोनो पिण्डों का योग स्फुटपिण्ड या योगपिण्ड होगा। इस प्रकार यहाँ राशिपिण्ड = ९३ ग्रहपिण्ड = ५८ दोनों का योग = १५१ यही स्फुटपिण्ट या योगपिण्ड हुआ।

इस योगपिण्ड को जीवाश्रित राशि सिंह का पञ्चम धन की रेखा संख्या ४ से गुणाकर २७ से भाग दिया तो शेषाङ्क = १०। अतः मघा तथा त्रिकोण नक्षत्र मूल एवं अश्विनी इन तीनों नक्षत्रों में तथा उसी गुणनफल में १२ से भाग देने पर शेषाङ्क ४ तुल्य कर्क राशि में शनि के आने पर पुत्रकष्ट, विद्याधर्महानि कहनी चाहिए ॥

शुक्राष्टकवर्गफल—

शुक्रस्याष्टकवर्गं च निक्षिप्याकाशचारिषु ।
यद्यद्राशौ फलानि स्युर्भूयांसि किल तत्र तु ॥ ३५ ॥
भूमिं वित्तं कलत्रं च तत्तद्दिशि दिशेद् बुधः ।
शुक्राज्जामित्रतो जायालब्धिर्ज्ञेया विदांवरैः ॥ ३६ ॥
दिशि देशे च जायायास्तत्त्रिकोणगृहस्य वा ।
पिण्डवर्धनतस्तस्याः कष्टं ज्ञेयं यथा पुरा ॥ ३७ ॥

राशियों में अष्टवर्ग (रेखाओं) का न्यास करें। जिस-जिस राशि में अधिक फल

(रेखा) हो उस उस राशि में शुक्र के जाने पर भूमि, धन तथा कलत्र का लाभ, तत्तद्राशि की दिशा में कहना। शुक्र के सप्तम से स्त्रीप्राप्ति का विचार किया जाता है। सप्तमभाव, तथा उससे नवम-पञ्चम राशियों की दिशा या देश में स्त्रीप्राप्ति कहना। पिण्डवर्धनादि क्रिया से स्त्री के कष्ट का विचार पूर्ववत् करें। अर्थात् शुक्राधिष्ठित राशि से सप्तम में जितनी रेखा संख्या हो उससे पिण्ड को गुणकर २७ से भाग दें। शेषाङ्क तुल्य अश्विन्यादिनक्षत्र तथा उसके त्रिकोण के नक्षत्रों में शनि जब आवें उस समय स्त्री को कष्ट कहना। अथवा गुणनफल में १२ से भाग देने पर जो शेषाङ्क हो, तत्संख्यक मेषादिराशि में भी शनि के आने पर स्त्री को कष्ट कहना चाहिए ॥ ३५–३७ ॥

शुक्राष्टवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधनचक्र—

शु.	गु.	र. सं.	बु.		चं.			श.				ग्रह
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	राशि
५	५	१	४	४	६	३	४	५	५	४	३	रेखायोग
१	०	०	१	०	१	२	१	१	०	३	०	त्रि. शो.
१	०	०	१	०	१	१	०	१	०	२	०	ए. शो.

उदाहरण—एकाधिपत्य शोधितांकों से राशियों के गुणकांको को गुणकर योग करने से राशिपिण्ड = ५७। इसी तरह शोधितांकों से ग्रहों के गुणकांकों को गुण कर योग करने से ग्रहपिण्ड = २२। इन दोनों का योग ५७ + २२ = ७९ = स्फुटपिण्ड या योगपिण्ड। शुक्राधिष्ठित राशि कर्क से सप्तम मकर में रेखायें ३ हैं। ३ से ७९ को गुण कर २७ से भाग देने पर शेष = २१। अतः अश्विनी से २१ वाँ नक्षत्र उत्तराषाढ तथा त्रिकोण नक्षत्र कृत्तिका तथा उ० फा० इन तीनों में शनि के आने से स्त्रीकष्ट समझना। इसी तरह गुणन फल में १२ से भाग देने पर प्राप्त शेष = ७। अतः मेषादि सप्तम तुला में भी शनि के आने पर स्त्री को कष्ट कहना चाहिए ॥

शन्यष्टक वर्गफल—

शनैश्चराश्रितस्थानादष्टमं मृतिभं मतम् ।
तदायुषो गृहमपि चिन्त्यमायुस्ततो बुधैः ॥ ३८ ॥
लग्नात् प्रभृति मन्दान्तं फलान्येकत्र योजयेत् ।
फलयोगसमेऽब्दे तु व्याधिं वैरं समादिशेत् ॥ ३९ ॥
इत्थं मन्दादिलग्नान्तफलान्येकत्र कारयेत् ।
एतद्योगसमे वर्षे जातस्य व्याधिमादिशेत् ॥ ४० ॥
योगद्वयसमेऽब्दे तु क्लेशो मृतिसमो भवेत् ।
तत्रारिष्टदशायोगेऽसंशयं मृत्युमादिशेत् ॥ ४१ ॥

शनि जिस स्थान में हों उससे अष्टम स्थान मृत्यु स्थान तथा आयुः स्थान कहा गया है। अतः उससे आयुर्विचार करना चाहिए। लग्न से शनि पर्यन्त (शन्यष्टक वर्ग में) फलों (रेखाओं) का योग करें। फलयोग तुल्य वर्ष में व्याधि, तथा शत्रुता का आदेश करें। इसी प्रकार शनि से लग्न पर्यन्त फलयोग करें फल योग तुल्य वर्ष में भी कष्ट कहें। उपर्युक्त दोनों फलायोगों के योगतुल्य (समस्त रेखायोग) वर्ष में मृत्युतुल्य कष्ट, उसी समय अरिष्ट दशा का भी संयोग हो तो निस्सन्देह मृत्यु होती है ॥ ३८–४१ ॥

शन्यष्टकवर्गीय त्रिकोणैकाधिपत्यशोधनचक्र—

श.				शु.	गु.	सू. मं.	बु.		चं.			ग्रह
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	राशि
३	१	५	५	५	३	३	३	१	४	३	३	रेखायोग
२	०	२	२	४	२	०	०	०	३	०	०	त्रि. शो.
२	०	२	२	४	२	०	०	०	३	०	०	ए. शो.

उदाहरण—यहाँ लग्न धनु से मीनस्थ शनि तक रेखाओं का योग = ४ + ३ + ३ + ३ = १३, अतः तेरहवें वर्ष, तथा शनि से लग्न पर्यन्त रेखाओं के योग तुल्य वर्ष ३ + १ + ५ + ५ + ५ + ३ + ३ + ३ + १ + ४ = ३३ वें वर्ष में जातक को रोग कष्ट दुश्मनी कहें।

उपर्युक्त दोनों योगों के योग तुल्य वर्ष १३ + ३३ = ४६वें वर्ष में मृत्यु के समान कष्ट, तत्रापि अरिष्टप्रददशा भी उपस्थित हो तो निःसंशय मृत्यु होगी ३८-४१

मृत्युसमय—

मन्दादष्टमराशिस्थफलैः पिण्डं विवर्धयेत् ।
पूर्ववत् सप्तविंशत्या हरेच्छेषर्क्षमागते ॥ ४२ ॥
किंवा तस्य त्रिकोणर्क्षं गते मन्दे मृतिर्भवेत् ।
सूर्यैस्तष्टितभे तद्वत् त्रिकोणेऽपि गते मृतिः ॥ ४३ ॥

शनि से अष्टमस्थ राशिफलों (रेखाओं) से पहले की तरह पिण्ड को गुणकर २७ से भाग दें शेष नक्षत्र तथा उसके त्रिकोण नक्षत्र (१०।१९) में शनि के आने पर जातक की मृत्यु कहें।

अथवा गुणनफल में १२ से भाग लेनेपर जो शेष हो तत्तुल्य मेषादिराशि या उस राशि के नवम-पञ्चम राशि में शनि के आनेपर मृत्यु कहनी चाहिए ॥ ४२–४३ ॥

उदाहरण—यहां भी एकाधिपत्यशोधितांकों से तत्तद्राशियों के गुणकांकों को गुणकर योग करने से राशिपिण्ड तथा ग्रहों के गुणकांकों को गुणकर योग करने से ग्रह पिण्ड, तथा दोनों के योग से स्फुटपिण्ड या योगपिण्ड होते हैं। यहां राशिपिण्ड=

१२३, ग्रहपिंड = ७३ दोनों का योग = १९६ = स्फुटपिण्ड या योगपिण्ड। इसको शनि से अष्टम तुला के रेखायोग ३ से गुणाकर २७ से भाग देने पर शेष = २१। अतः उत्तराषाढ तथा त्रिकोणनक्षत्र कृत्तिका तथा उत्तरफा० में शनि के आने से जातक की मृत्यु होगी। इसी तरह गुणनफल में १२ से भाग देनेपर आगत शेष ० तुल्य मीन राशि और मीन के त्रिकोणराशि कर्क, वृश्चिक में भी शनि के आनेपर मृत्यु होगी।

विशेष—

फलहीनगृहं याते मन्दे नैव शुभं भवेत्।
फलाधिकं गते तस्मिन् नियतं शुभमादिशेत् ॥ ४४ ॥

शनि यदि रेखाहीन राशि में जाय तो अशुभफल, अधिक रेखायुक्त राशि में जाने पर शुभफल देते हैं। रेखानुसार ही वे फलदायक होते हैं ॥ ४४ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे अष्टकवर्गफलाध्यायः समाप्तः ॥

अथ अष्टवर्गायुर्दायाध्यायः ॥ ७१ ॥

पराशर उवाच—

अथायुरष्टवर्गोत्थं वच्मि ते शृणु तन्मुने।
रेखाभावे दिनं युग्मं सार्धैकं रेखया स्मृतम् ॥ १ ॥
रेखाभ्यां दिनमेकं तु दिनार्धं तिसृभिर्मतम्।
अह्नां सप्त दिनार्धं च वेदरेखाभिरादिशेत् ॥ २ ॥
पञ्चभिर्युग्मवर्षं च षड्भिरब्दचतुष्टयम्।
सप्तभी रसवर्षं चाष्टाभिरष्टाब्दकं स्मृतम् ॥ ३ ॥
इत्थं समस्तग्रहजं मुने ! यच्चायुरागतम्।
तस्यार्धं विदितं स्पष्टमायुरष्टकवर्गजम् ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा (हे मैत्रेय)! अब मैं अष्टवर्गोत्थ आयुर्दाय बतलाता हूँ, सुनो! जिस राशि में रेखा नहीं हो उसके दो दिन, जिसमें एक रेखा हो उसके डेढ़ (१½) दिन, दो रेखा वाली राशि का १ दिन, तीन रेखा वाली राशि का आधा दिन, चार रेखा वाली राशि के साढ़े सात (७½) दिन, पांच रेखावाली राशि के २ वर्ष, छ रेखावाली राशि के ४ वर्ष, सात रेखावाली राशि के ६ वर्ष, और आठ रेखावाली राशि के आठ वर्ष, अष्टवर्गज आयु होती है। इस प्रकार सभी राशियों की आयु का योग करें, उसका आधा (योगार्ध) स्फुट अष्टवर्गज आयु होती है।

उदाहरणार्थं सूर्याष्टकवर्गीय रेखा चक्र—

सू. सं.	बु.		चं.		श.					शु.	गु.	ग्रह
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	२	राशि
६	५	२	६	३	३	५	४	४	६	३	१	रेखायोग
४	२	०	४	०	०	२	०	०	४	०	०	वर्ष
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
०	०	१	०	०	०	०	७	७	०	०	१	दिन
०	०	०	०	३०	३०	०	३०	३०	०	३०	३०	घटी

कन्या में ६ रेखाएं हैं अतः ४ वर्ष, तुला में ५ रेखाएं, अतः दो वर्ष, वृश्चिक में २ रेखाओं के कारण १ दिन, धन में ६ रेखाएं हैं अतः ४ वर्ष, मकर कुम्भ में ३ रे० हैं अतः ३०, ३० घटी मात्र, मीन में ५ रेखाएं हैं अतः दो वर्ष, मेष, वृष में ४, ४ रेखाएं है अतः प्रत्येक में साढ़े सात (७।३०) दिन मात्र, मिथुन में ६ रेखाएं हैं अतः ४ वर्ष, कर्क में ३ हैं, अतः ३० घटी मात्र, सिंह में १ रेखा है अतः डेढ़ (१½) दिन मात्र । सबों के योग करने से ।

वर्षादि—

सूर्याष्टकवर्गज आयु—१६।०।१९।०।० इसी प्रकार

चन्द्राष्टकवर्गज आयु—१६।०।२६।०।०

भौमाष्टकवर्गज आयु—६।०।२१।०।०

बुधाष्टकवर्गज आयु—२४।०।१८।०।०

जीवाष्टकवर्गज आयु—२०।१।१।०।७

शुक्राष्टकवर्गज आयु—१२।१।२।३०।०

शन्यष्टकवर्गज आयु—६।०।१३।३०।० सर्वयोग वर्षादि १००।५।११।०।०

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे अष्टवर्गायुर्दायाध्यायः समाप्तः ॥

अथ समुदायाष्टकवर्गाध्यायः ॥ ७२ ॥

पराशर उवाच—

जन्माङ्गचक्रे प्रतिभं सर्वाष्टकफलं न्यसेत् ।
ग्रहानपि यथापूर्वं समुदायाष्टकं हि तत् ॥ १ ॥
शुभाशुभफलं ज्ञेयं जातकस्य तु तद्वशात् ।

पराशर ने कहा—जन्माङ्गचक्र में लग्नादि भावों तथा ग्रहों को यथापूर्व विन्यस्त कर प्रत्येक राशि में सभी अष्टवर्गों के फलयोग को लिखें। अर्थात् अष्टकवर्गों में किसी एक भाव के जितने भी फल हों उनके योग को इस चक्र में उसी भाव में

संख्या द्वारा अङ्कित करें। इस प्रकार सिद्ध चक्र समुदायाष्टक वर्ग नाम से प्रसिद्ध है। उस चक्र के अनुसार जातक का शुभाशुभफल समझना चाहिए ॥ १ ॥

समुदाय रेखाफल—

त्रिंशाधिकफला ये स्यू राशयस्ते शुभप्रदाः ॥ २ ॥
पञ्चत्रिंशादिखाऽन्यन्तफलास्ते मध्यमा मताः ।
अतः क्षीणफला ये च राशयः कष्टदुखदाः ॥ ३ ॥
शुभकृत्ये शुभफलान् राशीन् संयोजयेद् बुधः ।
त्यजेत् कष्टप्रदांस्तांस्तु मुने कल्याणहेतवे ॥ ४ ॥
राशौ फलाधिके खेटः शुभदोऽप्यन्यथाऽशुभः ।

समुदायाष्टकवर्गीय चक्र के जिस राशि में त्रिंशाधिक रेखाएं हों उसका फल शुभप्रद, जिसमें २५ से ३० तक हो उसका मध्यम, २५ से भी अल्पसंख्यक रेखा वाली राशि का फल अधम (अशुभप्रद) होता है। शुभकार्य (विवाहोपनयनादि) में शुभफलद ही राशियों को ग्रहण, अल्परेखावाली राशियों को परित्याग करने से ही कल्याण होता है। अधिक रेखा वाला राशि में ग्रह भी शुभप्रद, अन्यथा (अल्प-रेखा वाली राशि में) वे अशुभप्रद होते हैं ॥ २–३ ॥

रेखानुसार भावफल—

एवं समस्तभावानां फलानि विमृशेद् बुधः ॥ ५ ॥
अधिकैः शोभनं विद्याद्धीने क्षतिमुदीरयेत् ।
मध्यमे मध्यमफलं विज्ञेयं भावजं सदा ॥ ६ ॥

इस प्रकार समस्त भावों का फल रेखानुसार समझना। अधिक रेखासंख्या हो तो उत्तम, अल्प रेखासंख्या में हीन, मध्यसंख्यक रेखा में मध्यम भावज फल समझना चाहिए ॥ ४–५ ॥

विशेष—

लाभे फलाधिके मध्याल्लाभादल्पे व्यये तथा ।
लग्नेऽपि चाधिकफले जातो भोगधनान्वितः ॥ ७ ॥
वैपरीत्ये तु दारिद्र्यं वेद्यमेवमसंशयम् ।

समुदायाष्टक वर्ग चक्र में दशम भाव में अङ्कित रेखा संख्या से एकादश भावाङ्कित रेखा संख्या अधिक हो, और एकादश भाव की रेखासंख्या से व्यय भाव की रेखा-संख्या अल्प हो और लग्न में भी अधिक रेखाएँ हों, तो जातक धन भोग से परिपूर्ण होता है। इसके विपरीत लाभस्थान की रेखासंख्या से व्ययभाव की रेखासंख्या अधिक तथा लग्न में रेखा की कमी हो तो निःसंदिग्ध दरिद्रता होती है।

युक्ति भी यहां स्पष्ट है। आय से व्यय अधिक होनेपर दरिद्रता और व्यय से अधिक आय होनेपर भोगैश्वर्य स्वभावसिद्ध है ॥ ७ ॥

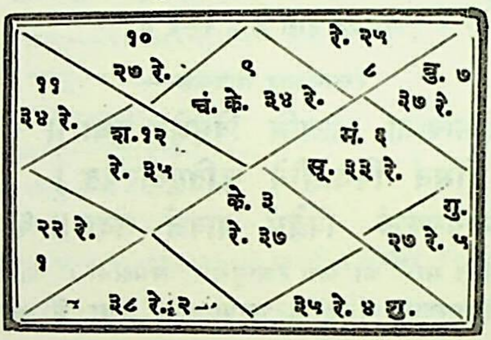
भावों का अवस्थात्रयजफल—

दशासमं तु भावानां विद्ध्याच्छकलत्रयम् ॥ ८ ॥
पापग्रहसमारूढं खण्डं क्लेशकरं स्मृतम् ।
सौख्यैर्युतं शुभं ज्ञेयं मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत् ॥ ९ ॥
फलं खण्डत्रयोद्भूतमवस्थात्रितये भवेत् ।

दशाफल के समान, द्वादश भावों का फल खण्डत्रय में समझना। जैसे लग्नादि चतुर्थभावान्त प्रथम, पञ्चमादि अष्टमान्त द्वितीय, नवमादि द्वादशान्त तृतीय खण्ड। प्रथम खण्ड का फल बाल्यावस्था में; द्वितीय का युवावस्था में, तृतीय खण्ड का वृद्धावस्था में, कहना। जिस खण्ड में पापग्रहों की अधिकता हो उस अवस्था में अधिक कष्ट, जिसमें शुभग्रह अधिक हों उस अवस्था में सौख्य भाग्योदय आदि शुभफल। जिसमें शुभ-पाप दोनों हों उस अवस्था में मिश्रित फल होता है ॥ ८–९ ॥

उदाहरण—

समुदायाष्टकवर्ग चक्र—



यहां में सू०, चं०, मं०, बु०, गु०, शु०, श०, ल० के अष्टक वर्गों में मेषादि-राशियों के रेखायोग—

मेष—४ + ३ + १ + २ + ५ + ५ + १ + १ = २२
वृष—४ + ६ + ४ + ५ + ५ + ४ + ५ + ५ = ३८
मिथुन—६ + ४ + ५ + ४ + ६ + ३ + ५ + ४ = ३७
कर्क—३ + ४ + ३ + ७ + ४ + ५ + ५ + ४ = ३५
सिंह—१ + ४ + १ + ३ + ५ + ५ + ३ + ५ = २७
कन्या—६ + ४ + ४ + ६ + ४ + १ + ३ + ५ = ३३
तुला—५ + ५ + ४ + ६ + ६ + ४ + ३ + ४ = ३७
वृश्चिक—२ + ४ + २ + २ + ४ + ४ + १ + ६ = २५
धन—६ + ३ + ५ + ४ + ४ + ६ + ४ + ३ = ३४

मकर—३ + ४ + २ + ५ + ३ + ३ + ३ + ४ = २७

कुम्भ—३ + ६ + ५ + ३ + २ + ५ + ३ + ६ = ३४

मीन— ५ + ३ + ३ + ७ + ६ + ५ + ३ + ३ = ३५

भावों की रेखासंख्या देखने से पञ्चम भाव में रेखाओं की संख्या कम है अतः बुद्धिमान्द्य, अल्पसन्तान, भाग्य तथा धन स्थान में भी त्रिंशाल्प रेखाएं हैं, अतः उज्ज्वल सौभाग्य की कमी, अर्थक्षय, तथा अन्य विपर्यय होना चाहिए। व्यय भाव में २५ मात्र रेखाएं हैं। अतः व्ययाल्पता, बुद्धिहीनता आदि फल कहना। अन्यत्र सभी भावों का फल इस कुण्डली में अत्युत्कृष्ट है। शरीर-सौख्य, भ्रातृ-मातृ-वाहनसुख, मातुलसुख, स्त्रीसुख, आयुर्वृद्धि, पितृसौख्य, पूर्ण आय ये सब निश्चित हैं।

सशान्ति रेखाफल—

रेखाभिः सप्तभिर्युक्ते मासे मृत्युर्नृणां भवेत् ॥ १० ॥
सुवर्णं विंशतिपलं दद्याद् द्वौ तिलपर्वतौ।
वसुरेखायुते मासे याति मृत्युवशं नरः ॥ ११ ॥
असत्फलविनाशाय दद्यात् कर्पूरजां तुलाम्।
रेखाभिर्नवभिः सर्पाद् म्रियते मनुजो ध्रुवम् ॥ १२ ॥
अश्वैश्चतुर्भिः संयुक्तं रथं दद्याच्छुभाप्तये।
रेखाभिर्दशभिः शस्त्रात् प्राणांस्त्यजति मानवः ॥ १३ ॥
दद्याच्छुभफलावाप्त्यै कवचं वज्रसंयुतम्।
रुद्रप्रमितरेखाभिरभिशापान्मृतेर्भयम् ॥ १४ ॥
दिक्पलस्वर्णघटितां प्रदद्यात् प्रतिमां विधोः।
आदित्यप्रमिताभिस्तु मरणं जलदोषतः ॥ १५ ॥
भूमिं दद्याद् ब्राह्मणाय ततः शुभफलं वदेत्।
त्रयोदशमिताभिस्तु व्याघ्रान्मृतिमवाप्नुयात् ॥ १६ ॥
विष्णोर्हिरण्यगर्भस्य दानं कुर्याच्छुभाप्तये।
चतुर्दशभिरेवं स्यान्मृतेर्भीतिरसंशयम् ॥ १७ ॥
वराहप्रतिमां दद्यात् कनकेन विनिर्मिताम्।
राजभीस्तिथिभिस्तद्वद्वास्तदानं विशिष्यते ॥ १८ ॥
रिष्टं षोडशभिः कल्पतरोर्मूर्त्तिं ददीत वै।
नगेन्दुभिर्व्याधिभयं गुडं धेनुं निवेदयेत् ॥ १९ ॥

समुदायाष्टक वर्ग में ७ या उससे न्यून रेखाएं हों तो उसी मास में, (उस राशि में सूर्य के आने पर) मृत्यु होती है। शान्ति के लिए २० पल सोना तथा दो तिल पर्वत

(पर्वताकार (प्रचुर) तिलों की ढेर) देना चाहिए। आठ रेखाएं हों तो उसी मास में मृत्यु, शान्त्यर्थ कपूर का तुलादान करना चाहिए। नौ रेखाएं हों तो सर्प से मृत्युभय, शान्त्यर्थ चार घोड़ाओं से युक्त रथ का दान करना। दश रेखाएं हों तो शस्त्र से मृत्यु, शान्त्यर्थ तथा शुभफल के लिए वस्त्र तथा कवच का दान करें। एगारह रेखाएं हों तो अभिशाप से मृत्युभय, शान्ति तथा शुभाप्ति के लिए दशपल सोने की चन्द्रमूर्त्ति बनाकर दान करें। द्वादशप्रमित रेखायें हों तो जल में मरण, शान्त्यर्थ ब्राह्मणों को भूमिदान करना चाहिए। त्रयोदशमित रेखाएं हों तो व्याघ्र से मरणभय, शान्त्यर्थ हिरण्यगर्भ भगवान् विष्णु की प्रतिमा का दान करना। चतुर्दश (चौदह) रेखाएं हों तो भी मृत्युभय, शुभप्राप्ति के लिए वराह भगवान् की सोने की प्रतिमा का दान करें। पन्द्रह रेखायें हों तो राजा से भय, शान्त्यर्थ हाथी का दान प्रशस्त है। षोडशप्रमित रेखाओं में अरिष्ट, शान्त्यर्थ कल्पतरु की प्रतिमा का दान करना चाहिए। सप्तदश रेखाएं हों तो रोगभय, शान्त्यर्थ गुड़, गाय का दान करना चाहिए ॥ १०—१९ ॥

कलहोऽष्टेन्दुभिर्दद्याद् रत्नगोभूहिरण्यकम् ।
देशत्यागोऽङ्कचन्द्रैः स्यात् शान्ति कुर्याद् विधानतः ॥ २० ॥
विंशत्या बुद्धिनाशः स्यात् कुर्याल्लक्षमितं जपम् ।
चन्द्राश्विभी रोगपीडा दद्याद्धान्यस्य पर्वतम् ॥ २१ ॥
युगाश्विभिर्बन्धुपीडा दद्यादादर्शकं बुधः ।
रामाश्विभिस्तु तन्मासे नानाक्लेशमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥
सौवर्णीं प्रतिमां दद्याद्रवेः सप्तपलैर्द्विज ! ।
वेदाश्विभिर्बन्धुहीनो दशगोदानमाचरेत् ॥ २३ ॥
सर्वरोगविनाशाय जपहोमादि कारयेत् ।
शराश्विभिर्बुद्धिहीनः पूज्या वागीश्वरी तदा ॥ २४ ॥
अङ्गाश्विभिर्वित्तहानिः काञ्चनं तत्र दीयते ।
नगाश्विभिस्तद्वदेवं श्रीसूक्तं तत्र संजपेत् ॥ २५ ॥
नागाश्विभिर्युते मासे जायते विविधा क्षतिः ।
सूर्यहोमश्च विधिना कर्त्तव्यः शुभकाङ्क्षिभिः ॥ २६ ॥
एकोनत्रिंशता चापि चिन्ताव्याकुलितो भवेत् ।
घृतवस्त्रसुवर्णानि तत्र दद्याद् विचक्षणः ॥ २७ ॥
त्रिंशता धनधान्याप्तिरिति जातकनिर्णयः ।

उक्त समुदायाष्टक वर्ग के जिस भाव में १८ रेखाएँ हों तो झगड़ा कलह,

शान्त्यर्थ रत्न, गाय तथा भूमि का दान करना। १९ रेखायें हो तो देशत्याग होता है, विधिपूर्वक शान्ति करें।

२० रेखायें हों तो बुद्धिक्षय होता है, शान्त्यर्थ लक्षमित इष्टजप करें। २१ रेखाएँ हो तो (उस राशि में सूर्य के आनेपर) रोगभय, शान्त्यर्थ धान्य की ढेर दान करें। २२ रेखायें हों तो बन्धुओं को पीड़ा, शान्त्यर्थ दर्पण का दान करें। २३ रेखायें हों तो उस मास में (सूर्य के उस राशिगत होनेपर) अनेकविध कष्ट, शान्त्यर्थ सात पल सोने की बनी सूर्य की प्रतिमा का दान करें। २४ रेखायें हों तो बन्धुहीन, शान्त्यर्थ गोदान करना। सभी रोगों से मुक्ति के लिए जप-होमादि कराना अच्छा है। २५ रेखायें हों तो बुद्धि में कमी, शान्त्यर्थ सरस्वती का पूजन करें। २६ रेखायें हों तो धनहानि, शान्त्यर्थ सुवर्णदान करें। २७ रेखायें हों तो भी धनक्षय, शान्ति के लिए श्रीसूक्त का जप उपयुक्त है।

२८ रेखायें हो तो अनेकविध क्षति, शान्त्यर्थ सूर्यप्रीत्यर्थ होम करना चाहिए। २२ रेखायें हों तो मनुष्य चिन्ता से व्याकुल होता है। शान्ति के लिए घी, वस्त्र, सोने का दान आवश्यक है। ३० रेखायें हो तो धन-धान्यप्राप्ति होती है।

ध्यान रहे कि उपर्युक्त फल तत्तद्राशि में सूर्य के आने पर समझना चाहिए। साथ ही शान्त्यर्थ उपर्युक्त निर्देश समर्थ राजा तथा बड़े लोगों के लिए है। अभाव स्थिति में तत्तद् वस्तुओं के मूल्य देने पर भी शान्ति होती है ॥ २०–२७ ॥

त्रिंशदधिक रेखाओं का फल—

खाग्नितोऽधिकरेखाभी रत्नद्रव्यादिसम्पदः ॥ २८ ॥
खवेदतोऽधिकाभिस्तु पुण्यश्रीरुपचीयते ।

जिस राशि में ३० से अधिक रेखायें हों उस राशि में (या संवत्सर में) रत्न, द्रव्य तथा अन्य सम्पदायें प्राप्त होती हैं। ४० से अधिक रहने पर (रत्न-पुत्रादि-सौख्य के साथ) पुण्य तथा लक्ष्मी (सम्पत्ति) की वृद्धि कहना ॥ २८

अष्टवर्ग-प्रशंसा—

अष्टवर्गविशुद्धा ये शुद्धाः सर्वत्र ते मताः ॥ २९ ॥
शुभकर्मसु तेनैव शोधनं विदुषां मतम् ।
तावदन्विष्यते विज्ञैः शुद्धिर्गोचरजा पुनः ॥ ३० ॥
शुद्धेऽष्टवर्गे सकलं गोचरं निष्फलं स्मृतम् ॥ ३१ ॥

अष्टवर्ग-विशुद्ध जो राशि रहे वह सभी शुभकार्यों में शुद्ध समझी जाती है। इसलिए सभी शुभ कार्यों में अष्टवर्ग-शोधन विद्वानों का सम्मत है। गोचर-शुद्धि तब तक आवश्यक समझी जाती जबतक अष्टकवर्ग-शोधन न हो। अष्टकवर्ग की शुद्धि हो जाने पर गोचर-शुद्धि निरर्थक है। गोचर-शुद्धि से अष्टकवर्ग-शुद्धि बहुत अधिक प्रधान है ॥ २९–३१ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे समुदायाष्टकवर्गाध्यायः समाप्तः।

अथ रश्मिफलवर्णनाध्यायः ॥ ७३ ॥

पराशर उवाच—

शृणु वच्मि नभोगानां रश्मीनेकाग्रमानसः ।
दिङ्नवेष्विषुसप्ताष्टशराः स्वोच्चे करा रवेः ॥ १ ॥
नीचे खं चान्तरे प्रोक्ता रश्मयस्त्वनुपाततः ।
नीचोनं तु ग्रहं भार्धाधिकं चक्राद् विशोधयेत् ॥ २ ॥
स्वीयरश्मिहतं षड्भिर्भजेत् स्यू रश्मयः स्वकाः ।

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) ग्रहों की रश्मियों को मैं बतलाता हूँ, सुनो । परमोच्च-स्थान में सूर्यादि ग्रहों की क्रमशः १०,९,५,५,७,८,५, ये रश्मियां होती हैं । परमनीच में शून्य रश्मि होती है । मध्य में अनुपात से रश्मिज्ञान करना । जैसे जिसकी रश्मि ज्ञेय हो राश्यादि उस ग्रह में नीच की राश्यादि को घटावें शेष ६ राशियों से अधिक हो तो उसे १२ में घटाकर शेष को, (६ राशियों से कम होने की स्थिति में उसी को) अपनी रश्मि से गुण कर ६ से भाग लें तो लब्धि अपनी रश्मिसंख्या होती है ॥

संस्कार विशेष—

आचार्यैर्बहुभिश्चात्र संस्कारो विहितो यथा ॥ ३ ॥
उच्चे च त्रिगुणाः प्रोक्ताः स्वत्रिकोणे द्विसंगुणाः ।
स्वर्क्षे त्रिघ्ना द्विसंभक्ता अधिमित्रगृहेऽपि च ॥ ४ ॥
वेदघ्ना रामसंभक्ता मित्रभे षड्गुणास्ततः ।
पञ्चभक्तास्तथा शत्रुगृहे यदि, दलीकृताः ॥ ५ ॥
अधिशत्रोर्गृहे द्विघ्ना पञ्चभक्ताः समे नहि ।
सितमन्दौ विना ताराग्रहा अस्तंगता यदि ॥ ६ ॥
विरश्मयो भवन्त्येवं फलं रश्मिवशान्मतम् ।

हे मैत्रेय ! बहुत से आचार्यों ने रश्मियों में संस्कार भी किया है । उच्च स्थान में ग्रह रहें तो साधित रश्मि को त्रिगुणित करना, स्वत्रिकोण में रहनेपर द्विगुणित करना, स्वभवनस्थ रहें तो त्रिगुणित कर दो से भाग देना, अधिमित्र क्षेत्र में ४ से गुणकर ३ से भाग देना, मित्रगृह में षड्गुणित कर ५ से भाग देना, शत्रुक्षेत्र में साधित रश्मि का आधा करना, अधिशत्रुगृह में दो से गुणाकर ५ से भाग देना, समक्षेत्र में यथावत् रखना चाहिए । बुध-शुक्रातिरिक्त सभी ग्रह अस्तंगत होनेपर रश्मिरहित हो जाते हैं । फलादेश रश्मि के आधार पर करना चाहिए ॥ ३–६ ॥

उदाहरण—

दशाभेदाध्याय में पृष्ठसंख्या ३२१ देखिए।

इस जन्मकुण्डली का तात्कालिक स्पष्ट ग्रह बनाया हुआ है। सू=५।२०।१३।२८ में सूर्य की नीच राश्यादि ६।१०।०।० को घटाने से शेष राश्यादि ११।१०।१३।२८ यह ६ राशि से अधिक है अतः इसे १२ राशि में घटाया तो शेष ०।१९।४६।३२ इसे उच्चस्थ रश्मिसंख्या १० से गुणाकर ६ से भाग देनेपर लब्धि ०।३३ यही सूर्य की रश्मिसंख्या हुई। सूर्य बुधक्षेत्र कन्या में स्थित हैं। बुध सूर्य के हैं नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु। अतः शत्रु ही सिद्ध हुए। शत्रु होने के कारण साधित रश्मि का आधा ०।१६ ही स्पष्ट रश्मि हुई।

स्पष्टचन्द्र=२।११।३४।० में चन्द्र नीच राश्यादि ७।३।०।० को घटाने से ७।८।३४।० यह ६ राशियों से अधिक है अतः १२ राशियों से घटाने पर ४।२१।२६।० इसे चन्द्रोच्चकथित रश्मिसंख्या ९ से गुणा करने से ३९।१२।५४।० इसमें ६ से भाग देनेपर ६।३२। चन्द्रमा अधिमित्रगृहस्थ है, अतः इसे ४ से गुणाकर ३ से भाग दिया तो लब्धि ८।४२ चन्द्र-स्पष्ट रश्मि हुई।

स्फुटभौम ४।१३।३।५८ में मङ्गल के नीचराश्यादि ३।२८।०।० को घटाने पर =०।१५।३।५८ यह ६ राशियों से अल्प है। अतः इसे ही मङ्गल की उच्चरश्मि-संख्या ५ से गुणा किया गु० फ=०।७५।१५।२९०=१।१५।१९।५० इसमें ६ से भाग दिया=०।१२। मङ्गल यहां भी अधिमित्र गृहस्थ हैं अतः साधित रश्मि ०।१२ को ४ से गुणा करने पुनः ३ से भाग देनेपर लब्धि=०।१६ यह मङ्गल की स्पष्ट रश्मि हुई।

स्पष्टबुध ५।६।७।५६ में बुध की नीच राश्यादि ११।१५।०।० को घटाने पर ५।२१।७।५६। यह ६ राशियों से अल्प है, अतः इसे बुध की उच्च रश्मि ५ से गुणा किया=२६।४५।३९।४० इसमें ६ से भाग दिया तो लब्धि ४।२७ यह बुध की रश्मि हुई। बुध स्वभवनस्थ है अतः रश्मि को ३ से गुणाकर २ से भाग दिया तो लब्धि ६।४० यही बुध की स्पष्ट रश्मि हुई।

स्पष्टगुरु ७।२७।११।४६ में गुरु की नीचराश्यादि ९।५।०।० को घटाने से १०।२२।११।४६ यह ६ रा० से अधिक है, अतः १२ रा. में घटाया तो १।७।४८।१४। इसे गुरु की उच्चरश्मि ७ से गुणनेपर गुणनफल में ६ से भाग दिया लब्धि १।१९ यही गुरु की रश्मि हुई। गुरु अधिमित्रगृहस्थ है, अतः साधित रश्मि को ४ से गुणा किया तो गु० फ० ४।७६=५।१६ इसमें ३ से भाग दिया लब्धि १।४५ यही गुरु की स्पष्ट रश्मि हुई।

स्पष्टशुक्र ६।१८।२।१० में शुक्र की नीचराश्यादि ५।२७।०।० को घटानेपर ०।२१।२।१० यह ६ राशियों से अल्प है। अतः इसे ही शुक्र की उच्चरश्मि ८ से गुणा किया तो गुणनफल २।४८।१७।२०। इसमें ६ से भाग दिया ल०=०।२८ यही शुक्र की रश्मि हुई। शुक्र स्वगृहस्थ है, अतः साधित रश्मि को ३ से गुणा किया गुणनफल=१।२४ इसे २ से भाग देने पर ल०=४।४२ यही शुक्र की स्पष्ट रश्मि हुई।

स्फुटशनि १०।२२।१७।५२ में शनि की नीच राश्यादि ०।२० को घटाया तो शेष १०।२।१७।५२ यह ६ रा० से अधिक है, अतः इसे १२ में घटाया तो अन्तर = १।२७।४२।८ इसे शनि की उच्चरश्मि संख्या ५ से गुणा किया तो गुणनफल ७।१८।३०।४० हुआ। इसमें ६ से भाग दिया तो ल०=१।१३ यह शनि की रश्मि हुई।

शनि भी स्वगृहस्थ हैं अतः साधित १।१३ को ३ से गुणा किया गु. फ. ३।३९ इसे २ से भाग दिया १।४९ यही स्फुटरश्मि हुई ॥ ३–६ ॥

ग्रहों की स्फुट रश्मि—

सूर्य = ०।१६
चन्द्र = ८।४२
मङ्गल = ०।१६
बुध = ६।४०
गुरु = १।४५
शुक्र = ०।४२
शनि = १।४९

रश्मिफल—

एकादिपञ्चकं यावद् रश्म्यङ्को यदि जायते ॥ ७ ॥
दरिद्रा दुःखिता दासा अपि जाताः कुलोत्तमे ।
परतो दशकं यावद् भारवाहा अकिञ्चनाः ॥ ८ ॥
स्त्रीपुत्रगृहहीनाश्च भवन्ति किल मानवाः ।

१ से ५ तक यदि रश्मि योग हो तो उच्चवंशज भी जातक दरिद्र, दुःखपूर्ण होता है। ५ से १० तक यदि रश्मि योग हो तो भी वह भार ढोनेवाला तथा अकिञ्चन (दरिद्र) स्त्री, पुत्र, घर से विहीन होता है ॥ ७–८ ॥

रश्मावेकादशमिते स्तोकपुत्रधना जनाः ॥ ९ ॥
करेन्दुभिश्चाल्पधना धूर्त्ता मूर्खाश्च दुर्बलाः ।
रश्मौ त्रयोदशमिते चौरा निःस्वाः कुलाधमाः ॥ १० ॥
वेदेन्दुभिर्धर्मनिष्ठः स्वबन्धुजनपालकः ।
वंशागतक्रियोपेतः प्राज्ञो भूरिधनो मतः ॥ ११ ॥
रश्मिभिः पञ्चदशभिर्गुणज्ञानसमन्वितः ।
स्ववंशमुख्यो ··नवानित्याह कमलोद्भवः ॥ १२ ॥
ततोऽधिके कुलेशाना बहुभृत्याः कुटुम्बिनः ।
कीर्त्तिमन्तो जनाकीर्णाः सुखपूर्णा यथाक्रमम् ॥ १३ ॥

रश्मिसंख्या ११ हो तो अल्प-धन, पुत्र, १२ हो तो स्वल्पधन, धूर्त्त तथा मूर्ख, १३ रश्मिसंख्या हो तो चोर, निर्धन, तथा कुलाधम, १४ रश्मिसंख्या में धर्मनिष्ठ आत्मीय बन्धुजनों का पालक, वंशागतकर्म करने वाला, विद्वान् , तथा धनपूर्ण, १५ रश्मिसंख्या में ज्ञानगुणसम्पन्न, अपने वंश में मुख्य, धनी, १६ रश्मिसंख्या में कुलश्रेष्ठ, १७ रश्मिसंख्या में अनेक भृत्यवाला, १८ रश्मिसंख्या में कुटुम्बपूर्ण, १९ रश्मियों में यशस्वी, २० में जनाकीर्ण (जिसके आगे पीछे हजारों व्यक्ति रहें) मनुष्य होता है ॥ ९–१३ ॥

अथैकविंशतिकरैः पञ्चाशज्जनपोषकः ।
नेत्राश्विप्रमितैस्तैस्तु जातो दानी कृपान्वितः ॥ १४ ॥
त्रयोविंशतितुल्यैस्तैः सुखसम्पत्तिशीलवान् ।

रश्मिसंख्या २१ हो तो जातक ५० व्यक्तियों का पालन करने वाला, २२ हो तो दानी तथा कृपालु, २३ रश्मिसंख्या हो तो वह सुखी, सम्पत्तिशाली तथा सुशील होता है ॥ १४ ॥

आत्रिंशत् परतः श्रीमान् सर्वसत्त्वसमन्वितः ॥ १५ ॥
राजप्रियस्तीव्रबुद्धिर्जनैश्च बहुभिर्वृतः ।

२४ से ३० तक रश्मिसंख्या में मनुष्य लक्ष्मीवान्, बलवान्, राजवल्लभ, तीव्रबुद्धिवाला, तथा अनेकजनों से आवृत (घिरा हुआ) होता है ॥ १५ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रान्तपाः स्युः खवेदकिरणावधि ॥ १६ ॥
शतमेकं समारभ्य सहस्रावधिपोषकाः ।
अत ऊर्ध्वं नृपः पञ्चाशत्करावधि कीर्त्तितः ॥ १७ ॥
ततोऽधिकै रश्मिभिस्तु सार्वभौमो महीपतिः ।

३० से अधिक ४० तक रश्मिसंख्या हो तो १०० से १००० व्यक्तियों का पोषण करने वाला प्रान्तपति, ४० से ५० तक रश्मिसंख्या हो तो राजा, ५० से भी अधिक होनेपर सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजा जातक होता है ॥ १६–१७ ॥

जन्मकालिकखेटोत्थरश्मीनां वशतस्तथा ॥ १८ ॥
जातिवंशानुरोधेन जन्मिनां फलमादिशेत् ।
ब्राह्मणो यज्ञनिरतः क्षत्रियः सार्वभौमकः ॥ १९ ॥
वैश्यस्तु नृपतिर्ज्ञेयः शूद्रो धान्यधनान्वितः ।

जन्मकालिक रश्मि तथा जातिवंश के अनुसार जातकों का फलादेश करना । वराहमिहिर ने भी "बुद्ध्वा वा जातिकुलदेशान्" कहा है । अधिक रश्मिपूर्ण ब्राह्मण वंशज बालक यज्ञकर्मनिष्ठ, क्षत्रिय चक्रवर्ती राजा, वैश्य भी राजा तथा शूद्र धन-धान्यपूर्ण होता है ॥ १८–१९ ॥

विशेष—

तुङ्गाभिलाषिद्युषदो रश्मयोऽधिकसत्फलाः ॥ २० ॥
नीचाभिलाषिणस्ते तु ततोऽल्पफलदाः स्मृताः ।

उच्चाभिमुख जाने वाले ग्रहों की रश्मियाँ अधिक शुभफलप्रद होती हैं। नीच की ओर जानेवालों की रश्मियां उससे अल्प फल देने वाली होती हैं ॥ २० ॥

वाच्यं फलं न विबुधै रश्मीनां ज्ञानमन्तरा ॥ २१ ॥
खगानां रश्मिवशतो ज्ञातुं तत् शक्यते यतः ।
अतः प्रसाध्य खेटानां करान् फलमुदीरयेत् ॥ २२ ॥

रश्मिज्ञान के विना फलादेश नहीं करना चाहिए। चूंकि ग्रहों के रश्मिज्ञान से ही फलज्ञान हो सकता, अतः रश्मियों के साधनानन्तर ही फलादेश करना चाहिए ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे रश्मिफलवर्णनाध्यायः समाप्तः ॥

अथ सुदर्शनचक्रफलाध्यायः ॥ ७४ ॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि ते विप्र ! यत्पुरा विधिनोदितम् ।
हिताय जगतां चक्रं यच्च ख्यातं सुदर्शनम् ॥ १ ॥
यतः समस्तभावनामब्दादीनां च प्रस्फुटम् ।
दैवज्ञो हि फलं वक्तुं क्षमस्तच्छृणु संयतः ॥ २ ॥

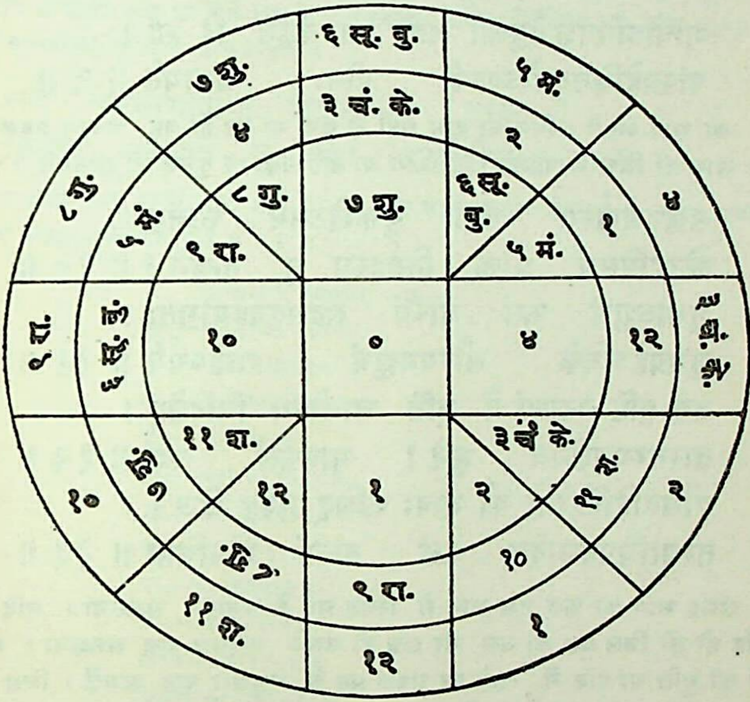
पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) अब मैं प्रसिद्ध सुदर्शनचक्र, जिसे ब्रह्मा ने स्वयं संसार के कल्याण के लिए कहा था, बतलाता हूं। उसी सुदर्शन चक्र के द्वारा सभी भावों तथा वर्षादिकों का प्रस्फुट फल ज्योतिषी बतलाने में समर्थ हो सकते, अतः उसे आप संयत होकर सुनें ॥ १–२ ॥

चक्रस्वरूप तथा न्यासविधि—

केन्द्रैकबिन्दुतो वृत्तत्रयं सम्यग् विनिर्मितम् ।
द्वादशारं च गदितं मुने ! चक्रं सुदर्शनम् ॥ ३ ॥
वृत्ते तु प्रथमे भावा लेखनीयाः खगान्विताः ।
तदूर्ध्ववृत्ते चन्द्राच्च भावाः खेटसमन्विताः ॥ ४ ॥
तदूर्ध्ववृत्ते सूर्याच्च सग्रहास्ते यथाक्रमम् ।
राशीनां त्रितयं चैवं प्रतिभं प्रतिपद्यते ॥ ५ ॥

एन्द्रिक तीन वृत्त ठीक से लिखें, जिनमें १२ कोष्ठ रहें, उसे ही सुदर्शन चक्र कहते हैं। प्रथम वृत्त के सभी कोष्ठों में लग्नादि भावों तथा ग्रहों का विन्यास करें द्वितीयवृत्तीय कोष्ठों में चन्द्रादि सभी भावों तथा ग्रहों को लिखें। (अर्थात् चन्द्रकुण्डली बनावें)। सब से ऊपर वाले वृत्त में सूर्याश्रित राशि से आरम्भ कर सभी भावों तथा ग्रहों का विन्यास करें। इस तरह चक्र के एक-एक भाव में तीन-तीन राशियां होती हैं ॥ ३–५ ॥

सुदर्शन चक्र—



यह सुदर्शन चक्र दशाभेदाध्याय की पृष्ठसंख्या ३२१ में दी हुई जन्मकुण्डली के आधार पर निर्मित है।

चक्र की विशेषता—

रवीन्दुतनुभिर्युक्तो लग्नभावोऽत्र जायते।
लग्नं तं परिकल्प्यैवं भावानन्यांश्च सग्रहान् ॥ ६ ॥
ग्रहस्थितिवशात् तेषां भावानामादिशेत् फलम्।
तनौ शुभो रविः प्रोक्तोऽशुभोऽन्यत्र प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥

पापस्तुङ्गस्वराशिस्थोऽप्यशुभो नैव सम्मतः ।
इत्थं विलोक्य भावानां शुभाशुभफलं दिशेत् ॥ ८ ॥

इस चक्र में लग्नभाव सूर्य, चन्द्र, तथा लग्न से युक्त, हो जाता है । लग्न भाव को लग्न समझकर, क्रमशः सभी भावों तथा ग्रहों का विन्यास कर ग्रह-स्थितिवश सभी भावों का फलादेश करें । लग्न में सूर्य शुभप्रद, अन्यत्र अशुभप्रद होते हैं । पाप ग्रह भी उच्च या स्व राशिस्थ हों तो अशुभ नहीं होते । इस प्रकार ग्रहों का शुभाशुभत्व देखकर भावों का शुभाशुभ फल कहना चाहिए ॥ ६–८ ॥

भावोऽधिपशुभैर्युक्तो दृष्टो वा वर्द्धते हि सः ।
पापग्रहेक्षितयुतोऽवश्यं हीनः प्रजायते ॥ ९ ॥

जो भाव अपने अधिप या शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो वह अवश्य प्रबल होता है । साथ ही जिस में पापग्रहों का योग या दृष्टि पड़े वह दुर्बल हो जाता है ॥ ९ ॥

सखेटभावस्य फलं युक्तखेटसमं स्मृतम् ।
खेटदृष्टिसमं प्रोक्तं निर्ग्रहस्य तु तन्मुने ! ॥ १० ॥
शुभाऽशुभं फलं वाच्यं सदसद्ग्रहयोगतः ।
शुभग्रहेऽधिके सौम्यमशुभं तद्विपर्यये ॥ ११ ॥
तत्र दृष्टिं ग्रहाणां वै युतिं चालोक्य निर्दिशेत् ।
तारतम्यवशेनैव मुने ! भावफलं सदा ॥ १२ ॥
योगदृष्टिविहीनो यो भावः कश्चिद् भवेद् द्विज ! ।
तस्याधिपवशादेव फलं वाच्यं विपश्चिता ॥ १३ ॥

सग्रह भाव का फल उस भाव में स्थित ग्रह के अनुसार समझना । यदि भाव निर्ग्रह हो तो जिस ग्रह की उस पर दृष्टि हो उसके अनुसार फल समझना । अनेक ग्रहों की युति या दृष्टि में रहने पर प्रबल ग्रह के अनुसार फल समझें । जिस भाव में शुभ ग्रहों का ही संयोग हो तो उस भाव का फल शुभद एवं केवल पाप ग्रहों का ही योग उस में रहे तो अशुभ फल समझना । या शुभग्रहों की ही दृष्टि जिस पर रहे, उस भाव का फल शुभ तथा अशुभग्रहों की ही दृष्टि रहने पर भावफल अशुभ, कहना । शुभाशुभ दोनों का योग या दृष्टि रहे तो मिश्रित फल, तत्रापि शुभाधिक्य में शुभ, अशुभाधिक्य में अशुभ फल कहना चाहिए ।

दोनों (पाप शुभ) की साम्यावस्था में प्रबल ग्रह का फल समझना चाहिए । बल की भी समता हो तो पाप शुभ दोनों तरह का फल (मिश्रित) कहना । दृष्टि में भी अधिक दृष्टिवाले ग्रह का ही फल समझना चाहिए । योग दृष्टिविहीन कोई भाव हो तो उसके स्वामी के शुभाशुभत्व से फलादेश करना चाहिए ॥ १०–१३ ॥

असद्ग्रहोऽपि सद्वर्गाधिक्ये सत्फलदः स्मृतः ।
सद्ग्रहो वाप्यसद्वर्गाधिक्येऽशुभफलप्रदः ॥ १४ ॥
वर्गा असत् शत्रुनीचस्थितानामशुभा मताः ।
स्वगेहतुङ्गसत्खेटवर्गाः शुभफलप्रदाः ॥ १५ ॥

पापग्रह भी शुभवर्ग (सप्तवर्ग सिद्ध) की अधिकता में शुभफलद हो जाते हैं, और शुभग्रह भी पापवर्ग की अधिकता में अशुभफलद होते हैं। पापग्रह, शत्रुराशि तथा नीच में स्थित ग्रह का वर्ग अशुभ, एवं स्वगृह, स्वोच्च में स्थित ग्रह तथा शुभग्रह का वर्ग शुभफलद होता है ॥ १४-१५ ॥

इत्थं समस्तभावानां खेटानामपि तत्त्वतः ।
विमृश्य सदसत्त्वं तु ततः फलमुदीरयेत् ॥ १६ ॥

इस तरह सभी भावों तथा ग्रहों का शुभत्व या अशुभत्व विमर्श के साथ समझ कर बाद उनका फलादेश करें ॥ १६ ॥

सभाव स्पष्टग्रह चक्र—

सू.—५।२०।१३।२८
चं.—२।११।३४।०
मं.—४।१३।३।५८
बु.—५।६।७।५६
गु.—७।२७।११।४६
शु.—६।१८।२।१०
श.—१०।२२।१७।५२
रा.—८।७।९।२६
के.—२।७।९।२६
लग्न—६।१।५१।६
सप्तम—०।१।५१।६
दशमल—२।२८।४०।५१
चतुर्थ—८।२८।४०।५१

तन्वादि भाव चक्र—

भाव	त.	ध.	स.	मि.	पु.	शत्रु	स्त्री	मृत्यु	धर्म	कर्म	आय	व्यय
रा.	६	७	७	८	९	११	०	१	१	२	३	५
अं.	१	०	२९	[illegible]	२९	०	१	०	२९	२८	२९	०
क.	५१	४७	४४	४०	४४	४७	५१	४७	४४	४०	४४	४७
वि.	६	४१	१६	५१	१६	४१	६	४१	१६	५१	१६	४१

ग्रहों का सप्तवर्ग चक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.
गृह	बु.	बु.	सू.	बु.	मं.	शु.	श.	गु.	बु.
होरा	सू.	सू.	सू.	चं.	सू.	चं.	चं.	सू.	सू.
द्रेष्काण	शु.	शु.	गु.	बु.	चं.	श.	शु.	गु.	बु.
नवांश	चं.	श.	चं.	श.	गु.	गु.	मं.	बु.	गु.
द्वादशांश	शु.	शु.	श.	मं.	बु.	शु.	शु.	श.	सू.
त्रिशांश	श.	गु.	गु.	बु.	मं.	गु.	बु.	श.	श.
सप्तमांश	चं.	सू.	मं.	मं.	मं.	श.	चं.	श.	चं.
शुभवर्ग	६	४	४	४	३	५	६	३	४
पापवर्ग	१	३	३	३	४	२	१	४	३

पापग्रह का भी अपना वर्ग शुभवर्ग में ही परिगणित किया गया है।

तन्वादिभावों का सप्तवर्ग चक्र—

भाव	तनु	धन	सह	मित्र	पुत्र	शत्रु	जाया	मृत्यु	धर्म	कर्म	आय	व्यय
गृह	शु.	मं.	मं.	गु.	श.	गु.	मं.	शु.	शु.	बु.	चं.	बु.
होरा	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
द्रेष्काण	शु.	मं.	चं.	सू.	बु.	गु.	मं.	शु.	श.	श.	गु.	बु.
नवांश	शु.	चं.	गु.	गु.	बु.	चं.	मं.	श.	बु.	बु.	गु.	चं.
द्वादशांश	शु.	मं.	शु.	मं.	गु.	मं.	मं.	शु.	मं.	शु.	बु.	बु.
त्रिशांश	मं.	शु.	मं.	शु.	मं.	शु.	मं.	शु.	मं.	शु.	मं.	शु.
सप्तमांश	शु.	शु.	मं.	बु.	श.	बु.	मं.	मं.	शु.	गु.	चं.	गु.
शुभवर्ग	५	४	३	५	३	६	०	५	३	६	५	७
पापवर्ग	२	३	४	२	४	१	७	२	४	१	२	०

ग्रहों का शुभाऽशुभत्व विचार—

सूर्य स्वभावतः पापग्रह है, किन्तु सप्तवर्ग चक्र में सूर्य का शुभवर्गाङ्क ६ पापवर्गाङ्क १ मात्र है। अतः सूर्य का क्रूरत्व नष्ट होकर जातक के लिए मध्यम (उदासीन) सिद्ध हुआ। चन्द्र शुभग्रह हैं और उनका शुभवर्गाङ्क पापवर्गाङ्क की अपेक्षा अधिक है, अतः सर्वथा वे शुभप्रद होंगे। मंगल स्वयं क्रूरग्रह हैं, किन्तु सप्तवर्ग में मंगल का शुभवर्गाङ्क ४ है पापवर्गाङ्क ३, अतः मंगल का भी क्रूरत्व नष्ट हो गया। वे भी इस जातक के लिए मध्यम (उदासीन) सिद्ध हुए। अर्थात् जातक को उपकार नहीं तो अपकार भी नहीं करेंगे। बुध स्वयं शुभग्रह हैं और सप्तवर्ग चक्र में बुध का शुभवर्गाङ्क ४ है अशुभवर्गाङ्क ३, अतः बुध भी इस जातक के लिए शुभप्रद होंगे।

गुरु स्वयं शुभग्रह, किन्तु सप्तवर्गचक्र में शुभवर्गाङ्क ३, अशुभवर्गाङ्क ४। अतः गुरु इस जातक के लिए मध्यम (शुभाशुभकारित्व से अलग) सिद्ध हुए। शुक्र स्वयं शुभग्रह हैं, सप्तवर्ग चक्र में शुभवर्गाङ्क ५ है अशुभवर्गाङ्क २ मात्र, अतः शुक्र जातक के लिए सर्वथा शुभप्रद होंगे। शनि स्वयं क्रूर हैं किन्तु शनि का शुभवर्गाङ्क ६ पापवर्गाङ्क १ मात्र अतः शनि सर्वथा उदासीन रहेंगे, अशुभकारी नहीं। राहु का पापवर्गाङ्क अधिक है स्वयं भी पाप हैं अत जातक के लिए अशुभकर होंगे। केतु का शुभवर्गाङ्क अधिक है अतः केतु इस जातक के लिए मध्यम सिद्ध हुए।

अतः इस जातक के लिए चन्द्र, बुध, शुक्र शुभकारक सूर्य, मंगल, गुरु शनि तथा केतु मध्यम, राहु अशुभकारक।

सुदर्शनचक्रानुसार भावों का फल विचार—

तनुभाव में बु. सू. चं. के. तथा शुक्र इन पाँच ग्रहों का संयोग है सूर्य के रहने से 'तनौ शुभो रविः प्रोक्तोऽशुभोऽन्यत्र प्रकीर्त्तितः' के अनुसार लग्नस्थ सूर्य शुभप्रद हैं। पाँच ग्रहों के संयोग से भाव का प्रबल होना निश्चित है ग्रहों के शुभाशुभत्व दृष्टि से चन्द्र, बुध. शुक्र सर्वथा शुभकारक हैं, केतु उदासीन। अतः तनुभावस्थ ५ ग्रहों में से ३ ग्रह सर्वथा शुभकारक हैं, अतः इस जातक को शारीरिक सौख्य-अत्युत्तम तथा सौभाग्यशील होना चाहिए। तनुभाव में शुभवर्गाङ्क पापवर्गाङ्क से अधिक है। अतः वह सत्यकार्य की ओर ही प्रवृत्त होगा। असत्कार्य की ओर उसका झुकाव नहीं रहेगा।

धनभाव में शुक्र गुरु दो ग्रह हैं। शुक्र स्वभवनस्थ, सप्तवर्ग में भी सर्वथा शुभकारक इसके लिए हैं। गुरु मध्यम हैं। धनभाव में शुभवर्गाङ्क ४, पापवर्गाङ्क ३ है। अतः जातक सुखी, सम्पन्न, धनवान तथा अच्छे मार्ग से धनोपार्जन करनेवाला होगा ऐसा समझना चाहिए।

सहजभाव में गुरु. मं०, राहु का संयोग है। ग्रहों के योग से भाव प्रबल अवश्य हुआ, किन्तु राहु इसके लिए अशुभकारक गुरु, मंगल उदासीन (मध्यम) हैं। शनि, मंगल, दोनों की चन्द्र सूर्य कुण्डली में सहज भाव पर पूर्ण दृष्टि, अतः जातक को भातृ सौख्य का अभाव या अत्यल्प, भृत्यादि सुख भी अल्प ही कहना।

सुखभाव में भी सूर्य, बुध, राहु ये तीन ग्रह हैं। ग्रहों के रहने से भाव की प्रबलता तो सिद्ध हुई ही, साथ ही इस भाव में बुध सर्वथा शुभकारक, सूर्य मध्यम, राहु अशुभकारक हैं। भाव में शुभवर्गाङ्क ५ अशुभवर्गाङ्क २ मात्र है। अतः मातृ, गृह, भूमि, वाहन सुख इसे अवश्य होगा।

पुत्रभाव में शनि शुक्र दो ग्रह हैं। ग्रहों की स्थिति से भाव की प्रबलता है। शुक्र इसके लिए शुभकारक, शनि उदासीन हैं। शुभवर्गाङ्क की अपेक्षा पापवर्गाङ्क अधिक है। गुरु की पञ्चमभाव पर एकपाद तथा त्रिपाद दृष्टि भी है अतः विद्या मध्यम, पुत्रसुख भी मध्यम, कन्या अधिक होनी चाहिए।

शत्रुभाव में शुभवर्गाङ्क ६ पापवर्गाङ्क १ है। गुरु तथा शनि इसमें हैं। सग्रह भाव होने के कारण प्रबल हुए। शनि, गुरु दोनों इस जातक के लिए मध्यम (उदासीन) हैं। अतः इसे शत्रुभय कभी नहीं प्रत्युत शत्रु स्वयं विनष्ट होंगे। रोगभय भी अल्प तथा मातुल, सुख पूर्ण कहना चाहिए।

जायाभाव में राहुमात्र है। राहु इसके लिए अशुभकारक हैं। जायाभाव में शुभवर्गाङ्क ० अशुभ वर्गाङ्क ७ है। जायाभाव पर शुक्र, बुध, सूर्य, चन्द्र की पूर्ण दृष्टि है। चन्द्र, बुध, शुक्र इसके लिए सर्वथा शुभकारक हैं अतः स्त्रीसुख उत्तम, राहु-प्रयुक्त स्त्री रुग्णा, लग्नेश लग्नस्थ हैं अतः द्विभार्य या जार इसे कहना चाहिए।

अष्टम भाव में कोई ग्रह नहीं है। अतः भाव दुर्बल है। शुभवर्गाङ्क ५ अशुभ-वर्गाङ्क २ मात्र है। मध्यफलद गुरु, शनि की इसभाव पर दृष्टि है, अतः आयु मध्यम ही कहनी है। शुभवर्गाङ्क अधिक होने के कारण जीवन में सफलता तथा कष्ट का अभाव कहना चाहिए।

भाग्यभाव में चन्द्र, केतु, शनि ये तीन ग्रह हैं। ग्रहों के संयोग से भाव की प्रबलता है। साथ ही चन्द्रमा इस जातक के लिए सर्वथा शुभद, केतु अशुभप्रद, शनि मध्यम फलद हैं। अशुभवर्गाङ्क शुभवर्ग की अपेक्षा अधिक है। उस भाव पर गुरु, मंगल की दृष्टि भी है, गुरु, मंगल दोनों इसके लिए मध्यफलद हैं, अतः भाग्य मध्यम तथा अशुभवर्गाङ्क अधिक होने से अशुभ कार्य में प्रवृत्ति कहनी चाहिए।

कर्मभाव में चं., केतु का योग है। चन्द्रमा शुभप्रद, केतु अशुभप्रद हैं। कर्मभाव में शुभवर्ग ६ पापवर्ग १ मात्र है। भाव में तीनों शुभराशि हैं। गुरु की पूर्ण दृष्टि है अतः पितृसौख्य, शुभकार्य में प्रवृत्ति, सम्मान आदि सम्भव है।

आयभाव में मंगल का संयोग है। मंगल इस जातक के लिए मध्यफलद हैं। आयभाव में दो पापराशि एक शुभराशि है, अन्तर एक पाप ही शेष हुआ। शुभवर्गाङ्क ५ पापवर्गांक २ है अतः इस जातक को आय की कमी, जो भी आय हो वह सद्वृत्ति से, ऐसा कहना।

व्यय भाव में बुध, सूर्य, मंगल, तीन ग्रह हैं। बुध सर्वथा शुभद, सूर्य, मंगल मध्यफलद हैं। शुभवर्गाङ्क ७ अशुभवर्गाङ्क ० मात्र है। अतः इसका व्यय सत्कार्य में होगा।

मैत्रेय उवाच—

चक्रात् सुदर्शनादेव फलं चेज्जन्मिनां भवेत्।
प्राचीनैर्ऋषिभिर्लग्नवशात् तदुदितं कथम्? ॥ १७ ॥
संशयो मम च महानिति नान्योऽपनेष्यति।
त्वमेव मुनिशार्दूल! कृपया भेत्तुमर्हसि ॥ १८ ॥

मैत्रेय ने कहा—(हे महर्षे!) यदि सुदर्शन चक्र के द्वारा ही समस्त फलादेश जातकों का हो तो प्राचीन ऋषियों ने लग्न के द्वारा उन्हें क्यों बतलाया? यह महान्

संशय आपके अतिरिक्त अन्य के द्वारा नहीं हट सकता, अतः कृपया इसे आप हटावें ॥ १७–१८ ॥

पराशर उवाच—

लग्नेतरस्थानगतौ चन्द्रार्कौ स्तस्तु चेत् पृथक् ।
चक्रात् सुदर्शनात्तर्हि फलादेशः सुसम्मतः ॥ १९ ॥
द्वावेकत्र त्रयो वापि यदि तर्हि तनोर्वशात् ।
ग्रहभावसुविन्यासपूर्वकं फलमादिशेत् ॥ २० ॥

पराशर ने कहा—लग्न से अतिरिक्ति स्थान में सूर्य, चन्द्र अलग-अलग रहें तो इसी सुदर्शन चक्र से फलादेश करना सम्मत है । उन तीनों (लग्न, चन्द्र, सूर्य) में दो या तीनों एकत्र हों तो लग्नवश ग्रहों तथा भावों का विन्यास कर फलादेश करें ॥ १९–२० ॥

अथाहं वच्मि भावानां दशान्तरदशादितः ।
चक्रात् सुदर्शनादेवाब्दमासादिभवं फलम् ॥ २१ ॥
भावानां तु दशा भुक्ति-प्रत्यन्तरमितिः क्रमात् ।
वर्षैकमाससार्ध-द्विदिनानि परिकल्पयेत् ॥ २२ ॥
भावाधीशाद् वत्सरेषु भावानां कल्पयेद् दशाः ।
भावं तं तं वर्षलग्नं प्रकल्प्य प्रतिभावजम् ॥ २३ ॥
फलं तत्तद्वर्षमध्ये जानीयाद् गणकोत्तमः ।
प्रतिभावं मासमेक-मन्तरप्रमितिर्यतः ॥ २४ ॥
मासलग्नं तु तं भावमन्यानपि ततः क्रमात् ।
प्रकल्प्य भावजनितं फलं मासोद्भवं दिशेत् ॥ २५ ॥
एवं सार्धद्विघस्रैस्तु ज्ञेयं प्रत्यन्तरोद्भवम् ।

अब मैं भावों की दशा, अन्तर्दशा आदि से इसी सुदर्शनचक्र पर से वर्ष, मास आदि का फल बतलाता हूँ । भावों की दशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर्दशा का मान क्रमशः १ वर्ष, १ मास तथा ढाई दिन मानना । भावेश से आरम्भ कर सभी भावों की एक वर्ष प्रमाण से दशा लगावें । उसी भाव को वर्ष लग्न मानकर अग्रिम भावों को धनादि भाव कल्पना कर आगे वर्णित फल-कथन-विधि से सभी भावों का फल उस वर्ष में समझना चाहिए । प्रतिवर्ष प्रतिभाव में एक-एक मास अन्तर्दशा का मान होता है । फिर अन्तर्दशा वाली तनुभाव से आरम्भ कर १२ राशियों को क्रमशः स्थापित करें । एवं लग्नादि द्वादश भावों का ही फल उस मास

का फल होगा। इसी तरह प्रत्येक भाव की प्रत्यन्तर्दशा २॥ दिन ही होती है। प्रत्यन्तर्दशा वाली राशि को लग्न तथा अन्य भावों को धनादि भाव मानकर आनीतभाव-फल उस २॥ दिन के फल होते हैं। इसी तरह १२॥ दण्ड प्रमित विदशा का मान होता है। ऐसे ही उसका भी फल लाया जा सकता है॥ २१–२५॥

फलकथनविधि—

केन्द्रकोणाष्टमे सौम्या लग्नतस्तु शुभप्रदाः॥ २६॥
यत्र भावे सैंहिकेयोऽवश्यं तद्भावहानिदः।
पापा वा यत्र बहवस्तत्तद्भावविनाशनम्॥ २७॥
त्रिषड्लाभगतैः पापैर्विरिष्फारिगतैः शुभैः।
शुभमेवं वर्षमास-प्रारम्भे भावजं फलम्॥ २८॥
आयुर्दाये दशाऽऽवृत्त्या भावानां कल्पयेद् दशाः।

दशारम्भकालिक लग्न से केन्द्र (१।४।७।१०) कोण (९।५) तथा अष्टम में स्थित शुभग्रह शुभप्रद होते हैं। राहु जिस भाव में रहें या केतु भी जिसमें रहें उस भाव की हानि होती है। अधिक पापग्रह जिसमें हों उस भाव का भी विनाश होता है। ३।६।११ में पापग्रह ६।१२ के अतिरिक्त स्थानों में शुभग्रह हों तो शुभफल कहना चाहिए। इसी तरह वर्षारम्भ या मासारम्भ में भावों से उस वर्ष या उस मास का फल समझना। आयुर्दाय के विचार में १० आवृत्ति से लग्नादि द्वादश भावों की दशा या अन्तर्दशा का विचार करें। १० आवृत्ति से १२×१०=१२० वर्ष परमायु समझ कर ही दशा लगाई जाती है॥ २६–२८॥

उदाहरण—प्रथम वर्ष में जन्मलग्न ही वर्षलग्न होता है। सुदर्शनचक्रोक्त कुण्डली में जन्मलग्न तुला है। प्रथम दशा तुला की ही हुई क्योंकि वही वर्ष लग्न भी हुआ। धनादि भाव प्रथम वर्ष में यथावत् रह गए। फलकथन-विधि के अनुसार त्रिषड्लाभस्थ पापग्रह शुभप्रद होते हैं। यहाँ भी राहु-मंगल तीसरे तथा एगारहवें में हैं। शुभ ग्रहों में बुधातिरिक्त सभी ६।१२। से अतिरिक्त स्थान में ही हैं। लग्न में अपने घर के शुक्र हैं। अतः इसको शारीरिक सौख्य पूर्णरूपतः होगा। धनभाव में गुरु का रहना, पञ्चमभाव में स्वक्षेत्रीय शनि का होना, आदि भी अच्छा ही है। व्ययभाव में पाप तथा शुभ दोनों हैं अतः व्यय भी मध्यम रूप का होना चाहिए। मंगल का एकादश में राहु का तीसरे में रहना अतिशुभद है। इस प्रकार जातक का प्रथम वर्ष का दशाफल अच्छा ही हुआ।

द्वितीयादि वर्षों में धनादि भावों को वर्षलग्न तथा और अग्रिम भावों को धनादि भाव कल्पना कर उपर्युक्त विधि से द्वितीयादि द्वादशान्त वर्षों का दशाफल समझना चाहिए।

अन्तर्दशा विचार—प्रथम वर्ष में तनुभाव तुला की दशा में तुला की ही अन्तर्दशा हुई। द्वितीय मास में वृश्चिक की अन्तर्दशा हुई। वृश्चिक (धनभाव) को

ही द्वितीय मास लग्न मानकर धनुरादि को धनादि भाव समझें। द्वितीय मास के लग्न वृश्चिक में स्वयं गुरु बैठे हैं, अतः शारीरिक सौख्य अत्युत्तम, चतुर्थ में स्वक्षेत्रीय शनि के होने से मातृसुख आदि ग्रहस्थित्यनुसार फल समझना चाहिए। द्वितीय मास लग्न से अष्टम में शुभग्रह चन्द्र अरिष्टकारक नहीं प्रत्युत शुभप्रद होंगे। केन्द्र कोणाष्टम में शुभग्रह शुभकारक होते हैं। इसी तरह तृतीयादि भावों को तनुभाव मानकर तृतीयादि मासों का फल समझना चाहिए। इस तरह वर्षभर के सभी मासों का फल जानना।

पुनः द्वितीय वर्ष में भी धनभाव को वर्ष लग्न मानकर वृश्चिकादि १२ राशियों की एक-एक मास तुल्य अन्तर्दशा मानकर तत्तद् भावों को मास-लग्न मानें तथा उपर्युक्त विधि से द्वितीयवर्षीय सभी मासों का शुभाशुभ फल समझें।

इस प्रकार जन्मतः १२ वर्षों तक वर्ष तथा मासों का फल समझना, पुनः त्रयोदश वर्ष में जन्मलग्न को वर्ष लग्न मानकर उपर्युक्त विधि से बारह वर्षों तथा वर्षान्तर्गत सभी मासों का फल जानना। इस प्रकार दश आवृत्ति में १२० वर्षों का शुभाशुभ फल जाना जा सकता है।

प्रत्यन्तर्दशोदाहरण—तत्तद् मास-लग्न से आरम्भ कर १२ राशियों की प्रत्य-अन्तर्दशा होती है। प्रत्यन्तर्दशा का मान २॥ दिन होता है। उक्त विधि से आनीत फल २॥ दिन का समझें।

यहाँ वर्ष, मास, दिनादि सौर मान से समझना।

प्रथमावृत्ति का दशाचक्रोदाहरण—

	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	ने.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.
	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
जन्म संवत् १९९३	१९९४	१९९५	१९९६	१९९७	१९९८	१९९९	२०००	२००१	२००२	२००३	२००४	२००५
	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३

प्रथम वर्ष में अन्तर्दशा

राशि	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.	से.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०
सम्वत्	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९४	१९९४	१९९४	१९९४	१९९४	१९९४
सू. रा.	६	७	८	९	१०	११	०	१	२	३	४	५
अं.	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०
क.	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३

इसी तरह प्रत्येक मास का फल अन्तर्दशा लगाकर ग्रहस्थित्यनुसार समझना।

फलनिर्णय—

सुदर्शनोद्भवं ज्ञात्वा फलं वर्षादिसम्भवम् ॥ २९ ॥
अष्टवर्गोद्भवं चापि ताभ्यां फलविवेचनम् ।
समत्वे तूभयत्रापि फलं तदखिलं दिशेत् ॥ ३० ॥
असमत्वेऽधिकं यत् स्यात् तत्फलं बलतो वदेत् ।

इस प्रकार सुदर्शनचक्रोद्भव वर्ष, मास, आदि का फल तथा अष्टवर्गोद्भव फल जानकर फलनिर्णय करना चाहिए। दोनों तरह से शुभत्व या दोनों से अशुभत्व आवे तो वह (शुभत्व या अशुभत्व) पूर्णरूपतः कहना चाहिए। एक प्रकार से शुभत्व दूसरे से अशुभत्व आने पर बलानुसार जिसकी अधिकता हो उसे ही मान्य समझना चाहिए ॥ २९–३० ॥

प्रत्यन्तर्दशोदाहरणचक्र—

राशि	तुला	वृश्चि	ध.	म.	कु.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
घटी	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०
सम्वत्	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३	१९९३
सूर्य रा.	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	६	६
अं.	२२	२५	२७	०	२	५	७	१०	१२	१५	१७	२०
क.	४३	१३	४३	१३	४३	१३	४३	१३	४३	१३	४३	१३

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे सुदर्शनचक्रफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ पञ्चमहापुरुषलक्षणाध्यायः ॥ ७५ ॥

पराशर उवाच—

अथ वच्मि लक्ष्म पञ्च-महापुरुषजं च ते ।
सबलैः स्वर्क्षतुङ्गस्थैः केन्द्रगैर्भूमिजादिभिः ॥ १ ॥
रुचको भद्रहंसौ च मालव्यशशकावपि ।
क्रमादेते निगदिता महापुरुषसंज्ञकाः ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) अब मैं पञ्चमहापुरुषलक्षण आपको बतलाता हूँ। प्रबल, स्वभवन या स्वोच्चस्थ भौमादिग्रह यदि केन्द्रगत हों (अर्थात् स्वगृह या स्वतुङ्ग में रहते हुए केन्द्र में हो) तो क्रमशः रुचक, भद्र, हंस मालव्य, तथा शश योगोत्पन्न पाँच महापुरुष होते हैं ॥ १–२ ॥

रुचक लक्षण—

अत्युत्साहः शुभ्रकान्तिर्लम्बास्योऽतिबलस्तथा ।
सुभ्रूः कृष्णालको युद्ध-प्रेमी सुरुचिमांस्तथा ॥ ३ ॥
लोहितश्यामलः शत्रु-हन्ता क्रूरः पतिर्नृणाम् ।
विवेकशीलो मन्त्रज्ञः कृशाङ्घ्रिः स्तेनसत्तमः ॥ ४ ॥
वज्रेष्वासपाशवीणाचक्रोक्षाङ्कयुतः शये ।
मन्त्राभिचारयोर्दक्षो विप्रभक्तः शताङ्गुलः ॥ ५ ॥
समास्यमध्यो रुचकस्तथैव द्विजसत्तम ! ।
तुलासहस्रप्रमितो दैवज्ञैः परिकीर्त्तितः ॥ ६ ॥
पात्यब्दसप्तर्ति यावद् विन्ध्यसह्याद्रिनीवृतम् ।
आयुधेनाग्निना याति देवलोकं स पूरुषः ॥ ७ ॥

रुचक (योगोत्पन्न) पुरुष अधिक उत्साहसम्पन्न, निर्मल कान्तिवाला, दीर्घानन, प्रबल, सुन्दर भ्रूवाला, कृष्णकेशधारी, युद्धप्रेमी, सुन्दर (वस्तुओं में) अभिरुचि दिखलाने वाला, रक्तश्यामवर्ण, शत्रुनाशक, क्रूरस्वभाववाला, राजा, विवेकी, दुर्बल पैर वाला, चोरनायक, हाथ में वज्र, चाप, पाश, वीणा, चक्र, वृषभ का चिह्न धारण करने वाला, मन्त्र (गुप्तमन्त्रणा) तथा अभिचार (मारण-मोहन आदि) में निपुण, ब्राह्मणभक्त, लम्बाई में शताङ्गुल होता है । वह मुख तथा मध्य (कटिप्रदेश) में तुल्य, (वजन में) तुला सहस्र तुल्य, (४ कर्ष = १ पल, तथा १०० पल = १ तुला है) विन्ध्य तथा सह्यसंज्ञक पर्वतीय प्रदेश का ७० वर्षों तक पालन करने वाला होता है । अन्त में अस्त्र या अग्नि के द्वारा देवलोक (स्वर्ग) जाता है ॥ ३–७ ॥

भद्रलक्षण—

पीवरोरःस्थलः सिंह-निभो द्विपगतिर्नरः ।
आजानुदीर्घबाहुश्च योगज्ञः सर्वतः सुधीः ॥ ८ ॥
शोभनश्मश्रुपादश्च कामुकः सात्त्विकस्तथा ।
शंख-चक्र-गदा-बाण-द्विप-चिह्न-समन्वितः ॥ ९ ॥
हलध्वजसरोजाङ्कै-रङ्कितार्ङ्घ्रिकरः पुमान् ।
शास्त्रज्ञश्चारुनासश्चासितालकयुतः सुधीः ॥ १० ॥
स्वाधीनः सर्वकृत्येषु स्वकीयजनपालकः ।
सुहृद्भिर्भुक्तविभवः कलत्रात्मजसंयुतः ॥ ११ ॥

कुशलो नृपतिर्मध्य-प्रदेशपरिपालकः ।
यावदब्दशतं भाति भद्रसंज्ञस्तु पूरुषः ॥ १२ ॥

भद्रसंज्ञक महापुरुष, पीवर (पीन) वक्षस्थलवाला, सिंह सदृश, हाथी की तरह गतिशाली, जानुपर्यन्त दीर्घ बाहुवाला, योगक्रिया-कुशल, सभी तरह से (चतुरस्र) विद्वान्, सुन्दर-दाढ़ी मूंछ, तथा पैर वाला, कामी, सात्त्विक, शंख, चक्र, गदा बाण, तथा हाथी का चिह्न वाला, हाथ-पैर में हल, ध्वज, कमल का चिह्नवाला, शास्त्रज्ञ, सुन्दर नाक वाला, काला केशवाला तथा पण्डित होता है । वह सभी कार्यों में स्वतंत्र अपने जनों का पालक, मित्रों को अपने ऐश्वर्य का उपयोग करानेवाला, स्त्री-पुत्र संयुक्त, कुशल राजा, मध्यप्रदेश का संरक्षक, सौ वर्षों तक पृथ्वी पर जीवित रहता है ।

हंसलक्षण—

गौरो हंसस्वनः प्रांशु-नासिकः सुमुखस्तथा ।
पिङ्गलाक्षः श्लेष्मलश्च जातो रक्तनखो बुधः ॥ १३ ॥
वृत्तमूर्धा नृपः पीनकपोलश्चारुपादपि ।
पद्ममीनाङ्कुशेष्वास-कम्बुखट्वाङ्गलक्ष्मभिः ॥ १४ ॥
अङ्किताङ्घ्रिशयः कामी न तुष्टः स्त्रीषु जातुचित् ।
षण्नवत्यंगुलमितः वारिकेलिसुखान्वितः ॥ १५ ॥
जाह्नवीयमुनामध्यदेशपो हंसपूरुषः ।
मृतिमेति शताब्दान्तेऽनुभूय निखिलं सुखम् ॥ १६ ॥

हंससंज्ञक महापुरुष—गौरवर्ण, हंस की तरह आवाज, उच्चनासा एवं सुन्दर मुखवाला, पिङ्गाक्ष, कफप्रकृतिक, लाल नाखून वाला, तथा पण्डित होता है । उसका मस्तक गोल, पुष्ट कपोल, सुन्दर पैर होता है । हाथ-पैर में—कमल, मत्स्य, अंकुश, चाप, शंख तथा खट्वाङ्ग के चिह्न होते हैं । वह इतना कामुक होता है कि अनेक स्त्रियों से भी उसकी वासना-पूर्ति नहीं होती । वह दैर्घ्य में ९६ अङ्गुल प्रमित, जलक्रीडाप्रेमी होता है । वह गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश का राजा होकर अनेकविध सौख्यों के अनुभव के बाद शताब्द (सौ वर्ष) के अन्त में दिवंगत होता है ॥ १२–१६ ॥

मालव्यलक्षण—

इन्दुकान्तिप्रभो मध्ये कृशः समरदच्छदः ।
मध्योन्नतः सुगन्धश्च स्वल्परक्तांगसंयुतः ॥ १७ ॥
आजानुबाहुर्नागेन्द्र-निनदः समशुभ्रदत् ।
दैर्घ्यविस्तारयोर्विंशवदशाङ्गुलमिताननः ॥ १८ ॥

ससिन्धुमालवपतिर्मालव्यपुरुषः स्मृतः ।
सप्तत्यब्दं सौख्यमनु-भूयैति त्रिदशालयम् ॥ १९ ॥

मालव्यलक्षणोपेत पुरुष को चन्द्रमा की कान्ति की तरह कान्ति, पतला कटिप्रदेश, समान ओष्ठ, मध्योन्नत (न अधिक छोटा न अधिक लम्बा), साधारण लालिमापूर्ण अङ्ग, आजानुबाहु (जानु तक लम्बी भुजा), हाथी के समान गम्भीर स्वर, समान तथा स्वच्छ दाँत होते हैं। उसके मुख की लम्बाई १३ अङ्गुल और चौड़ाई १० अङ्गुल प्रमित होती है। वह सिन्धु तथा मालवा का राजा होकर ७० वर्षों तक राज-सुखानुभव के बाद दिवंगत होता है ॥ १७–१९ ॥

शशलक्षण—

ह्रस्वास्यदशनो वीरः कृशकुक्षिः समोन्नतः ।
चारुजंघः कृशो मध्ये परच्छिद्रैकवित् सुधीः ॥ २० ॥
सेनापतिः क्षमोऽरण्य-दुर्गमेषु च दन्तुरः ।
रसायनज्ञश्चपलोऽ-ङ्गनासक्तोऽन्यवित्तयुक् ॥
मुरजायुधवीणास्रग्-रेखाचिह्नितपच्छयः ॥ २१ ॥
नृपोऽसौ ससुखं जीवन् पाति क्ष्मां सप्तर्ति समाः ।
शशाभिधश्चैवमेते पञ्चधा राजपूरुषाः ॥ २२ ॥

शशलक्षणोपेत पुरुष, वीर, कृशोदर, मझोली उँचाई, सुन्दर जंघा, पतला कटि-प्रदेश, परच्छिद्रान्वेषणकरनेवाला तथा विद्वान् होता है। वह सेनापति, जङ्गल आदिक दुर्गम स्थानों में विचरणशील, दन्तुर (ऊँचा दाँतवाला), रसायन का जानकार, चञ्चल, स्त्रियों में आसक्त, परधन-ग्रहण करने वाला, मृदङ्ग, शस्त्र, वीणा, माल्य, तथा रेखा के चिह्नों से अङ्कित हाथ-पैर वाला होता है। वह ७० वर्षों तक सुखपूर्वक जीता हुआ पृथ्वी का पालन करता है। इस प्रकार रुचक, भद्र, हंस, मालव्य तथा शशक ये पांच प्रकार के महापुरुष होते हैं ॥ २०–२२ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पञ्चमहापुरुषलक्षणाध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चभूतफलाध्यायः ॥ ७६ ॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि ते पञ्चमहाभूतप्रभां द्विज ! ।
यज्ज्ञानतो ग्रहाणां विद्यमाना ज्ञायते दशा ॥ १ ॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) अब मैं पंचमहाभूत की प्रभा (कान्ति) बतलाता हूं, जिसके ज्ञान से ग्रहों की विद्यमान दशा का ज्ञान होता है ॥ १ ॥

भौमादयोऽग्निभूम्याका-शाम्बुवाताधिपाः स्मृताः ।
बलानुसारं खेटानां भूतानां फलमीरितम् ॥ २ ॥

भौमादिक पाँचों ग्रह क्रमशः अग्नि, भूमि, आकाश, जल, वायु इन तत्त्वों के अधिप होते हैं। ग्रहों के बलानसार ही मनुष्य में तत्तन्महाभूतों का फल समझना ॥ २ ॥

भौमे बलिष्ठे तु शिखि-प्रकृतिर्मानवो भवेत् ।
ज्ञे धराप्रकृतिर्ज्ञेया देवेज्ये खस्वभाववान् ॥ ३ ॥
सिते वारिप्रकृतिको मन्दे वातस्वभाववान् ।
मिश्रप्रकृतिको ज्ञेयो मिश्रखेटैर्द्विजोत्तम ! ॥ ४ ॥

हे द्विजोत्तम ! (मैत्रेय !) जिसके जन्म समय में मंगल प्रबल हो तो वह अग्नितत्त्वप्रधान प्रकृतिवाला, बुध के प्राबल्य में भूतत्त्वप्रधान स्वभाववाला, गुरु की प्रबलता में आकाशतत्त्व स्वभाववाला, शुक्र की प्रबलता में जलतत्त्व प्रकृतिवाला एवं शनि की प्रबलता में वायुतत्त्व स्वभाववाला मनुष्य होता है। कई एक ग्रह यदि बलिष्ठ हों तो मिश्रित तत्त्वप्रधान स्वभाववाला कहना चाहिए ॥ ३–४ ॥

पंचभूत स्वभाववाले पुरुषों का लक्षण—

रवावग्निप्रकृतिकश्चन्द्रेऽम्बुप्रकृतिर्भवेत् ।
खेटाः स्वभुक्तौ भूतोत्थां बोधयन्ति निजां प्रभाम् ॥ ५ ॥

सूर्य प्रबल हों तो अग्नि प्रकृतिवाला और चन्द्र प्रबल हों तो जल तत्त्वप्रधान स्वभाववाला मनुष्य होता है। सभी ग्रह अपनी दशा में महाभूत सम्बन्धी अपनी छाया का बोध कराते हैं ॥ ५ ॥

अग्निस्वभावो मनुजो बुभुक्षुर्बहुभुक् चलः ।
शूरः कृशाङ्गो गौराङ्गो मनीषी मानवान् खरः ॥ ६ ॥
भूमिस्वभावो मनुजो भोगाढ्योऽतिबलः सुखी ।
पद्मकर्पूरसुरभिः क्षान्तः पञ्चाननस्वनः ॥ ७ ॥
नभःस्वभावो मनुजो नयविज्ञानवानपि ।
असंवृतमुखो लम्बः शब्दार्थज्ञोऽतितीव्रधीः ॥ ८ ॥
अम्बुस्वभावो मनुजः प्रभावान् मृदुलः सुधीः ।
भूपोऽनेकसुहृद् भार-वाहकः प्रियभाषणः ॥ ९ ॥

वातप्रकृतिकश्चण्डो दानी गौरतनुर्नृपः ।
क्षीणोऽटनप्रियश्चारि-मर्दनो मनुजो भवेत् ॥ १० ॥

अग्निप्रकृतिक मनुष्य भूखा, बहुत खानेवाला, चंचल, शूर, दुर्बल, गौरवर्ण, विद्वान्, सम्मानप्रिय, तथा तीक्ष्ण होता है। भूमिप्रकृतिक मनुष्य भोगयुक्त, अतिबल, सुखी, कमल तथा कपूर की तरह सुगन्धवाला, क्षमाशील एवं सिंह की तरह गम्भीर स्वरवाला होता है। आकाशप्रकृतिक मनुष्य नीतिज्ञ, ज्ञानी, विवृतास्य (मुँह बाए हुए), लम्बा, शब्दार्थवेत्ता तथा तीव्रबुद्धि होता है। जलप्रकृतिक मनुष्य कान्तिमान् मृदु, विद्वान्, राजा, अनेक मित्रों का भारवहन करनेवाला, तथा मिष्टभाषी होता है। वातप्रकृतिक मनुष्य क्रोधी, दानी, गौरवर्ण, राजा, दुबला, भ्रमण-प्रिय तथा शत्रु का मर्दन करनेवाला होता है ॥ ६–१० ॥

पंचतत्त्वों की छाया—

अग्निप्रभायां मनुजः स्वर्णाभः शुभदृष्टिमान् ।
सर्वार्थसिद्धिमाञ्जेता वित्तलाभान्वितो भवेत् ॥ ११ ॥

महीप्रभायां मनुजस्तनौ चारुसुगन्धवान् ।
सुस्निग्धदन्तनखरो धनधर्मसुखान्वितः ॥ १२ ॥

प्रभा नभोभवा शुभ्रा वाचः प्रागल्भ्यदा स्मृता ।
सत्स्वनश्रुतिसंभूतं सौख्यं तस्यां भवेद् ध्रुवम् ॥ १३ ॥

अम्बुप्रभायां तु भवेत तनौ स्वास्थ्यं च मार्दवम्
नरस्येष्टरसास्वादसौख्यं संजायते ध्रुवम् ॥ १४ ॥

वातप्रभायां मनुजे मौढ्यं मलिनता गदाः ।
दीनताऽपि च तापश्च दृश्यन्ते सर्वदा बुधैः ॥ १५ ॥

अग्निप्रभा (अग्नितत्त्व की छाया) में मनुष्य सुवर्ण की तरह कान्तिवाला, शुभदृष्टियुक्त, सर्वकार्य में सफल, विजयी तथा धनलाभवाला होता है। (अर्थात् इन लक्षणों के देखने से अग्नितत्त्व का उदय समझना चाहिए)। भूमितत्त्व के उदय में शरीर में उत्तम सुगन्ध, स्वच्छ-नख तथा दन्त, और धन, धर्म तथा सुख से युक्त होता है। आकाशतत्त्व की छाया शुभ्र तथा प्रगल्भ वाणी देनेवाली होती है। उसमें अच्छे (मधुर) शब्दों के श्रवणजन्य सौख्य प्राप्त होता है। अम्बु (जल) प्रभा के उदय में शरीर स्वस्थ तथा कोमल होता है। साथ ही उस मनुष्य को इष्टरसास्वाद-जन्य सुख मिलता है। वायुप्रभा के उदय से मनुष्य में मूढ़ता, मालिन्य, रोग, दैन्य, शोक सन्ताप दिखाई पड़ते हैं ॥ ११–१५ ॥

भौमादिषु बलाढ्येषु फलमित्थं प्रजायते।
बलहीनेषु तेष्वेवं वैपरीत्येन तद् वदेत् ॥ १६ ॥
ग्रहैर्नीचारिराशिस्थैर्भवेत् फलविपर्ययम् ।
निर्बलैस्तैस्तु पूर्वोक्त-फलं स्वप्ने समादिशेत् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त फल मंगलादिक ग्रहों की प्रबलता में ही सम्भव हैं। ग्रहों की निर्बलता में विपरीत फल समझना चाहिए। ग्रह नीचराशि, शत्रुक्षेत्र में स्थित हों तो फलविपर्यय कहना, निर्बल ग्रहों की स्थिति में पूर्वोक्त फल स्वप्न में कहना चाहिए ॥ १६–१७ ॥

अज्ञातजनुषां नृणां फलपाकैर्वियत्सदाम् ।
विद्यमाना दशा बोध्या तद्दुष्टफलशान्तये ॥ १८ ॥

जिसका जन्मकाल अज्ञात हो उसकी वर्त्तमान दशा ग्रहों के फलपाक (उपर्युक्त फलपाक) से समझना चाहिए। दुष्फलद ग्रहों के दान-जपादि करने से शान्ति होती है ॥ १८ ॥

विमर्श—इस तरह ग्रहसम्बद्ध तत्त्वों पर आधारित फलादेशों से वर्त्तमान समय में ग्रहदशा का ज्ञान सम्भव है। ग्रह दशा के अनुकूल ही कार्य करने से साफल्य अन्यथा वैफल्य निश्चित होता है। इसीलिए महर्षियों ने ग्रहों के तत्त्वों पर आधारित फलादेश किया है। तत्त्वों के उदयज्ञान होने पर अमुक ग्रह की दशा है, यह जानना सर्वथा सम्भव है। तदनुकूल ही कार्यारम्भ करने से कार्यों में सफलता होगी। जैसे अग्नितत्त्व के उदय में 'स्वर्णाभ' होना है। अतः सुवर्ण की तरह प्रदीप्त कान्ति देखने से अग्नितत्त्व का उदय अर्थात् मंगल की दशा समझनी है। प्रतिकूल फल से तत्तद्ग्रहों की शान्ति भी सम्भव है। ग्रहों की प्रबलता में तत्तत्फलों की प्राप्ति प्रत्यक्षतः होती है। निर्बल ग्रह के होनेपर स्वप्नावस्था में ही वे फल घटित हो जाते हैं या मनोराज्य करने से समाप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पञ्चभूतफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ त्रिगुणफलाध्यायः ॥ ७७ ॥

पराशर उवाच—

गुणानुसारमथ ते फलं वच्म्यधुना मुने !
प्राधान्ये सत्त्वखेटस्य जातो विज्ञश्च सात्त्विकः ॥ १ ॥
राजसग्रहप्राधान्ये जातः स्याद् राजसो बुधः ।
तमोग्रहस्य प्राधान्ये मन्दधीस्तामसो नरः ॥ २ ॥

गुणत्रयस्य तुल्यत्वे जातो मिश्रगुणी स्मृतः ।
चतुर्धा मानवाश्चेत्थ-मुदिता मुनिभिः पुरा ॥ ३ ॥
श्रेष्ठमध्याधमाश्चैव-मुदासीनाः क्रमेण ते ।
प्राचीनमुनिभिः प्रोक्तांस्तद्गुणान् कथयामि ते ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय !) अब मैं गुणानुसार आपको फल बतलाता हूँ। सत्वगुणप्रधान ग्रह की जन्म समय में प्रधानता रहने पर जातक सात्विक तथा विद्वान् होता है। राजस ग्रह की प्रधानता में राजस तथा विद्वान, एवं तामस ग्रह के प्राधान्य में वह मन्दबुद्धि तथा तामस प्रकृतिवाला होता है। जन्म समय में तीनों गुणों की समता हो अर्थात् तीनों गुणवाले ग्रह समकोटि में विद्यमान हों न कि कोई प्रबल हो, तो जातक मिश्रगुणी (मध्यम बुद्धिवाला) होता है। इस प्रकार चार प्रकार के मनुष्य होते हैं। वे उत्तम, मध्यम, अधम तथा उदासीन क्रमशः होते हैं। प्राचीन मुनियों के द्वारा उक्त उन चतुर्विध मानव के गुणों को मैं बतलाता हूं ॥१–४॥

उत्तममध्यमाधम पुरुषों के गुण—

शान्तो दान्तः शुचिः शान्तः सरलः सत्यवागपि ।
अलुब्धस्तापसः सत्त्वप्राधान्ये जायते नरः ॥ ५ ॥
तेजस्वी धृतिमान् दक्षः समरे त्वपराङ्मुखः ।
सतां शरण्यस्तु जनः प्राधान्ये रजसो भवेत् ॥ ६ ॥
लुब्धो मिथ्याभिभाषी चा-लसो मूर्खोऽधमस्तथा ।
सेनासु निपुणो जातः प्राधान्ये तमसो भवेत् ॥ ७ ॥

सत्वगुणी ग्रह की प्रधानता में जातक शान्त, दान्त (कुवासना का शमन तथा इन्द्रिय एवं मनका दमन करनेवाला), पवित्र, क्षमाशील, सरल, सत्यवक्ता, लोभरहित तथा तपस्वी होता है। रजोगुणप्रधान ग्रह की प्रधानता में जातक तेजस्वी, धैर्यशाली, कुशल, युद्ध से पराङ्मुख नहीं होनेवाला तथा सज्जनों का शरण (आश्रय में रखने वाला) होता है। तमोगुणप्रधान ग्रह के प्राधान्य में जातक लोभी, मिथ्यावक्ता, आलसी, मूर्ख तथा नीच, किन्तु सेनाओं में निपुण होता है ॥ ५–७ ॥

उदासीन पुरुषलक्षण—

कृषीवलो वणिकर्म-कुशलः पशुपालकः ।
सत्यानृतप्रवक्ता च गुणसाम्ये जनो भवेत् ॥ ८ ॥

गुणसाम्य में (जन्म के समय जब किसी भी गुण वाले ग्रह की प्रधानता नहीं रहे) उत्पन्न जातक खेतिहर, वाणिज्य में दक्ष, पशुपालन करनेवाला, झूठ-साँच बोलने वाला होता है ॥ ८ ॥

एवं चतुर्विधानुक्ता-नुत्तमाधममध्यमान् ।
उदासीनांश्च विबुधस्तत्तत्कर्मणि योजयेत् ॥ ९ ॥
गुणेषु यस्य प्राबल्य-माधिक्यं तस्य जायते ।
गुणानां तुल्यता वेद्या वैपरीत्ये द्विजर्षभ ! ॥ १० ॥

इस प्रकार प्रागुक्त उत्तम, मध्यम, अधम तथा उदासीन, पुरुषों को तत्तत्कर्म (उनके द्वारा किये जाने योग्य कार्य) में विद्वान् लोग नियुक्त करें। उपर्युक्त गुणत्रय में जिस गुण की प्रबलता होती है उसी का प्राबल्य समझा जाता है। अन्यथा (किसी का बल शेष दो से अधिक नहीं हो तो) गुणसाम्य समझना चाहिए।९-१०।

गुण-प्रयोजन—

गुणानामेव सादृश्ये स्वामिसेवकयोस्तथा ।
कुमारीवरयोश्चापि सौहार्दमतिसुस्थिरम् ॥ ११ ॥
नीचस्य निरपेक्षेण मध्यमस्यापि तेन चेत् ।
मध्यमेनोत्तमस्यापि सम्बन्धो मोददः स्मृतः ॥ १२ ॥

स्वामी तथा सेवक में एवम् कन्या-वर में गुणों के सादृश्य रहने पर ही पारस्परिक सौहार्द अत्यधिक सुस्थिर होता है। अधम का उदासीन के साथ या मध्यम का उसके साथ, उत्तम का मध्यम के साथ सम्बन्ध हो तो भी वह मोदप्रद होता है ॥ ११-१२ ॥

विशेष—

वरवध्वोर्वरः श्रेष्ठः स्वामी चापि स्वसेवकात् ।
गुणतस्तर्हि सौख्यं स्याद् वैपरीत्ये विपर्ययः ॥ १३ ॥
माता पिता जनुःकालः, संसर्गश्चोत्तरोत्तरम् ।
गुणेषु प्रबलो हेतु-रुत्तमादिषु जायते ॥ १४ ॥
जन्मकालसमस्तस्माद् गुणः सञ्जायते जने ।
विविच्यैवं सदा विज्ञैर्विज्ञेयं सदसत्फलम् ॥ १५ ॥

वर-वधू के मेलापक विचार में सतत वर का, स्वामी-सेवक के विचार में स्वामी का गुण अधिक रहना चाहिए। अधिक रहने से ही सुख-सौहार्द दोनों में सम्भव होता है। अन्यथा (वर से कन्या का, स्वामी से सेवक का गुण यदि अधिक हो तो) सौहार्द में कमी होती है। माता-पिता, जन्मसमय एवं सङ्गति, ये उत्तम आदि चार गुणों में हेतु होते हैं। साथ ही ये उत्तरोत्तर प्रबल होते हैं। अर्थात् जातक में माता, पिता, जन्म-समय, इन तीनों के गुणों के साथ संसर्गजन्य भी गुणावगुण आता है। इसलिए जन्मसमय-सदृश जातक में गुण होता है, इसे समझ कर जातक का फलादेश करना चाहिए ॥ १३-१५ ॥

भूतानामन्तकृत् कालः पालकः सृष्टिकारकः ।
ईशः समस्तलोकाना-मक्षयो व्यापकः प्रभुः ॥ १६ ॥

काल ही संसार में व्यापक समस्त चराचर का आश्रय एवं सबों का पालक तथा विनाशकारक होता है। वही अविनाशी व्यापक तथा समस्त चराचर का ईश भी है ॥ १६ ॥

शक्तिस्तदीया प्रकृतिः गुणत्रययुता मता ।
विभाजितस्तयाऽव्यक्तो व्यक्तीभवति जन्तुषु ॥ १७ ॥
गुणानुसारतस्तस्य स्युरङ्गानि ततो जनाः ।
उत्तमो मध्यमश्चैव-मनपेक्षोऽधमस्तथा ॥ १८ ॥

उस व्यापक ईश की त्रिगुणात्मिका शक्ति प्रकृति कहलाती है। उस शक्ति से विभाजित वे प्रतिजन्तु में व्यक्त होते हैं। उस अव्यक्त प्रभु के अङ्ग गुणानुसार होते हैं। अतः मनुष्य भी उत्तम, मध्यम, उदासीन तथा अधम ये चतुर्विध होते हैं १७-१८.

क्रमादुत्तममध्योदा-सीनाधमजना मुने ।
अङ्गानामुत्तमादित्वे जायन्ते तु चतुर्विधाः ॥ १९ ॥

उस ईश के उत्तमाङ्ग से उत्तम, मध्यमाङ्ग से मध्यम, उदासीनांग से उदासीन, तथा अधमांग से अधम व्यक्ति की सृष्टि होती है। इस तरह चतुर्विध मनुष्य होते हैं ॥ १९ ॥

उत्तमावयवो मूर्धा मध्यमावयवोऽप्युरः ।
निरपेक्षे तथैवोरू ज्ञेयः पादोऽवरो बुधैः ॥ २० ॥

उस व्यापक ईश के उत्तमांग शिर, मध्यमांग वक्षःस्थल, उदासीन जंघाद्वय तथा अधमाङ्ग चरण होते हैं ॥ २० ॥

गुणानुसारतः काल-त्रिभेदस्तद्वशात् पुनः ।
जातो भेदस्तु विप्रेन्द्र ! चराचरगतो भवेत् ॥ २१ ॥
गुणानुसारतः कालो व्यापको भगवान् प्रभुः ।
चतुर्विधो जगदिदं ससर्ज तु चतुर्विधम् ॥ २२ ॥

इस तरह गुणों के अनुसार कालभेद, फिर इस चराचर में जातिभेद होता है। गुणानुसार ही व्यापक चतुर्विध भगवान् काल ने चतुर्विध (चार भेदों से युक्त) सृष्टि का निर्माण किया है ॥ २१–२२ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे त्रिगुणफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ नष्टजातकाध्यायः ॥ ७८ ॥

मैत्रेय उवाच—

महर्षे ! जन्मसमयाद् भवता फलमीरितम् ।
अज्ञातजन्मकालानां कथं तज्ज्ञायते बुधैः ॥ १ ॥
पूर्वजन्मकृतं कर्म सदसन्मानवस्य यत् ।
तज्ज्ञातुं प्रभवेद् येन तमुपायमुदीरय ॥ २ ॥

मैत्रेय ने कहा—(प्रश्न किया) हे महर्षे ! जन्म समय पर आधारित फल आपने कहा है । किन्तु जिनका जन्मकाल नहीं ज्ञात हो उनका फलादेश कैसे हो सकता ! पूर्वजन्मकृत शुभाशुभकर्म जिससे ज्ञात हो सके उस उपाय को कृपया बतलावें ॥ १–२ ॥

पराशर उवाच—

प्रश्नोऽयं भवतः साधुर्लोकोपकृतिकारकः ।
ब्रवीमि तस्मादज्ञात-जनुषां फलमादरात् ॥ ३ ॥
प्रश्नतोऽब्दायनर्तु-पक्षतिथ्यृक्षराशिषु ।
अज्ञातेष्वपि तज्ज्ञातुं शक्यते नात्र संशयः ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा—(उत्तर दिया) हे मैत्रेय ! यह आपका प्रश्न लोकोपकारक है । अतः अज्ञात जन्मकाल वाले व्यक्तियों के लिए फल (फलादेश-पद्धति) सादर बतलाता हूँ । अब्द, अयन, ऋतु, पक्ष, तिथि, नक्षत्र आदि के अज्ञात रहने पर भी इनका ज्ञान प्रश्न से निःसन्देह किया जा सकता है ॥ ३–४ ॥

वर्षज्ञानपद्धति—

प्रश्नलग्नभास्करांश-राशौ जीवे जनुर्भवेत् ।
सौम्ययाम्यायने स्यातां होरापूर्वपरार्धयोः ॥ ५ ॥
मन्दशुक्रारचन्द्रज्ञ-जीवैर्होराद्दकाणपैः ।
ऋतवः शिशिराद्यास्तु ग्रीष्म एवार्कतो मतः ॥ ६ ॥

प्रश्न लग्न में जिसका द्वादशांश हो उसी राशि का संवत्सर (उसी राशिगत गुरु जन्म-समय में थे) समझना । लग्न का पूर्वार्ध हो तो उत्तरायण, परार्ध हो तो दक्षिणायन जानना । लग्न के द्रेकाणेश शनि हों तो शिशिर, शुक्र हों तो वसन्त, मंगल हो तो ग्रीष्म, चन्द्रमा हो तो वर्षा, बुध हों तो शरत्, गुरु हों तो हेमन्त, सूर्य हों तो ग्रीष्म ऋतु समझना चाहिये ॥ ५–६ ॥

अयनर्त्तुविसंवादे विदिन्दुगुरवः क्रमात् ।
भौमभार्गवमन्दैस्तु विनिमेया मिथो बुधैः ॥ ७ ॥

यदि अयन तथा ऋतु में विसंवाद (भिन्नत्व) हो तो बुध के स्थान में भौम, चन्द्रमा की जगह शुक्र और गुरु के स्थान में शनि मान कर ऋतुज्ञान करें ॥ ७ ॥

द्रकाणार्धे पूर्वमासोऽपरः स्यादपरेऽर्धके ।
द्रकाणांशानुपातेन सूर्यांशसदृशा तिथिः ॥ ८ ॥
ततः सिद्धेष्टकालो यो जनुः कालः सतां मतः ।
ततो ग्रहेभ्यो भावेभ्यः पूर्ववत् फलमादिशेत् ॥ ९ ॥

ऋतुज्ञानानन्तर द्रकाण के पूर्वार्ध में ऋतु का प्रथम मास तथा उत्तरार्ध में द्वितीय मास समझना । द्रकाणांशानुपात से (द्रकाण के गतांश पर से अनुपात के द्वारा) तिथि ज्ञान (सूर्यांश ज्ञान) करना । उस सूर्यांश से सिद्ध इष्ट-काल प्रश्नकर्त्ता का जन्मसमय समझना चाहिए । उस समय के आनीत ग्रह एवं भावों से फलादेश पूर्ववत् करना । (इसका पूर्णतः स्पष्टीकरण उदाहरण के द्वारा आगे किया जायगा) ॥

मैत्रेय उवाच—

द्वादशाब्दैः पुनरपि जीवस्तद्भगतो यतः ।
पर्याये कतमे बोध्यस्तदीयो जन्मवत्सरः ॥ १० ॥

मैत्रेय ने कहा—(पूछा) हे महर्षे ! बारह वर्षों के बाद गुरु पुनः तत्तद्राशि में आ जाते हैं, तो किस पर्याय में उसका जन्माब्द हुआ, यह कैसे जाना जा सकता है ?

पराशर उवाच—

संदिग्धे वत्सरे तत्रा-नुमित्या वयसः क्षिपेत् ।
वर्षाणि द्वादश मुहु-स्तदाब्दावगमो भवेत् ॥ ११ ॥
अथापि तत्र संदिग्धे जीवोऽज्ञात् कोणगो मुने ! ।
कल्पनीयोऽनुमित्या तु वयसो वत्सरस्ततः ॥ १२ ॥

पराशर ने कहा—संवत्सर की सन्दिग्धावस्था में प्रश्नकर्त्ता की अवस्था के अनुमान से जन्माङ्गचक्र के गुरु तथा प्रश्नाङ्गचक्र के गुरु के राश्यन्तर में १२, १२, वर्ष जोड़ कर अनुमित अवस्था की सम्भव संख्या के तुल्य वर्ष जानकर संवत्सर का ज्ञान करना । १२ जोड़ने पर भी अवस्था के साथ अन्तर प्रतीत हो तो प्रश्नलग्न से त्रिकोण राशि में गुरु को मानकर प्रश्नकर्त्ता की अवस्था के अनुमान से (लग्न, पञ्चम, नवम, जिसमें सम्भव प्रतीत हो) संवत्सर जानकर अयनर्तु आदि का पूर्वोक्त विधि से ज्ञान करना चाहिए ॥ ११–१२ ॥

मैत्रेय उवाच—

ज्ञातेऽपि मासे सार्कांशे महर्षे ! जायते कथम् ।
जनुषः समयज्ञानमिति मे वद तत्त्वतः ॥ १३ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे महर्षे ! उपर्युक्त विधि से मास, सूर्यांश (तिथि) जानने पर भी जन्मेष्टकाल ज्ञान कैसे हो सकता, इसे (कृपया) मुझे बतलावें ॥ १३ ॥

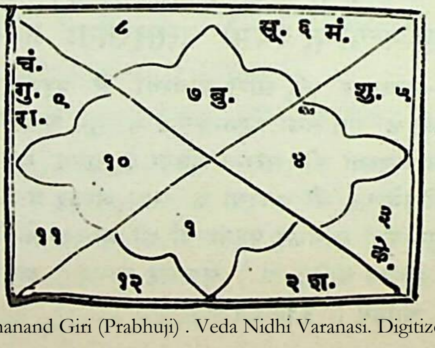
पराशर उवाच—

रवेस्तु संक्रमादंश-समेऽहनि तु साधयेत् ।
सूर्यमौदयिकं तस्या-न्तरमिष्टार्कतो हि यत् ॥ १४ ॥
कलात्मकं षष्टिनिघ्नं स्पष्टार्कगतिभिर्हृतम् ।
लब्धघट्यादिमानेन समः सूर्योदयात् पुरः ॥ १५ ॥
परस्ताद् वा प्रश्नकर्तु-र्जनुःकाल उदीरितः ।
उदयार्कादभीष्टार्के क्रमाद्धीनेऽधिकेऽपि च ॥ १६ ॥

पराशर ने कहा—सूर्य के राश्यंशादि ज्ञात होने पर संक्रान्ति के अनन्तर सूर्य के जितने गतांश हों उतने ही दिन संक्रान्ति के बाद के दिन में औदयिक स्पष्टसूर्य-साधन करें । उस साधित सूर्य तथा इष्ट (पूर्वागत जन्मकालिक) सूर्य के कलात्मक अन्तर को ६० से गुणकर स्पष्टार्क की गतिकला से भाग दें, लब्ध घट्यादि-तुल्य सूर्योदय से पूर्व, या बाद प्रश्नकर्त्ता का जन्मेष्टकाल समझना । उदयार्क से इष्टार्क कम हो तो पूर्व, तथा उदयार्क से इष्टार्क ही अधिक हो तो बाद इष्टकाल समझना चाहिए ॥

उदाहरण—यदि किसी की जन्मकुण्डली नष्ट है । वह अपने जीवन के शुभाशुभ फलज्ञान के लिए उत्कण्ठित है । आकृत्या लगभग २० वर्ष का वह प्रतीत होता है । नष्ट जन्मपत्र की रचना के लिये संवत् २०२९ के आश्विन शुक्ल अष्टमी रविवार को सूर्योदय के बाद ७।३० इष्टघटी पल पर उसने ज्योतिषी के पास प्रश्न किया । उस समय स्पष्ट-सूर्य = ५।२७।५५।२८ राश्यादि स्पष्ट लग्न=६।२७।२५।४० अयनांश २३।६।४८ है ।

प्रश्नकुण्डली



यहाँ लग्न सिंह के द्वादशांश में है, अतः सिंहस्थ गुरु में प्रश्नकर्त्ता का जन्म हुआ ऐसा 'प्रश्नहोरा-भास्करांशभगे जीवे जनुर्भवेत्' आदि पद्योक्त नियम के अनुसार सिद्ध हुआ। प्रश्न संवत् २०२९ से ५ वर्ष पूर्व सिंह में गुरु थे। ५ में १२ जोड़ने से १७ वर्ष हुए। अतः प्रश्नसंवत् से १७ वर्ष पूर्व सिंहस्थ गुरु हो सकते। नवयुवक प्रश्नकर्त्ता की अनुमित अवस्था २० के लगभग है। अतः प्रश्नकाल से १७ वर्ष के पूर्व संवत्सर में प्रश्नकर्त्ता का जन्म सिद्ध हुआ। अर्थात् प्रश्नसंवत् से १७ वर्ष पूर्व संवत् २०१२ में उसका जन्म निश्चित हुआ।

अयनज्ञान का उदाहरण—प्रश्नलग्न ६।२७।२५।४० तुला के उत्तरार्ध में है अतः पूर्वोक्त पद्यानुसार दक्षिणायन में जन्म सिद्ध हुआ।

ऋतुज्ञान का उदाहरण :—लग्न बुध के द्रकाणस्थ है अतः शरत् ऋतु सिद्ध हुई। अयन, ऋतु में विसंवाद होने पर विशेष नियम का सहारा लेना पड़ता है यहाँ तो सामञ्जस्य है अतः यही ऋतु हुई।

मासज्ञान का उदाहरण :—प्रश्नलग्न द्रकाण के उत्तरार्धस्थ है अतः शरदृतु के द्वितीय मास (सौर कार्त्तिक) सिद्ध हुआ। मास से यहाँ सौर ही मास ग्राह्य समझना।

मासज्ञानानन्तर सूर्यांश-ज्ञान का उदाहरण :—यहाँ प्रश्नलग्न तृतीय द्रेष्काण के उत्तरार्ध में २५ अंशों से ऊपर पड़ता है। उत्तरार्ध का गत अंशादि २।२५।४० है इसके द्वारा जन्मकालिक सूर्यांश जानने के हेतु द्रेष्काण के उत्तरार्ध के गतांशादि की कला बनाई। कला = १४'५।४"० अब अनुपात किया कि द्रेष्काणोत्तरार्ध ५ अंश की कला ३०० में यदि ३० अंश तो गतांश की कला १४५।४० में क्या? $\frac{(१४५।४०)३०}{३००} = \frac{१४५।४०}{१०}$ = १४।३४।० यह लब्ध अंशादि तुलास्थित सूर्य के भुक्त अंशादि हुए। अतः प्रश्नकर्त्ता के जन्मकालिक राश्यादिक स्पष्ट सूर्य = ६।१४।३४।०

जन्मेष्टकाल-साधन का उदाहरण—

स्पष्ट सूर्य की राश्यादि से ज्ञात हुआ कि तुला के १४ अंश (१४ सौर दिन) बीत चुके हैं। अतः तुला संक्रान्ति से १५ वें दिन संवत् २०१२ के पञ्चाङ्ग से औदयिक सूर्य बनाया तो, मान लीजिए औदयिक राश्यादिक स्पष्टसूर्य ६।१४'।२०'४"० तथा गति ५८।४० यह हुई। यहाँ औदयिक सूर्य जन्मकालिक सूर्य से अल्प है, अतः उदयानन्तर जन्मेष्टकाल का होना सिद्ध हुआ।

जन्मकालिक राश्यादि स्पष्ट सूर्य ६।१४।३४।० में औदयिक राश्यादि स्पष्ट सूर्य को घटाने पर ६।१४ं।३४'।०"—६।१४ं।२०।४०" = ०।१३'।२०। इसे विकलात्मक बनाकर एकजातीय बनाया ७८० + २० = ८००" हुआ। पुनः इसे ६० से गुणा किया तो गुणनफल = ४८००० । इसमें विकलात्मक गतिकला ३५२० से भाग दिया तो लब्ध घटीपल = $\frac{४८०००}{३५२०} = \frac{४८००}{३५२} = \frac{३००}{२२} = \frac{१५०}{११}$ = १३ घटी, ३८ पल जन्मकालिक सूर्य औदयिक सूर्य से अधिक हैं, अतः उदयानन्तर १३ घंटा ३८ पल पर जन्मेष्ट काल सिद्ध हुआ अर्थात् संवत् २०१२ के तुलासंक्रान्ति से १५वें दिन में

१३ घटी ३८ पल पर जन्म हुआ था यह निश्चित हुआ। इसके अनुसार सगतिक स्पष्टग्रह, भाव तथा फलादेश के अन्य उपकरण लाकर फलादेश किया जा सकता है। सम्भव है कि महर्षि पराशरोक्त विधान से बने हुए नष्टजातक के आधार पर फलादेश ठीक भी हो जाय। किन्तु इस पद्धति की आरम्भिक वस्तु ही युक्तिविरुद्ध है। प्रश्न-कालिक लग्न जिस राशि के द्वादशांश में हो उस राशि में जन्मकालिक गुरु को मानकर ही सारी नष्टकुण्डली बनाने का विधान है। सम्भव है कि वही प्रश्नकर्त्ता दूसरे समय में ज्योतिषी के पास जाय तो लग्न के बदलने से सारी जन्मकुण्डली ही बदल जायगी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि पराशर ने भी श्रद्धालु व्यक्तियों, जिनकी जन्मकुण्डली नष्ट हो चुकी है, के सन्तोष के लिए ही ऐसा विधान किया है।

वस्तुतः शुद्धजन्मेष्टकाल पर से ही सारा फलादेश करना श्रेयस्कर है। इस भ्रम में कभी नहीं रहना चाहिए कि जन्मकुण्डली के नष्ट होने पर भी नष्टकुण्डली के विधान से सही कुण्डली बनेगी। सभी महर्षियों ने शुद्ध जन्मेष्टकाल पर बहुत ही जोर दिया है। वह जन्मकाल प्रश्न के द्वारा आनीत नहीं, वरन असली इष्टकाल होना चाहिए तभी फलादेश निश्चित घटेगा॥ १४–१६॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे नष्टजातकाध्यायः समाप्तः।

अथ प्रव्रज्यायोगाध्यायः॥ ७९॥

पराशर उवाच—

अथ सम्प्रति ते वच्मि प्रव्रज्यायोगमुत्तमम्।
येनापहाय सर्वस्वं विरक्ता गेहिनो जनाः॥ १॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय!) अब मैं उत्तम प्रव्रज्या योग बतलाता हूँ। उसी योग से गृही सर्वस्व त्याग कर विरक्त हो जाता है॥ १॥

सबलैरेकभगतैश्चतुष्प्रभृतिभिर्ग्रहैः।
सूर्यादिभिस्तापसश्च कपाली लोहिताम्बरः॥ २॥
दण्डी यतिश्चक्रधारी वीतवासाः क्रमादिति।
बलिषु प्रबलस्यैव बोध्या बहुषु विद्वरैः॥ ३॥

एक राशि में सबल सूर्यादि चार या उससे अधिक ग्रह हों तो प्रव्रज्यायोग होता है। सूर्य प्रबल हों (सूर्यकृत प्रव्रज्या में) तो जातक तपस्या करनेवाला, चन्द्रमा प्रबल हों तो कपाली, मंगल प्रबल होकर प्रव्रज्याकारक हों तो रक्तवस्त्रधारी, बुध प्रव्रज्या करनेवाले हों तो दण्डी, गुरु प्रबल होकर प्रव्रज्याकारक हों तो संयम नियम करनेवाला संन्यासी, शुक्र हों तो चक्रधारी तथा शनि प्रव्रज्याकारक हों तो मनुष्य नंगा होकर विरक्त हो जाता है॥ २–३॥

विमर्श—चतुष्प्रभृति ग्रहों के एक राशिगत होने पर प्रव्रज्या योग कहा गया है। एक राशिस्थ का आशय यह है कि स्वल्प अन्तर होवे। इसलिए भिन्न राशि में भी अत्यल्प अन्तर हो तो प्रव्रज्या योग कहना, एक राशि में भी अधिक अन्तर रहने पर योग नहीं कहना चाहिए। जैसे एक ग्रह मिथुन में २।२९।२५।३० राश्यादिवाले हैं दूसरा उसी राशि में २।०।१५।४० में अर्थात् एक मिथुनारम्भ में दूसरा मिथुनान्त में, ऐसी स्थिति में प्रव्रज्या योग नहीं होता है। भिन्न राशियों में भी दोनों का अन्तर अत्यल्प हो तो उक्त योग कहना चाहिये जैसे एक वृषान्त में, दूसरा मिथुनारम्भ में है तो भिन्न राशियों में होने पर भी अत्यल्प अन्तर होने के कारण प्रव्रज्या होगी ही ॥ २–३ ॥

निर्बल प्रव्रज्या योग—

अस्तंगता वीर्यवन्तः प्रव्रज्याकारका यदि।
तदा दीक्षाविरहिताः वेद्या प्रव्रजिता नराः ॥ ४ ॥
विबला रविसान्निध्या-दस्ताश्चेदपरे ग्रहाः।
रविश्च प्रबलस्तर्हि प्रव्रज्या रविजा मता ॥ ५ ॥

प्रबल भी प्रव्रज्याकारक ग्रह अस्तंगत हो तो प्रव्रजित मनुष्य दीक्षा रहित होता है। अर्थात् घर से अलग होकर भी किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं होता है। सूर्यातिरिक्त ग्रह सूर्य-सान्निध्य से (कालांश के भीतर होने के कारण) अस्तंगत हों और सूर्य यदि प्रबल हों तो सूर्यजन्य प्रव्रज्या (तापस होना) होगी, ऐसा समझना चाहिए ॥ ४–५ ॥

अन्ययोग—

ग्रहैरन्यैर्यदि जनु-र्भेशोऽदृष्टः शनीक्षकः।
तयोर्बलवतोस्तत्र प्रव्रज्यां लभते जनः ॥ ६ ॥
विबलो जन्मराशीशो दृष्टश्चेत् सौरिमात्रतः।
तदार्किजनितैव स्यात् प्रव्रज्या नात्र संशयः ॥ ७ ॥

शनि पर दृष्टि वाला जन्मराशीश अन्य ग्रहों की दृष्टि से वञ्चित हो तो शनि और जन्मराशीश इनमें प्रबल ग्रहजनित प्रव्रज्या होती है। निर्बल जन्मराशीश शनिमात्र से यदि देखा जाय तो शनिजनित ही प्रव्रज्या (नग्न होकर रहना) होती है ॥ ६–७ ॥

इतर योग—

इन्दौ मन्ददृकाणस्थे कुजार्किनवभागके।
सौरीक्षिते तु प्रव्रज्या मन्दजैव प्रजायते ॥ ८ ॥

शनि के दृकाण में स्थित चन्द्र, भौम या शनि के नवांशगत हों और शनि की चन्द्रमा पर दृष्टि भी रहे तो भी शनिजनित प्रव्रज्या होती है ॥ ८ ॥

विजयी भार्गवो याम्ये सौम्ये वा संस्थितो यदि ।
भौमादिषु, परेष्वेवं सौम्यगो युधि जायते ॥ ९ ॥

भौमादि ग्रहों का एकांशिक संयोग युद्ध कहलाता है। उसमें शुक्र उत्तर या दक्षिण कहीं भी हो अर्थात युद्धकारी ग्रहों में शुक्र उत्तरवर्त्ती हों या दक्षिणवर्त्ती, वे जयी कहलायँगे। अन्य ग्रहों में उत्तरवर्त्ती ग्रह (महत्तर सौम्यशर वाला) ही विजयी होता है ॥ ८–९ ॥

प्रव्रज्याच्युति—

ग्रहः परेण विजितः प्रव्रज्याया विधायकः ।
तदावाप्य परिव्रज्यां पुनर्जह्यात्तु तां नरः ॥ १० ॥

किसी अन्यग्रह से विजित ग्रह की प्रव्रज्या यदि हो तो प्रव्रजित होकर भी मनुष्य प्रव्रज्या से विमुख हो जाता है ॥ १० ॥

मैत्रेय उवाच—

समानबलवन्तश्चे-दनेके जन्मनि ग्रहाः ।
प्रव्रज्यादायकास्तर्हि प्रव्रज्या कस्य जायते ॥ ११ ॥

मैत्रेय ने कहा—(हे महर्षे !) जन्म-समय में तुल्य बलवाले अनेक ग्रह यदि प्रव्रज्याकारक हों तो किस ग्रह की प्रव्रज्या समझनी चाहिए ? ॥ ११ ॥

पराशर उवाच—

खगा अनेके सबलाः प्रव्रज्याकारिणो यदि ।
तदा समेषां प्रव्रज्यां लभते नात्र संशयः ॥ १२ ॥
दशाक्रमानुसारेण स्वस्वभुक्तिषु खेचराः ।
प्रव्रज्यां स्वस्वजनितां प्रयच्छन्ति न संशयः ॥ १३ ॥

पराशर ने कहा—प्रव्रज्याकारक अनेक प्रबल ग्रह हों तो सभी ग्रहों की प्रव्रज्या मनुष्य निःसन्दिग्ध प्राप्त करता है। दशाक्रमानुसार (प्रव्रज्याकारक ग्रहों में जिसकी पहले दशा आई) उसमें अपनी अन्तर्दशा आनेपर तत्तत् प्रव्रज्या होती है। इस तरह एकके बाद दूसरी, पुनः तीसरी आदि प्रव्रज्या पूर्व-पूर्व को छोड़ कर मनुष्य ग्रहण करता है, ऐसा समझना ॥ १२–१३ ॥

प्रव्रज्या-योगान्तर—

पश्येद् यदि शनिर्जीव-लग्नेन्दूनपि भाग्यभे ।
गुरुस्तदा राजयोग-स्तद्भवस्तीर्थकृन्नरः ॥ १४ ॥
सौरौ भाग्यगते खेटैरदृष्टे तु प्रजायते ।
राजयोगस्तत्र जातः प्रव्रज्यायुग् नृपो भवेत् ॥ १५ ॥

शनि यदि गुरु, लग्न तथा चन्द्रमा को देखते हों और गुरु नवमस्थ हों तो राजयोग होता है। ऐसे योग में उत्पन्न जातक राजा होकर भी तीर्थंकर (स्वयं सम्प्रदाय चलाने वाले बुद्ध, महावीर आदि की तरह) हो जाता है। नवमस्थ शनि अन्य ग्रहों से अदृष्ट हों तो भी राजयोग और उसमें उत्पन्न जातक प्रव्रज्यायुक्त राजा होता है ॥ १४–१५ ॥

वराहमिहिर ने भी इन्हीं योगों को अपने ग्रन्थ बृहज्जातक के प्रव्रज्यायोगाध्याय में 'एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाता पृथग्वीर्यगैः।' आदि श्लोकों के द्वारा थोड़े ही में व्यक्त किया है।

इति बृहत्पराशर-होराशास्त्रे प्रव्रज्यायोगाध्यायः समाप्तः ॥

अथ स्त्रीजातकफलाध्यायः ॥ ८० ॥

मैत्रेय उवाच—

श्रुतं भगवता प्रोक्तं पुंसां जातकजं फलम्।
नारीणामथ कथं वेद्यमेतद् ब्रवीहि मे ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—(हे महर्षे!) पुरुषों का जातक-फल मैंने सुना। स्त्रियों का वह (फल) कैसे जाना जा सकता है, कृपया इसे बतलावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

प्रश्नोऽयं वत्स! ते साधुर्ब्रवीमि शृणु तन्मनाः।
पुंवत् स्त्रीणामपि फलं वेद्यमुक्तं महर्षिभिः ॥ २ ॥
विशेषः सम्भवेद् यस्तु शृणुष्व तमपि द्विज!।
लग्नात्तनोः पञ्चमात्तु प्रसूतेः स्याद् विचारणा ॥ ३ ॥
पत्युः कलत्रतो रन्ध्राद् वैधव्यस्य द्विजोत्तम!।
असंगतं कलत्रेषु पत्यौ तत्फलमीरयेत् ॥ ४ ॥

पराशर ने कहा—(हे मैत्रेय)! तुम्हारा यह प्रश्न अच्छा है, अतः मैं बतलाता हूँ, सुनो! महर्षियों ने पुरुषों की तरह ही स्त्रियों का भी पूर्वोक्त जातक-फल कहा है, अर्थात् वे ही स्त्रियों में भी लागू समझना। फिर भी उसमें जो विशेष सम्भव है उसे भी सुनो।

स्त्रियों का शारीरिक फल लग्न से, सन्तति-विचार पञ्चम से, पति-सौख्य सप्तम से, वैधव्य का विचार अष्टम से करना चाहिए। जो फल स्त्री में सम्भव नहीं हो वह उसके पति में लागू समझना ॥ २–४ ॥

समराशौ लग्नचन्द्रौ यदि, सा प्रकृतिं गता ।
शीलसल्लक्षणोपेता स्वानुरूपगुणान्विता ॥ ५ ॥
सद्दृष्टौ सुभगा नारी स्वास्थ्यसौख्यसमन्विता ।
ओजे पुम्प्राकृतिः शील-हीना सवीक्षितौ खलैः ॥ ६ ॥
सपापौ चेद् दुर्गुणा सा सदसद्भ्यां शुभाशुभम् ।
चन्द्राङ्गयोस्तु बलिनः फलं सर्वांशतो भवेत् ॥ ७ ॥

स्त्री जन्मकुण्डली के लग्न तथा चन्द्र समराशिस्थ हों तो नारी सुशीला, सल्लक्षणा, स्त्रियोचित स्वभावानुरूप गुणों से युक्ता होती है। उन पर शुभग्रहों की दृष्टि रहे तो वह स्वस्थ, सौख्ययुक्त तथा सुभगा होती है। यदि लग्न, चन्द्र, विषम राशिगत होकर पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हों तो वह स्त्री शील गुण-रहित एवं दुर्भगा होती है। शुभाशुभ ग्रहों के योग एवं दृष्टि से शुभाशुभ (शील गुणों में सदसत्त्व) कहना। अतः लग्न-चन्द्र में एक समराशि दूसरे विषम में तथा शुभाशुभ दोनों तरह के ग्रहों की दृष्टि रहे तो मिश्रित फल, (पुरुष, स्त्री दोनों के शील गुणों से युक्ता) होती है। लग्न और चन्द्रमा में जो प्रबल हों, उनका गुण सर्वांश रूप में समझना ॥५–७॥

प्रबलो योऽङ्गशशिनो-स्तदधिष्ठितराशितः ।
त्रिंशांशतो वा विबुधै-र्नारीणां फलमीरितम् ॥ ८ ॥

लग्न चन्द्रमा में जो प्रबल हो उसकी राशि या तदधिष्ठित राशि के त्रिंशांश से स्त्रियों का फल (विशेष रूप से) समझना चाहिए ॥ ८ ॥

बली तयोः कुजगृहे त्रिंशांशे च दुरङ्गना ।
भार्गवे दुश्चरित्रा सा बौधे मायाविनी मता ॥ ९ ॥
मान्दे चेटी सती जैवे, विद्धे कौजे च सच्छला ।
भार्गवे कामुकी प्रोक्ता विदोंऽशे सगुणा स्मृता ॥ १० ॥
शन्यंशे क्लीबतायुक्ता साध्वी जैवेऽपि काव्यभे ।

लग्न, चन्द्रमा में बली जो हो वह कुजगृह (मेष, वृश्चिक) स्थ होकर मंगल के ही त्रिंशांश में हो तो कन्या दुष्टा अर्थात् कन्यावस्था में ही परपुरुष भुक्ता होती है। शुक्र त्रिंशांश में हो तो विवाहानन्तर दुश्चरित्रा, बुध त्रिंशांश में मायाविनी, शनि-त्रिंशांश में हो तो दासी, तथा गुरु के त्रिंशांश में हो तो सती होती है। यदि बुध राशि (कन्या मिथुन) में होकर कुजत्रिंशांश में हो तो कपटयुक्ता, शुक्रत्रिंशाश में—कामुकी, बुधत्रिंशांश में गुणोपेता, शनित्रिंशांश में क्लीबतायुक्ता, गुरु के त्रिंशांश में हो तो साध्वी वह होती है ॥ ९–१० ॥

कुजांशे दुश्चरित्रा सा भार्गवे गुणविश्रुता ॥ ११ ॥
विदोंऽशे सत्कलोपेता सगुणा गौरवे मता ।

मन्दांशे दीधिषूश्चान्द्रे-भे स्वतन्त्रा कुजांशके ॥ १२ ॥
काव्ये तु कुलटा शिल्प-कलादक्षा विदोंऽशके।
गौरवेऽतिगुणा मान्दे त्रिशांशे पतिघातिनी ॥ १३ ॥

शुक्रराशि (वृष, तुला) में होकर यदि वे (लग्न-चन्द्रमा में बली) कुजत्रिंशांश में हों तो चरित्रहीना, शुक्र के ही त्रिंशांश में रहें तो विख्यातगुणा, बुधत्रिंशांश में सत्कलाओं से परिपूर्णा, गुरुत्रिंशाश में रहें तो गुणवती तथा शनित्रिंशांश में रहने पर दीधिषू (पुनर्भू = सगाई करने वाली) कन्या होती है। चन्द्रराशि कर्क में होकर वे (लग्न, चन्द्रमा में बली) यदि मंगल के त्रिंशांश में रहें तो स्वतन्त्रा, शुक्रत्रिंशांश में हों तो कुलटा, बुधत्रिंशांश में रहें तो शिल्पकलाओं में प्रवीणा, गुरुत्रिंशांश में हों तो बहुगुणयुक्ता, शनित्रिंशांश में रहें तो पतिघातिनी वह होती है ॥

सूर्यर्क्षेऽपि कुजांशे तु वाचाटांऽशे भृगोः सती।
ज्ञांशे पुमाकृती राज्ञी जैवे, भ्रष्टाऽर्कजांऽशके ॥ १४ ॥
कुजांशे जीवभे भूरि-गुणा शौक्रे तु पुंश्चली।
विज्ञानज्ञा विदोंऽशे तु गौरवेऽतिगुणान्विता ॥ १५ ॥
शन्यंशे स्तोकसुरता चेटी भौमेऽपि मन्दभे।
विदुषी तु सितस्यांशे ज्ञांशे पापाऽपि नीचगा ॥ १६ ॥
गौरवे तु सती मन्द-त्रिशांशे नीचगामिनी।

सूर्यराशि सिंह में होकर वे (लग्न चन्द्र में बली) भौम त्रिंशांश में रहें तो वकवादिनी, शुक्रत्रिंशांश में रहे तो सती, बुधत्रिंशांश में रहें तो पुरुषाकारा, गुरुत्रिंशांश में रहें तो रानी, शनित्रिंशांश में रहने पर भ्रष्टा होती है।

गुरुराशि (धन मीन) में रहते हुए वे भौमत्रिंशांश में रहें तो अनेक गुणवती, शुक्रत्रिंशांश में पुंश्चली, बुधत्रिंशांश में विज्ञानवेत्री, गुरुत्रिंशांश में अधिक गुणवती, शनित्रिंशांश में रहें तो अल्परति करनेवाली होती है।

शनिराशि (मकर कुम्भ) में होकर वे (लग्न-चन्द्रमा में बली) भौमत्रिंशांश में रहें तो दासी, शुक्रत्रिंशांश में हों तो विदुषी, बुधत्रिंशांश में हों तो पापयुक्ता तथा नीच पुरुष के साथ सुरत करनेवाली, गुरुत्रिंशांश में सती तथा शनित्रिंशांश में भी नीच पुरुषगामिनी होती है ॥ १४–१६ ॥

निर्ग्रहे सप्तमे सौम्या-दृष्टे कुपुरुषः पतिः ॥ १७ ॥
विदेशवासी चरभे षण्डस्तत्रार्किसौम्ययोः।
पत्या त्यक्ता मदेऽर्के तु विधवाऽऽरे तु शैशवे ॥ १८ ॥
पापेक्षितेऽर्कजे कन्या-ऽनूढा वृद्धत्वमाप्नुयात्।
सद्भिर्मदगतैः साध्वी विधवा स्यादसद्ग्रहैः ॥ १९ ॥

मिश्रग्रहैर्द्विरूढा सा शुभाशुभफलैर्युता ।
अन्योऽन्यांशगतौ शुक्रकुजौ चेत् परगामिनी ॥ २० ॥
चन्द्रे मदगते तत्र परगा पत्युराज्ञया ।
सितर्क्षे मन्दभे वापि ससितेन्दौ तनौ गते ॥ २१ ॥
तदाङ्गना पांशुला स्याज्जनन्या सह निश्चितम् ।

सप्तम भवन निर्ग्रह तथा शुभग्रह की दृष्टि से रहित हों तो उसका पति कापुरुष होता है। सप्तम भाव चन्द्र राशि का हो तो उस स्त्री का स्वामी परदेशी होता है। शनि बुध दोनों उसमें हों तो उसका पति पुंसत्वविहीन होता है।

सप्तम में सूर्य रहें तो स्त्री पतित्यक्ता, मंगल में रहने पर बालविधवा, होती है। पापदृष्ट शनि सप्तम में रहें तो अविवाहिता ही वह बूढ़ी हो जाती है। शुभग्रह सप्तम में हों तो कन्या सधवा, साध्वी और असद्ग्रह उसमें हों तो वैधव्ययुक्ता होती है। शुभ पाप दोनों तरह के ग्रह रहें तो वह मिश्रित फलभागिनी होती हुई सगाई (पुनर्भूः) करने वाली होती है। शुक्र तथा मंगल परस्पर एक दूसरे के नवांश में हों तो कन्या परपुरुषगामिनी होती है। इस योग में चन्द्रमा सप्तम में हों तो पति की आज्ञा से वह परपुरुषगामिनी होती है। लग्नगत सचन्द्रशुक्र शुक्र या शनि की राशि (वृषतुला, मकर तथा कुम्भ) में हों तो वह स्त्री माता के साथ पांशुला होती है ॥ १७–२१ ॥

मदे कुजांशे वा तद्भे भर्त्ता क्रोधी च लम्पटः ॥ २२ ॥
विदो भे वा तदंशे तु सत्कलावित् सुपण्डितः ।
गौरवेऽनेकगुणवान् मदे स्यात् संयतेन्द्रियः ॥ २३ ॥
भार्गवे भाग्यवान् भर्त्ता सुरूपः कामिनीप्रियः ।
मन्दस्य भे तदंशे वा मदे मूढो जरातुरः ॥ २४ ॥
सिंहांशेऽतिकठोरः स्यात् तद्भे वा बहुकार्यकृत् ।
चान्द्रे भेंऽशे मदे भर्त्ता सुरूपः कामुको मृदुः ॥ २५ ॥
मिश्रैः फलं मिश्रितं तद्-बलतो भनवांशयोः ।

सप्तम भवन में भौमराशि या भौमनवांश हो तो उस स्त्री का पति क्रोधी तथा लम्पट होता है। वहीं बुध राशि (मिथुन, कन्या) या बुध का नवांश हों तो स्त्री का पति सत्कलाभिज्ञ सुपण्डित होता है। गुरु की राशि या गुरु नवांश वहां हों तो स्त्री का पति अनेकविध गुणों से युक्त, संयतेन्द्रिय होता है। शुक्रराशि (वृष, तुला) या शुक्र का नवांश सप्तम में हो तो पति सौभाग्यशील, सुन्दर तथा स्त्रियों का प्रेमी, शनिराशि (मकर, कुम्भ) या शनिनवांश सप्तम में हो तो वह मूर्ख तथा जरावस्थापन्न (बूढ़ा), सिंह राशि या सिंह का नवांश सप्तमगत हो तो पति अति

कठोर एवं बहुत कार्य करने वाला, कर्क राशि या कर्क का नवांश सप्तमगत हो तो वह सुरूप, कामी, तथा मृदुल होता है। मिश्रित राशि एवं नवांश में मिश्रित फल, तथा राशि नवांश के बलानुसार फलादेश करना चाहिए ॥ २२–२५ ॥

रवौ रन्ध्रस्थिते बाला दरिद्रा दुःखिता तथा ॥ २६ ॥
सखेदा विक्षताङ्गी च धर्मतो विमुखी सदा।
अष्टमस्थे तु शशिनि कुदृक्कुचभगान्विता ॥ २७ ॥
वामो भूषणरहिता रुग्णा चातीव निन्दिता।
भौमे रन्ध्रगते जाता सरोगा दुर्बला तथा ॥ २८ ॥
निष्प्रभा दुःखसन्ताप-शोकिता विधवा मता।
अष्टमस्थे विदि तु सा भयत्रस्ता कलिप्रिया ॥ २९ ॥
धनधर्माभिमानैश्च रहिता गुणवर्जिता।
जीवेऽष्टमगते नारी शीलहीनाऽल्पसन्ततिः ॥ ३० ॥
पतित्यक्ता स्थूलपाद-शया प्रचुरभोजना।
अष्टमस्थे सिते मत्ता निर्धना मलिना तथा ॥ ३१ ॥
छलिनी निष्ठुरा धर्म-रहिता सा स्मृता बुधैः।
मन्देऽष्टमगते बाला मलिना वञ्चनापरा ॥ ३२ ॥
दुःस्वभाववती स्वामि-सौख्यहीना प्रजायते।
अगावष्टमगे नारी क्रूरहृद्रोगिणी तथा ॥ ३३ ॥
पतित्यक्तापि कुलटा विरूपाऽपि च जायते।

स्त्री के अष्टम भाव में सूर्य रहें तो वह दरिद्रा, दुःखिता, खिन्ना, क्षताङ्गी, तथा धर्मपराङ्मुख होती है। अष्टम में चन्द्र हों तो उसकी दृष्टि, स्तन तथा भग कुत्सित होते हैं। साथ ही वस्त्रालङ्कार रहित वह रुग्णा तथा निन्दिता भी होती है। अष्टमगत भौम के होने पर स्त्री रोगयुक्ता दुर्बला, निष्प्रभा (कान्तिहीन) दुःख संताप से शोकित विधवा होती है। बुध के अष्टमस्थ होने पर स्त्री भीत तथा झगडालू, धन, धर्म, अभिमान से रहित, गुणहीन होती है। गुरु के अष्टमगत होने पर वह शीलरहित अल्पसन्तति वाली, पतित्यक्ता, मोटा हाथ-पैर वाली तथा अधिक खाने वाली होती है। शुक्र अष्टमस्थ हों तो स्त्री प्रमत्त, दरिद्रा, गन्दी, कपट करनेवाली, क्रूरा तथा धर्मरहिता होती है। शनि अष्टमस्थ हों तो वह गन्दी, ठगी, दुष्टस्वभाव वाली तथा पतिसौख्य से विहीन होती है। राहु के अष्टमस्थ होने पर स्त्री क्रूर-हृदया, रुग्णा, पतित्यक्ता (जिसे पति ने छोड रक्खा हो) कुलटा तथा कुरूपा होती है ॥ २६–३३ ॥

वन्ध्या योग तथा शान्ति—

सितेन्दू लग्नगौ सौरि-भौमाभ्यां संयुतौ तथा ॥ ३४ ॥
पापेक्षितयुतं पञ्चमं वन्ध्या तर्हि सा मता ।
शिवस्नपनतो विष्णुकीर्त्तनाद्वा ससन्ततिः ॥ ३५ ॥

लग्नगत शुक्र तथा चन्द्र, शनि भौम से दृष्ट हों तथा पञ्चम भवन पापग्रह युक्त या पापदृष्ट हो तो स्त्री वन्ध्या होती है। वह शिव स्नपन (रुद्राभिषेक) या विष्णु-कीर्त्तन से सन्तानयुक्ता होवे ॥ ३४–३५ ॥

दुर्भगा-सुभगा योग—

पापांशे सप्तमगते दुर्भगा मन्दवीक्षिते ।
सदंशे तत्र सा स्वामि-प्रियाऽपि सुभगा मता ॥ ३६ ॥

सप्तम भाव में पापग्रह का नवांश हो, और शनि की दृष्टि भी उसपर रहे तो स्त्री दुर्भगा, सप्तमगत शुभग्रह के नवांश में वह पतिवल्लभा तथा सुभगा होती है ।३६।

पितृगृहसुखयोग—

विद्भे तनौ जन्मकाले सितेन्दुसहिते तदा ।
गेहे पितुः सर्वसौख्य-परिपूर्णा तु सा भवेत् ॥ ३७ ॥

बुधराशि (मिथुन-कन्या) लग्न शुक्र तथा चन्द्रमा से युक्त हो तो वह स्त्री पितृगृह में सर्वविध सौख्यपूर्णा होती है ॥ ३७ ॥

सौख्यकृद्योग—

सितेन्दुज्ञास्तनुगता भूरिसौख्यगुणप्रदाः ।
गुरुस्तत्र गतः पुत्र-धनसौख्यसमृद्धिकृत् ॥ ३८ ॥

लग्न में शुक्र, चन्द्र, बुध हों तो कन्या अनेक सौख्य तथा गुणों से युक्त होती है। गुरु लग्नगत हों तो पुत्र, धन, सुख, समृद्धि से युक्त होती है ॥ ३८ ॥

वन्ध्या काकवन्ध्या योग—

तनो रन्ध्रगतौ सूर्य-चन्द्रौ निजगृहस्थितौ ।
वन्ध्या बालाऽथ सा काक-वन्ध्या ज्ञेन्दू तथा यदि ॥ ३९ ॥

लग्न से अष्टम में अपने घर के सूर्य, चन्द्र हों तो (अष्टमभाव में कर्क या सिंह हो और उसमें सूर्य चन्द्र दोनों हों) तो कन्यावन्ध्या होती है। बुधक्षेत्र (मिथुन, कन्या) या चन्द्रगृह कर्क अष्टम हो और उसमें बुध तथा चन्द्रमा हों तो वह कन्या काकवन्ध्या होती है ॥ ३९ ॥

मन्दारभे तनुगते सितेन्दुसहिते तथा ।
पापेक्षिते तदा बाला ध्रुवं वन्ध्या प्रजायते ॥ ४० ॥

शनि, मंगल की राशि (मकर, कुम्भ, मेष, वृश्चिक) लग्न में शुक्र चन्द्रमा का संयोग तथा पापग्रह की दृष्टि हो तो कन्या निश्चयतः वन्ध्या (बाँझ) होती है ॥४०॥

मृतापत्या योग—

सागौ रवौ सप्तमगे सपापे पञ्चमे तथा ।
मृतौ सितेज्यफणिनो मृतवत्सा तदा हि सा ॥ ४१ ॥

सप्तम भवन सूर्य, राहु से युक्त, या अष्टम शुक्र, गुरु तथा राहु से युक्त हो, पञ्चम भी सपाप हो तो कन्या मृतवत्सा होती है ॥ ४१ ॥

सितजीवकुजा रन्ध्रे जायाभावेऽथवा कुजः ।
शनीक्षितयुतस्तर्हि गर्भस्रावयुताऽङ्गना ॥ ४२ ॥

अष्टम में शुक्र गुरु, भौम हों या सप्तमस्थ मंगल शनि से युक्त या दृष्ट हों तो कन्या गर्भस्राववती होती है ॥ ४२ ॥

कुलहन्तृयोग—

लग्नचन्द्रगता पाप-कर्त्तरी यदि जन्मनि ।
तदा बाला कुलं पत्यु-र्नाशयेच्च पितुस्तथा ॥ ४३ ॥

जन्म समय में लग्न तथा चन्द्रमा दोनों में पापग्रह की कर्त्तरी (द्वादश में मार्गी और द्वितीय में वक्री पापग्रह) हो तो वह स्त्री पति तथा पिता के वंश को नष्ट करने वाली होती है ॥ ४३ ॥

विषकन्यायोग—

भद्रातिथौ कुजार्कार्किदिनेऽहिवरुणाग्निभे ।
जाताऽङ्गना विषाख्या स्याद् ध्रुवं दुष्फलभागिनी ॥ ४४ ॥

भद्रातिथि (२।७।१२), रवि, मंगल तथा शनि दिन, और आश्लेषा, शतभिषा कृतिका नक्षत्र इन तीनों के संयोग में जन्म लेने वाली कन्या विषसंज्ञक तथा दुष्फल को भोगने वाली होती है ॥ ४४ ॥

द्वितीय विषकन्यायोग—

शुभोऽशुभश्च तनुगो-ऽशुभावरिगृहस्थितौ ।
यदीयजन्मसमये कुमारी सा विषाभिधा ॥ ४५ ॥

जिस के जन्मकाल में—लग्न में एक शुभग्रह और एक पापग्रह तथा षष्ठ में दो पापग्रह हों तो वह कन्या विषसंज्ञक होती है ॥ ४५ ॥

विषकन्याफल—

विषयोगोद्भवा बाला मृतापत्या प्रजायते ।
वासोभूषाविहीना च ससन्तापशुचान्विता ॥ ४६ ॥

विषयोगोत्पन्न कन्या मृतवत्सा, वस्त्रभूषणविहीन तथा शोकसन्तापयुक्ता होती है ॥ ४६ ॥

विषयोगभङ्ग—

तनोर्वेन्दोरपि शुभो जायेशो वापि सप्तमे ।
स्थितस्तर्हि विषाख्योऽसौ योगो नश्यत्यसंशयम् ॥ ४७ ॥

लग्न या चन्द्रमा से सप्तम में शुभग्रह या सप्तमेश हों तो यह विषयोग निःसन्दिग्ध नष्ट हो जाता है ॥ ४७ ॥

पतिघातकयोग—

पातालेऽपि तनौ रन्ध्रे जामित्रे वापि च व्यये ।
स्थितः कुजः पतिं हन्ति न चेच्छुभयुतेक्षितः ॥ ४८ ॥
इन्दोरप्युक्तगेहेषु स्थितो भौमोऽथवा शनिः ।
पतिहन्ता स्त्रियाश्चैवं वरस्य यदि, स्त्रीमृतिः ॥ ४९ ॥

लग्न से १।४।७।८।१२ में स्थित मंगल शुभग्रह के योग या दृष्टि से विहीन हों तो कन्या विधवा हो जाती है । उक्त स्थान में चन्द्रमा से भी भौम या शनि हों तो स्त्री के पति का निधन होता है । वर की कुण्डली में ऐसा योग हो तो स्त्री की मृत्यु कहनी चाहिए ॥ ४८–४९ ॥

वैधव्ययोगभङ्ग—

स्त्रीणां वैधव्यदो योगः पुंसां जन्मनि चेद् भवेत् ।
तदा पत्नीविनाशः स्या-दुभयोश्चेच्छुभं स्मृतम् ॥ ५० ॥

स्त्रियों का वैधव्यकारक उपर्युक्त योग पुरुषकी कुण्डली में हो (१।४।७।८।१२ में मंगल हो) तो स्त्री का मरण होता है । दोनों की कुण्डली में यह स्थिति रहे तो कल्याण कहना चाहिए ॥ ५० ॥

परस्परनवांशस्थावार्किशुक्रौ विलोकितौ ।
मिथोऽथवा सितर्क्षे तु तनौ कुम्भांशके सति ॥ ५१ ॥
जाता कन्या यौवने तु कामार्त्ता पुरुषाकृति ।
मत्या सख्या शमयति स्वकीयमदनानलम् ॥ ५२ ॥

जन्मकाल में शनि, शुक्र परस्परनवांशगत हों (शनि, नवांशस्थ शुक्र तथा शुक्र-नवांशस्थ शनि हों) दोनों में पारस्परिक दृष्टि भी हो, अथवा शुक्रराशि (वृष, तुला) लग्न में कुम्भ का नवांश हो तो उत्पन्न कन्या युवावस्था आने पर पुरुषाकार अपनी सखी के द्वारा (अप्राकृतिक मैथुन क्रिया से) अपनी मदनाग्नि को शान्त करती है ॥ ५१–५२ ॥

वेदान्तादिशास्त्रज्ञतायोग—

सबलैर्भौमसितवि-ज्ञीवैर्लग्ने समर्क्षके ।
वेदान्तज्ञाऽनेकशास्त्र-दक्षा बाला प्रजायते ॥ ५३ ॥

जन्म समय में मंगल, शुक्र, बुध तथा गुरु प्रबल हों, लग्न सम राशि का हो तो कन्या वेदान्त तथा अनेक शास्त्रों में निपुण होती है ॥ ५३ ॥

संन्यासयोग—

सपापः सप्तमश्चैवं नवमोऽपि च सग्रहः ।
तदा प्रव्रजिता नारी पापभुक्तौ विशेषतः ॥ ५४ ॥

सप्तम भाव में पापग्रह, नवम में भी कोई ग्रह रहें तो वह स्त्री संन्यस्ता, विशेषतः पापग्रह की अन्तर्दशा में होती है ॥ ५४ ॥

मृत्युयोग—

शुभाशुभावष्टमस्थावपि तौ तुल्यविक्रमौ ।
पत्या समं मृतिं प्राप्य नारी याति सुरालयम् ॥ ५५ ॥
शुभे लग्नादष्टमस्थे क्रूरदृग्युतिवञ्चिते ।
प्रयाति निधनं नारी पत्युः पूर्वमिति ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

अष्टम भाव में शुभ तथा पापग्रह तुल्य पराक्रम (बल) वाले हों तो स्त्री पति के साथ दिवंगत होती है । अष्टम में शुभग्रह पापग्रह की दृष्टि या युति से वञ्चित हो तो पति के पूर्व ही स्त्री मरती है ॥ ५५–५६ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे स्त्रीजातकफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ अङ्गलक्षणफलाध्यायः ॥ ८१ ॥

मैत्रेय उवाच—

जन्मेन्दुलग्नवशतः प्रोक्तं तु सदसत्फलम् ।
अथाङ्गलक्ष्मभिः स्त्रीणां वक्तुमर्हसि तन्मुने ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे महर्षे ! जन्मलग्न या चन्द्रवश जातकों का शुभाशुभ फल आपने कहा, अब कृपया अङ्गचिह्न के अनुसार वह फल बतलावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

मैत्रेय ! यदि जिज्ञासा तेऽस्ति वच्मि निशामय ।
अङ्गानां लक्षणं स्त्रीणां फलं चापि शिवोदितम् ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! यदि अङ्गलक्षण के वश फल की जिज्ञासा है तो शिव के द्वारा प्रतिपादित अङ्गों के लक्षणज फल मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ २ ॥

पादतललक्षण—

मसृणं कोमलं नार्याः पत्तलं मांसलं तथा ।
समं लोहितमस्वेदं कोष्णं भोगप्रदं स्मृतम् ॥ ३ ॥

कठोरं स्फुटितं रूक्षमसमं रक्तिमोज्झितम् ।
अमांसलं शूर्पसमं दुःखदारिद्र्यसूचकम् ॥ ४ ॥

स्त्रियों का पादतल, स्निग्ध, कोमल, पुष्ट, सम, रक्त, स्वेद (घर्म) रहित तथा ईषदुष्ण, भोगप्रद कहा गया है। कठोर, फटा हुआ, रूखा, विषम, लालिमा से रहित, अपुष्ट शूर्पाकार पादतल दुःखदारिद्र्य-सूचक होता है ॥ ३–४ ॥

पादरेख-लक्षण—

पद्मकम्बुध्वजच्छत्र-मत्स्यस्वस्तिकचक्रयुक् ।
तलं पादस्याङ्गनायाः नूनं राज्ञीत्वसूचकम् ॥ ५ ॥
दीर्घोर्ध्वरेखा तत्रस्था-ऽखिलभोगप्रदा मता ।
वायसाऽऽखुभुजङ्गाभा यास्ता दौर्भाग्यदायिकाः ॥ ६ ॥

स्त्रियों के पादतल में कमल, शंख, ध्वजा, छत्र, मीन, स्वस्तिक तथा चक्र का चिह्न हो तो वह रानी होती है। पादतल में लम्बी ऊर्ध्वरेखा रहे तो समस्त भोगप्रद वह होती है, वही रेखाएँ कौआ, चूहा तथा सर्प के सदृश हों तो दुर्भाग्यदायक होती हैं ॥६॥

पादनख-लक्षण—

लोहिता वर्तुलाः प्रांशु-मसृणाः पन्नखाः शुभाः ।
असिताः खण्डितास्ते तु सदाऽशुभकराः स्मृताः ॥ ७ ॥

लाल, गोल, उन्नत तथा स्निग्ध पैर का नख शुभप्रद, और कृष्ण खण्डित वे सतत अशुभकर कहे गए हैं ॥ ७ ॥

अंगुष्ठाद्यंगुलिलक्षण—

पुष्टोऽङ्गुष्ठोऽपि वृत्तश्च प्रांशुः सौभाग्यसूचकः ।
चिपिटोऽतिलघुर्वक्रो दौर्भाग्यद्योतको मतः ॥ ८ ॥

पुष्ट, गोल, उन्नत, अङ्गुष्ठ सौभाग्यसूचक होता है, और चिपटा, अति छोटा तथा टेढ़ा वह दौर्भाग्यद्योतक होता है ॥ ८ ॥

पैर की शुभाशुभ अङ्गुलि—

तनवोऽङ्गुलयः पुष्टाः पादजा वर्तुला घनाः ।
प्रशस्ता, ह्रस्वदीर्घाश्च कृशा अपि विगर्हिताः ॥ ९ ॥

कोमल, पुष्ट, गोल, घन, पैर की अङ्गुलियाँ प्रशस्त होती हैं साथ ही लम्बी, छोटी, तथा पतली वे निन्दित होती हैं ॥ ९ ॥

पादाङ्गुलिफल—

दीर्घाङ्गुल्यस्तु कुलटाः कृशाङ्गुल्योऽधना मताः ।
ह्रस्वाङ्गुल्यो मितायुष्या विबुधैः परिकीर्त्तिताः ॥ १० ॥

चिपिटाङ्गुलिका दास्यः समारूढाङ्गुलीयुताः ।
विधवा दुःखिता नार्यो भवन्ति च पराश्रिताः ॥ ११ ॥

पैर में लम्बी अङ्गुली वाली कुलटा, पतली अङ्गुली वाली निर्धना, छोटी अंगुली वाली अल्पायुष्या, चिपटी अंगुली वाली दासी, समारूढ़ (एक पर दूसरी चढ़ी हो) अंगुली वाली विधवा, दुःखिता तथा पराश्रिता होती है ॥ १०–११ ॥

मार्गे चलन्त्यां यस्यां तु-त्पतन्ति च रजांसि वै ।
पांशुला सा तु विज्ञेया वंशत्रितयनाशिनी ॥ १२ ॥
यस्याश्चलन्त्याः पादस्य भूमिस्पृङ् न कनिष्ठिका ।
मध्यमाऽनामिका वापि सा वैधव्यमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥
अङ्गुष्ठतो यदि भवेत् तर्जनी महती स्त्रियाः ।
कौमारे सा पुमासक्ता ततोऽग्रे स्वैरिणी भवेत् ॥ १४ ॥

मार्ग में चलते समय जिसके पैरों के जरिये धूल उड़े वह पांशुला कुलत्रय (पितृ-मातृ-पति-कुल) को कलङ्कित करने वाली होती है । जिसके चलने पर पैर की कनिष्ठिका-मध्यमा या अनामिका अंगुली भूमिस्पर्श नहीं करे तो वह भी विधवा होती है । पादाङ्गुष्ठ से तर्जनी अंगुली बड़ी हो तो वह कुमारी अवस्था में ही पुरुषासक्त होती और बाद में भी पुंश्चली होती है ॥ १२–१४ ॥

पादपृष्ठ—

स्निग्धं मृदु मांसलं चा-शिरालं स्वेदवर्जितम् ।
अभ्युन्नतं पादपृष्ठं स्त्रिया राज्ञीत्वसूचकम् ॥ १५ ॥
अधोनतं शिरालं च रोमाढ्यं मांसवर्जितम् ।
दरिद्रा मार्गगा दासी दुर्भगासूचकं क्रमात् ॥ १६ ॥

स्त्रियों का पादपृष्ठ चिक्कन, कोमल, पुष्ट, शिरारहित, स्वेद (पसीना) रहित तथा उन्नत रानी होने का सूचक है । नीचे की ओर दबा हुआ वह रहे तो स्त्री दरिद्रा, शिराओं से पूर्ण रहे तो अधिक चलनेवाली, रोमयुक्त हो तो दासी, निर्मांस (दुर्बल) हो तो दुर्भगा वह होती है ॥ १५–१६ ॥

पार्ष्णि—

पार्ष्णौ समायां सुभगा स्थूलायां दुर्भगा मता ।
अभ्युन्नतायां कुलटा दीर्घायामतिदुःखिता ॥ १७ ॥

पार्ष्णि (पाद का पिछला भाग = ऐंड़ी) समान-रूपक हो तो स्त्री सुभगा, वह स्थूल हो तो स्त्री दुर्भगा, ऊँची हो तो स्त्री कुलटा, लम्बी वह हो तो स्त्री अतिदुःखिता होती है ॥ १७ ॥

जङ्घा—

सुवृत्ते रोमरहिते मसृणे विशिरे तथा ।
चारुजंघे यदीये स्तः साङ्गना राजवल्लभा ॥ १८ ॥

सुगोल, निर्लोम, चिक्कन, शिरारहित, सुन्दर, जंघाद्वय जिसका हो वह स्त्री राजा की प्रिया होती है ॥ १८ ॥

जानु—

जानुद्वयं सुवृत्तं च मसृणं मांसलं शुभम् ।
स्वैरिण्या मांसरहितं दरिद्रायाः श्लथं मतम् ॥ १९ ॥

सुवर्तुल, चिक्कन, पुष्ट, जानुद्वय शुभकारक होता है । स्वैरिणी स्त्री का जानुद्वय, निर्मांस, दरिद्रा का ढीला होता है ॥ १९ ॥

ऊरु—

वृत्तौ मृदू हस्तिशुण्डा-कृती रम्यौ घनौ तथा ।
अशिरालौ यदूरू स्तः सा राजमहिषी भवेत् ॥ २० ॥
सरोमौ चिपटौ तौ तु दुर्भगाविधवाकरौ ।

जिस स्त्री का ऊरुद्वय गोल, कोमल, हाथी के शुण्ड की तरह आकार वाले, मनोज्ञ, घने तथा शिरारहित हों तो वह स्त्री राजमहिषी (रानी) होती है । वे ही रोमयुक्त हों तो स्त्री दुर्भगा, चिपटे हों तो विधवा होती है ॥ २० ॥

कटि—

कटिः समा चतुर्विंश-त्यङ्गुलप्रमिता शुभा ॥ २१ ॥
अतिप्रशस्ता सुखदा समुच्छ्रितनितम्बिनी ।
लम्बानता सङ्कुचिता चिपिटा मांसवर्जिता ॥ २२ ॥
लघुः सरोमा विबुधैरुक्ता वैधव्यदायिका ।

२४ अंगुल प्रमित समान स्त्री का कटिप्रदेश शुभप्रद होता है । उन्नत नितम्ब युक्त कटिप्रदेश और भी प्रशस्त है । वही यदि दीर्घ, दबी हुई, संकुचित, चिपटी, निर्मांस, छोटी, रोमयुक्त हो तो (अशुभ) वैधव्यप्रद होती है, ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ २१-२२ ॥

नितम्ब—

मांसलश्चोन्नतः स्थूलो नितम्बः शोभनस्तथा ।
सौभाग्यसूचको वेद्यो दौर्भाग्यद्योतकोऽन्यथा ॥ २३ ॥

पुष्ट, उन्नत, स्थूल, नितम्ब सौभाग्यसूचक होता है । अपुष्ट, छोटा, दुबला वह दौर्भाग्यद्योतक है ॥ २३ ॥

भग—

कूर्मपृष्ठनिभो रक्त-स्तुङ्गो मृदुलरोमयुक् ।
भगो मृगीदृशां सौम्यो निगूढमणिमानपि ॥ २४ ॥
भगो मृगीखुरनिभ-श्चुल्लीकुक्षिसमोऽपि वा ।
सरोमोऽनावृतमुखो लक्ष्यनासो न शोभनः ॥ २५ ॥
सव्योन्नतः कुमारीजः पुत्रजस्तु तदन्यथा ।
वामावर्तो भगो जातुचिन्न गर्भधरो मतः ॥ २६ ॥

कछुए के 'पृष्ठसदृश' लाल, ऊँचा, कोमल रोमयुक्त, स्त्रियों का भग, जिसका मणि (भग-नासिका) निगूढ (छिपा हुआ हो) शोभन होता है । हरिणी के खुर सदृश या चुल्हीके उदर समान रोमयुक्त, फैले मुख वाला, तथा दृश्यमणि भग अशोभन होता है । बाँई तरफ ऊँचा भग पुत्रीजन्मप्रद, दक्षिणोन्नत वह पुत्रप्रद, और वामावर्त्त भग गर्भधारण में अक्षम होता है ॥ २४—२६ ॥

वस्ति—

महती मृदुला वस्तिः शुभदाऽभ्युन्नता मनाक् ।
शिराला रोमरेखाङ्का शुभदा नैव सम्मता ॥ २७ ॥

वस्ति (नाभि से नीचे का प्रदेश) बड़ी, कोमल तथा थोड़ी सी ऊँची शुभप्रद, तथा शिराओं एवं रोमयुक्त रेखाओं से युक्त वह अशुभप्रद होती है ॥ २७ ॥

नाभि—

नाभिर्गभीरा चावर्त्ता दक्षिणे त्वतिसौख्यदा ।
वामावर्त्ता स्फुटग्रन्थि-रुत्ताना सा त्वशोभना ॥ २८ ॥

दक्षिणावर्त्त, गम्भीर, नाभि सौख्यप्रद है और वामावर्त्त, उत्तान (ऊपर की ओर उठी हुई) तथा स्फुट ग्रन्थिवाली अशुभप्रद होती है ॥ २८ ॥

कुक्षि—

तता कुक्षिः शुभा प्रोक्ता-ऽनेकपुत्रजनुःप्रदा ।
मण्डूकाभा तु सा राज-जन्मदा चातिशोभना ॥ २९ ॥
कुक्षिरभ्युन्नता यस्या वन्ध्या सा त्रिवलीयुता ।
संन्यस्ताऽथापि चावर्त्त-युक्ता चेद् दास्यवृत्तिकृत् ॥ ३० ॥

विस्तृत कुक्षि (कोख) अनेक पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली शुभप्रद है । मण्डूक कोख तो राजा का जन्म देनेवाला अत्यधिक शुभप्रद है । जिस स्त्री की कुक्षि उन्नत हो वह वन्ध्या, त्रिवलीयुक्त हो तो संन्यास धारण करने वाली तथा आवर्त्तयुक्ता हो तो दासी की वृत्ति करने वाली होती है ॥ २९-३० ॥

पार्श्व—

पुष्टे समे मृदू पार्श्वे नारीणां क्षेमदे स्मृते ।
शिराले चापि लोमाढ्ये प्रांशू चाशोभने मते ॥ ३१ ॥

स्त्री के पार्श्व (पसली) पुष्ट, समान, तथा कोमल शुभद होते हैं और शिरा तथा रोमयुक्त पार्श्व अशोभन होते हैं ॥ ३१ ॥

हृदय—

नारीणां रोमरहितं समं च हृदयं शुभम् ।
अपि तासां विस्तृतं त-ल्लोमाढ्यं नहि शोभनम् ॥ ३२ ॥

स्त्रियों का निर्लोम तथा समान हृदय शोभन, एवं विस्तृत तथा रोमयुक्त वह अशोभन होता है ॥ ३२ ॥

स्तन—

कुचौ समौ पीवरौ च वर्तुलौ सुदृढौ शुभौ ।
अग्रे स्थूलौ मांसहीनौ पृथक्स्थौ न शुभौ मतौ ॥ ३३ ॥

स्त्रियों के स्तन समान, पीवर, गोल, तथा सुदृढ़ शुभप्रद और अग्रभाग में स्थूल, निर्मांस तथा अलग-अलग स्थित वे शुभद नहीं हैं ॥ ३३ ॥

सुतदा दक्षिणकुचो-न्नतौ वामा तु विश्रुता ।
वामस्तनोन्नतौ सा तु कुमारीजन्मदा मता ॥ ३४ ॥

दक्षिण स्तन की उन्नति में पुत्र का जन्म देने वाली और वाम स्तन उन्नत रहने पर कन्या का जन्म देनेवाली स्त्री होती है ॥ ३४ ॥

कुचाग्र—

कुचाग्रे शोभने स्त्रीणां सुवृत्तेऽपि च श्यामले ।
लम्बे कृशे नतेऽभ्यन्त-र्गदिते न शुभप्रदे ॥ ३५ ॥

स्त्रियों का श्यामल, गोल कुचाग्र शुभप्रद, और लम्बे, दुबले तथा दबे हुए कुचाग्र अशुभप्रद होते हैं ॥ ३५ ॥

स्कन्ध—

समावंसौ गुप्तसन्धी मांसलौ शोभनौ स्मृतौ ।
भुग्नौ सरोमौ निर्मांसा-वुन्नतौ नैव शोभनौ ॥ ३६ ॥

स्त्रियों के स्कन्ध समान गूढ़सन्धि तथा मांसल हों तो शुभप्रद होते हैं और टेढ़े, रोमयुक्त, मांसरहित तथा ऊँचे स्कन्ध अशोभन होते हैं ॥ ३६ ॥

काँख—

कक्षे सुसूक्ष्मरोमेऽपि मसृणे मांसले शुभे ।
शिरालेऽपि च सस्वेदे गभीरे चाशुभे मते ॥ ३७ ॥

स्त्रियों के कक्ष (काँख) सूक्ष्मरोमयुक्त, चिक्कन, तथा पुष्ट शुभद होते हैं और शिराल, सस्वेद (पसीना वाले), गहरे कक्ष अशुभ होते हैं ॥ ३७ ॥

बाहु—

निर्लोमावशिरालौ चा-लक्ष्यास्थी सरलावपि ।
वृत्तौ बाहू सुप्रशस्तौ मृदुग्रन्थियुतौ स्त्रियाः ॥ ३८ ॥
शिरालावपि भुग्नौ तु मांसहीनौ लघू च तौ ।
सस्थूललोमौ वामानां दुःखक्लेशप्रदायकौ ॥ ३९ ॥

स्त्रियों के भुज निर्लोम, शिराओं से रहित, हड्डी नहीं जिनमें देखा जाय (पुष्ट) तथा सीधे शुभप्रद होते हैं । शिराल, वक्र, निर्मांस, छोटे, तथा मोटे लोम वाले वे (भुज) अशुभप्रद होते हैं ॥ ३८–३९ ॥

कराङ्गुष्ठ—

हस्ताङ्गुष्ठौ तु वामानां पद्मकोरकसन्निभौ ।
शुभप्रदौ तथा भुग्नौ दुर्बलौ क्लेशदौ स्मृतौ ॥ ४० ॥

स्त्रियों के हाथों के अंगूठे कमल के कोरक (कलिका) सदृश हों तो शुभप्रद और टेढ़े, तथा कृश वे क्लेशकारक होते हैं ॥ ४० ॥

करतल—

मध्योच्छ्रितं लोहितं चा-च्छिद्रं करतलं मृदु ।
स्तोकरेखान्वितं वेद्यं स्त्रीणामतिसुखप्रदम् ॥ ४१ ॥

स्त्रियों का करतल मध्य में उन्नत, लाल (लालिमापूर्ण) छिद्ररहित, कोमल, तथा अल्पसंख्यक रेखाओं से युक्त शुभप्रद होता है ॥ ४१ ॥

वैधव्यं बहुरेखाभि-र्निर्धनत्वमरेखया ।
शिराभिर्भिक्षुवृत्तित्वं स्त्रीणां करतले भवेत् ॥ ४२ ॥

स्त्रियों के करतल में अनेक रेखाएँ हों तो वैधव्य, रेखाभाव हो तो निर्धनता, शिराएँ हों तो भिक्षावृत्ति होती है ॥ ४२ ॥

करपृष्ठ—

निर्लोमं मांसलं हस्त-पृष्ठं कोमलमुत्तमम् ।
शिरावृतं सरोमं च नतं दुर्भाग्यलक्षणम् ॥ ४३ ॥

लोमरहित, पुष्ट तथा कोमल स्त्रियों का हस्तपृष्ठ शुभप्रद और शिरायुक्त, रोमपूर्ण तथा नत (नीचे दबा हुआ) वह दौर्भाग्यसूचक होता है ॥ ४३ ॥

करतलरेखा—

वृत्तापि लोहिता स्पष्टा गभीरा मसृणा तथा ।
पूर्णा सौभाग्यदा प्रोक्ता रेखा वामकरे स्त्रियाः ॥ ४४ ॥

मीनाङ्कतस्तु सुभगा सधना स्वस्तिकाङ्कतः ।
पद्मचिह्नेन राज्ञी स्या-दपि माता च भूपतेः ॥ ४५ ॥
दक्षिणावर्त्तचिह्नेन वल्लभा चक्रवर्त्तिनः ।
कम्बुकूर्मच्छत्रचिह्नै राजमाताऽङ्गना मता ॥ ४६ ॥
वामहस्ते स्त्रिया रेखा द्विपाश्ववृषभाकृतिः ।
तुलाकाराऽथवा चेत्स्याद् वणिग्भार्या तदा हि सा ॥ ४७ ॥

स्त्रियों के बायें करतल में सुवृत्त, रक्त, स्पष्ट, चिक्कन, परिपूर्ण (छिन्न-भिन्न नहीं) रेखा सौभाग्यप्रद होती है। स्त्रियों के करतल में मत्स्य का चिह्न हो तो वह सुभगा, स्वस्तिक का चिह्न हो तो धनपूर्ण, कमल का चिह्न हो तो राजमहिषी तथा राजमाता दोनों होती है, अर्थात् पति-पुत्र दोनों राजा होते हैं। उसके करतल में दक्षिण आवर्त्त का चिह्न हो तो चक्रवर्त्ती राजा की प्रिया, शंख, कूर्म, छत्र, का चिह्न हो तो वह राजमाता होती है। स्त्रियों के वाम हस्त में हाथी, घोड़ा, बैल तथा तुला के आकार का चिह्न हो तो वह बनिये की स्त्री होती है ॥ ४४–४७ ॥

पविप्रासादाङ्कतः सा स्या-च्छास्त्रकृत्पुत्रजन्मदा ।
शकटस्य युगस्यापि चिह्नतः कृषकाङ्गना ॥ ४८ ॥
धनुश्चामरखड्गशक्ति-त्रिशूलाङ्कुशसद्गदा ।
दुन्दुभ्याकाररेखातो नारी राज्ञी मता बुधैः ॥ ४९ ॥

वज्र, प्रासाद (कोठा) का चिह्न हाथ में रहे तो वह स्त्री शास्त्रकार पुत्र को उत्पन्न करनेवाली होती है। गाड़ी, जूए के चिह्न रहे तो वह किसान की पत्नी होती है। धनुष, चामर, खड्ग, शक्ति, त्रिशूल, अङ्कुश, गदा, दुन्दुभि, आकार के चिह्न हाथ में रहने से स्त्री रानी होती है ॥ ५० ॥

विवर्ज्या कन्या—

रेखा विनिर्गतांगुष्ठ-मूलतश्चेत् कनीयसीम् ।
अंगुलिं याति यस्यास्तां पतिघ्नीं परिवर्जयेत् ॥ ५१ ॥
खरवायसभेकालि-वृक-मार्जार-भोगिनाम् ।
उष्ट्रवश्वकयोश्चापि रेखाः क्लेशकराः स्मृताः ॥ ५२ ॥

अङ्गुष्ठमूल से कनिष्ठिका अङ्गुलि तक जानेवाली रेखा जिसके हाथ में लक्षित हो पतिघ्नी (स्वामी के घातक) उस स्त्री को विवाह के समय सर्वथा त्याज्य समझना चाहिए। गदहा, कौआ, मेढ़क, बिच्छू, भेड़िया, बिलाव, सर्प, ऊँट तथा वञ्चक (गीदड़) के आकार की रेखा क्लेशकर होती हैं ॥ ५१–५२ ॥

करांगुलि—

स्त्रीणामंगुलयो व्यक्त-पर्वाणो वर्त्तुलाः कृशाः ।
लम्बा विरोमा मृदवः सुखसौभाग्यदा मताः ॥ ५३ ॥
कुटिला बहुपर्वाणो-ऽपर्वाणो वा कृशास्तथा ।
रोमान्विता ह्रस्वतरा दुःखदारिद्र्यदाः स्मृताः ॥ ५४ ॥

स्पष्ट पर्वयुक्त, गोल, पतली, दीर्घ, रोमरहित, कोमल स्त्रियों की अंगुलि सौभाग्यप्रद और वक्र, अनेक पर्ववाली या विना पर्व की, कृश, सरोम, बहुत छोटी वह अशुभ-सूचक तथा दुःख, दारिद्र्य देनेवाली होती है ॥ ५३–५४ ॥

नख—

स्त्रीणां कररुहा रक्ता उन्नताः शाखिनः शुभाः ।
मलिनाः पीतवर्णाभाः श्वेता अशुभदायिनः ॥ ५५ ॥

स्त्रियों के नख लाल, उन्नत, शाखायुक्त शुभप्रद होते हैं और मलिन, पीले या श्वेत अशुभप्रद हैं ॥ ५५ ॥

पृष्ठ—

स्त्रीणां पृष्ठं शुभं ज्ञेयं निगूढास्थि च मांसलम् ।
शिरोपेतं सरोमं च भुग्नं तन्न शुभप्रदम् ॥ ५६ ॥

स्त्रियों का पीठ अलक्षितास्थि (हड्डी जिसकी नहीं दीख पड़े) तथा पुष्ट शुभद है और रोम तथा शिरा से युक्त तथा टेढ़ा वह अशुभ होता है ॥ ५६ ॥

कण्ठ—

रेखात्रयाङ्कितः कण्ठो वृत्तोऽलक्ष्यास्थिकस्तथा ।
पुष्टः सुकोमलश्चैव स्त्रीणां सौभाग्यदो मतः ॥ ५७ ॥
कण्ठो वैधव्यदः स्थूलो भुग्नो दासीत्वसूचकः ।
वन्ध्याकरस्तु चिपिटो लघुः सन्तानहीनकृत् ॥ ५८ ॥

तीन रेखाओं से अङ्कित, गोल, हड्डी जिसमें नहीं लक्षित हो, पुष्ट, कोमल स्त्रियों का कण्ठ सौभाग्यप्रद होता है। उनका स्थूल कण्ठ वैधव्यकारक, टेढ़ा कण्ठ दासी बनानेवाला, चिपिटा कण्ठ बन्ध्याकर तथा छोटा वह सन्तानहीन बनाने वाला होता है ॥ ५७–५८ ॥

कृकाटिका—

कृकाटिका तु वामानां मांसला सरलोन्नता ।
शुभा, शिराला विपुला वक्रा रोमान्विताऽशुभा ॥ ५९ ॥

स्त्रियों की कृकाटिका (कण्ठ का उठा हुआ मध्य भाग) पुष्ट, सरल (सीधी) तथा ऊँची शुभद, तथा शिराओं से युक्त, बड़ी, टेढ़ी रोमयुक्त वह अशुभप्रद होती है ।

चिबुक—

कोमलं मांसलं रक्तं वामायाश्चिबुकं शुभम् ।
पीनं रेखावृतं भिन्नं द्विधा निन्दितमायतम् ॥ ६० ॥

स्त्रियों का जो चिबुक (ठुड्डी) कोमल, पुष्ट तथा लाल शुभप्रद, मोटा, तथा रेखायुक्त दो भागों में विभक्त आयताकार हो वह अशुभप्रद होता है ॥ ६० ॥

कपोल—

वर्तुलौ पृथुलौ प्रांशू कपोलौ शुभदौ स्त्रियाः ।
कृशौ सरोमौ कठिनौ निम्नावशुभदौ मतौ ॥ ६१ ॥

स्त्रियों का गाल सुवृत्त, पुष्ट तथा उन्नत शुभप्रद होते हैं। कृश, रोमयुक्त, कठोर तथा नीचे की ओर धँसे वे अशुभकारक होते हैं ॥ ६१ ॥

मुख—

वदनं तु मृगाक्षीणां वृत्तं पुष्टं सुगन्धयुक् ।
मसृणं च समं चारु सौभाग्यद्योतकं स्मृतम् ॥ ६२ ॥

स्त्रियों का मुख गोल, पुष्ट, सुगन्धपूर्ण, स्निग्ध, सम, तथा मनोहर सौभाग्यसूचक होता है ॥ ६२ ॥

अधर तथा उत्तरोष्ठ—

पाटलो मसृणो वृत्तो मध्ये रेखाविभाजितः ।
यस्या मनोज्ञस्त्वधरो भवेत् सा नृपतिप्रिया ॥ ६३ ॥
कृशो विरूक्षो दीर्घश्च स्फुटितः श्यामलस्तथा ।
अधरः पीवरो नार्या वैधव्यार्त्तिप्रदो मतः ॥ ६४ ॥
रक्तपद्मसमः स्त्रीणां स्निग्ध ऊर्ध्वरदच्छदः ।
मध्योन्नतो लोमहीनः सौभाग्य-सुखदायकः ॥ ६५ ॥

लाल, चिक्कन, वर्त्तुलाकार, बीच में रेखा से विभक्त, तथा सुन्दर, स्त्रियों का अधर रानी होने का सूचक है। कृश, रूखा, लम्बा, फटा हुआ, श्यामल तथा स्थूल वह (अधर) वैधव्य तथा पीडाप्रद होता है। स्त्रियों का ऊर्ध्वोष्ठ यदि लालकमल सदृश चिक्कन, बीच में ऊंचा तथा लोमरहित हो तो वह स्त्री सौभाग्यवती तथा सुखिनी होती है ॥ ६३–६५ ॥

दन्त—

शुभाः पयोनिभाः स्निग्धा द्वात्रिंशद्रदनाः स्त्रियाः ।
उपर्यधः समानाश्च किञ्चिदभ्युन्नतास्तथा ॥ ६६ ॥

विकटाः श्यामला लम्बाः पीता युगलपंक्तयः ।
अधोऽधिकाश्च विरला रदनास्त्वशुभा मताः ॥ ६७ ॥

दूध के सदृश स्वच्छ, चिक्कन, ऊपर तथा नीचे समान, जरा सा ऊँचे स्त्रियों के ३२ (बत्तिसो) दाँत विकट, श्यामल, लम्बे, पीले, नीचे की पंक्ति में अधिक तथा विरल (अलग-अलग) हों तो अशुभप्रद होते हैं ॥ ६६-६७ ॥

जिह्वा—

मृदू रक्ता च रसना शुभदाऽमितभोगदा ।
क्लेशदा विस्तराऽग्रे तु मध्ये संकुचिता स्त्रियाः ॥ ६८ ॥
सिता सा मृतिदा नीरे श्यामा विग्रहवल्लभा ।
दारिद्र्यदा तु पृथुला लम्बाऽभक्ष्यप्रिया मता ॥ ६९ ॥
प्राक्तनैर्मुनिभिः प्रोक्ता विशाला तु प्रमाददा ।

स्त्रियों की जिह्वा यदि कोमल तथा लाल वर्ण की हो तो अमित भोग को देनेवाली होती है । वही जिह्वा अग्रभाग में विस्तृत मध्य में संकुचित हो तो कष्टकर होती है । वह सफेद हो तो पानी में मरण देने वाली, श्यामल हो तो कलहकारिणी, मोटी हो तो दरिद्रता देनेवाली, लम्बी हो तो अभक्ष्य खानेवाली, और विशाल हो तो प्रमाद (असावधानी) कराने वाली होती है ॥ ६८–६९ ॥

तालु—

स्त्रियास्तु मसृणं तालु मृदु पाटलमुत्तमम् ॥ ७० ॥
सितं वैधव्यजनकं पीतं सन्न्यासदं मतम् ।
निःसन्ततिकरं कृष्णं रूक्षं बहुकुटुम्बकृत् ॥ ७१ ॥

स्त्रियों का तालु चिक्कन, कोमल तथा लाल उत्तम होता है । सफेद तालु वैधव्यसूचक, पीला वह सन्न्यास धारण कराने वाला, काला वह निःसन्तानकारक और रूखा तालु बहुकुटुम्बकारी होता है ॥ ७०–७१ ॥

हास्य—

अदृष्टरदनं हास्य-मीषद् विकचगण्डकम् ।
मुनिभिः शुभदं प्रोक्तं तदन्यदशुभं स्मृतम् ॥ ७२ ॥

स्त्रियों का ऐसा हास्य, जिसमें दांत नहीं दिखाई दे और जरासा कपोल प्रफुल्ल दीख पड़े, शुभप्रद, अन्य अर्थात् इससे भिन्न अशुभप्रद होता है ॥ ७२ ॥

नासा—

समानवर्त्तुलपुटा क्षुद्ररन्ध्रा तु शोभना ।
अग्रे तु पृथुला मध्ये निम्ना नासाऽशुभा स्त्रियाः ॥ ७३ ॥

अग्रेऽरुणा कुञ्चिता वा सा वैधव्यविधायिनी ।
दास्यदा चिपिटा लघ्वी लम्बा वा कलहप्रिया ॥ ७४ ॥

स्त्रियों की नासिका बराबर, गोलपुट वाली छोटा छेद जिसमें हो, शोभन होती है । अग्रभाग में मोटी मध्य (बीच) में चिपटी वह शुभद नहीं है । अग्रभाग में लाल या सकुची वह वैधव्यदायक होती है । चिपटी तथा छोटी नासिका दास्यवृत्ति देनेवाली, और लम्बी वह झगड़ालू बनानेवाली होती है ॥ ७३-७४ ॥

नयन—

लोहितान्ते तु नयने स्त्रियाः श्यामलतारके ।
गोदुग्धवत् सिते स्निग्धे शुभे चासितपक्ष्मणी ॥ ७५ ॥

प्रान्त में लाल, श्याम तारक (काली पुतली वाली), गोदुग्ध की तरह स्वच्छ एवं स्निग्ध तथा काली बरौनी (पपनी) वाली स्त्रियों की आंखें शुभप्रद होती हैं ॥ ७५ ॥

नेत्रफल—

उन्नतेऽक्षणि स्वल्पायुः स्वैरिणी वर्त्तुले मता ।
मधुवत् पिङ्गले तस्मिन् सर्वसौभाग्यसंयुता ॥ ७६ ॥
वामेन स्वैरिणी काणा वन्ध्या स्याद् दक्षिणेन सा ।
कपोताक्षी शीलहीना द्विपाक्षी दुःखभागिनी ॥ ७७ ॥

उन्नत आंखवाली स्वल्पायु होती है, गोल आंख वाली कुलटा, मधुसदृश पिंगल-नेत्रवाली सर्वविधसौभाग्य-युक्ता होती है । बांई आंख की कानी स्त्री पुँश्चली, दाहिने नेत्र से कानी वह वन्ध्या, कबूतर की तरह आंख वाली दुःशीला, और हाथी की आंख की तरह आंख वाली दुःखभागिनी होती है ॥ ७६-७७ ॥

पक्ष्म (पलक)—

सूक्ष्मासित-मृदुघनैः पक्ष्मभिः सुखभाग्यभृत् ।
तनुस्थूल-पिशङ्गैस्तु सा भवेद् दुःखिताऽनिशम् ॥ ७८ ॥

बारीक, काले, कोमल, तथा घने पक्ष्म (पलक) वाली स्त्री सुखसौभाग्य-युक्ता होती है और विरल (अलग-अलग) मोटे तथा पिङ्गल वर्ण के पलक वाली वह सदा दुःखिनी होती है ॥ ७८ ॥

भ्रू—

वृत्ते चापाकृती स्निग्धे श्यामे चाप्यघने भ्रुवौ ।
मृदुरोमयुते स्त्रीणां सुखकीर्तिप्रदे मते ॥ ७९ ॥

गोल, धनुषाकार, चिक्कन, काली, अघन (विरल) तथा कोमल रोमयुक्त स्त्रियों की भ्रू सुख तथा कीर्त्तिप्रद होती है; अर्थात् स्त्रियों की भ्रूलता उपर्युक्त स्वरूप की हो तो वह स्त्री सौभाग्यवती एवं यशस्विनी होती है ॥ ७९ ॥

कर्ण—

श्रुती लम्बे सदावर्त्ते सौभाग्यसुतदायिके ।
अशष्कुलीके सशिरे गर्हिते कुटिले तनू ॥ ८० ॥

स्त्रियों के कान लम्बे तथा सुन्दर ढंग से घूमे रहें तो स्त्री सौभाग्यवती तथा पुत्रवती होती है। वही कान विस्तार-रहित तथा शिराओं से युक्त, कुटिल तथा छोटे या पतले हों तो अशुभसूचक होते हैं ॥ ८७ ॥

कपाल—

विशिरो रोमरहितः कपालोऽर्धेन्दुसन्निभः ।
स्त्र्यङ्गुलत्रयतोऽन्यूनः स्त्रीणां सौख्यसुतप्रदः ॥ ८१ ॥
लक्षितस्वस्तिकाङ्गोऽपि राज्यदः परिकीर्त्तितः ।
रोमाढ्यः प्रोन्नतो दीर्घो भालो दुःखप्रदायकः ॥ ८२ ॥

शिराहीन, निर्लोम, अर्धचन्द्राकार, अपने अङ्गुल से तीन अंगुल से अधिक स्त्रियों का कपाल सौख्यप्रद तथा पुत्रदायक होता है। स्वस्तिक रेखाचिह्न, युक्त कपाल राज्यप्रद होता है। साथ ही सरोम, ऊँचा, लम्बा कपाल दुःखप्रद होता है ॥८१–८२॥

मस्तक—

प्रांशुर्गजेन्द्रकुम्भाभो वर्त्तुलो मस्तकः शुभः ।
विशालः कुटिलो लम्बो दुर्भाग्यक्लेशदः स्त्रियाः ॥ ८३ ॥

गजकुम्भ-सदृश उन्नत तथा गोलाकार स्त्रियों का मस्तक शुभप्रद और विशाल, कुटिल तथा लम्बा वह दौर्भाग्य एवं क्लेशप्रद होता है ॥ ८३ ॥

केश—

केशाः कृष्णाश्च मसृणा, लम्बाः सूक्ष्मास्तु सत्तमाः ।
पिङ्गाः कठोरा रूक्षा-श्चाघना ह्रस्वा न शोभनाः ॥ ८४ ॥
गौराङ्ग्याः पिङ्गलाः श्यामा वामायाः शुभदाः स्मृताः ।
एवमेव पूरुषाणा-मङ्गलक्षणमीरयेत् ॥ ८५ ॥

स्त्रियों के बाल काले, चिकने, लम्बे तथा पतले शुभप्रद, और पीले, कड़े, रूखे, बिखरे तथा छोटे वे (बाल) शुभप्रद नहीं होते हैं। गौरवर्णा स्त्री के पिंगल या काले बाल शुभद कहे गए हैं। इसी तरह पुरुषों का भी अङ्गलक्षण जानना चाहिए ॥८४–८॥

इति बृहत्पाराशर-होराशास्त्रेऽङ्गलक्षणफलाध्यायः समाप्तः ।

अथ तिलादिलक्ष्मफलाध्यायः ॥ ८२ ॥

पराशर उवाच—

अथ वच्मि फलं देह-जानां ते विप्र ! लक्ष्मणाम् ।
विशेषाद् मशकावर्त्त-तिलानां शृणु संयतः ॥ १ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं देहजात चिह्नों, विशेषतः मशक, आवर्त्त, तथा तिल चिह्नों का फल बतलाता हूँ, संयत होकर सुनो ॥ १ ॥

स्त्री-पुरुष सामान्य के शरीरस्थ तिल चिह्न के फल—

सव्याङ्गे दक्षिणांगे च स्त्रीणां पुंसां क्रमाच्छुभम् ।
रक्तं तिलनिभं चापि रोमावर्त्तं बुधैः स्मृतम् ॥ २ ॥
हृदि स्त्रीणां तिलाद्यङ्कः सुखसौभाग्यदायकः ।
दक्षे कुचे भवेद् यस्या लोहिते तिललाञ्छने ॥ ३ ॥
सा भवेत् सुखसौभाग्या-ऽनेकसन्तानसंयुता ।
सव्ये कुचे रक्ततिले भवेदेकसुतान्विता ॥ ४ ॥
दक्षिणं तु तिले तत्र सुतासुतयुता हि सा ।
भालेऽथवा भ्रुवोर्मध्ये लक्ष्म राज्यप्रदं स्मृतम् ॥ ५ ॥
मशको लोहितो गण्डे-ऽजस्रं मिष्टान्नदायकः ।

स्त्रियों के वाएं तथा पुरुषों के दक्षिणाङ्ग में रक्त या तिल-सदृश चिह्न, या रोमावर्त्त को विद्वानों ने शुभद कहा है । स्त्रियों के हृदय में तिलादिक चिह्न सुख-सौभाग्य-वर्धक होता है । स्त्री के दक्षिण स्तन में रक्त तिल-चिह्न सुख—सौभाग्य तथा अनेक सन्ततिप्रद होता है । वाम स्तन का रक्ततिल-चिह्न एकपुत्रप्रद होता है । दक्षिण स्तन का तिलचिह्न पुत्री तथा पुत्र दोनों का उत्पादक होता है । भाल स्थल या दोनों भौंहों के बीच उपरि कथित चिह्न राज्यप्रद होता है । गण्ड (गाल) स्थल में लाल मशक का चिह्न हो तो सतत मिष्टान्न प्राप्ति होती रहती है ॥ २—५ ॥

भगदक्षिणभागस्थ-लक्ष्मयुक्ताऽङ्गना हि या ॥ ६ ॥
महिषी नृपतेः सा स्या-दपि माता च भूपतेः ।
लोहितं लक्ष्म नासाग्रे नृपपत्नीत्वसूचकम् ॥ ७ ॥
मेचकं तत्तु विधवा-स्वैरिणी-सूचकं मतम् ।
स्त्रीणां पुंसां लक्ष्म नाभे-रधः शोभनमीरितम् ॥ ८ ॥

जिस स्त्री के भग के दक्षिण भाग में चिह्न हो वह राजा की धर्मपत्नी तथा राजमाता भी होती है। नासिका के अग्रभाग का रक्तचिह्न राजमहिषी होने का लक्षण है। वही (नासाग्र का चिह्न) यदि काला हो तो स्त्री विधवा तथा पुंश्चली होती है। नाभि स्थान के अधोभाग में विद्यमान चिह्न स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए शुभप्रद होता है ॥ ६–८ ॥

श्रुतौ कपोले हस्ते वा गले वाऽपि तु लाञ्छनम् ।
सुतदं प्रथमे गर्भे सत्सौभाग्यसुखप्रदम् ॥ ९ ॥
गुल्मे क्लेशप्रदं लक्ष्म तिलादिकमुदीरितम् ।

जिस स्त्री के कान, गाल, हाथ या कंठ में चिह्न हो तो उसे प्रथम सन्तान, सौभाग्य तथा सुखप्रद होती है। गुल्म-प्रदेश (जंघा) में तिलादिक चिह्न क्लेश प्रद कहा गया है ॥ ९ ॥

त्रिशूलसन्निभं लक्ष्म कपाले यदि लक्ष्यते ॥ १० ॥
पुरुषो नृपतिर्नारी महिषी नृपतेर्भवेत् ।
रोमावर्त्तो दक्षिणेन हृन्नाभ्योः करकर्णयोः ॥ ११ ॥
पृष्ठे च दक्षिणे शस्तो वस्तौ वामेन चाशुभः ।

स्त्रियों के मस्तक पर त्रिशूलाकार चिह्न दिखाई दे तो वह राजमहिषी होती है। वह चिह्न पुरुष के मस्तक पर रहे तो वह राजा होता है। हृदय, नाभि, हाथ, कान तथा दक्षिण पृष्ठ में स्थित दक्षिण वर्त्त रोमचक्र शुभप्रद कहा गया है। वस्ति (नाभि तथा लिङ्ग का मध्यदेश) में वामावर्त्त रोमचक्र अशुभप्रद होता है ॥ १०–११ ॥

दुःखप्रदो मतः स्त्रीणा-मावर्त्तः कटिगुह्ययोः ॥ १२ ॥
उदरे भ्रातृहा पृष्ठ-मध्ये स स्वैरिणीकरः ।
सीमन्ते भालशिरसो-र्मध्ये वाऽवर्त्तको गले ॥ १३ ॥
शुभदो नैव नारीणां पुंसां वाऽपि स्मृतो बुधैः ।
सल्लक्षणाः सच्चरित्राः स्त्रियः स्वल्पायुषं पतिम् ॥ १४ ॥
दीर्घायुषं विदधते प्रसन्नमपि सर्वथा ।
इति तेऽभिहितं विप्र ! फलं लाञ्छनसम्भवम् ॥ १५ ॥

स्त्रियों के कटि प्रदेश तथा गोपनीय स्थान-स्थित आवर्त दुःखप्रद होता है। पेट में आवर्त्त रहने से भाई का विनाश होता है। जिस स्त्री के पृष्ठ के बीच आवर्त रहे तो वह स्त्री पुंश्चली होती है।

सीमन्त (मांग) प्रदेश, कपाल या मस्तक के मध्य प्रदेश एवं कण्ठ का आवर्त स्त्री या पुरुष दोनों के लिए अशुभप्रद होता है। सच्चरित्र एवं सल्लक्षणवती स्त्री

स्वल्पायुष्य वाले पति को भी दीर्घायुष्य तथा प्रसन्नता प्रदान करती है। हे मैत्रेय! यह स्त्रियों का अङ्गलाञ्छन जन्य फल मैंने बतलाया है ॥ १२–१५ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे तिलादिलक्षमफलाध्यायः समाप्तः ॥

अथ पूर्वजन्मशापवर्णनाध्यायः ॥ ७४ ॥

मैत्रेय उवाच—

मुने! पुंसामपि स्त्रीणां फलं तु भवतोदितम्।
इदानीमभिलष्यामि श्रोतुमन्यद् ब्रवीहि तत् ॥ १ ॥
मनीषिणो हि धर्मिष्ठाः पुत्रहीना भवन्ति हि।
पुत्रहीनस्य गदिता शास्त्रेषु न शुभा गतिः ॥ २ ॥
हेतुना केन तेषां वै जायते पुत्रहीनता।
पुत्राभावे सुतप्राप्तिः कथं भवितुमर्हति ॥ ३ ॥
लग्नात् पुत्राभावहेतु-ज्ञानं ज्योतिर्विदां कथम्?
कृपया सर्वमेतत्तु स्फुटं कथय मे प्रभो ॥ ४ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे महर्षे! आपने पुरुष एवं स्त्रियों का फलादेश कहा। अब मैं दूसरी बात सुनना चाहता हूँ, उसे भी कहें। विद्वान् तथा धर्मिष्ठ भी पुत्रहीन होते हैं। पुत्रहीनों की शुभ गति शास्त्रों में नहीं कही गई है। उन धर्मिष्ठ विद्वानों को किस कारण से पुत्रहीनता होती और पुत्राभाव में कैसे उन्हें पुत्रप्राप्ति हो सकती, लग्न पर से पुत्राभाव के कारणों का ज्ञान ज्योतिषियों को कैसे हो सकता, ये सभी बातें कृपया स्पष्ट रूप से मुझे बतलावें ॥ १–४ ॥

पराशर उवाच—

प्रश्नोऽयं ते मुने! साधुः पार्वत्यापि कृतः पुरा।
अधुना वच्मि ते सर्वं शम्भुना भाषितं यथा ॥ ५ ॥

पराशर ने उत्तर दिया—हे मैत्रेय! आपका यह प्रश्न सही है। पार्वती ने भी शङ्कर जी से ऐसा प्रश्न पहले किया था। अतः मैं शिव जी द्वारा कथित सभी बातों को स्पष्ट रूप से आप को बतलाता हूँ ॥ ५ ॥

पार्वत्युवाच—

दुरितेन तु केन स्यान्नृणां वै सन्ततिक्षयः।
तज्ज्ञानं रक्षणोपायं चापि मे कथय प्रभो? ॥ ६ ॥

पार्वती ने शङ्कर जी से प्रश्न किया—हे प्रभो ! किस पाप से मनुष्यों की सन्तान का नाश होता है ? वह कैसे जाना जा सकता है ? उन सन्ततियों की रक्षा का उपाय क्या है, ये सब मुझे बतलावें ॥ ६ ॥

शङ्कर उवाच—

प्रश्नोऽयं देवि ! ते साधुर्वच्मि सन्ततिनाशकान् ।
योगानपि च तद्रक्षो-पायाञ् शृणु समाहिता ॥ ७ ॥

शङ्कर जी ने उत्तर दिया हे देवि ! यह तुम्हारा प्रश्न ठीक है । अतः मैं सन्ततिक्षय-कारक योगों तथा उनकी रक्षा के उपायों को बतलाता हूं, समाहित होकर सुनो ॥७॥

अनपत्ययोग—

गुरुलग्नेशदारेश - पुत्रस्थानाधिपेषु च ।
सर्वेषु बलहीनेषु वक्तव्या त्वनपत्यता ॥ ८ ॥
रव्याररराहुशनयो बलिनः पञ्चमे स्थिताः ।
जातस्तदाऽनपत्यः स्यान्निर्बला यदि कारकाः ॥ ९ ॥

गुरु, लग्नेश, दारेश, तथा पञ्चमेश ये चारों निर्बल हों, तो मनुष्य निःसन्तान होता है । पुत्रस्थान में स्थित रवि, भौम, राहु तथा शनि प्रबल हों तथा कारक (पुत्रकारक) ग्रह निर्बल हों तो भी मनुष्य निःसन्तान होता है ॥ ८–९ ॥

सर्पशापवश पुत्रक्षय-योग—

पुत्रस्थानगते राहौ कुजेन च निरीक्षिते ।
कुजक्षेत्रगते वाऽपि सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १० ॥
पुत्रेशे राहुसंयुक्ते पुत्रस्थे भानुनन्दने ।
चन्द्रेक्षितयुते वापि सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ ११ ॥
कारके राहुसंयुक्ते पुत्रेशे बलवर्जिते ।
लग्नाधिपे सभौमेऽपि सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १२ ॥

पञ्चमस्थ राहु भौमदृष्ट हों या कुजक्षेत्र (मेष वृश्चिक) गत हों तो सर्पशाप से पुत्रक्षय समझना । पञ्चमेश सराहु हों तथा पञ्चमस्थ शनि पर चन्द्रमा की युति या दृष्टि हो तो भी सर्पशाप से सुत क्षय होता है । पुत्रकारक ग्रह सराहु हों, पञ्चमेश निर्बल रहें, और लग्नेश तथा मंगल का संयोग हो तो भी सर्पशाप से पुत्रक्षय कहना ॥ १०–१२ ॥

कारके भौमसंयुक्ते लग्ने चाप्यहिसंयुते ।
पुत्रस्थानेशके दुःस्थे सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १३ ॥

भौमांशे भौमसंयुक्ते पुत्रेशे सोमनन्दने ।
राहुमान्दियुते लग्ने सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १४ ॥
पुत्रस्थाने कुजक्षेत्रे पुत्रेशे राहुणान्विते ।
सौम्यदृष्टे युते वाऽपि सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १५ ॥
पुत्रस्था भानुमन्दाराः स्वर्भानुः शशिजोऽङ्गिराः ।
निर्बलौ पुत्रलग्नेशौ सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १६ ॥
लग्नेशे राहुसंयुक्ते पुत्रेशे भौमसंयुते ।
कारके राहुसहिते सर्पशापात् सुतक्षयः ॥ १७ ॥

पुत्रकारक ग्रह सभौम हो, लग्न सराहु हो, तथा पञ्चमेश दुःस्थान (त्रिक) में हो (१) पञ्चमेश बुध मंगल के नवांश में सभौम हों, और लग्न राहु तथा गुलिक से युक्त हो (२) पञ्चम भाव में मेष या वृश्चिक पड़े, सराहु पञ्चमेश, बुधयुक्त या बुधदृष्ट हो (३) पञ्चम भाव में सूर्य, मंगल, शनि, राहु बुध तथा गुरु हों, पञ्चमेश तथा लग्नेश निर्बल हों (४) लग्नेश सराहु, पुत्रेश सभौम हों, तथा कारकग्रह भी राहुयुक्त हो (५) सभी योगों में सर्पशाप से पुत्रक्षय होता है ॥ १३–१७ ॥

दोषशान्ति का उपाय—

नभोगयोगतः पुंसां ज्ञात्वैवमनपत्यताम् ।
तद्दोषपरिहारार्थं नागपूजां समाचरेत् ॥ १८ ॥
स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिष्ठां कारयेत् सुधीः ।
नागमूर्त्तिं सुवर्णेन कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥ १९ ॥
गोभूतिलहिरण्यादि दद्याद् वित्तानुसारतः ।
एवं कृते तु नागेन्द्र-प्रसादाद् वर्धते कुलम् ॥ २० ॥

इस तरह ग्रहयोगवश मनुष्यों की निःसन्तानता जानकर दोषशान्त्यर्थ नागपूजा करें। सोने की नागमूर्त्ति बनाकर गृह्यपद्धति के अनुसार विधानपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा (स्थापना) करके पूजा करें, और वित्तानुसार गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण आदि का दान करें। इस प्रकार नागराज की कृपा से वंशवृद्धि सम्भव है ॥ १८–२० ॥

पितृशाप से सुतक्षय योग—

पुत्रस्थानं गते भानौ नीचे मन्दांशकस्थिते ।
पार्श्वयोः क्रूरसम्बन्धे पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २१ ॥
पुत्रस्थानाधिपे भानौ त्रिकोणे पापसंयुते ।
क्रूरान्तरे पापदृष्टे पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २२ ॥

भानुराशिस्थिते जीवे पुत्रेशे भानुसंयुते ।
पुत्रे लग्ने पापयुक्ते पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २३ ॥
लग्नेशे दुर्बले पुत्रे पुत्रेशे भानुसंयुते ।
पुत्रे लग्ने पापयुक्ते पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २४ ॥
पितृस्थानाधिपे पुत्रे पुत्रेशे वा पितुर्गृहे ।
पुत्रे लग्ने पापयुक्ते पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २५ ॥
पितृस्थानाधिपो भौमः पुत्रेशेन समन्वितः ।
लग्ने पुत्रे पितृस्थाने पापे सन्ततिनाशनम् ॥ २६ ॥
पितृस्थानाधिपे दुःस्थे कारके पापराशिगे ।
पापाढ्यौ लग्नसुतपौ पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २७ ॥
लग्नपञ्चमभावस्था भानुभौमशनैश्चराः ।
रन्ध्रे रिष्फे राहुजीवौ पितृशापात् सुतक्षयः ॥ २८ ॥
लग्नादष्टमगे भानौ पुत्रस्थे भानुनन्दने ।
पुत्रेशे राहुसंयुक्ते लग्ने पापे सुतक्षयः ॥ २९ ॥
व्ययेशे लग्नभावस्थे रन्ध्रेशे पुत्रराशिगे ।
पितृस्थानाधिपे रन्ध्रे पितृशापात् सुतक्षयः ॥ ३० ॥
रोगेशे पुत्रभावस्थे पितृस्थानाधिपेऽप्यरौ ।
कारके राहुसंयुक्ते पितृशापात् सुतक्षयः ॥ ३१ ॥

(१) पञ्चमस्थान गत नीच का सूर्य शनि के नवांश में हो तो तथा उसके पार्श्वद्वय (अग्र-पश्चात्) में पापग्रह हों तो पितृशाप से पुत्रक्षय या पुत्राभाव होता है (२) पञ्चमेश सूर्य पापयुक्त होकर त्रिकोण में पापद्वय के मध्य में पापदृष्ट हो, (३) सिंह में गुरु, पञ्चमेश सूर्ययुक्त, पञ्चम तथा लग्न भाव सपाप हो, (४) दुर्बल लग्नेश पञ्चमभावस्थ हों, पुत्रेश भानुयुक्त, तथा पुत्रभाव, लग्न ये दोनों सपाप हों, (५) दशमेश पञ्चम में या पञ्चमेश दशम में हों और लग्न एवं पञ्चम सपाप हो, (६) दशमेश भौम पञ्चमेश के साथ हों और लग्न, पञ्चम तथा दशम में पापग्रह हों, (७) दशमेश त्रिक (६।८।१२) स्थ हों पुत्रकारक ग्रह पापराशिस्थ हों और लग्नेश एवं पञ्चमेश सपाप हों, (८) लग्न, पञ्चम में सूर्य, मंगल, तथा शनि हों और अष्टम, एवं द्वादश भाव में राहु तथा गुरु हों, (९) अष्टमस्थ सूर्य, पञ्चमस्थ शनि, पञ्चमेश राहुयुक्त, तथा लग्न सपाप हों, (१०) व्ययेश लग्न में, अष्टमेश पञ्चम में, और दशमेश अष्टम में हों, (११) षष्ठेश पञ्चम में, दशमेश षष्ठ में, और पुत्रकारक ग्रह सराहु हो तो सभी उपर्युक्त एगारह योगों में पितृशाप से सन्ततिक्षय (अनपत्यता) होता है ॥ २१–३१ ॥

शान्त्युपाय—

तद्दोषपरिहारार्थं गयाश्राद्धं च कारयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेदत्रा-युतं वापि सहस्रकम् ॥ ३२ ॥
विधाय कन्यकादानं गां च दद्यात् सवत्सकाम् ।
एवं कृते पितुः शापा-न्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥
वर्धते च कुलं तस्य पुत्रपौत्रादिभिर्मुने ।
नभोगयोगवशतः फलमेवं समादिशेत् ॥ ३४ ॥

पितृशाप-मोचन के लिए गयाश्राद्ध, हजार या दश हजार ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए । अथवा कन्यादान करके सवत्सा धेनु का दान करें जिससे निःसन्देह पितृशाप से मुक्ति एवं पुत्रपौत्रादि-प्राप्ति से वंशवृद्धि होती है । ग्रहयोगवश इस प्रकार फलादेश करें ॥ ३२–३४ ॥

मातृशापवश सन्ततिक्षय योग—

पुत्रस्थानाधिपे चन्द्रे नीचे वा पापमध्यगे ।
हिबुके पञ्चमे पापे मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ३५ ॥
लाभे मन्दान्विते चैवं मातृस्थाने शुभेतरे ।
नीचे पञ्चमगे चन्द्रे मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ३६ ॥
पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे लग्नेशे नीचराशिगे ।
चन्द्रे पापसमायुक्ते मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ३७ ॥
पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे चन्द्रे पापांशसंगते ।
लग्ने पुत्रे पापयुक्ते मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ३८ ॥
पुत्रस्थानाधिपे चन्द्रे मन्दराह्वारसंयुते ।
भाग्ये वा पुत्रभावे वा शापान्मातुः सुतक्षयः ॥ ३९ ॥
मातृस्थानाधिपे भौमे शनिराहुसमन्विते ।
रवीन्दुसंयुते पुत्रे लग्ने वा सन्ततेः क्षयः ॥ ४० ॥
लग्नात्मजेशौ शत्रुस्थौ रन्ध्रे मात्रधिपः स्थितः ।
पितृनाशाधिपौ लग्ने मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४१ ॥
षष्ठाष्टमेशौ लग्नस्थौ व्यये मात्रधिपे, सुते ।
चन्द्रे जीवे च पापाढ्ये मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४२ ॥

पापमध्यगते लग्ने क्षीणे चन्द्रे च सप्तमे ।
मातृपुत्रे राहुमन्दौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४३ ॥

(१) पञ्चमेश चन्द्र नीच स्थान या पापद्वय के मध्य में हों और चतुर्थ पञ्चम भाव सपाप हो, (२) एकादश में शनि, चतुर्थ सपाप और नीच का चन्द्र पंचमस्थ हो, (३) पंचमेश त्रिकस्थ, लग्नेश नीचराशि में, चन्द्रमा सपाप हो, (४) पंचमेश त्रिकगत, चन्द्रमा पापग्रह के नवांश में और लग्न तथा पंचम सपाप, (५) पंचमेश चन्द्र, शनि, राहु, मंगल के साथ नवम या पंचम में हो, (६) सुखेश भौम शनि-राहु युक्त हों और लग्न तथा पञ्चम में रवि-चन्द्र रहें, (७) लग्नेश तथा पञ्चमेश षष्ठस्थ हों चतुर्थेश अष्टमगत हों और अष्टमेश तथा दशमेश लग्न में हों, (८) षष्ठाष्टमेश लग्नगत हों, चतुर्थेश व्ययस्थान में, सपाप गुरु-चन्द्र पञ्चम में हों, (९) लग्न दो पापग्रहों के बीच हो क्षीणचन्द्र सप्तम में और राहु, शनि क्रमशः चतुर्थ-पञ्चमगत हों तो उपर्युक्त सभी योगों में मातृशाप से पुत्रक्षय होता है ३५–४३ ॥

नाशस्थानाधिपे पुत्रे पुत्रेशे नाशराशिगे ।
चन्द्रमातृपतौ दुःस्थे मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४४ ॥
चन्द्रक्षेत्रे यदा लग्ने कुजराहुसमन्विते ।
चन्द्रमन्दौ पुत्रसंस्थौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४५ ॥
लग्ने पुत्रे मृतौ रिष्फे भौमो राहू रविः शनिः ।
मातृलग्नाधिपौ दुःस्थौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४६ ॥
नाशस्थानं गते जीवे कुजराहुसमन्विते ।
पुत्रस्थाने मन्दचन्द्रौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥ ४७ ॥
योगैरेभिर्जनो ज्ञेयः सन्तानरहितो द्विज ।
तस्मात् तद्रक्षणोपायं शान्त्यादिकमिहाचरेत् ॥ ४८ ॥
सेतुस्नानं प्रकुर्वीत गायत्री लक्षसंख्यका ।
ग्रहदानं च कर्त्तव्यं रौप्यमात्रं पयः पिबेत् ॥ ४९ ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तद्व-दश्वत्थस्य प्रदक्षिणम् ।
कर्त्तव्यं भक्तियुक्तेन चाष्टाधिकसहस्रकम् ॥ ५० ॥
एवं कृते तु हे देवि ! शापान्मोक्षो भविष्यति ।
पुत्रं हि लभते पश्चाद् वृद्धिः स्यात् तस्य वंशजा ॥ ५१ ॥

(१) अष्टमेश पञ्चम में, पञ्चमेश अष्टम में हों और चन्द्रमा तथा सुखेश दुःस्थान (६।८।१२) गत हों, (२) कर्क लग्न में मंगल तथा राहु रहें और चन्द्रमा तथा शनि पञ्चमगत हों, (३) लग्न, पंचम, अष्टम तथा द्वादश में मंगल, राहु, सूर्य तथा

शनि हों, चतुर्थेश एवं लग्नेश त्रिकगत हों, (४) गुरु अष्टम में मंगल-राहु से युक्त हों, पञ्चम में शनि, चन्द्र हों तो मातृशाप से पुत्रक्षय कहना चाहिए। इन उपर्युक्त योगों से मनुष्य निःसन्तान हो जाता है। अतः सन्तति-रक्षार्थ शान्ति (जप-पूजन आदि) करानी चाहिए। शान्त्यर्थ—समुद्रस्नान, लक्षप्रमित गायत्रीजप, ग्रहदान, ब्राह्मणभोजन, पिप्पल की १००८ बार भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा आदि करनी चाहिए। इस प्रकार की शान्ति से शापमुक्ति तथा वंशवृद्धि सम्भव है ॥ ४४–५१ ॥

भ्रातृशापवश-सन्ततिक्षय योग—

ब्रवीमि भ्रातृशापोत्थ-योगांस्तेऽथ द्विजोत्तम !
यज्ज्ञानतो जना यत्नं कुर्युः शापविमुक्तये ॥ ५२ ॥
भ्रातृस्थानाधिपे पुत्रे कुजराहुसमन्विते ।
पुत्रलग्नेश्वरौ रन्ध्रे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५३ ॥
लग्ने सुते कुजे मन्दे भ्रातृपे भाग्यराशिगे ।
कारके नाशगेहस्थे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५४ ॥
भ्रातृस्थाने गुरुर्नीचे मन्दः पञ्चमगो यदि ।
नाशस्थौ विधुभौमौ चेद् भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५५ ॥
लग्नस्थानाधिपे रिष्फे भौमः पञ्चमगो यदि ।
सपापसुतपे रन्ध्रे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५६ ॥
पापमध्यगते लग्ने सुतभे पापमध्यगे ।
सुतलग्नपती दुःस्थौ भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५७ ॥
कर्मेशे भ्रातृभावस्थे पापयुक्ते तथा शुभे ।
पुत्रगे कुजसंयुक्ते भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५८ ॥
पुत्रस्थाने बुधक्षेत्रे शनिराहुसमन्विते ।
रिष्फे विदारौ चेत्तर्हि भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ५९ ॥
लग्नेशे भ्रातृभावस्थे भ्रातृस्थानाधिपे सुते ।
लग्नभ्रातृसुते पापे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ६० ॥
भ्रात्रीशे भ्रातृभावस्थे पुत्रस्थे कारके तथा ।
राहुमन्दयुते दृष्टे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ६१ ॥
नाशस्थानाधिपे पुत्रे भ्रातृनाथेन संयुते ।
रन्ध्रे आरार्किसंयुक्ते भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥ ६२ ॥

(पराशर ने कहा) अब मैं भ्रातृशापोद्भव योगों को बतलाता हूँ जिससे शाप-मोचन के लिए यत्न किये जाँय। (१) सहजेश पञ्चमभाव में मंगल तथा राहु के साथ हों, तथा लग्नेश एवं पंचमेश अष्टमभाव में हों तो भ्रातृशाप से सन्ततिक्षय कहना चाहिए। (२) लग्न तथा पञ्चम में मंगल, शनि हों, सहजेश नवम भाव में रहें तथा भ्रातृकारकग्रह अष्टमगत हों तो भी भ्रातृशाप से सुतक्षय समझना। (३) नीचस्थगुरु सहज भावगत हों, शनि पञ्चम में और चन्द्रमा एवं मंगल अष्टम में हों तो भी भ्रातृशाप-प्रयुक्त सन्ततिक्षय कहना चाहिए। (४) लग्नेश व्ययभाव में, मंगल पंचमभाव में, सपापपञ्चमेश अष्टम में हो तो भी भ्रातृशाप से सुतक्षय होता है। (५) लग्न तथा पञ्चम दो पापों के मध्य में हों, और लग्नेश तथा पञ्चमेश त्रिक (६।८।१२) में हों तो भी भ्रातृशाप से सुतक्षय कहना। (६) सपाप दशमेश सहजभाव में, एवं सभौम शुभग्रह पञ्चम में हो तो भी भ्रातृशाप-प्रयुक्त सुतक्षय होता है। (७) कन्या-मिथुन पञ्चम भाव में शनि राहु हों और द्वादश भाव में बुध-मंगल हों तो भी भ्रातृशाप से सुतक्षय होता है। (८) लग्नेश सहजभाव में और सहजेश पञ्चम में हों तथा लग्न, सहज तथा पञ्चम भाव सपाप हों तो भी भ्रातृशाप से सुतक्षय कहना। (९) सहजेश अष्टमभाव में पुत्रकारक ग्रह पञ्चम भाव में राहु-शनि से युक्त या दृष्ट हों तो भी भ्रातृशाप से सुतक्षय समझना। (१०) अष्टमेश पञ्चम में सहजेश के साथ हों और अष्टमभाव मंगल-शनि से युक्त हो तो भ्रातृशाप से सुतक्षय कहना चाहिए॥ ५२—६२॥

शापविमोचनोपाय—

भ्रातृशापविमोचार्थं विष्णुकीर्त्तनमादिशेत्।
चान्द्रायणं चरेत् पश्चात् कावेर्यां विष्णुसन्निधौ॥ ६३॥
अश्वत्थस्थापनं कार्यं दशधेनूः प्रदापयेत्।
प्राजापत्यं चरेद् वापि भूमिं दद्यात् फलान्विताम्॥ ६४॥
एवं यः कुरुते भक्त्या पुत्रवृद्धिः प्रजायते।

भ्रातृशाप से मुक्ति के लिए विष्णुकीर्त्तन, कावेरी में विष्णु के निकट चान्द्रायणव्रत, अश्वत्थस्थापन, एवं दश गायों का दान करना चाहिए। प्रजापत्य व्रत एवं फलयुक्त भूमिदान करना चाहिये। इस प्रकार भक्तिपूर्वक आचरण करनेवालों की पुत्र-वृद्धि होती है॥ ६३—६४॥

मातुलशाप से सन्ततिक्षय योग—

पुत्रस्थाने बुधे जीवे कुजराहुसमन्विते।
लग्ने मन्दे मातुलस्य शापात् स्यात् संततिक्षयः॥ ६५॥
लग्नपुत्रेश्वरौ पुत्रे मन्दज्ञकुजसंयुते।
वेद्यौ मातुलशापत्वान्नराणां सन्ततेः क्षयः॥ ६६॥

लुप्ते पुत्राधिपे लग्ने सप्तमे भानुनन्दने ।
लग्नेशे बुधसंयुक्ते स्यात्तदापि सुतक्षयः ॥ ६७ ॥
ज्ञातिस्थानाधिपे लग्ने व्ययेशेन समन्विते ।
शशिसौम्यकुजे पुत्रे तत्रापि स्यात् सुतक्षयः ॥ ६८ ॥

मंगल राहु के साथ पञ्चम में बुध या गुरु हों और लग्न में शनि हों तो मातुल (मामा) शाप से सन्ततिक्षय कहना चाहिए। इसी प्रकार (१) लग्नेश तथा पञ्चमेश, शनि, बुध, मंगल के साथ पंचमभाव में हों, (२) पंचमेश अस्तंगत होकर लग्नस्थ हो, सप्तम में शनि, और लग्नेश एवं बुध का संयोग हो, (३) चतुर्थेश लग्न में व्ययेश के साथ हो, चन्द्र, बुध तथा भौम पंचम में हो तो उपर्युक्त सभी योगों में मामा के शाप से सन्ततिक्षय होता है ॥ ६५–६८ ॥

दोषशान्ति—

तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुस्थापनमादिशेत् ।
वापीकूपतडागादि-निर्माणं सेतुबन्धनम् ॥ ६९ ॥
पुत्रवृद्धिर्भवेत्तस्य सम्पद्वृद्धिश्च जायते ।
एवं योगानुसारेण फलं ब्रूयाद् विचक्षणः ॥ ७० ॥

उपर्युक्त दोषपरिहार के लिए विष्णुस्थापन, वापी, कूप, तडाग का निर्माण, बांध का बन्धन आदि धर्मकृत्य करें जिससे पुत्रवृद्धि, सम्पत्तिवृद्धि होवे। इस तरह उपर्युक्त योगानुसार, विद्वान् फलादेश करें ॥ ६९–७० ॥

ब्रह्मशाप से सन्ततिक्षय योग—

बलसम्पत्तिगर्वेण यो विप्रानवमन्यते ।
तद्दोषाद् ब्रह्मशापाच्च सन्ततेस्तस्य संक्षयः ॥ ७१ ॥
गुरुक्षेत्रे यदा राहुः पुत्रे जीवारभानुजाः ।
धर्मस्थानाधिपे नाशे ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७२ ॥
धर्मेशे पुत्रभावस्थे पुत्रेशे नाशराशिगे ।
जीवारराहुसंहिते ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७३ ॥
धर्माधिपे नीचगते व्ययेशे पुत्रगेहगे ।
राहुयुक्तेक्षिते वाऽपि ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७४ ॥
जीवे नीचगते राहौ लग्ने वा पुत्रराशिगे ।
पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७५ ॥
पुत्रस्थानाधिपे जीवे रन्ध्रे पापसमन्विते ।

सेन्द्वर्के पञ्चमेशे वा ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७६ ॥
मन्दांशे मन्दसंयुक्ते जीवे भौमसमन्विते ।
पुत्रेशे व्ययराशिस्थे ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७७ ॥
लग्ने गुरौ मन्दयुते भाग्ये राहौ स्थिते सति ।
जीवान्विते व्यये वाऽपि ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥ ७८ ॥

जो व्यक्ति (१) बल या सम्पत्ति के अभिमान से ब्राह्मणों का अपमान करता है, उस दोष या ब्रह्मशाप से उसकी सन्तति का विनाश होता है। (२) गुरुक्षेत्र (धनु-मीन) में यदि राहु, पंचम में गुरु, मंगल तथा शनि हों, धर्मेश अष्टम में हो, (३) धर्मेश पञ्चम में पञ्चमेश अष्टम में गुरु-भौम-राहु युक्त हों, (४) धर्मेश अपने नीच में और व्ययेश पञ्चम में राहुयुक्त या दृष्ट हों, (५) गुरु नीचराशिगत, राहु लग्न या पञ्चम में, और पञ्चमेश (६।८।१२) में हों, (६) पञ्चमेश गुरु अष्टम में पापयुक्त हों, या पञ्चमेश अष्टम में सूर्य-चन्द्र सहित हों, (७) शनि नवांशगत गुरु शनि मंगल के साथ हों और पञ्चमेश व्ययराशिस्थ हों, (८) लग्नस्थ गुरु शनियुक्त हों, नवम में राहु हों या सराहु गुरु व्ययभावस्थ हों तो उपर्युक्त सभी योगों में ब्रह्मशाप से सन्ततिक्षय होता है। सुतक्षय से भी सन्तन्तिक्षय ही समझना चाहिए। अर्थात् ऐसा व्यक्ति निःसन्तान होता है ॥ ७१–७८ ॥

शान्ति—

तस्य दोषस्य शान्त्यर्थं कुर्याच्चान्द्रायणं नरः ।
ब्रह्मकृच्छ्रत्रयं कृत्वा धेनुं दद्यात् सदक्षिणाम् ॥ ७९ ॥
पञ्च रत्नानि देयानि सुवर्णेनान्वितानि वै ।
अन्नदानं ब्राह्मणानां भोजनं चापि कारयेत् ॥ ८० ॥
एवं कृते तु सत्पुत्रं लभते नात्र संशयः ।
मुक्तशापो विशुद्धात्मा स पुमान् सुखमेधते ॥ ८१ ॥

उस दोष (ब्रह्मशापमोचन) की शान्ति के लिए चान्द्रायण व्रत तथा तीन ब्रह्मकृच्छ्र (प्रायश्चित्त) करके सुवर्ण सहित पञ्चरत्न का दान मनुष्य करे। ततः पर अन्नदान एवं ब्राह्मणों का भोजन करना चाहिए। इस प्रकार मुक्तशाप विशुद्धात्मा वह निःसन्देह सुपुत्र प्राप्त करता है और उसे सुखसमृद्धि भी होती है ॥ ७९–८१ ॥

पत्नीशाप से सुतक्षय योग—

दारेशे पुत्रभावस्थे दारेशस्यांशपे शनौ ।
पुत्रेशे नाशराशिस्थे पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ८२ ॥
नाशसंस्थे कलत्रेशे नाशेशे पुत्रभावगे ।

कारके पापसंयुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ८३ ॥

पुत्रस्थानगते शुक्रे कामपे रन्ध्रमाश्रिते ।
कारके पापसंयुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ८४ ॥
कुटुम्बे पापसहिते कामेशे नाशराशिगे ।
पुत्रे पापग्रहैर्युक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ८५ ॥
भाग्यस्थानगते शुक्रे दारेशे नाशराशिगे ।
लग्ने सपापे पुत्रे च पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ८६ ॥
भाग्यस्थानाधिपे शुक्रे पुत्रेशे शत्रुराशिगे ।
गुरुलग्नेशदारेशा दुःस्था यदि सुतक्षयः ॥ ८७ ॥

(१) जायेश पञ्चम में, शनि जायेश के नवमांश में और पञ्चमेश अष्टम में हों, (२) सप्तमेश अष्टम में, अष्टमेश पञ्चम में तथा पुत्रकारक ग्रह सपाप हों, (३) शुक्र पञ्चमभाव में, सप्तमेश अष्टम में और पुत्रकारकग्रह सपाप हों, (४) कुटुम्बस्थान सपाप हो, सप्तमेश अष्टम में हो और पञ्चमभाव पापग्रहों से युक्त हो, (५) शुक्र भाग्य स्थानगत हो, जायेश अष्टम में हो और लग्न-पञ्चम सपाप हो, (६) शुक्र भाग्येश हो, पञ्चमेश शत्रुराशिगत हो और गुरु, लग्नेश एवं सप्तमेश दुःस्थान (६।८।१२) में स्थित हो, तो उपर्युक्त सभी योगों में पत्नीशाप से सुतक्षय होता है ॥ ८२–८७ ॥

पुत्रस्थाने भृगुक्षेत्रे राहुचन्द्रसमन्विते ।
व्यये लग्ने धने पापे स्त्रीशापात् संततिक्षयः ॥ ८८ ॥
सप्तमे मन्दशुक्रौ च रन्ध्रेशे पुत्रभे रवौ ।
लग्ने च राहुणा युक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ८९ ॥
धने कुजे व्यये जीवे पुत्रस्थे भृगुनन्दने ।
राहुमन्देक्षितयुते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ९० ॥
नाशस्थौ वित्तदारेशौ पुत्रे लग्ने कुजे शनौ ।
कामके पापसंयुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ९१ ॥
लग्नपञ्चमभाग्यस्था राहुमन्दकुजाः क्रमात् ।
रन्ध्रस्थौ पुत्रदारेशौ पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥ ९२ ॥

राहुचन्द्रयुक्त पञ्चमभाव भृगुक्षेत्र (वृष तुला) हो, तथा व्यय लग्न एवं धन भाव पापग्रहाक्रान्त हो तो पत्नी शाप से सन्ततिक्षय कहना चाहिए। सप्तम में शनि, शुक्र, अष्टमेश पञ्चम भाव में सूर्य लग्न में सराहु हो तो भी पत्नी शाप से सुतक्षय होता है। धनभाव में मंगल, व्यय स्थान में गुरु, और पञ्चम में शुक्र, शनि राहु से युत वा दृष्ट हो तो भी पत्नीशाप से सुतक्षय कहना। धनेश एवं दारेश

अष्टमस्थ हों, पञ्चम तथा लग्नभाव में मंगल एवं शनि हों, पुत्रकारक ग्रह पापयुक्त हो तो भी पत्नीशाप से सुतक्षय होता है। लग्न, पञ्चम, तथा भाग्य भाव गत क्रमशः राहु, शनि, भौम, हों और पञ्चमेश तथा सप्तमेश अष्टमस्थ हों तो भी पत्नीशाप से सुतक्षय समझना चाहिए ॥ ८८–९२ ॥

शापमोचनार्थं शान्ति—

कन्यादानं प्रकुर्वीत शापमोचनहेतवे ।
दद्यात् स्वर्णमयीं मूर्त्तिं लक्ष्मीनारायणस्य वा ॥ ९३ ॥
दशधेनूर्भूषणं च शय्यां वासो द्विजन्मनाम् ।
दम्पत्यै दापयेद् विज्ञः सौभाग्यसुतलब्धये ॥ ९४ ॥

शापमोचन के लिए कन्यादान या लक्ष्मीनारायण की स्वर्णमयीमूर्त्ति का दान करना चाहिए। साथ ही द्विजदम्पति को दश गाय, भूषण, शय्या तथा वस्त्र दिलावें जिससे सौभाग्य तथा पुत्र की प्राप्ति होती है ॥ ९३–९४ ॥

प्रेतशाप से सुतक्षय योग—

पुत्रस्थितौ मन्दसूर्यौ क्षीणचन्द्रश्च सप्तमे ।
लग्ने व्यये राहुजीवौ प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ ९५ ॥
पुत्रस्थानाधिपे मन्दे नाशस्थे लग्नगे कुजे ।
कारके नाशगृहगे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ ९६ ॥
लग्ने पापे व्यये भानौ सुते चारार्किसोमजाः ।
पुत्रेशे रन्ध्रभावस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ ९७ ॥
लग्ने राहुसमायुक्ते पुत्रस्थे भानुनन्दने ।
जीवेऽप्यष्टमभावस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ ९८ ॥
लग्ने राहौ सशुक्रेज्ये चन्द्रे मन्दयुते तथा ।
लग्नेशे मृत्युराशिस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ ९९ ॥
कारके नीचराशिस्थे सुताधीशेऽपि नीचगे ।
खेटैर्नीचगतैर्दृष्टे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ १०० ॥
लग्ने मन्दे सुते राहौ रन्ध्रे भानुसमन्विते ।
व्यये भौमसमायुक्ते प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ १०१ ॥
कामस्थानाधिपे दुःस्थे पुत्रे चन्द्रसमन्विते ।
मन्दमान्दियुते लग्ने प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ १०२ ॥

वधस्थानाधिपे पुत्रे शनिशुक्रसमन्विते ।
कारके नाशराशिस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥ १०३ ॥

(१) पञ्चम में शनि, सूर्य, तथा सप्तम में क्षीणचन्द्र हों, लग्न तथा द्वादश में राहु एवं गुरु हो, (२) पञ्चमेश शनि अष्टम में, मंगल लग्न में, पुत्रकारक ग्रह अष्टम में हों, (३) लग्न सपाप हो, द्वादश में सूर्य, पञ्चम में, मंगल, शनि तथा बुध हों और पञ्चमेश अष्टम में हो, (४) लग्न राहुयुक्त हो, पञ्चम में शनि हो, गुरु अष्टम में हों, (५) शुक्र या गुरु सहित राहु लग्न में हो, शनि चन्द्र का भी योग हो और लग्नेश अष्टमस्थ हो, (६) पुत्रकारक ग्रह तथा पञ्चमेश नीच में हो, नीचस्थ ग्रहों की उनपर दृष्टि भी रहे, (७) लग्न में शनि, पञ्चम में राहु, अष्टम में सूर्य, और द्वादशस्थान में मंगल हो, (८) सप्तमेश त्रिकस्थ हो पञ्चम भाव सचन्द्र हो, लग्न शनि तथा गुलिक से युक्त हो, (९) शनि शुक्र युक्त अष्टमेश पञ्चम में हो, पुत्रकारक ग्रह अष्टम गत हो तो उपर्युक्त सभी योगों में प्रेतशाप प्रयुक्त सुत या सन्ततिक्षय होता है ॥ ९५–१०३ ॥

तद्दोषशमनोपाय—

शान्त्यै तस्य तु दोषस्य गयायां श्राद्धमादिशेत् ।
रुद्राभिषेकमथवा ब्रह्ममूर्त्तिं प्रदापयेत् ॥ १०४ ॥
धेनुं रजतपात्रं च मणिं नीलमथापि वै ।
ब्राह्मणानां भोजनं च दक्षिणादानपूर्वकम् ॥ १०५ ॥
कारयेदेवमभितः शापमोक्षः प्रजायते ।
पुत्रावाप्तिर्भवेत्तस्य वंशवृद्धिश्च निश्चला ॥ १०६ ॥

उपर्युक्त दोष की शान्ति के लिए गयाश्राद्ध, रुद्राभिषेक अथवा ब्रह्मा की मूर्त्ति दिलानी चाहिए। धेनु, चान्दी का पात्र, नीलमणि का दान भी कराना उचित है। दक्षिणादानपूर्वक ब्राह्मणों के भोजन से सर्वथा शापमोचन होता है और ऐसे व्यक्ति को पुत्र होता है और निश्चल रूप से वंश की वृद्धि होती है ॥ १०४–१०६ ॥

ग्रहदोषवश निःसन्ततियोगों में शान्ति—

शिवपूजनतः पुत्र-प्राप्तिर्दोषे ज्ञशुक्रयोः ।
यन्त्रमन्त्रौषधैरेवं दोषे जीवेन्दुसम्भवे ॥ १०७ ॥
स्वर्भानुजेऽङ्गनादाने-नार्कजे विष्णुपूजनात् ।
गोदानतो ध्वजोद्भूते रुद्रीयेनारमन्दजे ॥ १०८ ॥
सर्वदोषोपशान्त्यै तु हरिवंशस्य कीर्त्तनम् ।
शृणोति भक्तिपूर्वं यः सन्ततिस्तस्य निश्चला ॥ १०९ ॥

बुध, शुक्रजनित दोष में शिवपूजन से, गुरु, चन्द्रज दोष में मन्त्र, यन्त्र, औषध आदि से, राहुज दोष में कन्यादान से, सूर्यजनित दोष में विष्णुपूजन से, केतुज-दोष में गोदान से, मंगल एवं शनि के दोष में रुद्रीयजप से, पुत्रप्राप्ति होती है। सर्वविधदोषापशमन के लिए भक्तिपूर्वक जो हरिवंशश्रवण करता है उसे निश्चल (चिरजीवी) सन्तान प्राप्त होती है ॥ १०७–१०९ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे पूर्वजन्मशापवर्णनाध्यायः समाप्तः ॥

अथ प्रश्नाध्यायः ॥ ८४ ॥

मैत्रेय उवाच—

श्रुतं महर्षे ! निखिलं यदुक्तं कृपया त्वया ।
इदानीं वक्तुमुचितं प्रश्नैरेव तु जन्मिनाम् ॥ १ ॥
भावं मनोगतं वाऽपि पथिकागमनादिकम् ।
स्त्रीपुत्रयोर्लाभहानी मरणं जीवनं तथा ॥ २ ॥
रोगिणामेतदखिलं कृपया वद मे प्रभो ।
त्वामन्तरा नचान्योऽस्ति कश्चित्तत्त्वविशारदः ॥ ३ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे महर्षे कृपया आपने जो कुछ कहा उसे मैंने सुना। अब प्रश्नों से ही मनुष्यों के मनोगत भाव, पथिकों का गमनागमन, स्त्री-पुत्रों की प्राप्ति या हानि, रोगियों का जीवन मरण, आदि कैसे जाना जाय इसे कृपया मुझे बतलावें ॥ १-३ ॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि ते विप्र ! यथाभिलषितं तव ।
प्रश्नाङ्गतो भवेत् सर्वं ज्ञेयं तच्छृणु यत्नतः ॥ ४ ॥
भावैर्विचार्य विषयान् जानीयात् प्राग् बुधस्ततः ।
बलाऽबलविवेकेन शुभाऽशुभफलं दिशेत् ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा—हे विप्र ! अब मैं तुम्हारे अभिलषित सभी वस्तु प्रश्न से कैसे जाना जाय यह बतलाता हूँ यत्नपूर्वक सुनो। सर्वप्रथम भावों से विचारणीय विषयों को जानें, ततःपर भावों के बलाबल विवेक से कार्यों की सिद्धि या असिद्धि कहनी चाहिए ॥ ४–५ ॥

भावों से विचारणीय विषय—

स्वरूपलक्षणं प्रश्न-कर्तुर्दुःखसुखे तनोः ।

रत्नानां लाभहानी तु धनस्थानाद् विचिन्तयेत ॥ ६ ॥

पराक्रमं भ्रातृ-भृत्य-सुखं सहजभावतः ।
मित्रालयग्राममातृ-वाहनानां सुखं सुखात् ॥ ७ ॥
अपत्यमतिशास्त्राणि चिन्तयेत् पञ्चमालयात् ।
शत्रुमातुलरोगांस्तु व्रणानपि रिपोस्तथा ॥ ८ ॥
विवादस्त्रीवणिग्वृत्ति-गमनागमनानि वै ।
सप्तमान् मृत्युभावाच्च मृत्युं युद्धं च रुग्भयम् ॥ ९ ॥
वापीदेवालयादीनां निर्माणं नवमालयात् ।
राज्यं पितृसुखं राज-कर्म चिन्त्यं पितुर्गृहात् ॥ १० ॥
कन्याकाञ्चनसस्यानि वाहनानि च लाभतः ।
व्ययतो रिपुरोधश्च व्ययं भोगादिकर्मसु ॥ ११ ॥

प्रश्नकर्त्ता के शील, सुख-दुःख का विचार लग्न से, (सुवर्णादि) रत्नों का लाभ एवं हानि का विचार धनभाव से, पराक्रम, भ्रातृ तथा भृत्यसुख का विचार सहज भाव से, मित्र, घर, गाँव, माता, तथा वाहन के सुखों का विचार चतुर्थभाव से, सन्तान, बुद्धि, शास्त्रों का विचार पञ्चम भाव से, शत्रु, मामा के रोग तथा व्रणों का विचार सप्तम भाव से, मृत्यु, युद्ध, रोगभय का विचार अष्टम से, वापी, कूप, देवालयों के निर्माण का विचार नवमभाव से, राज्य, पितृसुख तथा राजकार्य का विचार दशम भाव से, कन्या, काञ्चन, धान्य तथा वाहनों के लाभसम्बन्धी विचार लाभस्थान से, शत्रुकृत अवरोध, भोगदान आदि कार्यों में व्यय का विचार व्ययभाव से करना चाहिए ॥ ६–११ ॥

भावों का बलाबल विचार—

भावः स्वस्वामिसत्खेटै-र्युक्तो दृष्टोऽपि वर्धते ।
अशुभैरीक्षितयुतो नष्टो मिश्रैस्तु मध्यमः ॥ १२ ॥

भाव अपने स्वामी, या शुभग्रहों (बुध गुरु, शुक्र तथा पूर्ण चन्द्र) से युक्त या दृष्ट हो तो वह प्रवृद्ध (प्रबल) होता है । यदि वह पापग्रहों (क्षीणचन्द्र मंगल सूर्य राहु, केतु पापयुक्त बुध) से युत दृष्ट हो तो दुर्बल होता है । शुभ, अशुभ, दोनों तरह के ग्रहों से युत दृष्ट हो तो मध्यम फलद होता है ॥ १२ ॥

कपट प्रश्न—

प्रश्नाङ्गगौ चन्द्रमन्दौ विरश्मिर्ज्ञो घटे रविः ।
पृच्छको दुष्टभावेना-यातश्चेति विनिर्णयेत् ॥ १३ ॥

प्रश्नलग्न कुण्डली में चन्द्रमा, शनि लग्नगत हो, बुध रश्मिहीन तथा सूर्य, कुम्भ राशिस्थ हो तो प्रश्नकर्त्ता दुष्टभाव से आया है, ऐसा समझना चाहिए ॥ १३ ॥

कार्यसिद्धि कथन—

प्रश्नाङ्गपस्तनुं कार्य-गेहं कार्याधिपो यदि ।
कार्यमङ्गाधिपः कार्या-धीशोऽङ्गं वाऽपि पश्यति ॥ १४ ॥
स्वस्वभावस्थयोर्लग्न-कार्याधीशनभोगयोः ।
मिथोदृष्टिस्तदाऽपि स्यात् कार्यसिद्धिः प्रयासतः ।
पूर्णेन्दुनेक्षितौ नो चे-दनायासं तु सा भवेत् ॥ १५ ॥

(१) प्रश्नलग्नेश लग्न को, कार्याधीश कार्य गृह को (२) लग्नेश कार्य को और कार्येश लग्न को देखें (३) या अपने अपने भाव स्थित लग्नेश तथा कार्येश परस्पर दृष्टियुक्त हों तो इन तीनों योगों में प्रयत्न करने पर कार्य की सिद्धि होती है। यदि लग्नेश तथा कार्येश पूर्णचन्द्र से दृष्ट हों तो अनायास कार्यसिद्धि समझनी चाहिए ॥ १४-१५ ॥

योगान्तर—

ससद्ग्रहे तनौ सौम्य-वर्गगे शीर्षकोदये ।
त्वरितं व्यत्यये नैव मिश्रे सिद्धिर्विलम्बतः ॥ १६ ॥

यदि प्रश्नलग्न शुभग्रह से युक्त या शुभग्रह के षड्वर्ग में हो शीर्षोदय राशि लग्नगत हो तो शीघ्र कार्यसिद्धि होती है। वैपरीत्य (पापग्रह युक्त या पाप षड्-वर्गस्थ प्रश्नलग्न की स्थिति) में कार्यसिद्धि नहीं होती है। शुभ पाप दोनों के सम्मिश्रण में विलम्ब से कार्यसिद्धि कहनी चाहिए ॥ १६ ॥

मौष्टिक प्रश्न—

प्रश्नाङ्गे ऽस्तित्रिकोणे वा स्वांशं स्वांशगतो ग्रहः ।
पश्येत्तदा धातुचिन्ता जीवचिन्तान्यभागगः ॥ १७ ॥
परांशं परभागस्थो मूलचिन्तां विनिर्दिशेत् ।
युग्मभेंऽशक्रमाज् ज्ञेये जीवं मूलं च धातुकम् ॥ १८ ॥
ओजेंऽशक्रमतो धातु-मूलजीवानि मौष्टिके ।

रत्नादि मृत्तिकान्त धातु कहे जाते हैं। मनुष्यादि क्षुद्रजीवान्त जीव, एवं वृक्षादि तृणान्त मूल कहलाते हैं। मौष्टिक या मानसिक प्रश्न में स्वनवांशस्थ ग्रह प्रश्न लग्न या नवम पञ्चम में अपने नवांश को देखें तो धातु सम्बद्ध प्रश्न समझना। दूसरे के नवांश में स्थित ग्रह प्रश्नलग्न या नवम पञ्चम में अपने नवांश को देखें तो जीव सम्बद्ध प्रश्न समझना। इसी तरह परनवांशस्थ ग्रह लग्न या त्रिकोण में दूसरे के नवांश को देखे अर्थात् दूसरे के नवांश में स्थित लग्न या त्रिकोण पर परनवांशस्थ ग्रह की दृष्टि रहे तो मूल सम्बद्ध प्रश्न समझें। इसी तरह समराशि में प्रथम नवांशस्थ लग्न हो तो जीवचिन्ता, द्वितीय नवांशस्थ होने पर मूलचिन्ता एवं तृतीय नवांशगत

लग्न के रहने पर धातु-चिन्ता, फिर चतुर्थ में जीव, पञ्चम में मूल इत्यादि समझें। विषम राशिगत प्रश्नलग्न में प्रथम नवांश में धातु सम्बद्ध मौष्टिक प्रश्न, द्वितीयनवांश होने पर मूलसम्बद्ध, तृतीय नवांश में जीव सम्बद्ध इसी तरह आगे भी समझना चाहिए ॥ १७–१८ ॥

पथिक गमनागमन विचार—

प्रश्नाङ्गतः सुखे सौम्य-खेटो वा दशमे स्थितः ॥ १९ ॥
गमनं न भवेद् गन्तुः पापखेटे न चागमः।
लग्नाच्चतुर्थाद् दशमाद् यावद्भिर्दिवसैर्ग्रहः ॥
द्वितीयराशिमभ्येति तावद्भिः पथिकागमः ॥ २० ॥

प्रश्नाङ्ग से चतुर्थ या दशम में शुभग्रह हो तो गन्तुक व्यक्ति का गमन तथा उक्त स्थानों में पापग्रह हो तो आगन्तुक का आगमन नहीं होता है। लग्न, चतुर्थ या दशम से जितने दिनों में द्वितीय राशि (द्वितीय पञ्चम तथा एकादश) में ग्रह आवें उतने दिनों में आगन्तुक पथिक का आगमन कहना चाहिए ॥ १९–२०)

शीघ्रागमनयोग—

सप्तमस्थानगश्चन्द्रो भाग्येशो भाऽपरार्धगः।
पथिकं तु तदायान्तं पथि विद्याद् द्विजोत्तम ! ॥ २१ ॥
सुखे जीवोऽथवा शुक्र-श्चन्द्रो वा यदि संस्थितः।
पथिकं गेहमायान्तं विद्याद् गणकसत्तमः ॥ २२ ॥
प्रश्नलग्नाद् द्वितीये वा तृतीये जीवभार्गवौ।
पथिकं गेहमायातं जानीयात् प्रश्नवित्तदा ॥ २३ ॥
सितवित्सूर्यमन्दाना-मेकोऽपि चरलग्नगः।
प्रवासी शीघ्रमायाति वक्री नैव यदा ग्रहः ॥ २४ ॥

प्रश्नलग्न से सप्तमस्थ चन्द्रमा तथा नवमेश राशि के उत्तरार्ध में स्थित हों तो पथिक को मार्ग में आते हुए समझना चाहिए। प्रश्नलग्न से चतुर्थस्थान में गुरु, शुक्र या चन्द्र स्थित हों तो पथिक को घर आए ही समझना। प्रश्न लग्न के द्वितीय या तृतीय स्थानगत गुरु, शुक्र हों तो भी घर आए ही पथिक को जानना चाहिये (अर्थात् शीघ्रातिशीघ्र वह आएगा ऐसा समझना)। शुक्र, बुध, एवं शनि इनमें से एक भी चरलग्नगत हों तो परदेशी शीघ्र आता है, यदि ग्रह वक्री नहीं रहे ॥२१–२४॥

पथिक क्लेशयोग—

पृष्ठोदयगते लग्ने सदृष्टेऽशुभेक्षिते।
अशुभैः केन्द्रगैर्वापि पथिकः क्लेशसंयुतः ॥ २५ ॥

प्रश्नलग्न यदि १, २, ४, ९, १० में से कोई हो, उस पर शुभग्रह की अदृष्टि और पापग्रह की दृष्टि हो अथवा पापग्रह केन्द्रगत हो तो पथिक को क्लेशपीडित समझना चाहिए ॥ २५ ॥

पथिकारिष्टयोग—

प्रश्नाङ्गतोऽष्टमे सूर्ये भौमे वाऽपि तु चौरभीः ।
सिंहे रवौ, विधौ वाऽपि कुजे निधनगे सति ॥ २६ ॥
शनीक्षिते शस्त्रभीति-र्लग्ने चेन्न शुभो भवेत् ।
सशुभे दशमे वाऽपि नवमे सधनो हि सः ॥ २७ ॥

प्रश्नलग्न से अष्टम में सूर्य या मंगल हों तो चोर का भय समझना । सिंह का सूर्य, और प्रश्नलग्न से अष्टम में स्थित चन्द्रमा वा मंगल शनिदृष्ट हों, लग्न में शुभग्रह नहीं हों तो पथिक को शस्त्रभय समझना । (प्रश्नलग्न से) दशम या नवम शुभग्रह युक्त हो तो प्रवासी धनपूर्ण होवे, ऐसा समझना ॥ २६–२७ ॥

विवाह-प्रश्न—

प्रश्नाङ्गतस्त्रिषड्लाभ-जायापञ्चमभावगः ।
शशी-सूर्यज्ञगुरुभि-र्वीक्षितो वाऽपि लग्नतः ॥ २८ ॥
केन्द्रकोणगता जीव-विच्छुक्रसितरश्मयः ।
जायाङ्गपौ लग्नजाया-गतौ पाणिग्रहोऽचिरात् ॥ २९ ॥

प्रश्नलग्न से ३।६।११।७।५ में से कहीं भी चन्द्रमा, सूर्य बुध गुरु से दृष्ट हों, या लग्न से केन्द्र अथवा त्रिकोण में गुरु, बुध, शुक्र तथा चन्द्र हों और लग्नेश, सप्तमेश, क्रमशः सप्तम तथा प्रथम भावगत हों तो शीघ्र विवाह कहना चाहिए ॥ २८–२९ ॥

स्त्रीमृत्युयोग—

पापाः सुखे मदे वाऽपि विबलो भार्गवो यदि ।
स्वर्भानुः सप्तमे वा स्या-न्म्रियते तु तदाङ्गना ॥ ३० ॥

प्रश्नलग्न से ४।७ में पापग्रह हों, और शुक्र निर्बल हों, सप्तम में राहु हों, तीनों स्थिति में स्त्री की मृत्यु कहनी चाहिए ॥ ३० ॥

योगान्तर—

पापान्विते सप्तमे तु सुखे शुभखगान्विते ।
प्रथमा म्रियते पत्नी, धृता जीवति निश्चितम् ॥ ३१ ॥

जायाभाव सपाप हो और चतुर्थ (सुख) भाव शुभग्रह युक्त हो तो धर्मपत्नी की मृत्यु, तथा बलगृहीत की स्थिरता होती है । दोनों स्थान यदि सपाप हों तो दोनों की मृत्यु कहनी चाहिए ॥ ३१ ॥

गर्भप्रश्न—

सशुभः पञ्चमः स्वामि-युक्तो वा तदवेक्षितः ।
सबलो मासपस्तर्हि गर्भं सकुशलं वदेत् ॥ ३२ ॥

प्रश्नलग्न से पञ्चम शुभग्रह या अपने स्वामी से युक्त हो अथवा दृष्ट हो, मासेश भी सबल हों तो सकुशल गर्भ को समझना। इसके विपरीत (पञ्चम सपाप तथा अपने स्वामी के योग या दृष्टि से रहित और मासेश भी दुर्बल हो तो) गर्भ का अकुशल (नाश) कहना चाहिए ॥ ३२ ॥

सन्तानप्रश्न—

सुतप्रश्नजनुर्लग्ना-धीशौ पुंराशिगौ यदि ।
पुत्रं तदा विजानीयात् कन्या स्त्रीराशिगौ तु तौ ॥ ३३ ॥
शनिरोजर्क्षगो वाऽपि विषमांशगतो भवेत् ।
पुत्रदः पुत्रिकाजन्म-प्रदस्तु समभांशगे ॥ ३४ ॥
ओजे सूर्येन्दुगुरवः पुत्रजन्मप्रदाः स्मृताः ।
दृष्टावपि सुते शुक्र-भौमेन्दूनां युतौ भवेत् ॥ ३५ ॥

पंचमेश तथा प्रश्नलग्नेश पुं राशि (विषम राशि) में हो तो पुत्र, स्त्रीराशिगत हो तो कन्या कहनी चाहिए। विषम राशि या विषमनवांशगत शनि भी पुत्रजन्म-कारक होते हैं। वही शनि सम राशि या समनवांशगत हों तो कन्या का जन्म कहना चाहिए। विषमराशि या विषमनवांशगत सूर्य, चन्द्र, तथा गुरु पुत्रजन्मप्रद होते हैं। पंचम स्थान पर शुक्र, मंगल, चन्द्र की दृष्टि रहने पर भी पुत्रोत्पत्ति होती है ॥ ३३–३५ ॥

योगान्तर—

सितेन्दू बलिनौ पुत्र-स्थानं प्रश्नाङ्गतो यदि ।
पश्यतः सुतदौ, कन्या-प्रदौ पञ्चमगौ यदि ॥ ३६ ॥
नीचास्तारित्रिकस्थान-गतौ सन्ततिबाधकौ ।
लाभगौ प्रबलावेतौ सुतदौ विबुधैः स्मृतौ ॥ ३७ ॥

प्रबल शुक्र तथा चन्द्र प्रश्नलग्न से पञ्चम स्थान को देखें तो पुत्र का और वे (दोनों) पञ्चमस्थानगत हों तो कन्या का जन्म कहना चाहिए। नीचराशि में, या अस्तंगत, या शत्रुभवन, या त्रिक (६।८।१२) में वे दोनों रहें तो सन्तान की बाधा होती है। बली वे यदि लाभस्थान गत हों तो भी पुत्रोत्पत्ति कहनी चाहिए ॥ ३६–३७ ॥

पुत्रयोग—

पञ्चमाधिपतिर्लग्ने लग्नेशः पञ्चमे यदि ।
प्रबलेन्दुयुतस्तर्हि पुत्रोत्पत्तिरसंशयम् ॥ ३८ ॥

प्रश्नाङ्गपञ्चमेशौ चेदुच्चगौ भवतोऽपि च।
मिथोदृष्टौ तदा पुत्र-जन्म वाच्यं बुधैः सदा ॥ ३९ ॥

पञ्चमेश लग्न में, लग्नेश पंचम में बलीचन्द्रमा के साथ रहें, प्रश्नलग्नेश तथा पञ्चमेश उच्चगत हों, और पञ्चमेश तथा प्रश्नलग्नेश में परस्परदृष्टि हो तो (दोनों योगों में) निःसन्देह पुत्रोत्पत्ति होती है ॥ ३८–३९ ॥

योगान्तर—

अस्तंगते पञ्चमेशे नीचे वा पीडिते खलैः।
अपुत्रः प्रश्नकर्त्ता स्या-ज्जातोऽपि म्रियते क्षणात् ॥ ४० ॥
स्वर्भानुना कुजेनापि युक्तश्चेत् पञ्चमाधिपः।
तदाऽनपत्यता ज्ञेया पूर्वैरेतदुदीरितम् ॥ ४१ ॥

पञ्चमेश अस्तंगत हों, नीचराशिगत हों, या पापग्रहों से पीडित हों तो प्रश्नकर्त्ता अपुत्र होता है, पुत्र होनेपर भी शीघ्र ही पुत्र की मृत्यु हो जाती है। पञ्चमेश राहु या मंगल के साथ हों तो अनपत्यता होती है ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥ ४०–४१ ॥

रोगी का मरण प्रश्न—

पापर्क्षं प्रश्नलग्नं चे-दष्टमं पापखेटयुक्।
पापेक्षितं वाऽन्तराले पापयोरष्टमे शशी ॥ ४२ ॥
सपापो वा खला रन्ध्रे व्यये, चन्द्रो नगेऽष्टमे।
लग्नेऽरिभे तदा मृत्युः सत्वरं रोगिणो भवेत् ॥ ४३ ॥
चन्द्रे तनौ सप्तमेऽर्के, कुजेऽजेऽलिनवांशगे।
चन्द्रेण सहिते मृत्यु-मादिशेद्रोगिणस्तदा ॥ ४४ ॥

(१) प्रश्नलग्न पापग्रह की राशि हो, (२) अष्टम स्थान पापग्रह युक्त या पापदृष्ट हो, या (३) पापद्वयमध्यवर्त्ती चन्द्र सपाप होकर अष्टमस्थ हो, (४) पापग्रह अष्टम या द्वादशस्थ हो (५) या चन्द्रमा प्रश्नलग्न से १।६।७।८ में स्थित हो, (६) चन्द्रमा लग्न में, सूर्य सप्तम में हो, (७) मेषस्थ भौम वृश्चिक के नवांशगत चन्द्रमा के साथ हों तो सभी उपरितन योगों में रोगी की मृत्यु शीघ्र हो जाती है।

रोगी का कल्याणकर योग—

प्रश्नलग्नात् सप्तमर्क्षे सशुभे वाऽथ लग्नपे।
उदिते मृत्युपे हीनबले लाभा-धिपे तथा ॥ ४५ ॥
प्रबले, रोगिणः क्षेममादिशेद् गणकोत्तमः।

लग्नात् सप्तमगे मिश्र-ग्रहे मिश्रं फलं वदेत् ॥ ४६ ॥

(१) प्रश्नलग्न से सप्तम शुभग्रह युक्त हो, (२) अथवा लग्नेश उदित हों, अष्टमेश निर्बल, तथा लाभेश प्रबल हों तो रोगी का कल्याण कहना चाहिए। प्रश्न-लग्न से सप्तम में शुभपाप दोनों तरह के ग्रह हों तो मिश्रफल (शुभग्रहों की प्रबलता में नैरुज्य, पापों की प्रबलता में मरण) कहना चाहिए ॥ ४५–४६ ॥

इति ते कथितं विप्र ! चेद्यं प्रश्नाङ्गतो बुधैः ।
तद्वदेवाऽखिलं वस्तु ज्ञातुं शक्यमसंशयम् ॥ ४७ ॥

हे मुने ! प्रश्नाङ्ग पर से कतिपय वस्तुओं का ज्ञान मैंने बतलाया है, इसी तरह सभी वस्तुओं का ज्ञान प्रश्नाङ्ग पर से किया जा सकता है ॥ ४७ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे प्रश्नाध्यायः समाप्तः ।

अथ ग्रहशान्त्यध्यायः ॥ ८५ ॥

मैत्रेय उवाच—

दोषशान्त्यै नभोगाना-मर्चनाविधिपूर्वकम् ।
जपहोमादिकं ब्रह्मन् ! कृपया वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

मैत्रेय ने कहा—हे ब्रह्मन् ग्रहों की दोषशान्ति के लिए कृपया पूजन, जप, होम आदि का विधान बतलावें ॥ १ ॥

पराशर उवाच—

भास्कराद्याः खगाः पूर्वं ये मया नव वर्णिताः ।
प्रभावितं जगदिदं समस्तमपि तैः सदा ॥ २ ॥
तदधीनं प्राणिनां तु सुखदुःखमतो जनः ।
तच्छान्तिधनवृष्ट्यायुः-कामस्तद्यज्ञमाचरेत् ॥ ३ ॥

पराशर जी बोले—जो मैंने सूर्यादिक नवग्रह पहले कहा है, उन्हीं ग्रहों से सारा संसार प्रभावित है और उन्हीं के अधीन प्राणियों का सुख दुःख निहित है। अत मनुष्य को ग्रहशान्ति, धन, वृष्टि तथा आयुः कामना से ग्रहों का यज्ञ (जपपूजन होमादि) करना चाहिए ॥ २–३ ॥

पूजार्थ-ग्रहप्रतिमा—

नवग्रहाकृतीस्ताम्र-स्फटिकारुणचन्दनैः ।
स्वर्णस्वर्णराजतायः-शीशकांस्यैः क्रमाद् बुधः ॥ ४ ॥
रचयेद् ग्रहवर्णैर्वा पट्टवस्त्रेऽथ विन्यसेत् ।
तत्तद्ग्रहोक्ताासु दिक्षु मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥ ५ ॥

सूर्यादि नवग्रहों की आकृति (मूर्त्ति) ताम्रादि नौ धातुओं से बनाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक तत्तद्ग्रहों की दिशा में स्थापित करें, या ग्रहों के वर्णों से पट्टवस्त्र (रेशमीवस्त्र) पर मूर्त्ति बनाकर रक्खें।

सूर्य की मूर्त्ति तामे से, चन्द्रमा की स्फटिक से, मंगल की रक्तचन्दन से, बुध, गुरु की सोने से, शुक्र की चाँदी से, शनि की लोहे से, राहु की शीशा से और केतु की मूर्त्ति कासे से बनावें ॥ ४–५ ॥

पूजन, ध्यान के हेतु ग्रहों का स्वरूप—

पद्मासनः पद्मकरः पद्मवर्णसमप्रभः।
सप्ताश्वरथसंयुक्तो द्विभुजः स्यात् सदा रविः ॥ ६ ॥
दशाश्वरथवाज् शुभ्रः शुभ्रवासा गदाधरः।
शुभ्रभूषावृतश्चन्द्रो द्विभुजश्च प्रकीर्त्तितः ॥ ७ ॥
लोहितस्रग्रक्तवासाः शूलशक्तिकरः कुजः।
चतुर्भुजोऽपि सगदो वरदोऽजसुवाहनः ॥ ८ ॥
पीतस्रगम्बरश्चान्द्रि-स्तालपत्रसमप्रभः।
सिंहारूढो गदावर्मा-सिहस्तो वरदो मतः ॥ ९ ॥
सितार्यौ सितपीताभौ साक्षसूत्रौ सदण्डकौ।
कमण्डलुशयौ चापि वरदौ विबुधैः स्मृतौ ॥ १० ॥
नीलकान्तिर्गृध्रयानः शरचापधरोऽर्कजः।
वरप्रदश्चतुर्बाहुः शूलभृद् गदितो बुधैः ॥ ११ ॥
भयावहमुखो वर्म-त्रिशूलासिधरोऽशुभः।
सिंहारूढः सुनीलाभः स्वर्भानुर्वरदो मतः ॥ १२ ॥
सगदा विवृतास्याश्च द्विभुजा धूम्रवर्णिनः।
केतवो वरदा गृध्र-वाहनाः स्युर्विदां मताः ॥ १३ ॥

कमल पर आसीन, पद्महस्त, पद्मपत्र की तरह कान्तिवाले, सात घोड़े के रथ पर बैठे दो भुजावाले भगवान् सूर्य हैं। दश घोड़े के रथ पर आरूढ स्वच्छ कान्ति, स्वच्छ वस्त्र तथा स्वच्छ अलङ्करणों से युक्त, गदाधारी तथा द्विभुज, चन्द्रमा का स्वरूप है। रक्त माल्य तथा रक्तवस्त्रधारी शूल, शक्ति तथा गदा धारण किए हुए चतुर्भुज, वरप्रदाता, भेंड की सवारी करनेवाले मंगल होते हैं। पीला माल्य तथा पीला वस्त्र धारण करने वाले, ताल पत्र की तरह पीताभ कान्तिवाले, सिंहारूढ, गदा, कवच, खड्ग हाथ में रखते हुए वरप्रदाता बुध होते हैं। पीत तथा स्वच्छ कान्तिवाले, अक्षसूत्र तथा दण्ड धारण किए, हाथ में कमण्डलु ग्रहण लिए वरप्रदान करने वाले

गुरु तथा शुक्र होते हैं। नीलकान्ति वाले गीध पर सवार, शरचाप धारण किए वरप्रदाता, चतुर्भुज, तथा शूलधारी शनि होते हैं। भयावह मुहवाला कवच त्रिशूल खड्ग धारण किए, अशुभ कारक, सिंह पर सवार नील कान्तिवाले तथा वरप्रदाता राहु होते हैं। गदाधारी मुह बाए हुए, द्विभुज, धूम्र वर्णवाले, गीध पर सवार तथा वरप्रदाता केतु होते हैं ॥ ६–१३ ॥

ग्रहमूर्ति का विधान—

ग्रहमूर्त्तिः स्फुटा विज्ञै-रष्टोत्तरशताङ्गुलैः ।
उन्नता सकिरीटाऽपि कार्या वासोभिरावृता ॥ १४ ॥

अपने अङ्गुल से १०८ अङ्गुल प्रमित उन्नत, किरीटी वस्त्रों से आवेष्टित स्पष्ट ग्रह मूर्ति होनी चाहिए ॥ १४ ॥

पूजनविधि—

वर्णानुसारं खेटानां वासांसि कुसुमानि च ।
धूपदीपसुगन्धादि-द्रव्याणि च ददीत वै ॥ १५ ॥
तत्तद्ग्रहोदितं द्रव्य-मन्नपानादिकं तथा ।
बलिं च विधिवद् भक्ति-पूर्वकं विनिवेदयेत् ॥ १६ ॥

ग्रहों के वर्णानुसार (जिस ग्रह का जो वर्ण उदित है) वस्त्र, पुष्प, धूपदीप सुगन्धद्रव्य, अन्न-पान आदि तथा बलि भी भक्तियुक्त चित्त से देनी चाहिए ॥१५–१६॥

जप संख्या—

सूर्यादीनां नभोगानां मन्त्रै-र्विप्रेन्द्र ! वैदिकैः ।
पौराणिकैर्वा विधिवद् मौनं तु जपमाचरेत् ॥ १७ ॥
रवेर्नगास्तद्वदिन्दो रुद्रा, दश कुजस्य वै ।
बुधस्य नन्दा वचसां-पतेरेकोनविंशतिः ॥ १८ ॥
भृगोस्तु षोडश तथा अधिका विंशतिः शनेः ।
राहोरष्टेन्दवः केतो-र्नगेन्दव इमाः पुनः ॥ १९ ॥
सहस्रगुणिता लब्धसंख्यकं जपमाचरेत् ।
जपानुष्ठानतः खेटाः प्रीताः शुभफलप्रदाः ॥ २० ॥

सूर्यादि नवग्रहों के वैदिक या पौराणिक मन्त्रों का निम्नाङ्कित संख्यक जप मौन होकर करें जिससे प्रसन्न ग्रहगण शुभप्रद होते हैं। सूर्यादि नवग्रहों के ७।११।१०। ९।१९।१६।२३।१८।१७ ये अङ्क सहस्रगुणित किए जाँय लब्धाङ्क तुल्य नवग्रह जप-संख्या समझनी चाहिए।

जैसे—सूर्य—७०००, चन्द्र—११०००, मंगल—१००००, बुध—७०००, गुरु—१९०००, शुक्र—१६०००, शनि—२३०००, राहु—१८०००, केतु—१७०००।

ग्रहों के वैदिक या पौराणिक, मन्त्रों का ज्ञान पञ्चाग से करलेना चाहिए। इस तरह जपानुष्ठान से प्रसन्न ग्रह कल्याणकारक होते हैं ॥ १७–२० ॥

ग्रहों की हवनार्थ लकड़ी—

सूर्यस्यार्कः पलाशश्च विधोर्भूनन्दस्य तु ।
खदिरोऽथ बुधस्यैव-मपामार्ग उदीरितः ॥ २१ ॥
पिप्पलो हि गुरोर्जन्तु-फलः शुक्रस्य सम्मतः ।
शनेः शमी त्वहेर्दूर्वा, कुशाः केतोः समित् स्मृता ॥ २२ ॥
ससर्पिर्मधुना दध्ना जुहुयात् पयसाऽपि वा ।
अष्टोत्तरशतं वापि मनुयुक्प्रमितं बुधः ॥ २३ ॥

सूर्य का अर्क (अकौन) चन्द्रमा का पलाश, मंगल का खदिर, बुध का अपामार्ग (चिरचिरी) गुरु का पीपर, शुक्र का गूलर, शनि का शमी, राहु का दूर्वा, केतु का कुश, ये हवन की लकड़ियाँ हैं। इन लकड़ियों के द्वारा घृत, मधु, दही या दूध से १०८ बार या २८ बार हवन करना चाहिए ॥ २१–२३ ॥

प्रीतये तु नभोगाना-मोदनं गुडमिश्रितम् ।
पायसं च हविष्यान्नं क्षीरषाष्टिकमेव वा ॥ २४ ॥
भक्तं सदधि साज्यं च सुचूर्णं सामिषं तथा ।
चित्रान्नमिति विप्रेभ्यो-ऽशनं देयं ससत्कृति ॥ २५ ॥

ग्रहों के प्रीत्यर्थ गुड युक्तभात, पायस, हविष्यान्न, दूध से बना हुआ साठी चावल का भात, सदधि भात, सघृतभात, सचूर्णभात, (तिलचूर्ण युक्तभात) मांसभात, तथा चित्रान्न (खिचड़ी) ये ब्राह्मणों को सत्कारपूर्वक भोजन दें ॥ २४–२५ ॥

दक्षिणा—

धेनुकम्बुवृषस्वर्ण-वस्त्राश्वाऽसितधेनवः ।
लौहच्छागौ च गदिता ग्रहाणां दक्षिणाः क्रमात् ॥ २६ ॥

सूर्यादि ग्रहों के प्रीत्यर्थ सवत्सा गाय, शंख, बैल, सोना, वस्त्र, घोड़ा, काली गाय, लोहा, तथा छाग, क्रमशः देना चाहिए ॥ २६ ॥

दुष्टस्थानस्थितं खेटं जपहोमादिपूजनैः ।
विप्राणां भोजनैर्दानै-र्यत्नतः शान्तयेद् बुधः ॥ २७ ॥
ग्रहेऽनुकूले मनुजाः सुखिनोऽभ्युन्नताः सदा ।

प्रतिकूले दुःखभाज-स्तस्मात्तान् परिपूजयेत् ॥ २८ ॥

दुःस्थान स्थित ग्रहों की शान्ति जप, पूजन, ब्राह्मणभोजन, दान आदि से करनी चाहिए। ग्रहों की ही अनुकूलता में मनुष्य सुखी और ग्रहों की प्रतिकूलता में दुखी रहते हैं। अतः उन्हें पूजनादि से शान्त करें॥ २७–२८॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे ग्रहशान्त्यध्यायः समाप्तः।

अथ अशुभजनुर्वर्णनाध्यायः॥ ८६॥

पराशर उवाच—

अथ ब्रवीमि मैत्रेय! कारणान्तरमत्र ते।
येनाऽशुभं जनुर्नृणां शुभाङ्केऽपि ससद्ग्रहे॥ १॥
भद्राऽमासितपक्षीयचतुर्दश्यां च संक्रमे।
रवेः सोदरपित्रर्क्षे गण्डान्तत्रितयेऽथवा॥ २॥
सूर्येन्दुग्रहणे दग्ध-युतौ पातेऽवमेऽपि च।
यमघण्टेव्यतीपाता-दियोगे जन्म चेन्नृणाम्॥ ३॥
कन्यात्रयान्तरं पुत्रः, पुत्री पुत्रत्रयान्तरे।
जायते, यदि वा सूते-र्विकारेऽप्यशुभं जनुः॥ ४॥
शुभाप्तये बुधः कुर्या-च्छान्ति शास्त्रोक्तिसम्मताम्।
शिवं शान्त्या प्रजायेत वच्म्यतस्तामनुक्रमात्॥ ५॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय! शुभलग्न, शुभग्रह संयोग रहने पर भी मनुष्यों का अशुभप्रद जन्म होता है। इसका कारण कुछ अन्य है जिसे मैं बतलाता हूँ। भद्राकरण, अमावास्या तिथि, कृष्णपक्षीय चतुर्दशी, सूर्यसंक्रान्ति, सोदर अथवा पिता के नक्षत्र, त्रिविध गण्डान्त, सूर्यचन्द्र ग्रहण, दग्धयोग, पात अवम (क्षय तिथि) यमघण्ट, व्यतीपातादि दुष्ट योग, में मनुष्य का जन्म हो, तीन कन्याओं के बाद पुत्र का जन्म या तीन पुत्रों के बाद कन्या का जन्म हो, अथवा प्रसव का विकार हो, इन सभी स्थितियों में जातक का जन्म अशुभकारक होता है। कल्याण-प्राप्ति के लिए शास्त्र सम्मत शान्ति करनी चाहिए। शान्ति के द्वारा ही शुभाप्ति होती है, अतः क्रमशः मैं शान्त्युपायों को बतलाता हूँ॥ १–५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे अशुभजनुर्वर्णनाध्यायः समाप्तः॥

अथ अमाजन्मशान्त्यध्यायः ॥ ८७ ॥

पराशर उवाच—

अमावस्योद्भवो जातः पित्रोर्दारिद्र्यदो मतः ।
दोषप्रशमनायैव शान्तिं कुर्वीत यत्नतः ॥ १ ॥
विधाय वारिणा पूर्णं घटं तं स्थापयेद् बुधः ।
कोविदारवटाम्राणां निम्बपिप्पलयोरपि ॥ २ ॥
त्वग्मूलपल्लवांश्चापि पञ्चरत्नानि तत्र वै ।
निक्षिप्यारक्तवस्त्राभ्या-मावेष्ट्य त्वभिमन्त्रयेत् ॥ ३ ॥
आपोहिष्ठेत्यादि 'सर्वे समुद्र' इति च त्रिभिः ।
मन्त्रैरथ स्वर्णमयीं मूर्तिं वा सूर्यचन्द्रयोः ॥ ४ ॥
ताम्रोद्भवां राजतीं च दर्शदेवतयोः क्रमात् ।
विरचय्य च संस्थाप्य विधिवत् तामिहार्चयेत् ॥ ५ ॥
सवितेत्यादिनाऽऽप्याय-स्वेतिमन्त्रेण च क्रमात् ।
पञ्चोपचारैर्वा षड्भि-रधिकैर्दशभिर्बुधः ॥ ६ ॥
अर्चयेच्च ततो होमं कुर्यात् सवितृमन्त्रतः ।
'सोमो धेनु' रित्यतश्चा-ष्टाधिकं शतसंख्यकम् ॥ ७ ॥
अष्टाविंशतिसंख्याक-मपि वाऽथाभिषिञ्चयेत् ।
सपुत्रदम्पती तत्र ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥ ८ ॥
रजतस्वर्णधेनूश्च दक्षिणात्वेन दापयेत् ।
एवं कृतेऽमोद्भवस्तु नियतं क्षेममाप्नुयात् ॥ ९ ॥

पराशर ने कहा—अमावास्योत्पन्न जातक माँ बाप को दरिद्र बनाता है। अतः दोष शमन के लिए यत्नपूर्वक शान्ति करानी चाहिए। सर्वप्रथम जलपूर्ण घड़े में गूलर, बड़, आम, निम्ब तथा पीपल की छाल, जड़ तथा पल्लवों को और पञ्चरत्न को रखकर रक्तवस्त्रद्वय से आच्छादित कर घटस्थापन करें। पुनः आपोहिष्ठेत्यादि 'सर्वे समुद्र' इन तीन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करें। अमावास्या के देव चन्द्र सूर्य की स्वर्णमयी मूर्त्ति अथवा सूर्य की ताम्रमयी और चन्द्रमा की राजती (चाँदी की) मूर्त्ति बनाकर विधिवत् उसकी स्थापना करें। फिर सवितेत्यादि तथा आप्यास्वेत्यादि मन्त्रों से दोनों मूर्त्तियों की पञ्चोपचार या षोडशोपचार विधि से पूजा कर 'सवितृ' मन्त्र तथा सोमोधेनुः इत्यादि मन्त्र से अष्टोत्तरशत संख्यक वा, अष्टाविंशति प्रमित

हवन करें। हवनानन्तर पुत्र सहित दम्पति को कलश के जल से अभिषिक्त कर ब्राह्मणों को भोजन करावें। दक्षिणा के रूप में चाँदी, सोना, गाय दिलावें। इस प्रकार अमावास्योत्पन्न जातक निश्चय ही कल्याणभागी होता है ॥ १–९ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे अमाजन्मशान्त्यध्यायः समाप्तः।

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्त्यध्यायः ॥ ८८ ॥

पराशर उवाच—

पक्षेऽसिते चतुर्दश्यां जन्म चेदशुभं स्मृतम्।
षड्भिर्भक्ते चतुर्दश्या माने तु प्रथमे यदि ॥ १ ॥

जनुर्भवेच्छुभं तर्हि द्वितीये चेन्मृतिः पितुः।
तृतीये मातृमरणं चतुर्थे मातुलक्षतिः ॥ २ ॥

पञ्चमे वंशनाशः स्यात् षष्ठे सम्पत्तिसंक्षयः।
अपि वाऽऽत्मविनाशः स्या-दतः शान्ति समाचरेत् ॥ ३ ॥

कृष्णपक्षीय चतुर्दशी में जन्म अशुभप्रद होता है। चतुर्दशी के मान को ६ से विभक्त करें। प्रथम भाग में जन्म होने पर शुभ, द्वितीय भाग में जन्म होने से पिता का मरण, तृतीय भाग में जन्म होने पर मातृमरण, चतुर्थ भाग में जन्म होने से मामा का विनाश, पञ्चम भाग में जन्म होने पर वंशक्षय, षष्ठ भाग में जन्म से सम्पत्तिक्षय अथवा आत्मविनाश होता है। अतः शान्ति करानी चाहिए ॥ १–३ ॥

शिवस्वर्णमयीं मूर्ति यथाशक्ति विनिर्मिताम्।
शुभ्रस्रग्वसनोपेतां वृषारूढां मनोरमाम् ॥ ४ ॥

भाले बालेन्दुलसितां नेत्रत्रयविभूषिताम्।
वरप्रदामभयदां द्विभुजां पूजयेद् बुधः ॥ ५ ॥

सुवर्णमयी शिवजी की मूर्त्ति यथाशक्ति बनवाकर पूजन करें। वह मूर्त्ति शुभ्रमाल्य तथा शुभ्रवस्त्रयुक्त, वृषभासीन, सुन्दर, मस्तक में बालेन्दुयुक्त, नेत्रत्रयभूषित, वरप्रद, अभयद तथा दो भुजा वाली हो ॥ ४–५ ॥

मन्त्रैस्तु वारुणैरावा-हनं 'त्र्यम्बक' मित्यतः।
अभ्यर्चनं, ततस्तद्व-न्मन्त्रैराग्नेयकुम्भतः ॥ ६ ॥

समारभ्यार्चयेद् भक्तो जपेत् सूक्तद्वयं पुनः।
रुद्रदे'तिजपं कुर्या-दभिषेकं शिवस्य च ॥ ७ ॥

ग्रहाभिपूजनं-भक्ति-पूर्वकं कारयेत्तथा ।
समिद्घृतचरून् तद्वत्तिलान् माषान् ससर्षपान् ॥ ८ ॥
जुहुयाज्प्रज्वलिते जात-वेदस्यष्टोत्तरं शतम् ।
अष्टाविंशतिसंख्यं वा तिलान् 'त्र्यम्बक'तः क्षिपेत् ॥ ९ ॥
ग्रहाणां हवनं तद्वत् कुर्याद् व्याहृतिभिस्ततः ।
अभिषिञ्चेत् सुतं चापि पितरौ स्याच्छुभं तदा ॥ १० ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या दक्षिणामपि कर्मणः ।
कर्मान्ते शक्तितो दद्यात् ततः क्षेममवाप्नुयात् ॥ ११ ॥

शिव की स्वर्णमयी प्रतिमा का वारुण मन्त्रों से आवाहन, 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि मन्त्र से पूजन, पुनः तत्तदुक्त मन्त्रों से आग्नेयकोण स्थित घट से आरम्भकर भक्ति-पूर्वक पूजन एवं सूक्तद्वय का पाठ करना चाहिए। पुनः 'कद्रुद्रे'त्यादि पुरुषसूक्त का जप अन्ततः रुद्र का अभिषेक, नवग्रहों का भक्तिपूर्वक पूजन, समित् घृत चरु, तिल, सर्षप का प्रज्वलित अग्नि में १०८ (अष्टोत्तर शत) बार या २८ बार हवन, करें। त्र्यम्बकेत्यादि मन्त्र से अग्नि में तिल का प्रक्षेप करना तथा व्याहृतियों से ग्रहों का हवन करना चाहिए। अनन्तर पुत्र सहित दम्पत्ति का कलशीय जल से अभिसिञ्चन आचार्य करें। ब्राह्मणों का भोजन, यथाशक्ति कर्मान्त में दक्षिणा दान करें तो अवश्य कल्याण की प्राप्ति होती है ॥ ६–११ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे कृष्णचतुर्दशीजननशान्त्यध्यायः समाप्तः ॥

अथ भद्रावमादिदुष्टयोगशमनाध्यायः ॥ ८९ ॥

पराशर उवाच—

भद्रावमव्यतीपात-यमघण्टादिदुर्युतौ ।
जनुर्यदशुभं पूर्व-मुदितं तत्र संशृणु ॥ १ ॥
शान्तेर्विधिं यद्विधाना-च्छिवमाप्नोति मानवः ।
शान्तिस्तद्दुर्युतावेव कार्या यस्यां जनुर्भवेत् ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—भद्रा, तिथिक्षय, व्यतीपात, यमघण्ट आदिक दुर्योग में जन्म जो अशुभप्रद कहा गया है उसकी शान्ति का विधान सुनो। शान्ति करने से मनुष्य कल्याणभाजन होता है। जिस दुर्योग में जन्म हुआ हो उस दुर्योग को पुनः प्राप्त होने पर शान्ति करनी चाहिए। जैसे भद्रा जन्मप्रयुक्त शान्ति भद्रा में ही करें ॥ १–२ ॥

शुभे मुहूर्त्ते सल्लग्ने दैवज्ञेनोदिते नरः ।
देवानामर्चनं तद्वद् यजनं च खचारिणाम् ॥ ३ ॥
रुद्राभिषेकमपि च धूपदीपौ शिवान्तिके ।
अश्वत्थस्य नमस्कार-मायुषो वृद्धिदं तथा ॥ ४ ॥
हवनं हरिमन्त्रेण कुर्यादष्टोत्तरं शतम् ।
भोजनं ब्राह्मणानां च यथाशक्ति हि कारयेत् ॥ ५ ॥
कर्मान्ते दक्षिणाश्चापि दद्यादाचार्यहेतवे ।
एवंकृते ध्रुवं जातो भवेत् कल्याणभाजनः ॥ ६ ॥

ज्यौतिषी के द्वारा निर्दिष्ट शुभ मुहूर्त्त तथा शुभलग्न में देवताओं एवं ग्रहों का पूजन कर रुद्राभिषेक करें, शिव के निकट धूप दीप भी दिखलावें । तदः पर आयुर्वृद्धिकर अश्वत्थ (पीपर) की प्रदक्षिणा, विष्णु मन्त्र से अष्टोत्तर शत बार हवन, यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन, कर्मान्त में कर्म दक्षिणा (विशेषतः आचार्य के लिए) देवे तो अवश्य कल्याणभाजन जातक होता है ॥ ३–६ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भद्रावमादिदुष्टयोगशान्त्यध्यायः समाप्तः ॥

अथ एकनक्षत्रोत्थजातकशान्त्यध्यायः ॥ ९० ॥

पराशर उवाच—

यदि जन्म भवेत् पित्रो-र्जन्मर्क्षे वापि सोदरे ।
मृतिस्तयोरथैकस्य वा भवेदिति निश्चितम् ॥ १ ॥
प्राचीनैर्ऋषिभिः प्रोक्तं वच्मि शान्तिविधिं शृणु ।
शुभर्क्षे सद्दिने रिक्ता-ऽमाऽवमादिविवर्जिते ॥ २ ॥
चन्द्रताराबलोपेते शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ।
नक्षत्रप्रतिमां साध्वी-मीशानविदिशि स्थिताम् ॥ ३ ॥
अग्नेर्नक्षत्रमन्त्रेणा-भ्यर्चयेत् कलशोपरि ।
रक्तेन वाससाच्छाद्य सवस्त्रामथ मन्त्रवित् ॥ ४ ॥
वेष्टयेत् स्वस्वशाखोक्त-विधिनाऽग्निमुखं चरेत् ।
पूर्वोक्तेनैव मन्त्रेण जुहुयाच्छतमष्टयुक् ॥ ५ ॥
समित्शाकल्यघृततः प्रायश्चित्तावसानकम् ।
ततोऽभिषिञ्चेदाचार्यः पितरौ च सहोदरौ ॥ ६ ॥

विप्रांस्तु भोजयेत् पश्चाद् दक्षिणादानपूर्वकम् ।
एवं कृते तु नक्षत्र-जातो दोषो विनश्यति ॥ ७ ॥

पराशर ने कहा—पिता, माता या सोदर के जन्म नक्षत्र में यदि जन्म हो तो दोनों (जातक तथा पिता या जातक सोदर, या जातक माता) का या किसी एक का मरण हो जाता है । अतः प्राचीन ऋषिप्रोक्त शान्ति विधि को बतलाता हूँ, सुनो! शुभनक्षत्र, रिक्ता, अमा, क्षयदिन आदि रहित शुभ दिन में चन्द्रमा तारा जब प्रबल हों तो नक्षत्र शान्ति करनी चाहिए । नक्षत्र शान्ति के लिए नक्षत्र की सुन्दर प्रतिमा बनाकर स्थापित अग्नि के ईशान कोण में कलश के ऊपर नक्षत्र मन्त्रों से अभ्यर्चन करें । उस नक्षत्र मूर्त्ति को रक्तवस्त्र से आच्छादित कर पुनः वस्त्रद्वय से आवेष्टित करें । पुनः स्वस्वशाखोक्त विधि से अग्नि मुख घर के पूर्वोक्त ही नक्षत्र मन्त्र से १०८ बार अग्नि में लकड़ी साकल्य (घृत, तिल धूप आदि का सम्मिश्रण) घृत से प्रायश्चित्तान्त हवन करें । अनन्तर आचार्य कलश स्थित जल से जातक माता पिता सोदर आदि को सिञ्चित करें । यथाशक्ति ब्राह्मणों का भोजन, दक्षिणा आदि दें । इस तरह नक्षत्र दोष का विनाश हो जाता है ॥ १–७ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे एकनक्षत्रोत्थजातकशान्त्यध्यायः समाप्तः ॥

अथ संक्रान्तिजननदोषशान्त्यध्यायः ॥ ९१ ॥

पराशर उवाच—

सूर्यादौ सूर्यसंक्रान्ति-र्घोरा ध्वांक्षी महोदरी ।
मन्दा मन्दाकिनी मिश्रा राक्षस्यश्चेति सप्तधा ॥ १ ॥
तत्र जातो भवेन्नूनं दुःखदारिद्र्यसंयुतः ।
शान्तितः शुभमाप्नोति तस्माच्छान्तिं ब्रवीम्यहम् ॥ २ ॥
तद्दोपशमनार्थं तु ग्रहाणां यज्ञमाचरेत् ।

पाराशर ने कहा—सूर्यादि वासर में घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी ये सप्तविध सूर्यसंक्रान्ति होती है । इन संक्रान्तियों में उत्पन्न बालक दुःखदारिद्र्य युक्त होता है । शान्ति से शुभ सम्भव है अतः शान्ति का विधान मैं बतलाता हूँ—तद्दोषो (संक्रान्तिज दोष) पशमन के लिए ग्रह-यज्ञ करे ॥ १–२ ॥

शान्ति-विधान

स्वगृहात् पूर्वतो भागे शुचौ देशेऽत्रलिप्य वै ॥ ३ ॥
गोमयेन, तत्र धान्य-राशिमेकत्र कारयेत् ।
पञ्चद्रोणात्मिकां व्रीहिं तदर्धं तण्डुलांस्तथा ॥ ४ ॥

तदर्धं सत्तिलान् सर्वान् पृथग्राशौ प्रकल्पयेत् ।
सर्वेषु विलिखेदष्ट-पत्रपद्मशुभाकृतीः ॥ ५ ॥
पुण्याहवाचनं तद्वद्-दाचार्यवरणं पुनः ।
धान्यराशिषु घटां-स्तीर्थोदकसमन्वितान् ॥ ६ ॥
स्थापयेद् विधिवत् तेषु सप्तमृत्पञ्चपल्लवान् ।
शतौषधियुतान् पञ्च-गव्यं च प्रक्षिपेद् बुधः ॥ ७ ॥
घटानावेष्ट्य वस्त्राभ्यां तेषु पात्राणि विन्यसेत् ।
सूर्याचन्द्रमसोः साधि-प्रत्यधित्वेन कल्पितान् ॥ ८ ॥
प्रतिमां पार्श्वयोर्मध्ये संक्रान्तेस्तेषु संन्यसेत् ।
ततस्ताः प्रतिमा मन्त्रै-स्तैस्तैरभ्यर्चयेत् सुधीः ॥ ९ ॥
संक्रान्तिप्रतिमां पूर्वं वस्त्रद्वितयमर्पयेत् ।
त्र्यम्बकेण तु मन्त्रेण सह व्याहृतिकेन च ॥ १० ॥
पूजयेत्तां विशेषेण धूपदीपप्रदर्शनैः ।
सूर्यं 'मुत्सूर्यं' मन्त्रेणा-प्यायस्वेतिविधुं तथा ॥ ११ ॥
उपचारैः षडधिकै-र्दशभिर्वाऽपि पञ्चभिः ।
अर्चयेद् भक्तिपूर्वं त-न्मूर्त्तित्रितयमादरात् ॥ १२ ॥
मृत्युञ्जयमहामन्त्र-जपमष्टोत्तरं शतम् ।
सहस्रमष्टाभ्यधिकं कुर्याद् विघ्नोपशान्तये ॥ १३ ॥
अष्टाविंशतिमितं जपेन्मन्त्रमथापि वा ।

अपने घर के पूर्वभाग में पवित्र स्थान में गोबर से लेपन करके त्रिविध अन्नों की ढेर लगावें। ५ द्रोण (अढ़ैया) प्रमित व्रीहि (गम्हणी = साठी), तदर्ध चावल, तदर्थ तिल अलग-अलग ढेर के रूप में रक्खें। सभी ढेरों पर सुन्दर अष्टदल कमल का निर्माण करें। ततः पर पुण्याह वाचन, आचार्य वरण कराकर धान्यों की ढेर पर तीर्थोदक पूर्ण वस्त्रावेष्टित घटों की स्थापना करें। उन घटों में सप्ततीर्थ की मृत्तिका, शतौषधि, पञ्चगव्य तथा पञ्चपल्लव (घट के ऊपर भाग में) रक्खें। तीनों घटों के ऊपर आसन के रूप में ३ छोटे-छोटे पात्रों का भी न्यास करें। घटोपरिस्थ तीन पात्रों में अधिदेव प्रत्यधिदेव के रूप में उपकल्पित सूर्य तथा चन्द्र की प्रतिमाओं और सक्रान्ति की प्रतिमा को विन्यस्त करें। मध्यवर्त्ती घडे पर प्रधान देवी सक्रान्ति की प्रतिमा और पार्श्ववर्ती घड़ों पर अधिदेव तथा प्रत्यधिदेव-स्वरूप सूर्य चन्द्रमा की प्रतिमाओं को

रक्खें। अनन्तर तीनों प्रतिमाओं को तत्तद् वैदिक मन्त्रों से विधानपूर्वक पूजन आराधन करें। प्रधान प्रतिमा के पूजन के पूर्व वस्त्रयुगल समर्पित कर व्याहृति-पूर्वक 'त्र्यम्बक' मन्त्र से अभ्यर्चन तथा धूपदीपादि का प्रदर्शन आराधन आदि विशेष रूपतः करना चाहिए। 'उत्सूर्य' आदिक सूर्य मन्त्र से सूर्य प्रतिमा की और आप्यास्वये-त्यादि मन्त्र से चन्द्र प्रतिमा की षोडशोपचार या पञ्चोपचार पूजा भक्ति, निष्ठा के साथ करें। सर्वविध विघ्नोपशान्ति के लिए मृत्युञ्जय मन्त्र का अष्टोत्तर सहस्र, अष्टाधिक शत, या अट्ठाइस बार भी (अशक्तता में) जप करें ॥ ३–१३ ॥

घटेभ्यः पश्चिमदिशि स्थण्डिले वह्निमाह्वयेत् ।
गृह्योक्तविधिना तस्य संस्कारमपि कारयेत् ॥ १४ ॥
समिद्घृतचरूंस्तत्र जुहुयात् त्र्यम्बकादिना ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं सहस्रं वाष्टसंयुतम् ॥ १५ ॥
अष्टाविंशतिसंख्याक-मथवा हवनं चरेत् ।
तिलहोमं ततः स्विष्ट-कृतं हुत्वा घटोदकैः ॥ १६ ॥
अभिषेकं जातकस्य पित्रोरपि च कारयेत् ।
विप्राणां भोजनमिति शान्तिं संक्रान्तिजां चरेत् ॥ १७ ॥
एवंकृते जातकस्य कल्याणं निश्चितं भवेत् ॥ १८ ॥

घड़ों के पश्चिम में स्थण्डिल प्रदेश में अग्नि का आवाहन करें। उस अग्नि का गृह्योक्तविधि से संस्कार कर त्र्यम्बकादि मन्त्र से लकड़ी, घृत तथा चरु का उसमें हवन, अष्टोत्तरसहस्र बार, अष्टोत्तरशत बार या अशक्तता में अठाइस बार भी अवश्य करें। ततः पर (मृत्युञ्जय मन्त्र से) तिलहोम, पुनः स्विष्टकृत होम करें घटत्रयोदक से सपुत्र दम्पति का अभिषेक आचार्य करें। अन्त में ब्राह्मणों का भोजन तथा दक्षिणादि विधान से संक्रान्ति-जन्मजन्य दोषों की शान्ति होती है। इस तरह दोष शान्ति के बाद जातक का कल्याण निश्चित होता है ॥ १४–१८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे संक्रान्तिजननदोषशान्त्यध्यायः ।

अथ ग्रहणजातदोषशान्त्यध्यायः ॥ ९२ ॥

पराशर उवाच—

रवीन्द्वोर्ग्रहणे जातो दारिद्र्यक्लेशरोगवान् ।
म्रियतेऽपि ततः शान्ति-माचरेद्धितकाम्पुकः ॥ १ ॥

रवीन्द्वोर्ग्रहणं यत्र नक्षत्रे तदधीशजाम् ।
मूर्तिं स्वर्णमयीं, सूर्य-रूपं चापि रविग्रहे ॥ २ ॥
सुवर्णेन, तथैवेन्दो-ग्रहणे रजतेन वै ।
चन्द्रस्वरूपं रचयेद्राहोः शीशकतस्तथा ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा—सूर्य, चन्द्र के ग्रहण के समय उत्पन्न बालक दुःख, दारिद्र्य, तथा रोगयुक्त होता है। अतः हितकामुक व्यक्ति को शान्ति करानी चाहिए। ग्रहण जिस नक्षत्र में हो तन्नक्षत्राधीश की प्रतिमा स्वर्णमयी और सूर्यग्रहण में सूर्य की भी प्रतिमा सुवर्ण की बनावें। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा की प्रतिमा चान्दी की और राहु की मूर्त्ति शीशे की बनावें ॥ १–३ ॥

शान्ति-विधान—

समभूमौ शुचौ देशे गोमयेनोपलिप्य च ।
सूर्येन्द्वोस्तमसश्चापि प्रतिमां तत्र विन्यसेत् ॥ ४ ॥
सूर्यग्रहे रविप्रीति-करं रक्ताक्षतं तथा ।
रक्तचन्दनरक्तस्रग्-वस्त्राणि च समर्पयेत् ॥ ५ ॥
चान्द्रे ग्रहे शशिप्रीति-कराणि सितगन्धयुक् ।
सितपुष्पसितस्रग्वा-सांसि दद्याद् विचक्षणः ॥ ६ ॥
कृष्णानि गन्धपुष्पस्रग्-वस्त्राणि तमसेऽर्पयेत् ।
नक्षत्रेशाय च पुनः श्वेतं सर्वं निवेदयेत् ॥ ७ ॥
आकृष्णेनेति मन्त्रेण सूर्यमाराधयेत् सुधीः ।
'इमं देवा' इति ऋचा चन्द्रमभ्यर्चयेत्तथा ॥ ८ ॥
'कया न' इति मन्त्रेण राहुं दूर्वाभिरर्चयेत् ।
राहुसूर्येन्दुसमिधो दूर्वाऽर्कश्च पलाशकः ॥ ९ ॥
तत्तद्ग्रहाणां प्रीत्यर्थं समिद्भिर्जुहुयाद् बुधः ।
नक्षत्रेशप्रसादाया-श्वत्थस्य समिधः शुभाः ॥ १० ॥

समतल भूमि तथा पवित्र स्थान में गाय के गोबर से उपलेप कर सूर्य, चन्द्र तथा राहु की प्रतिमा रखें। सूर्य-प्रीत्यर्थं रक्ताक्षत, रक्तचन्दन, रक्तमाल्य तथा रक्तवस्त्र समर्पित करें। चन्द्र प्रीति के लिए श्वेतचन्दन श्वेतपुष्प, श्वेतमाल्य, श्वेतवस्त्र प्रदान करें। राहु प्रीत्यर्थं सभी कृष्ण वर्ण की वस्तुएं और नक्षत्रेश के लिए श्वेतवस्तुएं दें। 'आकृष्णेन रजसा' इत्यादि मन्त्र से सूर्य की 'इमं देवा' इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमा की 'कया न' इस मन्त्र से राहु की पूजा दूर्वा से करें। राहु की समित्

दूर्वा, सूर्य की अकौन, चन्द्रमा की पलाश हैं। तत्तद्ग्रह प्रीत्यर्थं तत्तत्समिधा से हवन करें। नक्षत्रेश की प्रसन्नता के लिए अश्वत्थ की लकड़ी विहित है ॥ ४–१० ॥

कलशोदकतो जातं दम्पती चाभिषिञ्चयेत् ।
आचार्यमभिवाद्याथ ब्राह्मणान् भोजयेत् सुधीः ॥ ११ ॥
कर्मणोऽन्ते यथाशक्ति दद्याद् विप्राय दक्षिणाम् ।
एवं ग्रहणजातानां शुभदा शान्तिरीरिता ॥ १२ ॥

(हवनानन्तर) कलशोदक से जातक तथा दम्पत्ति (जातक की माता तथा पिता) को, अभिषिक्त करें। पुनः आचार्य के अभिवादनानन्तर ब्राह्मणों का भोजन तथा कर्मान्त में ब्राह्मण के लिए दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार ग्रहणोत्पन्न जातक की शुभप्रद शान्ति कही गई है ॥ ११–१२ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे ग्रहणजातदोषशान्त्यध्यायः समाप्तः ।

अथ गण्डान्तोद्भवशान्त्यध्यायः ॥ ९३ ॥

पराशर उवाच—

गण्डान्तं त्रिविधं प्रोक्तं तिथ्यङ्गर्क्षवशाद् बुधैः ।
पाणिग्रहादौ जनुषि प्रयाणे च विचिन्तयेत् ॥ १ ॥

पराशर ने कहा—तिथि, लग्न तथा नक्षत्र के वश त्रिविध गण्डान्त कहे गए हैं। इनका विचार विवाहादि शुभ कार्य में, जन्म-समय तथा यात्रा में विचार करना चाहिए ॥ १ ॥

गण्डान्तत्रय—

पूर्णानन्दाभिधानां तु तिथीनां सन्धिषु द्विज ! ।
घटीचतुष्टयं विज्ञै-स्तिथिगण्डान्तमीरितम् ॥ २ ॥

एवं नक्षत्रगण्डान्तं घटीयुगमितं बुधैः ।
रेवतीसार्पशाक्रेभ्यो-ग्रिमभैः सन्धिषु स्मृतम् ॥ ३ ॥

मीनमेषाङ्क्योः कर्क-सिंहयोरलिधन्विनोः ।
सन्धावेकघटीतुल्यं लग्नगण्डान्तमुच्यते ॥ ४ ॥

पूर्णा, (५।१०।१५) नन्दा (१।६।११) तिथियों की सन्धियों में चार घटी तुल्य समय तिथिगण्डान्त होता है। अर्थात् पूर्णिमा के अन्त की दो घटी तथा प्रतिपदा के

आदिम दो घटी, दशमी की अन्तिम दो घटी तथा एकादशी की आदिम दो घटी, इसी तरह पञ्चमी की अन्तिम दो घटी और षष्ठी की आदिम दो घटी, ऐसे तीनों जगह चार-चार घटी का समय तिथिगण्डान्त होता है।

रेवती, आश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्रों के तदग्रिम नक्षत्रों के साथ अर्थात् रेवती अश्विनी, आश्लेषा मघा, ज्येष्ठा मूल, इन तीनों की सन्धियों में चार-चार घटी नक्षत्र गण्डान्त कहे गए हैं।

मीन मेष, कर्क सिंह, वृश्चिक धनु की सन्धियों में एक-एक घटी तुल्य समय लग्न-गण्डान्त होता है ॥ २–४ ॥

गण्डान्तत्रितयं जन्म-यात्रादौ मृतिदं, तथा।
शाक्रमूलभयोः सन्धौ शरा नागाश्च नाडिका ॥ ५ ॥

क्रमादभुक्तमूलाख्या महाविघ्नप्रदायकाः।
तस्मात् तत्कालजातानां शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ॥ ६ ॥

तीनों गण्डान्त जन्म, यात्रादि में मृत्युप्रद हैं। ज्येष्ठा मूल के सन्धि में ५, ८, घटिकाएं (ज्येष्ठा के अन्त में ५ घटी तथा मूल के आदि में ८ घटी) महाविघ्नप्रद अभुक्तमूल संज्ञक हैं। अतः गण्डान्तत्रय तथा अभुक्तमूल में उत्पन्न जातक की शान्ति अवश्य करनी चाहिए ॥ ५–६ ॥

शान्ति-विधान—

गण्डान्तोत्थशिशोः सूत-कान्ते वाऽपि शुभेऽहनि।
शान्तिं कुर्वीत नो तावद् बालमालोकयेत् पिता ॥ ७ ॥

तिथिनक्षत्रलग्नोत्थ-गण्डान्तेषु क्रमान्नरः।
वृषधेनुसुवर्णानि दोषशान्त्यै ददीत वै ॥ ८ ॥

गण्डान्तप्रथमे भागे जाते जाताभिषेचनम्।
पित्रा सह, परे भागे मात्रा सममुदीरितम् ॥ ९ ॥

सौवर्णं तिथिनक्षत्र-लग्नस्वामिस्वरूपकम्।
विरचय्य घटाग्रस्थ-पात्रे पूर्ववदर्चयेत् ॥ १० ॥

उपचारैः षडधिकै-र्दशभिर्वाऽपि पञ्चभिः।
ततश्च सभिधाज्याद्यैर्हुत्वाग्नि च यथाविधि ॥ ११ ॥

विप्रांश्च भोजयेदेवं दोषशान्तिः प्रजायते ।
समृद्धिश्च प्रतिदिनं नैरुज्यविभवायुषाम् ॥ १२ ॥

त्रिविध गण्डान्तोत्पन्न जातक की दोष-शान्ति सूतक के अन्त अथवा शुभ दिन में पिता करें। शान्ति करने तक पिता जातक के मुखावलोकन नहीं करें। तिथिगण्डान्त में जन्म होने पर बैल, नक्षत्रगण्डान्त में गाय, लग्नगण्डान्त में जन्म हो तो सुवर्ण का दान दोषशान्ति के लिए करें। गण्डान्त के प्रथमार्ध में जन्म होने पर पिता के साथ जातक का और परार्ध में जन्म होने पर माता के साथ जातक का अभिषेक करना चाहिए। तिथि, नक्षत्र तथा लग्न-गण्डान्त में तिथि-नक्षत्र तथा लग्न की सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर घटाग्र पर स्थित पात्र में रख पूर्ववत् षोडशोपचार या पञ्चोपचार पूजन करें। पूजनानन्तर लकड़ी घृत-शाकल्य आदि से हवन करके ब्राह्मणों को भोजन, (दक्षिणा दान सहित) करावें। इस प्रकार दोष-शान्ति तथा प्रतिदिन नैरुज्य, ऐश्वर्य तथा आयुष्य की वृद्धि होती है ॥ ७–१२ ॥

इति बृहत्पाराशर-होराशास्त्रे गण्डान्तोद्भवशान्त्यध्यायः समाप्तः ।

अथ मूलगण्डशान्त्यध्यायः ॥ ९४ ॥

पराशर उवाच—

अभुक्तमूलघटिकाः पूर्वमुक्ता द्विजोत्तम ।
तदुद्भवां सुतां वाऽपि सुतं तातः परित्यजेत् ॥ १ ॥

अथवा तन्मुखं नैवा-ऽष्टसमा अवलोकयेत् ।
महाविघ्नप्रदाश्चैता-स्तस्माच्छान्तिरिहोच्यते ॥ २ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय अभुक्तमूल घटिकायें मैंने पहले कहीं हैं। अभुक्तमूलोत्पन्न पुत्री या पुत्र को पिता छोड़ दें या आठ वर्षों तक उनके मुखावलोकन नहीं करें। उपर्युक्त अभुक्तमूल घटिकायें महाविघ्नप्रद होती हैं। अतः तदुत्पन्न जातकों की दोष-शान्ति का विधान बतलाता हूँ ॥ १–२ ॥

शुभे दिने मूलजानां द्वादशे वाह्नि जन्मनः ।
अपि वाऽष्टमवर्षान्ते विधिवच्छान्तिमाचरेत् ॥ ३ ॥

मूलनक्षत्रोत्पन्न जातकों की दोषशान्ति जन्म से १२ वें या शुभ दिन में या अष्टमवर्षान्त में कराना चाहिए ॥ ३ ॥

शान्तिविधि—

स्वगृहादुत्तरे पूर्व-भागे वाऽपि शुभस्थले ।
गोमयेनावलिप्ते तु कुर्यात् सन्मण्डपं बुधः ॥ ४ ॥
द्वारैश्चतुर्भिरभित-स्तोरणादिविभूषितम् ।
कुण्डं यज्ञविधानाय बहिर्द्वारि च कारयेत् ॥ ५ ॥
नक्षत्रेशाकृतिं स्वर्ण-मयीं वित्तानुरोधतः ।
विरचय्य श्यामवर्णं मस्तकद्वयसंयुतम् ॥ ६ ॥
वृकास्यं खड्गचर्माढ्यं भीतिदं शववाहनम् ।
नक्षत्रदेवं विधिवद् ध्यायेदवनताननः ॥ ७ ॥

अपने घर से उत्तर या पूर्व भाग में शुभ स्थान में गाय के गोबर से लीप कर सुन्दर मण्डप बनावें । मण्डप के चारों दरवाजे को तोरण आदि से विभूषित करें । यज्ञविधान के लिए बहिर्द्वार पर कुण्ड का भी निर्माण करें । वित्तानुरोध से नक्षत्रेश की प्रतिमा स्वर्णमयी बनाकर दो मस्तकधारी, काले वर्ण भेंड़िये की तरह मुह वाले, खड्ग चर्म युक्त, शव पर आरूढ़, भयावह नक्षत्रदेव का ध्यान विनम्र होकर करें ॥ ४–७ ॥

स्वस्तिवाचनमाचार्य-वरणं कलशे पुनः ।
तीर्थोदकं पञ्चगव्यं शतौषध्यादि च क्षिपेत् ॥ ८ ॥
शतच्छिद्रमयं कुर्याद-परं घटमुत्तमम् ।
तदग्रे वंशपात्रं च स्थापयेद् द्विजसत्तम ! ॥ ९ ॥
नक्षत्राधिपतिं देवं नैर्ऋतिं तत्र सादरम् ।
पश्चिमाभिमुखीकृत्या-भ्यर्चयेत् प्रणतो बुधः ॥ १० ॥
सितेन वाससा तद्वत् सितगन्धसुमाक्षतैः ।
इन्द्रं च वारुणं देवं साधिप्रत्यधिरूपकम् ॥ ११ ॥
पूजयेत् स्वस्वशाखोक्त-मन्त्रैर्देवत्रयं, पुनः ।
हवनं तु सहस्रं वा शतमष्टाधिकं चरेत् ॥ १२ ॥
मृत्युञ्जयजपं कुर्या-न्मृतिशान्त्यै विशेषतः ।
पूजामाराधनां भक्त्या विदध्यान्नियतेन्द्रियः ॥ १३ ॥

(ततः पर) स्वस्तिवाचनपूर्वक आचार्यवरण, कलश में तीर्थोदक, पञ्चगव्य, एवं शतौषधि का प्रक्षेप करें। शतच्छिद्र वाला एक दूसरे घट की भी स्थापना करें जिसके अग्र में बांस का पात्र (सूप आदि रक्खें) उसी पात्र में नक्षत्रेश राक्षस-स्वरूप देव की पश्चिमाभिमुख स्थापना कर विनम्र होकर शुक्ल वस्त्र, शुक्ल चन्दन, शुक्ल पुष्प अक्षत आदि से पूजन करें। उनके अधिदेवस्वरूप इन्द्र तथा प्रत्यधिदेव रूप वरुण देव की भी पूजा अपने अपने शाखोक्त मन्त्रों से सम्पन्न करें। इस प्रकार देवत्रय की पूजा तथा अष्टोत्तर सहस्र या अष्टोत्तर शतवार हवन एवं मृत्युञ्जय मन्त्र का मृत्युशान्त्यर्थं जप, पूजा, आराधना आदि यतेन्द्रिय होकर करें ॥ ८–१३ ॥

ततोऽभिषिञ्चे-दाचार्यो दम्पती जातकं तथा।
घटद्वयाम्भसा स्नानं यजमानस्ततश्चरेत् ॥ १४ ॥
स्नातः श्वेताम्बरधरः श्वेतचन्दनचर्चितः।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यादाचार्याय विशेषतः ॥ १५ ॥
दत्त्वा पयस्विनीं गां च ब्राह्मणान् भोजयेत् पुनः।
आज्ये मन्त्रेण चानेन स्वाऽऽत्मबिम्बं विलोकयेत् ॥ १६ ॥
दौर्बल्यमखिलं यच्च पापं मद्गात्रसंस्थितम्।
घातयाऽऽज्य! समस्तं त-च्छ्रियं वृद्धिं च देहि मे ॥ १७ ॥
मूलगण्डप्रजातानां शान्त्यैवं शुभमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

ततः पर आचार्य दम्पति (जातक की माता तथा पिता) एवं जातक का अभिषेक करें। बाद यजमान पूर्व स्थापित दोनों कलशों के जल से स्नान कर श्वेतवस्त्र धारण करें श्वेत चन्दन भी लगावें और ऋत्विक् तथा आचार्य को दक्षिणा करें। आचार्य के लिए विशेषतः दक्षिणा होनी चाहिए। उन्हें दुग्धवती सवत्सा गाय प्रदान करें तथा ब्राह्मणों को भोजन करावें। अनन्तर पात्रस्थ घृत में 'दौर्बल्यमखिलं यच्च पापं मद्गात्रसंस्थिम्। घातयाऽऽज्य! समस्तं तच् श्रियं वृद्धिं च देहि मे' इस मन्त्र से अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखें। इस तरह मूलगण्डोत्पन्नजातक की शान्ति करने से शुभ होता है ॥ १४–१८ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे मूलगण्डशान्त्यध्यायः समाप्तः।

अथ ज्येष्ठादिगण्डान्तशान्त्यध्यायः ॥ ९५ ॥

पराशर उवाच—

ज्येष्ठागण्डान्तजाताना-मात्मपित्रादिघातिनाम् ।
विघ्नोपशमनीं शान्ति मूलशान्तिवदाचरेत् ॥ १ ॥

प्रधानदेवो हि शत-क्रतुरत्राग्निराक्षसौ ।
अधिप्रत्यधिदेवौ स्त-स्तस्मात् त्रीनर्चयेद् बुधः ॥ २ ॥

वज्राङ्कुशयुतां स्वर्ण-रचितां मूर्तिमिन्द्रजाम् ।
गजारूढां सुविमलां दिव्याम्बरविभूपिताम् ॥ ३ ॥

संस्थाप्य कलशाग्रस्थ-पात्रे गन्धाक्षतैः सुमैः ।
गृह्योक्तमन्त्रतोऽभ्यर्च्या-भिषेकं हवनं तथा ॥ ४ ॥

सूक्तपाठं महामृत्यु-ञ्जयजापं च कारयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते शुभमेवमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥

अपने तथा पित्रादियों के घातक ज्येष्ठागण्डान्तोत्पन्न जातक की भी शान्ति मूल-शान्ति की तरह करें। किन्तु इसमें प्रधानदेव इन्द्र और अधिदेव अग्नि तथा प्रत्य-धिदेव राक्षस होते हैं। अतः इन तीनों की अभ्यर्चना करनी चाहिए। गजारूढ इन्द्र की भव्य-प्रतिमा सुवर्ण की बनावें जिसके हाथों में वज्र, अंकुश हों। कलशाग्रस्थ पात्र में दिव्याम्बरभूपित उस प्रतिमा को रख कर चन्दन पुष्प, अक्षत आदि उपचारों से गृह्यसूक्तोक्तमन्त्रों से पूजन, अभिषेक, हवन, सूक्त पाठ, महामृत्युञ्जयजप ब्राह्मणों का भोजन, करावें। इस प्रकार शान्त्यनन्तर शुभप्राप्ति होती है ॥ १–५ ॥

शक्त्यभावे गवां दान-महिमूलमघेन्द्रजे ।
गण्डान्ते, तु गवां दानं पूषाश्विजनिते सति ॥ ६ ॥

गामेकामन्यदुर्योगे दद्याद् विप्राय सादरम् ।
तन्मूल्यमथवा देयं गोरभावे विशेषतः ॥ ७ ॥

शक्त्यभाव की स्थिति में आश्लेषा, मूल, मघा, ज्येष्ठा जनित गण्डान्त में तीन या अधिक गायों का दान, रेवती, अश्विनी जनित गण्डान्त में दो गायों का दान, अन्य-दुर्योग में एक गाय का दान, गाय के अभाव में उसका मूल्य ब्राह्मण के लिए देना चाहिए ॥ ६–७ ॥

ज्येष्ठर्क्षसम्भवा कन्या धवाग्रजविघातिनी ।
विशाखान्तिमपादोत्था स्मृता देवरनाशिनी ॥ ८ ॥
विवाहसमयेऽतोऽस्याः शान्तिगोदानमाचरेत् ।
अन्त्यत्रिपादजा शाक्रे मूलआद्यत्रिपादजा ॥ ९ ॥
कन्या श्वश्रूं, सुतस्तत्रो-द्भवः श्वशुरघातकः ।
गोदानमाचरेच्छान्त्यै विवाहसमये तयोः ॥ १० ॥

ज्येष्ठानक्षत्रोत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई को, विशाखा नक्षत्र के अन्तिम-चरणोत्पन्न कन्या देवर को मारनेवाली होती है। अतः शान्त्यर्थ विवाह के समय (विवाह से पूर्व संकल्पपूर्वक) गोदान करा देना चाहिये। ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्तिम चरणत्रय तथा मूलनक्षत्र के आदिम चरणत्रय में उत्पन्न कन्या सास को तथा पूर्वोक्त नक्षत्रद्वयोत्पन्न बालक श्वशुर को मारने वाले होते हैं। अतः ऐसे सदोष कन्या या वर के विवाह के समय गोदान रूप शान्ति करानी चाहिए ॥ ८–१० ॥

इति बृहत्पाराशर-होराशास्त्रे ज्येष्ठादिगण्डान्तशान्त्यध्यायः समाप्तः ।

अथ त्र्यन्यजननदोषशान्त्यध्यायः ॥ ९६ ॥

पराशर उवाच—

अथ वच्मि त्र्यन्यजन्म-दोषशान्तिविधिं मुने ।
सुतत्रयात् परं कन्या-जन्म वा कन्यकात्रयात् ॥ १ ॥
अनन्तरं पुत्रजन्म तदाऽरिष्टं कुलद्वये ।
एवं सति ग्रहान् ब्रह्म-विष्णुरुद्रांश्च पूजयेत् ॥ २ ॥
यथोक्तेन विधानेन शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ।

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं त्र्यन्यजन्मदोष की शान्ति का उपाय बतलाता हूँ। तीन पुत्रों के बाद कन्या का जन्म हो अथवा तीन कन्याओं के बाद पुत्र का जन्म हो तो मातृ-पितृ-वंशों में अरिष्ट (अनिष्ट) होता है। अरिष्ट-शान्त्यर्थ ब्रह्मा विष्णु, महेश तथा सभी ग्रहों का पूजन, एवं विधानानुसार अरिष्टशान्ति करानी चाहिए ॥ १–२ ॥

सूतकान्ते शुभे वाऽह्नि ग्रहाणां यजनं ततः ॥ ३ ॥
ऋत्विजां वरणं तद्व-दाचार्यस्य च कारयेत् ।

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणा-माकृतीः स्वर्णनिर्मिताः ॥ ४ ॥
कलशाग्रस्थपात्रेषु यथापूर्वं समर्चयेत् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूप-दीपनैवेद्यवारिभिः ॥ ५ ॥

सूतक के अन्त या शुभ दिन में ग्रहों का पूजन, ततः पर शान्ति के लिए ऋत्विजों तथा आचार्य का वरण यजमान करें। ततः पर ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु तथा रुद्र इन देवों की स्वर्ण निर्मित प्रतिमाओं को कलशाग्रस्थ पात्रों पर रखकर चन्दनयुक्त अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा जल से पूजन करें ॥ ३–५ ॥

शान्तिसूक्तानि रौद्राणि सूक्तानि च जपेच्छुचिः ।
विप्र एकस्तु नियतः सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ६ ॥
समित्तिलाज्यांश्च चरु-माचार्यो जुहुयाच्छतम् ।
सहस्रं वा समिद्धेऽग्ना-वष्टाभिरधिकं मुने ! ॥ ७ ॥
स्वस्वगृह्योदितैर्मन्त्रै-श्चतुर्देवप्रसादकैः ।
बलिं, स्विष्टकृतं चापि हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ॥ ८ ॥
आचार्यो दम्पतीजात-मपि सिञ्चेद् घटोदकैः ।
विप्राणां भोजनं चैव-मृत्विजां दक्षिणां चरेत् ॥ ९ ॥
यजमानो विशेषेणा-ऽभ्यर्चयेत् स्वर्णगोधनैः ।
आचार्यं सर्वतश्चैवं शान्त्याऽरिष्टं प्रशाम्यति ॥ १० ॥

(तदनन्तर) एक पवित्र ब्राह्मण चारो रौद्रसूक्तों तथा शान्तिसूक्तों का पाठ नियत रूप से करें। आचार्य समित्, आज्य, तिल तथा चरु से प्रदीप्त अग्नि में अष्टोत्तरसहस्र या अष्टोत्तरशत वार चतुर्देवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र) के प्रसादक अपने-अपने गृह्योक्त मन्त्रों से हवन करें। बलि, स्विष्टकृत हवन के पश्चात् पूर्णाहुति करना चाहिये। ततः पर आचार्य कलशोदक से जातक तथा दम्पति का अभिषेक, ब्राह्मणों का भोजन, तथा ऋत्विजों की दक्षिणा करें। अनन्तर गाय, स्वर्ण तथा अन्य रत्नों से यजमान आचार्य की सर्वथा अर्चना करें। इस तरह की शान्ति से सर्वविध अरिष्ट शान्त होते हैं ॥ ६–१० ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे ऽन्यजननशान्त्यध्यायः समाप्तः ।

अथ प्रसूतिविकृतिशमनाध्यायः ॥ ९७ ॥

पराशर उवाच—

अथ मैत्रेय ! ते वच्मि प्रसूतेर्विकृतिं, शृणु ।
यथाऽशुभं समस्तेऽपि ग्रामे वंशे च जायते ॥ १ ॥

समयाच्चेद् विलम्बेन पूर्वं वा प्रसवो भवेत् ।
विकलाङ्गोऽधिकाङ्गो वा-ऽनेकनेत्रशिरोधरः ॥ २ ॥

नराकारः पशावेवं पश्वाकारः स्त्रियामपि ।
प्रसूतिविकृतिश्चेयं महाविध्वंसकारिणी ॥ ३ ॥

स्त्रियां पशुकुले यस्य प्रसूतिविकृतिर्भवेत् ।
तस्य वंशे गृहे चापि महोत्पातः प्रजायते ॥ ४ ॥

परिहर्त्तुं तु तान् दोषाञ् शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ।
अथवा तादृशीं नारीं गामश्वां च परित्यजेत् ॥ ५ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! अब मैं प्रसूति का विकार जिस मे समस्त ग्राम तथा वंश में अशुभ होता है, बतलाता हूँ, सुनो । समय से विलम्ब कर या समय से पहले ही किसी को प्रसव हो, प्रसव में विकलाङ्ग या अधिकाङ्ग पैदा ले या अनेक नेत्र या अनेक शिरोधारी जीव जन्म लेवे, पशु से नराकार या स्त्री से पश्वाकार प्रसव हो तो इसे प्रसूति-विकार समझना चाहिए । यह प्रसूति-विकार महाविध्वंसकारी होता है । जिस व्यक्ति की स्त्री या पशुकुल में प्रसूति विकृति हो उसके वंश तथा घर में महोत्पात (महाविघ्न) होता है । दोषपरिहार के निमित्त विधिपूर्वक शान्ति करावें या वैसी (प्रसूति विकार वाली) स्त्री, गाय, या घोड़ी को त्याग कर दें ॥ १–५ ॥

जन्मनः षोडशे पञ्च-दशे वाऽब्दे भवेद् यदि ।
गर्भः स्त्रिया वा प्रसवो न शिवायोपकल्पते ॥ ६ ॥

सिंहस्थेऽर्के प्रसूता गौ-र्महिषी मकरस्थिते ।
नश्येत् स्वयं तथा सा तु नाशयेदधिपं निजम् ॥ ७ ॥

विप्राय तादृशीं दद्यादथवा शान्तिमाचरेत् ।
सखेटविष्णुब्रह्मेश-पूजनं हवनादिकम् ॥ ८ ॥
अभिषेकं च सकलं कर्म पूर्ववदाचरेत् ।
एवं कृते नरः शुद्धः पापान्मुक्तः सुखी भवेत् ॥ ९ ॥

जन्म से १५ या १६ वें वर्ष में गर्भ या प्रसव किसी स्त्री को हो तो वह शुभद नहीं है । सिंहस्थ सूर्य में गाय और मकरस्थ सूर्य में भैंस यदि प्रसूता हो तो उन्हें ब्राह्मणों को दे दें या उस दोष की शान्ति करावें । ऐसी स्थिति में सग्रह ब्रह्मा विष्णु, महेश का पूजन, हवन, अभिषेक, आदि समस्त क्रिया-कलाप पूर्वोक्त शान्ति-विधि से करावें । इस प्रकार पापमुक्त मनुष्य विशुद्ध होकर सुखी होता है ॥ ६–९ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे प्रसूतिविकृतिशमनाध्यायः समाप्तः ।

अथ ग्रन्थोपसंहाराध्यायः ॥ ९८ ॥

पराशर उवाच—

मैत्रेय ! यदिदं शास्त्रमुदितं पुरतस्तव ।
तदिदं निखिलं प्राप्तं पारम्पर्यक्रमान्मया ॥ १ ॥

पुरा प्रजापतिः प्राह नारदाय महर्षये ।
स चापि शौनकादि-भ्यस्तेभ्योऽधिगतवानहम् ॥ २ ॥

दुर्जनायाविनीताय कृतघ्नाय जडाय वा ।
द्वेषिणे निन्दकायापि न देयमिति कर्हिचित् ॥ ३ ॥

विनीतायाऽपि विज्ञात-कुलशीलाय सेविने ।
मेधाविने देयमेत-दुत्तमं शास्त्रमादृतम् ॥ ३ ॥

पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! मैंने जो यह शास्त्र तुम्हारे समक्ष बतलाया है, वह समस्त परम्परया मुझे प्राप्त हुआ है। प्राचीन समय में ब्रह्मा ने महर्षि नारद से बतलाया, महर्षि नारद ने शौनकादि ऋषियों से और शौनकादि ऋषियों से मैंने प्राप्त किया है।

यह शास्त्र (बृहत्पाराशर रूप) दुर्जन, उद्दण्ड, कृतघ्न, जड, द्वेष करने वाले, निन्दक आदि को कभी नहीं देना, साथ ही विनयी ज्ञातकुलशील, सेवक तथा मेधावी को ही सर्वथा आदृत यह उत्तम शास्त्र देना चाहिए ॥ १–३ ॥

कालज्ञानपरो यश्च ग्रहर्क्षस्थितिकोविदः ।
गणितस्कन्धनिपुणः शब्दशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥

होराशास्त्रमदो ज्ञातु-मामूलमयमर्हति ।
शुभाऽशुभफलं चापि तदुक्तं वाऽनृतं भवेत् ॥ ६ ॥

जो व्यक्ति कालज्ञान, ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति, तथा गणित स्कन्ध का अभिज्ञ हो साथ ही व्याकरणशास्त्र में प्रवीण हो वही समस्त होराशास्त्र का ज्ञाता हो सकता है। ऐसे अभिज्ञ व्यक्ति द्वारा कथित शुभाऽशुभफल कभी असत्य नहीं होता है ॥ ५–६ ॥

अध्यायक्रम—

ग्रन्थोऽसौ विप्र ! विषयै-र्विविधैरुपवर्णितः ।
यथाक्रममिहाध्याया बहवो विनिवेशिताः ॥ ७ ॥

सृष्टिक्रमस्तु तत्रादा-वयतारक्रमस्ततः ।
ग्रहस्वरूपमथ च ग्रहादीनां प्रसाधनम् ॥ ८ ॥

राशिशीलास्ततो वर्गाः षोडशाऽपि निवेशिताः ।
विवेचनं च वर्गाणां ततो दृग्भेदवर्णनम् ॥ ९ ॥

सूतिकाऽरिष्टतद्भङ्गा वर्णिताश्च पृथक् पृथक् ।
विवेचनं च भावानां ततो भावफलं तथा ॥ १० ॥

भावाधीशफलं चापि धूमादिग्रहसम्भवम् ।
नभोगानां स्पष्टदृष्टि-बलसाधनमीरितम् ॥ ११ ॥

इष्टकष्टविवेकश्च पदमारूढसंज्ञकम् ।
फलमौपपदं त्वेव-मार्गलं कारकास्तथा ॥ १२ ॥

कारकांशफलं योगा-ध्यायो नाभसयोगकाः ।
अपि योगाश्च विविधा अध्यायौ चन्द्रसूर्यजौ ॥ १३ ॥

राजयोगास्ततो राजा-श्रययोगाश्च कीर्त्तिताः ।
धनयोगाश्च दारिद्र्य-योगा आयुर्विचारणा ॥ १४ ॥

ततो मारकभेदाश्च ग्रहावस्थाफलं पुनः ।
दशाभेदा दशानां च फलं भावेशसम्भवम् ॥ १५ ॥

दशाफलं, कालचक्र-दशाराशिदशाफलम् ।
अन्तर्दशासाधनं च ग्रहभुक्त्यन्तरादिजम् ॥ १६ ॥

दशाफलं तथा प्रत्यन्त-रसूक्ष्मासुसम्भवम् ।
अन्तर्दशाफलं काल-चक्रजासु दशासु च ॥ १७ ॥

ग्रहाणामष्टको वर्गः शोधनं च त्रिकोणजम् ।
एकाधिपत्यजं तद्वत् पिण्डसाधनमीरितम् ॥ १८ ॥

फलानि चाष्टवर्गाणामायुरष्टकवर्गजम् ।
समुदायाष्टवर्गोत्थ-फलानि गदितानि च ॥ १९ ॥

नभोगग्रग्रहफलं सुदर्शनफलं तथा ।
महापुरुषयोगास्त-न्महाभूतफलानि च ॥ २० ॥

सत्त्वादीनां गुणानां तु फलाध्याय उदीरितः ।
ततोऽज्ञातजनुःकाल-बतासञ्ज्ञादिबोधनम् ॥ २१ ॥

प्रव्रज्यालक्षणं चापि स्त्रीजातकविशिष्टताम् ।
तदङ्गलक्ष्मजफलं शापाः सन्ततिघातकाः ॥ २२ ॥

सुसुताऽवाप्त्युपायाश्च तत्रैव समुदीरिताः ।
जनुष्यनिष्टतिथ्यङ्ग-नक्षत्रादिविवेचनम् ॥ २३ ॥

तत्तच्छान्तिविधानं च सर्वमत्र निवेशितम् ।
प्रसूतिविकृतिः शान्ति-युताऽप्यभिहिता इति ।
परःशतास्तु विषया होराशास्त्रेऽत्र वेशिताः ॥ २५ ॥

हे मैत्रेय ! इस ग्रन्थ में विविध विषयों का वर्णन किया गया है । इसमें अनेक अध्याय—जैसे सृष्टिक्रम, अवतार क्रम, ग्रहस्वरूप, ग्रहादि-साधन, राशि-शील, षोडश वर्ग-वर्णन, वर्ग-विवेचन, दृष्टिभेद-वर्णन, सूतिकाध्याय, अरिष्टाध्याय, अरिष्टभङ्गाध्याय, भावविवेचन, भावफल, भावाधीशफल, धूमादि (अप्रकाश) ग्रह-फल, ग्रहस्पष्टदृष्टि तथा स्पष्टबल साधन, इष्टकष्टविवेक, आरूढसंज्ञक पद, उपपद, अर्गला-सम्बद्ध फल, कारकाध्याय, कारकांश-फल, योगाध्याय, नाभसयोग, विविधयोग, चन्द्राध्याय तथा सूर्याध्याय, राजयोगाध्याय, राजाश्रययोगाध्याय, धनयोग तथा दारिद्र्ययोग-संज्ञक अध्याय, आयुर्विचार, मारकभेद, ग्रहावस्थाफल, दशाभेदाध्याय, दशाफल, भावेश-दशाफल, कालचक्रदशा तथा चरादिराशि-दशाफल, अन्तर्दशाफल, ग्रहों का अष्टकवर्ग, त्रिकोणशोधन, एकाधिपत्यशोधन, तथा पिण्डसाधन, अष्टकवर्गफल, अष्टवर्गोत्थ आयु, समुदायाष्टकवर्गोद्भवफल, ग्रहरश्मिफल, सुदर्शनफल, पञ्चमहाभूत फल, ततः पर सत्त्वादिगुणत्रयफलाध्याय, अज्ञात-जन्म-समय व्यक्तियों का जन्माङ्गादि का बोध-प्रकार, प्रव्रज्यायोगलक्षण, स्त्रीजातक की विशिष्टता, स्त्रियों के अङ्गलक्षणफल, पुत्रक्षयकारण, पूर्वजन्मजशाप तथा शापमोचनपूर्वक पुत्रोत्पत्ति के उपाय, जन्म-समय के अनिष्टकारक तिथि, लग्न, नक्षत्र आदि का विवेचन, प्रसूतिविकार तथा

तत्तच्छान्तियों का विधान, यहाँ निविष्ट हैं। इस प्रकार इस होराशास्त्र में गनाधिक विषय निविष्ट किए गए हैं ॥ ७–२५ ॥

पराशरोदितं शास्त्र-मेतदादरपूर्वकम् ।
ये पठन्त्यपि शृण्वन्ति तेषामायुर्यशोबलम् ॥ २६ ॥
समृद्धिश्चापि विविधा वर्धते हि दिने दिने ।
तस्माच्छास्त्रमदो विज्ञै-रध्येतव्यं सदा मुदा ॥ २७ ॥

पराशरोक्त यह शास्त्र जो व्यक्ति सादर पढ़ते या सुनते हैं उन्हें आयु, यश, बल तथा विविध समृद्धि की प्रत्यह अभिवृद्धि होती है। अतः यह शास्त्र प्रसन्नतापूर्वक सतत पढ़ना चाहिए ॥ २६–२७ ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे ग्रन्थोपसंहाराध्यायः समाप्तः ॥

इति दरभङ्गाप्रमण्डलान्तर्मधुवनीमण्डलस्थनगवासग्रामवास्तव्यमुजफ्फरपुरस्थधर्मसमाजापारनामधेयराजकीयसंस्कृत-महाविद्यालयज्यौतिषप्राध्यापकेन
श्रीदेवचन्द्रझा मैथिलेन सुसंस्कृतः सविमर्शसुधाख्यया हिन्दी-व्याख्यया च समलङ्कृत एष बृहत्पाराशर-होराशास्त्र-स्योत्तरो भागः समाप्तः ।

तदेवम्–

बृहत्पाराशरो ग्रन्थो भागद्वयविभूषितः ।
सविमर्शसुधाव्याख्यायुक्तः पूर्त्तिमगादिति ॥

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।

पुष्पाञ्जलिः

विख्याते मिथिलाञ्चले 'मधुवनी' सन्मण्डले मण्डिते
विद्वद्भिर्'नगवास'नामनि मम ग्रामेऽभिरामे जनुः ।
यत्रोद्यन्ति विवेकशीलमतयो हृद्यान्वयोल्लसद्-
विद्याभूषितभाषितामलधियो ज्योतिर्विदां राशयः ॥

(२)

ग्रामेऽस्मिन् मम पूर्वजा अतिचिरादापुः प्रतिष्ठां परां
तेष्वेको जनको ममातिकुशलः 'श्रीठक्कना'ख्यः सुधीः ।
रागद्वेषविषादवादरहितो नित्यं शिवाराधने
सक्तोऽस्मानपहाय हन्त !! सदनं शम्भोर्जगामैषमः ॥

(३)

आरम्भेऽहमधीत्य पाणिनिकृतां सिद्धान्तसत्कौमुदीं
स्वग्रामीण'नचारिणो' गुरुवराद् ग्रन्थानपि ज्योतिषः ।
जिज्ञासुर्बहुशोऽथ भास्करकृतग्रन्थेषु मर्मज्ञता-
ऽवाप्त्यै विश्रुतनामकं गुरुवरं 'विश्वेश्वरं' संश्रितः ॥

(४)

योऽसौ स्वीयगृहेस्थितो हि 'डुमरा' ग्रामे समध्यापय-
न्नासीच्छिष्यशतं तु वत्सलतया धर्मैकबुद्ध्याऽनिशम् ।
सोऽयं सश्रममादितः सगणितग्रन्थांस्तु सैद्धान्तिकान्
ग्रन्थान् ग्रन्थिविमोचनेन सुगमान् सर्वानकार्षीद् गुरुः ॥

(५)

झोपाभिध- 'श्रीमधुकान्त'शर्मणां
विख्यातनाम्नां निकटं ततः श्रितः ।
काशीपरीक्षापरिदित्सयाऽवसं
चत्वारि वर्षाणि सहैव 'लश्करे'[1] ॥

---

१. 'लश्करं' नगरं भूतपूर्वं ग्वालियरनरेशस्य राजधानी ।

(६)

एतेऽपि मां स्नेहपुरस्सरं सदाऽधीतानधीतानखिलानबोधयन् ।
सौभाग्यतोऽद्यापि गते तु तत्पदे सन्मर्मनिर्देशनमाचरन्ति ते ॥

(७)

काशीस्थितेभ्योऽथ चतुर्धुरीण'*गेनादिलाला*'भिधसद्गुरुभ्यः ।
ज्ञानाभिलाषी श्रिततत्पदोऽहं वाराणसीमागतवान् विनीतः ॥

(८)

यदीयपदमञ्जुलाम्बुजगलद्रजोऽत्यञ्जसा
विधूय तमसां चयं निरदिशद् धियं निर्मलाम् ।
तदम्बुजसमाश्रितो विकलचञ्चरीकस्त्वहं
मरन्दनिकरं मुहुर्मुहुरलं निपीय स्थितः ॥

(९)

पुराधीतग्रन्थाऽऽगतविषयमन्थाध्वरपरोऽ-
नधीतानां मूलादनवगतचूलावधिरतः ।
विविच्यैवं स्कन्धत्रयगतनिबन्धश्रितमना:
अनैषं सप्ताब्दान् गुरुवदनशब्दाननुसरन् ॥

(१०)

आरम्भतो ज्यौतिषशास्त्रमध्ये साहित्यशास्त्रेऽपि ततः परस्तात् ।
सर्वाः परीक्षाः प्रथमाभिधायां श्रेण्यां तु प्रत्यब्दमहं समापम् ॥

(११)

आचार्यद्वयमेवं पोष्टाचार्यं तथैव काशीतः ।
स्नातकतोत्तरमेमे द्वयं तु काशी-विहाराभ्याम् ॥

(१२)

मुजफ्फरपुरे धर्म-समाजापरसंज्ञके ।
महाविद्यालये राजकीये परमविश्रुते ॥

(१३)

प्राध्यापकतया ज्योतिःशास्त्रमध्यापयन् सदा ।
मुदाऽनेकशरद्भ्योऽहमस्मि सेवारतो विदाम् ॥

प्राप्तिस्थान
चौखम्भा संस्कृत संस्थान
भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा प्रचारक
पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९
जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी (भारत)